



# अहर्नि

सावित्र-साप्ताहिक

श्रद्धानन्द अंक

भारतस्य अस्मिन् न ई-प न कलायाम् ॥

मंत्रायाम्



श्री श्रद्धानन्द

सावित्र ३॥ ]

सम्पादक— { श्रद्धानन्द विद्यावाचस्पति  
कल्याणन्द विद्यावाचस्पति

[ एक अंक का दृश्य - १ ]



## विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ-संख्या
१ सम्पादकीय		३
२ दयालु हृदय भद्रानन्द	श्री सी० ए० पण्डित	४
३ अमर बलिदान	श्री रामेन्द्रभास्व	५
४ म० सुशीराम व भव्य-चरण		५
५ योग्य देशभक्त	श्रीगोपालकृष्ण देवधर, भूता	५
६ श्री तुरंगम-पथ के मवामी ( कवितो )		६
७ स्वामी जो का एक पत्र		७
८ सत्य और अज्ञा का दुर्वच	श्री रघोदत्ताथ टागोर	७
९ धर्म-संस्कृति का निर्माता	श्री कोटा वैकुण्ठय्या	८
१० न्याय और साहस का अथलात		८
११ सत्य और उच्चता की साक्षात प्रति	डा० सत्यपाल	८
१२ अमर कीर्ति चिरंजीवी हो	श्री हरदयाल नाग	८
१३ चित्रावली		९
१४ वीर और महा	श्रीमती सरोजिनी नाथ	१०
१५ निस्वार्थ संन्यासी	श्री सत्यमूर्ति एम, एल, ए	१०
१६ अमृत काव्य और समाजसुधारक	श्री धर्मेश विद्याचन्द्रस्यति	११
१७ कर्तव्यनिष्ठ संन्यासी	कुमार गगानचन्द्रसिंह	१२
१८ सत्याग्रह और भारदोली	श्री वैजनाथ महोदय	१३
१९ सच्चा कर्मयोगी भद्रानन्द	ए० दीनदयालु शास्त्री	१४
२० सर्वस्व-त्यागी संन्यासी	श्री भीष्मपुत्र एम, एल, ए	१४
२१ स्वामी भद्रानन्द की पुण्यस्तुति	श्री वैकुण्ठरामरायण निवारी	१४
२२ साहित्य-समालोचन		१६
२३ अपराधी कोन ? ( भारवाही उपन्यास )	श्री देश	१७
२४ किसान ही भारत की संस्कृति हैं		१८
२५ चित्रावली		१९
२६ आदर्श शिक्षा-विशेष	प्रो० एल, एल, कैरनाओ	२०
२७ भारत का निषक	श्री मोहनलाल सक्सेना	२०
२८ भारत का पंचवर्षीय आयोजन	श्री चन्द्रावत अंबारी	२१
२९ स्वामी भद्रानन्द	श्री धर्मवीर वेदालंकार	२३
३० सत्याग्रही की इलजल		२३
३१ सत्याग्रही की इलजल		२६

अथवा

पढ़िये ?

## उवाली के

मशहूर नागपुरी मन्त्रे के कलमी भाड़

इत भारों व लगान का समय आ गया। दूरस्त अच्छे उम्मा और व्यवस्था म मज जावेग। भाड़ों का कोमल एक कुट ऊवा २०) ६० सेकड़ा हो कुट ऊवा २५) ६० सेकड़ा। नाग कुट ऊवा ३५) ६० सेकड़ा। मास हो ५०) ६० सेकड़ा, पकोया १०) ६० सेकड़ा, माडा मोर २०) सेकड़ा, कडा मोर १०) ६० सेकड़ा। इस भाव से कलमीयकर रखवे स्टेशन पर मिलेगा। इसके अलावा रल लव, पौकग लव, हमाली लव, अलबरा पकने। मास की० पी० म मेजा जायगा। माल रवाना हो जाने के बाद हम किसी तरह के जवाबदार न रहेंगे।  
पता—नागपुर वैष्णव-उल्लुगुजार, मु० उवाली, पो० कलमेश्वर, जि० नागपुर

कोटा ( राजपूताना ) में

‘अर्जुन’

कहाँ मिलता है

सुषह १० बजे से १० बजे तक

गन्धी शिवनारायण विश्वेश्वरदास

को दुकान, बड़े डाकखाने के पास

समय १२ बजे से ५ बजे तक

मोहन न्यज एजेन्सी, रामपुर बाजार कोटा, राजपूताना।



‘उल्ला’  
‘हुआगोला’

धारीवाल के बुन के नये धागे को प्रयोग करने वाले के लिये कोई अर्थ नहीं रहता।

**Dharival**  
CARTON  
**Knitting Yarns**

मुफ्त नमूने के लिये

बिना न० ६० का लिखें।

दि धारीवाल उल्लन मिल्स, धारीवाल-पञ्जाब।

धारीवाल पत्रसेवा—१ मा धोराम पत्रक सज्ज, माँ सज्ज देहली।  
२ स्थानवाला वेड पत्रवाथ सेवका काजार कागपरा।

# अर्जुन

द्विबार, तम २४ विस्वम्बर १९३४ ई०

कर्मसत्य प्रतिष्ठा के हेतु न पलायनस्य

## विश्वास का पुजारी

जो मध्य कालकर्म किया करते हैं कि स्वामी जी की भजनात्मक जी अर्पण प्रभुमाय ४२ वर्ष के जीवन में इसी निष्ठा-निष्ठा संस्थाओं में कार्य करते हैं कि? फिर वह निष्ठा-निष्ठा संस्थाओं में ऐसी कि एक दूसरे से सर्वथा भिन्न और कहीं-कहीं परस्पर विरोध प्रतीत होती हैं।

एक समय ऐसा था कि दिल्ली की प्रसिद्ध जामा मस्जिद के मिस्तर पर व्याख्यात के लिये सजा करके दिल्ली के अन्धबुद्धों में एक धर्म संस्थाओं की अनुष्ठान सम्मान दिया था। दूसरे समय उन्हीं दिल्ली के मुसलमानों में उसी धर्म-संस्थाओं की इस्लाम का बहुरूप प्रभुमाय, यहाँ तक कि उन्हीं में से एक ने उन्हीं अपनी गोली का निशान बना दिया। यह सिद्धान्त कर्मसम्मत है कि प्रेम से प्रेम और द्वेष से द्वेष की भावना पैदा होती है। पहली घटना खुशित करती है कि जो स्वामी जी को मुसलमानों के इस्लाम प्रेम था कि मुसलमान उन्हीं प्रभुमाय शक्ति में सत्य समझते थे, जो दूसरी घटना में प्रतीत होता था कि मुसलमानों के चित्त में उन्हीं और भगवान् विश्वास का भाव पैदा हो चुका था।

एक समय हम श्री स्वामी जी को धर्मसमाज के प्रचार कार्य में सम्पूर्ण शक्ति का व्यव करते देखते हैं, तो दूसरे समय उन्हीं को हम धर्मसमाज के क्षेत्र को अत्यन्त संकुचित बनाता कर उसमें अन्धबुद्धों के अन्तर्गत बुद्धों पाते हैं।

४. समय आता है कि श्री स्वामी जी कादिस के आश्रमों में निवे जाते हैं। मार्ग-का की गहरी बोट

से व्याकुल पंजाब में कर्मिण का कर्मिण करना श्री स्वामी जी की काम था। वह उस समय महात्मा गांधी की गर्व गुजा समझे जाते थे। कुछ वर्ष पीछे उनके हृदय में कर्मिण कार्यक्रम अन्तर्गत पैदा हुआ तो उसने स्वयंभूत देकर अन्तर्गत हो गये।

आपने इतिहासकार सना बनाकर इतिहासकार का धर्ममन्त्र किया। जब आगरी में मुक्ति का कार्य प्रारम्भ हुआ तो आप वहाँ गये और मुक्ति की बागडोर को सम्भाला। मुसलमान विश्वासालय के लिये आपने अपना सर्वस्व व्योक्तकर कर दिया। परन्तु जब देखा कि उसके संस्थाओं की ओर उनकी नीति पर मतभेद है तो मुसलमान को छोड़ कर दिल्ली चले आये। जब दिल्ली-समाज के कार्य को अनुप्राण पाती हैं बढ़ते देखा तो उसे भी छोड़ कर समाज-सेवा का स्थायीन मार्ग प्रवृत्त कर लिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री स्वामी जी ने अनेक पहलें से विश्वास संस्थाओं के साथ कार्य किया, आपने दंग पर कार्य करने के लिये कार्य नई संस्थाओं के लिये कार्य नई सामाजिक संस्थाओं को निर्माणा किया और समय आने पर उन संस्थाओं को छोड़ कर दूसरे क्षेत्र में प्रवेश करने में भी संकोच नहीं किया।

एक पक्षपात-हीन दृष्टिक, जिसने श्री स्वामी जी के व्यक्तित्व को माली प्रकार नहीं समझा है। इस विवेचना से प्रकट उठा और सोचना कि समय के जीवन में, और विचारों में अस्मिता का अंश काफ़ी था परन्तु अन्तर्भाव यह नहीं है। इस अनेक संस्था-विचरक की घटना की तह में कौनसी वस्तु काम करती है यह जानने के लिये हमें यह देख लेना चाहिये कि श्री स्वामी जी के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का प्रेरक कारण और पथ-दर्शक कौनसा सिद्धान्त था, और उनके कार्य करने का दंग क्या था?

श्री स्वामी जी के सारे धर्म-अनिष्ट जीवन को हम एक ही लक्ष्य की प्रति के लिये एक कर्म की कृत्या

कर सकते हैं। वह लक्ष्य क्या था? श्री स्वामी जी का विश्वास था कि धर्म-जाति और धर्मोन्तर्गत का अविष्य बहुत उज्ज्वल और आशाप्रद है। वह धर्म-जाति को द- र निर्देश देना चाहता था, संसार में बसने वाली अन्ध-जाति के बराबर का देना चाहते थे। धर्मोन्तर्गत को अपनी मध्य-मर्म समझने वाली जाति उनके लिये धर्म-जाति थी, इस प्रकार उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य धर्म-जाति और धर्मोन्तर्गत को प्रवृत्त और स्थायीन बनाना था।

इस लक्ष्य की प्रति के लिये ही उनका सारा जीवन व्यतीत हुआ। जिधर उन्हें धर्म-प्रकटा प्रतीत हुए, उधर ही वह झुक पड़े। जो निर्बलता उन्हें अपने धर्म-प्रकटाकार मान्य हुए, वह उसी के निवारण के लिये लग गये, संस्था को प्रवृत्त किया और छोड़ा। नई संस्थाएँ बनाई और त्याग दीं। यदि उन्होंने किसी संस्था को अपने लक्ष्य की प्रति में सहायक पाया तो उसे अपना लिया, और यदि उसे निकम्मा पाया तो छोड़ दिया। वह संस्थाओं के गुणान नहीं थे, संस्था उनके लिये साधन थी, उद्देश्य थी। उनका व्यक्तित्व दृढ़ता बढ़ा था, कि वह किसी एक संस्था के चिन्ते में बन्द नहीं किया जा सकता था। वह संस्थाओं के धर्मों से प्रेरित महान थे। संस्थाओं के धर्मों से प्रेरित नहीं थे, वह संस्थाओं के प्रोत्साहन नहीं थे।

उनके जीवन का यही लक्ष्य था कि धर्म-जाति अपने लक्ष्य होयों को भस्मप्रय करने और स्थायीनता के ऊंचे पद पर विराजमान हो। यह उनका विश्वास था कि धर्म-जाति का अविष्य चमकीला है। इस विश्वास पर उन्होंने अपनी सारी शक्ति, सारी सम्पत्ति और सारी विमुक्ति को लगा दिया। यह उनकी विश्वासता थी। वह वही धर्म-जाति के लिये वस्तु को अनुभव नहीं करते थे। जब अनुभव करते थे तो पुर दिल से, और जब उसके लिये प्रयत्न प्रारम्भ करते थे तो सारी शक्ति में। जिस संस्था में काम किया, सारी शक्ति लगा कर लिया। जब उन्हें धर्म-प्रकटाकार छोड़ा तो पूरी तरह छोड़ दिया, क्योंकि कि

उनका लक्ष्य वह संस्था नहीं था, अर्थात् धर्म-जाति का विश्वास अविष्य था।

बात यह है कि वह विश्वास के बन्दे थे। जो लोग विश्वास की अन्धता को नहीं जानते, उन्हें स्वामीजी का जीवन परस्पर विरोधों से पूर्ण दिखाई देता, परन्तु वस्तुतः उसमें एक सुन्दर समानता पाई जाती है। जब मुसलमान स्वामी जी में प्रवेश करते थे, तब उनके हृदय में धर्म-प्रवृत्त से कुछ कम प्रेम नहीं था, और जब मुसलमान उनकी उन्न के व्यापे थे, तब उनके हृदय में इस्लाम से शत्रुता नहीं थी। वह जिस समय कैसा अनुभव करते थे, वैसा ही करते और वैसा ही करते थे। मय उन्हें किसी भाव को प्रकट करने का कार्य को कर सकते थे नहीं रोक सकता था। संसार को वह अपने विश्वास पर टुकरा सकते थे, यही कारण था कि सामान्य विवेक को उनके जीवन में परस्पर विरोध दिखाई देता है, क्योंकि सामान्यविवेक का विमर्ग संस्थाओं की सीमा को पार नहीं कर सकता, वह संस्था को साधन नहीं, लक्ष्य ही मानता है। जो व्यक्ति संस्था को साधन में भेद नहीं कर सकता, वह भी स्वामीजी के जीवन के रहस्य को भी नहीं जान सकता।

## सम्पादकीय विचार

हिन्दुस्तानियों के लिये

स्थान नहीं

दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानी निवासियों की स्थिति निम्नोक्त की जा रही है। कहन को तो दक्षिण अफ्रीका और ब्रिटिश साम्राज्य के राजनीतिक संसार को यही विमर्श दिखता है कि भारतवासियों और गोरों में मंदभाव कम हो रही है और परस्पर विरोध कम हो रहा है। उस दिन दक्षिण अफ्रीका के अन्तिम राजनीतिक अन्तर्गत स्मृत्त ने इङ्ग्लैंड से व्याख्यात दत्त हुए कहा था कि "यह संसार तभी रहन योग्य हो सकता है, यदि इस में निवास करने वाले पुरुष और स्त्री स्थायीन हो

सर्गे, उन्हें बेचल किया और भाषण की ही स्वाधीनता न हो परन्तु एक सुखी जीवन ध्यतित करने का सुप्रसरण प्राप्त हो' कितना सुन्दर वाक्य है, परन्तु कृष्ण भद्रोक्तों में रहन बाते भारतवासियों के साथ को लायीसियों की ओर से जो सन्तुष्ट हो रहा है, उसे लेते तो वह कितना भरा है। पुरानी शिक्षाओं में भी चली ही जाती हैं, वहाँ की लीपापोती में भी वह दूर नहीं हुई। नई बात यह है कि जौनसर्गे में लारी चलाने वाली एक कम्पनी को सार्वजनिक रूप से मजदूर न खूना दी है कि कबल उन्नी दम्पतियों को लारी चलाने का सार्वजनिक दिया जा सकता है जो वे तरह बताते हैं। एक फर्स्टक्लास कह लार्यों की ओर दूसरी सेल्फ् क्लास। फर्स्ट क्लास पर स्पष्ट शर्तों में लिखा होना चाहिए कि वह कबल गोरो के लिए है और सेल्फ् क्लास पर लिखा होना चाहिए कि वह कालों के लिए है। गोरो की लारी या कार में काला आदमी न बैठ सकता। जनरल स्मट्स का पेश किया हुआ आदर्श कितनी सुन्दर रीति में व्यवहार में लाया जा रहा है। एक लम्बक न कहा है कि बड़ा राजनीतिज्ञ वह है जो बड़े बेसा जैसा कहना चाहिये और बड़े बेसा जैसा करना चाहिये। जनरल स्मट्स भी बहुत बड़े राजनीतिज्ञ हैं। बात यह है कि भारतवासी जब तक अपने देश में ही राजनीतिक गुलाम हैं, तब तक उन्हें देश में बाहिर स्वतन्त्र पुरुषों में न सन्देह की आशा नहीं रखनी चाहिये। ब्रिटिश साम्राज्य में हो या उसके बाहिर भारतवासी कबल तभी सम्मान का दृष्टि में नज़र आयेगा जब अपने देश में वह सम्मानित हों। जब तक वह देश में परतन है, तब तक मान लना चाहिये कि पृथ्वी पर किसी देश में भा उन्नत स्थिति प्राप्त का स्थान नहीं है।

### हैदराबाद और आर्यसमाज

गत सप्ताह ही मैं सार्वभौमिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री नारायण स्वामी जी ने हैदराबाद

रियासत और आर्यसमाज के सम्बन्ध में दो वक्तव्य प्रकाशित किये हैं। हमें यह दोनों ही परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। एक वक्तव्य में आपन आर्य-जगत् को विश्वास दिनाया था कि अब उस रियासत में आर्य समाज के प्रचार कार्य पर कोई पाबन्दी नहीं रही। दूसरा वक्तव्य में आपन फरमाते हैं कि पं० रामचन्द्र आर्यपरेशुफ और पं० बन्धुमान जी उद्देश्यक सम्बन्ध में देशनिवासे की जो आशाएँ दी गई थीं वह अभी तक वापिस नहीं ली गई। रियासत में आपसमाज पर स्थापना के सम्बन्ध में जैसा आन्दोलन का अन्त पं० रामचन्द्र जी ने धियोग और फिर पाबन्दा लगाने में ही तो हुआ था। वह पाबन्दी जैसा की मैंने विधमान है। तब यह कम कहा जा सकता है कि अब रियासत में आर्यसमाज के प्रचार पर कोई पाबन्दी नहीं रही यह ठीक है कि अभी उस दिन सार्वभौमिक सभा के कुछ अधिकारी रियासत में गये थे और उन्होंने मोक्ष परमाणा के रूपक और डाकिन के विज्ञापन पर कुछ व्याख्यान दिये थे, जिन्हें रियासत में नहीं रोखा परन्तु उस में यह तो निन्द नहीं होता कि रियासत में आर्यसमाज के प्रचार पर कोई पाबन्दी नहीं लगाई गई। उपदेशको पर पाबन्दी लगाई गई थी और वह अब तक विद्यमान है। हमारी राय में तो सार्वभौमिक सभा न आर्यजगत् को निराधार आशवासन देने में यकीन मूल की है। आर्यसमाज के प्रचार पर बाधा पड़ने में जो उत्साह और आगे आर्यसमाज में पैदा हुआ है। वह तो आर्यसमाज न जल में शान्त हो गया, और जो पाबन्दी थी, वह शान्त कर विद्यमान है। यदि सार्वभौमिक सभा के महापुरुष हम यह बातला सके कि हैदराबाद रियासत में वह कौन बानसी पाबन्दी आर्य समाज के प्रचार पर थी, जो अब हटाई गई है तो हम उनके हस्त होंगे। हम तो समझते हैं कि कानूनी तौर पर सार्वभौमिक समाज पर यह भी कोई पाबन्दी नहीं थी जो हटाई गई हो और सार्वभौमिक में आर्य समाज के जबरदस्त पाबन्दी लगाई गई थी, जो

अब तक विद्यमान है। या तो आन्दोलन निरूल था, या आशवासन निराधार है।

### सम्मेलन का समापन

महात्मा गांधी इन्दौर में होने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन का समापनस्थली स्वीकार नहीं कर सके, अब स्वागतसमिति न पूज्य मोक्षवीर जी का निर्वाचन किया है। बातसत हिन्दी ससार इस निर्वाचन का स्वागत करेगा। पूज्य मालवीयजी के हिन्दो पर जब उ पकार। महात्मा जी से दूसरे दर्जे पर यदि भारत की किसी नता न हिन्दी प्रचार को अपना विशेष लक्ष्य बनाया है, तो वह मालवीय जी हैं, हम इस खुशवा का अभिनन्दन करते हैं।

### शेखाराटी के मनाचार

शेखावटी में किसानों पर जमीन्दारों के अत्याचारों के जो समाचार आ रहे हैं वह सनसनी पैदा करने वाले हैं। आर्यसमाज के जयपुर की रियासत इस विद्रोह को दबाने में बहुत सफल नहीं हुई। जयपुर के शासन में कहीं न कहीं कोई रोक प्रत्यक्ष डाला है। नहीं तो बड़ा प्रजा के परस्पर सर्वार्थ की घटनाओं का ऐसा ताला न लग लगा रहता। हमारे कुछ शालोचकों ने लिखा है कि हम डिजिटलदारा के अत्याचारी की कहानी को बड़ा कर प्रकाशित कर रहे हैं। सम्भव है, हमारे सचांदाता के अंग्रेज रूप समाचारों में किसी बहुत अधिक शक्तिपूर्ण पाया है। प्रजा के दाहिने में रत तक ऐसा भगवान बना रहे और एक हिस्सा दूसरे हिस्से पर ज़ब्त कर रहा रहे, यह रियासत के शासन पर गहरा घबका है। जयपुर के शासन को किसी श्रेणी का पक्षपात न करके न्याय करना चाहिये। जबरदस्त तो अपनी रक्षा स्वयं कर सकते परन्तु निवृत्त को अपनी रक्षा के लिये शासन का मुंह ताकना है। शेखा

वाटी के किसान भी निर्बल होने के वरन् शासन की बात जोड़ रहे हैं, हमें आशा है, कि जयपुर के शासन की नींद खुलेगी और वह निर्बल की रक्षा के लिये अपना हाथ बढ़ायेगा। निर्बल की भाव बहुत बुरी होती है, वह बड़े-बड़े विचारों को निरा देती है। जयपुर रियासत के कर्णधारों को शीघ्र ही सचेत होना चाहिये।

### अस्वीकृति का विरुद्ध विद्रोह

सहीत और चिन्तक मनुष्य के हृदय के उच्चतम उद्गार हैं। मनुष्य अपने हृदय के भावों को जब उसके सुन्दर और उन्नत रूप में प्रकाशित करना चाहता है, तब सर्वांग और चिन्तकला का प्रयोग करता है। यह कारण है कि जिन स्थितियों में परमात्मा या प्रकृति को सम्मत्ता में अपने को लवणन कर दिया है, वह सहीत और चिन्तक द्वारा हो अपने हृदय को स उन्नत प्राप्ति कर

आर्यसमाज की बात यहो है कि मनुष्य के उच्चतम भावों को प्रकाशित करने का जो उपाय है उसी को मनुष्य अपने गन्दे और नीच भावों के कारण क्लृप्त कर उठा है। यह समाचार पढ़ कर चिन्तक और सहीत में प्रेम रखने वालों को हर्ष होगा कि भारत-सरकार आर्यसमाज में शीघ्र ही ऐसा कानून पेश करेगी, जिसमें समाचार-पत्रों, दृष्टिकोणों अथवा पोस्टरों द्वारा दी गयी गन्ध गन्धाल विज्ञापन बन्द हो जायेगा। इस आशा है कि गन्धे किन्तों का प्रचार कल आयेगा, और किन्तु बानों वाली कल्पनिया गन्धे किन्तु बानों बन्द कर देंगी। आशा है, इस नव कानून से एक उपयोगी कार्यगरी, जो शिक्षा की सहायिका हो सकेगी है, वह जनता की गिरावट का कारण बनने से बच जायेगी।

### साप्ताहिक अर्जुन में विज्ञापन दीजिये

## दयालु-हृदय श्रद्धानन्द

(ले०—श्री० सी० एफ० एन्ड्रज)



श्री सी० एफ० एन्ड्रज

स्वामी श्रद्धानन्द मरे वनिष्ठ मित्र थे। जितना प्रेम मैं उन्हें करता था, उतना बहुत कम को इस जीवन में मैं किया है।

हमारी मित्रता में कभी अन्तर नहीं आया। स्वामी जी के श्रेष्ठ चरित्र की महत्ता के कारण ही उनके प्रति मेरा प्रेम इतना सच्चा और गहरा हुआ। स्वामी जी भी मुझे स्नाह करते थे—यह ज्ञान कर मुझे बहुत हर्ष होता था।

इस बलिदान विषय पर मुझे कुछ लिखने के लिये कहा गया है। आज मैं वर्षों में महत्तमा गान्धी के साथ बैठा हुआ हूँ। आज मैं उस दिन के बाद के पिछले २० सालों पर दृष्टि डाल सकता हूँ, जिस दिन मैं

आत्मा गान्धी को अपने मित्र महात्मा मुन्शीराम का परिचय दिया था। हम उस समय दिल्ली आसीन थे। यहाँ मुन्शीराम और महात्मा मुन्शीराम के प्रति मेरे उत्साह पर महात्मा गान्धी मुस्कराय थे। वह भी उस समय की प्रतीक्षा में थे, जब कि वह मुन्शीराम के आनन्द वषय उठावें। हम दोनों न पक-र कर को बसने दे दिया था कि यदि सम्भव हो, तो हम दोनों इन्क्यूट ही महात्मा मुन्शीराम का दर्शन करें।

इस सांत्विक पुण्य-तिथि पर मैं भी सन्देश देना चाहता हूँ, वह बहुत ही सरल है। मुझे आशा है कि यह

आर्य-समाज के प्रत्येक सदस्य तक और उनके द्वारा शेष भारत तक पहुँच जायगा। मैं तो यह भी चाहता हूँ कि यह सन्देश उसमें भी पर-पुष्टर भारत तक—समुद्रों में पार—पहुँच जाय, जहाँ सुन्दर कार्य करते हुए मर भ्रमक आर्य-समाजी मित्र विद्यमान, है जो मुझे बस इतलिय प्रेम करत हैं, क्योंकि मैं स्वामी जी को प्रेम करता था।

## म० मुन्शीराम का भव्य दर्शन



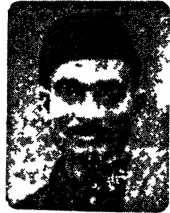
यह मूर्ति कहीं अधिक भव्य है,

प्रभावोत्पादक है।

मरा सन्देश यह है कि स्वामीजी का इदय बहुत व्यापक था। जब भी दूरियों, दूरियों आग विपत्तिप्रस्तो के नाम पर उनम अपील की जाती थी, तो उनका इदय उचित हो जाता था। इस लिये इस वार्षिक स्मृति के दिन स्वामी जी को प्यार करने वालों में से प्रत्येक के इदय में पहला विचार यही उठना चाहिये कि वह दूरियों की सेवा कर, जिन्हें वह प्रेम करता थे। सबसे अधिक हमें उन हरिजनों की—परमात्मा के पुत्रों की—चिन्ता करनी चाहिये, जिनके लिये उन्होंने अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया था।

## अमर बलिदान

(ले०—राष्ट्रपति बा० राजेन्द्रप्रसाद)



श्री० बा० राजेन्द्रप्रसाद

लिय कहीं अधिक उत्साह वर्धक सिद्ध होनी चाहिये।

## योग्य देश-भक्त

(ले०—श्री गोपालकृष्ण देवधर, प्रधान—सर्वोपदेश आर्य समाज)

स्वामी श्रद्धानन्द जी मर निजी मित्र थे और जब उनका मुन्शीराम का-गर्भी आरम्भिक अवस्था में ही था, तभी सन १९०४ में मुझे उनका साथ रहने का सुलेख अवसर प्राप्त हुआ था। स्वामी जी न अपना जीवन देश की सेवा पर निखार कर दिया था और इसी कारण उनका जीवन तथा कार्य के विषय में लिखन हुए मुझे प्रसन्नता होती है। स्वामी जी के विषय में अपने निजी परिचित ज्ञान के आधार पर कह सकता हूँ कि उनका जीवन आदर्श था तथा धार्मिक और सामाजिक सुधारों के लिये उनका उत्साह भारत के एक योग्य देश-भक्त पुत्र के अनुकूल ही था।

मैं श्रद्धानन्द बलिदान-जयन्ती उत्सव का पूर्ण संकल्पता चाहता हूँ।

स्वामी जी का मित्र न आर्य-समाज के आदि सिद्धांत में ऊँचा उठ कर उस स्थान पर पहुँच चुका था कि जहाँ पर समाज नाम का मर्ज रहना ही नहीं।

स्वामी स्वामी श्रद्धानन्द जी के आदर्श जीवन से बलिदान की भावनाएं प्रारम्भ से ही व्यक्त हो चुकी थीं। उनके द्वारा स्थापित किया गया 'गुरुकुल' देश की सब म पहले स्थापित की गयी सस्थाओं में म वह महान सस्था है जिन सार्वजनिक सऽयोग भली-भाँति प्राप्त है और देश के विद्यालयों में आज वह एक सरल राष्ट्रीय विद्यालय है। हिन्दी

“एक महान् भय और शानदार मूर्ति जिस को नेकते ही उसका प्रति आदर्श का भाव पैदा होता है, हमारा ज्ञान हम में मिलन के लिये आती है। आधुनिक चित्रकार इस मसीह का चित्र बनाने के लिये उसको अपने सामने रख सकता है और भव्य-कालीन चित्रकार उसको देख कर स्मृति-चित्र का चित्र बना सकता है। यद्यपि उस मूर्ति पर जो मूर्ति के अनेक प्रभावोत्पादक है।”

—रज्ज मकडानन्द

माना तथा साहित्य में स्वामी जी की विशेष क्षमति थी। आर्यसमाज के महान् स्तम्भ होते हुए स्वामी जी न अस्तुष्ट्यता विचारण के योग्यता को नराल अपनाना ही नहीं था वरन् उन कार्यरूप में भी परित्यक्त किया था। सामाजिक सुधारों के कार्यों को उन्होंने निरन्तरता पूर्वक अपने हाथों में लिया। वास्तव में वह अक्षय्य समाज सुधारक थे। शुद्धी-आन्दोलन पर तो उन्होंने अपना अमूल्य जीवन ही न्योछावर कर दिया। उनके सा इसी तथा प्रविभाषाली जीवन को अनेक उनकी विरस्मरणीय मृत्यु (अमर बलिदान) देश के युवकों के



## ओ दुर्गम पथ के नवगामी !

—:—:—

( १ )

ओ दुर्गम पथ क नवगामी !  
ओ महामहिम ! ओ निष्कामी !  
ओ बन्धीय ! ओ हठी, कुशल !  
ओ अग जग क हित हितकामी !

( २ )

सुन बीहड़ में यह उपवन !  
धी लगन तुम्हारी लासामी !  
यह जल-सवा यह अग-सेवा !  
हे तन-यन-धन सरवस दामी !

( ३ )

फलमोल पलों का मोल न था—  
हो गई सुन्यों की पागामी !  
सर्व त्याग—त्याग की सीमा थी—  
यह रत्न शक्ति का थी पाली !

( ४ )

अच-खिली कसी देखी, देखी  
उमिया बिलस में खुचामी !  
या तुम्हें मोद, हाँ, तोल न थी  
हो गया हृदय पाली-पाली !

( ५ )

पर उसी समय तुम चले गये,  
कर दी कैसे यह मादामी ?  
या वेधाँ को इस उपवन की  
सुपमा विश्रान की ठानी ?

( ६ )

सौरभ परग से फूलों के,  
अब फल रही डाली-डाली !  
है शोक यही; तुम यहाँ नहीं,  
ओ नम्र कानन के माली !

( ७ )

उस घोर तुम्हारी कल्ला को,  
हम देख रहे हैं अन्त नहीं !  
इस घोर कहें क्या, लज्जित हैं,  
'क्या कहें' यही तो बात नहीं !

( ८ )

विनिमय थोड़ा भी कर पाते—  
इतना साहस सामर्थ्य कहाँ ?  
विर-श्रुषी बन हैं फिर बोलो,  
कुल बाँध सकें यह समय कहाँ ?  
—जिनेन्द्रनाथ मिश्र 'मिर्च' !

—:—:—



वैदिक धर्म की जगत्-व्यापी सुकीर्ति का प्रसार करने के लिये अन्त तक पूर्ण परिश्रम के साथ यहाँ तक जुटे रहे कि उन्होंने अन्तर महीन की भाँति प्राण त्याग किया। प्रत्यक्ष शिष्य को उसके अन्तर बलिदान की हृदय से सराहना करनी चाहिये। स्वर्गीय स्वामी भद्रामन्द जी की अन्तर कीर्ति जगत् में निरजयी हो !

## म० मुन्शीराम-दर्शन

श्री म० मुन्शीराम जी का परिवार



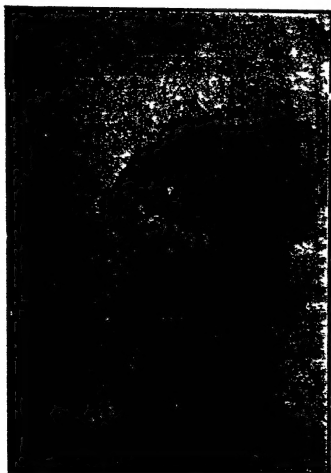
बैठ हुए श्री स्वामी जी के पिता ला० नालकचन् ।  
 खड़े हुए दायाँ ओर स बड़े भाई ला० आत्माराम ला०  
 मुन्शीराम (मुखार) । बालक स्वामी जी का भतीजा  
 रामनाथ ।

श्री मुन्शीराम जी का परिवार



पोषिता बन्धा बन्धा धर्मवत कला व श्रीमती वेदकुमारी ।  
 श्री मुन्शीराम जी दोहती को लिये हैं ।

बकौल मुन्शीराम



म० मुन्शीराम





## वीर और महान्

( ले०—श्रीमती सरोजिनी नाथ )



मे० स्मरणा शक्ति क अनुसार स्वामी भद्रानन्द मने जीवन-र के महान व्यक्ति थे। मरा यह अनुभव है कि भारत क साह-

सिक काल के यह सरसक थे। उनके सुन्दर स्वास्थ्य महान व्यक्तित्व तथा अनुपम बुद्धिमत्ता न उन्हे उनके साथियों का शिर-मोर बना दिया था। एक बार तो यह अपने जीवन-काल में गुरुकुल कागरी जैने महान विद्यालय के गवर्नर रह चुके थे। मरते वम तक उन्होंने एक महान वीर की प्रति जीवन-यतीत किया। आध्वर्य-जनक कार्यशैली तथा सामाजिक बुद्धिमत्ता क यह अद्वितीय उदाहरण थे। उन्होंने भारतीयों के कई सामाजिक तथा राष्ट्रीय सुधारों में बड़ी बाहुदुरी म कांय किया था।

—

## निस्वार्थ संन्यासी

( ले०—श्री एल० सत्यमूर्ति एम० एल० ए० )

मुझे यह ज्ञान कर प्रसन्नता हुई कि भद्रानन्द बलिवीर जयन्ती पर स्वामी भद्रानन्द के जीवन और उनके ध्येय पर आप एक प्रकाशित कर रहे हैं। उन्होंने बहुतों की आप जीवन को देश और जाति की म्वा में उसमें कर दिया था। वे एक सचे कर्मयोगी और असली अर्थ में सन्यासी थे, जिन्हें अपना कोई स्वार्थ नहीं था और जिन्होंने अपनी जाति की उन्नति में पूर्ण मनोयोग से काम किया था, जिसकी हमें सराहना करना चाहिये। उनमें एक आध्वर्य-हिन्दू और एक आध्वर्य 'भारतीय' का सुन्दर मेल था। वे मेरे आत्मी सव-



मि० सत्यमूर्ति

नहीं पदा होते। उनका जीवन एवं मृत्यु, दोनों महत्त्वपूर्ण थे।

परमेश्वर करे कि हम उनके उदाहरण म धर्म और देश की सेवा करना सीखें और ससार को बिलानें कि हिन्दू-धर्म एक सहिष्णुता का धर्म है और एक स्वतन्त्र पुरुषों तथा स्वतन्त्र स्त्रियों का धर्म है।

स्वामी जी क धर्मगुरु



महर्षि दयानन्द

स्वामी जी के जीवन सती



डा० सुखदेव जी

## ४४ वर्ष का एकाधिपत्य।

इस बात का सूचन है कि सधा मिन्यु ही हर एक घर में रबन म दवा है जो बिना अनुपान क ही कक आसी, हजा दमा, शूल, हकी, अतिसार आदि घर में अकस्मात होने वाले रोगों की दूर ती है। सब दवा बचन वाली क पास मिलती है।

सुख सञ्चारक कम्पनी, मथुरा।

## कोई नहीं दे सकता

हम हर तरह का कोच का सा मान मसलन चिमियाँ, श्लोक, गिलास जार, कार्गह तैयार करते हैं एक वृत्त मगाकर जल्द प्रकाशमात्र करे, इनक प्रकाशमा हमारे यहाँ लाक-डेन जो तैयार होती है। हर वर मगर में एजन्टों की जरूरत है। मुरारीलाल मोहनलाल लाल बजेन्स जैन श्लोक बकरी, नयाप्राजार अजमरा

## सस्ती घड़ियाँ

लोवर रिस्ट वाच २॥) से



सब पहिया ठीक दाम देन वाली, घड़िया मयानरी के साथ, लिफ्ट वाल का-रर तक काम देन वाली हैं। हरक घड़ी की २ लाख की मारन्टी है। तीन घड़ियाँ एक साथ डेन वाले के लिए बाक कर्ये प्राप्त।

गोल्ड निकलवार रिस्ट वाच २॥)  
" बड़िया काखिटी की रिस्टवाच ३॥)  
" गोल्ड गोल्ड रिस्ट वाच ४॥)  
" रडियम डायल रिस्टवाच ५॥)  
बोकोर निकल रिस्ट वाच ६॥)  
" गोल्ड गोल्ड रिस्ट वाच ७॥)  
" " " १५ जेबल की रिस्ट वाच १५॥)

लोवर पाकिट वाच १॥१०)  
की टायम मोर १॥२०)  
दम० हो० ट्रेडिंग कम्पनी (२)  
२०१, हैरिखन रोड, कलकत्ता।

स्वामी पूज्यपाद स्वामीर  
स्वामी भद्रानन्द जी महो-  
दय का पुत्र स्वयं करते ही मेरे  
जब मैं विद्यालय का संसार हो जाता  
हूँ। मैं इसे अपने पूर्व जन्म के अपने  
पुण्यों का प्रमाण समझता हूँ कि मुझे  
उनके पवित्र कार्यों में बैठ कर विद्या-  
भ्यास करने और फिर कई वर्षों तक  
उनकी सुखशान्ति की वृक्षछाया में  
समाज-सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त  
हुआ था। ऐसे महात्माओं के सत्यार्थ  
में अपना सचमुच बने ही सौभाग्य  
का निशान होता है। गुरुकुल का प्रत्येक  
अध्यापक उनके अमर आदर्श आचार्यों  
के सब लक्षण पाता था। आचार्य  
शब्द का अर्थ आचार्य आश्रयित है  
अर्थात् जो सदाचार को प्रशस्त करता है।  
श्री पूज्यपाद स्वामी भद्रानन्द जी  
महाराज का सारा ध्यान महाचारियों  
को सदाचारी बनाने की ओर रहता  
था प्रेम से वे विद्यार्थियों को  
अर्थ के विषय में अनुभव और  
व्यवस्थापूर्व उपदेश (विशेषतः महो-  
विद्यालय विभाग में प्रवेश के समय)  
दिया करते थे, जो उनके लिये सारा  
मार्गदर्शक का काम करते थे।  
यसुद्धा करने थे कि आचार्यों को  
अध्यापक के लिये न कवल पिताओं को  
जैसा कि मनुस्मृति में 'तदा पितायाश्च  
स्वामिनी, पितामाचार्य उच्यते' अर्थात्  
सोको भी बताया गया है किन्तु वेद  
क आशीर्वाद प्राप्त हो। श्री ध्यान  
प्रवचन करना चाहिये। अपने जीवन में  
उन्होंने ही आदर्श को प्रवर्णित  
रूपान्तर किया था। उन्होंने न केवल  
वैदिक आदेशानुसार मम मातां तृहयं  
वृषामि ममचित्तमनुचित्त तं वस्तु  
कह कर प्रत्येक महाचारी के साथ  
अपना हार्दिक सम्बन्ध स्थापित कर  
लिया था, बल्कि सचमुच गुरुकुल के  
सभी अध्यापकों को वे अपना पुत्र  
समझत और सम्मानित करते थे।  
अध्यापकों की उनके प्रति बड़ी श्रद्धा  
भाव रखत था। उनके सामन अपने  
हृदय को खोलने में किसी को शिंसा  
संकोच न होता था, बल्कि सारे सत्य  
वस्तु होकर मम में एक दिव्य शक्ति और  
आनन्द का अनुभव होता था। वे  
मम का वृद्ध के जोर से नियन्त्रण  
(Discipline) रखन का शासन  
करने के विरोधी थे। वे प्रेम के द्वारा  
श्री शासन करते या नियन्त्रण करते  
। विद्यार्थियों के साथ उनका स-  
म्बन्ध इतना घनिष्ठ था कि उनकी छोटी  
। छोटी बातों और चेष्टाओं का उन्हें  
पता रहता था तथा उनमें वे दिल-  
चस्पी (Interest) दिखाते थे।  
उनके उपदेश विद्यार्थियों के सरल  
हृदय पर कैसा जादू का सा प्रसर  
करते थे—यह बताने की आवश्यकता

## आदर्श आचार्य और समाज-सुधारक

### पूज्यपाद स्वामी भद्रानन्द

(डे०—श्री धर्मदेव सिद्धान्तलालार विद्यावाचस्पति)

महोदय। सत्यसाधन में प्रवेश में पूर्व  
भी मुझे कई बार उनके दिव्य उपदेशानु-  
सार तो पालन करने का सौभाग्य प्राप्त  
हुआ था। वे प्रायः कीर्त्य-वशा प्रव-  
चन, आर्य-संस्कृति और अज्ञात  
कर दिया करते थे। सन् १९१४ या  
१९१५ में कैंब्रिज आर्य-समाज के वा-  
चिकोत्सव के अवसर पर दिव्य उपदेश  
में:—

“जब वंश न थे तब दूध दियो,  
अब दात दिये तब भाल न रहें।  
जल में, धूल में पशु पलित की  
सकती सुख लेते सो तोते न रहें।  
बाँधों का लोच कर मन मुक्त  
लोच कर कछु हाथ न रोहें।  
जान को दूत प्रदाय को दूत,  
जहल को दूत सो तोते न रहें।”  
इत्यादि अक्षरशः, प्रभावजनक  
वाक्य आज भी मेरे कानों में गूँज  
रहे हैं। यद्यपि तब मैं केवल ७ वर्षी  
श्रेणी का एक छोटा बालक था।

मम के अर्द्धा पोषणार्थ त्वा दी-  
नितो भद्रम्। व्रतन दीक्षामानोति,  
दीक्षयाभोति दक्षिणाम्। दक्षिणा  
भद्रमाप्नोति भद्रया सत्यमाप्यत।  
इत्यादि उनके अत्यन्त मृदु वेदमन्त्र  
थे, जिसकी वे बड़े ही इदममही श्रुत्यो  
में व्याख्या किया करते थे। उनकी  
सरलविचारा का विचारार्थ पर बड़ा  
ही उत्तम प्रभाव पड़ता था। समा-  
निकस प्रभावशाली शारीरिक मानसिक,  
क्रांतिक शक्तियों के विकास को  
शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य समझते  
हुए वे समाज की पर जोर देते थे  
तथा इस बात का सदा ध्यान रखते  
थे कि महाचारियों की वैदिक शक्ति का  
विकास हो। कुली, तैरी, बुद्धचारी  
सब आदि में भी वे उनकी ही दिव्य-  
चरमरी विभाजते थे, जिसकी पड़ार्थों को  
समाजों आदि में। योगदर्शन आदि  
की व्याख्या करते तथा वैदिकिक  
उपाहरण के द्वारा वे महाचारियों का  
अमर अज्ञात तथा मति-मान को भी  
बढ़ाने का वे विशेष प्रयत्न करते थे।  
वे स्वयं प्रति दिन ध्यानमात्र करते तथा  
सन्ध्या, जपमाला, स्वाध्याय आदि  
नियमों का बड़ी तत्परता से पालन  
किया करते थे। उनका सम्पूर्ण जीवन

आदर्शरूप था। येन आदर्श-आचार्यों  
द्वारा ही गुरुकुल जैसी उत्तम संस्थाएँ  
जगत् के लिये आदर्शरूप बन सकती  
हैं इसमें कोई संशय नहीं।

### आदर्श समाज सुधारक

जहाँ भी स्वामी भद्रानन्द जी  
महाराज एक आदर्श आचार्य थे वहाँ  
वे आदर्श समाज-सुधारक भी थे।  
आदर्श समाज-सुधारक के लिये यह  
आवश्यक है कि उसका वैयक्तिक  
जीवन अत्यन्त उच्च आर पवित्र हो।  
यह जिस बात का प्रचार करता हो,  
स्वयम् आचरणरूप में उम लाता हो,  
उसके अमर पूर्ण नियमता और  
सौहार्द का वह सत्यमिष्ट अक्षरानु  
आदि कर्तव्यपरमण हो। य सत्र गुण  
श्री पूज्यपाद स्वामी भद्रानन्द जी के  
अमर कृत्य का एक रूप थे। उनका  
अपना जीवन सत्यार्थ आर अज्ञात  
था। वैयक्तिक आर सामाजिक जीवन  
की पवित्रता पर उनका उद्योग हा नोर  
रहा करता था। इसी लिये सत्यार्थ-  
ह न, स्वाध्याय आदि के नियमपूर्वक  
अज्ञात सहित अनुष्ठान पर वे बड़ा बल  
दत्त थे तथा स्वयं मम का असी  
भक्ति अक्षरानु पूर्ण अज्ञात के साथ  
क्रिया करते थे। गुरुकुलानुसार वर्ण-  
व्यवस्था के व पूर्ण पक्षपाती किन्तु  
कल्पित जात-पात के कट्टर विरोधी  
थे। अपनी सुमुखी का विवाह उन्होंने  
मित्रों और सम्बन्धियों को (यहाँ तक  
कि अन्नक उस समय के प्रसिद्ध आर्य  
संजनों के) विरोध करने पर भी  
जात-पात तोड़ कर ही करवाया था।  
अपन सुमुखों की भी जात-पात तोड़-  
कर ही विवाहार्थ प्रेरित किया था।  
उन्होंने इस सुधार को अपना आ-  
वश्यक समझा था कि पिछले दिनों यह  
घोषणा की करदी थी कि भवत्  
उन्होंने विवाहों में आशीर्वाद दिया  
करना जो जात पात तोड़ कर किया  
गया। स्त्री-शिक्षा विषयक सुधार  
के कार्य को हाथ में लन में पूर्व उन्होंने  
स्वयम् अपना धर्मपत्नी को शिक्षित  
बनान तथा अपनी सुमुखियों को लिये  
उचित शिक्षा प्रदान का प्रयत्न किया  
था। अक्षरशः तथा अक्षरानुसार क कलक  
को हटाने के लिये भी सत्य पूर्व

उन्होंने गुरुकुलार्थ में हरिजन भाष्यों  
को प्रेषित करवाया था, जिसका यह  
परिणाम है कि आज कितन ही हरि-  
जन भारी गुरुकुल में अध्ययन कर के  
वेद-शास्त्र-प्रवीण स्नातक बन चुके  
हैं, जिनकी जात-पात को गुरुकुल तक  
का किसी को साहस नहीं हो सकता।  
विद्यार्थक सुधारके के रूप में उन्होंने  
आल इण्डिया कांग्रेस कमिटी में यह  
प्रस्ताव रक्खा था कि प्रत्येक सदस्य  
को अपने घर दलित-जाति के (हरि-  
जन) मन्त्र को ही रखना चाहिये।  
यह हर्ष की बात है कि गुरुकुल महात्म  
गांधी जी अत्र इस प्रस्ताव का हा-  
सिक समर्थन कर रहे हैं। यद्यपि उस  
समय दून स्वीकृत न किया गया था।  
गुरुपाद स्वामी जी का यह अनुभव  
सिद्ध हृदयविधास था कि जब तक  
कल्पित जाति-भेद वा जात-पात के  
भाव तथा आचार जनता में कायम  
हैं तब तक शुद्ध अक्षरशः निवारण  
दलितोद्धार आदि के अन्धोत्तम कभी  
सफल नहीं हो सकत, इसी लिये वे  
जात-पात के नाश पर विशेष बल  
दत्त थे आर अतन्तर्गत भाजन और  
विवाह के कट्टर पक्षपाती थे। वे  
पूज्यादि और अधिकांश लिखा  
का शिरोधार्य तथा स्वयं के लिये  
प्रवक्ष्यता स्वार्थत्यागी तत्पर  
महात्मा थे। भद्रानन्द की  
स्थाना स्त्रियों उद्देश्यों का प्रति क  
लिय की गई है। अग्र दिव्यमन्त्र  
के आदर्श-शिष्य स्वामी भद्रानन्द जी  
महाराज के लिये सत्यम् को आर्य-  
जनता के सामन रख कर यह सल  
आर्य-समाज में आन्तरिक सुधार के  
लान और उन आदर्शों जैमित्त,  
जिसे श्रद्धालु समाज बनाने का  
प्रयत्न कर रहा है। इस लिये वैय-  
क्तिक जीवन के सुधार और पवित्रता  
के लिये जहाँ इसक प्रत्येक सदस्य को  
प्रति निम्न सन्ध्या और स्वाध्याय की  
प्रतिष्ठा करनी होती है वहाँ विद्यार्थक  
समाज सुधारों के लिये उम यह भी  
प्रयत्न करना होता है कि वह अपने  
अपना स्वयं विवाहित होन की दृष्टि  
में अपनी सन्तति की जात पात तोड़  
कर ही विवाह करवायगा। इस  
प्रकार की दृढ लिखित प्रतिष्ठा  
जिना जात-पात के मूल में समाज  
का हुरकार अक्षरमय है आर जब  
तक उस व हुरकार न हो जाय शुद्ध  
दलितोद्धार आदि के अन्धोत्तम न  
सफलता प्राप्तमय है। इसका यह  
अर्थ नहीं है कि वर्ण-व्यवस्था के गुण,  
कैसे स्वभाव को न गला जाय उसका  
तोषणवत् रखा जाय ही चाहिये  
किन्तु इस अव्यवस्था के सुधार को  
ज्ञान के लिये कमवार भाग्य को यह  
जात-पात तोहन की प्रतिष्ठा अवश्य

## कर्तव्यनिष्ठ सन्यासी

(ले०—कुमार गंगा नरसिंह)

स्वर्गाय स्व भी भद्रानन्द जो को  
पुण्य स्थिति आज भी इतनी जा  
है कि उम दुहरान की कतरे आव-  
श्यकता प्रतीत नहीं होती। उनकी  
महानता के सम्बन्ध में निम्न लिखित  
पद्य प्रायः सर्वथा उपयुक्त प्रतीत  
होगा—

No coward soul is mine  
No tremble in the  
world a storm troubled sphere  
I see Heaven's glories  
bide  
And faith shines  
arming me from fear

कर्म की बाहिय। ऐन सदाचारी सन्या  
हवन, स्वाध्याय का भ्रष्टापूर्वक  
अनुकूल्य करने वांछित कर्मवीर  
आय सज्जना को दो आर्यसमाजो  
का अधिकारी चुना जाता बाहिय न  
कि कवल धर्मियों का जिनमें न  
बहुतो को न सिद्धान्त-ज्ञान होता है  
न धर्म-मय। पू जीवोद्धार और अधि-  
कार लिप्ता का रोग आर्यसमाज की  
जग को बोलता कर रहे है उनका  
जितनी जल्दा गार हो उतना ही  
समाज क निय हित कर होगा। श्री  
गुणपद स्वामी भद्रानन्द जा स्वदेश  
वस्तुओं भार वादी क वस्तो क  
प्रयोग क भी बड़े पक्षपाती थे, अतः  
भद्रानन्द दल क सदस्यों को कुछ  
स्वदेशा धर्मात् लावा वस्तो और  
यथा सम्भव स्वदेशी वस्तुओं क ही  
प्रयोग का भा मतिहा लना होता है।  
आर्यसमाज की उन्नति में सन्य  
क अधिक वाधा प्राप्त कल आयों क  
क्रियात्मक जावन न हान क करण  
पड़ रही हैं। श्रुति दयानन्द और  
स्वामी भद्रानन्द जा क सच्चे भक्तों  
को अपने जीवन का सर्वथा पवित्र  
बना ना बाहिय। इस प्रकार ही  
हम स्वर्गाय धर्मवार सन्या भद्रा-  
नन्द जी क प्रति अपना सच्चा भक्ति  
प्रकट कर सकन ह न कि कवल उन  
का गुणगान करने में। प्राय पिता  
परमा मा हमें आदर्श आचार्य स्वामी  
भद्रानन्द जी क सच्चे अनुकूल स्थिर  
भक्त की सामर्थ्य प्रदान कर यही  
प्रार्थना है।

"मरी आत्मा मे दुर्बलता का  
लेख मोक्ष भी नहीं है। आपत्तियों  
म परिपूर्ण ससार क किता भी  
को न कोई वस्तु मर्यादा क नहीं  
है। मैं सबेरे ईश्वर का उज्ज्वल

कन पनिष्ठ सन्यासा



स्वामी भद्रानन्द

प्रकाश लता है। मरा हृद आत्म-  
विश्वास और भद्रा मय को गर मास  
नहीं फटन मते "

O God with him no breast  
Alight, ever part  
Duty

"मर हृदय प सारंजिमान  
परमा मा का प्रभाव सदैव उपस्थित  
रहता है।"

उन्होंने एक महान् कर्तव्य निष्ठ  
की प्रति हजारों हज़ारों एक कीर  
योधा के रूप में करी। वह विजयी  
होकर हिन्दू धर्म के शिखे बड़ी सीढ़ी  
के साथ जीवित रहे और उसी के  
निमित्त प्राण त्याग किया। उन के  
पवित्र हृदय में ईश्वर भय तथा भ्रम  
का लेखनाम भी नहीं था। वह  
अपन जीवन में कटिवाहियों से कमी  
नहीं बख्शाये, परिश्रम से भी कमी  
नहीं पके और अपनी शिखों पर  
कभी गर्व नहीं किया। उन्होंने अपने  
दय की प्रति सदैव हृदय निष्कप के

सम्मानपूर्वक धराप्रति समर्पण  
करता है। मरी भयबल से हार्मिक  
प्रार्थना है कि उस अमर बलिदान  
का उदाहरण हमें त्रि प्रति त्रि  
उत्साहित करता रहे।

## मैजिक पर आश्चर्यजनक पुस्तक

मैजिक मनुष्य प्राणिक जाड़ का



पुण्य स्पष्टी  
करना। इस  
पुस्तक को पढ़  
कर आप स्वयं  
य खेल दिखा  
सकते हैं। प्र  
त्येक गुप्त बात  
इतनी सरल के  
साथ  
गई है कि बालि  
बच्चे भी इसे  
समझ और कर सकते हैं। यह  
पुस्तक बतलाती है कि एक आधुनिक  
का सिर काट कर उस के शरीर से  
मज मर के फासले पर तकनी में  
कैसे रखा जाता है। एक स्त्री को  
जाड़ के जोर में बेहोश करके कैसे  
बुलाया जा सकता है। इस प्रकार  
बोलेन की आवाज दूर म आती  
ज। पड़न को कला, मुक्त पक्षी का  
जावित करना, आग, वाहू, और  
कटि आना, जलन हुए सात गोहे के  
छुड़ी पर चलाना, मृत उत्पन्न करना,  
और म लाशों का रहस्य, आप न  
एक खज्ज को बन करके उसके  
शरीर में छुड़ी मौफना और उसे  
जीवित निकालना ताग, गिफक  
और कर्माल के लल आदि बातें  
बचे सुन्दर दग म समझाई गई हैं।  
चित्र मा विन गय हैं। पुस्तक पढ़िये  
और इन ललों को दिखाना सीखिये।  
मूल्य (11) रुपये।

युनाइटेड स्टेट्स कम्पनी  
पुस्तक प्रकाश और किता ता  
पोस्ट बॉक्स ४३६, कलकत्ता।

## मुफ्त ! मुफ्त !!

हमारी ससार विख्यात हवोनों को  
स्वीके साथ पीतामजान मुफ्त मगालें  
कोशल फार्मोसो—सिंराजपुर सिद्धी

CALENDARS & BLOCKS  
Various kinds of new  
In Colour pictures are ready  
Prices competitive  
SAMPLE SETS sent on receipt Rs.12  
Price list of CALENDARS & BLOCKS  
free on application  
TOWER HALF-TONE CO  
148, Kapilicila Lane, Calcutta

सत्याग्रह एक अनपेक्षित शक्ति है। इस बात का अनुभव तो हमें अपनी अपनी इन तीन बार क्यों में हुआ। सब तो कल्पे कल्पे की जमान पर सत्याग्रह है। वह कुछ कुछ उसकी शक्ति को भी जानने लगा गया है। सारे सफर में उसकी शक्ति का गौर है और जिसका युद्धों से ऊब कर वह अब हम पुनः शक्ति के विकास की राह देख रहे हैं। पर १०, १५ साल पहले यह बात नहीं थीमहात्मा जी ने दक्षिण अफ्रीका में जो युद्ध किया था भारतीय जनता ने—राजनीति में निरुत्तरता रचने वाली जनता न उसके समाचार पढ़े थे। पर जब तक उस महाशक्ति के प्रत्यक्ष वर्णन का योग उस नहीं मिला था वह उसकी यथार्थ शक्ति का अनुमान नहीं लगा सकी थी। महात्मा जी भारत में आये तभी से हमें कहना होगा इसका भी यथार्थ भारत में हुआ। चम्पारन को सत्याग्रह एक प्रतीक बन चुका था। वहाँ तो सत्याग्रह को अपनी शक्ति आजमाने की कहने कायक जरूरत थी न पड़ी। रौलट कानून को विरुद्ध छड़े गये सत्याग्रह से अक्सर मैं देश को सत्याग्रह का एक से पहला परिचय मिला है। रौलट कानून के समय देश का एक कोन से लेकर उस कोने तक मानो किजली दौड़ गई थी। अगस्तों सां प्रत्यक्ष को भी भारतीय जनता की अग्रणी शक्ति को देशन का सब से पहले अनुभव तभी मिला। उसकी शक्ति काँधों काँधों गये। तथापि उस समय एक तरफ न जनता की स्थिति करने को कानूनी समय मिला था और न उधर सरकार को भी इस महीन शक्ति का सामना करने के लिये आवश्यक समय मिला था। यहाँ वहाँ उपद्रव हुए, गोखिणों चलीं हुल्ले हुए, कुछ बलाघ्न हुए कहीं तोरंट्टे कानून के विरोध में देश भर में हलचल हुई इतनी जगहों पर सभायें हुईं, सारे देश के कोन कोन से उस कड़े कानून का विरोध हुआ और बस जेने ही पैदा हुआ था, सर ही गया।

पर जनता का पुनः प्रयोग जाग उठा था, सत्याग्रह डोरी की जान वाली देश की लूट, अत्याचार और मर्यादापर उसके लिये अस्त्र हो उठे थे। गीत ही अस्त्रद्वयों को धारित करने की नीति आई। अत्यन्त उत्साह था पर महात्मा जी ने गीत ही देखा कि इस उत्साह में अनुशासन Disipline की भाव आवश्यक परिणाम में नहीं है। कोरीबी ने साक्षी ही और आन्ध्रों को स्थिति हो गया। अन्तक युद्धयुद्ध देखभलों का उत्साह मझ भी

## सत्याग्रह और बारडोली

(ले— बैजनाथ मटेन्य बी० ए० )

हुआ। पर सत्याग्रह की भाँसा को सबन सर झुकाया। लोग इसे सत्याग्रह की परजय माल कर टीका टिप्पणी करने लगे। पर इस महाशक्ति की जब घीर घीरे देश में जमती ही गई। एक तरफ जहाँ हिन्दु-मुसलमानों की आपसी लड़ाई निरगुनी को अधिक निरपरा कर रही थी, वहाँ कबा और सव गुरु का कर भी मरुटा सला मरु देश में सत्याग्रह के क्रमिक विकास की साक्षी द रहे थे। एक तरफ कानून के पोखा चारा सभाओं में—सरकार के अपन प्रस्तावों में—उत्से लोहा दे रहे थे तो दूसरी तरफ महात्मा जी तथा उनम चुन हुए अग्रजितनवादी कार्यकर्ता गांधी में बैठकर धीरे-धीरे लोक शक्ति का आवाहन करने के लिये जुट पड़े थे।

गुजरात में बारडोली भूमा एक मुख्यपूर्व केन्द्र था। वह बम्बई इलाक की एक अत्यन्त उपजाऊ तहसील है। लोग मजदूर हैं। कृषि भी नामक एक परिश्रमी और सुसंगत जाति की सत्परा यहाँ कानूनी भाषा में है और सब न बनी जात तो यह भी कि यहाँ के कई लोग दक्षिण अफ्रीका में महात्मा जी की युद्ध नीति का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर चुके थे।

राजनैतिक कार्यकर्ता साधारणतया (अगर अग्रिम यम हो तो, मेरा यह मत्र धारणा है कि) उतावट होते हैं। अपनी जल्दबाजी के कारण वह कितनी ही अग्रह प्राप्त भाई हुईं और निश्चित विषय को को देन हैं। जहाँ गोशा के (Gaoe) साथ कोई काम हो सकता है, हमारा अविस्वास और उतावलापन ऐसी परिस्थिति में हमें डाल देता है, जहाँ लज्जित होकर हमें पीठ हटना पड़ता है। दूरस्थिता की दृष्टि से भी हम गलती कर जाते हैं। आवश्यक भाषा में सब-सबज करने में पहले ही लड़ाई छेड़ बैठते हैं।

बारडोली में डेरा डालन वाले कार्यकर्ताओं न इस बात में यकी सावधानी से काम लिया। पहले-पहल गिवा और साक्षी से दूबर्धन शुक्रभात की। अंत को दक्षिण छेड़ से निरीक्षण (Economic Survey) किया और इसके अन्तिम से अंत की साक्षी नरीच अमीर जनता से परिचय प्राप्त

कर लिया। बारडोली का 'स्वराज्य' कायम गुजरात में साक्षी का सब से बड़ा कन्द था। इस आश्रम के द्वारा तात्त्विक में जगह-जगह प्राथमिक तथा माध्यमिक शालाये बोध दी गई थीं। गिवा का पाठ्यक्रम उनका अपना स्वतन्त्र था।

इस प्रदेश की जनता दो हिस्सों में बटी हुई है। उच्च जातियां उजली परज (प्रजा) कहलाती हैं। और निजाली नीची जातियां काली प्रजा कहलाती हैं। उजली परज की आबादी लगभग ३८००० प्रजन में न बणी ४०००० है और काली परज ४२००००। जैन भट्टों को आज तक हम हरिजन कहने लगन ह उसा प्रचार काली परज की इधर देखे बार साल म रानी परज भी कहा जाता है। खती प्रधानतया कृषियों के हाथों में है और काली परज के लोग खेता पर मजदूरी करके अपना पेट पोले हैं। दुसरा गाँवों कोडिया प्रावि इनक आन्तरिक व्योपकरण है। कार्यकर्ताओं न वहाँ जाकर कृषि तथा रानी परज के सगठन और सवा का काम अपने हाथों म ल लिया।

म-सगठन या मचा के लिये प्रचार की भी आवश्यकता है। पर वह प्रचार उसपर भिन्न होता है जिने हम आज बल प्रचार करते हैं। प्रचार करने समय प्रायः काम की अपेक्षा अपना प्यान हम अधिक समझते हैं।

गाँवों में जाकर हमने पहिले कि हम में कुछ कम पड़े, हम बल-बारी की तरफ लगे लगा कर इस बात की दुम्मी पाउन का उद्योग करत ह कि हम मूल-समाम यो जिने का उद्धार करने के लिये निरुक्त पड़े हैं। बारडोली के मवर्का न गलती से बचा का इस में भी खूब ध्यान रखा। ये युगप्राय गाँव में जाते और जिस किसी तरह उनम द्या पड़ता जनता के लिये अपने को उपयोगी जानन का यत्न करते। उस के अन्तर मनुष्योचित स्वाभिमान को जगते। नीति सदाचार, आमा-धिका प्रावि प्रथमिक और अक्षी बलों पर बार-बार कथनों, आमा-न तथा सामाजी बात-नीति में जोर

दे देकर धीरे-धीरे उसने अन्तर सारों हुई शक्ति का हान उनमें करो देन का यत्न करना सम्भव है। यह बात कई राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को बहुत मामूली समय लान वाली तथा कम दिखाई देती है। किन्तु गाँवों का सगठन करने वाले तथा राक्ष का निर्माण करने वाले के लिये यही सब से पहली और अधिक महत्वपूर्ण वस्तु है। जनता के अन्तर एक बार स्वाभिमान, सत्यनिष्ठा तथा अपने अधिकारों का मान उनमें प्रदान करने की शक्ति को जगा देने के बाद वह सचा म खुद समझ लनी ह। वह खुद अपना नेता बन जाती है। उस की 'बल शक्ति' को निर्ण कर उसके अन्तर निह वृत्ति जगा देने की जरूरत ह। फिर तो एक-एक आदमी सचा के लिये भारी हो जाता है।

रिज जोशाउ न्यायान द वकर जनता को उभाहन की जरूरत नहीं रह जानी। उन यह नहीं समझता पड़ता। फला ताम में मरा मान या अग्रमान हुआ। वह अपन मान-प्रधानता को खुद समझ लने ही और खुद ही लबाई उठ रता है। बारडोली में यही हुआ। लहाई के लिये उन आभन न कजाय उनो तो बार-बार यह सत्यमाल पहा कि लोच-समम कर लहाई हजनी चाहिय पर वह हट थी। +

शान्ति-काल म पच व्यतिगत बातों में तो भले ही किसी तरह काम चल जाय पर सामूहिक लम्हों में तो अनुशासन अनिवार्य है। फिर वह ऐसी चीज है जिसक लिये बल अत्यास का आवश्यकता होती है। हम प्राचीन पर पठ करते हैं, राष्ट्रीय महात्मा के अविशेषन करते हैं, तब स्वयं-सेवकों क तात्कालिक सङ्कन बना होते हैं। काम भी बसा ही होता है। बारडोली में अनुशासन तथा कया था कि सरकार उसका कारण हिरान थी। जनता की मजबूती अनुशासन, गुलतबर विभाग प्रकाशन और सरदार वल्लभ भाग का नरुख बारडोली की विजय क प्रधान कारण है।

लुहार् का कारण तो प्रायः सर्व-विदित ही है। क्रिय-यातल में समय समय पर (तीस-तास साल में) जमीन का प्राधान निरवय करने की प्रथा है। सन् १८८२-८३ की लगान की जांच के बाद सरकार न तात्काल पर ४८५००० न दे उलगन बुद्धि के लगान बदा दिया। अलग बुद्धि के

+ इसका जना उदाहरण सीकर का जाट-आन्दोलन है।

कार्य भी बतान पकते हैं। बारडोली के मामले में जो कार्य बताने थे वे सब गलत थे, बल्कि सचुत तो यह कहना था कि लगान बढ़ने के बजाय घटना चाहिए। जनता न वैध उपर्या का प्रयत्न करने जव देख लिया कि उनका कोई नतीजा नहीं मिल रहा है, तब सत्याग्रह का अवसर मिला। सरकार को तत्पश्चात् बहोती घमस्त्रिया दी गई पर ओरतों तथा भीलों के समान प्रक्रियन अवस्था में रहने वाले दुर्गल राज परज जलित के लोगों ने तब तहसीलदारी तथा कल-कर्मों को उस तजस्वित का परिचय दिया है निम दुख कर उन्हें लज्जित होकर सब दान पहा है।

साम, दान, दूध, भेड़ सभी उपर्या में सरकार को काम देने की थी, पर जनता इतनी मनबुल थी कि सरकार और उसके अधिकारियों की कुछ भी न चलती थी, पर इसका क्या स्वेय मयकी क समान और अनुशासन पर भी था। बारडोली ताल्लुक का एक-एक गांव सैनिकों की छावनी बन गया था। स्वयं मयक धर्मों में तल लाल कर पहारा देत रहत और अधिकारियों को दूर म देख कर ही गांव को सावधान कर देत। बस चारों तरफ सफाया जा जाता। किसानों के मकानों के द्वार में घुल-लाउ करन क लिय तक कोई नजर न आता। मकान माल और मयकी मीलाम करन क लिये कोई बोली लगान वाला और जव सामान को उठान वाल मजदूर तक नहीं मिलते थे। और ता ठीक, कीचड़ में मयकन की मोटर फल गई उस निकालन क लिय आदमी मिलना मुश्किल हो गया था। सरकारा अफ-सरो को चाय क लिय आगर पोच भर दूध की या शकर का जम्पत होती तो यह भा अगर विभागपति की काबा क यहे कोई नहीं स करता था। जनता को मकान क लिय सरकार की तरफ म जो पव बाउ जल उनक बरन म पहल या तो पव गलप हो जलत या उनकी लिल्ली उठान क लिय मया पव न जात। सत्याग्रह गुनवत विभाग क भा अधिकारता तन थी।

समाचार विभाग का समान भी आश्रयजनक था। चार घन्टा क अन्दर लगन म लगन मन्त्र म प्रमाण कार्यालय में खबर पहुंच जाती। कार्यालय में अद्वर अद्वर विभाग पति क पास उसको उठाव पहुंच कर उस पर प्रमल भी होन लग जाता। कोई यह न कह सकता था कि यह काम इतनी देर में कैम

होगा या मुकने न होगा। जिस लिल्ली में इसका कथा उसे अवश्य बला कर प्रलाग कर दिया गया। दुष्प्रम की तामोली प्रनियर्ण थी।

सारा ताल्लुक ( जिसमें लगभग १५५ गांव हैं ) १५ मील में बाट दिया गया था और प्रत्येक विभाग पर डा० सुमन्त मेहता डा० कर्णालाल शैलवा दूध अग्र्यास तयब जी वरवार गोपालदास भाई, श्री रविशकर भाई व्यास आदि जेमे लोक-प्रिय चतुर सुलैर नता विभागपति सुकरे कर लिय मय था। ताल्लुक में होन वाली प्रत्येक महाचपुल घन्ना की ताल्लुक क अन्दर कोन जान न फैलान क लिय सत्याग्रह खबर नामक एक दैनिक छाप कर लिया गया था। जिसकी प्रतियन १५०० प्रतिधा छपता थी और वितरित होता थी। इस अग्रार का असर आस पास के जिलों तक बढाई की प्रजा पर भी पवा उनक अन्दर भी अग्रव जागृति फल गई। सरकारी अधिकारियों तथा उनक सहायकों का बहिष्कार जब इतना फोडर हो गया कि उनक अहान तथा खान-पीन का सामान मिलना भी कठिन हो गया तब क प्रमाण के ताल्लुको में रहन लगे। पर अब तो इस ताल्लुके की प्रजा न भी निष्चय कर लिया कि वह अधिकारियों की सहायता न करगी।

सरकार की तरफ म ऊपर म तो बड़ी शान दिखाई जाता। अधिकारी गवरनर कल और व्याख्याता न कि सरकार नहीं हट सकती इसना प्रजा चलाया जायगा इत्यादि। पर ख महीन क अदर हा उन प्रजा की माग को स्वीकार करन लगान की जल करन क लिय जांच कमीशन नियुक्त करन पडा।

यह का लिहास अग्रनत रमणीय और शिलाग्रह है। और यद्यपि अग्र तो नश उसन कर्वा यहे और लाम-हत्या युद्ध म गुजर चुका है तथा गा-नेल न सत्याग्रह लिहासिक छपि म अग्रनत महा वर्णन है। जिस समय सार दश म निराशा आर आसम विस्मयन को यम मगल लु रहा था गरहाला न वार विमना न शेष में नरीन वतय्य पर आशा का र बार कर दिया। १९३० का विचय का रहस्य गरहाला का विजय ही है।

पर सन् १९३० और ३१ क युद्ध क बाद जनता म फिर सत्याग्रह की शक्ति और उपयोगिता क बार में सन्देह पडा होन लग गया है। किन्तु हम जरा भी सोचें तो कारण समझ

में आ जायगा कि इस प्रमोमोहक युद्ध में भी हमन सत्याग्रह को अपनी शक्ति दिखान का पूरा अवसर नहीं दिया। हमारा सारा यत्न सेवकों कानून तोड़न वाली की सवाह, चरित्र, अनुशासन, बलिदान की शक्ति और अन्य अनेक प्रकार की स्वच्छता की तरफ ही अग्र हम उलाना ही प्यान देते तो शायद आज हम न तो इतनी जल्दी युद्ध स्थिति काया पडता और न हम अपने आपको स निराश्रय चायुमन्त्र में पाते।

पर बीती बातों पर परवत्ताप और गार्व करना बुधा है। हम सब अपनी पुर्नवलाता की खुश बखली तरह समझन लग गये हैं और यदि अब कवल राजनीतिक परिणाम दिवान की जल्पाजी को छोडकर न कामियों को दूर करते हुए देश क समगहन में हम दूज जायगे तो फिर दस साल के अदर सत्यार को एक चमत्कार करके दिखा सकेंगे।

इसी लेखक द्वारा लिखित बारडोली सत्याग्रह का लिहास 'विजयी बारडोली सत्याग्रह' मगल नया बाजार दिल्ली समया कर पड़े।

## सन्तति निरोध

अफल (रविस्टर्ड) फिल के लिफा इस दिन के सत्यार से जिम्मेरी में फिर कभी कल्ला नहीं होगा। कुम्हरी तौर में ही हमेशा के लिये गरी निरोध होता है। जिससे मासिक धर्म नियमित बाल रह कर शरीर निरोगी रहता है। कामय लिफा १०) कसया।

अफल हाउस एजेन्सी, बसीराबाद ५० ०० (बागपुलवा)

## १ गाना सुनाइये

मित्रों को महफिल में उपरोक्त आग्रह आपने हो तो 'सुने बाह नहीं' कहना किताब बुरा मायु देना आपकी यह कमजोरी 'गदियों का जहाज' पुस्तक दूर कर देयो जिसमें हिन्दु-स्ताम क नामी गिरामी गदियां तथा मोलती फिल्मों के जादू भर ५०० गान हैं। जिन्हें सुन आपके मित्र बाह बाह करेंगे। यू० १) डा० १-) बच्चे ओरी स बिक रही है। पता-गं एषड कम्पनी, ललीतपुला ४ हायरस (५० ००)

## साप्ताहिक

## अर्जुन में अपना विज्ञापन देकर लाभ उठाइये

दाँतों के रोगों को अपूर्व दवा हर रोज दाँतों को साफ करने के लिये-  
दन्त सुधा मंजन

क समान मजन अब तक नहीं मकल। इसक ७ दिन के प्रयोग से दाँतों क सब रोग नष्ट हो जाते हैं। पायायन, मयुर्दा म खून का निकलना दाँतों का हिस्सा, कोढ़ म दात का उरार हा जान, मुन सती का दुर्गन्ध का आना, और हर प्रकार क दूँ को दूर कर के दन्त सुधा मजन मनुष्य के दुष्मय जावन को सुधा बना देता है। साथ ही यह मजन एक बार मलन स दात के पीलपन को दूर कर के मोती जैसी चमक ला देता है। इतना होन पर भी दूध को ब्रॉस को शीशी का केवल १०), इकदूँ खरदून वाला को उचित कमीशम दिया जायगा। पत्र-सी नियम मगान पर भेजे जाते हैं।



मैनजर, विश्व सुधा कार्यालय, ('अनुन' कार्यालय के ऊपर) नया बाजार, देहली।

## सत्त्वाकर्मयोगी श्रद्धानन्द

(ले०—प० बीमब्यालु शास्त्री, कन्नूर)

श्री स्वामी भद्रानन्द का नाम हिन्दु जाति की मनो में नये एक का संचार करने वाला है। अपने जीवन के मध्य काल में वे धर्म-समाज के उच्च कोटि के नेता थे और उन उस समय समाज-धर्म का जोरो से प्रचार कर रहा था। उस समय हमें वह भान न होता था कि इस देशों कल्प से कथों मिला कर एक मिश्रण के लिये एक मन होकर काम करेगे, परन्तु हिन्दुओं की कल्याणजनक दशा को देख कर स्वामी जी का आश-हृदय पिघल उठा और वे बड़े उदार-भाव लेकर अपने जीवन के सम्पूर्ण-काल में हिन्दु-समाज के नेता बन। उस समय हमें कई वर्षों काय-प काम करने का अवसर मिला और मुझे याद है कि जाति-विषे की दृष्टि से कई बार उन्होंने मेरे अनुरोध का पालन कर अपने भावों की उदारता दिखाई। उनके हृदय में अनाथ हिन्दु-जाति का दर्द मरा था और इसी कारण हिन्दु-समाज के लोभ से मरा उनके साथ अच्छा सहयोग रहा। उन्होंने धर्म-समाज के लिये नदी; किन्तु हिन्दु-जाति, धर्म-भूमि और धर्म-संस्कृति की रक्षा के लक्ष्य में अपने भावों की बाहुल्य दी है। वह सब कर्मयोगी थे। गुरुकुल कागधी उनकी कर्मनिष्ठा का प्रबल उदाहरण है।

मुझे सन्तोष है, उनका देहावसान के समय में उनके बहुत निकट था और अन्तिम संस्कार में उपस्थित रह सका। लाहौर में सब हिन्दु-भर्ता और सम्प्रदायों की ओर से जो सन्मिलित विराट् सभा हुई थी, उसका अध्यक्षता स्वामी जी की भासा की पारलौकिक शान्ति के लिये प्रार्थना करने की गौरव-पूर्ण कृत्य मुझे ही सौंपा गया था। उनका निधन ऐसा हुआ था जिसके कारण उनकी स्मृति धर्म-समाजी, समाज-धर्म-जैनी, सिख बौद्ध सभी की अपनी प्रशंसित बन गई है।

आज न स्वामी भद्रानन्द हैं न लात्ता साजवरदार। पञ्जाब की बीर-भूमि सूर्य सूर्य और चन्द्रमा के समान तेजस्वी इन दोनों पुत्रों के अभाव में अन्ध शून्य दिखाई देती है। वेम सहयोगियों के पीछे अधिकांश तल जलित रहने के कारण मेरे हृदय में

अब उनकी उत्तम कृतियों के स्मरण करने का कठिन कर्तव्य बचा रह गया है। इस कर्तव्य का पालन करता हुआ मैं सब भावों से यही अनुरोध करता हूँ कि स्वामी भद्रानन्द जी की बलिदान-लिये के अवसर पर उस प्रत का अष्टापूर्वक स्मरण करना चाहिये, जिसकी सिद्धि के मार्ग में उस वीर कर्मयोगी न अपने उन्कृत जीवन का उत्सर्ग किया है।

## सर्वस्व त्यागी संन्यासी

(ले०—श्री श्रीप्रकाश एम० एल० ए०)



स्वामी भद्रानन्द जी क बलिदान-विवेक पर मैं उन्हें सादर सन्नेम स्मरण करता हूँ। उनका प्रत्येक कार्य में साहस भरा रहना था। दूसरों के विचारों की या अवपरम्परा को उन्हें कोई विचार न था। जो ठीक समझते थे करते थे। उसका लिय अपना सर्वस्व दे देते थे। वनमान भारत के वे विज्ञान पुरोषों में हैं। हम सब उनका योग्य हो सकें यही आज हमारी आशा और अभिलाषा है।

—स्वामी जी धर्म समाज त.ग राजनीति तीनों ही क्षेत्रों में रहे और तीनों ही क्षेत्रों में अपना खरिद-ग्री प्रभाव छोड़ गये। लोकमान्य निलकं की प्रति स्वामी भद्रानन्द जी अपने समय के प्रसिद्ध संस्थापक थे। सब तो यह है कि जिन लक्ष्य को उन्होंने अपने हाथ में लिया अन्त में विजय प्राप्त करने की हम लिये।

## स्वामी श्रद्धानन्द की

### पुण्यस्मृति

(ले०—श्री वेकटरनारायण सिन्हा)

इस बीच की सदा के जिन भार-तोय महापुरुषों के ओवरणों में वेदों का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है और जिनकी स्मृतियों और पावन कृतियां मैं अपने जीवन-यात्रा में प्रभावित कर निमग्नित हुआ हूँ उनमें स्वामी भद्रानन्द का एक विशेष स्थान है। शब्द के व्यापक अर्थ में वह महात्मा थे महापुरुष थे। सत्सार के अधिकांश लोगों ने उन्हें इसी रूप में जाना और पूजा। मेरे लिये भी वह महात्मा और महा-पुरुष थे और इसी भाव में मैं प्रेरित होकर अब उन में पहाड़ी बार मिला था, तब मैंने उनके प्रति अपनी अर्द्ध-जली की मट चढ़ाई थी। उसी वर्षी से उन्होंने अपने अभाव और अथाह प्रेम-पूरित वात्सल्य ने मुझे अपने विशाल हृदय में समन कर रख लिया और इस उदारता के साथ रख लिया कि मैं हमेशा के लिये बचीबी पैन का भूक बन गया। उनकी वीर गति पर मैं रोया। उन प्रसुओं में रोया जिनसे कोई अपने पुत्र बने कि विछोड़ न होता है। उस दिन मैं लिय सत्सारी में एक ऐसा आभी-य उठ गया, जिसकी अन्त सत्सारी-भूति और आसीयता का मुझे सन्दर्भ के समय पर पूर्ण अरोसा था।

स्वामी जी सत्त्व सिद्ध थे। जिस का साथ दिया अन्त तक साथ दिया। जा विवाहमें मैं वे एक ही थे। पात्र की योग्यता अनयोग्यता की उन्हें विचार नहीं, उसकी हृदयता हृद-जना की उन्हें परचाह नहीं। वे सत्त्व थे सत्य क पुजारी थे। स.ग्री भी मतमद का आदर करना भी वे जानते थे यदि मतमद की जब मे विवेक न हो और न हो स्वार्थ का प्रेरणा।

वह वीर थे। इस लिये वह महापुरुष हुए। इसी लिये वह महा मा कहलाये। वीरता और हृदय की सन्कीर्णता एक साथ नहीं रह सकता। उनमें वह हूँ कर भी नहीं गई थी। हृदय उनका विगल था। दान में प्यार में सिन्धार में ओर स्थान कम में देश के लिये आकांक्षाओं में जिस पहाड़ से उनका जीवन पर नजर

हालिय उसा दृष्टि में उनमें विशालता दिखाई देती है। हम पर भी अनाम उनमें किंसा खास समाज का उपसक्त समझते और उन्मान कर रहे। उनको मुझे मासूम है साम्प्रदायिकता में उतनी हा विद थी, जिनकी किसी राष्ट्रवादी की हो सकती है। परिस्थितियों में सिन्धार होकर उन्हें परिस्थिति क्षेत्रों में विवर होकर काम करना पड़ा, परन्तु इसका एक मात्र कारण यह न था कि वह किसी समाज या सम्प्रदाय को कम प्यार करते थे। बल्कि वह भी कि वह सत्य को अधिक प्रिय समझते थे। अन्त्योय और अन्त्याचार के वह जन्म-शत्रु थे। आमस्य उन्होंने इनक प्रति लबाई जारी रखी। पवित्रों और पीसा में उन्हें जो पोते लगती थी, इसका अन्वयाज्य व हो लाना सकत है जो उनक करीब था।

वह वीर की तरह जिये। वीर की की तरह उन्होंने मृत्यु को भी अग्रगण्य। अपनी जिन्दगी और मात से वह हमको विद्या गय कि वीर के न जीत और मरते हैं और इसी के द्वारा उन्होंने हमें सिखाया कि उनक गृह वासियों को भा जो वीर भूमि में पैदा हुए और वीर की सन्तान कहलाते हैं वीरों की तरह कैम जीना और मरना चाहिये। उनका नाम इतिहास में अमर है। उनका जीवन हमारे राष्ट्र की पाँव निधि है।

उनक बलिदान का जयन्ता पर मैं प्रेम और अद्भुत का तुल्य अपनी बज्जात हुआ उनका स्मृति जो वार-न्वार प्रणाम करता हूँ।

—वृषभध्वज कन्मन्म कक ० नारा भद्रानन्द क विशाल आकाश सम हृदय को साम्प्रदायिकता के घा में धरा नहीं जा सकता।

—स्वामी जी का नावन धामक सामाजिक त.ग राजनीतिक तथा दृष्टियों में भारत के अपन युग का राष्ट्रिय इतिहास है।

फ़ार्सी-कॉलेज की रिपोर्ट—  
हिमाचल प्रदेशी साज सजिले पृष्ठ  
१६५। प्रकाशक—श्री भार० के०  
विषय और—आ० ताराचन्द साहबानी,  
प्रधान मन्त्री, ४५ वीं भारतीय रास्-  
महासभा।

कॉलेज का कर्तव्य अधिकार  
अनक हणियाँ म महचष्टर था।  
जबचरत लवार् न गद गाव्नी इर-  
विम पैक क रूप में सरकार म  
बराबर की हैसियत में सम्मोदा  
करन कॉलेज न जो विजय प्राप्त की  
वी लोनों में उसका उत्साह छाया  
हुआ था। पाठियों म कोया हुआ  
आम-विश्वास फिर जागृत हुआ था।

हालांकि सरदार भगतसिंह की फाँसी  
न हमारा उम्मेद पर एक लाल जमा  
दी गी और राष्ट्रीयता क उन्म जी-  
वित अवतार गणराज्यकर विचारों की  
शोधावत न हमारी आँखों को माला  
कर दिया था फिर भी अपनी विषय  
का थावा मर हमारी आँखों ने उस  
समय छाया हा हुआ था। दशप्रिय  
मेन गुन न बर तपाक न कहा था

कॉलेज क पाठ अद्वैत शक्ति  
है, आज कार्यवाही ता जरा सा  
नर में इस नृम म प्रसिग सरकार को  
उवाह सकता ह। तसा परस्मिन्ति  
में स्वभावत उस अधिराज्य म बहा  
जीवन था। जनता क मालिक अधिक  
कारों की सनप्रम गोपणा का य  
भा इस अधिराज्य को प्राप्त ह।

अत इसकी कार्यवाही दोषक और  
ज्ञान्य ही नहीं स्थिति एक भी ह।  
सरकारो दमन-दानालय क कुछ वि-  
श्राम करन ही स्वागत-समिति न  
अधिकारन की गकार्या रिपात्र प्रका-  
शित कर हा इ यह उसक लिय  
चान्यवाद की बात है। परन्तु हमें  
बहुत आरुसोस है जिस हिन्दु पर  
कॉलेज म तना जोर दिया जा रहा  
है उसा न हमम दुगति है। स्वा-  
गता यन्त्र और राष्ट्रपति क भाषण  
लिय ता गय ये हिन्दा म पर हमम  
दु वे भा हिन्दा न नहीं मिलन अन्य  
बसा उनक उ प्रजा रूप मौजूद है।  
प्रस्ताव और मायवाही वरान सब  
अच्छा है। हिन्दा हिन्दुत्वानी में  
हुप भाषण हिन्दा म आरभ्य लय गय  
है पर उनकी वाक्य रचना शास्त्रिक  
अष्टप्रयोग और राष्ट्रपति-सभा पर  
विश्वामोदा ध्यान नहीं दिया गया  
प्रतीत होता। हिन्दी क प्रति स्वागत-  
समिति की ऐसी उपका आनन्द है।

कराची में हिन्दी की छुपाई आदि की  
समस्याओं की कठिनाई हम समझ  
कर सकते हैं पर उस हालत में आबिल  
भारतीय कॉलेज कॉमिटी न सक  
लय मन्त्र ही जो सकयी दी। जो  
हो, "अधिकारिय रिपोर्ट" होन म

## साहित्य-समालोचन

समालोचनायें सब पुस्तकों की दो-दो प्रति आनी चाहियें। एक  
पुस्तक आने पर समालोचना न हो सकती।

यह रिकार्ड की चीज तो है ही।  
आशा है आगे में स्वागत-समिति  
इस और पूरा ध्यान रखेंगी। कम में  
कम ४० भा० कॉलेज कॉमिटी को तो  
इसकी देन-भारा रक्कनी ही चाहिये।

सुदर्शन (हिन्दी) वैनिक सम्पा-  
दक श्री कामताप्रसाद जैन और  
श्री सुदर्शनलाल जी जैन। प्रकाशक  
श्री लखीलाल बमरोवी सुदर्शन प्रेस  
प० (५० पी०)। अजुन न साहज  
क बार पु० मूल्य १ पसा प्रति  
प्रक।

यह जैनीयों का पत्र है, पहले  
साप्ताहिक निकलता था, अब आठव  
व में मैनिक रूप धारण किया है।  
विषय समाचार-कार विषयों का  
सम्बन्ध है परन्तु विचारों में कटुता  
प्रतीत होता है। समाज की दुराति  
पर प्रति एक वहन को वी गई  
सम्पादक जी की यह ललह इसका  
नीति का पोतन एक छाना सा पर  
स्पष्ट मन्त्रणा है—आशास्त्री की  
यही आशा है कि पुण्य स्वयं निराप  
है और की सर्वत्र सरोप है। हम  
मजहब में अकल की दखल देना  
कुछ सम्भव है। हमारे विचार न  
तो आप काला में तल डाल कर छुप-  
चाप परी रहे इसी म तुम्हारा  
समाज का और हमारा कल्याण।

एक हा सम्बोधन में एक जगह  
आप और दूसरी जगह हम पत्र की  
आपनी सम्पादकीय भाषा की  
विलेपता का उदाहरण है। निस्संदेह  
यह साहस क बात है कि पत्र  
जसी छोगी जगह म यह दैनिक  
निकाला गया है। यदि अपनी नीति  
एव भाषा में उभरित करले तो आशा  
है यह चल निकलेगा।

—मुकुन्दचिहारी वरमा।

सुवर्णादिभाष्य भूमिका—  
ले०—शुचि दयानन्द। प्रकाशक—  
आर्य-साहित्य-मण्डल, अजमेर। पृष्ठ  
संख्या ७५०। मूल्य १५।

उलूह कोटि का आर्यसामाजिक  
साहित्य आर्यन्तु सुलभ करके आर्य  
समाज का उपकार किया आर्य  
साहित्य-मण्डल ने किया है, उतना

अन्य किसी सत्य ने नहीं किया,  
यह आज निःसंकोच कहा जा सकता  
है। चारों ओर का सरल हिन्दी भाष्य  
३५) मेंना साधारण साहस नहीं है।  
कुछ समय में म्याडल ने शुचि दया-  
नन्द के प्रयोग का सुलभ सरलका  
डालन का मीमा उठाया है। मत  
शताब्दी के अन्तर पर उसन १) में  
सत्यार्थप्रकाश बच कर प्रकाशन-  
मसार में हलचल करदी थी। अब  
उसन २) अर्यन्तुद्विभाष्यभूमिका ३)  
म ४) अर्यन्तुद्विभाष्य का आर्य विचारों  
क लिय महान उपकार किया है।

पुस्तक की छपाई सराई अच्छी  
है। सरलता और भाषा क भागों तथा  
प्रयोग व उत्तरों को पृथक २ पर्याप्त  
में छापन म पाठकों को सम्मन में  
सुगमता होगी। मूल पुस्तक के  
सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त  
है कि नवयुग क निर्माता वर्ग के  
भाष्य-कार शुचि दयानन्द क भाष्य  
की भूमिका रूप वेष्ट प्रो है। ५० पी०  
क विश्वविद्यालयों में इन पाठ्यक्रम  
में नियत किया जा चुका है।

आर्य-जगत तो आप साहित्य-  
मण्डल क इस प्रयत्न का स्वागत  
करगा ही, वेद के प्रती अन्व प्रमा-  
वत्कनी भी इन पत्र में।

—कृष्णचन्द्र

पेटेंट स्लेट तस्वी—हकीम  
सेखर अन्वुत्तर साहब जजानी  
ने इस स्लेट तस्वी का आविष्कार  
कर विचारियों का वास्तव में बहुत  
उपकार किया है। एक तरफ यह  
स्लेट का काम देती है और एक  
तरफ तस्वी का। तस्वी में भी एक  
छोटी है कि सुलतानी मिट्टी लगाये  
बिना ही पानी में साफ हो जाती है।  
स्केलों क विचारों इस स्लेट-तस्वी  
का प्रयोग कर भारत के इस नये, छोटे  
परन्तु उपयोगी आविष्कार का भार  
करने, ऐसी आशा है। हकीम साहब  
ने मुसलमान होते हुए भी अपनी  
कम्पनी का नाम कृष्ण भारत स्लेट  
तस्वी कम्पनी रखा है। यह कम्पनी  
करोलबाग दिल्ली में स्थित है।

## प्रासि-स्वीकार

तथार्थ वृत्त विनागम समन्य  
पर एक दृष्टि—ले०—प्रो० बकर  
दास। प्रकाशक—सा० रामलाल जी  
अन्वुत्तर जी पारल भारतीयभाषा,  
दिल्ली।

संदुपदेश माला—समझाई  
अन्वुत्तर विचार्यों और विनम्य  
विचार्यों। प्रकाशक श्री हिन्दू विचार्यों  
समन्य कलपी। मूल्य १५।

सुलभ पैसा-माला के चार  
पुण्य—(१) हसी का फव्वारा (२)  
छेकड़ा (३) काम की बात (४)  
नदी। प्रकाशक—पाण्डुरा हाउस  
लिमिटेड ब्यार।

अखल बायाकमिस्टी—  
ले०—डा० के० पी० सचनेला यम०  
डी०, यम० बी० यम०। प्रकाशक—  
आलोकाद दूरवार प्रेस ब्यारियर।  
मूल्य १५।



यह सुन्दर (प्रकाशक ५) ५० में  
(गारवी १०) उलम होकर मरी-  
नरी मजबूत सुन्दर शेष, सुन्दर वेक  
५) उलम ब्याकाली ५०) एक  
पाठ्यक्रम मय एक १५ कर दोस्त  
गोष्ट निव क व एक सुन्दर मस्तिष्क  
की माला एक टाच लाउट हर शब्दों  
क साथ सुन्दर पैकिंग पोस्टेज ५)  
ही साधारण बक ५०, ५५ भी कीकर  
बगल स्टीड पो० शायमाजार बकलका

## उत्तम बक्स कैमरा

यह कैमरा अपनी  
नय आर्य है और  
बजार के अन्य  
कैमरा से उत्तम  
है। फोटोग्राफो  
गीमता से लीजन का उत्तम  
साधन है। एक हज्जे प्रिंटिंग पेपर,  
५ फिज, मजबूत लेस और धोने के  
बिना आर्यक मसालो सुविष्ट मूल्य  
क २ आ० १२। शिपमेंट मुफ्त।  
आक ब्यापारि अलान। तीन एक साथ  
लेने पर डाक मूल्य आक। नासपुल  
होने पर मूल्य वापस।  
भारत युनिफन टू डिग कम्पनी।  
पाठक बक्स क २३५५ (सेप्टेम्बर ३)  
ककलका।



## बीजारी

(१)

'थारा, आज सगमलाल के बाग पर बहुरी होगी। उस बाग का मालो बड़ा सुखी है। उस दिन जब हम उसके बाग में घुमे थे, तब उसने बहुत गालियाँ दीं और लाठी से फिर फोड़ देन की धमकी दी। आज उसे मज्जा बलाया जाय।

'ठीक है। ठीक है। आज वहीं चारा हो।'

प्रस्ताव करने वाले का नाम उम्मेदसिंह था और अनुमोदन करने वालों के नाम थे बशीर, दिव्य और गेंदा। उम्मेदसिंह की आयु लगभग १९ वर्ष की होगी, शेष तीनों लगभग उसकी ही उम्र के थे। यह चारोंही लोककी एक छुवा की छाया में बैठकर सुन्न की तैयारी कर रही थी।

बशीर बोला, 'भाई, कल तो बहुत ही मज्जा आया। जब हमन उस बगिये की दुकान पर जाकर जलेबी के थाल को उठवा दिया, तब वह सदी लेंबर इस लोभार्थी को मारन भागा हलन में लाला की घोरती की लाँग खुल गई। जितन में वह लाँग बाँधता, उसन में हम लोग हाथ और सुइ में जेलियाँ बाँध कर भाग निकले बस लाला जी, आँखें फाड़त और गालियाँ बकन ही रह गयीं।

तब तो कल 'क्या कहते हो थार, उस बक उस लाला का पेठ देखन की क लयक था। मानो आद की गोरी ऊपर सींचे झूल रही हो।

उम्मेदसिंह न गप्पो क सिलसिले को काटते हुए कहा कि 'अब समय होना थ्यर्थ है। सब अपन अपन घर चले, और कोई घन्टे भर न सगमलाल का बाग के पिछवाले की ओर जो पीपल का पेठ है उसके नीचे इकट्ठ हो। दोपहर क समय माली बाग मालिन दोनों ही चारपाइयों पर लेट कर सुर्दंड भरन लगते हैं। वही वह अमकट्टों के पेठ पर कुछा भरन का है। उम्मेदसिंह उस शेताल पार्टी का न्ता था। वह सुन्न और हिम्मत में अपन साथियों में बड़ा चढ़ा था। सबन उसकी सलाह का स्वीकार किया और अपन अपन घरों की तरफ रवाना हो गये।

उम्मेदसिंह न भी अपन घर की ओर कदम बढ़ाया। इस हतिहास का प्रारम्भ बशीर की राजमन्त्री दिल्ली की उस बस्ती न होता है, जिस का नाम सखीमन्त्री है। दिल्ली के बड़े-बड़े आदमी-आदमी विविध ताकतों के लिये प्रसिद्ध हैं। बाँकी की बाँकी के लिये, चाणू की बाजाल वेप्यालों के लिये, सारी बाजाली

## चारागद्दी उपन्यास

## अपराधी कौन ?

(ले-—श्री देव)

मिर्चों की घाँस के लिये और सजी मन्त्री मन्त्रियों और बहूव कलिय मश-हूर हैं। ऐसी सखी मन्त्री की बस्ती के एक बहुत ही गम्मे हिरण्य में एक छोटा ओपड़ा था जिस में उम्मेदसिंह और उसकी मा रात में सोया करत और दिन में वृद्धा जलाकर रोटी बनाते थे।

६ वर्ष हुए, उम्मेदसिंह का बाप इन्कलुप्रजा की बीमारी स मर गया। वह एक मिल में काम करता था। महन्तरी काम-शेधा। दिन में इस घन्टे परिश्रम करक कथा यह रूपया कमा लेता था। उसका नाम जगहरसिंह था। वह जात का चाँहान राजपूत था। उम्मेदसिंह की माता कानाम भनारी था। जगहर सिंह जो कुछ कामकर लाता था वह अपनी ओरत के हाथ पर रख देता था। दोनों की अच्छी मिलती थी। हाँ कभी कभी सातवें भाइयें दिन भरन हो जाना था। उम्मेदसिंह जिस दिन मिल की ठूठी होती थी, उसन पहली रात मजदूरा की तवाही का डार खुलता था। उस रात मजदूरी की पार्टियाँ शराब चढाती थीं और सुष्मा खलती थी। जगहरसिंह उन मजलिलों न प्रलग नहीं रह सकता था। कुछ न कुछ बोझा आता था। भनारी बचारी उस रात कुछ की चण्डिया बिताली थी कभी कभी लकटना भनारी भी परन्तु नया करती। बचारी लाचार थी। रूय जिनाम मिश्रण कर सकती थी करती थी। परिणाम यह था कि उनक पहेल्य की गाँगी किता न किसी तरह बनी जाती थी यथायक बस्ता डकु भी नहीं था। जो पैसा भनारी क प्रयत्न स बचता था वह जगहर की दोलत क साथ रह जाता था।

एक प्रात फल जगहरिहर देर तक चारपाई पर म न उठा। पहली रात उसन मजदूरों की मजली में शराब पीकर शरीरती की थी। सुबह तीन बजे घर पर आया, और चारपाई पर ग गया। रात थकथो थी। हवा लक लगी। सुबह उठा तो जोर का ज्वर चढ़ा हुआ था, और गला र धा हुआ था। दोपहर बाद मिल क शम्बर न आकर देखा तो बतलाया कि इन्कलुप्रजा हो गया है। टूटी हुई

ओपड़ी, थोडा कपड़ा और पथ्य की कमी मला इन्कलुप्रजा का इलाज क्या होता ? तीसर दिन निमोनिया न चिन्ह प्रकट हो गये, और भाइयें दिन प्राबों न शरीर का साथ छोड़ दिया। बचारी भनारी ६ वर्ष के लकके के साथ इस अयानक ससार में अकली रह गई।

पहले तो भनारी को चारों ओर अन्वेषण दिवारा देन लगा। वह बहुत रोई परन्तु कब तक रोती। अपना और बच्चे को पेठ कवल कलियों म न न सर सकी। जब बच्चा मूल न पीवित होकर 'मा मूल लगो है, रोटी दे' की रट लगाना तो बचारी भनारी अपना दुख मूल जाती। कई कई दिनों तक रोजगार की तलाश में घूमन के पीछ एक पड़ीसी न सलाह दी कि सब न अच्छा बात यह होगी कि जिस मिल में जगहरसिंह काम करता था, उसी क मकेंदरी क पास जाकर नौकरी माँगी, मकेंदरी व्यापार आव्दी है शायद कोई काम न दे। भनारी तो सोलह पसन्ध भाई। वह उम्मेद की उगली पकड़ कर मकेंदरी क पास हाजिर हुई और भाखो में आरु भर कर कोई रोजगार माँगा। मकेंदरी का दिल अच्छा था। जब तक मिल की गिल पर प्राय न पड़ बती हो तब तक वह व्या को नहीं छोड़ता था। उसन भनारी को मिल न काम दिया।

तब न भनारी प्रतिदिन काम पर जाती है। कुछ दिन तक तो वह उम्मेद को अपन साथ ले जाती थी। परन्तु यह बड़ा चक्वल और गराती लडका था। बहुत दिक् किया करता था। जब वह आठ वर्ष का होगया तो भनारी उन्क दुख का कल्ला देकर कारखान चली जाती, और पडोसिन न कह जाता कि जरा देखन रहना, उम्मेद इधर उधर न भाग जाय। बारह बज कारखाना एक घन्टे क लिय बन्द होता था, उस समय भनारी घर जाती और सुबह की बनाई हुई रोटीयाँ खुद खाती और उम्मेद को भी खिलाती थी। वह एक बजे फिर मिल में चली जाती, और शाम तक वहीं रहती। हलन समय तक उसकी राय में

उम्मेद पडोसी क बच्चों के साथ खला करता था।

परन्तु उम्मेद क्या करता था ? वह मा क चउ जान पर घर का दूरबाडा बन्द करक बाहिर निकलना और बच्चों न खलन में लग जाता था। जब तक छोटा था तब तक नो घर क पाम ही खेला करता, परन्तु प्रायु क साथ ही उसकी बुनिया भी बढ़ती गई। प्राइस्ता-प्राइस्ता वह अपनी पार्टी के साथ दूर-दूर क दार लगान लगा। कभी बोट पर तो कभी जौतण्ड पर। कभी रीयाना बना म तो कभी बकलान क मोशन वाला मील क किना। साराय यह कि रीयान बच्चों की वह पार्टी चारों ओर बककर लगाती और शरीरन करती थी। उम्मेद अपना मयझी क सब बच्चों म मजबूत और बलाक था इसलिय उस मयझी का अनुभव बनन में देर न लगी। भनारी अपन बर्षा की मनुष्य समाज क बलाय हुए किसी स्थूल में न मज सकी, परन्तु इदरत न उसक लिय अपन स्थूल क डार कोल दिया। बातवचन न उम्मेद को अपन दिव में डालना आरम्भ कर दिया। १४ वर्ष तक उम्मेदसिंह की स्वाभाविक शक्तियों क गन्ड बोतावरय की प्रतिभिया का जो परिणाम हुआ उसकी भाँकी हम अमो दिखला चुक है। वह एक ऐसा आभावा, शरीरती चरलल बोधका का अनुभव न गया जिसन सारी सखी मशरा पर धाक जमा रखा थी।

( २ )

मगमलाल क बाग न प्राम रूयन प्रसिद्ध थे। यह मीन भी य आर नम भी। दिल्ली कीक फल क लिय चिरयात हैं। बाजार में यदि कोई स्वादु फल बिकता हो तो समझ ना कि वह किसी गाँविर की मन्त्री न आया है। खास दिल्ली कायन मीरस है। उम बाहिर वाये ही रसदार बताते हैं। परन्तु सगमलाल क बाग म प्रमदोरी की पोट बाहर न लाकर लाया गयी था। इस साल उस गान का उठा लिया था। नमन माली उसकी स्त्री और चार उच्च बड़ी महन्त न बाग की रखवाण करत थे। उन्क जावन का उठा आया था। आर कभी बन्दर गान पर टुट पडेन आर कुछ फलों का गिगाड जात तो नमन क लिय तो मानो भूकण आ जाता। उसरा आगमों का महल टूट जाता कगाफ इस वषे भनारी की अच्छा पस न को देख क उसन लडका की शाद करन का निश्चय कर लिया था।

( ममरा, )



गत १६ दिसम्बर को लिट्टरी लीग की ओर न को गई एक सभा में श्रीमती सरोजिनी नायडू न संस्कृति' बना पर बड़ा हृदयभाही भाषण दिया। सभा में पंजाब सरोकार के अनक अधिकारी गण्यमान्य नाग-निक और बिद्वान उपस्थित थे। उसक कुछ भग्न निम्न लिखित हैं—

लिट्टरी लीग की वषाय भारतीय संस्कृति तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिये—संसार भर की संस्कृति का समयेन करना चाहिये। मैं संसार का जितना अध्ययन किया है मुझे मानवी एकता की उतना ही अधिक आवश्यकता प्रतीत हुई है। सभी देश चाहे एक-दूसरे प्रेम के गीत गाते हैं। संसार का उपास्य देव एक ही है। तो भी संसार में भग्न रह रहे हैं। आप मान चिन्मय हर देश जुग-जुग रत में विद्याया गयी है हालांकि सब का कलजा मानवी प्रेम और एकता का संदेश दे रहा है। राजनी-निक हीन म हम में भेदे ही चले-चली हो पर हमारे दिल विशाल और उदार होन चाहिये। इन सब कगलों का बहतर इलाज सांस्कृतिक एकता ही है। हमें अपनी संस्कृति पर गर्व होना चाहिये और उसक सही अर्थ समझन की चण करनी चाहिये। सांस्कृतिक एकता की रूचि न पंजाब पर बनी सारा जगत्परी है। यहाँ हिन्दू मुसलमान, सिख पारसी और ईसाई आदि सभी संस्कृतियों क आदर्श रहते हैं। उनमें एकता होनी चाहिये।

#### संस्कृति युग जीवन

संस्कृति की एकता ही किसी देश की इच्छाओं का रूप प्रदान करना है और फिर देश सयुक्त होकर इस योग्य हो जाया है कि वह अपने सभ्यता में सफल हो सक। संस्कृति राष्ट्रीय जीवन क लिए अत्यवश्यक है। हमारे सामन इस समय जो समस्याएँ हैं वह हम कल भण्ड ज्ञायगी। कल हमारे सामन नई समस्याएँ होंगी। इन समस्याओं को संस्कृति युगन यकिन ही हल कर सकत है। आज इस दुनिया में अश्रद्धा और उसक बड़ कानूनता उठ गय है नकिन महा मा उद क श उ ग्रमा क मीजुट है। उन्हे उल्लिखित। ये शूल नहीं सन्तुष्ट? इस लिय कि हाँसा उद न संसार में मन्त्राई तानी स्वतन्त्रता और आन सम्मान न प्रचार किया।

आपन भारतीय युवक न भयाल न कि वह पीउ की ओर न दलें

## किसान ही भारत की संस्कृति है

संसार की एकता संस्कृति से होगी

श्रीमती सरोजिनी नायडू का भाषण

‘भारत की संस्कृति किसान हैं, केवल टागोर की कविता भारत की संस्कृति नहीं बल्कि वास्तविक अर्थों में किसान ही भारत की संस्कृति हैं।’



श्रीमती सरोजिनी नायडू

गहिक भारत क अन्विष्य की ओर ध्यान दे वह अपनी स्वर्ण खुद नैयार करे वह मासी भारत का स्वप्न ले। यही स्वप्न और ररारे की हड़ना भारतयो क अन्विष्य को शान-दार बनायगी। क्या भारत में कोई ऐसा युवक है जो इस बात को अनुभव न करता हो कि मादममि गुलामी की जर्जरी में जकड़ी हुई है। वह कोन सा युवक है जो मालूम की गुलामी पर लज्जा में सिर नहीं कुकता। मरा सिर लज्जा न कुक जाता है, जब में मालूम को वने-मान अवस्था में खली है।

#### देशभक्ति का भाव

सासारिक जीवन में मनुष्य को विभिन्न विभागों में काम करना होता है। कोई मजदूर होता है तो कोई मन्वा। हम सब में जातीयता और देशभक्ति का भाव कूट कूट कर भरा होना चाहिये। जब किसी जाति में देश भक्ति का भाव पशु हो चाय तो फिर वह अपना पूरी अवस्था को अनुभव कान लगता है। संस्कृति ही एक जाति का सभा दर्शन है। इस के बिना आप जाति क कछों का अनुभव नहीं कर सकत। सदाता गांधी के शत्रों में संस्कृति का मतलब यह है कि आप का आदर्श मनुष्य भाव की मया हो। इस समय आपक मध्य हजारों नहीं लाभा आदर्मी कथ में ?

गांधी जी कई बार साधारण सी बात करते हैं, लेकिन अगर उस पर ठन्ठ दिल न विचार किया जाय तो यह बिलकुल ठीक ओर लच होती है।

#### कृषि ही संस्कृति है

महात्मा जी कहते हैं कि कलचर (संस्कृति) ही कृषिकलचर (कृषि) है। एक आदर्मी यह सुनकर इस पहेला, लेकिन जब इस पर गहरी दृष्टि में दबा जाय तो यह ठीक मालूम होता है। आज करोड़ों किसान जो आपकी रोजी दन के लिय लड़ पसीना एक कर देते हैं और उनकी

सिर्वां श्रम के किये सत कलचर आप को कपड़ा देती हैं, आज उनकी क्या हालत है? भारत की संस्कृति किसान हैं। केवल टागोर की कविता भारत की संस्कृति नहीं, बल्कि वास्तविक अर्थों में किसान ही भारत की संस्कृति हैं। हमें अपनी संस्कृति को ठीक दर्ज पर लान के लिए अपनी मातृ भाषा को अपनाता चाहिये जो, भ्रष्ट बहा रही है। किसानों को हालत बहतर बनाये। कलचर (संस्कृति) के वास्तविक अर्थ यही हैं। इसलिए मैं मिनिस्टर आफ एग्रीकलचर (कृषि-मन्त्री) को स्वागत करती हूँ। महात्मा जी का कहना है कि हम प्रेम और स्वास ही संसार पर विजय प्राप्त कर सकत हैं तलवार न नहीं यह कितनी साधारण बात है लेकिन अश-रश ठीक है। भारत तन ऊचा होगा जब भारतीय युनिवर्सिटियों में मुसलमान प्रोफसर, संस्कृत पढ़ाते नजर आयंग और हिन्दू प्रोफसर फारसी और अरबी पढ़ायंग। मैं हिन्दू मुस्लिम एकता का यही स्वप्न देखती हूँ और यह स्वप्न जरूर पूरा होगा।

## ‘विश्व-इतिहास की मलक’

लेखक

श्री० जवाहरलालजी नेहरू

अनुवादक

श्री वेङ्कटेश्वरारायण तिवारी

१२ भागों में मासिक रूप से प्रकाशित हो रही है  
इस पुस्तक में संसार के प्राय सभी देशों का मनोरंजक  
विलक्षणतम विराट ऐतिहासिक वर्णन है। (पूरे  
विराट के लिए बुकलेट देखिए) इस में लगभग  
६००,००० शब्द और २०×३० अठ्ठेजी आकार के  
१२०० से अधिक चित्र होंगे  
मूल्य प्रत्येक भाग का १।) पूरी पुस्तक का १५।  
पूरा मूल्य पेशगी देनेवालों से १२।

एजेंटों की हर शहर और कसब में जरूरत है  
स्थानीय एजेंट से सतीदिप या नीच के पते पर लिखिए

साहित्य-मंदिर,

आर्डर - फार्म भेगाकर  
गीम ही ग्राहक बनिए।

पुस्तक विक्रेता,  
लखनऊ.

## बिना किसी सन्देह

के अपनी तज्जारत का तरकी देने के लिये साप्ताहिक में अपना विज्ञापन अवश्य दीजिये।

## श्रद्धानन्द-दर्शन

मुन्शीराम में श्रद्धानन्द



अमर पल्लवान



गोली लगाने के बाद का चित्र

पानी में लगे होकर बाल तोड़ने की विधि पूरी हो रही है।



हुतात्मा श्रद्धानन्द ( विला में )

## आदर्श शिक्षा-विशेषज्ञ

( ले०—भी सेवाराज केरवानी )

मैं उनमें गुरुकुल कांगड़ी में मिला था। वह एक वीर आत्मा थी जो एक महान् आदर्श शिक्षण के प्राचीन आदर्श को अमल में लाने का यत्न कर रही थी। मनुष्य जातन के उस महान् आत्मी न आपन मानवी पोषों की क्यारी गंगा के किनारे हिमालय के चरखों में इतिहास के मसीप ही लगायी थी। वह ऐसा नाथ है जहाँ वृष के प्रत्येक मान में हजारों सीध यात्री घाते रहते हैं। और यह क्यारा धीरे धीरे सख्या हम रत्नों कायकलाओं महककाझाओं और बाह्य ससार पर शिक्षण तथा सामाजिक दानों में अपना प्रभाव डालती है व्यापक बन गई। उन्होंने समकालीन जिया था कि सामाजिक पुरस्कार के लिए शिक्षण सब म प्रबल ज्ञापन है। नवीन युग को पूर्ण तः पश्चिम का शिक्षण प्रणालियों में जो कुछ सर्वोत्तम था उसकी अप्रत्यक्षता थी। स्वामी अज्ञान् जी न उस शिक्षण प्रणाली को विकसित करने का यत्न किया जिसमें गुरु मनुष्य के पारस्परिक सम्पर्क में योग्यता को उत्पन्न किया जाता है।

और उस योग्यता को मनुष्य के मानसिक आध्यात्मिक तथा सामा-

## भारत का सेवक

ले०—भी मोहनलाल सक्सेना

स्वामी जी के दिल व विभाग के अनेक सुखों और उनके विविध कामों

की वृत्ति हमारे मन में इसकी ताज़ा है कि उनके दुहराने की आवश्यकता

शब्द का सम्मान



अज्ञान् बाजार में अपनी निकाली जा रही है



मद्रास की धर्म यात्रा में लिया गया चित्र

जिक जीवन में जो भी कुछ सर्वोत्तम वस्तु हो उसकी ओर झुकना का अभ्यास करायो जाता है। गुरुकुल मनुष्य में इसी आभ्यता को उत्पन्न करने तथा प्राकृतिक और सांस्कृतिक सम्पर्कों में उन्नत करने का प्रचुर अवसर होता था। पर्वत की शोभा नदी का शान्त शीतलतापूर्व प्रवाह, विस्तीर्ण सुन्दर रम्य उपवन व पवित्र कार्य पर्वत की उपन्यका का वन, सुनहली उषा और रमणी सूर्यास्त, व सब प्रकृतिचरित्रों के विकास में सहायक होते थे और व्यावहारिक आदर्शों तथा आदर्शवादियों का या वहाँ प्रभाव नहीं था। वे सब उनका (स्वामी जी के) उच्च प्रयोजन की प्रबल प्रति में सहायक होते थे और वहाँ बैठ कर स्वामी अज्ञान्द मान की जीवन के शांत प्रवाहित ज्ञान का निरास्य परीक्षण पूजन और पालन करते थे। और उनका काम बार २ घण्टे था। उसको करने वाले और देखने वाले धन्य थे और वे प्रकृतिचरित्रों में पड़े थे जो इस उच्च वातावरण में पड़े थे।

गहाँ। हम में से जो कोई उनके सम्पर्क में आया वह उनकी निस्वार्थ भवन शुद्ध ईमानदारी पुरस्चि मिश्रणरी उत्साह और सब से बढ़ कर उनके निर्भीक साहस तथा अनपेक्षित परिश्रम से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। उनके विषय में सचमुच कहा जा सकता है कि जिये भी देश के लिये और मर जा देश के लिये उन्होंने भारत का धार्मिक सामाजिक शैक्षणिक और राजनीतिक उन्नति के लिये काम किया। 'महा हठिकोय ही कतिकारी था। वह प्रत्येक प्रश्न पर बुद्धि-युक्त विचार करते थे और अनक सुधार जो उरन पूर्व होने चाहिये थे, उनके ही मुख में प्रारम्भ हुए। उनका आदर्श उ वन त्याग तथा सेवा का अविच्छिन्न इतिहास है और भारत के प्रत्येक व च सुपुत्र को उसका अनुकरण करना चाहिये। भारत की भावी सन्तति अभिमान और कृतज्ञता के साथ उसका स्मरण करेगा।

## असेम्बली के मेम्बरों का संगठन

लेकिन इन लोगों का व्यवहारिक प्रयत्न के पूर्व यह बात अभी अन्तर ग्यान में रहना चाहिये कि यहाँ पर गवर्नमेन्ट हमारी अपनी नहीं है। इस प्रकार के रचनात्मक कार्य की स्थिति में हमारा, करोड़ों रुपये के आर्थिक धन की आवश्यकता होती है। ऐसे भारी व्यय की समस्या गवर्नमेन्ट ही प्रभावशाली से हल कर सकती है। इस की शिक्षा और अन्य व्यवस्था में हमारी सीमा जो उपति हुई उसका एक प्रचालन कार्य उनकी अपनी गवर्नमेन्ट का होगा। ऐसी स्थिति में अपनी गवर्नमेन्ट न होने से हमारी कठिनाई का ही गुण अधिक बढ़ जाती है। फिर भी प्रोचूरा गवर्नमेन्ट से हम अधिक से अधिक लाभ उठा सकें। इसमें अवश्य प्रयत्न करना पड़ेगा।

प्र. इस के लिये असेम्बली के सभी गैरसरकारी सदस्यों का एक मजबूत संगठन बनाने की आवश्यकता होगी। हमारा ऐसा क्या है कि अगर मतम् का विषय न हो, प्रयास में कभी न हो और कोई प्रभावशाली व्यक्ति इस कार्य को हाथ में ले तो इसमें बहुत कुछ सफलता हो सकती है। शिक्षा को प्रोत्साहन देना है कि अगर गवर्नमेन्ट की कोई कूटनीति काम न कर रही हो तो इस विषय में हमी मेम्बर एक हो सकते हैं। इसी प्रकार आर्थिक समस्या का प्रश्न ऐसा है जिसमें मिल-मालिक और औद्योगिकों के प्रतिनिधि एकमत न मिलें, फिर भी यदि प्रयास किया जाय तो बहुत इस बात के लिये पैरान हो सकता है। इस प्रकार यदि असेम्बली का बहुमत संगठित करने में हम लोग सफल हुए तो हमारी एक बहुत बड़ी कठिनाई दूर हो जायगी।

प्र. असेम्बली के मेम्बरों का यह संगठन हमारे आयोजन में क्या-क्या आवश्यकताएँ देगा, वह तो सम्भव-तः पर पैदा होने वाली आवश्यकताओं से तय होगा, फिर भी इस से कम भीसे लिखी बातों की आवश्यकता के लिये तो उसे गवर्नमेन्ट आवश्यक ही अपनी माँग पेश करनी होगी—

१—प्रत्येक वर्ष में गवर्नमेन्ट के प्रेस में ही प्रोक्लाम्ड है उनके कोर्स ऑफ़िसेरियन कराना। जितने प्रमुख विषयों विषय पड़े जाते हैं उनको लक्ष्य करण, ऊँची उद्योग और वैज्ञानिक शिक्षा को प्रोत्साहन करना आदि। इस तरह का प्रयत्न करना कि

## भारत के लिये पंचवर्षीय आयोजन

### एक नवीन कार्यक्रम का मसविदा

(लेखक—भी बन्दुराज मन्हारी विचार)

(गतांक में आगे)

इस लेखमाला के सुयोग्य लेखक भी बन्दुराज मन्हारी ने पिछले लेखों में भारत में एक पंचवर्षीय आयोजन की आवश्यकता और उसके मुख्य आधाररूप सिद्धान्तों का विवेक किया था। इस लेख में उन्होंने उसके तीन पहलुओं पर प्रकाश डाला है, सरकार से कैसे सहायता ली जाय, अर्थिक व्यवस्था क्या हो, आयोजन का संगठन कैसे हो? हमें आशा है, हमारा पाठक और विचारक इस लेखमाला का अध्ययन और मान करेंगे।

गवर्नमेन्ट अपने अर्थिक प्रोक्लाम्ड और मिश्रित स्कूल के साथ एक-एक उद्योग शाला की स्थापना कर, जिसमें प्रांत के प्रचालन उद्योगधर्मों की मशीनें फिट की हुई हों। इन मशीनों पर सब विषयों की अनिवार्य रूप से अपने प्रांत के उद्योगधर्मों की शिक्षा प्राप्त करें। इन्हीं स्कूलों के पास-पास जो मेहनत हों उनमें रुचि की व्यावहारिक शिक्षा देने के लिये हर प्रकार के नवीन प्रयोगों को बतलाने की व्यवस्था हो। इसी प्रकार इन स्कूलों के विद्यार्थियों को सैनिक-शिक्षण देने की व्यवस्था की जाय। इन तीन विषयों के बहले में दूसरे विषय जितने भी कम किये जा सकें, कर दिये जाय।

(२) प्रस्ताव के अन्तर्गत राष्ट्र की ओर से जो परशालाएँ स्थापित की जाय, उन्हें आर्थिक या खोलासा आर्थिक से अधिक सहायता दिलाएँ। इनके अर्थिक के दृष्टि से हम शालाओं के लिये रुचि के व्यावहारिक प्रयोग विज्ञान के अमीन के दृष्टि से भी सुचल में दिलाएँ की कोशिश की जाय।

(३) जो मशीनरियाँ विज्ञान, अमेरिका या जर्मनी से आती हैं, उनके बचाने के बरालाने यहाँ पर खुलवाने का उद्योग किया जाय जिससे वे सस्ती पड़ें।

(४) व्यक्तिगत रूप से प्रामाण्य में जो व्यक्ति मशीनें लगाना चाहें उनके आसक्तता उन्हें आसानी से मिल जाय तथा बहुत स्थूल पर करवाने को करने वालों को उहाँ तक सम्भव हो लायनेमन्ट न दिये जाय इस बात



भी बन्दुराज मन्हारी

की व्यवस्था करना।

अगर असेम्बली के मेम्बरों का संगठन उपर्युक्त बातों में आर्थिक सफलता भी प्राप्त कर सका, तो हमारी बहुत बड़ी कठिनाई दूर हो जायगी।

#### सर्वे की व्यवस्था

हम ऊपर लिख आये हैं कि इस प्रकार के रचनात्मक कार्यक्रमों की सफल करने के लिये लाखों करोड़ों रुपये के खर्च की आवश्यकता होती है, अगर खर्च में कमी हो गई तो सारी आयोजन सेवकियता की कठिनाईयों से अधिक महत्व की नहीं हो सकती। जैसा कि हम आगे बतल कर लिखेंगे कि प्रथम वर्ष में ही शिक्षा का प्रचार करने के लिये कम से कम दस हजार और अधिक से अधिक पच्चीस हजार युवक प्रामाण्य में भेजे जायँ। कम से कम यदि इनका औसत वेतन बीस या पच्चीस रुपये भी मास मिलता तो दो लाख से पचास लाख रुपये आर्थिक व्यय की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार ट्रेनिंग स्कूलों के तभी आर्थिक योजनाओं के अन्तर्गत लय प्रिया कर, करीब दस लाख रुपये आर्थिक खर्च की हमको योजना करनी होगी। यह प्रश्न समाप्त रह नहीं है, इसी स्थान पर आकर बड़े आयोजन असफल होजाता है। इसके लिये सब विषय में हमें अपनी एक-व्यवस्था बहुत मजबूत कर लेनी होगी। इस समस्या को हल करने के लिये तीन-चार मास बहुत महत्वपूर्ण हैं।

#### लाटरी

सर्वे की समस्या को हल करने के लिये लाटरी-प्रथा एक बहुत ही उपयोगी वस्तु है और इसमें सफलता भी काफी मिल सकती है। आर्थिक कठिनाई और बन्ने की सरकार के इस गुण में आप किसी एक कस्या भी चन्दा मागत जायँ, तो देन वाले की भाँखों में अवश्य कटौत करेगा, अगर यदि उसे यह प्रश्नोत्तर हो कि अगर मेरी किस्मत बहुत बुरी हो, तो मैं दिये हुये पाँच रुपये के बहले में एक लाख रुपये की मुझे मिल सकता है तो बहुत हर्ष में उस जोखिम में लगे जायगा और खासकर उस हालत में तो वह बिल्कुल सकोच न करगा, उन यह विश्वास होगा कि यह सारा कार्य राष्ट्रीय हित की दृष्टि से किया जा रहा है। जब गोबरा के समान, राजन कटौती में हमारे देश के पैस में प्रति मास तो २ लाटरियाँ खुलती हैं और करीब एक-एक लाख रुपये हममें बाँट गेती हैं। तब हमारे देश की, देश के गम्भीरतापूर्ण द्वारा स्थापित की हुई, राष्ट्रीय हित के ज्येष्ठ को समुल्लेखन वाली लाटरियाँ क्यों नहीं सफल होंगी?

अच्छी व्यवस्था करने से प्रति मास पाँच-पाँच लाख रुपये की आमनी सफल हो निकल सकती है। कुछ समय तक यदि इन लाटरियों में रमान्तगारी में हमारा बाँट दिया नो फिर कैनेबेसिंग की अकर्मण्य रस्ती पर बैठें लोग उत्साहपूर्वक टिकित मगया लिया करेंगे।

नैतिक दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करना ही व्यर्थ है क्योंकि जब इस सार आयोजन में राष्ट्रीय हित की भावना गर्जित है जब इसका उद्देश्य महान् और पवित्र है, तब नैतिक समर्थन तो इस का हो जा जाता है।

#### मुद्रही पृष्ठा

सर्वे के सफलता का हल करने का दूसरा उपाय मुद्रही प्रथा है। प्रत्येक

प्राथम्य स्कूल में एक बड़ी पेटी लगी रहे। इन स्कूलों में जो विद्यार्थी पढ़ने के लिये आये उनका यह प्राथम्यक कर्तव्य रहे कि प्रतिदिन एक सुदृढ़ अनाज धान घर में लेता आये और इस पेटी में डाल दे। इसके सिवाय जब फसल का समय आये तब प्रति फसल में प्रति हल दस मेर अनाज के लिये लिया जाय। अगर ये दोनों प्राथम्य सखल हो गये तो इनके इतनी आमदनी हो जायगी जिससे प्राथम्य प्राथम्य स्कूल का खर्च उसी प्राथम्य में निकल आयेगा और लोगों को कुछ बोझ भी मान्य न होगा।

#### समूह और नियंत्रण

यह अत्यन्त आवश्यक है कि जो कुछ भी कार्य किया जाये वह चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, उसका समूह और उसका नियंत्रण आवश्यक रहे बिना इन दो युक्तों क पर्याप्त लाभ में हुए कोई भी आयोजन सखल नहीं हो सकता। इस सार आयोजन का समूह कैसे किया जाय यह बात परिचित है और सुविधाओं को देख कर उसी समय तय की जा सकती है। फिर भी इस सारे आयोजन के तीन बिन्दु किये जा सकते हैं (१) केन्द्रीय संस्था (२) प्रांतीय संस्था (३) जिला संस्था।

(१) केन्द्रीय संस्था—इसका स्थान सारे भारतभर में किसी एक जगह पर स्थान पर रहे। देश के जून हुए नगरों नगर, प्रतिभाषाली विज्ञान और महान विचारक इसके सदस्य रहे। इसकी दो कमेटियाँ रहे। एक शिक्षा सम्बन्धी योजना करने वाली और दूसरी आर्थिक योजना करने वाली। दोनों कमेटियों के सुविधाउत्तर उचित संस्था में मंत्र बनाकर जाय दोनों कमेटियों पर एक २ प्रेसिडेंट हों और इन दोनों प्रेसिडेंटों पर एक प्रवात प्रेसिडेंट हो। इन संस्था का कर्तव्य सारी योजना का रूप और उसकी गति को निश्चित करता रहे। समय २ पर मार्ग में जो-जो कमीशन आये, उनका निर-कारण के उपाय यहा से निश्चित किये जायें। संस्थान में आयोजन की सारी जवाबदारी इस संस्था पर रहे। इसके सेक्रेटरी की दक्षिण पर इस बात की रिपोर्ट हमेशा मिलनी चाहिये कि सार देश में कहा कहा पर क्या गति-निधि हो रही है।

#### प्रांतीय संस्था

(२) प्रांतीय कमेटियाँ प्रत्येक प्रांत के प्रथम स्थान पर होना चाहिये। इन में भी कार्य और शिक्षा

की दो शक्लें होनी चाहिये और उनके आवश्यकतानुसार सदस्य होने चाहिये। प्रांत के जून हुए नेता और पुरखर विज्ञान इसके सदस्य होने चाहिये। केन्द्रीय संस्था से जो कार्य आये, उनका प्रथम कमेटियों से कर-वाना, प्रांत की आवश्यकतानुसार केन्द्रीय संस्था की सहाय से मनीष योजनाएं बनवाना, स्कूलों के मास्टरों और अन्येक्टरों की देखरेख में कर-वाना, इत्यादि प्रांत को तमाम जिम्मे-दारी इस संस्था पर रहेगी। अपने प्रभाव की रिपोर्ट प्रतिमास समूह को दे के पास प्रेक्षा इसका कर्तव्य रहेगा।

(३) जिला कमेटियाँ का स्थान जिला केन्द्र में रहेगा। प्रत्येक जिले के इन्स्पेक्टर का कार्यालय भी इसी के अन्तर्गत रहेगा। ये इन्स्पेक्टर भी इसके वैयक्तिक सदस्य रहेंगे। जिले के तमाम स्कूलों की, प्राथमिक विद्यालयों की और उद्योगशालाओं की देखरेख करनी इस कमटी के प्राथम्य होगा। यह कमटी अपनी साप्ताहिक या मासिक रिपोर्ट प्रांतीय संस्था को भेजेगी।

ये सब संस्थाएं परस्पर एक दूसरे से इतनी सम्बद्ध रहे और इतना मिल-जुल रहना उम्मेदों का रहे कि प्रति निर्मित देश के अन्दर क्या उचित हो रही है, कहा कहा पर क्या भूलें हो रही हैं। ये सब बातें जिला संस्था से लेकर केन्द्रीय संस्था को भक्तों की तरफ प्रांत्य हो। नियंत्रण के सम्बन्ध में हमको गवर्नमेंट के पोस्ट विभाग का अनुकरण करना चाहिये।

अस्तु ! इतनी बातों का विवेचन करने के पश्चात् अब हम यह देखेंगे कि पात्र बने के अन्दर हम शिक्षा और अन्य-सम्बन्धी योजना को किस प्रकार सफल कर सकते हैं।

### “भक्त-सञ्जीवनी”

इसके मेधन से हर प्रकार के बुझार भया वा पुराना, ताप-निष्कली, निगर, मन्मथि, बहुजमी, भूख का न लगना, कृष्ण, दूध, पौष्टिक, प्रातः, पेट का दर्द, बाय गोल्ला आदि समस्त उदर-बिचार और प्रमेह की भी क्षाम पड़ सकती है। दस वर्ष से हजारों रोगियों पर आजमाये हुए हैं स्वस्थ भी सेवन कर सकते हैं। इनके पर मूल्य सातवामान १) बोलल, हाक-बर्क बल्लन। “भक्त-सञ्जीवनी” जोगीबहा मकान नं० २२२१ (नई सड़क) देहली।

## साप्ताहिक ‘अर्जुन’

### विज्ञापन क्यों देना चाहिये

क्योंकि

(१) यह उम्मेदों के विपरीत साप्ताहिकों में इसका स्थान है। इस के माते के लेख पढ़ने तथा इसकी कथिया तलवीर और देश व विदेश के महान युक्तों के क्लृप्त देखने के लिये जनता में बहुत उत्सुकता रहती है।

(२) यह उत्तरीय भारत के शहरों के अतिरिक्त सभी कक्षों व गांवों में हजारों की तादाद में निकलते हैं।

(३) विदेशों में भी प्रथम संस्था में निकलते हैं।

(४) १० भात, १००० इन्च, ३०० भात, १०० और १०० १०० पदम सी० भात के सभी बड़े २ स्टेशनों पर बीतर पदम कमली आर फरोज होता है।

इसलिये

इस में विज्ञापन देने से जो लाभ तिलजल को हो सकता है उस का स्वयं विचार किया जा सकता है।

विज्ञापन हर बहुत ही उत्तर है। नियमावली के लिये लिखिये—

विज्ञापन मैनेजर,

साप्ताहिक ‘अर्जुन’ देहली।

## साप्ताहिक ‘अर्जुन’ के पाठक

### कृपया नोट कर लें

कि यदि वह जरा सा परिश्रम करके बहुत सा फल अपने काली समय में बहुत से अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त मुक्त प्राप्त करवा सकते हैं तो वह केवल १ साधन विक्रिओं के नाम मय पूरे पते के हमें लिखकर भेजे तो हम उनकी सेवा में एक तिरंगी तलवीर का

१६३५ का केलेन्डर

मय पुरस्कार प्राप्त करने की खूबी मेज देंगे। यदि वह स्वयं ऐक्यत बने अपने तो अधिक लाभ होगा। यह-व्यवहार निम्न पते से करें—

मैनेजर—वीप टूडिंग एजेंसी, कम्प्री गेट, देहली।

मुवाना (मेरठ) में

## ‘अर्जुन’

मिलने का एक मात्र पता

ला० रघुवीरसरन

प्रकाश न्यूज एजेंसी, मुवानाकलां जि० मेरठ।



मर महात्मा अश्वेय  
स्वामी श्रद्धानन्द  
का जीवन त्याग  
और सेवा की  
साक्षात् प्रतिमा  
है। वह जिस  
विद्या में बल

पडा उधर ही उसका स्मारक बन  
गया। उसने एक दिन स्वयं लिया  
था। गुच्छल गिराहा प्रयासी के पुन-  
रुद्धार का धार्यसंस्कृति के प्रचार  
का। वह स्वयं महान था अक्रिया-  
त्मक था परन्तु था आदर्शवाच-पूर्ण।  
उस महान आदर्श के लिये वह मत-  
वाला बना दीवाना बना, मिलारी  
बना। इन्त में उस स्वयं को पूरा  
करन वाला बना। आज गुच्छल उस  
मरवाले महात्मा मुन्शीराम और  
स्वामी श्रद्धानन्द का एक जीवित  
स्मारक है।

भारत के विद्यालय और विश्व  
क्षेत्र में कार्य करते हुए उसके  
द्वार्यों में एक झन्डा रहता था  
जिस पर वह  
श्लोक अंकित  
था—

माह कामव राज्य  
न स्वर्ग नापुन-  
भयम्।

कामये तु कृत-  
तानां मिथ्यानां-  
मतिनाशनम्॥

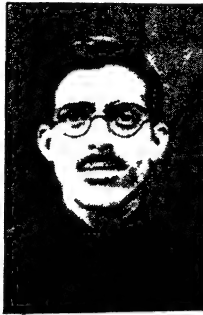
उम न सप्रति  
की चाह थी—न  
स्वर्ग की कामना  
थी। उम एक ही  
चाह थी और  
वह थी कुछ स-  
सतत्त्व प्राप्ति  
के दुर्लो का  
निवारण करना  
उसने जहाँ जि-  
स पर आपत्ति  
के बाद न भयवर्तते  
हुए देखे वहाँ वह

सर्व बनकर चमक उठा और वादलों  
को सितर-सितर कर दिया।

परिवारता केस में धार्य समा-  
जियों की सहायता करना, पोलपुर  
राज्य में समाज मन्दिर के मायले में  
राज्य के विच्छेद प्रतिपाद करना और  
अपराधक करते हुए निर्भीकता से  
खटे रहना स्वर्गीय लाला लाजपतराय  
की धार्यसमाजी बना कर अपराधना  
धार्यसमाज तथा धार्यसमाजियों की  
रक्षा की सदा चिन्ता करते हुए

## स्वामी श्रद्धानन्द

(ले०—श्री धर्मेश्वर उदालकार मन्त्री श्रद्धानन्द दूर)



प० धर्मेश्वर उदालकार

सत्त्वा को सरकार न मशीनमनों में  
मून दिया था उसी जमान में उसी  
अमूलस्वर में इन्डियन नेशनल काँग्रेस  
को आमन्त्रित करना सत्यासी श्रद्धान-  
न्द का हा काम था। रोलन एक  
क जमान में पन्नापर में समीनधारी  
सिपाहिया के सोमन छातो तालकर  
यह कहत हुए ललकारना खवा ड  
गोली बलाश्रो उस सत्यासी का ही  
काम था।

वह साहसी और निर्माक वार  
आप समाज हिन्दूसमाज, सिक्ख  
समाज वा राजनैतिक क्षेत्र में अपने  
महानव्यक्तित्व का एक अमिन् स्मारक  
छोड़ गया है।

महामा मुन्शीराम स्त्री जालि की

## स्वामी श्रद्धानन्द की अमर कृति



गुच्छल विद्याविद्यालय का प्राचीन भवन

क्रियात्मक काय करना उस महामा  
मुन्शीराम वा सत्यासी श्रद्धानन्द को  
ही काम था। जिन सिक्ख माधवा न  
स्वामीजी के विच्छेद एक दिन बना  
आन्दोलन किया था उन्हीं सिक्खों के  
लिय आपत्ति के समय में उन्हीं दे-  
वर्ष की अवस्था में जेल बर्फी। माधो-  
रक्षा के दिनों में फजाब में जब डायर  
ब्रीडवासर का अपराधवार पूर्व आनक  
क्षया हुआ था और अमृतसर के  
अजियम बाला राम में उपस्थित जन-

वरा को देख कर विच्छल हो उठा।  
उमन एक दिन अपनी प्यारी पुत्री  
वकुम्भारी को एक गीत गाने हुए  
सुना— ईसा है राम रमेया।  
ईसा है कृष्ण कन्हैया॥

उस दिन उस महामा में अपनी  
सन्तान को धार्य-संस्कृति का शिक्षा  
में शिक्षित होत हुए देख कर एक  
कम्या स्कूल की स्थापना कर दी जो  
आज 'जाल्पर कल्या महाविद्यालय'  
के नाम में प्रसिद्ध स्वस्था के रूप

सत्त्वा क द्वारा उसन स्वा जालि  
होन वाले धन्याय की दूर किया ड  
स्त्री-शिक्षा व धार्य संस्कृति का प्रव  
किया। वह स्वस्था नी स्वामा ध  
नन्द की स्मारक है।

x x x x

'हिन्दू-समाज का सङ्गठन अ  
एकता उस मन्गसा का एक मु  
मिश्रण था। वह सारा उमर लड़  
रहा एक पुराई क विलोप वह था,  
जात पात और उत-छात। उस  
हिन्दू-सङ्गठन हिन्दू समाज का जा  
पात और छूत छूत पर कुठाराघा  
सिपाहिया के सोमन छातो तालकर  
यह कहत हुए ललकारना खवा ड  
गोली बलाश्रो उस सत्यासी का ही  
काम था।

वह साहसी और निर्माक वार  
आप समाज हिन्दूसमाज, सिक्ख  
समाज वा राजनैतिक क्षेत्र में अपने  
महानव्यक्तित्व का एक अमिन् स्मारक  
छोड़ गया है।

महामा मुन्शीराम स्त्री जालि की  
वीर्यवीर्य धुइ धाव  
को धार्य-समाज  
साथ र समलान-  
समा और काम-  
न भी सुना अ  
किया मक काय क  
किया। विलोप  
वा हरिजनोद्धार  
जो काय अलि  
रह गया था  
आज देख क वृ-  
नता महात्मा गान-  
न सिद्ध करन  
वान कर लिया है  
वास्तव में मह  
माध्या क प्रति  
काय महामा  
सिद्ध कर सकन  
आज श्रद्धानन्द  
लिवान जयन्ता  
अवसर पर ह  
उस महान नन्य  
सा का ला

# भारतीय नरेन्द्रों को भड़काने का असफल प्रयत्न

पार्लमेन्ट के ४३ सदस्यों का महाराज पटियाला के नाम पर महाराजाओं का जवाब

महाराजा पटियाला न गले १७ दिसम्बर को वह पत्र प्रकाशित कर दिया जो पार्लमेन्ट के ४३ प्रमुख सदस्यों ने आपक नाम मज्जा था। उस पत्र के उत्तर में आपन अन्य चार महाराजाओं के साथ जो पत्र लिखा था वह भी प्रकाशित कर दिया गया है।

मन्त्रा का पत्र

सन्तन, ४ जुलाई १९३४

शाय

आपन तथा आपक २५ का सामन क्षतरा उपस्थित है। उम दस्त हम यह पत्र लिखन का साहस रहे है। हम समझते हैं कि आप १ आपक सा २ अन्य महाराजों पर पत्र प्रस्तावों को कुछ भय बग का की दृष्टि में देखते हैं। हम एको विश्वास दिलाते हैं कि इस का एक बड़ा भाग भी इस योज को पला है। समझता है। हम १ इस योजना को पार्लमेन्ट में पास होन दे। क लिय करिये है।

आप नरेन्द्र महल क बांसलर ओर अपनी स्टॉडिंग कमन का द म खत का निवारण कर न है। ब्रिटिश सरकार का ऐलान क वह आप लोगो का सहमति बिना इस योजना को लागू नहीं की प्रान आप इसका विरोध कर भय द कर सकत हैं। हम जानत क आप पर इस सुधार योजना क स्वीकार करन क लिय दयाव भा जा रहा है। यदि आप दयाव भा जायग ता आपका नाश निमित्त क ओर यदि आप दयाव में नहीं मने तो भय की कोई बात नहीं है।

अ आपको विश्वास दिलाते हैं इस देश में 'हान्स्पर' का विराध रहा है। अनुसार दल का जो वर्तमान काम में सरकार का बला है। बड़ा भाग खुल तार पर या दूर ही अन्दर इस योजना का रोषी है। यदि इनको मान्य हो य कि आप लोग भी इसक विरोध हैं तो निश्चय म पार्लमेन्ट द्वारा लकी बिजय होनी। आपको भारतीय २ समूहों राजाओं को विश्वास



महाराज पटियाला

दिलालों चाहते हैं कि यदि आप आपन नियम पर दूर रहेंगे तो हम आपका पुरा सा २ देग और सन्नद्ध के साथ आपक प्रतिज्ञात सन्तनों पर कोई धाव न धावनी।

हस्ताक्षर—वर्त्मन्सिंह क इयुक् वक्ताच क इयुक् पयोली की इकज हानि गटन की माविषस बातकाऊसट फिन्ज एलन विस्काऊन्ट बटिस, विस्काऊन्ट लिमिगटन, विस्काऊन्ट चपलिन विस्काऊन्ट बाल्वा विस्काऊन्ट हर्पफोर्ड, कनमथर क आर्च विस्दन चविल लाड कार्लन लाई बेनबरी लाई एम्पथिल लाई चाने-बुड लाई लारन्स, लाई इडल्स लाई किलकोर्ड लाई मऊन्ट टम्पल लाई लेकमफील्ड लाई इलिगटन, लाई फ्रीज बोरा, सर हेमरी पेज-काफ सर फ्रान्क ड नोक्स मजर कोटलड सर विलियम वलेन्ड के० एपलिन, सर आर्चिबाड बायड कार्पेटर सर मार्लेस आडगथर, सर रोजर क्दरा, सर जार्ज बोरो, मजजमजरल बनान, लेडी हाऊ स्मन, बार्मिस के अर्ल लाई कार्नवालिस, पीटिक डालर डबर्ट, विलियम्स, सामर विडे, एलन चार्टन, लाई

कैरिगटन, ले० कर्मांडर पीटर एम्ब ।

राजाओ का उत्तर

पटियाला-हाउस नॉं देहली

२८-१०-३४

मित्र-गण ।

आपने महाराज पटियाला की माफक जो महत्वपूर्ण पत्र हमें लिखा, उसके लिये हम कृतज्ञ हैं। १९३२ में न-२-मसहल न उन शर्तों का उल्लेख कर दिया था जिनकी पूर्ति पर हम -२ में शामिल हो सकेंगे। हम देखते हैं कि हाट पेपर में उनमें से कितनी ही शर्तों को पूरा नहीं किया गया है। इन परिस्थितियों में मार्च १९३३ में मसहल न फिर उन विशेष शर्तों को दुहरा दिया था, जिनकी पूर्ति पर ही हम सचयी प्रस्तावों को स्वीकार कर सकेंगे।

यदि सयुक्त पार्लमेन्टरी कमटी आपनी रिपोर्ट में इन शर्तों को नहीं मानगी तो हम पुनः अपनी राय कायम करन में आज्ञाद होगि।

हस्ताक्षर—मुर्रेट्सिंह ( पटियाला ) उद्यमोर्गसिंह ( पौलपुर )

एस० एस० अन्वासो ( बहावलपुर ), वरुन्मसिंह ( पन्ना ), राजेन्मसिंह ( मालवाबाग ) ।

## क्रिसमस सेल

८ दिन का आश्रित कलाक गारुष्टी ५ साल



एक आला ४२५ क मन्त्र अन्वासि में ८ दिन में बाबी लगा । होती है। वडे न क ब डे में बजने वाला मन्त्राहार डायक मय सुन्दर आधुनिक डिजायन के दिवसों ५ सुर्वा के। मुन्त्र

८११ आयल साख १६x१२ इ॥) अन्यक घड़ी के लिये ६) पेशगी मेजें । आर्डर के साथ रखने स्टेशन का नाम लिखें। ई कलाक एफसाथ डेने पर वैकिंग माफ ।

मिस्त्रिस्ली इन्डिया नाच क० पो० बक्स न० १ (मैकमन स्त्री) कलाकसा

निर्भयता का साधन, मकट का मित्र, बदमाशों से बचानेवाला मकट से मुक्त करने वाला, मिना लायसेन्स के रखा जा सकता है।

## भयङ्कर हथियार

“आटोमेटिक रिपीटिंग अलार्म पिस्तौल” (रजिस्टर्ड)

जिम के लिय मी बक्का और वमा म लायसेन्स की जरूरत है



जिम में दिखाये गये पिस्तौल की दूरत दो इतनी भयकर है कि देबन वाला घबरा जायगा। इस में एक समय लगातार छूटने वाली १० गोलियाँ मरी जा सकती हैं। इतक बार मरने की जरूरत नहीं। जब जरूरत पड़े तब बोझ दबाते ही एक कार्ट्रिज बाहर आ जाता है और उसी समय एक और के चक्के की आवाज होती है और सुनत ही इसक प्राणी ओर बदमाश लाग आत जात हैं। बाटक ओर सिनेमा कम्पनियों में य काम में लाए जात हैं। जगह में वरीमें खेतों में दूरत वालों के लिये, उसी प्रकार रुपये साथ में लेकर प्रवास करन वालों के लिये यह अत्यन्त उपयोगी साधन है आज ही एक म्नाहय। अपनी जेब में या बिस्तर के नीचे रखिये, समय पर काम में लाए। यह आप की रक्षा करेगा। हिन्दुस्तान, सीलोन या अन्य किसी देश में इस के लिये लायसेन्स की जरूरत नहीं है-कीमत ५) सात रुपये, पोपो० पीलेज ॥) आठ आन । अन्यक पिस्तौल के साथ ३० गोलियां और उपयोग की पीटि युक्त में मिलेगी। अधिक गोलीयों की आवश्यकता हो पडे ३० गोलीयों के लिये ४) एक रुपया लागे। अनेक सारटोपिनेट मिले हैं।

दिलावर कम्पनी (१८४)भुलेश्वर कबुतरखाना, कर्वाई नं० २

## मालवीय जी इङ्ग्लैण्ड जायंगे

विश्वकत-रूप से बाबा हुआ है कि पं० मदनमोहन मालवीय आगामी फरवरी मास में इंग्लैंड जायंगे। वहाँ आप उपा० पार्लो कमेटी की रिपोर्ट लिखित: सामयवधिक फंसले के विवेक आलोचन करेगें। सम्भवतः आप एक डेपुटेशन के नेता बनकर जायंगे। उपदेष्टा में कौन होति—इस सम्बन्ध में विचार किया जा रहा।

## रूस और फ्रांस में गुप्त सम्बन्ध

लखनऊ के 'स्टार' पत्र में प्रकाशित हुआ था कि फ्रांस तथा रूस ऐसी एक गुप्त सन्धि हो गई है कि यदि जर्मन रुस पर आक्रमण कर तो फ्रांस रुस को ४००० मिलियन फ्रैंक के शस्त्रास्त्र देगा और यदि फ्रांस तथा जर्मनी में लड़ाई हो जाय तो रूस फ्रांस को इतन ही सुस्त्र का भ्रम देगा और दोनों देश परस्पर द्वन्द्व तथा सैनिक कमीशनों का सम्बन्ध-बदल कर लेंगे।

सत्यजन के रूपी राजदूत न तथा पेरिस के जानकार हलकों में इस सामन्तवा का प्रतिवाद किया है और बताया है कि फ्रांस तथा रूस में केवल इतनी सन्धि हुई है कि दोनों देश किसी तात्पर राष्ट्र में बिना एक-दूसरे की सलाह लिये कोई सन्धि न करेंगे।

## अहमदाबाद में आम हड़- ताल होगी ?

बाबा हुआ है कि स्थानीय मिल-मालिक संघ न केवल रात की अग्रजीवी का मुकाबला करने के लिये एक युद्ध-समिति की नियुक्ति की है। श्री कल्लुप्पार लालभाई तथा अन्य ४ मिलों के एजेन्टों को युद्ध-समिति का सदस्य बनाया गया है। अग्रजीवी-संघ द्वारा ग्राम हड़ताल की घोषणा किए जान पर यह युद्ध-समिति हड़तालियों के प्रयत्नों का भरसक मुकाबला करेगी। समस्त मिलों से हड़तालियों का मुकाबला करने के लिये चम्पा एकत्र किया जायगा और उस मिल को भावजें रूप में सहायता भी दी जायगी, जिसे हड़तालियों द्वारा नुकसान पहुँचाया जायगा।

## सप्ताह की हलचल

### कौंसिलों में रिपोर्ट की छीछाभेद

#### पंजाब कौंसिल में रिपोर्ट अस्वीकृत

५० पी० कौंसिल में गरामागम बहस

ज्यायन्ट पार्लामेन्टरी कमेटी की रिपोर्ट पर प्रतीय कौंसिलों में बहस हो रही है। पंजाब-कौंसिल न तीन दिन की बहस व बाद प्रस्ताव स्वीकार कर लिया कि इस कौंसिल की राय में ज्यायन्ट पार्लामेन्ट कमेटी की रिपोर्ट भारतीय आर्काइवाओं की पुष्टि नहीं करती।

बहस में अनेक सदस्यों ने बहुत छद्मे भाषण दिए। पी० अरजल-हक ने कहा कि इंग्लैंड क चर्चित न हमें इतना डर नहीं, जितना स्थानीय कौंसिलों क चर्चित न है। इस रिपोर्ट में भारत को ऐसी कोई चीज नहीं मिलती, जिस पर वह गर्वानुभव कर सके। थो० हबीबुल्ला न रिपोर्ट का अपर्याप्त असन्तोषप्रद और निराशाजनक बनने हुए इस पर किए गये अनेक व्यय के लिये भी अप-सोस आह्वित किया। सर्वदूर सम्पूर्ण-सिद्ध न सामयवधिक निर्णय का विरोध किया।

५० पी० कौंसिल

५० पी० कौंसिल में भी रिपोर्ट पर विचार हुआ। अधिकार्य वक्ताओं न रिपोर्ट के प्रति असन्ध ही प्रकट किया। डाक्टर बल्लवत् सिंह न कहा रिपोर्ट का पन्ना-पन्ना भारतीयों के प्रति अहिंसा से भरा हुआ है। डाकिज सुभद्रम् इमादीम न कहा कि सर्वोत्तम सरकार को सद्भाव हा न हो सकता है। मि० चित्तामणि न रिपोर्ट की धृष्ट छीछाभेद की ओर कहा कि नय विधान न तो वर्तमान स्थिति ही अच्छी है। परन्तु कार्य-समर्थ न अंत में कहा कि चाहे तीन दिन तक गुलामाबाद कर लो, अंत में हम मानोगे ही।

बंगाल और मद्रास कौंसिलों में भी रिपोर्ट पर विचार हो रहा है। सीमाप्रांतीय कौंसिल की लास बैठक इस पर विचार करने के लिये जुलाई जा रही है।

#### हाउ आफ लार्ड्स ने रिपोर्ट स्वीकृत होगई

हाउस आफ लार्ड्स न बहुमत से ज्यायन्ट सिलेक्ट कमेटी की रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया। लार्ड सेलिस्बरी ने बहुमत दल की ओर से जो संशोधन रखा था, वह

६० के विपक्ष २३१ के भारा बहुमत न गिर गया।

लार्ड लिनलिथगो, लार्ड सैंकी और लार्ड रीडिंग आदि प्रमुख वक्ताओं न रिपोर्ट का समर्थन किया।

लार्ड रीडिंग न रिपोर्ट का समर्थन करते हुए कहा कि

पहले मुझे भय था कि ३८ करोड़ भारतीयों के सुधाबने में थोड़े से अग्रज के न डर सकेंगे, लेकिन राजाओं के सम्मिलित होने में वह भय जाता रहा है।

प्रस्ताव को पास कराने के लिये नय नये लार्ड लाकर बिठाये गये हैं, यह कहत हुए मजदूर दल न किसी तरफ भी वोट देन से इन्कार कर दिया।

## भागलपुर में भूकम्प

१६ दिन० को सवेर ४ बजे यहाँ कुछ सैकड़ तक हलका मा भूकम्प आया, पर जान-माल के नुकसान की कोई खबर नहीं मिली है।

## डा० सत्यपाल को मजा

ता० १७ दिसम्बर की शाम को ४ बजे दहली एडीशनल मजि० मि० पुल न डा० सत्यपाल को राज-द्रोहात्मक भाषण देने के अपराध में १ वर्ष सख कैद की सजा दी। सुना है कि वे अपील करेंगे।

—:—

## हाथ-कुटा चावल, हाथ-पिमा आटा और गुड़ खाओ

पं० भा० ग्राम्य उद्योग संघ का कार्यक्रम

अ० अ० ग्राम्य-उद्योग-संघ की प्रथम-समिति न एक अपील निवाला कर अपने तात्कालिक कार्यक्रम पर प्रकाश डाला है।

बोर्ड की एजिनिसर्वा स्थापित करने की बात एक और रख कर इसमें जनता से फिलाहाल यह कहा गया है कि हाथ-कुटा चावल, हाथ की चकी से पिये घाटे और गावों में बने गुड़ का व्यवहार बढ़ायें जाय। तल पानी का ज्विरा अच्छा होता है या

मिल का, इस बात में तो अभी राय एकत्र की जा रही है, परन्तु हाथ-कुटे चावल हाथ-पिम आटा और गुड़ के बार में तो ऐसी बहुत सी राय मिल चुकी है, जिनम निम्नवत् है कि मिल के पोलीशवार चावल, मिल के पिये घाटे और मिल में बनी शकर में वे ज्यादा उपयोगी हैं। यदि इन सलाहों पर ध्यान दिया जाय, तो ग्रामों को अधिक लाभ होगा और तन्दुस्ती पर भी अच्छा असर पड़ेगा।

## गांवों की मफाई

साथ ही बोर्ड की यह भी हकूक जाहिर की गई है कि सफाई का काम ढीला नहीं छोड़ना चायिये। पड़े-लिपे का गावों में जाकर सीध-साध तरकीबें म गावों की सफाई बनाने, पालाना पेशाब के लिये नय सुधार हुए उपाय करन और दुधौ-लाहवों के पास करन तथा ग्रामीणों को पानी के उपयुक्त उपयोग की शिक्षा देने क काम करना चायिये।

## ग्राम्य एजेन्टों के नियम

सहायता जी का वक्तव्य

अ० गावों न एक वक्तव्य में कहा है कि नर पास छुड़ेक ऐम आदिमियों व पत्र आय हैं, जो अ० भा० ग्राम्य व्यवस्था संघ के लिये बढीर एजेन्ट मुफ्त काम करन क लिये तैयार हैं एजेन्टों की दूरदर्शिता निम्न प्रकाश होगी :—

(१) एजेन्ट को सेन्ट्रल आफिस कार्यक्रम पर चलना होगा। (२) ग्राम एजेन्ट को अपने इलाके के गाँवों स्वास्थ्य व सफाई का भया रखना पड़ेगा। (३) ग्रामो व फोल्डर उपयुक्त क लिये बाजा तलाश करन पड़ेंगे। (४) अग्रज व ग्राम इलाका को लोकमत कार्यक्रम क पक्ष में करना होगा। (५) उ ग्राम्य काम क लिये चम्पा एक करन की इजाजत होगी। न्यत्र आफिस न कोई सहायता भिजेगी। निजी लखें व लिये व का संपत्ति इस्तेमाल करन की दृष्टि जत नहीं होगी। (६) एग्रज ग्राम्य-वेम का डाक डीकर हिल रखना होगा। (७) उम इस बात न इजाजत होगी कि अग्रम काम क के लिये वेतनयोगी आदमी रखे (८) सेन्ट्रल आफिस उसके कार्य निरीक्षण करगा। (९) प्रति मास ग्राम कार्य के रिपोर्ट नम् आफिस १ कम्पनी सेंगेगी। (१०) यदि इस सम्बन्ध में कुछ गद्द होगी तो एजेन्स तोहू ही जायगी



## साप्ताहिक डायरी

मधुपुरा की खबर है कि १२ सशस्त्र डाकूओं ने शाहदरा इलाक के दो ग्रामों में अचरजस्त आके डाले। पहिला मुबारकपुर क एक मालदार जमींदार के घर तथा दूसरा उमो-हामर क साहूकार की दुकान पर डाले।

—पटना का समाचार है कि स्विटजलैण्ड इन्टरनेशनल वाल डिप्लर सर्विस तथा बिहार रिलीफ कमिटी की ओर से २००० पौडित परिवारों के लिये मरान बनवान की योजना तैयार की जा रही है।

—सादौर न खबर आई है कि बहावलपुर के नवाब न आब निगाली है कि सब कर्मचारी चाहे बिन्दु तुलसलमान या ईसाई हो, तुर्की टोपी पहन कर इफ्तार में भागा करें।

—फोनार (लियुआनिया) का सन्देश है कि १-५ माजियों क बिस्व कोट मारल आज आरम्भ होगा। उन पर सशस्त्र कालि द्वारा लिखुआनिया का एक भाग जर्मनी को न जर्मनी क नाजी दल न युन सन्मन्ध रखन का तथा आतकवाद क अभियोग है।

—मि चाहता हू कि जिन व्यक्तिओं न अपन नाम बतोर एजन्ड क म हरन क लिय, मर पास भवे हैं, वे श्री कुमारिया वधा म पव यवहार कर। स्मरण रहे कि प्रकथ तोई किनी पञ्चद को भा आधिफ नहायता नहीं ग्गा।

## सुवारों को मत ठुकराओ अन्यथा कुछ भा न मिलेगा

वायमराय का भाषण

वायमराय आजकल मलकने रें और लमाओ सम्मलनों व पार-रु म व्याख्यान रे रहे हैं। १८ इस्मर को एक भाषणा में 'वायम' लर्मेटरी कमेना नी रिपोर्ट का भाषन करते हुए भारतीयों का यह धम्मकी दे दी कि प्रस्तावित प्थारो को स्वीकार न करना भारत न इनिशियत काल क लिय र्मेवान वस्था में रखना हे अर्थात यदि व अस्वीकृत किया गया तो कोई थार नही मिलेगा।

—जबलपुर का समाचार है कि बु पी पुलिस के एक सिपाही के मधिक-पुर में किसी मामले की बीज के लिये कुछ आधमियों के नाम लेते करने पर लोगों न उसे पीटा। सिपाही जाल-बाकर धान में भागा। धान से कुछ सिपाहियों व अफसरों का दल घटना स्थल पर पहुँच कर कुछ गिरफ्तारियों की जिस कारण ठुकरावारी न ४ रोज की इन्ताल कर दी। अब मजि-७ व सु-७ को समझान से खुल गया है।

—मेरठ बयन-केस क मृतपुर्न कैदी श्री फिलिप स्ट्रेट को १५ दिन तक हिरास्त में रखन का हुक्म दिया गया है। आरको कल रात इमर्जेन्सी पावरलै एक्ट के अनुसार गिरफ्तार किया गया है।

—पञ्जाब कौंसिल के देहानोदल (रुल पारटी) न पञ्जाब कर्जा बिल पर गवर्नर की की हुई निकारियों स्वीकार करली हैं। फ्लैट, २१ ता-० के कौंसिल में स्वीकृत हो गईं। सरकार क साथ मिल कर देहली नूलेन सल्लकारी की सब मर्गों को ठुकरा दिग।

—भारत प्रजा नखदार बहादुर मोहनसह (पञ्जाब लेजिस्लेशन कौंसिल के सदस्य) को इक्षिया कौंसिल का सदस्य नियुक्त किया है। सरदार बहादुर कर्वा १९३४ क आरम्भ में अपनी कार्यभार सम्भाल लेंगे।

—अठक नामक एक व्यक्ति को छ नला रिवाल्वर तथा छः करतूस रखन के अभियोग में जी बच व सल सब काराईकोर्ट में मिली है।

—कलकत्ता का समाचार है कि श्री सुभाषचन्द्र बोस को १० ता-० सप्त ७ बजे पुलिस के पहर में मिकल कलिज हस्ताल ले जाया जायगा, क्यों कि वहाँ उन्हें एफसर पगेवा के लिये कार जिन रहना पड़ेगा।

—पेशावर का समाचार है कि श्रीमा प्राल में मर ११ मास में ४८० हत्यायें हो चुकी हैं जिनमें म ३० नवम्बर में हुई हत्याओं में म २० पेशावर में हुई हैं।

—कुरुथला में कलान अजीज अहमद और लैफ्टिनेन्ट साहिक अहमद मर १० को अठ्ठल अजीज के भायों को जिनकी सम्पत्ति कोटें भाक भाई करदी थी, अब बापिस करदी गई है और उन पर से पाब-दियाई हटाई गई हैं।

—कलकत्ते में अब तक १०० डाक-बहाली गिरफ्तार किये जा चुके हैं।

—बेलगढ़ क १५ विसम्बर के समाचार के अनुसार स्कोयल की म्युनिसिपैलिटी ने निष्कष किया है कि धिन्दरों व नाचवारी में रान-मजे करने वालों पर ११ बजे के बाद १ पेनी, छापी रात बाद २ पेनी व सारी रात के लिये बेरोजगारों के पोषक के लिय टैक्स लिया जायेगा।

—मार्सेल की खबर है कि रिया किजी अजोड क हूच जान से २१ आधमियों की जान गई है।

—मुजफ्फरपुर में समाचार आया है कि वहा ४४५ पर तथा माधिकमज (डाका) में १-१५ पर मृक्य के हर २ चक्के माटूम हुए।

—माटूम हुआ है कि सम्मलनः जनवरी क मय में देहली में अ-० मा-० कमिस कार्य समिति की बैठक होगी।

—मास्को स समाचार मिला है कि म्युटुल बोना प्रल के ताम्थला ग्राम में सोवियत अधिकारियों पर आतक जमान का प्रयत्न करने के अपराध के ४५००० की म्युल-दख मिला है।

—इन्दौर में हॉन बाजे अ-० मा-० हिन्दी साहित्य सम्मलन के समाधि-पद् के सम्मन्ध म महामा गान्धी से उत्तर धान पर स्वागतसमित न प-० मन्ममोहन मालवीय को समापति खुना है।

—हरताम्बल (टरकी) का समाचार है कि अनातोलिया प्रात में मयकर मृक्य में बीस आधमी मर गय, सेकड़ों घायल हो गये तथा हजारों वे घर-बार हो गय। य कलियर के आस पास मृक्य के धक्के अब तक आ रहे हैं। वाय-कजूर में भूकान गंभी को नख कर दिया है। रकनास कोसोतरी की ओर म बाधुपानों द्वारा सह यता पड़चारे जा रही है।

—नई देहली में भारतीय व्याप-रिक स-० क फडाला की कार्य-समिति की बैठक ता-० श्रीराम के निवास स्थान पर हुई जिसमें निष्कष किया गया कि उना-० प-० की रिपोर्ट भारत क प्थारियों को अस्वीकार है, क्यों कि इसको सिरारिमें भार-नीय राजनीति में की मर्गों से बहुत कम व हाइर पेपर की योजनाओं से भी गई गीतो है। उमकी राय है कि इन सरकशों में भारतीय व्यवसाय को हानि पड़गी।

—अफन्वर में ११ ताब पोंड सुत धिन्दरों से आया।

मधुपानी में ता-० १५ को सर्वे एक असाधारण इयन भरण-आ-मिच मिल कुय-तालाओं में कमराः पायी घटने-बढ़ने लगा, जिसने वहाँ नहाते हुओं को बग। अमर्षयें हुवा। कुछ कुओं का पानी तो निकलकर ऊपर तक आ गया और फिर बंद गया। यही विचित्र बात मधुपानी के आस-पास के गाँवों में भी हुई।

—विमलप्रसाद जैन के भाई जुगमलप्रसाद को पञ्जाब क्रिमिनल ला एग्जिमेन्ट एक्ट के अतर्गत २४ घन्टे में विल्ली से बाहर हो जाने का मोटिल मिला है।

—लखनऊ में कमिस के भावी अधिवेशन करने की तैयारियाँ शुरू हो गई हैं। लेकिन स्टड अकादमिज आदि सब बात की कोशिश कर रहे हैं कि अधिवेशन आगरा में किया जाय, क्योंकि कराची कमिस ने आगरा में अधिवेशन करने का प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया था।

—सालसा दरबार ने व्यापक लिखत कमेटी की रिपोर्ट को रद कर का निरपेक्ष बिचा है।

—भारत के विभिन्न विभागों में अग्रामन् ल'ताह मनाया गया।

—भारत सुधार-बिल २१ जनवरी को प्रकाशित क दिया जा-या।

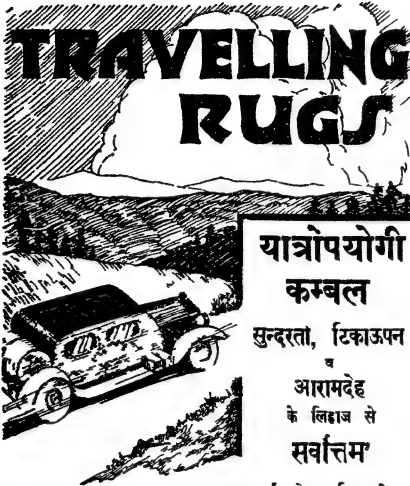
—सरकारी गजट के अनुसार इनिगन टैरिफ एक्ट और रिजर्व बैंक की कुछ धारायें १ जनवरी १९३४ से लागू हो जायगीं।

—एक प्रस्ताव में इरिख क-मस फडगहन की बर्किंग कमेटी न मोदी-बिलियम सम्मनन का बिरोध किया है।

## भूगू महीना कुन्डली

अर्थात् विश्व जन्माष्टमासकर सम्बत् १६०० म १००० तक की सौ वर्षों की जन्म कुन्डली के नक्शह इसमें मिलेंगे और फल भी सही सही मालूम होगा। नष्ट जन्म-पत्रो बना हो सद्योचन कर लो। कई उपयोगी सारिणी और ३२०० वर्षों का कले-ग्रन्थ है, कई समाचारपत्रों में समा-वना की, और सारफिकृत आवे हैं। इस के प्रभाव में ज्योतिषी सिद्ध बन बैठ। कोई कुतूह है कि कर्णपरिभाषि सिद्ध है। हयादि २ भाषा टीका उदा-हरण कलित मूख २) पो० ॥) ४ मास के लिय प्रचारार्थ रियायती मू-२) पो० ॥) है फिर एक सौ को ५१ न मिलेगी पुस्तक थोड़ी ही है। पता—ज्योतिष रत्न प-० अयोध्याप्रसाद मिश्र-मं २३ ज्योतिषी मर्सेर

# TRAVELLING RUGS



**यात्रोपयोगी कम्बल**

सुन्दरता, टिकाऊपन  
आरामदेह  
के लिहाज से  
सर्वात्तम

नाम देख ले

‘मनुने व कार्मिकपुत्री  
विभाग, २० ई० स ग्रास कीजिय

**LALMI**  
FABRICS

स्थायीय प्रतिनिधि —  
५० जयनारायण मिश्र, एजन्टर रोड (नई बाक) गेहली।  
सिपल परब समन ३ ताज चिन्दिह कुजबी बाजार मन्थरी



कानपुर ब्रूलन मिल्स।

482 IPS

## वैस्टरन इंडिया लाइफ इन्शोरेंस कम्पनी लि०,

हेड आफिस—सतारा

स्थापित १९१३

**विशेषताएं**

सर्वात्तम जल्द न होन सर्वोच्च रिजर्व का  
सब म अधिक वाली धारा व लाभव्यय बोनस सब से  
मिलव्यता सूरक्षित घन निविधोन अधिक  
प्रीमियम की दरें कम स्त्री का बीमा होता है  
स्त्री पुरुष दोनों को सम्मिलित बीमा भी होता है।  
वार्षिक किस्त पर २॥ प्रति सैकड़ा कूट  
जीवन बीमा कराने को यही ठीक कम्पनी है  
पूर और के लिय मित्र पते पर पत्र-व्यवहार करें —

वेर्चुन इंडिया लाइफ इन्शोरेंस कम्पनी  
लिमिटेड सतारा।

**मैनेजर**  
हेड आफिस

अलीगढ में  
‘भर्जुन’

कहां मिलता है

(१) मास्टर होटेलाल जी बुकसेलर,  
अचल रोड, अलीगढ़।

(२) सिंगल एन्ड कम्पनी,  
न्यूज पेपर एजेंट, मानिक चोक, अलीगढ़।

(३) मि० बाबुलाल शर्मा,  
न्यूज पेपर एजेंट, अलीगढ़।

## एम्पायर आफ इन्डिया लाइफ एश्योरेन्स कम्पनी, लि०

( स्थापित १८९७ )  
( हेड आफिस बम्बई )

( २८ फरवरी १९३४ का ) समान होन वाले साल का कारोबार )

नया कारोबार	१ ३० ०० ००० ४० में अधिक
आय	७३ ३७ ००० ४० में अधिक
पावना ( प्लेट्स )	४ २७ ५१ ००० ४० में अधिक
दाय अदा किय गये	४ ०० ०० ००० ४० में अधिक
बाल्ड नामा	५१ १० ०० ००० ४० में अधिक

‘यय का अनुपात २२ परसेन्ट पोलासा २२ होन का अनुपात २२ परसेन्ट  
एजन्सी का नियम बड शुल्क क हैं। विवरण क लिय लिखिय —  
दी ब्राच सेक्रेटरी चादनी चोक देहली।

## नेशनल इनश्योरेन्स कं० लि०

हेड आफिस—नशनल इनश्योरेन्स लिमिटेड ७ काउन्सिल स्ट्रीट,  
कलकत्ता।

१९३३ का लेखा

नया कारोबार १ ६७ ०० ००० ४० में ऊपर  
कम्पनी हर प्रकार म उपलब्धील है।  
सब प्रकार का जीवन बीमा मिहयत कम प्रीमियम दर पर किया जाता है।

**विशेषतायें**

विस्था का सम्मिलित स्थायी प्रतिबन्ध पालसिया विद्युन लाभ की  
पोलसिया बर्चा क विवाह व शिक्षा के प्रषध का पाल सिया भी जारा की  
जाता है। एजन्सों क लिय लिखिय —  
महान्नाल निगमदास मि० गुरसतननिवास  
ब्राच म्क टरी गेहली ब्राच गङ्गानिवास एजन्सो छुपरइन्ट लक्षर ग्वालियर  
बाल्मा चोक पो० ब० १०६ गेहली। या मि० एन्० एन्० दास गुप्त बाप  
देलाफोन नम्बर ५१६४ एजन्ट अलाहाबाद सारकल  
८ कलारव गड अलाहाबाद।

भाग, सोर व जासम आदि क बीम के लिय—  
नेशनल फायर एन्ड जनरल एश्योरेन्स कम्पनी लि०  
हेड आफिस—नगमल इनश्योरेन्स लिमिटेड ७ काउन्सिल हाउस स्ट्रीट  
कलकत्ता को लिखें।

देहली एजन्सो —गङ्गानिवास चादनी चोक आर० जी० दाम एन्ड क०  
पो० १००६ देहली। टेलीफोन न० ५१६१ मेनजर।

## भारत के वीर नेता स्वामी श्रद्धानन्द का प्रामाणिक जीवन चरित्र

स्वामी श्रद्धानन्द की विषय जोषनी का अभाव बहुत दिनों से लोगों को खटक रहा था। जिस महापुरुष की अद्भुत कर्म-निष्ठा और अविचल दृढ़ता ने लाखों मनुष्यों के भीतर जोषन का मन्त्र फँका है जिनके अग्रज अग्रमन्याग ने देश की घृतात्मा में प्राण-संचार किया है, जिनके रोमांचकर बलिदान ने देश-वासियों की रग-रग में एक विचित्र सिहरण का प्रकम्पन तरङ्गित किया है, उनके वैचित्र्यमय जीवन की तन्त्राभिव्यक्तिपूर्ण धुनि से देश की जनता अपरिचित रह, उनको संवप-विषमयी लोला क पूर्ण ग्मायुत-पान से पन्थित रहे, यह बात वास्तव में खटकने की है।

इसी कमी को पूरा करने के लिये पं० मयदेव विद्यालंकार ने उनका ग्रन्थ लिखा है और पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने उसका मस्यदन किया है।

### कुछ सम्मतियां पढ़िये—

महापुरुषों की जोशों लिखने का अधिकार प्रत्येक व्यक्तिको नहीं होता। सभी और प्रभावोन्मादक जीवनी लिखने में विद्वत्ता की उनकी आवश्यकता नहीं होती जितनी आवश्यकता होती है चरित्र-नायक के मूल प्राण की सम्मन की। यह तभी हो सकती है जब चरित्र-नायक का हृदय में नयक की व्यक्तिगत सत्ता personality के प्रति सम्पूर्ण सहायुग्रही हो; अर्थात् वह चरित्र-नायक को उसके सार्वजनिक कार्यों की महत्ता में पहचानने की चेष्टा न करके उसके हृद्गत जीवन—उसकी अन्तःभूतिला अग्रभा के अदृश्य मर्मोप-विषय के साथ अपने हृदय की आन्तरिक अनुभूति मिलाकर उसका यथार्थ प्रस्तुत करने का प्रयत्न करे। महापुरुष की जिस व्यक्तित्व की सत्ता में सार्वजनिक कार्यों का निमग्न होना है उस background में डालकर कार्यों को अधिक महत्त्व उदात्त समाचारपत्रों का काम है जीवनी-लेखक का नहीं। जीवनी-लेखक एक प्रकार का कवि है। उन्मै कार्य की आस्था-यत्कि के प्रति अधिक सहायुग्रही होनी चाहिए

इस ग्रंथ में तीन दर्जन चित्र हैं। पृष्ठ संख्या ६५० है। पान्थु मूल्य कुवल ३॥ और उम पर भी

रियायती मूल्य केवल २॥)

आप आज ही आर्डर उकर अपने लिय पुस्तक मंगा लें। इस में अधिक प्रामाणिक चरित्र नहीं मिलेगा।

मैनेजर, विजय पुस्तक भंडार, दिल्ली।

जब जीवन के अग्रन्त मन्त्र-मन्त्र मानव हृदय को छू लिया है, वहा पर एकाग्र लेखनी मूल लेन का मन हो जाता है। हम दाव के माव कह सकन हैं कि सत्यदेव जो को इस पुस्तक से जो सफलता मिली है, हम तो उम ईश की दृष्टि में उल्लत है। प्रत्येक भारतवासी के घर इस पुस्तककी एक प्रति होनी चाहिए। —कर्मवीर।

जीवनी बड़े विस्तार और परिश्रम में लिखी गई है। इस की भाषा बड़ी सुन्दर और सरल है। —श्री रामकृष्ण

इस जीवनी में अनेक इन सब विरसंखित आशायों और भावनाओं को पूरा कर दिया। इस जीवनी से भारतीय जनता के सामुख सत्य ही एक नवीन दृष्टिकोण रखा गया है। जीवनी में जो एक बड़ी खूबी है, वह यह है कि भावि ने अन्त तक जीवन-चरित्र एक सिलसिले में बाँधा गया है। उसमें जो परिणाम निकाले गए हैं, वे कल्पना के आधार पर नहीं किन्तु तथ्य के आधार पर निकाले गए हैं। पुस्तक समाप्त करते ही मर मुख में अनायास व शुद्ध निकल पड़े कि "एन विलोक्न छिगुणा प्रहणे प्रहसिः।" रन की आभा देखकर उसको लेन की शुद्धा दुगुणा हो जाती है। —धो परम

श्री सत्यदेव जी ने उस भार संयासी को इस विविध जीवन को अपनी ऐसी सरस भाषा में लिखा है कि उने पढ़त ही बनता है। सत्यदेव जी गुरुकुल काजी के सुयोग्य स्नातक हैं और स्वामी जी के चरणों में बरसों पिछा लेत रहे हैं, अतः स्वामी जी का जीवन चरित्र लिखन क वे यथार्थ अधिकारी भी हैं। ग्रन्थसमाप्त मात्र सर-कार, राजनीति के विस्तृत क्षेत्र में, गुरुकुल और सरकार, गुरुकुल और महान्मा गांधी तथी अग्रत-पत्र का प्राप्ति प्राप्ति प्रकरा लिखन में लेखक की कवि, विचार तथा लेखनी में एकदम होकर एक विचित्र, मधुर तथा प्रोज्ज्वल साहित्य की सृष्टि कर दी है।

—श्री दीनदयाल शास्त्री



स्वामी श्रद्धानन्द

तभी वह अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर सकता है। विद्यालंकार जी ने जो जीवनी लिखी है उसकी सफ-

लता का हृदय यहाँ पर है। स्वामी जी के वैयक्तिक जीवन के विस्तार पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है और उसका चिल्लेगा बड़ी निष्पक्षता के साथ किया है।

हम भी सत्यदेव विद्यालंकार को उनकी सफलता पर बधाई देते हैं। वास्तव में स्वामी जी के चरित्र और जीवन के चित्र को जिस सुन्दरता से उन्होंने अंकित किया, वह अग्रसमीप है। जीवनी-लेखन को कला में वह पुरतया सिद्धहस्त मादम होत है। पुस्तक की छपाई-सफाई सुन्दर है। बहून-ने चित्र भी दिय गए हैं। पृष्ठ-संख्या प्रायः साढ़े छ सौ है।

—विश्वमित्र

प्रस्तुत पुस्तक में उसके सुयोग्य लेखक ने एक निष्पक्ष किन्तु सहायु-ग्रही बलम में स्वामी श्रद्धानन्द की जीवन की घटनाओं को अंकित किया है। सत्यदेव जी ने अपनी अधिकारपूर्ण भाषा में चरित्र-नायक को जीवन के सब पहलुओं पर प्रकाश डाला है। पुस्तक की भाषा, घटनाओं का वैयक्तिक विश्लेषण तथा सरासरी वक्ता मनोहर है। कहीं-कहीं लेखक ने

# अर्जुन

सचिव-साप्ताहिक

वर्ष १

अङ्क ३

॥ अर्जुनस्य प्रतिष्ठे द्वे, न देव्यं न कलायनम् ॥



लाला भीराम



स्वामि परमहंसयोगानन्द स्वामी



मि० भारेश हिण्डरान



डा० रामपाल

वार्षिक मूल्य ३॥० ]

सम्पादक—

{ इन्द्र विद्यावाचस्पति  
कुष्माण्ड विद्यावाङ्मन

[ डा० अक का शुद्धय ]

## विषय-सूची

पृष्ठ	पृष्ठ	पृष्ठ
सनातन प्रभु गुरु विप्र	सुख पृष्ठ	
सपना	३	
मि० आर ड ड स्न	४	
बगवात रविना	५	आ विनन्दनाथ मिश्र निगुण
नाग युगा हर अत्र ना जाग (कावना)	६	हिलगी भलावलपुरी प्रेमी
वागा का भूतार	६	
भारत का पंचवर्षाया आयोजन	७	आ चन्द्रराज भगवती
हमारा विवाहना	७	
लिपिक कर्मगार रिपोज	१०	
हिन्दु धर्म म तलाक	११	आ विप्रेरना १ ममा बी० ए० एल० बी०
आय-व्यय निवर्तन रिपोज	१२	ओ दलाय व बा जालक पम प एल एल बा
मुगल काल न सम्पत्ति	१४	
शुद्ध अत्र प उड परिधान	१४	
भ्यास प पुजा	१५	
रामाय	१७	
विश्व चि य	१८	
हसी निङ्गा	१८	
हमारी विवाहला (२)	१९	
मरला (कन्या)	२०	ओ ग्रीकारला व गुप्त निनकर
प्रकृति म शिना ला	२१	
साहि प सम्पादा उन	२२	
भाषा बिलगहन का पत्र-व्यवहार	२३	
बुद्ध म परम्परा	२४	एक परम्परी
सनातन का इलकल	२५	
सनातनिक डायरी	२६	

— ० —

## दपित रुधिर का स्वच्छ करने की महान दवा

**‘क र्नि क’**  
**सारसापारिला**

यन आनमाइ १ गन है पमकामन बन्धनियों क मिश्रण मे नयार १३५५ चाला है यह जाब का मोसिम इसक लिख शुद्धकारक है काफ़ी १ मुर्गला गमा सुचाक तमाम बिकार दूर हो जात है । कामन प्रात गागा १) २ गीगा २॥) खच अलग ।

## कर्णिक दाद का मरहम

कना हा न गुना नद क्या न हा कवल ३४ बार लगान स आराम हो जाता है । कामन १ डबा १) ३ डबी २॥) खच अलग । दश क हरएक नकाल पर मित्रा ।

पता - कणक ब्रादर्स, गिरगाव बम्बई

## बीमा संसार में एकदम नईवस्तु!

देख और मानवसमान की सेवा म नई योजनायें !

मकान बनाने क लिय कर्ज की सुविधायें !

परिवार के भरणपोषण क सुलभ उपाय ! आदि आदि

## ओरायन जीवन बीमा कं० में हैं

इसक डायरेक्टर उच्चकोटि क देगमवक और कार्य में दक्ष व्यक्ति हैं ।

इसका सचिवलन प्रतिष्ठित और प्रयोग्य व्यक्तियों के हाथ में है

ईड आफिस—ग्रजमेर

## शाम्बायें व एजेन्सी दफ्तर

बम्बई बा० गोपीलाल कदोई २६६ कालबागिची रोड

न्यावर—बा० राजमल कावलीवाल पोपचिया बाजार

गन्धी—मसल रामस्वरूप राधावल्लभ

कानपुर—बा० मरायमबिहारीलाल प ड रोड

नहराब—बा० हरिश्चन्द्र जन पट्टन बाजार

नहला व पजाब मि० लक्ष्मनस्वरूप भटनगर ४२ यचकुई रोड नई नहला

जयपुर सा० भवरलाल ना बोहरी अजायबघर का रास्ता

कोला मि० किशनकशोर प्रान्त ग्धुर महाराजकुमार साहिब

कोटा मि० मूलचन्द मोक्षिया चोगान रो

नसाराब द—मि० भ्रम लाल दादयावल्ल

रोहलक—बा० जयप्रकाश जैन व गगन मुहल्ला

सिन्ध मि० भगवानदास नरमलदास हदराबोद ( सिन्ध )

## दांतों के रोगों को अपूर्व दवा

हर रोज दांतों को साफ करने के लिये—

## दन्त सुधा मंजन

क समान मजन अब तक नहीं

नकल ।। इसक उ दिन के प्रयोग न

दांतों क सब रोग नष्ट हो जात हैं

पापारिया मज्झा सं लून का

निकलना दांतों का हिलना काइ

से दात का उराब हो जाला सुख

सला का दुर्गन्ध का आना और

हर प्रकार क दर्द हो दूर कर क

दन्त सुधा मजन मनुष्य क दुखमय

आवन को सुखा बना गता है ।

साध हा यह मजन एक और मजन

न दात क पीनपन को दूर कर क

मोती जेसी चमक ला दातो है

इतना होन पर भी पूर्य हो आंस की शीशी का केवल ॥०॥ एकदम

खरोद न वाला क चित्त कमीशन दिया जायगा । एजेन्सी नियम

अगान पर भजे जात हैं ।

मैनजर, विश्व सुधा कार्यालय,

( ‘अजु न’ कार्यालय के ऊपर ) नया बाजार, देहली ।



## क्वामीर और मस्से पर उत्कृष्ट इलाज



कैसा ही क्वामीर हो आराम

होता है । लून बढ़ना बन्द

करता व पाव आदि का

आराम पहुँचाता है ।

अनकों बरसोंला में इस दवा का प्रयोग हो रहा है सुप्रसिद्ध यूरो-

पियन सरजन व फिजिशियनों न इसकी प्रशंसा की है । किसी भी औषध

विक्रि ता स खरीदिय । सब एजेन्ट—बेकीराम पराड आर्से अमरावली लाहौर

# अर्जुन

रविवार, ता० १५ दिसम्बर १९३४ ई०

कार्त्तुमस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्

## राष्ट्रीय मुस्लिम नेताओं से निवेदन

भारतवर्ष इस समय एक बड़े मालात्मिक संक्रमण में से गुजर रहा है। सदियों तक हम ऐसे वायुमंडल में रहे हैं, जो आधुनिकता के अग्रगण्य से अनुरूप था। मुसलमान राज्य काल में यह वायुमंडल और भी अधिक गहरा हो गया। राजा और प्रजा का जेठ-पण्डित रचनाओं से सीमित था, इस कारण राजनीति का स्वर्ण धार्मिक स्वर्ण के रूप में परिलक्षित होता था। जो व्यक्ति राज्य से दूर हो करता था, वह प्रायः राज्य के चमड़े का भी वर्गी बन जाता था। इस प्रकार राजनीति उल्ल-गुल्ल में से गुजर कर भी ममकालीन भारत धार्मिक रक्षितोय से ढाँके जा सकत। परन्तु भारत में अमजी का कल्पित होन क सा ११ वीं परिस्थिति बदल गई। यदि वक्ल हो चर्म होते एक राजा का और दूसरा प्रजा का तो परिस्थिति बेसी ही बनी रहती, राजनीति का रंग धार्मिक ही रहता। परन्तु राज्य का चर्म ईसाई है, और प्रजा हिन्दू, मुसलमान, पारसी आदि कई भागों में नियुक्त है। राजनीति और चर्म की सीमाएँ एक नहीं रही। उनमें बहुत अन्तर हो गया। मिडिल एस्ट में १४ परिस्थिति को बहुत शीघ्र परिवर्तन किया और भारत में मिडिल एस्ट को धार्मिक रक्षित से एकसाद होन बनाने का यत्न किया। यद्यपि मिडिल एस्ट से अब तक ईसाई प्रभाव को सफलता मिली नहीं है, जो भी व्यवहार में सरकार किसी को सफलता का कारण नहीं बनाने देती। एक अमेजु भारतवर्ष कायन को ईसाई का वादी अमेजु कायन को

राज्य करता है, ईसाई सामग्य कर नहीं। इसका प्रथम कर्मचारी वह है कि जो पोरब की जातियाँ बचपी राजनीति की धर्म से सर्वथा अलग कर चुकी हैं। एक अमेरिकी ईसाई की राजनीति में भी ईसाई बन कर प्रवेश नहीं करता, केवल अमेरिकी बन कर प्रवेश करता है। उसकी सांसारिक समोचनता ही नैतिक बल राष्ट्रीय बन गई है। इसी कारण वह भारत में भी नैतिक और राष्ट्रीय दृष्टिकोण में ही शासन करता है। वह भारतीय-सिद्धि को एक अधीन देश के व्यक्ति सामग्य कर जन पर राज्य करता है। उन्हें ईसाई भिन्न प्राणी समग्य कर नहीं। भारत से ब्रिटिश राज्य की सफलता के अग्रक कर्णों में न एक यह भी है। यदि अमेरिकी ईसाई दृष्टिकोण से भारत का शासन करता तो भारत की प्रजा कमी की एक होकर छले विद्रोह के लिये तैयार हो चुकी होती, क्योंकि भिन्न तो वह सर्वार्थ ईसाई और ईसाई भिन्न को हो जाता, जिसमें हिन्दू मुसलमान पारसी सब एक हो जाते। परन्तु वही दूरस्थिता से अमेरिकी न भारत शासन से धार्मिक दृष्टिकोण को बिना कर लिया।

इस परिस्थिति के कारण भारत-वासी धर्मों की प्रतीति बहुत निरर्थक हो गये क्योंकि जहाँ अमेज भारत के शासन में वक्षल राजनीतिक स्थिति का देखते थे वहाँ भारतवासियों धर्म की उच्च मध्य कक्षा में धार्मिक वातावरण में विचार रहे थे। प्रथम सारे भारतवासियों ने केवल एक ही धर्म के अन्तर्गत वाले लोग थे हुए होते तो कोई हानि न होती, परन्तु हमारे धर्मों से भारत के अन्तर्गत धर्म हैं। धार्मिक स्थिति से भारतवासी विचार रूप में यदि धार्मिक स्थिति मुख्य रहे तो भारतवासी धर्मों एक न हो सकेंगे। यह केवल राजनीतिक राजनीति यदि से ही भिन्नताओं को सुझा कर एक मंच पर आ सकते हैं। यद्यपि के बिना देश का स्वाधीन होना असम्भव है। अमेज हर तरह से प्रयत्न है। उनका धार्मिक स्थिति राजनीति है यह अनुभव भी शासकों हैं, उनकी यह कक्षा प्रथम पर प्रसिद्ध है।

है, इन सब कारणों के साथ एक बड़ा कारण यह मिल जाता है कि हमारावासी धार्मिक तथा वास्तु-मण्डल में सत्ता ले रहे हैं, जिसमें उनके राष्ट्रीय बन्धन हट नहीं होने पात। अपने जीवन को धार्मिक बनाया एक वस्तु है, सार्वजनिक जगहों के हरेक पहलू को साम्प्रदायिक दृष्टि से देखना दूसरी वस्तु हमारा यह दोष है कि हम अब तक भी मार्ग जीवन सम्पन्धी बाँझों पर से धार्मिक साम्प्रदायिक ऐनक को नहीं उतार सकते। परिणाम यह है कि हम एक नहीं हो सकते। एकता के लिये जो मूल बिन्दु हैं, वह साम्प्रदायिक होने के हट अपने साम्प्रदायिक मतमें जो राजी नामों द्वारा सुलभाने का प्रयत्न करते हैं, जो सर्वथा साम्प्रदायिक है। अब तक हमारा सार्वजनिक दृष्टिकोण धार्मिक या साम्प्रदायिक है, तब तक मिश्रता का दूर होना सर्वथा सम्भव है। स्मरक रसना चाहिये कि राजी नामा मिश्रता को दूर नहीं करता, वह उस पर झुकर लगता है। यदि हम मिश्रता को दूर करना चाहते हैं तो उसका एक ही उपाय है कि हम लोगों का दृष्टिकोण ही बदल जाय। हम सार्वजनिक जीवन में साम्प्रदायिकता को सर्वथा निकाल दें। जब कोई राजनीतिक मामला पैदा हो तो हम अपने को हिन्दू मुसलमान या पारसी न अनुभव करत हुए। केवल भारतवासी अनुभव करें। जब हमें कोई अग्नेज विचार होता है तब हम यह नहीं सोचते कि वह एक ईसाई है, बल्कि यहाँ सोचत है कि वह एक ऐसा जाति का सदस्य है, जो भारत पर शासन करती है। सी प्रकार जब हम किसी भारतवासी को देखें, तो हमारे मनमें यह भाव उत्पन्न न हो हम ईसाई हिन्दू या मुसलमान को देख रहे हैं, प्रत्युत वह भाव पैदा हो कि हम एक ऐसे वयस्वता को देख रहे हैं, जिस पर अग्नेजों की दृष्टिमान है। हमारी दृष्टि राजनीतिक ही होगी चाहिये—सभी भारत का राजनीतिक जीवन में मिश्रता की जड़ को पर किया जा सकता है।

या तो उपर्युक्त की परिधर्तन-समी

भारत वासियाँ भी आवश्यकता है, हिन्दू भी इस रोग क वेम हा रोगी हैं जेम सुसलमान, परन्तु एक बात हमें बच् दुःख मे मानी पड़ेगी। हिन्दुओं में एक ऐसी बलवान् पदा हो गया है, जो सार्वजनिक जीवन में साम्प्रदायिकता को जहर समझता है और जैसा समझता है वैसा करता है। यह हिन्दुओं को प्यारी मे प्यारी भार पुरानी मे पुरानी कृषियों को धक्का पड़ वा कर भी अपन दश की राजनीति को साम्प्रदायिकता से मुक्त करान का प्रयत्न करता है। परन्तु सुसलमानों में अभी ये सुधारक दल का प्रभाव है। कलियों में और ये मेम मोडवालों मे जो अभी व्यावहारिक जेव में नहीं पावे, विद्युद-राष्ट्रीय विचारों के सुसलमानों की कमी नहीं है, परन्तु सार्वजनिक जायम में भेजे होते ही एक सुसलमान में परिवर्तन आ जाता है और वह स्वयं या जहिल सुसलमान जनता के नाम पर कट्टर साम्प्रदायिक बनन की चेष्टा करन लगता है। हम्रा सार्वजनिक जीवन से साम्प्रत्ये से कुछ ऐम सुसलमान नता भी हैं, जिनका इतिहास राष्ट्रीय है, परन्तु एक एम राष्ठीय राष्ट्रियों को क्या करें, जो अपन विद्युद मनोवैज्ञानिक रुप मे सुसलमान जनता का सामन धान न बकरता है। यह हम्रा राष्ठीय जीवन का दुःखद पक्ष है। कि हम्रा ऊच से ऊच राष्ट्रीय नता जहिल सुसलमानो के साम्प्रदायिक सस्कार को गहरी चोट लगान से डरत है। यह बिलकुल खुलकर उन बुराियो के विरुद सामनोन महों करता, जिनके दशका नासमन सुसलमान भारत के राष्ट्रीय जीवन के लिये जरूरनाक वन रहे है। गहरी नींद के दोहर को लिण्डोअरदार बफके की जरूरत होती है। साम्प्रदायिता की भरीम के कारण उत्पन्न भारत-वासियों की इस गहरी राजनीतिक नींद को भी वन तक नहीं तोड़ा जा सकता, अब तक दशकी धार्मिक-साम्प्रदायिक भावनाओ पर बलवान् आघात न पड़े। हिन्दुओं मे ऐम आघात पड़वान वात लोग पदा हो गय है। दुःख की बात है कि सुसल-

## सम्पादकीय विचार

### भारत राजनीतिज्ञों

#### की मिली भगत

ब्रिटिश पार्लियामेंट में जयान्त पार्लियामेंटरी रिपोर्ट के समर्थन का प्रस्ताव स्वीकार हो गया। कहा जाता है कि प्रस्ताव बहुत भारी बहुमत से पास हुआ। पक्ष में ४६१ और विरोध में ४६ मत थे। आज तक बतमान मिनिसट्रल की इतना बड़ा बहुमत प्राप्त नहीं हुआ।

भारत राष्ट्रीय नेताओं को अभी तक एक विशेष भीरता न लगी हो। वह अभी अपने जहिल अनुयायियों के भावों को ठस पड़ जान से घबराते हैं। यही कारण है कि वह एक प्रकार से अनुयायी-विहीन नेता ही बने हुए हैं। नहीं तो क्या यह सम्भव है कि मो० अबुलकलाम आजाद डॉ० अन्सारी और डॉ० मजदूर जैसे नेताओं के रहत भी कार्यसम्पन्न करने के चुनाव में केवल तीन मुसलमान कुटुंबों पर कब्जा कर सकें? और यदि सच प्रतीत तो उन तीनों में से शायद एक का भी श्रेय मुसलमान कांग्रेसी नेताओं को नहीं है। एक बाल अबुलकलाम खाँ को छोड़ कर शायद ही किसी मुसलमान राष्ट्रीय नेता को यह कहन का साहस हो कि उसके मुसलमान अनुयायी हैं। इसका कारण केवल यह है कि वह श्रेय मुसलमानों के सामप्रदायिक कुसंस्कारों की गहरी ठस पड़ जान से घबराते हैं। आगे सारे होकर उन्हें कलकल की हिम्मत नहीं रहन। मुसलमान नेता अपने अनुयायियों को मनोवृत्ति को राष्ट्रीय नहीं बना सके। इस लिये वह उन्हें अपने साथ दूर तक नहीं लेजा सकत। इस तरह कहन का साहस करत ह कि मो० अबुलकलाम या डॉ० अन्सारी का राष्ट्रीय जेष्ठ न मनुज हिन्दू अनुयायियों के अंगेन पर ही ह मुसलमान अनुयायियों के अंगेन पर नहीं। क्या राष्ट्रीय मुसलमान नेता इस शोकजनक परिस्थिति में परिवर्तन करन का प्रयत्न न करें।

ब्रिटिश पार्लियामेंट में क्या हुआ। जरा इसके रहस्य पर तो दृष्टि डालिये। इस प्रस्ताव का सम्बन्ध में पार्लियामेंट में भाग पारिवर्तीय थी, पहली बार मुख्य पार्टी तो सरकारी थी, जिसका नेता सि० बाल्बर्न है। यह अनुदार दल का नाम से विख्यात हैं। दूसरी पार्टी को, जो अनुदार दल का ही एक भाग है, चर्चिल पार्टी के नाम से पुकारा जा सकता है, क्योंकि उसका सब से जबरदस्त वकील सि० चर्चिल है। तीसरी मजदूर पार्टी थी। हमें में पहली पार्टी बाल्बर्नपेर की प्रधान समर्थिका होने के कारण प्रस्ताव में सहमत थी। हाउस ऑफ कॉमन्स में सब से बड़ी पार्टी बनी है।

कहा जाता था कि जब प्रस्ताव पार्लियामेंट का सामन आया, तब उसका बहुत जबरदस्त विरोध होगा। अनुदार दल को एक बड़ा भाग उसका विरोधी है। वह रिपोर्ट को नातिकारी समझती है। यह भी भाशा थी कि मजदूर-दल भारत का प्रथम लेबर पार्टी में प्रस्ताव का विरोध करना क्योंकि वह 'हाउस-पेर' को कार्यकारी समझता है।

सब जोरदार आवाज हुए। सभी न अपनी भाव-शक्ति की परीक्षा दी। जब सम्मति देने का समय आया तब क्या हुआ? मजदूर दल का सशोधन क विरोध में अनुदार दल का सभी सदस्यों ने राय दी, और चर्चिल दल का सशोधन का विरोध करने में मजदूर दल भी शामिल हो गया। परिणाम यह हुआ कि दोनों सशोधन गिर गये और वर्तमान प्रस्ताव स्वीकार हो गया। वस्तुतः वर्तमान प्रस्ताव का स्वीकार हान में तीनों ही लक्षों का हाथ है।

हमें हमें ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की

मिली भगत कह सकते हैं। विराधी दल वस्तुतः वर्तमान प्रस्ताव को मिनसट्रल दल तो उन्हें इसका विरोध में सम्मति न देकर कबल

सरकार के विरुद्ध ही सम्मति देनी चाहिये थी। असली बात यह है कि अगरज राजनीतिज्ञ भारतवर्ष के सम्बन्ध में सोचते हुए कभी उस दृष्टिकोण को सामने नहीं रख सकते जो भारतवासियों को बिल्कुल स्वाभाविक प्रतीत होता है। प्रथम तो यह कि इंग्लैंड का कोई राजनीतिक दल भारत के प्रश्न पर जीत-हार या जीत-भ्रष्टाचार की लक्ष्य नहीं कराना चाहता। भारत को पार्टी की जड़ से बाहर रखा जाता है। भारत के सम्बन्ध में यहाँ तक तो उचित समझा जाता है कि शास्त्रिक सम्मति प्रकट करनी आय, परन्तु वह अत्यन्त आवश्यक और अनुचित समझा जाता है कि उस पर कोई पार्टी जीत-हार की बाजी लगा दे एक प्रकार से भारत के विषय में उसी दल को मीति चलनी है, जो इंग्लैंड की राजनीति में प्रचल है। दूसरे दल उस पर टीका तो कर देत हैं परन्तु चिन्तकरी नहीं होत। पार्लियामेंट में रिपोर्ट सम्बन्धी प्रस्ताव पर जो बहस हुई, उसमें भी यही सत्य दिखाई दिया, देखन में कुत्सी थी, परन्तु वस्तुतः पहलवान आपस में मिल हुए थे। दोनों दलों ने सकार की दृष्टि में सरकारी प्रस्ताव का विरोध किया परन्तु दोनों ही दलों ने एक दूसरे के विरुद्ध सरकारी प्रस्ताव का समर्थन किया। परिणाम यह हुआ कि सरकार की जबरदस्त जीत हुई।

इस बहस का सम्बन्ध में कुछ बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। सि० गम्मेकडाल्ड साहिब भोग रहे। सि० लायडजार्ज अपने बहुत बाज्यों सहित अनुपस्थित रहे। मजदूर-दल का विरोध प्रत्यय यही तर्क प्रस्तुत रहा कि भारत-वासियों को आप्रान्ति-शक्ति स्वर उस देश का वास्तव किया गया था वह पूरा क्यों नहीं किया गया। आत्मनिर्णय और पूर उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की कोई सर्वा ही नहीं थी। भारतीय दृष्टिकोण तो किसी की दृष्टि में ही नहीं था।

कुछ भारतवासी बीच तक ही विचारत की ओर दृष्टि गाड़ रहे हैं। वह कभी तो मजदूर-दल से आशयों बाधन लगते हैं, और कभी उदार दल से। अगरज भारतवर्ष के लिये नमान हैं, वहाँ वह किसी भी दल के सदस्य नहीं। उनके लिये इंग्लैंड और इंग्लैंड का समग्रक जगती साम्राज्य सब से प्रथम है। भारतवर्ष उनके लिये गौरव है। पार्ल-

मेन्ट की ताजा बहस से यदि कुछ बात सिद्ध हो रही हो तो यही है भारतवासियों को किसी अगरज के मुँह की ओर न देख कर केवल अपनी मुआयों की ओर ही देखना चाहिये।

### रिडियो या रोटी

हमारे सम्प्रदायता तथा प० नरदेव शास्त्री के लेखों ने सर्व साधारण का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है कि दहरादून के जिले में आध्यात्मिक का स्थान बना, और देवता में रिडियो का प्रथम किया जायगा, जिसके लिये भ्रम के लोगों को तरह-तरह की लक्ष्मीयों में उद्यत किया जा रहा है। आमवासियों ने कहा जाता है कि रिडियो द्वारा उन्हें सुख गान सुनाय जायगे। लेखी कैम कर्जी जाहिय, और रिडियो-बल में कैसे बचना चाहिये—ये-ये-ये मालों के उत्तर उन्हें रिडियो-द्वारा सुनाये जायगे। ये ही सज्ज बाग बिना कर आमवासियों से क्या भी लिया जा रहा है। प्रश्न यह है कि क्या भारतवर्ष के जमींदार या किसान लक्ष्य सत्य हैं कि उनकी जड़ में से रीढ़ियों के लिये पैसा लिया जाय? मनुष्य को स्वयं पहले रोटी चाहिये और फिर कपड़ा। उनके बाद जीवण की श्रेय आवश्यकताएँ हैं। उन आध्यात्मिकताओं के पूर्व ही जान पर शोक की चीजों की बोरी धानी है। रिडियो का नम्बर शोक की वस्तुओं में पीछ है। यह तो धर्मोरो की भी आत्मा ही न नसीब नहीं होता। ये-ये-ये शोक क लिये उन "हादितियों" में पैसा लेना जिनकी आवश्यकताओं की कठिनाता से पूरी होती है क्या अभ्यास है। सत्युक्त मानत की सरकार न क्या सोच कर यह आयोजन किया है यह समझना कठिन है। एक विशेष में राज्य करन वाली सरकार प्रायः चाहती है कि सम्प्रदाय भजन और सचारी ले जान क जितन साधन हैं, वह उतत हो और उतत साधन हैं। रिडियो भी सम्प्रदाय सेजान का एक साधन है। जैसे रत्न और तार शासन को बलान क मुख्य साधन हैं, वैसे रिडियो भी सरकार के लिये अत्यन्त उपयोगी हो सकता है। सरकार बड़ी प्रसन्नता से अपने हाथों को दृढ़ करन क लिये रिडियो लगा सकती है परन्तु उसका कब आत्मनिर्णय पर डोसना कड़ा का न्याय है?

नोबेल प्राइज़ का विजेता

आर्थर हैण्डर्सन

ह गलैड के मि० आर्थर हैण्डर्सन को शांति के लिए प्रत्यक्ष करने के उपलक्ष्य में नोबेल प्राइज़ मिला है। हैण्डर्सन-वार्सी इसमें बहुत प्रसन्न है। योरोप वाले आश्चर्यचकित हैं और भारतवासी भी मेल कर प्रसन्न हैं कि क्या इस सपना देख रहे हैं।

मि० आर्थर हैण्डर्सन ह गलैड की पुरानी मजदूर-पार्टी के एक प्रधान नेता हैं। वह मि० रमन मेकडानल के कार्य साथ हैं। जब तक मजदूर-पार्टी इतनी प्रबल नहीं हुई थी कि वह हगलैड में मन्त्रि-मण्डल बना सके, तब तक मि० रमन मेकडानल एक को बड़े शांति प्रेमी और उन्नति के समर्थक समझे जाते थे। वह अन्तर्जातीय शांति चाहते थे वह पराधीन जातियों के लिए आत्म-निर्णय का प्रयोग चाहते थे वह प्रजावाद् और साम्राज्यवाद के कट्टर विरोधी थे। अग्रज जाति या यों कहिये एंको सैफसन जाति की अपनी विशेषतायें हैं। उनका चरित्र सत्कार से विलक्षण है। उनके स्वभाव में दृढ़ता और धैर्य का राजीमान और धूर्तता का साथ अव्युत्त मेल है। एंको सैफसन जाति के व्यक्ति की यह विशेषता है कि वह जल्दी पैर आग नहीं बढ़ाते। परन्तु जब एक बार बढ़ा लेता है तो पीछे पैर नहीं रखता। छोटा मोटा चक्का या प्रतिक्रोड उसका कदम को नहीं उभाड़ सकता। इतनी ही नहीं बने हैं बड़े पराजय को भी वह स्वीकार नहीं करता, और नैदान छोड़ने का नाम नहीं लेता। इन गुणों के साथ साथ दो दोष भी हैं। वह सिद्धान्त या सचार्ह के बहाने में पड़ना पसन्द नहीं करता। सिद्धान्त और सचार्ह उसके बीजभर हैं, जो समय पर काम लाये जाते हैं वह उनका बीजभर नहीं। इस कारण सिद्धान्त और सचार्ह के मामले में रात-दिन राजीमान क्रिये बाल हैं और मजा यह कि अपनी नैसर्गिक धूर्तता से दुमिथा को यही बतलाता है और शय्यद अपन इष्ट को भी यही

## विश्व-नाटक के पात्र

बतलाता है कि वह सिद्धान्त और सत्य पर दृढ़ है स्वभाव का यह विशेषतायें ही ह गलैड की सफलता और निष्फलता का कारण है। ह गलड साम्राज्य चलायन में सफल परन्तु दूसर के हृदयों में अप्रिय शब्दों आकर भाव पैदा करने में निष्फल हुआ है। ह गलड को मजदूर दल पहलू में ही अप्रिय जान्य का एक मनुष्य रहा है। उसन जीयवाद् के सिद्धान्त पर राजीम में का पैगम्बर लगा कर चप-मजदूर-दल नामकी एक ऐसी वस्तु तैयार की है कि दुनिया में उसका उपमा मिलना कठिन है। मि० आर्थर हैण्डर्सन उसी मजदूर-दल के नेता और सचालकों में म एक हैं।

ब्रिटिशमन दूर दल के सिद्धान्तों की परीक्षा के तीन अवसर आय। पहला अवसर योरोप के महायुद्ध के समय आय। लहरों की घोषणा कर और अन्तर्जातीय में हुई। फूस कल का मित्र बन कर बीच में आ चुका। दूसरा अवसर ह गलैड के युद्ध के विलकुल प्रसन्न था। यह आश्चर्यक नहीं था कि वह युद्ध में हूँदा। ह गलैड का मजदूर-दल भी अन्य सत्कार के मजदूर दलों की भांति शांति की शय्य लेता था और सत्कार को नि शय्य करना चाहता था। उस समय ह गलैड में उदार-दल का प्रमुख था। जब अन्य योरोप में युद्ध की चमड़ी गरजन लगी तो साम्राज्यवादी ह गलैड भला कैसे दूर रह सकता था। जर्मनी के समन और साम्राज्य-विस्तार का पेसा दूसरा अवसर कहाँ मिलता। ह गलड भी लहरों में शामिल हो गया। वह मजदूर-दल की सिद्धान्त-परीक्षा का समय था। यदि उस सिद्धान्त और सचार्ह से कुछ भी प्रेम होता तो वह युद्ध का प्रबल विरोध करता। परन्तु अग्रज ही क्या जो साम्राज्य के लिये सिद्धान्त के साथ राजीमान में करे, जब युद्ध के चलाने के लिये

सब दलों का सम्मिलित मन्त्रिमण्डल बनाया गया तो उसम मजदूर दल भी सम्मिलित हो गया और जरा मजे की बात तो 'लिय' कि यहा शांति के प्रचारक और नोबल प्राइज़ के विजेता मि० हैण्डर्सन साइब ही मन्त्री के आसन पर विठाय गय थे। जब तक सम्मिलित मन्त्रिमण्डल युद्ध को चलाता रहा हन्डर्सन साइब उसक सत्य जन रहे।

दूसरा अवसर तब आया जब मजदूर-दल शक्ति-सम्पन्न होकर हगलैड के भाग्यों का निर्माता बना। भारतवर्ष में उस समय स्वराज्य का आन्दोलन चल रहा था। ब्रिटिश सरकार जो डोमिनियन स्टम्प भारत को देना चाहती था उस भारतवासी पर्याप्त नहीं समझत था। इस पर देश में घोर सन्तोष की लहर चल गई, और महात्मा जी ने नमक-सत्याग्रह जारी कर दिया। मजदूर दल तो केवल भारत के लिये ही नहीं अपितु सारी दुनिया के लिये आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का समर्थक था। भारतवर्ष की आत्म-निर्णय के प्रसूल पर चलना चाहता था। भारत में कैसे शासन-प्रणाली हो इसका निर्णय वह स्वयं करना चाहता था। यदि मजदूर-दल और उसक नेता पूरी तरह सोलहो आन अंगरेज में होते तो शायद भारत का राजनीतिक इतिहास किसी दूसरी तरह ही लिखा जाता। परन्तु मजदूर दल उस समय भी कसौटी पर आया, और छोटा साबित हुआ। भारत में आर्निमन्स राज्य की पहले पहल स्थापना मजदूर दल के समय में ही हुई। आर्निमन्स राज्य का दूसरा नाम नगा स्वेच्छा-चार रखा जा सकता है। आत्म-निर्णय के एक का समर्थन करने वालो राजनीतिक पार्टी बगे स्वेच्छा-चार की नीति का सचालन कर, यह भी दृष्ट ह गलैड में ही दिखाई दे

सकता था। नग स्वेच्छाचार का समर्थन करने वाले मन्त्रिमण्डल में ह गलैडस विचार स्थान रखत था। मि० रमन मेकडानल के मन्त्रि मंत्र पर बही था। मि० हैण्डर्सन न अपना शांति प्रियता का नाम को भारत में आर्निमन्स राज्य के रूप में चलाने उद्युत शान्ति में रखा।

तासरा अवसर तब आया जब मजदूर-पार्टी के अधिकार सत्यर्था न अनुदार दल के साथ मिल कर मन्त्रिमण्डल बनायन में इस्कार कर दिया। उस समय एक और मजदूर शक्ति के वह सत्यर्था थे जो अभी गलैड की शराव में खतम मस्त नहीं हुए थे, वह मन्त्रिमण्डल में दूर रहना चाहते थे। परन्तु मि० रमन मेकडानल और मि० हैण्डर्सन साम्राज्य के सचालन का मना ले चुके थे। उन्होंने मजदूर-दल को छोड़ना स्वीकार किया। परन्तु उस अनुदार-दल का साथ न छोड़ा जो सिद्धान्त रूप में मजदूर दल का कट्टर विरोधी है।

मि० हैण्डर्सन साम्राज्यवाद के प्रधान समर्थक और साम्यवाद के घोर विरोधी अनुदार दल में मिल कर हगलैड की नैतान नीति का सचालन कर रहे हैं। इधर कई वर्षों हगलैड को नि शक्तीकृत्य का नया शोक पैदा हुआ है। बात यह है कि हगलैड का पेन अब भर गया है। इधर ऊपर में बटोर कर उसन बहुत कुम्हा इकट्ठा कर लिया है। महायुद्ध में जर्मनी के अधिकारी उप-निवेश भी ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल हो गय हैं। फल और क्या चाहिये, यही उनका जुड़ा रहे तो अच्छा है। लहरों में हगलैड जो कुछ शान्त कर सकता था, शान्त कर चुका। अब उसे युद्ध में डूबते हैं। क्योंकि उसने साम्राज्य की दीवार में कहीं न कहीं छेद जो जान का भय है। इस कारण हगलैड न नि शक्तीकृत्य का बीड़ा उठाया है। उसन शक्ति और सुनहल के नाम पर एक लम्ब-नांग का आयोजना कर रहा है, जिसका प्रधान प्रतिनिता मि० हैण्डर्सन को कहना चाहिये।

(शेष पृष्ठ ४ पर)



## बन्दीखाने में:—

खोलो, मर बन्धन खोलो ।  
हाथ मोन बन मुझे न भारो । कोई मुझ से बोले ॥  
वह प्रमात की स्वयंभवा रखा,  
नम मे नवनों का लेखा,  
रजत रश्मियों को कप येखा,  
दखा था युग बीते हैं यह आकुलता लो खोलो ।  
अब तो कोई बन्धन खोलो ।

पदर की इन दीवालें में,  
विजडित लोहे के तालों में,  
'शालन-शालन' के मालों में—  
पलता हूँ, है दया दया बस लगे लो चाहें रो लो ।  
बस तक ? कोई बन्धन खोलो ।

मैं जग दन्व जिय हलसाऊ  
तट पर सम्पन्ना-गीत सुनाऊ  
वन म मुक्त पवन हूँ आऊ  
चार पलों क लिय ( मुक्ति हो ) वी नूणा विष गोली—  
सुन लो कोई बन्धन खोलो ।

—छिन्नेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' ।

## जाग मुसाफिर अब तो जाग !

आलस मीढ़ बहुत दिन सोया,  
सुन्दर समय ज्यष ही खोया,  
हवा खेचता उवा धिरजनी

खुद पर्व के भाग । जाग मुसाफिर अब तो जाग ।

साता विष्व संचेत लड़ा है:  
धर्म कर्म का पर्व पड़ा है,  
हुड़ कड़े भरले नव युग क

पर मे नव अवतारान जाग हितैषी अब तो जाग ।

क्यों पागल म पड़े अकेले,  
बड़-बड़ जा ओ अलबले,  
बुला रही वसुध वसिबेदि

उठ ! चल कर कुछ त्याग । जाग मुसाफिर अब तो जाग ।  
—हितैषी भलावलपुरी प्रेमी

( शृष्ट ५ का गेय )

मि० हन्डसन एक तम स्वभाव  
काँले, गोम्य आर वाक्की राजनीतिविद  
हैं। वह बहुत दूर तक किर्मा भी  
विषय का सरल शब्दों में दार्ष्टिक  
भाषाया कर सकते हैं। कई वर्षों  
म वह अन्तर्राष्ट्रीय सुलह की सुर्वीय  
व्यापका कर रहे हैं। इन्हें इंगलंड क  
बन्दरगाहों पर जहाजों क निर्माण क  
कारखान घटोटेय पुं आ लोडन हूण  
आपना काम कर रहे हैं। हवाई जहाजों  
आर तोपों, और गोलों आर टंका की  
उपज उसी वेग म जारी है आर  
उपर निगन्धीकरण कालरगस क  
अधिवेशन धक्काधक्का हो रहे हैं। एक  
अधिवेशन अमरुल होता है तो भी  
मि० हन्डसन दूसर अधिवेशन को  
बुला लेते हैं। भाषण पर भाषण हो  
रहे हैं, ककय पर ककय निकाले जा  
रहे हैं कि किसी तरह शस्त्रों का

बल्ला बन हो, परन्तु इंगलंड आर  
फ्रांस जर्मनी आर इटली के कार-  
गमलों में इदियारों की नैयारी का वेग  
बढ़ता जाना ह। फिर भी शाखाय हो  
मि० हन्डसन को, कि निगन्धीकरण  
की चर्चा किय ही जान है। जब  
इदियार बमाल क कारखान की चिमनी  
मातः बाल मजदूरों के नुलान के लिय  
सीटी बजती है तो मि० हन्डसन  
कनो मे अगुली दे लेन होंगे, आर  
फौरन निगन्धीकरण क सम्बन्ध में  
आइकनस द्वारा सभास म शान्ति पर  
भाषण सुनान लगन है ।

धन्य है, ऐय गाति प्रेमी मि०  
हन्डसन आर उममें भी अधिक धन्य  
है वह निगन्धीकरण लोग, जिन्होंने न उन्हे  
शान्ति-प्रेम क कारण कोबेल पाइज  
का अधिपति सम्मता है ।

## वीणा की मंकार

परोपकार ऐसे कहते हैं । जहाँ  
उमे उपकार समझा जाय, वहाँ मे  
हृक भावमी परोपकारी बन जाता  
है, पर असभी उपकार यही है कि  
जनाब आप हजार बार इन्कार  
कीजिये उपकार का वृट आपके  
गले मे उतार ही दिया जायगा ।

हिन्दुस्तानी असत्य थे, कोर  
जगला थे, योरपियन लोगों को उनकी  
हाथत पर दया आ गई, वह हिन्दु-  
स्तानियों को सदाता खिलान के लिय  
हजारों मील की यात्रा करके  
आपहुचे । नासमझ हिन्दुस्तानियों न  
बहुत हाव पांव पटके, कि सत्यता  
का घूट न पियेगे, पर परोपकारी  
योरपियन कहाँ मानने वाले थे ।

डाक्टर का यही तो धर्म है ।  
बीमार न दवा पीने मे इन्कार किया  
तो डाक्टर यही करता है कि  
उम लिटाकर ओर हाव पांव दबा-  
कर मुह मे डालकर दवा पेड में  
उतार देता है । परोपकारी पवित्र-  
वासियों न हिन्दुस्तानी मरीज को  
शिकजों में कसकर सत्यता कानून  
ओर धमन की कड़वी दवा उसके  
मुह में टूस ही तो दी ।

पर हिन्दुस्तानी भी बहुत ही  
नापिक और मुछे हैं । हक घूट पर  
अड़न है, हाथ पाव मारत है, ओर  
चिल्लाते हैं । अब इंगलंड न भारतवर्ष  
पर बड़ी कृपा करके दवा की है,  
कई खुराक नैयार की है, जिसमे  
भारत वर्ष के सब रोगों को एक दम  
ही समाप्त हो जा' की आशा है ।  
अ्योंकि मरीज की यार रात दिन की  
बीष पुकार ओर इलजल समाल हो  
जायगी ।

परन्तु यह मरीज बड़ा नासमझ  
है कि दवा न त्यागन त्याग । परन्तु  
डाक्टर भी कामाल का परोपकारी है ।  
दवा तैयार किने जा रहा है । थोड़े  
दिनों की आर बात है । दवा बिलकुल  
नयार होकर बोलत मे डाल दी  
जायगी, ओर हिन्दुस्तानी के लिय  
खलास कर दी जायगी ।

यह आहमक हिन्दुस्तानी जरूर  
शोर मचायेंगे और कहेंगे कि हम  
दवा नहीं लेते, पर डाक्टर कहाँ  
मानने वाला है । छारी पर सवार

होकर बीमार के गले में दवा को  
उतारेंगा । तुम कहोगे 'नहीं-नहीं' वह  
कहेगा 'जल्द' ।

\* \* \*  
संसार इस परोपकार का दूसरा  
मनुष्य नहीं विद्या सकता । लेने वाला  
कहता है कि 'भाई मैं नहीं लेना  
चाहता' । पर देने वाला कहता है 'थी  
जकर दूंगा । तुझे जकर लेनी पड़ेगी ।  
मलमनसाहत मे न लेगा तो जरूर-  
दस्ती मे, लाठी के जोर से दूंगा ।  
ऐसे परोपकारियों को नारद बाबा  
का नमोनमः ।

\* \* \*  
इधर सुनन हैं, दिल्ली के देहातियों  
में सभ्यता के प्रचार का काम परोप-  
कारियों की ओर से बड़े जोर शोर मे  
उठा' गया है । नागलौर में एक  
उमायश होगी । तरह तरह की चीजें  
दिल्लई जायंगी । रस्मोपिवाज और  
ललितकला की शिक्षा देने के लिये  
नाब का भी खास प्रबन्ध किया  
जायगा ।

\* \* \*  
कुछ लोग इस पर भी बावला  
कर रहे हैं । इन गवागों मे कोई पूछे  
कि भाई आँखिर तुम लोग कब तक  
ऐसे ही बुद्ध-बने रहोगे । बाँच देकने  
से अमुध शास्त्रमी सीखाता है और  
फिर वीर कमलर साहिब भी खुद  
तखरीक लायेंगे । ऐय शुभ अवसर पर  
देहातियों को नाब द्वारा कुछ सम्पत्ता  
का उपदेश दे दिया जाय तो क्या हूँ  
है ।

\* \* \*  
यार लोगों न तरीका तो अच्छा  
निकाला है । उस दिन दिल्ली में जमी-  
दार परिशियन का जलसा था ।  
था । ख्याल था कि भोटे-भाटे जमी-  
दार लोग आसलान म प्रामोक्षन बन  
कर कह देंगे कि 'हा-बजूर' आपकी  
आहतपरेर स्क्रीम हमारा लिये बहुत  
अच्छी है । पर जमींदारों में भी बागों  
पुस गये हैं । सारा मुह मोहर कर  
दिया । प्रस्ताव पास न होर दिया ।

\* \* \*  
नागलौर में सब बागी सीध हो  
जाय न । कुछ तो वीरत कमिश्नर  
साहब के आन का जोर, और उस  
पर नाब ओर पागा । जब तबने और  
सखरी की मस्ती में देहाती खबलीक,  
होंग, तब परोपकारी लोग बोलला  
का प्रसाद बाँटेंगे और फिर यार लोग  
देख लेंगे कि कीनसा मार का लाह है  
जो ऊ न स्वर मे न पुकार उठेगा  
कि 'हाँ, ठीक है, जनाब आप जो  
कुछ फरमा रहे हैं । सब कुछ ठीक  
है ।

—नारद

**साम्यवाद**

भगवान्प्रिय प्रादोत्सव की गिरती बुद्धि प्रभाव में देश के भन्दर जो नदी प्रयोग करने उनमें साम्यव्यवस्था का प्रोत्साहन मूल्य है। इसके प्रथम विधानसभा १० जवाहरलाल नेहरू हैं, जो एक समय को प्रभाव में मङ्गला गंगा की के फलस्वरूप जीवन प्रमुख होती है। उनके द्वारा का एक-एक परमाणु त्याग, तपस्या और सारी मानव जाति के प्रिय है। इस में कोई सन्देह नहीं कि साम्यव्यवस्था का प्रोत्साहन-जाति के सिद्धे उच्च-संस्कृति का एक दिव्य स्तम्भ है। भव्य ताक के अग्रजों से यही कहा जा सकता है कि साम्य की प्राणिक समया की हल करके दया मानवीय संस्कृति का क्षेत्र उन्हा उन्नति में प्रथम तक लक्षार में जितने प्रायोजन बन, उन में साम्यव्यवस्था ही सच में प्रथिक सार-सहित और संकलित है। मगर इसके साथ ही यह भी सत्य है कि भव्य ताक का संसार में यह प्रतीक-बन बसल कस में ही सफल हो सका है और वह भी अग्रक परिवर्तन में प्रथम। इसका प्रयत्न यह नहीं समझना चाहिए कि दूसरों ने साम्यव्यवस्था की आश्रयकता प्रमुख नहीं होती, प्रथम उनके यहाँ प्राणिक संकट की समस्या नहीं है। मगर, आज तो हल यह है रहे हैं कि जो लोग कह रहे हैं कि साम्य के संसार में इसका जोरों में विशेष हो रहा है क्योंकि इसके पणपण में प्रमुख भाग्यपूर्ण की जा रही हैं।

ऐसी स्थिति में जब कि सत्सार के स्वतन्त्र और विहित देशों में इस प्राविन्य को बड़ा दुःख हुआ है, तब भारतवर्ष के समान गुलाम और भ्रामल से आच्छादित देश में भारतीय संस्कृति के इस उच्चतम कार्यक्रम की सफलता की भारी इच्छा बड़ी कैसे की जा सकती है। स्वमेव यही बात जो इस कार्यक्रम की सफलता में सन्देह पैदा करती है, वह यह है कि यहाँ के मौलिक संस्कारों में अत्यन्त की गन्ध भी नहीं है। यहाँ देशों में तो केवल राजकीय और धार्मिक कार्यों की सामंजस्य सम्मिलता में बाधको रहे हैं। मगर यहाँ तो उन से भी बड़ी गुलाम कार्यक्रम पार्थिव को सामाजिक प्रगति सम्पत्ता के मार्ग में रोड़ा झटका रहे हैं। तब इसप्रकार प्राविन्य को भी इन देशों और प्राविन्य मतवालों का तामाद्व नश्य हम भी प्रकर देख लें कि जो इन सब में भास्वतु कर चुके हैं कि इस प्राविन्य की भ्रम-

## भारत के लिये पंचवर्षीय आयोजन

## एक नवीन कार्यक्रम का मसविदा

(लेखक—श्री चन्द्रराज भगडारी विशारद)

( गताक सं आगे )

फलता के अनेक कारणों में यह कारण भी बहुत प्रबल था।

अतएव इस आंदोलन के बारे में मैं यह कहना चाहता हूँ कि सिद्धान्त रूप में हम इसे जाँहें स्वीकार कर लें, मगर इसका जो क्रांति-पथक्रम प्रस्तुत है वना हुआ है, उसकी प्रकृत के द्वारा हमें इस देश में सफलता प्राप्त नहीं कर सकेंगे। खास करके सामंजस्य के राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध में इस की जो व्यवस्था है वह यहाँ पर बहाल सकल नहीं हो सकती। व्यक्तिगत सामंजस्य की भावनायें यहाँ पर इतनी मजबूती के साथ जमी हुई हैं कि उनको बलवान् में बहुत शक्य सामंजस्य की दरकार होगी। जब मैं भारतीय सरकार का आगन्तु हुआ है, हम व्यक्तिगत सामंजस्य के भावी हो रहे हैं। कुल तो ये संस्कार स्वयं ही प्रत्यक्ष नाम में मजबूती के साथ स्थापन करने किये हुये हैं और कुल इन्हें इन लोगों का समर्थन मिल जायेगा है, जिनके स्वार्थ की खापी मिलि की इन पर दबारी हुई है। राज्य, धर्म, पूँजी आदि के ठेकेदारों का स्वार्थ अभी भी तुलिया में अपना मजबूत अस्तित्व कायम किये हुए है। ऐसी स्थिति में सामंजस्य के राष्ट्रीय करण की समस्या कम-न्य कम भारत में तो अभी सफल नहीं हो सकती।

कहने का तात्पर्य यह है कि साम्यवाद और अहिंसात्मक आन्दोलन के मूल सिद्धांतों को स्वीकार करते हुए भी हमको अपना राष्ट्रीय-दृष्टान्त बिल्कुल नवीन और विचार-पूर्ण बनाना होगा। समय चाहे कुछ अधिक लग जाय मगर हमको अपनी राष्ट्रीय मजबूती ऐसी सुदृढ़ कर लेनी होगी जो समय के वज्र-प्रहार से भी न हिल सके।

इस शारी वस्तुस्थिति पर विचार कर लेने के पश्चात् अब हम अपने आयोजन के तात्त्विक और व्यावहारिक रूप पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं—



श्री चन्द्रराज भण्डारी

नवीन आयोजन की रूप-रेखा

उपयुक्त प्रसिद्ध कार्यक्रमों के  
प्रस्ताव और भी छोटे बड़े कार्यक्रम  
देश के सामान चल रहे हैं मगर  
उन्ने संवालों को तक को यह विश्वास  
नहीं है कि उनके आधोलान देश को  
अन्तिम मकसद तक पहुँचा देंगे  
वे केवल उन्ने आपत्तिकाल का धर्म  
समझ कर धकाये चले जा रहे हैं  
ऐसी स्थिति में उन सब की आलो-  
चना करना व्यर्थ है।

ऐसे विकट समय में देश के  
साथमें ऐसे कार्यकर्ता की बड़ी भारी  
आवश्यकता है जो सीधे और सार्वजनिक  
रस्ते में उसे धारण में मकसद पुराना  
पहुंचा दे। ऐसे कार्यकर्ता की कल्पना  
नियंत्रण करते समय हमको यह ध्यान  
रखना होगा कि इस समय संसार में  
वर्षाने वाले प्रत्येक साम्यवादी के  
प्रधान और ध्येयों द्वारा हमारे कार्य-  
क्रम में आ जायें और उनके भीतर जितनी  
विरासत है उसे उनकी बचाया जाय।

**आयोजन के मूल-मिद्धान्त**  
सब से पहले हम को इस बात पर विचार करना होगा कि सन्देश आयोजन की स्थापना इस समय हमें किन सिद्धान्तों पर करनी होगी ?

पहला ही प्रश्न जो हमारे सामने  
उपस्थित है वह यह कि इस ग्रन्थो-  
लन में सहयोग के सिद्धान्त  
को स्वीकार किया जाय  
या असहयोग के ? इस

बात पर विचार करने  
 सम्यक् हमको यह बात मई नजर  
 रखनी होगी कि हमें इस सम्यक्  
 भाँति के रचनात्मक क्रम की ओर  
 ही अधिक ध्यान देना है। तब  
 निम्न के अनुभव में हम यह बात  
 एसी प्रकार जान चुके हैं कि जब  
 तब आत्मोन्नति का एक मार्ग का  
 प्रबल चक्का सहज करने के योग्य  
 न हो जाय तब तब विनाशायक  
 (Destructive Element)  
 मानि का कोई भी कार्यक्रम सफल  
 नहीं हो सकता। इस यह भी  
 कि रचना का सभी कार्यक्रम पहले  
 प्राग-प्रतिष्ठित है। इस जानने  
 कि रचना का कार्य प्रत्यक्ष है और  
 वह विनाशायक आलोचना की सहा-  
 यता के पञ्चाङ्ग ही प्रतीति प्रकार  
 पल-प्रल सहायक है। उन्हीं पहले  
 उनकी गति बहुत धीमी रखनी है।  
 सम्यक् यह सब होन पर भी दूसरी  
 रचना तो हमको आवश्यक पहले  
 करने को पड़ेगी जो ध्वन्यात्मक  
 कार्यक्रम के भावी प्रत्यक्ष धक्के को  
 सहज करने योग्य हो जाय।

ऐसी स्थिति में जब कि हमें अपनी स्थिति शक्तियों रचनात्मक आन्दोलन में लगानी है अतः हमें एक साझातन्त्र कमी सफल नहीं हो सकता। अन्वययोग का साझातन्त्र स्वतन्त्रतामय कान्ति का एक मिश्रान्त है जोर उभरने वह सफल भी हो सकता है। अतः अन्वययोग कायंथम (Constructive Pragmatism) के अन्तर् तो यह साझातन्त्र शक्तिरक हो सिका होगा। रचना का कार्य तो सहयोग की भावनाओं में ही सफल हो सकता है। इसमें हमें अपने मूल सिक्तानों की रक्षा करने हुए अधिक में अधिक सितना भी सहयोग प्राप्त हो सक्ता करता होगा। फिर चाहे वह गवर्नमेंन्ट के द्वारा हो चाहे जनता के द्वारा, चाहे अर्मीद्वारा चाहे पूँजीपतियों के द्वारा हो चाहे मजदूरों द्वारा किसानों के द्वारा, चाहे हिन्दुओं के द्वारा हो चाहे मुसलमानों के द्वारा।

दूसरा प्रश्न हिंसा या अहिंसा का है। यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिये कि भारत को केवल हिंसा या अहिंसा ही उद्धार करना है प्रत्युत अपन उद्धार के साथ उ अहिंसा मसला को विश्वभाव का सम्न्ध देना ही—साथी मानविय संस्कृति को एक करम आगे बढ़ाना है। जिस भारत का मनुष्य क्रुधा, बुद्ध, महावीर और गांधी जैसे विश्वभाव का अनुयायियों न किया है उस देश का अस्तित्व लम्ब दिखल

और मुसोलिना क लिय की तरह राष्ट्रवाद के सकील गथर मे चार समार हो जाय यह बात मानी नहीं जा सकता। भारत का राष्ट्रीयता जागत होनी मगर अपन सा ही ना। बट ससार मे विग्रभभाव की भी जागत कराग और फलत मे नसी मे लान हो नायगा।

ऐसा रिजिन मे भारतीय आने लन मे हस्ता की भावना नहीं पनप सकती और न इस समय ऐसी भावनाश क लिय किंसा प्रकार खेव हो तैयार है। अगर इस समय मे लोगों का जनरदस्ती मे न बला कार पवपी भी तो बान शीघ्र अपन साथ सार आंदोलन से लकर डूब जायगा।

मरान आधोजन का कायक्रम स्थिर करन क पूर्व तासरा प्रश्न जा हमारे न मुल उपरिजि होता ह वद यह कि नवान व नरन रिजिन क द्वारा परिवर्तित यत्र कला का इस आधोजन

में स्थापन किया जाय या नहीं। गांधीवाद यत्र कला क विरुद्ध है। मगर १८ वर्ष क लम्ब अनुभवान न हमको यह उनला दिया है कि बरला या उसा क समान दूसरा वस्तुप भारत का प्राथम स्या को हल करन मे बिलकूल ना कामयन है। हालां ही मे प्राथम सघ का भावना योजना मे भी महामा जान न श्य क प्राधान उद्योग धंधा को पुनजायित करन का भाडा उठना है सम्भवत महामा ना न महान न लिय क प्रनाप मे इस प्रोप्राय मे भा वडु हलचल पदा हो जाय अगर लम्बा दाद ( ) क पश्चात् मार्ग हागा कि इस प्रकार का कोई भा प्रोप्राय नैश का आर्थिक समस्या का हल नहीं कर सकता। जे हम को नैश का आर्थिक मसला हल करना ह तब हमको सारी वस्तु रिजिन का उचित हलकर हा काम करना हागा। नन भावना मे नवल आचारकरण मे काम नहीं चल सकता। यत्रकला क रिजा अपर किंसा भा नैश का आर्थिक प्रतिस्थाप क मानन मे एक सकना असम्भव ह निस प्रकार हस्ता और आहस्ता क नम न हमारा आगोजन नाया ना का नैशकन क गा उसा नरन वनकला क मन्त्र व मे यह कल क अनुभवान हागा। निस प्रकार कम न आन नैश क नम न नैश और तक वानुन शक्ति का मुख्य क दिया ह और गेह हा समय मे अपन यहा का आर्थिक समस्या को उसन हल कर नगा ह नैश प्रकार हमको भा नैश क एक छोर मे नैश और तक छोर छोट पावों से लकर

बच २ शहरों तक विपुल शक्ति का जाल बिछाना होगा तब गांधीवाद हर तरह की छोटी छोटी इण्डस्ट्रीज कायम करके नैका परिवर्तन विपुल शक्ति द्वारा करना होगा। इस यत्रकला क पवुवत हा छोट न पावों मे अपन त ग्रीधरा मे नवनायन और नवीन समस्या का संचार हो नायगा।

लेकिन यत्राव न उपरि दुरा हयो—साधारण्यतः और पुजीवाव से बचलन होगा। व्यवस्था और आयोजन ऐसा होना चाहिये जिसमे वकला का पूरा पुरा लाभ भा इस ल सक और कला का निरमता का उच्च भा हम न उठना पड। इस सम्बन्ध का व्यवहारिक विचन हम प्राग चल कर करग।

सहयोग आहस्ता और यत्रकला क सिद्धांतों को स्थापन करन पर अब हमारे लिय यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपन आधोजन मे नैश मार्ग का अवलम्बन करना चाह उसका निम्नकर है।

वैमे नैश जाय नो भारत की सामाजिक स्थिति का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करन प्र होन क समाप पड व गण है। नानैतिक धामर सामाजिक आर्थिक सभा अर्थों में पुनर्मार्ग का आवश्यकता महसुस हो रहा है पर यदि स्वाध्याय निमाण एक सा प्रारम्भ किया जायगा तो उसम सफलता का आशा कम है।

हमारा प्याल है कि यह नर पुनर्मार्ग का महान समस्या एक मात्र जनप्रमाज की शक्ती नति मे हा हल हो सकता है। अगर कोई ऐसा कायक्रम जन या जाय जिसमे नैश क एक छोर मे नमर छोर तक प्रत्यक्ष स्वाध्याय का प्रतिक्रिया जिन शिला क प्रकृति मे प्रकृषित हो जाय। व्यावसायीक नैश बहा समस्या का स्वाध्याय प्रचार हुआ याना धर्म गाय समाज इत्यादि सभा संस्थाका की उपाया एक सा दूर हो जायगा।

मगर शिला का प्रचार मो नर तक सम्भव नहीं हो सकता नर तक मनुष्य का रोग का मरान हल नहीं होना धर्म राज्य और समाज क कृपा को दूर करन क लिय तो गिना का प्रचार हान तक मय व कडु सत्र भा कर सकता है मगर रोग का मराल तो ऐसा है जिन निम दो र अलियन रूप मे हल करना हा पटना है चाहे शिला का प्रचार हो बाहे न हो। इस प्रश्न क हल क लिय

मनुष्य किसी की सखि की प्रतीक्षा नहीं कर सकता।

उपरोक्त दोनों समस्याओं में एक गुण यह भी है कि इनके सम्बन्ध में किंसा जनसमुदाय का मद् नहीं हो सकता। शिला प्रचार के लिये हिन्दू मुसलमान समस्तनी सुधारक गव नमर, जनता पुजीपति और मजदूर किंसा भी प्रत्यक्ष मतभेद नहीं हो सकता।

इन दोनों कोयकों के सिवाय समाज राय धर्म-सम्बन्धी जितन भी प्रयोग हैं उन मे बहुत बहा विरोध बहुत की सम्भावना है।

अतएव जब तक यह दोनों प्रोप्राय अपनी रचना पूरी न कर लें तब तक प्रत्यक्ष रूप में इन बातों पर आर्थिक जोर न दिया जाय अप्रत्यक्ष रूप में तो इन समस्याओं पर जो प्रभाव पड़न वाला है वह पड़ेगा ही।

उपरोक्त सार विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि देश की मौजूदा परिस्थिति में जो भी आर्थिक जन बनाया जाय, उसमें दो ही चीजों की प्रधानता रखी जाय। (१) फ और (२) धर्म।

(कमश)

# स्वास्तिक का मार्क देख लीजिये

अपने लिये नहाने के साबुन [ सन्दलबुद, टरकिशवाथ ] कपड़े धोने के साबुन हजामत बनाने के साबुन हजामत बनाने की क्रिम दन्त मजन व स्वादरहित मेडिशनल केस्टल आयल विशुद्ध वानस्पतिक हेयर आयल व फरनीचर आदि के लिये वारनिश आदि खरोद करते समय स्वास्तिक का मार्क देख लेना—

इस बात का प्रमाण है कि वे सर्वोत्तम श्रणी की खालिस स्वदेशी चीजें हैं। स्वास्तिक की चीजें बम्बई में भारत की सबसे बड़ी तल की मिलों में से एकमिल में तैयार होती हैं व सब स्टोरों में इसकी चीजें मिलती हैं।

सेल एजण्ट:—

जी० एस० भारतीय एण्ड कम्पनी, स्वदेशी भवन

( थोक व खुदरा स्वदेशी चीजों का भवदार )  
गार्मिया एण्ड क  
यावर  
चाँदनी चौक, देहली।

स्वास्तिक आयल मिल्स लि०

२७ बैस्टन रोड, बम्बई।

## यूरोप के कुछ राजनीतिक कर्गधार

जर्मनी के सेनापति



मि० डॉन ब्लामबर्ग

कहा जाता है कि आप का विट्-  
कर से सेना में नाजियों के हस्ताक्षर  
के बिना पर भरोसा हो रहा है।  
आप हस्ताक्षर के बिना है।

फ्रांस के पर-राष्ट्रसचिव



मि० पीयरी लेबल

आपने राष्ट्र-संघ की बैठक में  
यूगोस्लाविया का पक्ष लेते हुए हंगरी  
पर इस शोषण का समर्थन किया  
कि यूगोस्लाविया-नरेश की हत्या में  
उत्सुक हाथ है।

फ्रांस का सेनाध्यक्ष



मार्शल पीटेन

मि० डुमर्ग के अवकाश ग्रहण  
करने पर आप ही फ्रांस के राष्ट्रपति  
बनें। ऐसा विश्वास किया जा रहा  
है।

इटली के सर्वेसचिव



मि० मुसोलिनी

इटली के आर्थिक पुनर्निर्माण के  
सिलसिले में आपने दुष्प्रचार जारी  
किया है कि सब व्यापारी आपने  
विदेशी पावने इटली-सरकार को बेच  
दे। नियम उल्लंघन करने पर सजा  
मिलेगी।

इंग्लैंड के युद्ध-सचिव



मि० चर्चिल

अभी आपने घोषणा की है कि  
इंग्लैंड को फ्रांस व जर्मनी की  
सैनिक तैयारियों से डरने की जरूरत  
नहीं है।

इंग्लैंड के राजदूत



लार्ड एथनी हंडन

आप राष्ट्र-संघ में यूगोस्लाविया  
और हंगरी के पारस्परिक समझौते  
के सिने बहुत प्रयत्न कर रहे हैं।

# भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं मिलेगा

सर सेम्युअल होर

न करतल-बन के बीच ६ तारोख को हाउस ऑफ कामन्स में निम्न सरकारी प्रस्ताव पेश किया —

'यह हाउस सिस्टम कमेटी को सिकारिया को भारतीय शासन विधान में संशोधन करने का आधार मान कर स्वीकार करता है और उचित समझता है कि उस रिपोर्ट के आधार पर एक बिल पेश किया जाय।

स्क्रीम का उद्देश्य

विस्तार का बातों में न जान का आग्रह करते हुए आपन वक्ता तथा भारत में सद्भाव रखन वाले व्यक्तियों में प्रयास की कि व कुल योजना को एक साथ ग्रहण करें और यह विश्वास करें कि

कमेटी तथा सरकार की यही इच्छा है कि भारत को स्वशासन का अधिक न अधिक मोका दिया जाय और इसक लिय व एसी स्वीम पेश कर रहे हैं जो हमारा विश्वास है औरत की हमारा मिश्रण साधन का भारतीय रखन में सहायक होगा और जिस अधिक में प्रगति होन के बीज बोध है।

तान निष्कर्ष

कमेटी सैकड़ों बैठक करके हरिद्वी गवाहिया लेकर और विस्तृत भाववन पत्रों पर विचार करक त। भारत व बर्मा के सार्वजनिक स्थितियों में विचार निमित्त करक तान मुख्य निष्कर्ष पर पड़का है—(१) प्रताप स्वतन्त्रता (२) ग्रं० भा० मंत्र और (३) सरक्षण के सा उल्लेखित।

मिथि शिक्षा और भांगतीय अनुभव का परिणाम

उक्त तान निष्कर्ष आपन बताया कि शिक्षा सम्प्रदाय सिद्धान्तों पर विचार करने वाला के निम्नानुसार नही है कि १०० साल का मिथि शिक्षा और इनका समय के भारतीय अनुभव का फल है। न्यायिक भारत के राजनैतिक न कर पाठियों में पालने में का नकल करने का शिक्षा ही बाई है, गलतवाह मन्दिर-प्रवेश अस्थितता-निवारण जन भावक सामाजिक प्रगति अधिकारिक प्रगति का रहे हैं और यह तान अधिक न अधिक स्पष्ट होता जातो है कि निम्न-भारत राजनैतिक हो उठे

## पार्ल मेंट में ज्वायंट सिलेक्ट कमेटी की रिपोर्ट स्वीकृत

मजदूर-दल का संशोधन गिर गया

४६ पक्ष में ४६१ विपक्ष में

सरक्षण का दृढ़ता उपयोग किया नायगा।

रिपोर्ट के पत्र-पत्र में अधिकविशाल भरा हुआ है।

भारतीय जिस बोध के लिय बिल्ला रहे थे, उसकी जगह रिपोर्ट ऐसा बम का गाला है जो उनकी मोक्षता को भी नष्ट कर देगा।

'अब समय आ गया है कि हम डोमिनियन स्टेट्स के अन्तर्गत राज्य को छोड़ दें, जिसने बहुत गलतफहमियाँ पैदा की हैं।'

—आर्च बिशप कैम्बेजरी

हाउस ऑफ कामन्स में ६ विसम्बर से ज्वायंट सिलेक्ट कमेटी की रिपोर्ट पर बहुत गुड़ दुर्ग, जो १० तारख को समाप्त हुई।

सम्बल सकते हैं। साव ही अधिक दृष्टि में आवागमन के उत्तम साधनों के कारण तथा ऊँच तटकी बजह से यह अनुमान हो गया है कि भारतीय रिपब्लिक को केंद्रीय भारतीय शासन में सीधा भाग ले।

प्रातीय स तन्त्रता

की मफलता के लिय आपन कहा कानून और व्यवस्था को मिनिस्टर क सुपुटे किया जाना आवश्यक है।

अखिल भारतीय सव

के सम्बन्ध में आपन कहा कि यह कठ का मोक्ष रूप में ही छोड़ कर हम प्रता में उत्तरदायी सरकार की स्थापना कर दें तो इसन भारत की एकता नष्ट होन का भय है। इसका एसा होन पर कठाय सरकार को लोकमत का सन्तान न रहेगा। प्रताय सरकारों की उपा पर उन अवलम्बित रहना पसगा। भारत का आर्थिक साधन पर रक्षा (मना) पर इसका बहुत बुरा असर पड़गा और श्रेणी नगरी व श्रेणी रियमता का हालत आसपास के गतिगाला गीता के सुकारन में बहुत कमजोर हो जायगी। अत प्रातीय स्वतन्त्रता को स्वीकार करने पर ग्रं० भा० सच अधिकार्य हो जाता है और ग्रं० भा० सच को दो तो यह भी आवश्यक है कि वह भारतीय सचीय चारा सजा क



सर सेम्युअल होर भारतीय तथा प्रांतीय सरकारों का समर्थन

पिछले तीन सप्ताहों में आपने कहा, मेरे दूरवास्त कवन पर भारत के गवर्नर-जनरल, भारत-सरकार तथा सब प्रांतीय सरकारों न अधिक यह सम्मति प्रकट की है कि सिलेक्ट कमेटी की स्वीकृति को आधार मान कर भारतीय शासन-विधान बनया गया तो वह कार्यान्वित हो सकेगा।

मरुस्थल कागजी नदी

विशेष उत्तरदायित्व के नाम से जो सरकार है उन्हें ब्रिटेन की प्रत्येक भारत क हित में बतते हुये पुलिस सरक्षणों पर आपने बहुत जोर दिया और अत्यंत बाद के विदेश गवर्नर-जनरल व गवर्नरों को विय जान बाड़े विशेषाधिकारों को ही ठीक ही बतलाया। साथ ही इस बात पर भी जोर दिया कि सरक्षण कोर कागजी नहीं हैं, जोके पर उनका हकत न उपयोग किया जायगा।

काग्रम और सुधार

अमझसी-नुवाब में काग्रस की जीत पर आग्रस प्रकट करते हुए आपन कहा कि वास्तविक अग्रस में तो कागसी ने इसक लिय प्रयत्न ही कर रहे थे कि काग्रस असहयोग के ऊँच लेन में किसी प्रकार वापस कोसिलों में आकर जिम्मेदारी के साथ सार्वजनिक कार्य करन लगे। काग्रस की कास्टिगुएट असेम्बली की मांग मिलहुल अग्रसहकारिक है। में जानला कि काग्रस न इस स्वीम का इच्छा बरताया पास किया है परन्तु मुझे आशा है कि बाद में यह पुन, विचार करती।

पत्रों में अधिकविशाल

मजूर अटरीजी (लेबर) ने रिपोर्ट का विरोध करते हुए कहा कि— (शेष पृष्ठ ५५ पर)

प्रति उत्तरदायी हो तथा देशी मौरा की उसमें शामिल रहे।

मरुस्थलों के साथ उत्तरदायित्व

के सम्बन्ध में आपने कहा कि जिसन इस समस्या पर निष्पक्ष-रूप में विचार किया है वह इरेक स्पष्ट रूप से यह जान गया है कि प्रातीय स्वतन्त्रता तथा ग्रं० भा० सच की सफलता के लिये कुछ मंत्र सरकारों का होना आवश्यक है जिस से सरकार की स्थिरता एवं सुख्या में कोई बाधा न पड़े।

व सरक्षण विधान की प्रगति रोकने के लिय नहीं हैं न इसी लिय बनाये हैं कि एक हाथ जो दिया जाय उसे दूसरे हाथ से ले लिया जाय। हर हालत में तो हिन्दुस्तान की मोक्षता हालत के गतों के ही सीध परिणाम हैं।

सेना नही सौंपी जा सकती

मना के सम्बन्ध में आपन कहा कि वस्तुस्थिति इस समय यह है कि हिन्दुस्तान स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता और भारतीय सेना का एक बड़ा हिस्सा ब्रिटिश तथा इंग्लिश सैनिकों का है। इंग्लिश सेना की इम्पीरियल पॉलीस के अलावा और किसी के हाथ नहीं दिया जा सकता।

कहा जाता है कि तलाक को हिन्दू संस्कारों के विपरीत होने के कारण ही विवाह-पद्धति में स्थान नहीं दिया गया है। किन्तु जैसा कि आगे देखेंगे, वास्तव में ऐसा नहीं है। हम यह मान लेने को तैयार हैं कि जहाँ तक स्त्रियों का सम्बन्ध है, उनमें कुछ को छोड़कर अधिकांश स्त्रियाँ नया तो तलाक को निष्ठेष्ट ब्रह्मचर्य इसका विरोध ही किया है या किसी विशेष कारण वश इस विषय में मौन भंग करने का साहस ही नहीं कर सके हैं।

जिन्होंने तलाक की अवस्था को ही है, उन्होंने भी केवल स्त्रियों ही को इस अधिकार से वंचित किया है— पुरुषों के विषय में यह भी कोई ऐसा स्पष्ट विधान नहीं कर गया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि शास्त्रानुसार कोई भी व्यक्ति एक ही समय में एक से अधिक कितनी ही स्त्रियों का स्वामी बन सकता है। अतएव वह दूसरी स्त्री को पत्नी-रूप में ग्रहण करने से पूर्व पहली स्त्री का परित्याग करने का विधि बाध्य नहीं है। फिर तलाक के प्रश्न पर भावी पक्षी करने की आवश्यकता ही क्या थी?

पुरुषों को यथेष्ट करि स्त्रियों के स्वामी बन सकने की आज्ञा उक्त तथा स्त्रियों के आत्म-रक्षा के अधिकार (तलाक) का अप्रत्यक्ष कारण समाज न अपनी न्याय-क्षमता का केसा सुन्दर परिचय दिया है? यह कहना ब्रह्मण्य प्रत्यक्ष है कि मोक्ष हिन्दुधर्म में वैवाहिक सम्बन्ध के अटूट होने के कारण शास्त्रों के एक दम अतिकूल है। हमारे धर्म ग्रन्थों में ऐसी कितनी ही परिस्थितियों का उल्लेख है जिनकी उपस्थिति में विवाह-सम्बन्ध धर्मव्यवस्था के विरुद्ध हो जाने के कारण अविविध नहीं रह सकता।

औरों की बात तो जान दीजिय, स्वयं मनु न लिखा है :—  
कामममरणापिपुत्रं दूरे कृत्यात् प्रत्यपि भवैर्न प्रयच्छेत् पुत्रहीनोऽयं कश्चित् ।  
उत्सर्गं पतिनं वस्तीवसवीजं पापरोगिमात्रं न त्यागेऽस्ति विप्रसम्पन्नं च व क्षापयन्नेवमम् ।

यह निश्चित है कि कानून द्वारा केवल उसी रीति या प्रथा का निषेध किया जाता है, जो किसी समय या स्थान की विशेष स्थिति में तुरी आगंतव्य और न्याय्य समझी जाय। इस लिये हम कह सकते हैं कि शास्त्रकारों ने तलाक का प्रतिपक्ष करने के लिये या वह सिद्ध

महिला-संगत

## क्या तलाक हिन्दू-संस्कारों के विरुद्ध है ?

( ठे०—भी जगेश्वरनाथ वर्मा, पी० ए०, पल्ल-पल्ल० बी० )

दिया है कि उनके समय में यह प्रथा किसी न किसी रूप में भारत में विद्यमान थी और स्त्रियाँ इसका अस्तित्व मिटा देने के लिये यथा-साध्य युद्ध करने में तत्क्षीय थे। ग्रीक कवी जान बाली जलियों में तो तलाक की परिपटी परंपरा में चली आती थी, इस में भी उक्त कथन की पुष्टि होती है।

आपन समय की सर्वोत्तीकृत प्रथाओं का प्रतिपादन करना और कुप्याधों का लज्जन करना ही स्त्रियों का मुख्य कार्य था। इस में तो बचल पड़ो पना चलता है कि जहाँ तक मोक्ष का सम्बन्ध है, एक निश्चित समय में विधवाओं न इसका विरोध करना आवश्यक कर दिया था। और विरोधियों की मन्थना दिन-दूनी रात-बोसुनी बहने लगी थी। इसी बहुमत की क्षाया स्त्रियाँ-साहित्य में भी मिलती हैं। फिर भी इस में सन्देह नहीं कि प्राचीन काल में तलाक की प्रथा अभी भी कभी अवश्य आम थी। और समय के हेर फेर के साथ साथ इस विषय में लोगों का यह मत भी परिवर्तित होता गया और यह प्रथा धीरे धीरे निम्नग्राही होती गई। किन्तु फिर भी थोड़े बहुत मीचे दर्जे के लोग इसका अनुसरण करते रहे और धर्म-शास्त्रों की आपन न्यायहारिक जीवन में हस्तक्षेप करने की आज्ञा न दे सके।

यह कहना ठीक नहीं है कि तलाक हिन्दू-संस्कृति के विपरीत और विवाह के उद्देश्य के अतिकूल है। अभी भी ऐन शास्त्र-लिखित प्रमाणा का एक दम दृढ़ नहीं प्रगा है, जिससे यह प्रथा समाप्त सिद्ध होती है। कौटिल्य प्राचीन स्त्रियाँ तलाक के विरोध स्थान रखता है, मनुस्मृति की रचना से बहुत पहले कौटिल्य-कृत अर्थशास्त्र उल्लेख था। यहाँ यह एक बात निश्चयपूर्वक से दर्शाय है कि वर्तमान मनुस्मृति का एक अङ्ग तो कौटिल्य की विचारों की क्षाया मात्र प्रतीत होता है। किन्तु दूसरे अङ्गों में मनु और कौटिल्य में भी मत भेद दिखाई देता है। केन का विचार है

कि प्रस्तुत मनुस्मृति का एक अङ्ग तो सम्भव है कौटिल्य ही के समय का या उसमें भी पुराना हो। पर दूसरे अङ्ग निःसन्देह उसमें बाद क हैं। इसमें अनुमान किया जाता है कि मनुस्मृति के हम तक पहुंचने में उसका वास्तविक रूप बहुत डुङ्गा प्रष्ट हो चुका है।

कौटिल्य-कृत स्मृति की रचना का समय निर्धारित करने हुए जन न लिखा है कि ईसा से ३०० वर्ष पूर्व आर २०० वर्ष बाद क युग में किसी समय उसकी रचना हुई है। इस प्राचीन ग्रन्थ में मोक्ष (तलाक) का जिन शब्दों में समर्थन किया गया है वह इस प्रकार है :—

“नौचर्चं परदश वा प्रस्थिते राज चिन्तनी ।

प्राणमिहन्ता पतितस्यायः किंल्लोपि वा पतिः ।

प्राणे चलकर कौटिल्य फिर कहता है :—

अमोक्ष्य मनु रकामस्य द्वितीयायां मायोरप्यव मतां ।

परस्पर द्वेषान्मोक्षः । अमोक्षो धर्म विवाहानामिति ।

पहले श्लोक में कौटिल्य स्त्रियों को अपरिमित अधिकार दे गया है कि वे आपन पति से सम्बन्ध विच्छेद कर सकती हैं, यदि उनका स्वामी दुराचारी हो, बिदेय वासी हो राजद्विही हो, मनुस्मृति हो, उनकी हत्या कर खालन को धमकी देता हो, या जाति स्तुत हो।

यदि विवाह संस्कार का अनि-प्राय सतनो पति ही मान लिया जाय तो ऊपर निर्धारित परिस्थितियों में इस आशय की पुन की स्त्री-आज्ञा नहीं हो सकती। अतएव स्त्री-पुरुष दोनों उस समय तक गृहस्थ धर्म का उचित पालन करने में अस-मर्थ रहेंगे, जब तक कि वे बन्धन मुक्त न हो जाय।

कौटिल्य की दृष्टि में विवाह सत्तो-रिक्त जीवन के सुख का मूल कारण भी है :—

अमोक्ष्य मनु रकामस्य द्वितीयायां मायोरप्यव मतां ।

अत आर सतनोपनि क युग कार्य की प्रति में कोई बाधा न हो तो तलाक मन की उस समय तक आज्ञा नहीं दी जा सकती जब तक स्त्री-पुरुष दोनों एक दूसरे में प्रणान कर लें। साम्प्रत्य जावन पारस्परिक प्रेम के अभाव के कारण भार हो जाता है। पर मनु रकू कलह रहने में पति-पत्नी के साथ र सतन का चरित्र भी दुष्ट हो जाता है और उनकी उन्नति का मार्ग बन्द हो जात है, जिससे केवल समाज, सम्प्रदाय, या देश ही की हानि नहीं होती बरन् मनुष्य मात्र को क्षति पहुंचती है।

कौटिल्य के मतानुसार आर की पुरुष दोनों में से कोई एक र सतन में प्रणान करने तो तलाक की आज्ञा नहीं दी जानी चाहिये। यहाँ यह बता देना अनुचित न होगा कि हिंदू शास्त्र-कार न जहाँ तक तलाक का सम्बन्ध है पुरुषों को शरत् मोक्षमर्त्य ही तरह एक दम स्वच्छन्दा तथा स्वच्छन्द नहीं बना दिया है जिस में वे जब चाहे स्त्रियों का परित्याग कर सकें। बल तलाक के अधिकार को सीमाबद्ध कर के आगे अर्थव्यवस्था की सामानता का सदा के लिये गंभीर ध्यान दिया है।

तलाक को उद्देश्य करने वालों का कथन है कि कौटिल्य का भी यही मत है कि जिस वैवाहिक-सम्बन्ध पर चर्माशय की क्षाया लगी हो वह हर हालत में अविविध है और स्त्री या पुरुष कोई सदा के मर्म नहीं कर सकता। ऐसा कहने के लिये वह प्रायः कौटिल्य के इन शब्दों का आश्रय लेते हैं :—

“अमोक्षो धर्म विवाहानाम् ।”

पर यह युक्ति उस समय एक सतन-शील मायुष्य होती है, जब कौटिल्य को कुछ स्थितियों में तलाक का समर्थन करते देखते हैं। क्योंकि यदि विपत्तियों का यह कर्क ठीक मान लिया जाय तो इसका एक प्रसन्न होगा कि उस युग में तो प्रकृत के विवाह-संस्कार होत थे। एक तो वे जिनकी प्रति विधिविधान मायुष्य हुई हो, और दूसरे वह जो नियम-धर्म में विद्युत होकर युक्त हुए हो। पर दूसरे प्रकार के विवाहों का प्रचलित होना तो स्वयं विरोधियों को भी स्वीकार न होगा आर न ही ऐन विवाह-सम्बन्ध न मोक्ष प्राप्त करने के लिये स्त्रियों को न अपना समय बह बिथा होगा। प्रत्यक्ष है कि जो लोग विवाह करने के लिये धर्म-व्यवस्था करने का साहस कर सकते हैं वे

तलाक के लिये धमपरायण बम कर शास्त्री की शरण लान का मूखेता क्यों करती ? भक्त कोटिपद के इन शब्दों का यहाँ अर्थ हो सकता है कि जिन स्थितियों का ऊपर बखान किया आ है, उनक धार्मिक वधार्थिक सम्बन्ध हर प्रकार में झलकित है ।

दूसरा धर्म-ग्रन्थ जो इस विषय पर प्रकाश डालना है पाराशर स्मृति है । इस स्मृति का मूल कारण कलियुग क आचार निवारण का निर्दिष्ट करना है । प्रस्तुत स्मृति केन क मतानुसार ईसा क १०० वर्ष मे ४०० वर्ष बाद तक क युग में लिखी गई है । यावत्कल्प न (जो ईसा क ४०० न ३०० वर्ष पर्यन्त क युग में हुए है) अपना इतिहास पाराशर स्मृति का उन्मेष किया है इसन स्मृति के क मूल प्र ३ बहुत पुरानी हित है ।

पाराशर स्मृति विधवा-विवाह आन तलाक का इन शब्दों न समर्थन करता ह —

अथ सप्तप्रतिपत्त क्लोव च पति-त पत्नी ।

एवस्वाय नृत्तु नारायणात् पतिरनयो विधय ॥

नार स्मृति का भी यही विधान है कि यदि पुरुष पत्नीव हो ता स्त्री मोन प्राप्ति न करनी की अधिकारिणी है —

वान प्रानून समतिरन्य कन्या-वधवयन वरम् ।

(नारद)

अगोन कन्या ३ महीन तक प्रताला क तटपरान्त अपना नसरा बिवाह करल ।

गानम भा उक् यणित स्मृति-कारा न पुरुषता सहमत है । अत यह निश्चय है कि प्राचीन भारत म तलाक प्राप्ति घमायुक्तुल ग, पर उन इसका विराय किया जान लगा तो विधन का गुण क लिय स्त्रियों मे न इन नसराक अगों की निकाल डाला गया इसका प्रमाण मनु क तन शब्दों न मिलता है —

‘प्रापितो धमश्रय्यो प्रती-न्योऽन नर मम ।

‘उपायन यथा र्ना कामा-ब्राह्मन् न मगन ।

गानम अथ दूस् स्मृति-कारा न भा लिया है कि यह नारा निनका स्त्रामा किंसा धम-नय क सम्पन्न करन क तित विनश्वर ला गया हा,

यहाँ कन्या शब्द का प्रयोग श्रमोपायक है । सम्भव है इस श्लोक में भी बाद में कुछ का-पुष्ट की गई हो ।

उल्लेख

८ वर्ष तक उसकी राह गेले और सचचा जिसका पति विधोपाज्जन क निमित्त विश्वा गया हो ई वर्ष तक प्रताला कर, और वह स्त्री जिसका मता यश अर्जन इत्यादि क लिय दंग श्लोक गया हो वह ३ वर्ष तक उसक लोचन की कामना कर ।

वह आश्वर्य की बात है कि मनु और उसक अनुयायी सभी इसके आगे बिलकुल मोन है और इस विषय म एक शब्द भी सुह म नहीं निकालन है कि यथाविधि नियत समय का अन्त हो जान क बाद भी यदि किंसा का पति न लौन तो उस अन्तला को क्या करना चाहिये ? एक नसरा तलाक म मनु न पुरुषों क लिय भी पेशा हा समन नियन किया है और उन्हे श्वाश्रु दिया है कि समानत पर वह नसरा नशा कर । इन दोनों अलाकों क अन्तलोचन मे पता चलता है कि स्त्रियों को भा यहाँ अधिकार दिया गया था पर बाद मे विपन्न न प्रस्तुन स्थितियों मे न यह अश निकाल निकाल दिया है । जिसन उक् श्लोक अगूरा मोन सार-हीन रह गया ह ।

समक में नहीं आता कि प्रताला क समय क अनन्तर यदि स्त्रा मोन प्राप्ति नहीं कर सकनी तो फिर प्रताला करन का क्या आशय था ? इसक उत्तरिजन मनु क मोन क पक्ष में होन का एक और प्रमाण यह है कि अगर किसी स्त्रा का एम पुरुष न पत्नी बंध दिया जाय औ क्लीव उन्मादी या कुछ न ग अन्त्य किंसा प्रताला श्वा रोम न पाहित हा और वह उम श्राव कर नसरा सज करन तो मनु क मतानुसार अन्तम्य नहीं है ।

केन क मतानुसार मनुस्मृति ईसा का मनुष्य न ४०० वर्ष पहल और ४०० वर्ष तक युग म पुन लिखा गई ह । ठीक यहाँ तक अन्य प्रथा पर भी लागू है । एक ऐतिहासिक उदाहरण म हमारा इन कक्ष की श्राव भी पुष्टि हा जाता है । यह अन्तला इन प्रकार ह कि जगल क मन्द न ई एक अन्तान न करल आपन पन क समय तक क लिय दन्तक चक्रिका नामी एक ताली पुस्तक का रचना करक उम प्राचीन प्र ३ उपायन रूप प्रमाण स्वरूप पेश किया था । एसा और भी चितना डी जान है जिसमे उस समय क अण ब्राह्मण का करतूतों का भगदाशोक होता है और पता चलता है कि मनु की तरह अन्य लोग भी सी प्रकार अपनी नीकता का दिवोरा पोशन रहे हैं ।

कम न कम यह मान लेन में तो

वहाँ आपल नहीं है कि समयानुसृत हमारी रीतियों में सदा से परिवर्तन होता रहा है । रामनन्द क प्रसिद्ध अभियोग में प्रिमी-कौंसिल न भी इन स्वीकार कर लिया है । और यह तो हम पहल ही कह आये हैं कि एक समय तलाक की प्रथा को निम्नीय समक कर धर्म-ग्रन्थों से निकाला जा चुका है फिर भी इसका मललव यह नहीं है कि एक अन्तली बात जो कभी किसी विशेष कारण-वश बुरी समझी जान लगी थी । यदि सब वही हमारा लिय हितकर हो तो हम उम कवल इस लिय अन्तलीकर करयें कि वह कभी त्याग्य सम्पक ली गई था । रोगा को पण न दन मे त्याग्य या सदा क लिय बुरा नहीं हो जाता । इसन अन्तरिजन यदि हमें शास्त्रों मे पहल कमा अपन मान का अधिकार था तो अथ भा उस अधिकार का सट्पयोग किया जा सकता है ।

मिगरटे गराव नहीं पियेगी पांच हजार युवतियाँ की पूर्ति

जिसवन क रोमन कैथोलिक आधिकारिय शायकलौ ओन पूत्र पान क विवह अवश्यन्त अर्धोलन कर रहे है । इनका यह अर्धोलन मुख्यतया युवतियों क चरित्र एव स्वास्थ्य-सुधार क लिये है । उपासना क समय वह प्रत्यक युवती स शपथ करात हैं कि ५ वर्ष की उम तक शराब न पियेगी । उनका कहना है कि अब तक पांच हजार युवतियाँ ऐसी प्रतिष्ठा कर चुकी हैं । सारतक्य क छान आर यकन ई मारतक्य का प्रचार बढ रहा है । क्या ये इसम जिज्ञा प्रदय नहीं कर सकत ?

रूसी स्त्रियाँ पहले से बहुत सुखी हैं

एक पूर्णतर का आलो देखा कर्णन

‘कस बाते समाज को नया रूप देने के लिये अोजकल बना भारी परीकष कर रहे हैं । यह कहत हुए दिल्ली-सिधन काउंस के ओ-स्त्रीपर ने लाहौर में आपन कार्यों देख वर्यून सुनाय और रूसी स्त्रियों के बारे में कहा है —

कसी स्त्री की वशा में जितना परिवर्तन हुआ है, उतना परिवर्तन किसी आर का वशा में नहीं हुआ । कम्पनिशों न यह चप की है कि स्त्रिया को अपन मरदा पोषक क लिय आदमी का मुह ताकना न पड़ । रूसी धातु और पति की वासता क भंभ को भी कम करन की चप को गई है । सरकार न अपनी ओर न रूसी शर खोल है जहा स्त्रा पुरुष आफर भोजन कर आत है । हरक कारजालों में बच्चों की मिलान और प्रगति का प्रकष है । उन्हे हर काम मे मरदों की बराबर समझा जाता है ।

कस मे विवाह ठका नहीं समझ जाता । भावी दम्पती को एक पोषण-पत्र पर हस्ताक्षर कर दन होत हैं ।

आज कल मसा स्त्रियाँ पहले की अपना बहुत प्रसन्न और सुखी हैं ।

नकल म बनें !

नकल म बनें ॥

## बाल काला करने का तेल

# काला तेल

(रजिस्टर्ड)

इस्तेमाल करें आपने सफेद बाल काली रात की तरह स्याह हो जायेंगे । पिछला, बसना और मैहदा से हमारा कलिय छुटकारा मिल जाता । तेल की तरह हाथों में लगाया जाता है । दाग या धब्बों नहीं पैदा । कीमत एक शीरी २ रु० । मरखल डाक अलग । ३ शशी पूरा कार्ड ई० ६० मरखल डाक मोफ ।

मिलन का पता —

मेरस — के० एल० कपूर एयड कम्पनी, लाहौर ।

एजन्ट दहली—बनुपुत्र ए एयड भाईस द्वां पराश, गुडगार के सामने

” अलाहाबाद — मे एयड का० केमिस्ट

” बनारस — सी० एल० ६० एयड कम्पनी, केमिस्ट





प्रमाण्य निर्वाचन के सम्बन्ध  
 में उपायमत्त कानून में जो उपरोक्त  
 का उल्लेख किया है उन पर गम्भीर-  
 तापूर्वक विचार करना प्रत्येक  
 विचारशील मनुष्य इस परिणाम पर  
 पहुच गिना न रहेगा कि ज्ञानमत्त  
 कर्मों का एकमात्र उद्देश्य 'हाइडर परम'  
 में विद्यमान योग बहुत अधिकारी को  
 प्राप्त करना किन्तु तब, न करन  
 प्राप्त है। कदाचित् का सुविद्यो  
 किन्तु यह तो निकल सकता था कि  
 भारत की विधानमाला, विचिन्तना, रक्षा  
 पर शिष्टा की कमी बहुत निम्न  
 जन-सेवोत्तम का बहुलतम निर्वाचन  
 के कारण उपर उर्ध्व अथवा बाधाओं  
 तथा कठिनायों के कारण भारत  
 वास्तव्यो को किसी प्रकार के अधि-  
 कार न दन वास्तव्यो तथा जो वि-  
 गय है वन की वास्तव्यो लेन वास्तव्यो  
 न्यायिक जैसा हसन उपर मतान क  
 प्रयत्न किन्तु ज्ञानमत्त कानूनी की  
 सुनिश्चयो का प्रयत्न अप्रयत्न अप्रयत्न  
 निर्वाचन में कोई सम्बन्ध नहीं है  
 अतः इन उक्त तत्क तथा सुख्य-  
 निर्वाचन को पक्कात यह परिणाम  
 किन्तु कर केवल अप्रयत्न निर्वाचन  
 की योजना भारत सरकारों की कृ-  
 (ग्रेष कृष्ट १२ पर)



## हाथ का कुटा नावल

महामा गंधी का प्रिय सुधार  
प्रचलित कवल किसलता के  
हित की हथि म ही नहीं मनुष्य के  
स्वास्थ्य के हथिनीय म भी अत्यन्त  
उपयोगी और आवश्यक है। हाथ क  
कुट नावलो का प्रयोग करन म  
अनक भारागिया नहा होती। धातु  
वैद्य शास्त्र मे नही कि कि सा का विधान  
है वहा प्रयक रोग क दूर करन  
क उपाय भा वतलगत गय है।  
वद में मुखल उद्वलन माजना  
पेनमा और खु ग का उद्वत विधान  
है सोमयाग म और वच  
की चतुर्थी यक्ष म नहा ग्रन्थि  
इंद्र और प्रणपति का पुनन होरा  
है वहा लव वृत्त का लकडा का  
मुखल तथा बबुल उक्त का उद्वलन  
बनान का विधान है। खर का गल  
आर बबुल का डाल खुन को शुद्ध  
करता है। १० प्रकार क कण का  
उपयोग होना वृत्त लाभद है।  
लपन कोट (कुलवहण) का वच  
का कडा आराम करता है। रैर क  
वृत्त क नाम उदन म बाल रक्त और  
का कुत्ता त म भयकर व्रग आ  
राम होत है।

दुध मयन का मना रहे भा  
खर का होना चाहिये उसम म म  
वहा दुध मयन रन म शात  
करन बात होत है। काकर का छोल  
उपयोग किम रोग का आराम करना  
है काकर का गो गन्धियों क प्रवर  
और कर्म क वद का आराम करना  
है।

इस म यह स्पष्ट होत है कि  
हा म कट नावल अथवा हाथ का  
पिसा भाग लाभकार होता है  
पक्षित न प्रत्यक वावल अथ  
वाल फल कन्द मूल आदि पा पाय  
द्रव्यों मे पाच भौतिक तथों का  
समावेश कर रहा है। दाता म नुस  
कर गब का रस पात हा शास्त्र बल  
पदा होता है। किन्तु लादे क यन्त्र म  
पाठा दुआ रस वातु पदा करता है।

—जिवकन्द वध

## कृपा उतार दो

इस युग का चर्चाचर्च म  
हमारा भाव अथिक धरात होत  
जा रहा है। ६० फा सन गणतन्त्र  
की आशा म को न कोइ मन्द  
हथि का नग प्रश पाग मना  
दाखता है। गण सुधारन क लय  
दाकर प्राय उम्मा का आरा प्र  
वद्धा न है। स्वाभाविक गण लप  
म भा भाव सुधार मकता है इसका  
कल्पना बहुत कम कणा का है।  
पक्षक बार बार गिरान म भा आला

## स्वास्थ्य-सुधार

का ज्योति बढ़ती है— इस कथन को  
सुन कर तो हमारे बहुत से पाठक  
हस भी सकते हैं पर बात सच है।  
थकी आशों की विधाति देन का  
उपाय बार-बार पलकें मारना हा है।  
जिन्हें लिखन पढ़न का बहुत अभ्यास  
हो वे दिन मे अपना पलको को बई  
पाद गिराया उठाया करें इसम उनकी  
हथि क अनक दोष दूर हो जायगे।  
किता एक पदार्थ क एक हा स्थान  
पर हथि जमा कर लेखन से आला  
पर जोर पड़ता है अत पदार्थ क  
चांगो ओर खना ही अयस्कर है।  
पलत समय प्रत्यक पलक क प्रारम्भ  
आर अत में पलक गिराना चाहिये।  
कई पाठक बिना पलक गिराये ही  
पलत जात हैं इसम उनका आला  
पर दबाव पड़ता है और वे खराब  
हो जाते हैं। लिखत समय कलम  
की लिग का ओर खना चाहिये।  
आर बाव बाव में पलक गिरात  
रखना चाहिये। इस तरह लिखन म  
हमालार भी सुधार नायगे। सिनमा  
का आनकल बाव आ रही है।  
सिनमा म नवा की पोति लागत होती  
है यह बात बहुत प्रचलित हो रही  
है। यदि चित्रपट क दृश्यो को बिना  
पलक गिराये खना जायगा तो यह  
निश्चित है कि आल खराब हो  
जायगी परन्तु यदि पलक चारों ओर  
नजर दोबाई जायगी तो नत्र विगन  
क वजाय सुधार जायगा। इसी प्रकार  
स्वस्थ सीत एक भी गण को एक ही  
जगह जमाये रहती है—बही विलम्ब  
म पलकें गिराती है इसी म हम  
कहत हैं बार-बार पलकें गिरान का  
अवश्यक रविय।

## दन्त-रक्षा के नियम

१—दांतों का नियंत्रित दोनों  
समय प्रात व सायंकल वन्तधावन  
(रौतुन) प्रथमा किता उत्तम दन्त  
मजन म साफ करना चाहिये यदि  
रौतुन करन का दोनों समय मोका न  
मिल सक तो प्रात काल तो अवश्य  
ही दातुन करना चाहिये।

२—जहाँ तक हो सक दातुन  
करन की लिग मोलसिरा बबुल  
नाम आक व (गद्गद करज  
(कजा) पापल खैर गुलर वल  
मोय आम न कृपा का दातुन जो  
गारह अगुल लग्ना साधा आर सब  
म छोटा अगुला क समान मोटा हो  
उन आर उस क आर भाग को नय

कु ची के सदृश्य बाल उस कु ची  
म थीर और प्रत्येक दात को विस  
विसकर साफ करे। परन्तु यह ध्यान  
रखना चाहिये कि दातुन क विसन  
म ममम्ब नहीं छिलन पाव मधुनों  
को बचाकर रौतों को साफ करना  
चाहिये।

३—कोई चीज खाने या भोजन  
कर लेन के बाद तुरन्त ही खूब कुल्ले  
कर डालन चाहिये। जिसन दातो  
मे खाय हुए पदार्थ का कुछ भी अश  
लमा नहीं रहे।

४—अभ्यर्थित गरम बहुत ठडी  
आर प्याहा कठी लारी व चरपरी  
चीजा क खार म दाता व मस्यो  
को तुकसान पड़ता है इसलिय  
ऐसी चीज नहीं खानी चाहिये।

५—बहुत मे आरभी दातो को  
कुरदेल रहत है या दांतों से आरा  
शोक ग्रात है यह ठीक नहीं है—  
क्यो कि ऐसा करन म दांतों की जड़  
ढीली पड जाती है और दान जल्दी  
ही उखड जात है।

६—हमन प्याहा है बहुत म  
शिक्षित व अक्ष शिक्षित लोग बालो  
क नन हुए दूध दूध दूध द्वारा  
दाता को मजते है। यह रिवाज  
बहुत दुरा है। हम छोड़ पना चाहिये  
कारण यह है कि बाल चाहे किसी  
भी प्रकार के दो दात व मस्यो का  
तुकसान पड जात है। इसलिय इस  
दूध दूध द्वारा दांतों को साफ करन  
की प्रथा को छोडकर दातुन अथवा  
अगुलियो म दन्त मजन करना  
चाहिये।

दातुन म दातो को साफ करना  
तो अच्छा है ही परन्तु यदि समय  
समय पर अथवा ल्ही बाहर यन्त्र  
या परन्तु आदि म दातुन नहीं मिल  
सक तो येम मोक पर दन्त मजन  
बहुत काम पत है। इसके सिवाय

जब दात व मस्यो में मयकर रोग  
पैदा हो जाते हैं तो येमे समय तो  
बिना उत्तम दन्त मजन के काम नहीं  
चलता।

## बिजली के स्तरों से बचने के उपाय

१—मासिखुधों म किर्निंग व  
कराईये आर सस्ती किर्निंग क लोभ  
में एककर ज्यय ही अपनी विपत्ति न  
बढावय।

२—बिगड हुये टविलफैम (या  
टविल लप) म काम मत लीजिये।

३—इसर उधर हवाई जान  
वाली तुकान की बची का दोकर,  
पातल का न रक्त कर रबर का रखि-  
ये। बिजनी की प्रवाह बन्द किये  
बिना बची का बन्ध न बदलिये और  
न लप या पल को ही उगारें।

४—इसा तरह टविल पर चलत  
हुय पल या जलत हुए लप की तार  
की होरी को भा बिजली का सम्बन्ध  
काट बिना हा म मत लगावये। सम्बन्ध  
ह कलु खराबी खा जान क कारण  
उत्पत्ति भी बिजली का प्रवाह आ गया  
हो।

५—साल में एक बार किसी  
योग्य आदमी म किर्निंग तथा पल  
आदि की जांच करा लिया कीजिये।

६—तो छेदा वाला प्लग न लगाया  
कर तीन उर्दों वाला लगावारे। इस  
क दो उर्दों में तो बिजली का प्रवाह न  
जान वाले दोनों तार लगविय जायगे  
और तीसरा छद् वाला तार जमीन  
मे खुब गहरा गाड दिया जायगा,  
जिसन बिजली का धक्का लगान की  
समावना न रहेगा।

७—सर्कट रहत हुए बहुत ज्यादा  
अथ भी न कीजिये। क्योंकि बिजली  
क धक्का का अपेक्षा यह विश्वास  
कि बिजली म आदमी फोरन मर  
जाता है ज्यादा तुकसान पड़ ता  
है। (सकलित)

साप्ताहिक  
अर्जुन में अपना विज्ञापन  
देकर लाभ उठाइये

## न्यूथियेटर्स, कलकत्ता की आने वाली फिल्में

न्यूथियेटर्स कम्पनी न पुरुषोत्तम, चण्डीदास, सीता आदि सर्वाङ्गपूर्ण फिल्में बनाकर भारतीय सिनेमा-जगत में अपना नाम अमर कर लिया है। इस कम्पनी की आने वाली फिल्मों के नाम 'भूकम्प क बाद', 'कारवान-ए-हयात' व 'देवास' हैं।

### 'भूकम्प क बाद'

नामक फिल्म दिसम्बर क मृतीय सप्ताह में परदे पर आ जायगी। इस गेट व के० सी० डू काम करत हैं।

### 'कारवान-ए-हयात'

नाम की फिल्म भी तयार हो चुकी है। इसका प्रदर्शन गम्भीर व कलकत्ता में शीघ्र हो किया जायगा। शामा जुवारी, सहगल, नवाब आदि अभिनेता व अभिनेत्रियाँ इस में काम करती हैं।

### 'देनाम'

नाम की फिल्म बंगाला में होगी। इसका शूटिंग शीघ्र शुरू होगा।

## राजपूताना फिल्म लिमिटेड

अजमेर में उपरोक्त नाम से एक फिल्म-कम्पनी की स्थापना हुई है। इस कम्पनी क डायरेक्टर रायसाहब प० मिश्रप्रसन्न भागवत वी० ए०, एल एल० वी० एटवोड (जन्मन एशोरन्स सोसायटी क चेयरमन) भी मथुराप्रसाद शिखर आदि अनुभवी व क्वालि लय महाशुभाह हैं। जैसा कि चित्रण-पत्रिका की दखन से विदित होता है, यह कम्पनी सिनेमा की दुनिया में युगान्तर पदों को लिय बनाई गई है।

वर्तमान फिल्म-कम्पनियों न अत्यन्त अधिकता ऐसी ही फिल्में बनाई है जिन में आशंकी भावना की ही झलक-याता है। अर राजपूताना फिल्म लिमिटेड न केवल फिल्म बनात की घोषणा की है, जिन में सामाजिक सुध र, प्राथम पुनर्निर्माण व सवसाधारण में मिलित बनान में सहायता मिलेगी। उक्ति की शीघ्र में पिछड़े हुए भारत को बल्लुन: इस समय ऐसी ही कम्पनियों का आवश्यकता है। हमें भी मथुराप्रसाद शिखर सरीख अनुभवी व्यक्तीयों में बहुत कुछ आशा है। ईश्वर कर उक्त कम्पनी की महाविकासवाये सफल हो।

## सिनेमा की दुनिया

### कहाँ कितने सिनेमा घर हैं

सयुक्त अमरीका	१३००
कनाडा	११००
जापान	१६१८
जर्मनी	१८८१
रूस	३०००
ग्रेट ब्रिटेन	६८४०
भारतवर्ष	४००

### माइमैन

### उर्फ पियाप्यारे

इम्पीरियल फिल्म कम्पनी का यह खल साक्षा है। मिस सुलोचना, डी० निलिमोरिया, मा० गुलाम मोहम्मद, मा० हार्वी, मिस चन्दा आदि प्रख्यात अभिनेता व अभिनेत्रियाँ इस में काम करती हैं।

कोटोआरपी रिफाउट्रि और सीन-सीनरी इम्पीरियल क अन्त होत हैं। प्रस्तुत फिल्म में भी इन बातों का भली प्रकार खयाल रखा गया है।

हाँ, डायरेक्टर साहब कहीं-कहीं भूल कर गये हैं। एक तो मिस चन्दा क गान कर रल दिय गय है। हमारे खयाल में किस्ती में बैठकर गाया हुआ एक गाना ही पयान था। दूसरे पुरान किले की लड़ाई को बहुत दूर से दिया गया है। उस रीतना लम्बा करने की जरूरत नहीं थी।

यह तो हुई फिल्म की एक-दो वृत्तियाँ अब इसकी विशयनाओं से आरंभ कीजिय। दो रंगीन चित्र उल्लत ही बनत है। नाचो व मोरच-नाचो की रंग सुन्दर प्रतीत होती है। नर्तकी की लड़ाई क दृश्य भी खराब नहीं है। सब में अजगर घटना तो वह रही, जहाँ राजकुमारी चन्दा पंचल बलसी है और रोहित डाकू मोटर में। जयसिंह (गुलाम मोहम्मद) का बाल-नाच एक डाँस की ऐकस बढ़ाना भी हास्यापहक है।

अस्मिन् की दृष्टि से चन्दा (सुलोचना), जयसिंह (गुलाम मोहम्मद), रोहित (बिल्लीमोरिया),

व गुलनाम बुद्धिया का पाठ सराहनीय है।

### फिल्म निर्माताओं से

यदि फिल्म-निर्माता भारतीय मूलक जनता क हित को दृष्टि म रख कर फिल्म बनायें: तो राष्ट्र उनका आभारी होगा। निःसन्देह जनता ही रचित जिम्मेदार व्यक्तियों द्वारा ही बदली जा सकती है।

—टी.पू.न

### अमरीकन फिल्म स्टारों की ननगवाहें

सयुक्त अमरीका में प्रमुख फिल्म स्टारों को प्रति सप्ताह निम्न प्रकार ननगवाह मिलता है—

ग्रेटा गार्बो	१०० पाइ
विलरो प्रेजर	११००
मोरिस क्वमिलर	११००
जान बरीमोर	१३००
नारम शायरार	१०००
पल हार्डिग	१०००

और भारतीय फिल्म स्टार्ग में किसी को ४०००) मासिक न अधिक नहीं मिलत।

### "भक्त-मञ्जीवनी"

दसक मवन न हर प्रकार क उल्ला नया या पुनरा, ताप-लिल्ली, जितन, मन्थानि यन्त्रजमा पून का न लगाना कज, दस्त एक्सि आब, पेट का दुर्द, गाय गोला आदि समस्त उद्गर-विकार आर प्रमेह को भी लाभ पहुचानी है। दस वर्ष में हजारों नेगियों पर आजमाई हुई है स्वस्थ भी मवन कर सकता है। हलन पर मूल्य लागतमात्र १) बोनल डाक-वर्क प्रस्ता। 'भक्त-मञ्जीवनी' जर्मनीजमा प्रकाश २० २०२२ (नई नकल) नहवा।

मुवाना (मेरठ) में

## 'अर्जुन'

मिलने का एक मात्र पत्रा

ला० रघुवीरसरन

प्रकाश न्यूज एजेंसी, मुवानाकलां जिन० मेरठ।

## साप्ताहिक 'अर्जुन' के पाठक कृपया नोट कर ले

कि यदि वह जरा स परिचय करके बहुत सा धन अपन खाली समय में बहुत न अन्य बस्तुये के अनितिक मुफ्त प्राप्त करना चाहत है ता न कवल ५ सावुन विक्रिताओं के नाम मय पूर पत क हमें लिखकर मन न हम उनकी मवा में एक लिखावी नसवीर का

१९३५ का केलेन्डर

मय पुरस्कार प्राप्त करने की खली अज द ने। यदि वह स्वयं एजन्स न जायगे तो अधिक लाभ होगा। पत्र-व्यवहार निम्न पते में का—

मैनजर-चीप ट्रेडिंग एजेंसी, कश्मीरी गेट, देहली।

## अप्रत्यक्ष निर्वाचन-विधि

(पृष्ठ १५ का क्रोध)

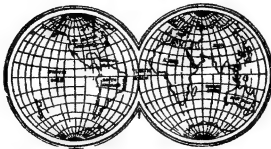
नाति हाथ चातुरी के अनिश्चित और क्या हो सकता है? जो कुछ देने में मर उम विष क्यों दिया जाय इस नाति का प्रयोग करके 'वायव्य' कमेटी न अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा वही उद्देश्य सिद्ध किया है जो प्रत्यक्ष को सर्वथा वापिस लेने में किया जा सकता था। और यही कारण है कि न अप्रत्यक्ष निर्वाचन विधि की योजना को 'विपक्ष' में पयोमुख्य म कम गलत नहीं समझता।

गम्भीरता पर इटारावात

अपन शासकों को स्वयं चुनन का अधिकार इतना महत्वपूर्ण है कि उसका बिना किसी भी 'श' म स्वयं-निर्णय तथा गणनीयता उत्तरदायित्व का भाव उत्पन्न नहीं हो सकता और इस भावना के बिना राष्ट्रपिता का प्राथमिक अस्मत्त्व है। 'चान्द' कमरा न अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा हमारा देश में उगनी हुई राष्ट्रपिता की भावनाओं का प्रतिनिधित्व के आदेशों का हाथ लक न करन की योजना की है।

दुर्भाग्य न हमारा 'श' बहुत कम नक प्राप्ताय साधनप्रयुक्त तः। जानियत आदि राष्ट्रपिता विरोधी विचारोंका आगार रहा है किन्तु अब इस इन बातों भावों की हानियों का अनुभव करन लग है और अब हमारे विचारों में भारतीय एकता तथा 'स्वदेशी' भावों की मात्रा बढ़ रही है। यह भला हमले के कूटनीतिक आसनों को कब सहन हो सकता था? और प्रत्यक्ष तथा उपायन्त्र कमेटी की साम्प्रदायिक तथा अप्रत्यक्ष निर्वाचन की योजनाओं द्वारा वे हमको 'रि' उसा राष्ट्रपिता-विरोधी भाववर्तन में लाना चाहते हैं। कट्टीय धारा समा के लिये अपना प्रतिनिधि चुनन समय जनता के हृदय में भारत की एकता तथा प्रकृत भारतीय प्रश्नों में अपने हित अन्विष्ट का चरमना उपलब्ध बिना नहीं रह सकती थी किन्तु अब अप्रत्यक्ष निर्वाचन की प्रथा के कारण निर्वाचनों के समुच्च सदा प्राप्तीय व साम्प्रदायिक प्रश्न रहते स्वयं तथा राष्ट्रपिता का भावों का प्राथमिक होन व लिय सर्वसाधारण को बुनन का प्रत्यक्ष मिल सकता। एकता न राष्ट्रपिता के स्थान में विभिन्नता व प्राप्तीयता की इतराग लक्ष्य उन जांवता। हमारा राजनैतिक एकता को नष्ट करन का प्रत्यक्ष अधिक तावक और क्या उपाय हो सकता है।

## विश्व-वैचित्र्य



### ५६ दिन में चांद तक पहुंच सकते हैं

एक वैज्ञानिक ने हाल में पुनः-कोश दिसाव लगा कर बताया है कि यदि स्काट और कैमेल (जिन्होंने लन्दन मलबूँद हवाई दोष में इनम प्राण किया है) १७ मील प्रति घंटे की रफ्तार में ५५ दिन तक उड़ते रहें तो चांद तक पहुंच सकते हैं।

—०—

### एक माथ ७ वच्चे जने

कन्नन के चुगगाइन जिले में एक महाबा की ठीन ने एक साथ ७ बच्चे जन हैं। जल्दा व कच्चे बच्चे न हैं।

—०—

### बन्दर पर मुकद्दमा

हाल में लेम्बय (इंग्लैंड) नामक स्थान पर साराज्ज की बदालत में एक विद्वान बन्दर के चिकित्सा कर्त्तव्यस्थान पर इमला करन के प्रति-योग में मुकद्दमा पेश हुआ है। कहते हैं कि उक्त बन्दर ५ यूरोपियन भाषा जाना है।

—०—

एक मक्खी १॥ मास के करीब जितनी रहती है और इस बीच में ७०० के लगभग अण्ड देती है।

यूनायन प्रजासत्तात्मक युग में प्रत्यक्ष निर्वाचन को भागरिता व राजनैतिक शिक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन समझा जाता है किन्तु अन्धकार कमेटी की नवीन योजना जनता के लिए निर्वाचनों की इस उपयोगिता को सर्वथा नष्ट कर देगी। अजमेर नैलीय प्रावि स्थानों में जहाँ प्राप्तीय कोसिलें आदि नहीं हैं अनेमल्ली को निर्वाचन ही राजनैतिक शिक्षा तथा नागरिकता की भावनाओं के प्रसार का एक माध साधन था किन्तु अब न्वायन्त्र कमेटी की द्वा म इन स्थानों का राजनैतिक जीवन ही एक प्रकार न नष्ट हो जावेगा।

### आदमी के सिर पर सींग

बिलासपुर में खबर मिली है कि वहा एक २४ वर्षीय युवक के सिर पर सींग का आधारन हुआ है। कहते हैं कि उक्त युवक के सिर पर २० वर्ष की उम्र में सींग उग आया और वह 'इच ऊ' का तथा 'इच मोग' था। डाक्टरों का कहना है कि जिनगी में उन्होंने इसी तक ऐसा आदमी नहीं देखा था।

### पहा-लिखा पैदा हुआ

नालगिरी के पास एक गाव में एक ब्राह्मण देवना के घर में एक लकड़ा पैदा हुआ। उसे शब्द चटपा गया। स्वयंवरश कुष्ठ शब्द उसको उगली पर लग गया और उसका हाथ साथ वाली मेज पर लगा। लोगों ने देखा कि उस पर 'अम्मा' शब्द लिखा हुआ था। माता-पिता यह देखकर डराने लगे। लकड़ा अभी तक जीवित है।

### ७ वर्ष की उम्र में गणितज्ञ

सायप्रस में एक बच्चे के ७ वर्षीय लकड़ को 'आरिस्टीड' (एक प्रमुख गणितज्ञ) कहा जाता है। उसने निम्नांकित दो प्रश्नों का उत्तर ३० मिनट में दे दिया—

'तुम्हारी उम्र कितन घट है?'  
'६ पोंड ७ मिल्लि आ' पेंस में कितन फारविंग होते हैं?'

### हाथ मिलाना बन्द

रोम में कैमिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी न यह घोषणा की है कि जो लोग दाया हाथ उठान की बजाय बायाँ हाथ मिलाय, उन पर नजर रखी जाय।

इस घोषणा के परस्पर मिलाप के समय हाथ मिलात की रस्म को बन्द करना है।

## हंसी-दिल्लगी

गाव का पुजारी मन्दिर की मरम्मत कराने के लिये चम्पा एकत्र करता फिर रहा था। चम्पा मंगले वह एक बन्विये की तुकल पर पहुंचा और स्वयं मंगा। बन्विये ने जवाब में कहा—

पुजारी जी! आज कल बहुत मन्दा है। तुम्हारे में शाम तक वेली के पेने नहीं बढ़ते जात। इसलिये अनिश्चित मुझे बाजार का कर्जा भी चुकाना है। इस लिय मैं आपको काली कौड़ी भी नहीं दे सकता।

पुजारी—'लेकिन तुम्हारे सिर पर जितना कर्ज हुआ भगवान का है उतना किसी दूसरे का नहीं है। लाम्बी चम्पा!'

बन्विया—'यह तो की कू है—मगर, वह कर्ज-बस्तू की लिये अपने एकजु की नहीं मजता।'

पिता—'कहो आत स्कूल में तुम्हें पहला दिन कैसा मालूम हुआ?'  
पुत्र—'मर चारों तरफ जो लकड़ों के बीच पर बैठे थे, वे तो बहुत झुठ थे—मगर डरती पर जो बुद्धा बेज था, वह मुझे पसन्द नहीं आया।'

तुम्हारे शरीर में कितनी पसलियाँ हैं?'

जवाब में गिन नहीं सकता, क्यों कि हाथ लगान ही मुझे शुरू शुरू होन लगती है।

माली—'क्या यह गेव तुम्हारी है?'

लकड़ा—'फोई बिड़की तो नहीं दूती है?'

माली—'नहीं बंदे।'

लकड़ा—'फिर तो यह मरी ही गेव है।'

एक छोटा बालक चिल्लाता हुआ चौपड़े पर पहुंचा और पहरा देते हुए पिता की ओर भागा—

'मि० पुलिसमेन भाच घबट मे एक आदमी मर पिता म लब रहा है। जल्दी चलो।'

पुलिसमेन—'तुमन मुझे पहले म ही क्यों न उलायता था?'

बालक—'क्योंकि १ मिनट पहले तक मर पिता उस आदमी की दूधोके हुए थे।'

आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान



प० घालीराम का अन्तिम दगन

हिजली के दो मजहरबन्द



श्री मोतीलाल पांडे

श्री लालचन्द पांडे

श्रीधर दयाल



आपने मुकुल बुन्दाबन का २०००  
दान दिया है।

मोवेल प्राइज के निराश उम्मीदवार



डा० ज्ञान मोहन

दुर्गेय का रहस्यमय व्यक्ति



सर राजिव जदरोफ

मोवेल प्राइज के निराश उम्मीदवार



मिगुल यनायुना

स



ह एक बाल-वि-  
षया थी। अपन  
जीवन की स्वर्ण-  
मयी उषा में ही  
वह अपना सवे-  
स्व को चुकी  
थी। वह अपन

देवता की पूजा करने क हेतु स्वर्णय की प्रतीक्षा में सामग्री जुटा हो रही थी कि काल-राहु दीर्घममल विनश को मिल गया और यह केवल माया ठोक कर रह गई, कुन्हाई पदमनी सी।

व! दुखिनी थी! निष्ठुर देव न उसका बोधाम-भूचक महार ध्वस कर उम दुखनर्न में धकेल दिया था। उन्मादिली सी वह अपन दुखद-राज्य को बाह्यन किय ईश्वरीय-न्याय पर सन्तोष किय बैठे थी। अपन पर-मश्वर की म्वा न वचन रहकर उसन भगवान-नविका होन का दृढ़ सक्त्य कर लिया था। ससार सार में अपनी जीर्ण तरी का सुचार-कय में संचालन करने क हेतु वह भग-वान् स पर्यन्ता किया करती थी परन्तु ब्राह्म। उसकी इस साधना में उसकी बड़की हुई उमर सहायक न होकर बाधक थी। विरह दीक्षा एव वेदना की तरंगें उसकी जीर्ण तरी को जगा देती थी।

वह युवती थी। शरीर के रोम-रोम न योग्य टपका पड़ता था। विर विवाह के सताप स कलमत्रा और भी अधिक ब्रामासिल होता था मधुमांस का वह शीतलमन्द सुगन्ध-सन्त समीर उस किसी ब्रह्मल विद्या की ओर बहा ले जाता था। उम एक तारा पीछा का अनुभव होता था। मील वर्ण गगन न गौरवान्वित विहार करने हुए निर्गिता २। फिर उस नाथ्य तीर की प्रतीति होती थी। गायन वह उन्हे सहन करने में ब्रस मर्थ थी बालक की भाति वह उठती थी।

उसका निय कानियथ था अश्रु-प्रवाह करना। एकान्त में अश्रुमुका के द्वार पिरा-पिरो कर पुन भूल में रमा उगा ही उसकी विनया थी। ब्राह्म, उसका यह ससार कितना नीरस था कितना मृदय था।

उसका दुःख था असहनीय। उसन मलाप न अपन माता-पिता की भी प्रियत कर चुकी बना दिया था। उसकी जिता ही उसकी वेदना का कारण थी। उसक सुख क लिय वे सर्वे त्याग करने का और धन सज्जन, तथा प्रगत तर विमर्जन करने को उद्यत थे। उनका एक मात्र

कहानी

## सरला

(लेखक—श्री घोकारनाथ गुप्त 'दिनकर')

अभिलाषा सरला को चुकी बनाने की थी और उसके लिय प्रयत्न कर रहे थे।

र  
वि० आ० कांयालय में मन्त्री महो-  
दय विचार मन्त्र बैठे थे। सहसा एक  
अप्रतिबिम्ब व्यक्ति न कमर में प्रवेश  
किया।

ब्राह्म, पचारिय।' नम्रभाव  
में मन्त्री जी न कहा। एक क्षण तक  
दोनों मौन रहे।

नितरधत्ता मग करत हुए मन्त्री  
महोदय न पृच्छा—मरे योग्य सेवा।  
'मैन एक पत्र आपके नाम मेजा  
था।' आगन्तुक न कहा—'परन्तु उस  
का उतर अभी तक न मिल पाया।'  
'भीमान जी का शुभ नाम।'  
'उन्हे शरच्चन्द्र एडवोकेट कहत  
हैं।'

'ब्रह्मा तो आप बनारस से  
पचार रहे हैं।' मन्त्री जी न कहा।  
'जी हाँ' उन्हींन कहा।  
'अभी इस रस विषय में कुछ  
नहीं कर सकते। दुःख है कि आप  
को इतना कह उठाला क्या।'  
'बत यह है कि मुझे यह काम  
शक्य भीम करना है।'

शरच्चन्द्र इतना कह ही पाये थे  
कि विनयकुमार न अन्तर प्रवेश  
किया। उन्हे आते देख मन्त्री जी न  
आदरपूर्वक कहा—'ब्राह्मे मि०  
विनय'।  
'आपका परिचय' बैठते हुए  
विनयकुमार न एडवोकेट की ओर  
सकेत करक पृच्छा।  
आप बनारस क भी शरच्चन्द्र  
एडवोकेट हैं।  
आपक दर्शनों से मुझे बड़ा हर्ष  
हुआ। यह मिलात हुए विनयकुमार  
न कहा।  
मन्त्री ने एडवोकेट महोदय से  
पृच्छा—'आपकी पुत्री की लाकर क्या  
'यही १७-१८ वर्ष' सहमते हुए  
शरच्चन्द्र बोले।  
'यदि कोई उसे देखना चाहे तो  
आपको कुछ आपत्ति तो न होगी।'  
विवाहकाल पर विनयकुमार ने  
पृच्छा, और उत्तराभिलाषा वह उ नके  
मुख की ओर उल्टवृत्ता से देखन  
लगा।  
'कुछ नहीं' उन्हींन कहा।

'तो अब आप बनारस कब पचार  
रहे हैं।'

'कल सायकाल' शरच्चन्द्र जी  
बोले।

तो मैं आपमें कल स्टेशन पर ही  
वेटींगकर्म में मिलु ना।'

एडवोकेट महोदय कुछ लज्जित  
स हुए। विनय के प्रति स्नेह का  
अकुर उनके हृदय-सैन्ध में अनायास  
ही उत्पन्न होगया।

ला

विनयकुमार एक प्रतिष्ठित एव  
घमादय पिता क इकलौत पुत्र हैं।  
आप पर लक्ष्मी की प्रसीम हूण हैं।  
वे और उनकी माता कबल तो ही  
प्राणी एक बही सम्पत्ति के स्वामी  
हैं। सामाजिक विचार आप में कूट-  
कूट कर भर हुए हैं। आपकी प्रियति

### धारावाही उपन्यास

अर्जुन में प्रकाशित होगा

सामाहित्य कर्तुन के ब्रामाभी ब्रक  
से एक मनोरञ्जक धारावाही उपन्यास  
प्रकाशित किया जायगा। पाठक जैयै  
स प्रतीक्षा करें।

माता की हार्दिक अभिलाषा है कि  
आप उच्च शिक्षा प्राप्त कर ससार  
में नाम प्राप्त करें। विनय वम० ए०  
क अल्लिम वर्ष में शिक्षा पा रहे हैं।  
माता विद्यालयन-काल में विवाह  
करना पुत्र के प्रति अत्यन्त मूल सम-  
कती थी। इसी लिये विनय अग्नी  
तक प्रविवाहित हैं।

सम्पत्ति का समर्थ है। कर्मकार  
का राज्य कृष्ण-प्रतिष्ठा विस्तृत और  
प्रगाढ़ होन लगा। बन्ध और सितार  
संसार के मकरो को बरलन में व्यस्त  
हैं। मान्दता इस सन्धि-वेला का  
अवलोकन कर रहे थे। नीकर ने  
भोजन का थाल लाकर उनके समुल्ल  
रस किया। किन्तु विनय मन्त्र ही  
बन रहे।

'विनय भोजन करो ना' माता ने  
कहा।

'करता हूँ' माता जी' कह कर  
विनय भोजन करने लगे।

'तो क्या निश्चय किया विनय'  
माता ने विनय की ओर देखते हुए  
पृच्छा।

'यही कि मैं सखा को कब दूर  
करने में असक्त प्रयत्न करूँगा।'  
विनय ने हड़ता-पूर्वक कहा।

'तो क्या उसके कुछ दूर कर  
का यही एकमात्र उपाय है कि तुम  
उसके साथ विवाह करो? क्या  
किसी दूसरी रीति से उसकी सहा-  
यता नहीं कर सकते?' माता ने  
पृच्छा।

'नहीं माता जी! मैं अपने कई  
मित्रों से उसके साथ विवाह करने  
का प्रार्थन कर चुका हूँ। किन्तु सब  
यही उत्तर देते हैं कि तुम्हीं करलो  
ना' वे ऐसा करके जालि और सख्त  
का विरोध करने को तैयार नहीं।

'तो क्या तुम्हें उस विरोध का  
सामना नहीं करना पड़ेगा।'

'कलना पड़ेगा या नहीं, यह तो  
समय भान पर शत होगा। किन्तु  
यदि कलना भी पड़ेगा तो मुझे इसकी  
जिम्मा नहीं। मैं उसका प्रतिकार  
करने को उद्यत हूँ।' यह कहते हुए  
तेज की एक अद्भुत क्षणा विनय  
मुख मण्डल पर ब्रामासिल हो ००,  
'अधिक से अधिक लोग सर जालि-  
बहिष्कार कर देंगे, कल-पान बन्द  
कर देंगे और इसने ब्रामाक।'

दुस्स विन ही जब लोगों ने उस  
विवाहित जोड़ी को दला तो सब  
उन्के इस महात्म त्याग एव साहस  
पर मुग्ध थे। सम्राज के गौरव।  
उत्साही नवयुवक बन्य है। ऐसे  
नवयुवक ही ब्रह्मदाय-सहाय और  
ब्रह्मलोको के बल बन सकते हैं। श्रेष्ठ  
सब तो दकोसला और आश्चर्य्य है।

अपने व्यापार को बढ़ाने के लिये  
समाचार पत्रों में विज्ञापन दना

अत्यन्त आध

और

हर्षक लिपि

'अर्जुन'

ही सर्वोत्तम मान्य

## ५००) इनाम

महात्मा मन्त्र इवेतकुल (खरेश)  
की अद्भुत वनोपधि, तोन दिवसों पूरा  
आराम। यदि सैकड़ों बरामों, बान्धरों  
वैराय व विद्यापन्मदाताओं का हवा कर  
थक गये हों तो इन सगाव। फेलावदा  
साहित करने पर ५००) इनाम। जिन्हें  
विज्ञापन न हो—) का टिकक लगा कर  
सर्त लिखा (हृदय) २।

नवरत्न अक्षिणि फिओरमरम मं० ३  
पो० कस्तोरसराय (मया

नामपुर विश्वविद्यालय हिन्दी साहित्य-समिति के प्रथम वाषिष्ठी-स्वयं के अवसर पर जो गत १०-११ और १२ दिसम्बर को विश्वविद्यालय लायमवी हॉल में आयोजित समारोह का साज सज्जा गया कर्मवीर क यशस्वी संपादक पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी ने समापति पद '३ जो विद्वत्तापूर्ण कार्यक्रम प० श्रीजयसारा भाग्य दिया उसका कुछ अंश यहाँ —

### राष्ट्रभाषा का स्वरूप

आज न खोलूँ बप पूव दलिय भारत में हिन्दी प्रचार क लिय गाँधी जी ने कुछ तराज का माग का थी। इसा प्रोत मे मन प० इषिकश जी का नाम संचित किया। फलन व मद्रास इलाक में गय और उनक तथा उनक पारम्भा साधियों क प्रयत्न का फल ही जो सात लाख मद्रासी भाई राष्ट्रभाषा साख जुड़ है। मद्रास सरीय अहिल्याभाषा प्रति मे यदि इतनी विस्मयजनक सरलता मिली तो कोई बरकर नहीं कि इसाग प्रोत मे भी यदि सत्य कायकत्वा मिल तो ऐसा ही काय न हो।

आज भारत मे यह प्रश्न उठता है कि राष्ट्रभाषा का अखली म्बक क्या होना चाहिये ? क्या वह सूर और तुलना का हिन्दी हो सकता है या साहित्यिक आवाजों और महा रथियों का ? मेरा तो यह मत है कि भारत का राष्ट्रभाषा ता वह हिन्दी हो जो सता की प्रामाण्य का या तार्थ्याविव्या का भाषा हाता है। राष्ट्रभाषा का यापक स्वल्प बमान क लिय हिन्दी को अपन सङ्कलित श्रय मे न निखलना पडगा। स्वमे बगालापन भी हाता चाहिये मराठा पण हा हाता चाहिये गुजरातापन भी होना चाहिये सः पन हाता चाहिये। इन लिय भाग स्वतन्त्र रूप धारण करे।

### तुकाराम और तुलना

हिन्दी का प्रचार किता सीधा क विरोध या द्वय का भारना न नहीं किया जाना चाहिये। यदि रामदास को त्यागकर बरार को पहन का कोई प्रचार कर तो कहेंगे कि कि बरार क प्रभाव को जला हा यदि तुकाराम को भूलकर तुलसी क पाठ करन का कोई हिदायत न ता मे कहेंगे कि तुलसी रामायण का जमान मे गाव दो। लेकिन सत्य बात ता यह है कि रामदास और तुकाराम सूर और तुलसी, सभी अपन अपन युग क निर्माता थे प्रत्यय वे महामा थे। सभीन पिथ के सत्य को बोझा भीर जैसा पण्य बैसा लिल दिया। अत

## प्रकृति से शिक्षा लो

### राष्ट्रभारती का स्वरूप

श्री माखनलाल चतुर्वेदी का भाषण

सभी बचसी है। लेकिन जब हम राष्ट्रीयता क चरम मे मे खन है तब हमे माला चाहिये एक राष्ट्र क पुन निर्माण के लिये एक हा भाषा का मातृभाषा क अखला होना आवश्यक है।

### राष्ट्रभाषा की चरणा म

अपन प्रात और भाषा का प्रति मान हर एक दिल मे होना चाहिये। किन्तु वह क्यापि अपना सामा न लाय। निम्न राष्ट्रायता क लिय उसक बलिदान का जरूरत पड तो उन क मन मे तनिक भा हिचकिचाहट न होना चाहिये। माला तो अमपवक अपन पुषों क पाषा का सवा करता है उन्हें उहन नता ह फलन-फलन नता है। पुष उसकी सौधमिय मनोवृत्ति का साध है। किन्तु उन जब किसी महाप नैता की पूजा करनी पडता है तब वहा माला निदय बनकर अपन बनुमों का छुना सूजी मे उड़ उड़ कर एक माला का निर्माण करता ह मार वह माला नैता क चरका मे आपत कर अपन का ध र मानन लगाता है। इसा तरह जब हम राष्ट्रायता का आकाहन मि तन अपनी परिमितावा और सफ यताभा को भूलकर हम मा र चरणों मे अपना अवाजकिया आपत करना चाहिये।

### भाषा की प्रतिभा

सन् १८ मे सन २० लाक मान्य तिलक क साथ मे यात्र कर रहा था तब उहान कहा था कि हिन्दी मे मुझे बालाद्वाराणा (ब्रोजियता) नहीं दाख पडना। एक राष्ट्रभाषा होन क पन में तो मे अवश्य है किन्तु इस कमा का गल क न स जाय ? यह सत्य था। आज यशरा की बात है कि आपका स्वागतकारिणा क समापति तथा प्रति क भूतपुत्र मिलिस्कर आ कपन हिता को यह सात-फिरे दिया है कि स्वमे जोर हो मदीनी है। सत्य ता यह है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा होन के सव हो चाहिये है किन्तु जब तक हिन्दी बोलन बाजो में देशभक्ति की चमक उषण न हो तब तक उस भाषा में तन नहीं आयेगा।



श्री माखनलाल चतुर्वेदी  
साहित्य और जीवन

लोग साहित्य को जीवन मे निर मानते है। काम कला क लिय का आवाज उठान वाले महापुत्री साहित्य का पावन मे जुड़ा मानते है। व कहते है साहित्य अपन लिय हा हा। साहित्य का यह चपत्ता नहीं है कि वह हमेशा मधुरवर्चन ही निकाला कर प्रात मे गु वन बाधकर मनोरजन हा किता है। साहित्य सम्पूर्ण जीवन का प्रतिरिप है। अम राजनाति सः उसक अंग है। जावन को हम एक रामायण मे मान लेते। रामायण जावन का प्रभात का मनोरम वालकाड हा नहीं है किन्तु कल्याण क रस मे प्रोतप्रोत अरुणकाड भी है और अथकती हुई युवागमि मे प्रखलित लकाकड भी है। मे मित्र सुभ्रम प्रुवत है आपक कवि और राजनातिक साथ हा साथ जिन्दा कम रह लते है। मेरा यद्वा विचार नम होता है गगन क दीपक जलन लगन है शक्ति का राग्य रगपित हो जाता है। तब मे अपना बासुरा न हा धर एक तरफ बर कर सः मे न चवान बैठ जाता ह मे वृष्णकृष्ण मे काई पांगल होव या न होव में तो हा हा जाता ह। रागि का निस्त-धता क मान्य मे मे प्रख्या पाता ह और जब प्रभात होता ह विशय क सहा रकी मे लखन का प्रोष्ठ आभा मिलती है तब मे उसा बासुरा न रण क बरफार पर डक की जोर लगाता ह और रखलेष की तरफ कूच कर नेता ह। साहित्य ही मे मिलती है। उसमे रेलगाडी क डि या की तरह अलग अलग अंगों क लिय स्थान नहीं है।

### नवीन ग्रो प्रगन

कुछ लोगो का मत है कि नया जमाना नयानता का तकाज करता है। उसमें पुरानकालान साहित्य क लिय अंगह नहीं है। लेकिन यह स्मरण रहे कि यदि आप अपना साहित्य-निर्माण करना चाहते हैं तो आप और युवा क पथों पर न क भविष्य का उस्तु उन तो आपका पुरान साहित्य की अवश्य हा माला यता लना पडगी। चावन-साहित्य क धनुष पर निजव्य का नांर रख कर जिनता पाउ नम आप खोला नता हा आपा वह अजवा। अमर भविष्य क निर्माण मे भूतकाल मे सम्बन्ध स्थापित करन वाला कनो बतमान है। अत वनमान साहित्य गतकाल क साहित्य मे बन्द भिन्न नहीं हो सकता।

### साहित्य मे विनाद

विनाद साहित्य का एक अंग है। चाहे तो विनाद को आप साहित्य का एक पागलपन कह सकते हैं। विनाद प्रतिभा का विभामातर है। बुद्धि मे अवकाश-मद्वन है। स्वमे सत्य होता है। शिवच होता है और विशालता गगन जिला सौंदर्य तो उसम हाता हा है। विचार नम मनोवृत्ति मे मदीसी क बन्दर का तरङ्ग हुमा मे खान है और गाव कूद के लोग रिसवाह। किन्तु इसयक ह माला हरगिज नहीं है कि बुद्धि क ईश्वरव्य नेरवत पर युनिविपल कमेग का रचरा दोवा जाय विनाद का साया होना ह। विनाद का आड मे पाप का आनन्दन करना कनु क्षुण्डित करना है

### माहि य क्या है ?

कुछ लोग गाव क साज कन ह अपना साहित्य हय सहित्य चाहिये न कुछ नहीं करना हम तो राजना निग ह। मेरा यद्वा विचार नम नम नहीं न। हम अपन पावन का साहित्य क अस्त-न न रचरर अमर जना स मुया स रर स स्वयमाव नरा करन है नगलड का प्रायम मिलिस्कर मरडान नम न क सय हाथ मे लन क पहन गल ता है उलम हा म नता ह कन राजनाति न उकनड राजनात का गम न उनरन क नम सहित्य क चरगा मे न न रर खना का ना करत करन अपन निन गिन ह नम जत नक साहित्य का याक नाक का अनामात नहा समन सः न तक हम तुनिया क सय राग का बरानरा मे नहा बैठ सवन साहित्य कत्योभा क मन्त्रि मे पाव का—



बिजली की व्यापक वकाचोच है। वह मानव हृदय का मुख स्वरूप है। मानव सुख के फलदा लोकावस्थापितों के रक्त-बिन्दुओं का समग्र है। साहित्य वह जहाँ कल्पना की जीम लिलन लगे, और कलम की जीम बोलना लग। साहित्य धनन्त जाग्रत धामाभो क ऊच और गहव स्वन है। वह मानव पावन का प्रासवत पनपी हुई सुमस्हत महता का मन्दिर है। वह प्रयो की जमान की परिणामा का प्रासमान म मिलान वाला सुनहरा जीना है। साहित्य पशुत्व और मानव के बीच का सामाज्य है। यदि साहित्य का मास पर भगवान ग्यस्त और गाल्माकि श्रिष्ट और राम का निमाव न करन तो पतिवत प्रोपीणित मानव समान किंका मान स्वरूप अपन हुनो मे शांति पाता ? यदि साहित्य स्वयम न उतार व ता मन्दिर में किंसा आरता उतर वहाँ उड़ू बोलों चमादूड टा रह। प्रसिद्ध क मन्दिर म ना ना सा हिन का मूलि म खाना है यही तो हो रहा है। हम साहित्य के प्रति उगसीन रह हा नहीं सकन। साहित्य को तलाक करन तो ग्राप्यता हा पनप सकती है न मानगता।

पट्टिनि ३ निर्देश

मे विधायकता म फलपत करता है कि सजाव साहित्य का प्रापक है। आप लोग तालीम पान है। किमब क कीबे वन चीन क राई भी दुनिगवा क्षान की हपि म आप प्राय शृष्ट रहते है मैं आपम प्राज्ञा कगा कि आप, इस वन वातावरण म म निकलकर जरा खुली हवा म पाय आप प्रहृति को पुनितका का गले जो विश्व क कोन कोन म फलकर आपको प्रतिष्ठा उसका अत्यन्त करन क लिय आमानित करती है। गमाधराच की चोटियों म गिरिकद्वाराधाम म निगान करन बाल, नया नया साराजों में बिहार करन वाउ दवता की पजा करन तो सीना। हम शिव का प्रजा करत है लकिन उसा गिर कसश्रमर जो कहता हुआ किमान है उसी की ओग ध्यान तक नहीं न। एक शिव क सिर म गगा महता है वन किमान कपी शिव के गनर म पसाना रह रहा है। एक के गनर म सा लनका हुआ है, दूसर के गनर म कन और कन को साप लनका हुआ है। गन नम है और वह नमना उसका पवित्रता का चोतक है। दूसरा नम इसलिये कि हम उसकी लनका दक क लिय एक गज कपभा भी नम सकन। एक का तो हम पूजा करत है दूसर को गज मल्लिकार्जुन से पौरों त गज

## साहित्य-समालोचन

ममालोचनार्थ सब पुस्तकों की दो-दो प्रति आनी चाहियें। एक पुस्तक आने पर ममालोचन न हो सकेंगी।

माम्यवाद या माधीवाद—

ले०—श्री मगलानन्द प्रभाकर प्रकाशक—पुस्तक पञ्जनी द्वारा कला, दिल्ली। पृष्ठ सख्या २५५। सु० १।  
आज तक साम्यवाद की बर्चा है। हिन्दी जनता भी स्वभावतः साम्यवाद के सन्मुख में अधिकाधिक जानन के लिये उत्सुक है। साम्यवाद पर अनक पुनक भी लिखी गई हैं। श्री मगलानन्द न प्रस्तुत पुस्तक में साम्यवाद का प्रतिपादन करने हुए माधीवाद की भी व्याख्या करन का साहस किया है। आपकी पुस्तक का सारांश यह है कि भारत की समस्या का हल साम्यवाद है। माधीवाद नहीं। ऐसा मन रखन का प्रायिक को अधिका है। लेकिन प्रस्तुत पुस्तक के लेखक न जिय इन म माधीवादी की क्षालोचना की है वह निहायत भदा ओग कुरचि प्रले है।

लेखक न माधीवाद को समझन का बिलगल यन नहीं किया। आपकी ल्खन-शली व गम्भीरता दिखान के लिय यहाँ दो-तीन उदाहरण द दना पयौन होगा—

साम्यवाद म माधी की स्वरज्य हलगत करना चाहते हैं। असम्भव है। एक हसन का विषय है। कोरो मूल्यता है। जब हम दूसरे से रोटी भी भाज मांग कर नहीं ला सकते तब क्या एक स्वर्गोराज्य भीप भागन म या साम्यवाद जैसे प्रत्येक शरुन म पा सकतें हैं? सोचना ही पालन है। (पृष्ठ २५)

“हमारी स्वतन्त्रता की लम्हरी का मेनापति एक आईसक महन्ता है न कि खून में गेग को हुनो नैन वाला एक हिसक। क्या हम देश कोष कर सन्ध्यास ले लें वा देश पर मरिड कर स्वाधीनता का सन्ना धामनद लें ? (पृष्ठ ४१)

हैं आप उतर बचा को भी याद कर अकरा का तालाम तो पुस्तक भले ही किन्तु जावन की तालीम ता मवा ही द सकता है। यदि प्रवृत्ति की गोद में आप भवता, अत्यन्त-प्रियता और हृदय के कर जाव तो वह आपकी सवम बड़ी शिष्टक बन सकती है।

माधीवाद का विषय नामक अत्राप्य मे लेखक न प० जवाहरलाल क स्वतन्त्र विचारों और प्रभावशाली भाषण (लाहोर की कांसि क सम्मेलन) पद म दिय गय। की म्बु प्रगसा करने हुए लिखा है—“परन्तु माधीवाग का अदृश्य जादू किसी पर रिजित भी न हुआ। उन्होंने ऐसा वशीकरण मारा कि युवक-सम्राज जवाहरलाल जी को पहाल म बाहर निकलन क पूर्व ही अपन विचार सटियल प्रनीत होन लग। व अहिसासवाज गांधी के पट शिष्ट वन गय। उसी दिन म इस युवक का पतन समझो !” (पृष्ठ १४७) इसी तरह एक और अत्राप्य माधीवाद का कोड लिखा है। उसमें तो आप की अनगल अश्रिप बाने लिखी हैं। हम आश्चर्य है कि ऐसी अश्रिप पुनक को लोग क्यों गना, लेखक साम्यवाद और हिसात्मक शक्ति म विश्वास रखतें हैं। परन्तु साम्यवाद को समझन भी मादुस नहीं होत। इसी लिय साम्यवाद क सिद्धन्त की विवेचना करन की अपेक्षा आपन दो एक हिन्दी पुस्तकों म कस की कर्नमान उचित पर ही अधिक लिखा है।

हम प्रकाशक म अनुरोध करे कि वह इस अश्रिप पुस्तक की सगे प्रतियों को जला कर देश-भेम का पचियतें न। लेखक म भी एक बात कहती है कि वे अपनी लेखनी केवल उसी विषय पर चलायें, जिस पर उनका विश्वास हो।

स्वार्थी सम्राट (नाटक)—

ले०—आ शिन्धामदत्त। प्रकाशक—उपमन्यास बहारा आश्रित, बनारस। पृष्ठ सख्या १७३। सु० १।

श्री शिन्धामदत्त इसत पहले भी बहुत म नामक लिख चुके हैं। उनके प्रत्येक सभ मादरों मे वर्तमान कुटिल सम्राट की सामाजिक उपाधियों का नमन-विच खाता जाता है। प्रस्तुत नाटक का भा उद्देश्य सरण है।

यदि पाठक इसमें साहित्यिक भाषा, पात्रों का चरित्र-चित्रण कुछ न का प्रयत्न करगो, तो उसे अश्वर्य निराप होना पड़ेगा। लेकिन लेखक का ऐसा उद्देश्य भी नहीं पक्क

पड़ता। सर्वसाधारण के लिये ‘राम-मंच’ पर खेलन लायक नाटक लिखना ही उनका उद्देश्य जान पड़ता है और इसमें वे सफल हुए हैं। लेकिन यदि उद्देश्य के साथ ही स्वाभाविकता बरिजों के विकास व भावा-परिवर्तन की ओर भी कुछ अधिक ध्यान देंत, तो नाटक कालिक उपयोगी हो जाता। धर्मपाल का भादरों की बातें करते हुए पिता की गालिया सुभान लगना असंगत जान पड़ता है। इसी तरह तोताराम का अपनी लक्ष्मी से अग्रपना कछुपिन हृदय कोल देना अस्वाभाविक प्रतीत होता है। तोता-राम का चरित्र दिखान के लिये स्वगत या किसी अन्य मित्र के साथ वार्ता लाप दिल्खा जा सकता था। अग्रार है, लेखक आप म नम निवेदों का प्यान रतेंग।

—कृष्णचन्द्र

गमायथ मार—स हकन०—श्री

अस्मिकाप्रसाद बाजरेयी, प्रकाशक—तननामालय बाजरेयी, इमारा प्रस १०५ सुकानाम बाबू कलकत्ता; पृष्ठ सख्या ७८, सु० १॥

प्रस्तुत पुस्तक धामदुगोस्वामी तुलसीदास इन रामचरित मानस का सार है। गमायथ धर्ममथ्य है, इसलिय प्रयक धार्मिक व्यक्ति की इसकी आश्रयकता अनुभव होती है। सारकहता महोपन न गमार में समार भरन का प्रशस्नीय कार्य किया है। वृ कि गमायथ बड़ी पुस्तक है और एक ससाह म कन में खन नहीं हो सकनी, इसलिये इस पुस्तक म इसका सार निकाल कर रस दिया गया है। इस में कथा का सिलसिला इटन नहीं पाया है और सोचारण धर्म, राधे, भक्ति, क्षान, वैराग्यवि सन्ध्याया विचार भी नहीं इटन पाय है। पुस्तक की क्षुपार्थ भी खानी है।

उलकन.—ले०—श्री वन्दु शर्मा

प्रकाशक—वेवस पट्ट कम्पनी, वेवमरजम रोड, लाहोर। पृष्ठ सख्या १०१, सु० १॥; क्षुपार्थ साफ व सुन्दर।

यह पुस्तक ११ सुन्दर कहानियों का समग्र है। प्रायः सब कहानिया एक दूसरी म बह-बहू क है। उल-अन शीर्षक वाली कहानी तो वस्तुतः उलकन ही है। पाठक उसमें उल्लेख बिना नहीं रहता। वन्दु शर्मा की कहानियों में मीन वह विशेषता पायी कि वे छोटी, सरस और भावपूर्ण हैं। वन्दु जी न हिन्दा साहित्य को बड़ी बड़ी आशायें हैं।

—जगन्नाथ गुरु

कुछ समाचारपत्रों में बूची राज्य के बारे में जो लेख प्रकाशित हुआ है जिन्हें बाहर के लोग जो बूची में निर्यात अपरिचित है यही अनुमान करेंगे कि परेशियों में निर्यात बूचा में कोई गोर प्रभयर मखा रखा है। निम्नलिखित कुछ पंक्तियाँ वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए लिखी गई हैं।

देशी और परदेशी के प्रश्न को कुछ समय के लिए एक ओर रख कर 'न्याय' में 'न्याय' जाय तो निर्यात बूची आन इस बात पर गव कर सकता है कि उसक उच्च पदाधिकारियों में से एक भी 'यकि' ऐसा नहीं है जो किन्ना रूप में भी निर्यात बूची को। पुराने नमूने में लव्ही की पाल मशहूर थी। परन्तु आज अन्य निर्यातवा बान भी इस बात को स्वाक्षर करता है कि यदि बूचा का उन्नति की ओर यहा खबर रहा और महाराष्ट्रपरिज आमन ईश्वरसिंह जी यदि अन्य राज्य कमचारियों के साथ प्रम तथा उन्नता में सहयोग करते हुए स्वयं राज्य कस्थ व हर प्रकार क सुधार में विलक्षस्या न रहे तो वह दिन दूर नहीं जब कि यह छोटी सा निर्यात बहुत उन्नति कर जायगी।

बूची क कई महकमा पर आनक ध्यासप किय गय है। कहा गया है कि पोलिस और अन्य महकमा पर रुपया पाना का तरह बढ़ाया जा रहा है परन्तु प्रत्येकाल और नियम पर कुछ ध्यान नहीं दिया जा रहा। अन्य यह है कि गत वर्ष पोलिस पर कुछ भी नया खच नहीं दिया गया। कवल दो चमड़ा नहों कि बाहर क कजरी क गुजरन क माफ क्वाल कजरी जाते है पोलिस लाइन बनवाई गई है। वह भी पोलिस इन्फांट्री में गार्ग का क'ची जुनार में पुरानी बनी हुई इमारत में रुकि करक अपन हा बज्ज की बचत में बनावई है। दूसरा और महिकल नियम में से वह अस्पताल क अलावा हिन्दाली और कश्मीर पाउन में नय निहाइन उन्ना और अप डू डू' निवि-सायय बनवाय गय है। जहा एक गणदर काम करता था वहाँ आज पांच डा० है। लठी गणदर का क्वाचित जहा पहले नाम भी नहीं सुना गया होगा। वहाँ आज मेन्गिनी हास्पिटल बल हवा खोल दिया गया है। वह अस्पताल में मरीजों क रहन की जगह दुगुनी कर दी गई है और ऊँची ऊँची जा चढ़ी है। क्या यह पालें टीक नहीं और क्या इनल यह सिख नहीं कि उस आलाप सिन्ध्या है।

## रियासती दुनिया

# बून्दी में परदेशी का प्रश्न

( ले० एक परदेशी )

( राजपूताना का प्रायः सभी निर्यातवा में 'देशी परदेशी का आन्दोलन थोड़ा बहुत चल रहा है। इस लक्ष्य में उसके एक पहलू पर विचार किया गया है। आशा है निर्यातवा प्रजा न्य प्रश्न संचि लगी — सम्पादक )

आग चल कर लख महीद्वय न इस बात पर शोक और कांच प्रगट किया है कि परदेशी यहा नकनियें और व्यापार करत है परेशियों क व्यापार करन क आलाप का नर इन आग चलकर नग हा परदेशी आश्रितों के गंग में हलना हा कहना है कि न्ये में ह वर वर को राज्य न स्वयम् खोज न कर मगाया है। अन्यो बुलाया है यह तो बून्दी वाले भाई ही जान क्वाकि इन आश्रितों क आन क पहलू का हालन न आश्रितों का योगे बून्दी निवासता भाई न्यादा अन्धी तरह जानन है।

## देशी और परदेशी

निर्यातों में 'देशी और परदेशी का प्रश्न हर जगह उठाया जाता है। इस विषय का बारका में 'न्याय' में नये हुए टुप्पड़ होता हुआ भी अति मनोरंजक है। भारतवाय नि सन्ध बहुत सत्य है परन्तु यदि बाहर का अन्य साथ जलिया यह सुन कि जिस भारतवर्ष को वह एक रोग समझती है उसी में दस माल नरा पर जाकर मनुष्य परदेशी कहलान लग जाता है तो वह क्वाचित विचारस भी न करे। हिन्दुस्तान में ही एक हिन्दुस्तानी का अपन दूसर कि नैस्तेस्की माथों द्वारा परदेशी कर बर पुकार जाना एक अद्भुत तमसा नहीं तो क्या है? नया बून्दा जाका सार भारत क निय अमरीका बनाना चाहता है? बून्दा हा नहीं जैसा कि कहा जा चुका है यह प्रश्न क्वाचन सब निर्यातवा में उठाया जा रहा है और कुछ समाचारपत्रों में तो इसमें सम्पन्न खन जाले लेख और समाचार सज जोर में छुपे जान है कि वास्तविक राजनिक दुष्प्रजाओं पर आ ताना जोर नहीं दिया जाता। इस विषय का बाहरा स्वरूप कुछ ऐसा है कि जब तक गोर में न 'न्याय' जाय सत्य में उन्हीं हरे धोखान निर्यात सत्य और उचित जान पड़ता है। और हालांकि अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि वह आन्दोलन वास्तव में केवल

निर्यातों में कुछ विचार लागों द्वारा पारचरालित होना है। इन भाइयों न क्वाचित कभी स्थल या नहीं किया कि वह और उनके भाई अमना भारत में क्या क्वाचित लाभ उठा रहे हैं। कलकत्ता कम्पई आदि भारत क सब न बह व्यापारिक कन्टों में ० फासवी में न्यादा व्यापार निर्यातवा भारवाहियों क हा न में है। आज यदि न्ये वरा में निर्यात बान्ध किया जाय यह कह कर कि भयना जाओ यहाँ तो कवल यहाँ क आनमा दुकान खोल सकन है और व्यापार कर सकन है तो निर्यातवा की क्या दुश्चा हो य प्रकृष्ट निर्यातवा बीकानर में जाओपर न व राज पतान की अन्य सन उठा निर्यातवा में जहाँ पर कि गांव न में है अमना राज में नून खोल हूय और व्यापार करत हूय मने क कनाय शाही महल और अहिरिया धर्मार्थ खोले हुए रव स्टेशन तक मिला। हम प्रकृत है कि स्वयं खेकड़ा और हजारा का सत्य में जाकर अमना राज में वरा क लोगो क बराबरा क प्रधिकार में व्यापार व अन्य कस्थ कला और अपना निर्यात में यदि कोई अमना राज्य बला दास भी पाय तो उसके पाडे पड़ जाना स्याय अयाय और 'न्याय' नहीं तो क्या है? नया यहा बल बून्दा पर लाग नहीं है? क्या बून्दा में पेप को मड नहीं जिन्का उकाने और सारा काराबार अमना राज्य व अन्य किन्ना निर्यातवा है? नया पेप लोग नहीं जिनका नाकिय अमना राज्य में है? एवं 'यकि' आपकी गैलिया और सक्का की तादात्त में मिलन और बाहर क आदमा ( जिन्ह वर परदेशी राज्य में दुकानों है जने कि इनमें कोई राष्ट्रीय सम्पन्न हान हो ) तो यहा गिनी बुन्दी सत्य ) हा मिलन। ऐसा अवस्था में 'देशी और परदेशी क न्याय हूय शरीराल का करन स्वाय और अविद्या नहीं तो क्या है?

हम इस बात का नवीनार कन है कि निर्यातवा में बरीगारा और चीनता बढ़ता जा रहा है परन्तु यह कद दना उचित होगा कि यह बरा जगगी और गैलता अमना भारत का बरीजगारा और नैन्ता का प्रतिनिधिमार्ग है नाकि निर्यातवा और अमना भारत क भाई नहन जम निरुद सम्पन्न होन क मगग निर्यातवा पर वर जिना नहा रह सकता इनका जुम्बवार निर्यातन है और ना हा प्रजा भारत बान इसकी एक मात्र जुम्बवार जमा कि सब जानत है है इन दोना का परा चीनता जिन् निर्यातवा की प्रजा और उन्मक भाई अमना भारत जा ( परदेशी ) परस्पर सहयोग म प्रम में ना हा कर सकन है

## भावना में सुधार

भारत 'देशी राज्य प्रजा परिषद क मनुष्य अक्षियों न निम्नलिखित वक्तव्य प्रस की निया है—

आधुना शासन क वास्तु भागन सरकार क दावान निरुक्ति क निष्पन्न क विपरत आधुना क निर्यातन हान शासक का वनमान कालिक की योजना स्वाकार का गई है। यह कालिक पाचा क इन्कजुनार है जनता का न्यम प्रतिनिधित्व नहीं है। स्या प्रकार एक भारतीय युधि पर सिविलियन द्वारा शासन बनान का माग उकरा कर नमता का माग पर भा न्यान नर्हा दिया गया। कन्तु आधुना का जनता का यह जान कर सन्तोष हो रहा है कि मानवा ऐजेन्सी क पोलिटिकल एज न था १०० पस रिज्ज शासन न्यवस्था कान्नी विलक्षणा ल रहे हैं।

बबलाना राज में दो लाप क० क जल में गाय का आधा क अब कान में कुछ नुसार अवयय हुआ इसी प्रकार नमता का अन्य गफा यना व राय ना अययय का आ बारीका म न व होन का आग्रस कता है। निम्नलिखित यणिग मो राजा क दुश्चर न नाचाय व निर्यात व नैन जम न्यग आन क कारण मायाज व उक'ना मिला।

की साधाम्यमला पा बाड ० कसरीमग नडारा हरेरान गजड ० बुजालान माडिया ० नन्दा नन्दा ० सदाक अहमद ०

इसक प्रतिक्रिया य ल' न जांच का परिणाम नया अन्ता न य न्खन को है।

# म० गाँधी को सीमाप्रान्तमें जाने की आज्ञा नहीं मिली

लाइवलिङ्ग



## महात्मा जी का वक्तव्य

पत्र-व्यवहार प्रकाशित करने हुए महात्मा जी ने एक वक्तव्य भा प्रकाशित किया है जिसमें हम बात को दुबारा पूछ बताया है कि अखबारों में उनके और वायसराय के बीच होने वाले पत्र-व्यवहार की प्रतिलिपि प्रकाशित हुई है। वायसराय ने कुछ कर पत्र-व्यवहार प्रकाशित करने को बोन कहने हुए महात्माजी लिखा है —

परन्तु मैं जन्ता को इस बात न, ब्रह्माह करता हूँ कि वह न समझ सके कि पत्र-व्यवहार समाप्त हो गया और मैं वायसराय की राय के विरुद्ध सीमाप्रान्त जाकर निरपेक्ष होने के पहले ओके की प्रतीक्षा में हूँ।

इस समय सविनय अवज्ञा करने की मेरी काइ इच्छा नहीं है।

मेरा उद्देश्य यहाँ है कि परमेश्वर के एक विनम्र भक्त के रूप में सीमाप्रान्त के उन लोगों से मिलूँ और उनको जानूँ जोकि अपने दो खुदारे बिड़ मतभार कहते हैं।

क्योंकि अब उनका नता गिर पतार कर लिया गया है इसलिये मेरी यह इच्छा और भा बढ़ गई है लेकिन

मेरा तात्कालिक उद्देश्य सरकारी आज्ञा भंग करने में दूरा नहीं हो सकता। अतः इसके लिये आवश्यक अनुमति प्राप्त करने को मैं उन सब वैध न्यायों में काम लूँगा जो कि सम्भव हैं

यदि मेरे उद्देश्य पर स्पेड हा मुझे वहाँ जाना न रोकना का कारण हो तो मैं इस सन्देश को दूर करने का

## सीमांत में जाना अर्वाङ्मनीय

### वायसराय का उत्तर

### अभी पत्र-व्यवहार जारी है

म० गांधी ने वह पत्र व्यवहार प्रकाशित कर दिया है जो उन में और वायसराय में सीमाप्रान्त जान के सम्बन्ध में हुआ था। वायसराय ने म० गांधी का कहा जान की आपसिजनक और धवा कुनीय बताया है। अभी तक म० गांधी का पत्र व्यवहार जारी है।

महात्मा गांधी



## प्राइवेट सेक्रेटरी का जवाब

महात्मा जी के उक्त पत्र के उत्तर में २५ नवम्बर को वायसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी ने, वायसराय की ओर से इस बात पर हर्ष प्रकट करते हुए कि आज्ञा भंग करने की महात्मा जी की कोई इच्छा नहीं है लिखा कि

इस प्रश्न पर सीमाप्रान्त की सरकार तथा अपनी कॉन्सिल ने सलाह कर वायसराय की ओर व सब इस सर्वेसम्मत मित्रवत पर पड़ते हैं कि अभी आप को सीमाप्रान्त जाना वाङ्मनीय नहीं है।

### अर्वाङ्मनीय क्यों है ?

उक्त पत्र पर २८ नवम्बर को महात्मा जी ने फिर पत्र भजा जिस में यह बताने के लिए कहा कि उन को सीमाप्रान्त जाना अर्वाङ्मनीय क्यों है और अभी से आप का क्या अभिप्राय है ?

## कोटा ( राजपूताना ) में

## ‘अर्जुन’

### कहाँ मिलता है

सुबह ८ बजे से १० बजे तक

गन्धी शिवनारायण विशेश्वरदास

की दुकान बम्बे हाइस्कूल के पास

समय १२ बजे से ४। बजे तक

मोहन न्यूज एजेंसी, रामपुर बाजार कोटा, राजपूताना।

## महात्मा जी का पत्र

वायसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी को वहाँ से १५ नवम्बर को म० गांधी ने पत्र भेजा जिस में लिखा कि आपसे विसम्बर के बाद अपने तब यह ज्ञान-समझने के लिए कि आज साहब अनुकूलपरकार का के अहिंसा के उपदेश न उन के अनुयायियों में कहीं तक प्रवेश किया है मैं सीमाप्रान्त जाना चाहता हूँ। साथ ही प्रायः-उद्योगों की दृष्टि में भी मैं उन की मदद करना चाहता हूँ। यह कहने को जरूरत नहीं कि सरदारियों में सरकारी कानून भंग की आवका फैलाना का मेरा कोई इरादा नहीं है।

हालांकि सीमाप्रान्त जान के सम्बन्ध में मुझ पर कोई कानूनी पाबन्दी तो नहीं है तथापि मैं ऐसी कोई बात नहीं करना चाहता जिसके कारण सरकार से मेरा संबंध हो। जहाँ तक मनुष्य की हैमियत में सम्भव हो मेरी विलो इच्छा है कि मैं ऐसे संबंधों में न पड़ूँ।

अतः क्या आप कुना करके इस सम्बन्ध में वायसराय के विचार जान कर मुझे सूचित करेंगे ?

### ‘अभी’ का अर्थ

इस के उत्तर में २ विसम्बर को प्राइवेट सेक्रेटरी ने लिखा कि ‘अभी’ से मतलब यह है कि जब तक वायसराय को यह सन्तोष न हो जाय कि आपका कहा जाना आपसिजनक न होगा उतही हाल के वर्षों की घटनाओं तथा वर्तमान परिस्थिति पर पूर्ण विचार करके ही ऐसा निश्चय किया है।

पत्र-व्यवहार प्रकाशित करने की इजाजत

इसके बाद २ विसम्बर को महात्मा जी ने तार देकर अखबारों में प्रतिलिपि प्रकाशित होने की इजाजत माँगी और साथ ही यह भी लिखा कि मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ सीमाप्रान्त जान संबंधी अपने कर्तव्य पर विचार कर रहा हूँ।

इस पर १० विसम्बर को तार से प्राइवेट सेक्रेटरी द्वारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित करने की इजाजत मिली।

## भारत को ओपनिवेशिक स्वराज्य नहीं मिलेगा

(पृष्ठ १० का शेष)

इसके पन-पन में भारतीयों के प्रति अविश्वास भरा हुआ है, जब कि हम जानते हैं कि जो भी भारतीय उसे ओहदे पर गया वह किसी अहंरज से कम योग्य साबित नहीं हुआ। कॉम्रेस दल ही ऐसा है जो किसी शासन-विचार को चला सकता है। बर्लिस ही देश के युवकों में विश्वास की मांग कर सकती है। अपनी मांग पर ही वह चुनाव में सफल रहो है। मि० ह्याकफ़्ट (लिबलर)

न साधारणतः रिपोर्ट का समर्थन किया, पर सतीय भारत सभा में अप्रत्यक्ष चुनाव का विरोध किया।

लार्ड डुम्लर

कजरसेविष विरोधियों के प्रमुख थे। आपन मि० फुट न असहमत होने हुए कहा कि सरकारी प्रस्ताव-समस्या को हल करने क सर्वोत्तम उपाय नहीं है और वे भारत तथा साम्राज्य को बुलायों, कनरों एवं युवकसभों में झल देते। सरकार इन सुचारों में जो मशीन तैयार कर रहा है उस पर कॉम्रेस कक्षा कर लेगी, जो मि० डिलरप को तरह भारत से अगारों को निकालन पर तुली हुई है।

कॉम्रेस क प्रभावपूर्ण होन के अग्रपन व कारण बताया—

(१) वही एक सगणित दल है, (२) इतिहास बताता है कि गरम सत्ता नरमों को हजम कर जात हैं जो कॉम्रेस माइस्ट्रो को खल कर दगी (३) चुनाव के साथ मनमाने बरदे कने तथा वक्तव्य निकाल कर सरकार क सब न अज्ञान (भारतीय) मत-द्वारताओं पर वह अपना आड़ बना लेगी।

आपन कन्ज को उत्तरदायित्व दिव बगेर पडले सिर्फ प्रमतीय स्वतन्त्रता, वह भी कुछ हेर-फेर के साथ देने पर जाए दिया।

चाद की जगह वम

कणल वजपुड न सुचारों की कही आलोचना की। आपन कहा कि भारत में हमन कोई खुश नहीं है, कलिस भयभोग है। वह तो 'जिस बाई के लिये लिखर रहे थे, उसकी जगह ऐसा बम का भोलारह' जो उन की ओरुधवा स्वतन्त्रता को भी नष्ट कर देगा। साम्यवायिक निबोधन को

मो आपन जोरों से विरोध किया और कहा कि प्रजातन्त्र में एक बार यह विष बुला नहीं कि फिर कभी प्रजातन्त्रवादा नहीं हो सकती। राजाओं को प्रमुख देन कामी आपन विरोध किया।

सर दोनल्ड सोमरवेल

न सुचारों का समर्थन करते हुए कहा—यदि वर्तमान बलसर को दिया गया तो मविष में सेव कठिन ही नहीं, असम्भव हो जायगा।

दुसरे दिन का विवाद मजदूर दल के मि० मोरगन जोन्स के भाष्य से आरम्भ हुआ।

बर्मा का पुषकराय

बाई में सहकारी भारत-भन्नी मि० बलसर न बर्मा के पुषकराय का विस्तार में मज्लेस किया और इसमें बर्मा का हिल बताया, साथ ही बर्मा को ब्रिटिश सरकार का एक जबरदस्त अधिकृत प्रदेश बताया।

मजदूरदल क सरोचन के विरुद्ध तर जान सामयन का भाष्य हो जाने क बाद मि० चर्चिल न ७० मिनट तक पुष, अपने घर का प्रतिवादन किया। आपन कहा कि आर्यवैद और दृष्टिग अफ्रीका में भारत की तुलना करना ठीक नहीं है। 'मार्गटफोर्ड स्क्रीम में अननक बड़े बड़े प्रयोग किये गए, परन्तु, बहुतों का यह विश्वास है कि वही भारत की राज की सारी गड़बड़ी की जड़ है।

भारत की एकता अपने आप कोई उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य तो भारत का हिल है।

सर आस्टिन चैम्बरेलेन न मि० चर्चिल को जवाब देते हुए रिपोर्ट का समर्थन किया।

भारतीय भावनाओं पर ज्यादा ध्यान दो

मि० लेस्बरी ने भारतीय पक्ष लिया। आपन कहा कि भारतीयों की भावनाओं पर जोशा ध्यान दिया जाना चाहिये। इस बात को भी हमें याद रखना चाहिये कि हम ३५ करोड़ भारतीयों के दिल पर लिबार तो कर रहे हैं, पर बिहार में भारतीयों की भी शामिल नहीं है।

भारत को निश्चिन्तरूप में यह जानने का अधिकार है कि डोमिनियन स्टेट्स अब सरकारी नीति रही है या नहीं।

भारत के सम्बन्ध में मैं आप को चुनौती देता हूँ। गोरसरायों गान्धुधारी तथा दृढ़क आरक-कण्ठ के द्वारा हमने उन्हें स्वतन्त्रता का सन्देश भेजा है। पर

हम प्रस्तावों में ऐसा कुछ नहीं है। हम से आम लोगों को कोई अधिकार नहीं मिलता, व भारतीयों को अपने मामलों का प्रत्यक्ष और निष्पक्ष स्वयं करने का ही हक मिलता है।

मि० बास्टन

न अपने अंतिम भाषण में सबकी बातों का जवाब दिया और नय सुचारों व बार में कहा—

यह सच है कि कामिसियों न इसमें इनकार किया है तथा अन्य राजनैतिक दलों न इनकी बहुत टीका टिप्पणों की है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि जिम्मेदार भारतीयों इसक शुक्र होन पर इसमें भाग नहीं लेंगे।

संशोधन गिरा, प्रस्ताव पास

अन्त में मत लिखे गए, जिसमें भारत को डोमिनियन स्टेट्स देन सम्बन्धी मजदूर-दल का सरोचन तो ५६ क विरुद्ध ४९१ क भारी बहुमत से रद्द हो गया और रिपोर्टों की भावी प्रगति सुचारों का आधार मानन का मुल सुधारको प्रस्ताव १२७ क विरुद्ध ४९० क बहुमत से पास हुआ।

## हाउस आफ लार्ड्स

की बहस

'डोमिनियन स्टेट्स' शब्द

छोड़ने पर जोर

हाउस आफ लार्ड्स में १२ ता रीस को लार्ड (इरविन) के प्रस्ताव क साथ जगजगट सिन्केट कमेटी की रिपोर्ट पर जो बहस शुरू हुई थी १३ ता० का भी वह जारी रही।

डोमिनियन स्टेट्स शब्द छाडा

केम्ब्रिजकी क आर्यविगण न इस विमका विवाद शुरू करत हुएकहा कि अब समय आ गया है कि हम 'डोमिनियन स्टेट्स' क मूमायक शब्द को छोड़ दें जिसन कि बहुत गलतफहमियां पैदा का ह।

लार्ड सेलिस्बरी का निरोध

लार्ड मेलिसबरी न प्रस्तावों का विरोध करते हुए कहा कि सिन्केट कमेटीन इस बातपर ध्यान नहीं दिया है कि उसक प्रस्ताव मसमन भी हैं या नहीं और परम्परा विरोधी बातों का हल न कर उनको दूरगुजर करने की कोशिश की है।

\*\*\* \*\* समाह की हलचल \*\*\* \*\*

सोमान्त गांधी से सफाई

नहीं दी

अदालत में बयान

बम्बई १३ दिनम्बर

आज लोक प्रेसिडन्सी मजिस्ट्रेट क इजलास में बाबू अशुल गम्फार खाँ को मामला पेरा हुआ सरकारी बकील न इस्तगाम क तीन गवाही न जिरह की, इसक बाद खाँ की ओरने श्री मुल्लाभाई देसाई न निमन बयान पेरा किया:—

मुलतः अनुवाद सही ३ और भर कानुनवा दोस्तों क कथानुसार उसमें ऐसी बातें हैं, जो ताजोरात हिल्न की उस धारा में आ सकती है जिसक मातहत मुकदमे जुमे लगाया है।

मैं एक ककार कर्मि सनन हू और फिलाहाल जल न जाने की उसकी नीतिन को मैंन स्वीकार किया ह, इसलिए राज-द्रोहात्मक बातें कहन को मरी कोई इच्छा नहीं थी। अतः मुझे इस बात के लिए अफसोस है कि चाहे अलिच्छा न ही कभी न

## अब्दुलगम्फार खाँ को २ साल की कैद

अभी बचर मिला है कि कनिवार की मजिस्ट्रेट न दो साल की सजा सुना दी।

हो पर मैंन अपने भाषण में ऐसा बात कही निम पर मुकदमा चल सकता है।

आर भर साग भाषण को पढ़ा जाय, तो मुझे आशा है कि प्रशासक का यह सन्देश नहीं रहेगा कि सरकार पर दोषारोपण करने क बजाय आन्दोलन के निराश पडल पर जोर न्याही मरो उद्देश्य था।

इस्तगामे की कार्यवाही

खुपतर मि० बाबर पलिक प्रोसीक्यूटर न खान अब्दुलगम्फार को यह भाषण पढ़ कर सुनाया जा उम्हने २७ अक्टूबर को बम्बई में दिया था। मि० बाबर न आग कहा कि भाषण बनरनीक था और उसमें राजद्रोहा की अलक था। भाषण में सरकार क विरुद्ध कई बात कही गई। उदाहरणतः

सरकार हिन्दू मुसलमानों को भिन्नही है, सीमात्मक में पतना को तंग करती है इत्यादि।

इसभाग की ओर में निम्न अभियोग लगाया गया:-

(१) सभाट का बकादार प्रजा में असतोष पैदा करना।

(२) मारत-सरकार के विरुद्ध लोगों को भड़काना।

फैलने के लिए आगोमो शनिवार की तारीख लगा दी गई

—

## डा० सत्यपाल पर मुकदमा

डा० सत्यपाल पर १२ नवम्बर को बुलाया के सिलसिले में विवेचन के एक भाग पर मि० पूल की अध्यक्षता में राजद्रोह के अभियोग में मुकदमा चल रहा है। पब्लिक प्रोसीक्यूटर न पहले ही प्रेस-रिपोर्टरों को भाषण के प्रश्न में व्यापक की ताकीद करती है। मि० आरकरअली न डाक्टर साहब की ओर में पैरवी की। उन्होंने कहा कि सरकारी अनुवाक का अनुवाद गलत है। फिर सारे भाषण का सारांश बुलाव के लिए अग्रोल करना था, न कि मित्रिदा राज्य के विरुद्ध नकार फैलाना। भाषण के किसी एक वाक्य को चुपक कर वक्ता की प्रमोदित की बर्दाश्त करना सकत। इस तरह तो बाबिल की राजद्रोहवादी हो जायगी, जिसमें तलवार में शासन करने वाली सरकार का तलवार में नाश होना लिखा है। एक भी गवाह सरकार ऐसा ऐसा नहीं कर सकी जिन यह भाषण सुनकर मित्रिदा राज्य में नकार हो गई हो।

फैलना १० दिसम्बर को सुनाया जायेगा।

## सेन्ट्रल बैंक आफ इन्डिया

गवर्नरमन्ट आफ इन्डिया के कार्य-विभाग में प्रकाशित की गई एक लिफ्ट द्वारा यह घोषणा की गई है कि रजिस्ट्रार बैंक आफ इन्डिया के सब से पहले मन्ट्रल बोर्ड के लिए निम्न लिखित न जावरकर नियुक्त किये गये हैं:-

बम्बई रजिस्ट्रार-सर पुरुषोत्तम-दास डोङ्गरीयान, एफ. ई. बोस। कलकत्ता रजिस्ट्रार-सर पद्मवर्धन बन्धु, रायबहादुर सर बर्दादास गोयनाका।

पिल्ली रजिस्ट्रार-सा बहादुर नवाब सर भुजामिना लॉ।

आशीग-सर सुब्रह्मण्यम मजीदिया। मद्रास रजिस्ट्रार-दीनानाथदादुर पम, रामचन्द्र राब।

रंगल रजिस्ट्रार-यूनाथ प्रोह।

## साप्ताहिक डायरी

२ दिसम्बर, १९३४

—मिल्ला (इली) की लखर है कि वहाँ सातवें नूकन से उत्तरी लूजोन द्वीप में १६ कि.मी.पानी डूब गये।

—जोसफ रक्टर नामक एक आस्ट्रियन बो, जिसे हाल ही में पुलिस पर हमला करने के अभियोग में ६ मास की सजा हुई थी, जब वो यूरोपियन अप्रखर लोनाबला से बम्बई ले जा रहे थे। वह चलती गाड़ी से छूट कर भाग गया।

६ दिसम्बर, १९३४

—मोरो कारख (मद्रास) का समाचार है कि दलिया टूवनकोर में काविया पद्मन के समुद्र तट पर स्थित एक गाँव में ईसापूरी तथा बुलाजना का एक मस्जिद के सामने सजा वजान पर भण्डा हो गया जिसमें ४ ईसाई घायल हुए।

—साहोब में मो० हबीबुर्रहमान लुधियानवी के समारपित में मजलिस-अबदार-ए-हिन्द की कार्यकारिणी की एक बैठक हुई, जिसमें कर्णाला राज्य के लिखत अहमद आन्दोलन बन्द करने का निश्चय हुआ।

—लन्दन ६ दि० के समाचार के अनुसार दो जापानी नाविक अफसरों के सिगापुर आ जान सपुलिस न कर पाये मार जियमें कुछ कागजात जप्त किये और दोनों को सिगापुर ड्रोगन का हुम्न दिया गया।

१० दिसम्बर, १९३४

—बर्ष दिनों में इन्दौर में होन वाले ४० भा० हिन्दी साहित्य सम्म-

सपरिवद् गवर्नर-जनरल द्वारा निम्न लिखित ४ दायरकर नियुक्त किये जायेंगे:-

सर होमी मेहता (बम्बई), ए. ए. ब्रस (रंगल), ला० श्रीराम (बिजौर), मोरम हाजी मोहम्मद सेठ, मद्रास।

एक सरकारी अफसर भी सपरिवद् गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त किया जायगा।

जे. डब्ल्यू. कैली सी. प्रार्थी ई. कम्पनी का कम्प्लेयर।

इस प्रकार एक डायरकरों, गवर्नर तथा दो बिन्दी गवर्नर सफिट रिजर्व बैंक आफ इन्डिया का पूरा सेटलम बोर्ड बन जायगा।

—

लन की स्वागत समिति ने सर्व सम्मति से ४० गांधी की सम्मेलन का समापन चुना है।

—हैदराबाद (एक्कन) की लखर है कि गोवर्ध गाँव में दो पाटियों के भागों के मुकदमे का शुलबरोपा के शेराजबान में फैसला सुना दिया है जिसमें १७ अभियुक्तों को प्राय दण्ड तथा और बाकी को छोड़ दिया।

—श्री अच्यकर दम० एल० ए० अपने पैरों का इलाज कराने बम्बई पहुच गये हैं और ३० देशमुख न सुभायन के पश्चात कहा कि कोई कतरा नहीं है।

—हलाहाबाद का समाचार है कि स्थानीय प्रेस कर्मचारियों की एक मीटिंग पुणेरोसम मार्क में हुई, जिसमें इजिन बनाने का निश्चय करने के पश्चात एक प्रस्ताव द्वारा श्री एम० एन० राय की रिहार्ड की माँग की गई और जब तब रिहार्ड न हो, जेल बंदन की प्रार्थना की गई, जहाँ उम्माक इलाज हो सके।

—स्वर्गीय जगमोहनलाल (हाका) के एक प्रस्ताव व्यापारी) पटना-सुनिवरसिदी को अपने नाम पर एक मस्जिद बनने स्थापित करने के लिये ४ लाख रुपये देने की वसीयत कर गये हैं।

—लखर है कि ४० भारतीय हिन्दू महासा के कलमर आधिकेयन में इस प्रस्ताव पर विचार किया जायगा कि जवाहर पालमेंटरी कमीटी की सिफारिशों व सामाप्रथिक फैसले के सम्मन्ध में हिन्दू एडिहोको को सम्मान के लिये एक डप्टेशन लन्दन भजा जाय।

—महाराजा कर्णाला ने आज एक भाषण में यह स्पष्ट घोषित कर दिया है कि रियासत के प्रधान-मंत्री के पद पर कर्नेल फिशर (राजनैतिक विभाग) को नियुक्त किया जायगा। फिलहाल यह नियुक्ति २ वर्ष के लिये होगी। कर्नेल फिशर जनवरी १९३५ के अन्त तक अपने पद को चार्ज ले लेंगे।

—आज बारसही के ४० कमिश्नर ने स्थानीय जेल में एक अप्रदाख की, और करीब ४०० व्यक्तियों ने जिन्हें विमनर्द नामक प्रख्यात बागी की सहायता करने के अभियोग में जन्ना फौजवारी की ११०० की घारा के अनुसार गिरफ्तार किया गया था, अदालत में पेश किया गया। गिरफ्तार व्यक्तियों को ४००-४०० की जमानत पर छोड़ दिया। साथ ही उन्होंने मोटिस दिये गये कि नकबल्ली से रहने के लिये उन से क्यों दोनो हजार रुपये की जमानत को जप।

—लखन का १० दिसम्बर का समाचार है कि मजदूर दल के सदस्य मि० मयान जॉन्स को एक प्रश्न का उत्तर देते हुये मि० बटलर न कहा कि श्री शरतचन्द्र बोस को अलेक्जेंडरी में उपस्थित होन की इजाजत नहीं मिल सकती क्योंकि आप राजबन्दी हैं और देश देश के आन्तरिक शांति को कायम रखने के लिये आपको जेल में रखना आवश्यक है।

११ दिसम्बर १९३४

—चटगाँव की लखर है कि सार चवारापान कैवियों को जेल भुल-शासन भंग करने के अपराध में ८८८ मास की सख्त सजा दी।

—बंगाल के जिलों में ३६२६ मनुष्यों ने, १९३४ में आत्म हत्यायें की।

—मिर्जापुर जिला मजि० न बंगाली मद्रालोक नवयुवकों का मिर्जापुर के मुख्य-मुख्य स्थानों में साफिल पर घूमना बन्द कर दिया है।

—मद्रास केविल में जलिस पाटरी की एक बैठक बोम्बे की राजा की अध्यक्षता में हुई जिसमें जलिस पाटरी के चीफ बिप वेस्टी नाम के कुमार राजा मि० एम० ए० मुखिया उड़ी (मद्रास के मेयर) पर यह दोष लगाया कि उन्होंने पाटरी का साथ न देकर कानों की उन्मध्यवारी की सहायता की। उन्होंने प्रस्ताव पास होर के पूर्व ही स्वीकार दे दिया जो पास कर लिया गया।

१२ दिसम्बर १९३४

—लखनऊ में इन्डि रोड तथा लुटुर रोड के संयम पर तीन शर-चारी व्यक्तियों न एक बनिच पर धाकमका किता मोर घायल करने भाग गये। सुदून नामक एक व्यक्ति की गिरफ्तारी हुई है।

—जानपुर कटन मिल के ६०० कर्मचारियों न वेतनों में वृद्धि कराने के लिय ब्रुताल करती हो और सुनते हैं मिल-मालिकों न मोटिस लिखला है कि यदि वे काम पर न आवेंगे तो उनकी जगह दूसर आम्बरी लगा लिये जायेंगे।

—मद्रास हुआ है कि भारत की आर्थिक कठिनायियों के कारण परशिया और अफगानिस्तान के चान्दी के सिक्कों को भारत में आन से रोकने पर भी, सुना जाता है, लगभग ४००० सिक्के भारत में राजमार्ग जा रहे हैं।

—पंजाब सुनिवरसिदी के एक एम० ए० न डेक्कुरा में बोधी का कार्य आरम्भ कर दिया है।

—

# १९३४ का मौरिस कारें



# १९३४ की मौरिस कारें

सन १९३४ की नई मौरिस कारें अब हमारे यहां  
आ गई हैं। आप एक बार पधार कर  
निरीक्षण अवश्य कीजिये।

सोल डिस्ट्रीब्यूटर्स:—

मन्डे लिमिटेड, कश्मीरीगेट, देहली।

# साप्ताहिक 'अर्जुन'

का

## श्रद्धानन्द-अंक

२३ दिसम्बर को

प्रकाशित होगा

राष्ट्रीयता का पगम उपायक  
राष्ट्रीय शिक्षा के पिता, दिल्ली  
का मन्त्रे हितचिन्तक महान् हिन्दू  
महान् भारतीय अमरग्रीही अद्वय  
स्वा० श्रद्धानन्द का कोन नहा  
जानता। उन्हीं की ही परम  
स्मृति में अङ्क प्रकाशित  
हागा।



अमरग्रीही अद्वय स्वा० श्रद्धानन्द

हम में  
कविवर रवीन्द्र नाथ, देशभक्त  
सी० एफ० एन्डरूज, श्रीमती  
मरोजिनी नाथ, श्रीप्रकाश,  
श्री कौंडा वैकटपेया, कुमार  
गंगानन्द मिह, श्री हरदयाल  
नाम सत्यभूति आदि के  
लेख प्रकाशित होंगे।

म० गांधी, श्री राजेन्द्र प्रसाद आदि अन्य नेताओं के लेखों के लिये कोशिश की जा रही है।

अंक को बड़ी सज्जक के साथ निकाला जा रहा है। अनेक सुन्दर चित्र भी दिये जावेंगे।  
विज्ञापनों के लिये विज्ञापनदाता जल्दी करें। समय बहुत थोड़ा है।

मैनेजर, साप्ताहिक 'अर्जुन' देहली।

सोमवार २४ जून सन् १९३५ ई० Monday 24th June 1935.



इकोनिय देशबन्धु बिलर बनवास



## विषय-सूची

—:—:—

विषय	लेखक	संख्या
१ सप्ताह का प्रसिद्ध व्यक्ति		मुमुक्षु
२ सप्ताह की हास्य		३
३ सप्ताह की हलचल		४
४ सम्पादकाप		५
५ देश-पु नंतर-अवस्था		७
६ पदना	(विप)	ओ लेखिकाएँ कोविन
७ भोला	"	ओ अवसाद-उपप्राप
८ प्रकृति प्रेम	"	ओ विनोदना-मिम
९ राह-भाषा		ओ 'कवले'
१० हमारी चित्रावली (१)		१
११ अतिथि और वृद्धता		१०
१२ महिला जगत्		
स्त्रियों को पढ़ना या प्रायोगिक	भा.बा० वि० ठाकुर	११
आन भूटिया किन से पढ़ते हैं ?	आ. किशोरावली	११
स्त्री प्रयोजनियों की समस्या		२२
१३ उन्निमेष ब्रह्म-गणित मंडल का विज्ञान	अ. रमण बहा	१३
१४ सफाई पर गांधी जी		५ ११९ १५
१५ अणुबॉम कीम ? (अ-नाम)	ओ. प्रिय	१६
१६ योवापद्वार या हिस्टोरिया	ओमना राजकुमारो मिश्रा 'रमा'	१७
१७ बाल्य का आत्मोत्कर्ष		१७
१८ सूर्योदय का नियम		१८
१९ साहित्य समालोचन		१८
२० हमारी चित्रावली (२)		१९
२१ सिनमा की दुनिया		
अमेरिका में क्या सिनमा	ओ लक्ष्मणवत्सल ठेराहाल	२०
येन सिनमा किन लिये	ओ स. पलाचो	२०
२२ वृत्तकार	ओ बन्नेय मित्र	२१
२३ 'बॉली' में धूल	ओ विजयनाथ मित्र	२२
२४ बाल्य-परिवर्त		२३
२५ व्यापारिक सप्ताह		२४

## जर्मन जनरल



कोविन हार्पिन (बोन) ने १५ वर्षों बाद प्राचीन का-  
सलप रोगियों को जिन्हें जर्मनी भरपराचीन न भयान का  
दिया था कउन नर सनोयन बजन का बरबहार कर प्राजा  
बाले कर दिया। यन्नि प्राचीन में कुछ मो जान बाको है तो  
बाहेर बिलना मो कउन से कउन जाणा, फुन, मोविन  
बिपु अथवा कोह मो नेन रोा नो हों इन सके लिये नेन सनोयन  
रामबाप है। कोमल प्रत्येक राधा (१) हाक बावें बाव; ३ वा प्रोडक के बिह  
हाक बावें बाव। एनेटों को नगर और उबार माच दिया जाना है। नेन  
कोमल डिपो, ई जुमर—जिद, बरम्ह २।

## विज्ञापन के लिये खाली है



हमेशा 'फ्लेक्स' शूज पहनिये

कोमल के लिहाज से फ्लेक्स  
शूज सबसे पहिया है।  
ओ कि आपकी हर कदम  
मिल सकते हैं।

"FLEX"  
OXFORD  
SHOES  
from  
Rs. 4/4 per pr



"FLEX"  
FULL  
SLIPPERS  
from  
Rs. 3/12 per pr

हर एक जगह फ्लेक्स  
शूजों में नर मोम  
के मुताबिक फ्लेक्स  
शूज मोम है।  
फ्लेक्स शूज हर तरह के  
मोक के बास्ते मिल सकते  
हैं। काम पढ़ना के बास्ते  
फ्लेक्स शूज धूल और  
अन्य बाहर पहिनन के  
बास्ते पम्प शूज और  
सिलोपर बड़े उन्ना हैं।  
फ्लेक्स के पहिया बेलटेड  
शूज मजबूती व खुलवारी  
के बिदशी जूतों के मुकाबले  
म हों लोचन कोमल में उनसे  
ही कम हैं।

GUARANTEED  
**FLEX**  
FINE FITTINGS.  
ALL-LEATHER SHOES



For terms of Agency  
Apply to Chief Agents—

The  
**BHALLA SHOE CO.**  
Mes on Road CANNORE

Made only by  
**HE NORTH WEST TANNERY**

कोमल नर १२-५५ भा. य. क. २६५  
बन्ना बूट बाउस मेरट।  
बन्सल य. क. व भा बूट बा, बलाम्भ  
केन्सी बूट बाउस हरकार।  
बाल्मन् बूट बाउस गाजियाबाद।  
बाल्मन् बूट बाउस मुम्बई।  
बाल्मन् बूट बाउस मुम्बई-नगर।  
बाल्मन् बूट बाउस फर कोमल।  
शेक मोहम्मद-मोमीन फर कोमल।  
बाल्मन् बूट बाउस मुम्बई-नगर।

## साप्ताहिक डायरी

१५ जून

—मेरठ में शोराब दरवाजेक पास बमारी और मुसलमानों में अंगड़ा हो गया, जिससे एक दर्जन से अधिक बमारा घायल हुए हैं। भगड़े का कारण बमारों का एक धर्मशाला बनाना बताया जाता है। पुलिस मामले की तहकीकात कर रही है।

—बम्बई हार्बरपोर्ट में महत्त्व सामो बरसात में नावद्वारा चिययक जो बाधा चिया हुआ था, उस काविल केने की उम्मीन बरखास्त द दी है।

—गांधीबाद इन्धनसिप्लिटो न चुकप्राप्तोय सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार बमटो की सीमा में पतन उडाला गया कर दिया है।

—धर्मों का पति गोपा और भाग बाधिया सिरोंही वालों के बहाने में अगमय हैं और वह एकाएक बम्बई से गायब हो गये हैं।

१६ जून

—कनाडाका 'इम्पेल् ब्याक मिटिन्' नामक अडाज 'कोरिस्टान' नामक सिट्टर स्टोमरम मकडेमन ड्रोन तथा केम्पास्ट्रिक कांच कोहर के कावण टकराया।

—मिन्नापुरा के हिन्दुओं ने १००० अन्न बन्दा में मृत्यु से मरे हुए हिन्दुओं के लिए चिया। २०० ब्राह्मणों ने आरक्षक और रसम अर्पण की। ३००० बमों के सिर सु डयाय गये।

—बाट्ट (कराँवा) में बड़े और का हवाई टुरान घाने से मकामों की कुतें उड़ गये और बृल जड़ से उडक गये।

—भांगरी की एक बारात मोटर कारी में सवार थी। कारी के टकरान से बारात ६ फादमी मर गये और २१ घायल हुन।

१७ जून

—हादोरी की गुफारवा की फीरोज मिसल में गोथब भाग जगन के बल्लभवध ५ फादल जल कर मर गये ५०००० की बाँधि हुई बताई जाती है।

—हादोरी इन्धनसिप्लिटो न कनेटा मृत्यु पीछी की सहायताय ५०००० रैन का निम्नय किया है।

—सरदार की ओर से यह अर्काष्टत हुआ है कि कनेटावासीयों को मल्लन के अन्तर दवा हुई सख्तिय के सम्म-बन्ध अन्धो दरबारवात सिटी कांमगनर वा पीछीवधक बल्लभ के

पास छुपे हुये फामों पर मुस्लम अन्न देनी बाधिये।

—५० बचरवास वीथी को ब्रह्म मद्राहा खिला मॉडस्ट्रुट की बाधा का उल्लयन करने के अभियोग में गिरफ्तार कर लिया गया है।

—अजमेर स्टूडिन्स केस के सम्बन्ध में दा गिरफ्तारी और हुई हैं, जिन में स एक गवर्नमण्ट कालिज के द्वितीय वर्ष के विद्यार्थी हैं।

—अमृतसर सदर पुलिस स्टेशन के सब इन्स्पेक्टर मलिक बशार हयात को रिस्तर लेन के अभियोग में बरकास्त कर दिया गया है।

—महाराजा अयनगर के जन्म दिवस के समारोह में विधा धियो और अनायात्यों में हनाम बरत गया। अन्नक अनायात्यों के लिए अनायात पेटमों में नियत की गई।

—पोरबन्दर स्टेट में १२३३-३४ में १४ लाख की बचत हुई है।

—७ जून को समान होन सत्ताह में बगाल के विभिन्न जिलों में ३६ डाके पड़े हैं।

—बम्बई के अमरीची नला धोम नैयब मठ का भारतीय ब्रह्म विधान की बारा १२४ 'अ' के अनुसार गिरफ्तार कर लिया है।

—फुल्लवत धातुवाल नामक एक मारवाडा ३०००० फ मोट लिय हुये बह बाजार कलकत्ते में गुजर रहा था ३ ध्य क १०० उस पर हमला कर क रुपया छीन लिया और फरार हो गये।

—बगलों में एक पति ने अपनी स्त्री को हसियन मार डाला कि बह उसक साथ उसी समय चलन का राजी न हुई।

—लाहौर पब्लिक सस क अन्न घर इन्ट्राल की अपील हाई कर्ट में आज पठा हुई।

—मि० सी० ड० ७०० कारसन ग्यालियर के नय अयसदस्य बनाय गये हैं।

१६ जून

—मिडिलवेस्ट (अमेरिका) में बाढ़ आन न १७५ आदमी डूब गये।

## अर्जुन की व्यापार

## डायरेक्टरी

पृष्ठ २४ में

## विज्ञापन देकर अपनी तिजारत की उन्नति कीजिये

—हादोरी के म्नीय टेलीग्राफ आफिस के फतारम नामक एक ड्रक की गहन के अभियोग में १२ लाख सख्त बन्द की सजा दी हुई है।

—बम्बई लुफिया पुलिस न गिरफ्तार के कई मकामों की तलपोली और जलपुरा साहित्य बरामद किया।

—हालाहाव पुलिस न 'अमृत्युय प्रेस घर खुरापा मारा और बर्हा से एक खानेखानेक गोटिस की घसली कारी अगन से लाय ले गई।

—छाजामाड पुलिस न एक चोरी के सम्बन्ध में लालनू (मारवाड़) के एक सुमार के घर पर खुरापा मारा और ६० तोले सोना और ३०६ तोले चांदी बरामद की।

१८ जून

—सिल्लक इकतूम (मद्रास) में गोथब अन्धियार के कारण एक कार, एक होटल, तीन डुकान तथा एक मकान जल कर राख हो गया। एक लाख की हानि का अन्वारा किया जाता है।

नवासाका, टेक्सास, ओकलहोमा आदि में ६० लाख डालर का उरु-खान हुआ है।

—बोल्नके के एक स्कूल से डुल विद्यार्थी साहसिक कथों के बरन क खिये घर में जगल में आग गये।

—लखर है कि मय शासन विधान के मोतहत पजाब क सिल्लक क चुनाव के लिए धमो में तैयारवा हो रही हैं। सर फजलीहुमन के सुधारके में अताउल्लाहाहा बुखारी को कच्चा डोन पर और लिया जा रहा है।

—पीर शाहगशाह ने एक पक्कब द्वारा सरकार न खान अमृत्युयफतार का मोसबरमनी जेल से बहजन की धोखेया की है।

—बम्बई कारपोरेशन में गोथब बन्द करने की एक सुन्दर योजना पेश की गई है।

—बम्बई में बहने वाली मद्रास मेख गादी के इजिन पर घोर बर्षा

के कारण लाइन के पास की पाखी में भारी प-पय गिर पड़ा।

—राष्ट्रपति राजप्रतापन करकी में क्रमिस-अवन का खिला न्यास किया।

२० जून

—म० गांधी को एक लाख की प्रतिष्ठान येना न्न क लिए इन्दौर में हरिभाऊ जी सरगाम आन्दोलन कर रहे हैं।

—रूसवाल (रुचिय अफीका) कोसिस में यह कानून बन गया है कि एणिया निवांसा मारो ममों को नौकर न रख सके।

—बाल क मन्दिर २००००००० की रवर्षी सनगो ची चोरी चली गयी हैं।

—बम्बई सरकार न फो प्रेस जलन की २००००००० की अगमन जल कर ली है। बन्दा न प्रश निवध पर लिख गये लको पर सर कर को आवति थी।

—हरिजन मक्क सस कालीकड में एक बमक का कारखाना कोबने पर विचार कर रहा है।

—पार्लमेट क एक सदस्य न अमपों पली के विपद लकाक की दरकारस्त हा है, क्योंकि भागा का क पुन से उसका अमुचित सम्बन्ध था।

२१ जून

—पेशावर में मयकर अमिकास स बहुत भारी कृति हुई है। बाय बुमाने के लिए फीज को बुलाना पड़ा।

—रोखपुरा के समोय बनाब का बम्बू डूट जान स कई गांव बह गये। तन भादमा आपता है।

—ईरान क राजतुल ने एक वि-जल्ट द्वारा सब भारत-प्रवासी ईरानियों को अमिनी पोराक पहनने का सलाह दी है।

—कार्बी कारपोरेशन न एक मठ न रावेष्ट्र बावू की अमियनक पत्र देने का निम्नय किया है।

—कोलको (गोखली) बस्ती में बिजली गिरन स १४ आदमी मर और चार घायल हो गये।

## दो लाख रुपया इनाम

जगत विख्यात मायारेकी सिख मन्त्र के द्वारा एक सान में दो लाख रुपया का सोना प्राप्त करो मे ड-॥॥॥ और अयन हक प्रकार के दुःख दूर करने को इसकी लिखो।

यम पख० टी० असाह, एम० बार० टी० चौक, पीलीभीत।

सप्ताह का हलचल

## केन्द्रीय सहायता कमेटी

राष्ट्रपति कराची में

बापमयाय भी कायदा जायेगा

कलकत्ता सहायता नहीं देगा

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रमोहासजी ने निम्न लिखित सदस्यों की फंटेडा के मुख्य पोषितों की सहायता करने के लिये मन्सूख रिलीज कमेटी नियुक्त कर दी है—

मन्सूख रिलीज बजान सरदार बल्लभभाई पन्थ प० मदनमोहन मासवीर सर प्रभुलाल नाराय ओ० भुलामाई देनारी मन्सूख रिलीज बजान, ओ० मधुरादाम विसन, ओ० डा० जानसाहब, आमतो पेरिल कम्पन, सि० जमशेदमहाला सेल प्रभुलालभाई दीवान बहादुर मुख सीधर, डाक्टर गोविन्द लाला दुनीचन्द (अध्याता) सरदार शाहूलसिंह कशाशर ओ० प्रभुलालकाविर कस्तुरी लाला दुनी चन्द [लाहोर] लाला चन्द्रदास (हरनाथगढ़), आ० जयराजदास दीलालदास तगा डा० बीरदाम। डा० बीरदाम उक्त कमेटी में मन्सूखी क रूप में कार्य करेंगे।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रमोहासजी न सिध के कमिश्नर म आ लालमण ४५ मिलन तल बानबन की। डा० हुमाई है कि उन्हाय यह बात बहुत और दूर कहाँ कि गैर सरकारी सदस्यों को यदि क्वेटा में प्रवेश करने दिया जाता तो अनक य नर्था क बोवन का रखा हा जाना और कुल सम्पत्ति भी बचा ला जाना।

रायपाराय कटा जायेगा

मुख्य मन्सूख सेन हैर जने को धपना आलो म न्मने क लिय बासलराय गुलाई की बहा जाने बाते हैं। कहन है कि प्राय स्थानाय अधिकारियां से कर्मा क भविष्य क बार में विवर विनिमय करन। प्राय के आन हा मि० हदय स्पेरेल मुख्य कमिश्नर मुख्य-पावित इलाह की परामर्श छुस कर देंगे।

कर्नाटक महाप्रांश नग द्या गल १८ मई को युरोपियन ग्रुप के नेता मि० हामस न कलकत्ता कारपोरेशन की बैठक में फंटेडा क मुख्य-पोषितों का सहायता क लिये कोय बासलराय पन्थ क कारपोरेशन को बेट कर १५,००० दिव जान का प्रस्ताव उपस्थित किया। बोधी देर तक वादविवाद होन के परचात सिटुटी मेयर न

उक्त प्रस्ताव की अभियमित ठहरा दिया। सिटुटी मेयर ही उक्त बैठक के अध्यक्ष थे।

## ७५ मील मूनि फटी

'स्टेड्समैन' का विशेष सम्पादक लाला लिखता है कि ३१ मई को फंटेडा में जो मुख्य हुमा, इसल मनुष्य कीर कलात क बीच में ७५ मील तक पुरखो में दराई फट गई है। यह दराय शुध में ७ फीट से लगाकर २० तक चौड़ा है और आवाह में २३ इंच चौड़ा है।

लोहों का कयन है कि मुख्य मन्सूख सेन कलात की पहाडियों में से एक विचित्र रोगनी उठी, जिससे एक दम कारी और प्रभाव हो गया। यह रोगनी दराइ क साथ साथ बढ़ती हुई दृष्टिगोचर होती थी।

मुख्य सेन के पास एक प्याला तुमा कुम्भ बन गया है।

मिलिल प्रम्व

बलोचिस्तान के पन्थे-नर मार मन कटर सिमता म क्रेग लोड मार है। प्राय है यह मन लनाह क म तल नीज म प्रभु आ बलोचिस्तान का प्रम्व समझ लेंगे। सिमता से एक आडिन्सल जाओ करके उन्हें फौज लाकर क लिय विशेषाधिकार दिय जायेंगे ताकि लिखिल प्रम्वको लू मार रोक सकें और लपटन करत मक प्रम्वयचना म पर लून क बानकों को ब्रमण करा सक, तथा प्रम्वयग गिका को कर्मज म बाहर निर्माल मक।

## जर्मनी की नौसेना

ब्रिटेन से मधि

लण्डन म १८ जून की वै-मिष्ट मन्सूख सर मन्सूख हार न एक विम्वन द्वारा यह घोषण करदी कि ब्रिटिश गवर्नमेंट ने जमन सरकार के उम मखिष्ट को स्वीकार कर लिया है, जिसमें उसन प्रम्वो नो मना ब्रिटिश साझा-र की नो-मना का ३५ प्रतिशत रखन की प्रायना को था। ब्रिटिश गवर्नमेंट उक्त मख विर का भविष्य में नो मना सबधी शक्ति का संमित करने के लिय भव्यत मखवर्णण सम्मती है। उलका यह भी पक्का विश्वास है कि सम्मतीतो को चुनो है और यह सम्मतीतो दोनो राशों क लिये नि-विम्वत रूप में स्थगित होगा। बोरो है कि समार के समस्त राष्ट्रों को नौसेना को संमित करने के लिये भी यह मखविष्टा सम्पन्न उपयोगी

लिख होगा। ब्रिटिश गवर्नमेंट जर्मनी की सरकार द्वारा चुनाने गये उन तरीकों में भी सहमत हो गई है जिनके अनुसार जर्मनी में नौसेना को ३५ और १०० के अनुपात में संमित किया जायेगा।

पन्सुखियों के बजान को जर्मनी ब्रिटेन के सुकान में ४५ प्रतिशत तक बढ़ा सकेगा।

कानफरेंस की आयोजना

फुल को ब्रिटिश गवर्नमेंट ने प्रम्वे विदेशियों को लखन में प्रम्वे के लिय पहाते हो लिल दिया है जिससे आगामी नौसेना कानफरेंस पहाते हो से पूरी तैयारी को आ सक। इसी प्रकार म इन्नी तथा कल को भी प्रम्व २ विदेशियों को उक्त तैयारी के लिये लखन प्रम्वे में लिखा गया है।

मि० एडिन पैरिम जायेगे

मि० एडिन पैरिम २० जून को पैरिस जायेंगे और वह बहा आ कर फुल का गवर्नमेंट के दिमाग म एडिन-प्रम्व सगिय से उ पल हुय विचारों की हदान का भरसक प्रयत्न करे।

फुल को मखवर्णण

उक्त सम्मती क सम्पन्न में फुल गवर्नमेंट न आ पत्र ब्रिटिश गवर्नमेंट को लिखा है उसन यह स्पष्टन म लिख होगा है कि फुल की सरकार अपनी नौसेना को आर मा अधिक बढ़ना चाहती है।

जमन गवर्नमेंट अपना कार्यक्रम

पेश करगा

आगामी उक्त दिवस में ब्रिगन तथा जमना के प्रतिनिधियों में इस बात का मो निश्चारा हो जायगा कि भविष्य में नौसेना सम्पन्नो माममा दोनो ग्रा में किनना मोना तक तवारा आ सकगा।

## श्रीमती कमथ नेहरू

आपरागन समवतापूर्ण होगया

बलिन से खबर लिखा है कि १८ जून को श्रीमती कमला नहक का आपरागन सफलतापूर्वक सम्पन्न होगया। डा० प्रदल ने बलिन से माता स्वकपत्तों नहक क पास सुभाषा के पते निम्न तार भेजा है—

‘कमला नहक का आपरागन अच्छी तरह हो गया।’

यह खबर तार द्वारा २० जून दूरलाह नहक के पास जल में भी भेज दी गई है।

## पुलिस की सर्गमियां

क्या नया केस चलेगा ?

वैदिक अर्थों के गाजियाबख्श सिध सहायदाता को मन्सूख हुमा है कि पुलिस एक नया पदगन केल बलाना चाहती है। मेरठ के लाल पचा के तथा बजमर मोना कीड को भी उसी में लिखाया जायगा। मधुर, लुरजा, खेलाडा, गाजियाबाद, मेरठ आदि स्थानों पर बहुत ही लक्ष्मिर्ण हुई। बहुत स गिफ्टुआर भी किम गये हैं।

बजमर में एक ब्रमि युक्त ने पुलिस को लम्बा कयन दिया है, ऐसा भी मन्सूख हुमा है। पुलिस बहुत लतक हा गई है। लखी कया जाता है कि कोरी भी निष्पत्ति रियां होंगी। कई जमानत पर सिद्धा भी हो गये हैं।

## इण्डिया चित्र का द्वितीय

वाचन

लाई सभ में इण्डिया चित्र का द्वितीय वाचन बहुत म पाल हो गया। इसका विरोध भी लुख हुमा। एसाउर के गिण्ट लाई विविध मेरठो के मेलिन कडा कि आर कल सब राणों में प्रजातन केव हो रहा है। इसलिये उन प्रारत में म्म प्रजातन नहीं करना चाहिये।

## चीन जापान का संघर्ष

मरकर लोफा देगी

चां और जापान की र्विचि प्रमो तल पहाते जेना हो मोषण है। वो बार जाइ गोबिया बचन को भी खरई जिना हैं। चांन सरकार न ३ प्रशान शक्तों से शोव में पड़न को प्रायना का है अिन किनो न उलफ प्रायना सहाक बहा को। जापान को कुंज गनो तो स्वाकार हो मो गई हैं, न कल सब शर्तों को सहाकार करना पडि है। नालकिंग सरकार क अशिंश सदस्यों की राय तो यह है कि सरकार स्वीकृष्ट नह, लेकिन शर्त पर हस्ताक्षर न किया जाय।

## इंग्लिश पंजुलु

यदि प्राय घर बैठ बिना उस्ताह के दिश में प्रमेश को निषाक बहुत जरी बल वा बने हैं तो इस किताब को मगाने में दरो न ह, बलन पड़नाना होगा। कोमन क्क सम्पन्न म्मो पर आर तोर के प्रम्वर जोड़ने में कामन बापिय को आयेगी।

पना—वा० केतवदवा मायेडे डीवर बाब्ये जो आर, कायनी म्म।

# अर्जुन

सोमवार ता० २४ जून १९३५ ई०

आर्यभट्ट प्रतिलेखे मे नैव्य न पलायनम्

## संसार में शाक्त का दौरेदौरे

शक्तिहीन होना ही पाप है

( ले०—श्री० इन्द्र विद्यावाचस्पति )

आपल चीन पर हमी होता जा रहा है। उत्तरीय चीन पर तो उसका अबाधित राज्य सा स्थापित हो रहा है। संसार जानता है कि चीन प्रकृति पर अधिपति करने का आपल को कोई अधिकार नहीं है। चीन भी इस बात को समझता है। परन्तु वह क्या करे मानसिक की सरकार के सिर पर जब आपल का अस्टो-मेटम फैला जाता है तो सिवा सिर छुटाने के उसके पास कोई उपाय शेष नहीं रहता। वह सिर्फ कुत्ताकर आंखों की आभा को मान लेता है और अपने शरीर के प्यार प्रभुओं को क्लृप्तकारों द्वारा करते देखकर चुप रह जाता है। इससे बरस क्या है ?

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के समझन वाले ज्ञानत है कि इसक मुख्य कारण दो हैं। एक तो चीन की निर्बलता, और दूसरा अल्प वशी की बाधकार के दोषने में अग्रणी। चीन की अग्रति उसकी राजनीतिक परिस्थिति का परिणाम है। आज भी चीन पर एक ही शासन का पूरा अधिकार प्रस्थित नहीं हो सका। चीन देशों में बड़ा हुआ है। वह कल्पन सीमिक शरीर का पूरा स्वामी नहीं। चीन का जो भाग बोखोविक कलस में है, उसका सुचारु कलस कोर है। जो भाग बोखोविक प्रभाव में नहीं, वह बोखोविक में और इसी कारण रूस से इतना इतरा है कि वह आपल को भी मानसिक समझता है। चीन के एक भाग की

सरकार दूसरे भाग की सरकार पर अद्वय के लिये सदा तैयार रहती है। यह वही फूट है, जिसन चीन को सर्वथा अभाज बना रक्खा है। आपल की सामुद्रिक, स्थलीय और हवाई युद्ध शक्ति बहुत उन्नत हो गई है। चीन उसका सामना नहीं कर सकता। घर की फूट उसे शत्रु का सुलभ पिकार बना रहो है। वह आपल का सामना नहीं कर सकता।

उपर आपल की महत्वाकांक्षा का फल नहीं है। वह एक छोट्टा सा देश है। उसकी जनसंख्या प्रतिदिन बढ़ रही है। वह कहाँ रहे और अपनी शक्ति कहाँ लगाए कर ? अन्तर्राष्ट्रीय की वृद्धि के लिये भी आपल ऐसे स्थान टटोलता है जहाँ उस दूसरी जाति की प्रतिस्पर्धा का भय न हो। आपल का अस्तप्रास के श्रोत मोरों के प्रभुत्व में था चुक गई, एक और अन्तर्राष्ट्रीय का अस्तप्रास पाँच पसा रखे हैं, तो दूसरी ओर इलैंड का साम्राज्य फैला हुआ है। आपल अपने को बरों और से फोलावी दीवारों में घिरा हुआ पाता है कबल एक ही दिशा उभे ऐसी दिशाएँ देती है अग्रिपर उसका पाँच बढ़ सके। वह विना चीन की है। आपल शक्तिहीन है और चीन शक्तिहीन है। आपल चीन में अपना प्रभुत्व चाहता है। वह चाहता है कि चीन में उसका हाथ ऊँचा रहे। व्यापार बढे तो आपल का, यदि पूँजी उगे तो आपल की। यदि चीन को इंग्लिशमेंरी का अर्थविशेषों की आबश्यकता हो तो वह आपल से ही आन पाविये। यदि चीन की सरकार को अपना कर्ज लेने की जरूरत हो तो आपल से ही लेना चाहिये। आपल इस प्रकार से चीन पर अपना अबाधित प्रभुत्व चाहता है। चीन की अग्रति उसकी सहायता कर रही है। वन का उत्तरीय भाग आपल के घर में आ रहा है।

यदि और दूसरा समय होता तो आपल इस स्वच्छन्दता से और बरि को से मनमानी न कर सकता, क्योंकि तीन शक्तियाँ उसका हाथ पकड़तीं। अन्तर्राष्ट्रीय इलैंड और रूस—यह तीन शक्तियाँ ऐसी हैं, जो चीन पर आपल के प्रभुत्व को पसन्द

नहीं कर सकती। इसमें उन देशों के राजनीतिक हित और मोरबो को बड़ो ठेस पहुँचती है। अन्तर्राष्ट्रीय ने चीन में बड़ा लाभ उठाया है। लगभग एक शताब्दी तक चीन का शासन अन्तर्राष्ट्रीय के घन और अन्न पर ही चलता रहता है। आपल उस अन्न को दूर कर रहा है। वह अन्तर्राष्ट्रीय के गले में हाथ देकर बाहिर निकाल रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय का हित और मोरबो चाहता है कि वह आपल का आन्तरिक को रोके, पर अन्तर्राष्ट्रीय न अपने लिये एक नाति बना रहो है जिसे उसकी सिद्धांत का नाम से पुकारा जाता है। उस सिद्धांत का अभिप्राय यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय का अन्न लाने में किता अल्प देश का वृत्त चाहता है और न दूसरी के मामले में स्वयं हस्तक्षेप करना चाहता है। अन्तर्राष्ट्रीय सारा में रहता हुआ भी संसार से अन्न रहना चाहता है, क्योंकि उस सा अन्न की लाभता नहीं है। उस पास भूमि और द्रव्य की कमी नहीं है। आपल चीन में अन्तर्राष्ट्रीय की निकाल रहा है, तो भी अन्तर्राष्ट्रीय चुप है। आपल को मालूम है कि अन्तर्राष्ट्रीय लक्ष्य नहीं चाहता।

दूसरा जो आपल को वरत मान नीति से अस्तप्रास है, इलैंड है। इलैंड अपने को पूर्व का स्वामी समझता है। भारत के कारण एशिया में उस की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। इस स्थिति की रक्षा के लिये पहले इलैंड व आपल न बड़ी गहरी सन्धि कर रही थी वह सन्धि आपल और इलैंड के हितों को एक साथ बाँधती थी, उसका कारण था। कल रोनी का शत्रु था। इलैंड भी रूस से डरता था और आपल भी। दोनों मित्र बन गये। इलैंड ने कल के स्वामन में आपल की लुच सहायता की। कल कुत्ता मया, और अन्न में इलैंड का मित्र बन गया। अब इलैंड को कल के विरुद्ध आपल की आबश्यकता न रही। दोनों को सन्धि टूट गई। आपल स्वयंभू हो गया, और उसन चीन पर प्रभुत्व जमाना प्रारम्भ कर दिया। अब इलैंड के स्वामन मार्ग तो स्पष्ट बड़ा हुआ है। उसे आपल

का हाथ रोफना चाहिये परन्तु आपल जानता है कि इलैंड लक्ष्य नहीं चाहता। शायद ही स्थितियों में इलैंड की स्थिति अपनी समुद्रों में नहीं हुई, जितना आजकल है। उसन वास्तव को नाप बिना हो हाथ-पाँव फैला लिये जो लाचर और सुक्रेडने पड़। जितना पैसाव है, वह भी समाला नहीं आ रहा है। अंग्लिश इलैंड हा गया है। मिसर और भारत कालिज क दार पर खड़े हैं उपनिषद् तो मोका ही देख रहे हैं। आज इलैंड पर कोई सुनिश्चित प्राय तो वह बिलकुल अलग होनी को तैयार बैठे हैं। इलैंड एक ऐम कमिनिज्म कुट्टम का स्वामी है जिन का प्रत्येक सदस्य अल्लदा होन का धमकी न रहा है। ऐम कुम क सुनुन के लिये उद्यमों में लक्ष्मी बहुत करिने है। इलैंड लक्ष्मी न चरकता है और इस बात का अर्थमो और आपल समझ गये हैं, कल इलैंड की क्या—योरप के बहुत से देश युद्ध में घबराव हुए हैं। उनकी इस निर्बलता में लाभ उठा कर जर्मनी और आपल—और इतनी—मन मानो कर रहे हैं। इलैंड से पूँजी बड़ी कोरुप्शन मा लाना सकता था कि आपल चीन को कलता आपल और इलैंड दूर वेडा हुआ डुकर डुकर मुह ताका करेगा।

तोसरा—य, जो आपल की बहुत से अस्तप्रास हो सकती है, कल है। कल और चीन की सीमा मिलती है। स्वाभाविक है कि यदि चीन की निर्बलता से लाभ उठाया जा सके तो कल को चीन न रहना चाहिये, परन्तु दो बातें ऐसी हैं, जो कल को लक्ष्मी से रोकती हैं। पहली बात तो यह है कि कल की पूर्वी सीमा उससे केन्द्र से बहुत दूर है, इस कारण पूर्वीय सीमा पर युद्ध करना उसके लिए अत्यन्त कठिन है। गत कल आपल युद्ध में यह लिख दो चुका है। अब कल अस्तप्रास से पूर्वीय युद्ध में शामिल नहीं होगा। दूसरी बात यह भी है कि कल का वर्तमान बो-अर्थिक शासन किरीशो युद्ध क विधियों में हा रपा पित हुआ है। जार और उमके पीछे

समुक्तराष्ट्र आभरिषा के राष्ट्र-  
पति जिन्हें हज्जत-उद्द का पति देखा  
गया, वसंतमा समय की गति का  
अच्छा परिचयक है। इसके अन्त  
साथ धर्मिक का परिकल्पन नहीं मारी  
आधिकारिक भाषा व उत्तरावधि नहीं  
है। निम्न वाणी आभरिषा पर १५ वीं  
सदी तक देखा लाया जाया।  
साधारणतया का निम्नमा है कि किसी  
आभरिषा को विचारित नहीं आयवद  
नहीं निम्नमा वचन उल पर हो  
राष्ट्र का परिचय है। निम्न का  
का बिल उल विद्या में पहला कल्पन  
है। भारत में यह कब आया।

## देशबन्धु चित्तरंजनदास

कलकत्ते के घाट पर महाश्वलों के स्तूपों से देशबन्धु चित्तरंजनदास की एक विशाल मूर्ति स्थापित की गई है। उस मूर्ति का चित्र आकाश से बर्त कर रहा है। उसका कलेवर आकाश से बहुत बड़ा है। उसको कम निरसी बतलाने जा रही है।

वह मूर्ति एक उपलब्धमान है। देशबन्धुदास ने भारत की राजनीति में, जो ऊँचा और शान्तर स्थान प्राप्त कर लिया है, मूर्ति की ऊँचाई और शान उसकी एक स्थूल निशानी है। कुछ समय के लिये, योग्यता और भाव्य के सहारे से देश की राजनीतिक जीवन में नाम या जाना, या ऊँचे स्थान पर आ बैठना बहुत आसान है, परन्तु जाति की भूलत पर पाँच के स्थायी निशान छोड़ जाना राष्ट्र के उद्धार का एक नया मार्ग बनना जाना, इतिहास के पृष्ठों पर अपने स्थापित की जाए लगा जाना स्वप्न आसान नहीं है। देशबन्धुदास जब पृथिवी में से थे, जिन्होंने केवल अपने समय के लिये देश के सार्वजनिक जीवन में एक विशेष स्थान को नहीं बनाया, अपितु सदा के लिये देश की कृतार्थ के हृदयों में अपना स्थान बना लिया है, क्योंकि वह तो मनुष्य की देह में एक जोता जागता आधुनिक था, चरमकीली देशभक्ति का एक पाठ था, और मुर्तियों की मोल्ताहन था।

ऐसे विचारकों की कमी नहीं है जो देश की बहुत सुन्दर स्त्री में बना कर देख सकते हैं। उनमें योग्यता की होती है और कल्पना भी। उनको योग्यता की चाक देश पर बैठ जाती है। अन्य लोग उनसे विचार लेते हैं और उसे कार्य में परिवर्तित करने हैं वह दूसरी तरह के व्यक्ति हैं। बहुत कम लोग उनसे जो दिव्य हुये विचारों और बनी हुई स्त्रीयों के महाशक्त कार्य करने में सफल होते हैं। वह कार्यकुशल व्यक्ति सेना के अग्रणी उप नायक हो सकते हैं। परन्तु ऐसे विचार होते हैं, जिन्होंने योग्य विधेयताओं हैं। जो स्त्रीय बना भी सके, और कार्य परिष्कार भी कर सकें। आधुनिक चिन्ताओं की, और उसकी ओर बहुत का सरता भी लगाने करे। ऐसे व्यक्ति महापुरुष कहलाते हैं क्योंकि उनमें विचार और क्रिया का उत्तम मिश्रण रहता है।

देशबन्धुदास ऐसे महापुरुषों का एक उत्तम नमूना थे। उनमें कल्याण भी थी, और क्रिया भी। वह कवि भी थे, और कारीगर भी। उन्होंने भारत को राजनीति में देश का एक नया

## विश्व-नाटक के पात्र

आधुनिक स्थापित किया, और उस तक पहुँचने का एक मार्ग भी आविष्कृत किया।

राजनीति में देशबन्धुदास का स्थान का निर्णय करने से पूर्व हमें यह देख लेना चाहिये कि उनके कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने के समय देश में कौनसी प्रवृत्तियाँ काम कर रही थीं। जो प्रवृत्तियाँ तो प्राचीन थीं। कुछ लोग अपने प्राप को लिखक कहते थे। उनको नीति 'मर्म नीति' कहलाती थी। वह भीषण नीति का मानन करते थे। दूसरी नीति का नाम मर्म नीति था। उसके समर्थक स्वातंत्र्य की लड़ाई को स्वातन्त्र्य के

में इस प्रवृत्ति का थोड़ा सा विरोध किया क्योंकि उनका विभाग उस प्रवृत्ति की असमर्थता को समझ रहा था, परन्तु मार्ग इतना आधुनिक था कि देशबन्धुदास तथा उसी प्रवृत्ति का अन्य भागवासी देर तक उस प्रवृत्ति का सामना न कर सके। उनकी दृष्टिकोण इतनी प्रबल थी कि केवल समर्थक प्रसन्नता के प्रतयक का कारण उन्हें महामान्य जी का विरोध करना उचित प्रतीत नहीं हुआ।

देशबन्धुदास महामान्य जी के सत्याग्रह में पूरे जोर शोर से भाग लेंगे। कलकत्ते के सचरंजित कामगर्मी

### देशबन्धु स्मृति मंदिर



गत ११ जून को इसका उद्घाटन किया गया था।

को जो उपरुक्त भागवती हो सकती है, उसे खोज सारी। कुलों की सेज पर पड़े हुए शरीर को तपस्या की मूर्ति में जोड़ दिया। अपनी सत्त्वपूर्ण शक्ति देश की सेवा में अर्पण कर दी। योग्य हो समय में मनुष्य के चित्तरंजनदास केवल कलकत्ते का ही नहीं, बल्कि का सर्वमन्त्र नेता और बलात्कारदाहक बन गया। उस समय देशबन्धुदास महामान्य गांधी के सच में बड़े कंस्टिन्ट समर्थक जाते थे।

यहा तक तो देशबन्धुदास का नेतृत्व महामान्य गांधी के नेतृत्व का एक भाग था, परन्तु १९२२ के पश्चात् जब सत्याग्रह तथा असहयोग का दौरा देश में फैला हुआ तब एक ऐसी मुर्तियों की हूँ गई कि उसके तोषन का कोई उपाय नहीं दिखाई देता था। उनका उत्तर चुका था। देश में निराशा का भयरेर छाया हुआ दिखाई देता था। उस समय

देशबन्धुदास के विभाग ने काम किया और उस घाट में महाश्वलों की रक्षा पैदा की। उसने लक्ष्यों का एक ऐसा मार्ग निकाला, जो सत्याग्रह के अधिकृत होत हुये भी समय के अनुकूल था। उस मार्ग का नाम हम 'चौमुखी लक्ष्य' रखते हैं।

वह मार्ग उस समय नया दिखाई देता था, परन्तु वस्तुतः वह विलक्षण नया नहीं था। वह उस नीति का ही दूसरा रूप था, जिसके समर्थक लोकमान्य लिखक थे। लोकमान्य लिखक और महामान्य गांधी—यह दोनों महापुरुष एक ही मन्दिर के पुजारी हान हुए भी दो मार्गों के अनुयायी थे। मर्म गांधी का मार्ग अधिक आधुनिक था, लोकमान्य लिखक का मार्ग अधिक विचारमय। लोकमान्य मनुष्यों को मनुष्य समझ कर चलते थे, महामान्य गांधी उन्हें दस्ता बना कर आगे कदम रखना चाहते थे। महामान्य गांधी का मार्ग आधुनिक भारतवासियों को बहुत प्यारा लगता था, परन्तु भारत से बाहिर का मसलर देशों को बालक न नहीं चलता। लोकमान्य लिखक की नीति मनुष्य के गुण और अनुगुण दोनों को लेकर चलती थी, पर महामान्य गांधी की नीति मनुष्य के उच्छेदक प्रश के आधार पर ही बनाई गई थी। लोकमान्य लिखक क्षण-स्वतंत्रता को साधनो से स्थापन देते थे, महामान्य गांधी साधन सत्याग्रह को क्षण-स्वतंत्रता में ऊँचा स्थापन देते हैं, देशबन्धुदास हम दोनों में लोकमान्य लिखक की नीति के प्रवर्तक थे। देशबन्धुदास न, जिम नीति का आधिकार किया वह लोकमान्य लिखक की नीति का समान्यनुसार बदला हुआ रूप था।

देशबन्धुदास यह विशेषता थी कि उनकी कल्पना जड़ कल्पना को बनाती थी, उनको कार्य शक्ति के करे डालती थी। वह सपना भी ले सकते थे और सपना को जाति रूप में ला सकते थे। देशबन्धुदास जिस समय लिखकों लक्ष्यों का भयरेर उपाय किया, और नरकदार पर चोट देकर देश की जीजायों को लक्ष्मण—तब एक बार तो देश भर में विजयी की शक्ति हुई। बालक में तो मानो भाग को लापेट निकलने लगीं। भावुक बालक भी उसमें पूर्ण कमा भावुकता को सँवरी जबदस्त लहर में कमाई नहीं बना था। उस लहर में देशबन्धु ने अपना सर्वस्व बहा दिया और उनका साथ ही हजारों देशभक्तों ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। उस समय देश के (अप गृष्ट २७ पर)



स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरंजनदास

सिद्धान्त का अनुसरण चलाना चाहते थे। जिसके समर्थक देशबन्धु ने एक मुख्य कार्यक्षेत्रों के रूप में राजनीति में प्रवेश किया, उस समय क्रिसि में न मर्मवल लगमग निकल चुका था, और राष्ट्रीय सामग की बागडोर अपने दल के हाथ में, जिसके नेता लोकमान्य लिखक थे, आ चुकी थी। देशबन्धुदास लोकमान्य लिखक के एक प्रतिष्ठित अनुयायी के रूप में राजनीतिक क्षेत्र में प्रविष्ट हुए।

उनका राजनीति में प्रवेश का पश्चात्त एक और प्रवृत्ति पैदा हुई। महामान्य गांधी ने राजनीति में सत्याग्रह नामक शक्ति का नवीन आविष्कार किया। वह शूल देश भर के सामान रीकट ऐक्ट के विरुद्ध आन्दोलन के रूप में उपस्थित किया गया। यह एक तीखरी प्रवृत्ति थी, जो शीघ्र ही भारत के राष्ट्रीय चेतना पर छा गई। देशबन्धुदास न आरम्भ

## वेदमा !

—:::~::~:—

[ १ ]

अरी निन्दुरत, तेरो राह—

तुझी हृदय की आगम कहानी,  
कसक, आह, आँखों का पानी,  
इतनाती मय-मरी अचानी,

लुटा रहा यह पागल—

जीवन की कुछ मंचित चाह !  
अरी निन्दुरत, तेरी राह !

( २ )

अरी निन्दुरत, तेरो राह—

अब तक देखा बहुत तमारा,  
छटा न मन को प्रेमपिपासा,  
पल पल बढ़तो रहो निराशा,

हूब रहा सौंदर्य सिन्धु में—

यक कर मिली न चाह !  
अरी निन्दुरत, तेरी राह !

[ ३ ]

अरी निन्दुरत तेरो राह—

मल्लपानित मल्ली में डाले,  
लूक क कुछ छुस्कुलि में डाले,  
बढ़ी वेदता कौन सम्भावे,

उमड़ रहा है अमरस्तल में—

वेहव आह अबाह !  
अरी निन्दुरत, तेरी आह !

—ऊँमविहार / नितिल कणक—

## मोती

—:::~::~:—

( समस्या )

मई सो भी अब चेत करो,  
पतलून उतार कसो मई बोरी;  
धर- की दल-कथा सजि के,  
गहो हाथ वैदिक पिता की पोथी ।

स्वदेगी हो तम पर, स्वतन्त्रता हो मन पर,  
जगावो स्वदेशी की आगम ज्योति ।

खती कला व्यवसाय करो,  
सब बन करके समर्थगे मोती ही मोती ।

—साम्राज्य जगन्नाथ

## प्रकृति-प्रेम #

—:::~::~:—

( १ )

मेरा हृदय उमड़ता है हाँ,—

तमी मल हो हृदय बिमोर;  
नील ज्योम में हृदय धनुष हो  
( मिले क्षितिज के दोमोक्षोर ) ।

( २ )

बाल्य काल में मेरे था—

यह हसी रूप में ऐसा ही ।  
और आज मैं युवा हुआ अब,  
हृदय धनुष है ऐसा ही ।

( ३ )

यह ऐसा हो रहे मनोहर—

बबोदुद जब हो जाऊ ।  
और नहीं तो फलें घूँ—  
हल मिही में मिल जाऊ ।

( ४ )

मोमब को है अमक बात ही

जन्मा है सब पावों को ।  
( अग्नी संस्मरय है ताशा ही—  
मत बिषलों का, रातों का ) ।

[ ५ ]

मेरो अस्मित आकाशा है,

अमिलता है बहो हिले ।  
प्रकृति पुजारी बना रहूँ मैं  
रहूँ हृदय में प्रेम हिले ।

[ ६ ]

मेर माथी के सार निम—

और प्रकृति मेरो प्यारी ।  
प्रेम रज्जु में बंध परस्पर—  
रहे ( रहे जग सुखकारी ) ।

—विजयनाथ सिंह

## राष्ट्र-भाषा

—:::~::~:—

प्रबल, प्रलोपी, परिपूरन, विपुल-पगो,  
कीन हिन्दु-वासियों को भय अमिलता है ।

सरला, सुभाष मरी नागरी गुफागरीय,  
राष्ट्रीय जीवन की प्राण-यव स्वासा है ।

कलित-कलेवर कमनीय 'कचण्ठे' रबो,  
कटिबे कलेवर बची एक यही आशा है ।

ओम भरी, ओम मरी, ओम मरीभारत को  
अखिल लिखाट-विन्दो हिन्दी राष्ट्र-भाषा है ।

'कचण्ठे' दिल्ली

\* कविदर बर्लनर्ष की The Rain bow का स्वागत

पं० बेचरवास दोसी



आइमदाद में न आने की आवा को इतलपन करने के अपराध में आप गिरफ्तार कर लिये गए हैं।

मि० कजनेट



आप न्यू रिकवरी एडमिनिस्ट्रेशन को कायम रखने के लिये कानून गये वर्ये विश्व को स्वीकार कर लिया है।

गुलामकन्द



आप की रहस्यपूर्ण हत्या के सम्बन्ध में दिल्ली लेखक जज के यहाँ 'कमसमीनेज' मुकदमा चला रहा है।

धीमली अमृत कौर



आपने एजरा के आनक नताओं व मरुओं के अन्तरेष में अपना उपवास स्थगित करवा जो घोषणा की है।

मैक्स बयर



आप विश्वविज्ञानो मुषक बाज ये डेलिन प्रिटेन के एक डाक मजदूर हैं इन्होंने गल सत्याह आपको हरा दिया।

पटियाला मरस



आपने घोषणा की है कि आप 'नये बमन वाली सच सरकार' में नय सम्मिलित होगे।

धीमो० ह० देवचर



आपकी आपसना में सर्वसदस आरत इरिया को गारंटी का ३० वां वार्षिकोत्सव मनाया गया।

डा० सत्यपाल



आप अमीर जेल में बन्द हैं, डे किल एजरा कौनिल कमेटी ने आपकी दो अप्पन्न बुजा है।

रामप्रताप



रामप्रताप की रहस्यपूर्ण हत्या के सम्बन्ध में भी दिल्ली लेखक जज के यहाँ बहुत सनसमीनेज मुकदमा चला रहा है।



# अग्निज्ञा और दरिद्रता

ब्रिटिश शासन की देन

एक फ्रांसीसी पर्यटक के विचार

—\*\*\*—

पिछले दिनों पीटी लीगारदी नामक एक फ्रांसीसी पत्रकार ने भारत की यात्रा करके वहाँ की राजनैतिक परिस्थिति पर अपने देश के पत्रों में लेख लिखे, उनके एक लेख का कुछ भाग यहाँ दिये जाते हैं, जो कई पत्रों में उद्धृत हो चुके हैं।

दो टप्पे

दिल्ली का स्टेशन है। स्टेशन पर लात बरियाँ बिछी हुई हैं, एक सुन्दर सफ़ाया प्रतापी में बड़ी है, सेना का सिपाही इयिआरन्तु कहते हैं, भारत के कमण्डल-रन को खिंचे पकसी उसी की फीसद मारील दिल्ली से बाहर जा रहे हैं। करीब एक दर्जन यूरोप के देशों के लिये यहाँ उपस्थित हैं।

दूसरे दिन उसी समय, उसी स्टेशन के उसी स्टेशन पर, जहाँ न बस बड़ी बिछी है और न सिपाहियों का पहार है, जवना की अपार भीड़ हो रही है। माथुली पुलिस उसका प्रयास नहीं कर सकती, करीब सौ स्वयंसेवक प्रयास कर रहे हैं और जवना उनके अनुशासन में चलती है। जोड़ी केर बाइ गार्दी स्टेशन पर आयातुं को, लालों की सवारी में उपस्थित जवना का जय-वाते पर स्टेशन में पूँज उठा। एक चुपचा पल्ला, श्यामवर्णी आदमी, दोनों हाथ जोड़े हुये माथु में न उतरा, लोगों ने उसे हार पहिनाय, वह जवना का अधिनायक के तिर लिर छुकाता हुआ, जवना का एक लुट्टा हाथ के जाया गया। वह प्याक किरास का प्रयास राखेन बावू है। इग्लैंड में वे राष्ट्रीय कांग्रेस को 'एक सुरुरी भर लोगो का आन्दोलन' या एक 'छोटा प्रत्यमन' कहते हैं। पर एक मुट्ठी भर हड़ विरशती लोग ही दूसरी जाति का संचालन करते हैं जैसे एक मस्तिक सार शरार का संचालन करता है।

भारत की गरीबी

पत्रकार ने भागे लिखा है:—मैं यं अवाहलाल नेहक से मिलना चाहता था, पर मादुम हुआ, ने शेल के लीकियों में बन्द हैं, सब जिये में एक दूसरे प्रयासशीली काँचिस नेता से मिलान, कहानें मुक से कहा—'सचार् यद है कि हम

एक सुरुरत ने इग्लैंड की कामथेनु को हुये हैं और उसके बन्ने में उसने हमें दो चीजें दी हैं—निर्धनता और अग्निज्ञा। हमारी निर्धनता का दरप तुम गाँवों में आकर देख सकते हो। क्या यह सरकार के ऊपर लाज्ज नहीं है कि येसो धनी और उवरा भूमि के किसान गराब हैं। मर पास इसक लिय कोई जवाब नहीं था, क्योंकि अपने प्रत्यम में मैं उल गरीबी का दरप देख चुका था।

अग्निज्ञा

के सम्बन्ध में सरकार द्वारा प्रकाशित एक मोटी किताब उठाकर उसमें लिखे गये फार्मूले में मुझे बतला गया—पैलीस करोड़ भारतीयों में केवल दो करोड़ सेप मिलेंगे, जिन की प्युलिजि स्थितियों में मिलने कर की जाय। सवा दो करोड़ में कम व्यक्ति लिख पढ़ सकते हैं। यानी पाँच साल के लड़कों की छोड़कर प्रति हजार पड़े करीब आठ। पब्लिस लोक भासमी अभिजी जानत हैं यानी प्रति दस हजार पड़े एक सो साल पुरष और आठार स्त्रियाँ। इस अग्निज्ञा का कारण क्या है? निर्धनता—सोत हारके बने लड़के स्कूल में परन नहीं आ सकते हैं, क्योंकि उनके स्कूल जान का मतलब है घर वालों की एक मुट्ठी कसकम मिलना, येम देश में जहाँ रोज के भ्रालालों की मार में गरीब लोग पिन जा रहे हैं। वहाँ शिक्षा को प्रचार कैम हो। फिर भी भारत में शिक्षा का प्रयास कुछ तो है। हिन्दू यूनिवर्सिटी एक सुन्दर विश्वविद्यालय है। इस का विज्ञान-विभाग, इसके बड़े-बड़े

हाल, मरीनरी से मरी हुई इस की गेलरिया, इस के लेक्चर-रूम और सम्पूर्ण संसार से जुने हुए अग्निकारी देख कर मेरा दरप प्रसन्न हो गया। रिवाजलों में भी अनेक बन्ने स्कूल चल रहे हैं।

कपूरथला में, जहाँ मैं भारतीय नरगों में सब से अधिक सुप्रसिद्ध और शोकीम रोजा का महामन था, मैंने ऐसो एक स्कूल देखा। स्कूल में विज्ञान, साहित्य, हिन्दी, पंजाबी पढ़ा, अभिजी और पूँज पढ़ाये जाते थे। मैंने विद्यार्थियों की विवरणों को ब जोम पकाई की पुस्तकों से अनुवाद करते देखा। जब मैंने स्कूल-भाष्य-पक को विद्यार्थियों की ज्ञानकारी और शुद्ध उच्चारण के लिये बचाई दो तो बह बहुत खुश हो कर मुझे कहने लगे कि—इन विद्यार्थियों में पूँज इसी साल से शुरू की है। मैं चाहता हूँ कि भाप दूसरी कला के मेर विद्यार्थी देखन, लेकिन भा उन की 'कलास' नहीं समी।

मैंने महाराज में भी बहुत बातें कीं। उन्होंने कहा कि—भारत में आर-रुच बड़ी नाजुक हालत है। लेकिन मुझे निश्चय है कि शासन-सुधारों के प्रचलित होने पर बहुत सी कठिनाईयें दूर हो जावेंगी। भारतीय-राजा अपने देश के हितैषी हैं। वे ब्रिटिश-सरकार से भी क्वा कर रहने के अनुसूक्त हैं। वे इग्लैंड-मर्रा से प्रेम व मित्रता के सूत्र से बन्ने हुए हैं।

महाराज ने बतलाया कि उन्होंने अपने राज्य में प्रतिनिधि-मण्डल कायम किया है, यानी प्रजा-प्रतिनिधियों को भी अपने राज-काज संभालन के हक दिये हैं। भावने कहा कि मेना के बजड म्यतिगत परेनु खूब और वैदेशिक सम्बन्ध के अधिकार अपने-अपने हाथ में ही रखे हैं।

मैंने महाराजा को बताया कि मैं

उनका स्कूल देख कर बहुत खुश हुआ हूँ। उनकी भाँसे बचकने कमी, यंत्रों के अपने शासन की प्रगल्भ सुनकर असीम प्रसन्न होते हैं। उन्होंने कहा—पिछले २० सालों में मैंने कल्पना में शिक्षा को अल्पवर्ष कर दिया है। इसका परिणाम यह है कि आज हमारे यहाँ अग्निज्ञा कम है।

जिस वक्ता आप से पूछा गया कि इग्लैंड-सरकार भारत में अभिवाय शिक्षा कर देने के लिये क्यों नहीं जोर देती, तो महाराज ने कहा—'इस मामले में मैं अपनी नदी जोर देती, तो महाराज ने कहा—'इस मामले में मैं अपनी नदी जोर देने का साहस नहीं कर सकता।' इस जवाब के साथ मुझे एक हिन्दुस्तानी पत्र के उस काल्डन को याद का गत, जिस में इग्लैंड की कैबी हिन्दुस्तान की कार्यगरी, स्वतन्त्रता और शांति की शीप-अभिलि की कहर रही थी।

दोनों के इतिशोष में अन्तर

लेख में भागे कहा गया है—एक कांसिमैम न पूछा गया तो उन्होंने बतलाया कि सरकार हिन्दुस्तानियों को इस लिय प्रिडित नहीं बनती कि जैम ही वे पञ्ज-बिह कर कपसी गरीबी दूर कर डेगे तो वे सब अभि-जी-रायश के लुर को अपने कंधे से उतार फेंकेगे।

सरकारी भाषमी का इन सम्बन्ध में स्पष्ट कहना है—कॉमल एक खुरफाकी संस्था है, हम उस की अधिकार्य जमीन को पूरा करना चाहते हैं। हम उसे स्वराज्य भी देंगे, पर इग्लैंड को हिन्दुस्तान में जो पूँजी लगी हुई है, उस की रक्क के लिर विशेष अधिकार रखेंगे। धनी हिन्दुस्तानी तो अपनी साल अभिजी-बेकाल में ही रखने हैं, हिन्दुस्तानियों ने नहीं। मैं विश्वास लिखता हूँ कि हिन्दुस्तानी को खुबारा मिल रहे हैं, वह कॉमल के दबाक के कायम नहीं मिल रहे हैं। सचार् कहाँ है? खुबारा आकाशक है और प्रभाज भी इस आकाशक की मदद करन है और इसी लिय खुबार कर मो रहे हैं। लेकिन, उन को गति बहुत कम है। जवना में संतोष की जगह असंतोष को क्क रहा है और प्रत्येक नई रिपारख उसका असंतोष बढ़ाती जानी है।

लेखक न अपने लेख के अन्त में लिखा है—एक महान् देश को वह गरीबी और शासन प्रिडित सामुयिक के सफेद मोर पर काजा बनना है। हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता देने से ही इग्लैंड को उन्नत मिल सकती है।

## गुप्त शत्रु मधुमेह (Diabetes)

बलवान् से बचवान् मधुमेह के स्वास्थ का नाश कर देता है। कवि विनोद वैद्यमय्य पहिलत डाक्टरवत् यमों वैद्य इसके लिये

## अश्रुगरी

का बाधिकार कर चुके हैं। हजारों इस से ज़ाम उठा चुके हैं। मुख्य ४) मधुमा १)।

मिलने का पता—अभुतधारा ८, लहौर।

देहकी प्रेम्प—निहारीबाब वालोराम काली बाबकी स्टोड।



## स्त्री-श्रमजीवियों की समस्या

### मजदूर स्त्रियाँ

संसार में मशीनों के प्रचलन से जहाँ बहुत से काम हुए, वहाँ उसने जिन भी काम नहीं हुए। इसका सबसे पुनर्कर परिणाम यह हुआ कि इससे घर-उद्यान चमकें हो गये और घर में पुरुषों के कारखाने खुल गये और उनमें मजदूर लोग एक बड़ी तादाद में कारखानेदारों के शुल्कान वगैरह काम करने लगे। अब महिलाओं के प्रयासों के बल में तो सामान्य-प्रगति के अनुसार समाज की जो भवना समझदार और प्रवीण करने की बात पड़ी। सरमायदारी ने पहिले तो उन मशीनों का विरोध किया पर समय की प्रगति को वे अपनी भावों ताकत में रोक न सके। वहाँ तक कि पुरुषों की भाँति जिन कारखानों और उनके को घर पर चलाने वाली सरकारी को भी मजदूरों की सुविधा के लिए काम करने पड़े, जिनमें में

### काम करनेवाली स्त्रियाँ

और बच्चों के लिए भी बहुत फैक्टरी काम करने लगे। सबसे पहिले सन् १९१२ में एक कानून बना, जिस के अनुसार स्त्रियों का रात के समय काम करना बन्द किया गया। इसके बाद सन् १९१३ में दूसरा कानून बना जिस के अनुसार स्त्रियों को दिन-रात के चौथे घंटे में काम करने (१) थाइलैंड घंटे काम के लिए नियत किया गया। इसके अलावा उन्हें काम करने के समय बोनस में हार प्रत्यक्ष भाराम करने के लिए दिया गया। सन् १९२२ के नव कानून द्वारा स्त्रियों का काम का समय प्रातःकाल साढ़े पाँच बजे से लेकर सायंकाल के सात बजे के बीच में स्थिर किया गया। औरतों में एक ही दिन में दो कारखानों में काम करना जान में मिल-मिलकों का रोका गया और मैनेजर्स को अज्ञात हो गई कि वे औरतों को घर बच्चों को काम करने द्वारा प्रतिपादित काम के घंटों को बचा दिया करें। लेकिन उस

### कानून की धाराएँ

कपाल घोटने और रुई काटने के कारखानों में लागू नहीं होयों हैं। सन् १९२२ के कानून में कुछ और भी धाराएँ हैं, जिनमें खतर की जगह में स्त्रियों और बच्चों से काम लिया जाना रोकर कानूनी है। कानूनों में रो-जाना काम करने वाले मजदूरों के लिए कुछ कानून स्थित हैं। सन् १९२५

के कानूनों सम्बन्धी कानून के अनुसार औरतों के काम के घंटे सन् १९२० की पहली अप्रैल से १२ घंटे सुदूर तक किये गये। औरत मजदूरों को रक्षा के लिये व कानून कायदा नहीं हैं। इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस और इटली के औरत-मजदूर रक्षा-कानून इन कानूनों से अधिक उदारतापूर्ण हैं।

### हिन्दुस्तान के फैक्टरी कानून

औरतों के लिए रात में साढ़े दस घंटे कारखाने के लिए रकने हैं और प्रातःकाल साढ़े पाँच बजे में सायंकाल के सात बजे तक काम का समय निर्धारित करने हैं। लेकिन उन में ऐसी कोई धारा नहीं जिस से बहुत बच्चे के साथ उनके काम करने का समय जो बन्द किया जाय और साधारण कारखानों तथा जहरीली चीजों तैयार करने वाले विशेष कारखानों में कुछ में स्वयंप्रति हो सके। काम का समय इस प्रकार से निर्दिष्ट किया जाना चाहिये कि मजदूरों के लिये काम भार कम हो जाय। हिन्दुस्तान में ऐसा है। गर्मियों के दिनों में मजदूर लगातार काम नहीं कर सकते इसलिये उनकी गर्मियों के मौसम में दिन का काम कुछ कम कर देना चाहिये और रात का काम बढ़ा देना चाहिये। गर्मियों में सुबह साढ़े पाँच में साढ़े ग्यारह तक और रात के साढ़े दस से साढ़े आठ तक काम देना चाहिये। इस प्रकार काम कानून के अनुसार भी होगा और औरतें उसको सुविधापूर्वक हो कर सकेंगी। जाड़े के मौसम में समय के परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है।

जहरीली वस्तुओं बनाने वाले कारखानों में काम के समय का वि-भाग उचित रीति में और हर एक बात का भयम रक्षक किया जाना चाहिये। कपड़े बनाने वाले कारखानों में गर्मियों के मौसम में भाराम करने का समय शाम के सात बजे से सुबह के छः बजे तक और जाड़े में सात बजे रात में सुबह सात बजे तक रहना चाहिये। Multiple shift system को तोड़ देना चाहिये। फैक्टरी एम्प्लेमेंट रजिस्ट्रार करते हैं कि मिल-मालिक, मजदूरों का शोधन इस प्रकार में करते हैं कि एम्प्लेमेंटर्स को जहाँ भी जो कुछ होकर देत हैं।

—(लेखक)

## हिन्दुस्थान को अपरेटिव इन्शोरेन्स सोसायटी लिमिटेड

१९२१-२४ का व्यवसाय की कमाई से ज्यादा  
बीमर वगैरह पर कबिर्तारों पर २५)  
सर्व जीवन्त पक्षिर्तारों पर २५)  
इस में काम है यदि आप अपना बीमा उद्योगीय काजिस  
भारतीय सोसायटी में करायें।

आ विधि प्रमाणित न्यायमूर्ति लिमिटेड का

# जगत सिपात कामचक्षु

READ.

यदि आप चाहें तो हम आपके लिए एक नया काम शुरू कर देंगे। हम आपके लिए एक नया काम शुरू कर देंगे। हम आपके लिए एक नया काम शुरू कर देंगे।

देहली के घरेलू-ग्रामशास्त्र पर कर्मियों बाँटने की, बड़ी है।

विना तकली के बात करने का

# बादशाही

बादशाही कायदा

हरजुगहपर मिलता है

सी.सी. महानुज एंड कुं.

सुताम बाबा, कल्याण, २५

## दाँतों के रोगों को अपूर्व दवा हर रोज दाँतों को साफ करने के लिये दन्त सुधामंजन

के समान मंजन अब तक नहीं निकला। इसके ७ दिन के प्रयोग से दाँतों के सब रोग गन्ध हो जाते हैं। पायोरिया, मधुर्ता से बचने का निवारण, दाँतों का शिथिल, दाँतों से दाँत का कारण हो जाता, मुख से दुर्गन्ध आना और हर प्रकार के दाँतों को दूर करने के लिए सुधा मंजन प्रमुख के दुष्कर्म जोखन को दूर कर देता है। साथ ही यह मंजन एक बार करने से दाँतों के पीलेपन का दूर करने मोती कैसी चमक देता है। इतना होने पर भी सुधा मंजन को बर्तन में रखा जाय तो फलदायी निमित्त मंजले पर रखे जाते



दाँतों का केवल १०) इच्छा करीबने का दाँतों का उचित रोगों का दवा है।  
(मंजु) कार्यालय के ऊपर, नया बाजार, देहली।



करता है। तब पारलियामेंट का नया चुनाव होता है। किन्तु उपनिवेश-सरकार में एक मन्त्रिमण्डल पर अधिपत्य के पैदा हो जाने पर गवर्नर उसी व्यवस्थापिका समा का अन्य-मेंबरों के सहयोग में दूसरा मन्त्रिमण्डल बना सकता है। विशेषकर छात्र-विद्यालयों में पठित उच्च प्रयोग का में लाया गया। क्योंकि वहाँ का पारलियामेंट का कार्यकाल बहुत छोटा होने के कारण प्रारम्भ में बार-बार मन्त्रिमण्डल टूटने में अधिक प्राधिकृत व्यक्ति तथा शासन सम्बन्धी प्रश्न-वर्तन उठाने पड़े। पर सर आर. मन्ना (पुष्पल (सन् १९२४-२५) में इस नवप्रयोग को छोड़कर मित्रिय पद्धति को ही प्रचलित किया। कनडा में सन् १९२५ में जब मि० मेकेंडागि का मन्त्रिमण्डल शासन कार्य चलाने में असफल रहा तो उस समय क गवर्नर जेम्स हार्डिंग ने मि० गिग की तब चुनाव की प्रार्थना को धमकी देकर कलकत्ता में व्यवस्थापिका समा में से हा इसका मन्त्रिमण्डल बना लिया। कलकत्ता यह हुआ कि मि० मेकेंडागि का वह नया मन्त्रिमण्डल पिछले पार्टी का जैनेन्द्र सदन में कर सका और शासन-कार्य चलाने में असमर्थ रहा। इसलिये फिर नया चुनाव हुआ और उसने मि० गिग के दल की ही विजय रहा। इस तरह काई-बाहर का मोति धनकर लायित हुई।

इसो क फल स्वरूप सन् १९२५ की साधारण परिषद में मि० गिग ने प्रस्ताव किया कि मि० गिग क गवर्नर सभी जातियों क समान पक्षों की दृष्टि में एक ही उपनिवेश के गवर्नर जनरल को वहा पद होता है जो मित्रिय सलुक्त राज्य में सख्त दुका है। अन्य गवर्नर जनरल सख्त दुका प्रतिनिधि है न कि सख्त दुका सरकार का पद उपनिवेश सरकार का कार्य को सख्त दुका वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा सख्त दुका गवर्नर जनरल क साथ रहता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह मन्त्रिमण्डल क निर्माण का। अस्याकर हा नही कर सकता है। अतः एक बार व्यवस्थापिका के मा हा न पर यह मन्त्रिमण्डल निर उस पर परवर्तक भाग करने का आग्रह कर तो अपना शासन-कार्य चलाने क लिय वह उसे धमकी देकर कर सकता है। किन्तु परिषद में दलपक्षों क कारण पैदा हुई प्रश्नवर्तनों को दूर करने क लिय उसे मन्त्रिमण्डल की सहाय ही स्वी कर लेना पड़नी है। सन् १९२४ में सख्त दुका गवर्नर मन्त्रिमण्डल क प्रधान मि० रामने मन्त्रिमण्डल की प्रार्थना पर

पारलियामेंट को मा कर दिया और दूसरे में मन्त्रिमण्डल का प्रयत्न नहीं किया।

गवर्नर जनरल को दूसरी स्थिति का अर्थ यह लगाया गया कि वह उपनिवेश सरकार को सख्त दुका के बीच सम्बन्ध शक्ति है, अन्य उपनिवेश-सरकार को कार-बाहो उसके द्वारा सख्त दुका-सरकार तक पहुँचनी चाहिये। परन्तु यह कार्यवाही भी आगे स्थिर नहीं रह सका। सन् १९२७ ई० में कनडा, आयरलैंड और यूनिव सरदारों ने यह विषय बना लिया कि उपनिवेश सरकार का कार्यकाय गवर्नर जनरल द्वारा सख्त दुका सरकार के पास भेजे जाने को आवश्यकता नहीं है। पर उपनिवेश सरकार को कार्य तथा नीति निर्धारण क उप की मन्त्रिमण्डल जनरल तक पहुँचना चाहिये पर इस प्रयोग में भी आग्रह स्थितता का भाई है।

### मन्त्रिमण्डल का चुनाव

मन्त्रिमण्डल क पक्षाधिकारियों का चुनाव प्रदान मंत्री की इच्छा पर निर्भर होता है जो प्रायः अपने ही दल में म चुनता है। छात्र लिग सख्त दुका सरकार का मन्त्रिमण्डल तो वहाँ का मन्त्र सल ( गल्लंड क लेबर यूनियन का तरह ही सखा ) की चुन रहा है। इससे प्रत्येक देश की वहा का मन्त्र पर सा केंसा हट-सल है आर उसको पर कर में मन्त्र जनता का कला हाय रहता है। आयरलैंड क प्रधानमन्त्री का चुनाव वहाँ की पारलियामेंट (हम) ही करता है जो दल की राय में प्रदान सहायक मन्त्री चुनता है। यदि मन्त्रिमण्डल क विरुद्ध दल का बहुमत हो तो वह टूट जाता है। मन्त्रिमण्डल में प्रधान मन्त्री का व्यक्ति क हा सङ्कु होता है। उप प्रधान मन्त्री और व्यवस्था का पालन क अधिकारी मन्त्री होते हैं अन्यथा इसमें बाधा आगियता आने पर मन्त्रिमण्डल पर अधिपत्य का प्रत्यावर्तन का सख्त दुका के आर यह भी हो जाता है। आयरलैंड का गवर्नर मन्त्रिमण्डल का प्रधान मन्त्री का सहायक मन्त्री चुनता है। उपनिवेश मन्त्रिमण्डल में गवर्नर क पक्ष लिग जान का मा कार्यवाही किन्तु एम्मा यदाकादा हा इता है। पिछले वर्ष मन्त्रिमण्डल में काँ उपनिवेश सल उपनिवेश दुका, जिनमें व्यवस्थापिका में गवर्नर क किंवा व्यक्ति का मन्त्रिमण्डल में लिया गया हा। केबिनेट मन्त्री को अपना प्रमाण सख्त दुका क लिय यह आवश्यक होता है कि वह दोनो सभाओं में म किता का भा

मेम्बर हो, विशेषकर उम छोटी सभा को मेम्बर होना चाहिये, क्योंकि वही सभा में जनता का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व नहीं है। मन्त्रिमण्डल की बैठकों में गवर्नर जनरल किसी विशेष समय और विशेष परिस्थितियों में ही बैठता है। प्रधानमन्त्री द्वारा उसे सारे कार्य की सूचना मिलती है। मन्त्रिमण्डल का सारा कार्य प्रधान मन्त्री के निरोक्षण में होता है। व्यक्ति अपनी का, और आयरलैंड में मन्त्री गण दोनो सभाओं में बोल सकते हैं, पर वोट केवल उसी सभा में दे सकते हैं, जिसके मन्त्र होते हैं। कामन वेथ में मैबरी को याता सम्बन्धी मन्त्री सुविधाओं के साथ एक हजार वोट सभा-नाम के लिय मिलता है। वर्ष भर में पारलियामेंट के अधिवेशनों को सखा कानून द्वारा निश्चय को गई है। आयरलैंड में तो इस पर को इतना का प्रस्ताव हो रहा है।

### दल-बन्दी

मित्रिय सलुक्त राज्य में उत्तर भाषी सरकार का निर्वात दल-बन्दी क साथ हुआ है। कनडा में तो यहाँ तक नीति का पड़नी है कि गवर्नर जनरल के हाव की समस्त शक्ति वहाँ कार्यव्यवस्थापिका-सख्त दुका अपने अधिकांश में रहना चाहती है। यदि इसमें कोई सन्देह नही कि इस प्रणाली में एक पार्टी का दूसरा पार्टी क साथ भारी विरोध रहता है, जिस में सिद्धांत क सुका विरोध-व्यक्ति हो प्रयोजन हो जाता है। परन्तु मित्रिय पारलियामेंट में मन्त्रिमण्डल क सख्त दुका के साथ यह बात प्रचलित होती जाती है, क्योंकि मन्त्रिमण्डल का प्रदान सिद्धांत क बल पर रहता है। कनडा में सिविल और कजरेटिव दो दल हैं। महासभा क बाइ ब्लाई किलान पार्टी का बहा दौर होता हुआ, जिस का प्रभाव धव की परिषदों प्राप्ती में है। अन्य प्राप्ती में उक्त दोनो दलों का प्रभाव नहीं है। क्योंकि सिविल दल और अन्य प्राप्ती में कजरेटिव-दल का प्रभाव है। न्यू फाउण्डलैंड में किसी एक क राज में व्यक्ति-क सख्त दुका प्रभाव है। पर जिन समय न्यू फाउण्डलैंड को कनडा क शासन में सम्मिलित कर उसका कनडा का हा एक प्रांत बनाने का आग्रहजन हा रहा था, उस समय वहाँ क लोकमत न प्रत्यक्ष विरोध करने प्रयत्न दल क स्वतंत्रता सिद्धांत का पालन किया। कनडा जिया का प्रभाव के तीन दलों में सन् १९२३ ई० तक प्रभाव पड़ने का जोर रहा। यूरोपीय युद्धकाल में आरु लिया में

इसी दल की सरकार कयम थी। इसके बाद वहाँ किलान हिलों के पक्ष वालों का जोर बढ़ा, जिसने प्रभाव पर विरोधकता के पक्ष वाले दल का मुकाबला करने किलान हिलों को प्रभावता दी। यूरोपीय में पहिले उद्धार दल की दोनो सभाओं पर पीछे वहाँ सिविल पार्टी के नाम से एक दल बना जिसने जोरों से उद्धार दल को मुकाबला किया। सन् १९२२ के बाद वहाँ सर जे० बार्न ने उद्धार और मन्त्रिमण्डल दोनो दलों का मिश्र कर अपनी प्रभावता करण। सिविल अफरोका युनिव में जनरल बोथा और जनरल स्मट्स के प्रधान में प्रथम अफरोका पार्टी को लुप्त प्रभावता रही, जिसने डच भाषी की प्रतिनिधि नेमलियस्ट पार्टी का मुकाबला किया। एक छोटी मन्त्रिमण्डल पार्टी भी, जो मन्त्रिमण्डल के गौरे लोगों तथा कानूनों में काम करने वाले अग्रज, डच और युनिव बलों का प्रतिनिधित्व करता थी। सन् १९२० ई० में जनरल बार्न जोर का प्रभावत्व में मन्त्रिमण्डल का प्रत्यक्ष हुआ, जिसने युनिवियस्ट भी मिल गया। इस प्रकार सिविल अफरोका पार्टी बनी जिसने प्रवासी लोगों को भरती का समर्थन किया। सन् १९२४ में जनरल स्मट्स का पराजय हुआ और जनरल बार्न जोर को शक्ति बर्ग गई। १९२४ के चुनाव में फिर बार्न जोर की विजय हुई। मन्त्रिमण्डल, जिसने प्रभाव सर-कार का साथ लिया था, बिल्कुल गल्लंड हो गई, यद्यपि स्थानीय सरगमों में जनरल स्मट्स का प्रभाव बना रहा। "हाथ क बारे में सोचो न राष्ट्रीय दल क लिय हा प्रयत्न बना दिया। इस प्रकार बहुत दिन तक सिविल अफरोका क देशी लोग और यूरोपीयों क अधिकांश में मन्त्रिमण्डल हो रहा। आयरलैंड क मासल विधान में सुप्रीम लेन की प्राप्ति क विरोध में भाग रहा है। डेल (पारलियामेंट) क एक दल ने तो ऑर्गन में मोजब सन् १९२७ में प्रवेश किया तो आर गाना-निधि द्वारा अपने विरोधी दल का मुकाबला करने क लिये। धव वहाँ को डच में मि० कालवेन और दो वेबरी को पारलियामेंट को सुप्रीम विरोध है। पर हा वेबरी को शक्ति हा प्रभाव है, उनसे शय्य प्रया को आयरलैंड के शासन-विधान में उ उड़ कर फेंक दिया है।

पारलियामेंट का सख्त दुका मित्रिय पक्षों का ही अनुकरण है। कभी मे वहाँ पार्टी को भी बही धमकावने, (सिप दृष्ट २७ पर)

## सफाई और गांधी जी लोगाकृत गांधी में गांधी जी के भाषण

अभी सरदार वल्लभभाई पटेल मंत्री गांधी को बोरसद के प्लेगा कौल नौ में ले गये थे। वहाँ उन्होंने जो भाषण दिये, उसके कुछ अंश निम्न लिखित हैं—

सफाई

'यह समझ कर कि प्लेगाकपी गन्ध, भय डट गया है, आप लोग सो म जाना, बल्कि एकाग्रता प्रयत्न करना कि यह फिर कभी स्वर न उठायें।' एक दो समाजों में उन्होंने कहा 'यूहे सौर पोस्व डून फैलात है, इस लिये डाक्टरों का कहना है कि यूहो और पिस्तुओं को नष्ट कर देना चाहिये पर यूहो और पिस्तु सो स्थिर के सन्तुष्टाहक हैं। इसके द्वारा ईश्वर हमें चलायनी देता है। मैं प्रत्यक्ष अपने आँखा से देखा है कि जिन गाँवों में आपकी प्रकृत न प्रकृत से अच्छा जवाबपु और स्वास्थकर जमान प्रदान की है वहाँ आप प्रकृति के नियमों को देना मर करते हैं कि यह मान्य होना लगता है कि वहाँ महामारी न हमला क लिये आपका डेरा जमा रखा है। आप यूहो और पिस्तुओं का तो नष्ट कर देंगे, पर यदि अपने अपने घरों और आँगनों को इतना साफ न रखा कि यूहो और पिस्तु पड़ा हो न हों तो वे तो वहाँ बराबर पड़ा हींग हों। उन्हें मारन से होना ही क्या? मर जैसा आँखिलुमी मनुष्य ता वही कहैगा कि यूहो और पिस्तुओं को मर जाने का उसमा ही अधिकार है जितना कि मुझे है और इस लिये उन्हें नष्ट करने क बजाय मुझे खुद को नष्ट हो जाना चाहिये। पर मैं इस अन्त में आँखिला की इस कटि त कहीं पहुँच सकता, शायद अपने जन्म में भा न पहुँच सकूँ, और आप लोग भी शायद न पहुँच सकें, लेकिन आप ऐसी विधाओं को पेश कर सकते हैं, जिसमें यूहो और पिस्तु कभी बर बना ही न सकें। मैं चाहता हूँ कि आप ऐसी स्थिति पैदा करें कि मैं चाहता हूँ कि स्वयं सभी न सफाई का जो काम किया है, उन आप स्थानीय रूप से पाँच-पाँच उपायों द्वारा यूहो के बिल खाद डल और फिर पेश पत्र बनाय कि जिसमें यूहो बिल बना हो न सकें।

खुद मारी बनी

बोरसद में गांधी जी न लोगों को भाविक घम विस्तार क साथ समझाते हुए कहा, 'यह हमें ही बात है जो यहाँ हमें बार साख रहा।

आस बोरसद की चिकी तरह हजार का आबादी है और तात्काल की आबादी १४४००० की है। आप बोरसद और बोरसद तात्कालीन गंग को नस्तानबुद कर देना कोई ऐसी बात नहीं, जो आपस्य हो। पर सार १०० क लिये सिकें लु अगी रखने में यह काम पूरा होना पड़ेगा। आप सब लोग खुद भूत न बनो, खुद सफाई का काम न करेंगे, तो सरदार और उनके स्वयंसेवकों क प्रयत्न पर भी यह काम नहीं कि प्यग यहा न आवे। सब बात तो यह है कि स्वयंसेवकों ने जो काम पूरा किया है उसमें आपकी जिम्मेदारी और अधिक बढ़ गई है। आपन सफाई का यह काम चालू न रखा तो सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा।

स्वराज्य कौन ले सकता है ?

विद्युत् दिनों काय होलों न सविनय प्रथा क युद्ध में जो चीरना दिखाई थो भी जो कष्ट महान किये य तथा पत्रा क्या या उस सब क लिये मैं आप को बधाई देन आया था। लेकिन आज मैं आप न यह कहने आया हूँ कि जा लोग मर कार के खिलाफ लड़ सकते हैं, ये नहीं, किन्तु हम गंग जसे रिफ्ट सफ्ट से गो मावा ले सकते हैं वही स्वराज्य भांग सकेंगे। मैं आपन यह कहना कि जब मैं मैं 'स्वराज्य' शब्द सावा तथा मैं इस किस्म क काम में रम लगा आया हूँ। सन १९२६ में ही जब मैं मरे सार्वजनिक जीवन का आरम्भ हुआ मेरा मुख्य उद्देश्य स्वयंसेवक रचना-कारों की मी में रहा है। सरकार क साथ लड़न का मोका तो मर जीवन में बहुत मरे से आया। पर यह कहा जा सकता है कि वह अनक बर्षों के ठोके स्वयंसेवक कार्य की पुनर्ना नीव पर लगी जो टूट इमारत है। मैं स्वयंसेवक लिंग क हर वायदा-कानून का पालन क पालन किया है और जिस सरदार न मुझे अनेक बार जेल की सजा द ह यह भी मैं लिये-लियाम का योग्यता को जानती हूँ। मैं बहुत पहले दक्षिणी अफ्रीका में जाय भूँदी का काम किया, तब से मैं यह जोर देकर

कहाता आ रहा हूँ कि हम किस्म क काम से ही हम स्वराज्य भोगने योग्य बनेंगे। आप यह तो कहेंगे ही नहीं कि स्वराज्य प्राप्त हो जाने क बाद आप सा जायम और इस की पेशा नहीं करेंगे। स्वराज्य का कार्य बराबरकत न रहेगा। आप की स्वराज्य मिलने क बाद भी हम सब प्रयोगों का हल करना ही पड़ेगा। यदि रक्षित कि जिस मनुष्य न सविनय प्रथा का लिये आवाज उठाई था वही मनुष्य इस प्रकार क आवाश्यक काम क लिये आपनों आज आमम्यव द रहा है। जब तक आपन अपने शरीर और आपन घर की नी-शामी नहीं बना लिया तब तक आप खादी की उपलब्धि का तथा आम उपयोगों की पुनर्जीवित करण रचनात्मक कार्य भी नहीं कर सकतें, और इसा में यह सफाई का काम तमाम रचनात्मक कार्यों का मुलाधार है।'

शारीरिक शक्ति प्राप्त करो

गांधी जी श्रोत दिन बोरसद में रहे। इस बीचसे उन्होंने जो भाषण पढ़ले से इस भाषण क अनक पत्र प्रकाशित करवाय कि मकाम यूहो से और मनुष्य का शरीर किस प्रकार रोगों से सुरक्षित हो सकता है। एक भाषण में गांधी जी न कहा कि 'उम पीचित यूहे या पिस्तु न लेगा पीचित मनुष्य की उपाय करता है। आप तब तक हम सजात्मक रोगों को नष्ट नहीं कर सकत जब तक कि आप अपने शरीर को इस प्रकार न नहीं बना लें कि उम रोग का डून लगे ही नहीं प्रष्टि न तो हमें रागों क साथ लड़न की कान्ची शक्ति ही है पर हमन उसक नियमों की उपस्था कर क उस शक्ति को गवा दिया ह। आहार विहार के नियमों। समचित भाषण करके हमें इस गवाई हुई शक्ति का पुनः प्राप्त करना चाहिये।

सरदार न भी इस प्रश्न में सकामक उम को हाव में लाने के लिये अच्छी कार्यवाई करने का वकन लिया है। पर कार लोग जायम न हुए और मकत उ के काम को उनीन रोगों कप म वाउ न रखा तो प्रयत्न भी निष्फल हो जायगा। लोग यह काम चालू रखन क लिये समझना ही गांधी जी को बोरसद जा क पकमान हेतु था।

( हरिजन सेवक म )

## यहाँ देखिये

आप दूसर लोगों न प्रकृताडू म समय, शक्ति उ घन क की रह हैं हमारी सहायता में आपन काय स्वयं लिख की नय।

## जादू का शीशा

यह गांधी कवाग की मनुष्य तथा अत्यधिक शक्तियों का बड़ा बाकी जड़ो-चिपों में सेवार किया जाता है। यह बहुत ही सुन्दर वस्तु में रखा जाता है। आप चाँक रह जायग, जब आप को उस क रखन से उस क मस्तर दिखाता देन लगेगे।

चाहे स्त्री हो या पुरुष उसके रखन से अपना भूल मोक्षित तः। वल्लभा मनुष्य हो जायगा। यह ज्ञानन क लिख आप को ज्योतिष से पृथुन की कौन आवाश्यकता नहीं होगी। आप अपने मुखरे दुयों भागों में बात-बीत कर सकते हैं। आप अपने मातृम में मिल सकन है चाहे वह आप स किना ही रूप रखे न हों। लिखे हुए ज्ञान, जो या या चुरया हुआ भास समी मा लु हो सकता है।

इसका सहायता म आप दूसरों क दुयों पर काबू या लो आप आप यह जान सकेंगे कि दूसरे आप क सम्बन्ध में क्या बचाव करते हैं यह आपकी शारी, चालू मामलात, प लिखारी मामलात में ठीक रास्ता दिखाता रहेगा आप इसको सहायता में बनवती नीचर न लोटरा नष्टर मान्य कर सकते हैं। हमने आपको खुदई सुन्दर तथा परात्मा में सरताहा होगा। इस क जरिय आप वहलिवा बढो पालामो न हिय कर सकन हैं। मुख रहन क लिख मालव्य होन के लिये यह आपका बहुत हा लाभप्रद होगा।

हम तु समय नसार में यह आपका सच्चा मित्र सावित होगा। इसकी कीमत बहुत हा कम रखी गई है जिसम शरीर प्रामा मवा पराई लकी और यदि लाभप्रद न निकले तो पैसा और उ कचर क कर कामन वापस कर गे जायगा। मुख्य से दंग क लिये १० ( १ शिखन या १०० व वस प ) प्रेशमा डाफलव व वैकिंग।

श्री मेनजर, स्पेसुलर-प्रेर, भायुर रोड. ( १०२ ) दक्कन की

(गतांक से आगे)

मित्र का परिश्रमी जीवन के कारण उसके बालपन की स्मृति तथा दृष्टि थी। चुचले से प्रकाश में कमी २ मी की क्षति असमर्थ रूप में दिखाई देती थी। स्मृति अटक कर कमी २ जेल और मार्गसिंह की छोटी पूँच भाती थी, परन्तु मित्र के मजदूर का सर्वमान इनका कोलाहलपूर्ण होता है कि मृत या भविष्य का इन्हीं आशाओं वलमें सुनाई नहीं देती। उम्मेद केवल वर्तमान जीवन व्यतीत कर रहा था। उसका पुराना दोस्त बशीर उसी कारखाने के इन्जिन विभाग में काम करता था। वह भी उम्मेद की तरह मिलमय जीवन व्यतीत कर रहा था। दोनों मित्र कारखाने की दिन चरों को रीढ़ी पर बैठ कर जीवन नदी के प्रवाह में बड़े आ रहे थे।

इदुनाल

( १ )

कल इन्वार की छुट्टी है, इस कारण आज की रात मजदूरों के लिये प्रमोद और चिन्ता की रात है। सुबह बिल्ली उठकर कारखाने जान की चिन्ता नहीं, और न दिन भर बड़ा रहना पड़ेगा। इसलिये रात भर जागरण मन बहलाना जा सकता है, वह सोच कर मजदूर लोग अपनी कारखाने में स्थान २ पर एकत्र होय है, और उनका यह शराब की सहायता से अपना सुख और घरायन वाले मजदूर जीवन में से जीवन का सब निषेधन का प्रयत्न कर रहे हैं। सातों दिन कुछ विश्राम मिलता है। सुनसान मन में कमी करने के लिये दृश्य मजदूरों का दरवाजा तलाश करता है। हाथ में पैसा पसीन की कमाई के कुछ देना था गय है। परिवार साथ नहीं कि दिख बहलान का कुछ उपहार है। यदि कुछ आसुपियाँ हैं। परिवार साथ है भी तो सगवों बड़ा बलवान है। इन्कान न रहे भी आसुपियों का साथ देना ही पड़ता है। शरीर की रात की क्षयिकीय मजदूर अपने सन्नाह भर की बचत पा जाते हैं और बहुत से तो कर्ज के भीचे बच जाते हैं। मजदूरों की कमाई का कुछ हिस्सा मजदूर हित के नाम पर इन्दुनाल किया जाता है और उसका कुछ भाग लिखा हुआ जादू आदि के सेन तमाषों में खर्च भी किया जाता है, पर वह कारखाने के मजदूरों मजदूरों के सर्व हिस्स की भी नहीं होता। कुछ मजदूरों का कुछ समय के लिये मजदूर बन हो जाता है, परन्तु योरोप के मजदूरों की ओ

आगावाही उपन्यास

## अपराधी कौन ?

( उ०—भी देव )

उम्मेद का अमीन जीवन बहुत बड़ा नहीं है। उसकी कुछ माला में ही उसे पाला था। पिछला न पाकर गली के कुछ शराबी लम्बों की संगत में शराबों करना सीख गया था। एक दिन फेरी वाले की गारमियाँ लूटन के कारण पुलेस न उम पागपनार कर लिया। उम जेल में भी तीन मास रहना पड़ा। वहीं वती का कठोर दृष्ट भी मिला। जब जेल में वह रहा हुआ, उसकी माँ मर गया थी। अपने एक दोस्त बशीर के बाप की मर्त्य न वह मित्र में भरतो होया, वहाँ अपने लान और परिवश में सब लान जाबर हाँगा। एक दफा जेल के साथी योगसिंह ने उम डाक के लिये उकसाया भी, परन्तु वह इस पाप क लिय सहमत न हुआ।

—सम्पादक)

विनोद और सुख की सामग्री प्राप्त हो जाती है, मरगरीय मजदूर उसका शराबी भी नहीं पाते। फिर विलायन के मजदूर जब गिरा हुआ मजदूरन न मही बच सकते, तो आलोचन मजदूर कैसे बच सकते।

हाँ, तो उस गन स्थान स्थान पर जुर के अमान को रहे थे। जिस लान में उम्मेद की बीटरी थी, वहाँ भी एक चौकरी जमो हुई थी। उस चौकरी के कलाप या गुरुमण्डल बह हुआ। पूरा परिचित निवारों की थे, तिजारी की कर्नाजिया प्रवाल थे, सुखान के धनतार थे और चमी का प्रवाल। पालन करने वाले थे। जब रमाई बनान बने, सब एक छोटीका कमर पर मोटे लेते, बाकी सवे था, परन्तु था बिककुल छुड़, चर्चक तिजारी की उम केवल मोजन के समय पहिने थे और उम अमोत में कल तिजारी की के शरीर की मल थी, और तिजारी जसे उम। मलाय के शरीर का मेल छोड़ कर लेते हो सकता है। रमाई बनान बनते यदि पचाना जा जाता तो उसी क लसे पीड़ते। जब जाना कल कर जा चुकते, तब उम लूटी पर दाँत देते और दूध क कपड़ पहिन लेते। हतन समय तक कोई दूसरा आदमी उन्हें छ नहीं सकता था। उम

कार्यों में वह मजदूरों के चरुम माने जाते थे। वह प्रायः कहा करते थे कि 'अप्या, हमन सब कुछ कर लिया। जुग लेला शराब पी, बानी छत्र में दूधने की ओमों नह को न छोड़ा, पर अपना धर्म नहीं छोड़ा। आज तक कोई दूसर को अपना जाना नहीं लाया और कभी चौक से बाहर कुछ प्रद्व नहीं किया।' ओता होय चर्च की हच दयाया की सुनकर सुपु हो जाते और निवारों की वरिष्ठ मुनि बह विलुगो ब्रह तार मानते थे।

जुग का दौर चल रहा था। बार आदमी लेब रहे थे, बाकी देख रहे थे। ये तो वह दृश्य, पर उन में लिलाकियों में आ अधिक और पैदा हो रहा था। उस समय शरीर लिलाकियों में था और उम्मेद वरुंभी में। तिजारी की पूरा भार पर थे। हाथ पर हाथ मोर रहे थे। दूरक ओम अवेद निवारों की के शरीर की कुर्ती और जेय की देखकर आश्चर्यन हो रहे थे। उनका प्रतिबन्ध इतिन लाने का छोटा अकसर हाजा नसार प्रलो था। वह मित्र में हाजी की नाम से मजदूर था। बादा पाकक रहता था। दो बार दूध कर लेया था। प्राये पर काश दाग लग रहा था कि बार की मलाज में कपे कसो नहीं पाती। शरीर का सभ से लम्हा बाह नाभि की छुना था। तस्वीह जम में रहती थी। हाजा की को उम को जाने वाले छोटा सभ हवी शीर मानते थे। उपर तिजारी

जी, इपर हाजी की—बर्हे और की बिदुन थी। तिजारी जो का साथे बरा रहा था, और हाजी की का साथी रामनारायण।

जुगो किलाद की उद्द होती है ही। पल ही बान में तिजारी और हाजी में कहा सुनी होन लगी। बशीर तिजारी की की ओर से बोलेन लगा और रामनारायण हाजी की की ओर म। दृश्य में भी दो दृष्ट हो गय। दो बार न तिजारी का पीड ठाकी, ता दो-बार न हाजी की। गरमागम बात होने लगी और बलरुप्य तोर छुटन लगे। शीर ही पाय बहुत उला बड़ गया और एक दूधर को रिशदार ओमों के सरनव में मयाक धर्मक्यों हो जाने लगी। समी ओम में ये, बीच-बचान कीन कर 'मायका यहाँ तक बड़ गया कि आस्तीन बड़न लगी। सुनसामाओं के खुन में गरमी अधिक हाता है। अम सब की छोटा हाजी और बशीर का तलार अधिक गरम हो गय। हाजी अकसर था और बशीर उन क प्रवाल कर्मचारी। पर जुर क जाय में बोना बेहोश थे। अमके में दोनों धाराय पर उलर का। हाजा न अपनी छाया और ओहरे के ओय में आकर बशीर के मु क पर एक तमाषा बना दिया। बशीर तमलमा उठा। वह अपने बाप की पून गया और उसन भी हाजो से दूर क हाजा सुशोयत हो जा पर एक पूरा जमा दिया, हाजी साहब को एन ठास जवाब का प्रवाल न। 'वैयें सोना था, अकसर का तमाषा है, पच जायगा।'

(कमराः)

## सचित्र साप्ताहिक 'अर्जुन' में विज्ञापन दीजिये

५००) इनाम

महाया मदन रमन-पुष्प (सफेदी) की अद्भुत कमोपि; तीन दिन में पूरा प्राराम। यदि लम्बा हकीमी 'कापटर्न', 'वेटी', विज्ञापन-वातावरण' का दवा कर निराश हो चुके हैं तो इसे लगा कर प्राराम दें। वेकसला लायन करने पर १००) इनाम। जिन्हें विज्ञापन न हो—) का विपट लगाकर देखें सिकावें। (मुद्र २)।

बेराज बलिल की सचित्र  
नं० १०१ आ० बरतीसपन, (मया)



स्वास्थ्य-सुधार

मोषापसमार या हिस्ती-रिया

(भीमराजी राजकुमारो निम्न 'रमा')

भाज कल बहुत-से लोग हिस्ती रिया के ठिकार पाव जात हैं। अर्थ-कलर इस रियासि स पीबित लिपि दी बाई जातो हैं। प्रायः इस का बोध युवा वय्या क भारम कल से हो जाता है। फिर भी कभी-कभी बाल्यस्था और बुढापस्था तक देखन में आता है। यथाय बारह वर्ष में कम उम्र वाले को यह रोग नहीं होता फिर भी कभी कभी २-३ वर्ष क बालक या बालिका में भी पाया जाता है। मुख्यतः मानसिक व्याधि में से अस्त-वस्तु बाउ परिवारों में यह व्याधि अधिक पाई जाती है। अधिक लाइ प्यार, ईर्ष्या कीच आदि की कलिका म हो इस व्याधि का वरपित होती है। शारीरिक रोग इस व्याधि का कारण बनता हो नहीं, यदि कभी बना भी हो ता या तो अधिक भीमारी भोग कर कलु होन के बाव या यदि गर्भोपय में कुछ रोग हो, नभो यह आगारी पैदा होता है। गर्भोपय म लसन्ध रक्तन के कारण हो इस का हिस्ती रिया नाम रखा गया है। इस विषय में मरसद भी बहुत है लेकिन Ovary और गर्भोपय के रोग दूर करन म हो यह व्याधि जड़वृत्त म मष्ट हो सकतो है।

यह व्याधि आजकल बहुत प्रचलित है, हाथ-पै की कोई इसन अपरि चित हो। इस लिये हम यहाँ पर आवा सवर्णा का हो वर्णन कर गी। अधिकतर मानसिक बिस्मामों के कारण हो इस को उत्पन्न होता है। इसका जब येग शुरू होता है तब य लक्षण होते हैं। एकएक हलना या रोगा, गला रुध जाना, हाथ पैर ऐठन लगना आदि। कभी कभी हाथ पैर ऐठन के पहले छातो या पैर में पीका मालूम होती है। और और ये बढ़ता जाता है और साथ ही साथ गला भी अधिक रुधना जाता है। इसलिये मैं मो कष्ट होता है। रोगी गिर पड़ता है और हाथ-पैर अधिक ऐठन लगते हैं। यदि स्थूल स्थिति में देखि तो मादू हो या कि रोगी अकस्मात् रोगी होकर नहीं गिरता। यह यहा सावधानो से आई तक होकर, पिछोव पर हो गिरता है फिर भी रोगी किङ्कल बहोय का हो मादूय होता है। खोरेर का पैरना बहा हाँ बा नवसिप

होता है। हाथ की मुट्ठी बच जाता है, और मुट्ठी के अन्दर अगुता प्रायः बहा हुआ होता है। कुछ बम् होजातो है रोगी दान किङ्किटाया करता है। कुछ दर में वग कब हो जाता है। कभी कभी पट भी फूल जाता है और जब होय आजाता है

कठिन हो जाता है। फिर भी आई तक मेरा अनुमान है वहाँ तक तो हिस्तीरिया के लक्षणों में अपसमार क लक्षण बिपरीत होते हैं।

जिस कारण से हिस्तीरिया हुआ है, वह कारण जब तक नहीं जान लिया जाता तब तक प्रायः कोई भी

रहित का पट ( )

ब्राह्मण का आत्मोत्सर्ग  
राष्ट्रीय आपत्ति का निवारण

महात्मा एक जगल में दो सुबसवार परस्पर लकूने की तैयारी कर रहे थे। एक क हाथ में नाववा भावा या और दूसर के हाथ में तेज बरबा। दोनों क चेहरा पर बोखतो व इदुता टपक रही थी। दोनों को फाल कोय से सात हो रही थी। व एक दूसर की जान तन पर तुले हुए थ।

ये दोनों व महात्मा के महाशय प्रभावसिंह और उसके भाई शकुसिंह। दोनों में विरक्तान में अग्रिमि धनक रहा था। आज ये दोनों आपसी काये का सदा क लिय अन्त कर देता चाहते थे और एक दूसर का प्राणपण करने के लिय जगल म माये थे।

'हमारे कुटुम्ब म दूध पर सवार कू सब में अक्षि शक्ति-सम्पन्न युगल साजा य को कू टट्टि है। चित्तोज पहले हो खिन चुका है। इसा सदा राजा खानन को लिय भी अक्षर अपन साम्राज्य का सन्धे ज्ञन, धन व सुखल्ल लपरा रहा है। ऐसी नियम नियति में दो माश्या का परस्परिक कलह तो दूध को रसालत में पड़ का देगा-हमारे स्थनत्रागो नष्ट हो जायगी। कोई बार दोनों भाइयों की समझापो। व नहीं माना, आज, सुना है व एक दूसरे को भार हावन के लिये जगल में गये हैं। इस प्रादु बिद्वत् का-गाए को दूध आपत्ति का कन विचारण कर। ठीक है, ठीक है, नाम व लहान हो इस आपत्ति का निवारण कर सकोगा। महात्मा क राजपुरोहित क इश्य सागर में इस प्रकाश को विचारधारा बढ रहा था।

दोना ससोईन न अपने ताव अविचार एक दूसरे पर छाड़ लिये थे। दोनों हा साव रहे थे कि उनक युग्म का अन्त हो गया है, लेकिन एक लण में ये दोनों दखत हैं कि एक शक्ति तेजस्वी सुनि-न-उनक कुल पुरोहित न व वालक बा-बुना पोहो। क बीच में आक-अपन शरीर पर ले लिय हैं। वग पुरोहित प्रादु बिद्वत्-नाट्या आपत्ति का निवारण करने क लिय अग्रजत बलि देगा है। दोनों भाया न खिर ग्यानि न कुत गय। शकुसिंह राज क लिय क्रि साई म नहीं लड़ा और गय छोड़ कर बला गया।

राव को रक्षा क लिय मेराइ के इस सन्धे ब्राह्मण का यह अपूर्व बलिदान अमर रहेगा।

तब बहुत पसना ठूटना है, और खूब पेयास होना है। हिस्तीरिया का वा कस से कम ५ मिनेट और अधिक म अधिक एक या दो घट तक रहता है।

इस रोग का निदान करना भी कठिन है; क्योंकि अपसमार और हिस्तीरिया के लक्षण प्रायः एक में हो जाते हैं। कभी कभी निदान करना

पथ भाव नहीं करतो है। फिर भी उपचार किया जाना है प्रायुर्वेदिक शास्त्रानुसार ता श्रेयु शोचक औ बर्षावा तथा बायुदोषनाशक पथ जियो का हो प्रयोग किया जाता है। किन्तु खास करक मानसिक स्थिति सुधार की भी कोशिश करना चाहिये। रोगी को मानसिक कष्ट क्या है, वह जानने का या प्रयत्न करना

सूर्योदय के नियम

सूर्योदय क समय सूर्य की आर फालि क-क कर क कुछ समय तक दलन से भा ननों की उगोति भटना है। इसका अनुभव बहुत न किया है। कई बार ता एक हा बडक म मैं नभ-वालि सुचर गई है। जिस समय सूर्य का किरण हलकी गिरना हो उसी समय उसका मोर दलन चाहिये। "लन का तरीफ यह है। सूर्य क सामन बहे हो जाओ हयलो म फालि नू ला। और देखो! सूर्य सूर्य शरार को इनस्त-त हिलाया जिससे सूर्य प्रकाश फालि को चारी और गि सके। इस पन्डित प्रिन्टि टन इस कभास को जादी रखी। फिर क्षायार स्थान म आकर हयेला अमर क फालि लान जालिय। सूर्य का और लुला फालि म इगिज मत देखिय। फालि को हयलियो में दीप लेना भी फालि को अक्खी बिर्धाति देता है। शय्य बस्तुओं की कनना, हरियाले स्थलों का निराकरण भी फालि की ज्योति बढ़ाता है। यदि प्राकलिक उपायो से नभ बिकल्ला की जाय ता फालि क अपारशम नहीं स ह जाय और नभ चालि का अस्त-उपकार हो।

वाहिय और जहाँ तक हा मक डल कष्ट को निवारण करने का प्रयत्न भी करना चाहिये। रोगी को बहुत हलका भोजन न्ना चाहिये, और कम न रहने पाय यह भी ध्यान रहे। रोगी को कुछ बायुपवन कायम चाहिये, तथा मसक मन रखन चाहिये।

आवेशकता

हिन्दुस्तान के हर शहर व कस्बे म आप-लिस्टिंग बैंक, वन्दर को अर्थ और प्रेम्सी जारा करने के लिए शरीर, तजुबेकार, तजार्गो तथा गवर्नेमेन्ट प-शुन पाने वाला का आवश्यकता है। वेनन ५१० रु व २००) ६० माहवार प जगह मुस्तकिल है। पत्र व्यवहार विशेष जानकारी के लिये देहला ब्राञ्च से कर।

अप-लिस्टिंग बैंक कायपोरेशन लिमिटेड

५५, यह शहदुल्ला, देहला



जोवन बीमा पथ-प्रदर्शक—  
संभवकर्ता सम्पूर्ण भारतका। प्र-  
काशक—मैसर्स भारद्वाज एण्ड कंपनी।  
दुमरी निवास, पाकबोखला अजमेर।  
मूल्य २।

बीमान्धवसाय भारत में निर-  
पति बढ़ता जा रहा है, रोज मर्त्य २  
कम्पनियां खूब रही हैं, हजारों एजन्ट  
इसी कार्य पर अपना मुआर कर  
रहे हैं। प्रतिस्पर्धा खूब बढ़ रही है।  
ऐसी हालतों में बीमे के सम्बन्ध में  
कुछ ज्ञान ग्रन्थ कर लेना प्रत्येक  
निमित्त व्यक्ति का कर्तव्य होना चा-  
हिये। इस विषय की अपेक्षा में कई  
पुस्तकें हैं। हिन्दी में एक पुस्तक  
ही हमन पक्षी पुस्तक देखा है।  
लेखक न बीमासम्बन्धी सब आधि-  
क्य और क्रायत बातों का उद्देश्य  
विवरण में कर दिया है। बीमासम्-  
बन्धों परिलक्ष्यो तथा नियम,  
कम्पना चुनाव की शर्तें, एजेंटों के  
लिये आवश्यक विद्वायते, प्राधेनपत्र,  
हकनामा, शर्तों का निपटारा आदि  
करन के नियमों पर विस्तार म-  
प्रकाश गाना गया है। १०४ पृष्ठों में  
भारत की प्रत्येक बीमा कम्पनी के  
चिह्नित पासलियों के प्रीमियम,  
शर्तों का विवरण समीक्षाय  
ही हैं। इस से बीमा करन वाला  
एक ही पुस्तक में सब कम्पनियों के  
प्रीमियम दर व साधारण शर्तों का  
ज्ञान प्राप्त कर सकता है। हीनरे  
काय में भारतीय जोवन बीमा  
कम्पनियों के मत तीन सालों के  
आयम्ड जर्नल, बेसुपरान, बैलैसरीड  
और फाल्तिन बुनों का रिपोर्टे की हैं।  
इससे पाठक प्रत्येक बीमा कम्पनी को  
व्यक्ति का तुलनात्मक अध्ययन कर  
सकता है। इस तरह यह पुस्तक उन  
मित्रोपदेश के लिये बहुत उपयोगी  
हो गई है, जो पालिनी लेन म  
हले कम्पनियों की तुलना कर लेना  
माध्यमक समझते हैं। इनक फलि-  
रक एजेंटों, प्रभवकताओं और  
वेतनकर्ताओं के लिय भी पुस्तक  
उपयोगी है।

उन कम्पनियों का परिचय नहीं  
हम, जिन के हेड आफिस विदेशों  
में हैं, परन्तु इसका साथ २ यदि  
एक विदेशी कम्पनियों पर भार-  
त पर सरकार के कानूनों की पाबन्दी  
सिध्दिकता आदि की अनेक  
दिर्घा देकर भारतीय बीमाधारों  
से सचेत कर देते, तो अधिक अच्छा  
जा। हमने एक ऐसा ट्रेड रेखा  
, जिस में भारतीय कम्पनियों की  
दिर्घा का लुप्त निर्यतन कर विदेशी  
पम्पनियों की उपयोगिता सिद्ध  
जा गया है। विदेशी कम्पनियों के

## साहित्य-समालोचन

समालोचनार्थ सब पुस्तकों की दो-दो प्रति आनी चाहिये। एक  
पुस्तक भाने पर समालोचना न हो सकेगी।

ऐमे भारतीय जनता का जवान भी यदि दे-  
विषा जाना, तो अच्छा होता। फल-  
में हमें आशा है कि बीमा से सम्बन्ध  
हिन्दी संसार इसका आदर करेगा।

एशिया की महिला-क्रांति—  
लेखक—श्री जगदीशचन्द्र माधुर  
दीपक, प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य  
मण्डल बाजार सीताराम देहवी।  
मूल्य १; साइज—१८x२२ ई  
पेजों; पृष्ठ संख्या १३६; कागज ब  
छपाई सुन्दर।

प्रस्तुत पुस्तक में कल, खान  
आजान, बर्मा, फारस, भारत आदि  
देशों की महिलाओं के स्वतन्त्र  
संग्राम व जागरण का संक्षिप्त इति-  
हास है। यद्यपि लेखक ने उरिन को  
कुछ में भरने का अवसरक प्रयत्न  
किया है, मगर फिर भी मरो राय में  
इस से भारत के हिन्दी भाषा-माधुरियों  
की कुछ जानकारी अवश्य बढ़ेगी।  
इस पुस्तक का प्रथम पुस्तकी  
दर के मनुष्यों के लिय सबसे अधिक  
महत्वपूर्ण है। आजीवनभार में स्त्रियों  
को पुण्यो न अपना गुजाम बना रखा  
है। कहीं २ तो धर्म और सम्पत्ता के  
नाम पर पर गुलामी एक गर्व की  
बन्धन बन गयी थी। अब स्त्रियों ने  
गुलामी से ऊब कर स्वतन्त्रता की ओर  
चन्दन बढ़ाया है और पुरुषों की प्रति-  
ष्ठापन अधिकारों को मानन की  
कोशिश की है। योगीश, अमरीका,  
चीन, आगम आदि देशों की महि-  
लाओं ने तो बहुत दूर तक स्वतन्त्र-  
ता प्राप्त की है और वे जेता का जीवन  
प्रगति देशों की महिलाओं इस पथ  
पर अग्रसर होना जा रही हैं। इस  
पुस्तक म उक्त प्रकार की बातों का  
ही समामेय है। मूल्य १। अधिक  
जचना है। आशा है लेखक महाराष्ट्र  
परिषदमें इसी विषय को और पूर्ण ऊनि  
हिन्दी ससा के समुपय पैग करके  
साधारण को अधिक जना कर  
सकेंगे। —जवाहर

पाली—ड० श्री सुरेन्द्रराम,  
प्रकाशक—वाई प्रेस लिमिटेड चन्द्र-  
लोक, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या ३३४,  
मूल्य सजिद्ध ३।

मातली एक शिक्षाप्रद उपपत्ता

है, जिसमें एक सुखीक, कर्मवप-  
यय, परिपक्वतर हिन्दु-जाती का चित्र  
कीया गया है। यह एक साधारण  
गृहस्थ की पत्नी है, परन्तु अपने  
परिधय, कृपण, मेधाभाव और कर्त-  
व्यनिष्ठ में जनता के हृदय में कैने  
स्थान ग्रहण कर लेती है, इसका  
चित्रण अत्यन्त योग्यता में इस उप-  
न्यास में किया है।

यद्यपि कथानक में विभिन्न रोज-  
ना, या वस्तुकार नहीं हैं, मातली का  
जीवन अनक रहस्यमयी घटनाओं  
में प्रीतयोजत नहीं है, परन्तु फिर भी  
उपन्यास पढ़ने में आनन्द आता है।  
मातली शून्ये शून्ये आर्थिक, सामा-  
जिक उन्नति करती जाती है, समाज  
की विभिन्न समस्याओं—रही-रिहाता,  
और मरीको की विधिना के अभाव  
को वह अनुभव करती है और मार्ग  
में आने वाली अनेक बाधाओं को  
पार करती हुई लोक मेधा में अपने  
जीवन का उत्तरन कर देती है।

उपन्यास-कार न मातली को  
एक आदर्श देवी के रूप में उपस्थित  
रिखा है, साधारण माती के रूप में  
नहीं। उमक हृदय में कानो की तुल-  
ना ने स्थान ग्रहण नहीं किया।  
वह मन्दा ऊंची हो चढ़नी रही है।  
मातली के पात प्रतियान का चित्रण  
इस लिय अच्छी तरह नहीं किया  
जा सका। उपन्यास की स्वाभाविकता  
भी इस लिय कुछ कम होगी है।  
पाठक साधारण मनुष्य का चित्रण  
बाह्यता है। एक जेता का जीवन  
आकर्षक तो होना है, लेकिन वह  
पाठक के जीवन में बहुत दूर की  
बाज—केवल पूजा करने की बीज  
बन जाता है, उसका अनुकरण करने  
को उत्सुकता पैदा नहीं होती।

मातली का पति रामदीन एक  
साधारण व्यक्ति है, लेकिन वह भी  
मातली को आदर्श खनन से प्रसन्न  
होकर उसके मार्ग में बाधक न बन  
कर सहायक हो गया है। समाज को  
अनक समस्याओं पर लेखक ने  
सुन्दरता में प्रकाश डाला है। उप-  
न्यास पढ़ने योग्य है। —कृष्ण

## प्रासि-स्वीकार

साहित्य का संपूर्ण—लेखक—  
श्री जी० पी० श्रीवास्तव। प्रकाशक—  
वाई प्रेस, चन्द्रलोक, इलाहाबाद।  
मूल्य १४।

वीरगिना पत्नी—ड०—श्री  
चमोयाम 'मैम'। प्रकाशक वही।  
मूल्य ४।

कायापालट—ड०—श्री हीत-  
लासहाय बी० ए०। प्रकाशक वही।  
मूल्य १४।

देवी जीन—ड०—श्री डा०  
चमोयाम 'मैम'। प्रकाशक वही।  
मूल्य १४।

शरीर और व्यायाम—ड०—  
श्री गणेशदत्त शर्मा गोह। प्रकाशक—  
वही। मूल्य २।

साधक सहचरी (गु.राती)—  
ड०—सुनीलवर सोमान्यन्त्र। प्रका-  
शक—महावीर साहित्य प्रकाशन  
मन्विर, साधरमती। मूल्य १।

दृष्टिकालिक धृत—लेखक  
और प्रकाशक वही मूल्य १।

बीता-सिद्धक १९३५—  
ड०—श्री रा० च० बन्धोडा। प्रका-  
शक—चन्द्रोडा शर्मा, मालीबाइ  
दिल्ली। मूल्य २।

मृगवेद संहिता (चतुर्थ प्रकाश)  
टीकाकार—प० रामगोविन्द विवेको,  
प्रकाशक—बैदिक पुस्तक माला,  
छत्तावागंज, (ई० आर्से० आर००)  
मूल्य २।

अखल सुरागरसानी (उद्)—  
ड०—मि० आर० रा०। प्रकाशक—  
मि० इन्ड्र० पम० हनवी, मेरठ। मूल्य  
२४।

हरफन उस्ताद—ड० ए०  
ए० को ए० ए० इत्यादि। प्रकाशक—  
कोहड़ा बुकीजाल पेशमर चम्पनैट  
आफ इंडिया, अलीगढ़। मूल्य २।

सहिला समाज—ड० श्री  
श्रीरामाय विनकर। प्रकाशक—  
परिचरनेन प्रकाशक विमान, अजमेर।  
मूल्य १।

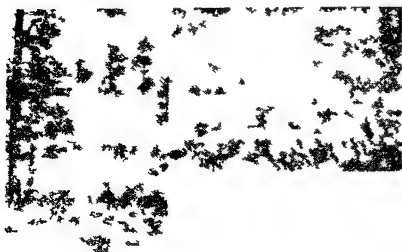
सूर सागर (मैलुपा ४)—  
सम्पादक श्री ज० ए० रुलाकर।  
प्रकाशक भारती प्रचारिणी समा-  
करी। मूल्य २।

जिस पुस्तक को दो प्रतियाँ  
आई हैं, उनका समालोचना आगामी  
अंक में होगी।

उत्तरी ध्रुव( साइबेरिया ) का एक हिम-दृश्य



हिमालय के लोहाघाट अल्मोडा  
के समीपवर्ती तीन  
दृश्य



## अमेरिका में नयी फिल्म

म० गांधी को बन्दनाम करने का कुत्तित प्रयत्न

हमारा कर्तव्य

(लेखक—श्री लक्ष्मणप्रसाद उद्दीनाथ)

फ़िल्म जगत में अब मेयोबाद का प्रचार बढ़ना आ रहा है। कुछ दिन पूर्व कि अमेरिका वालों ने न जान किस प्रकार पर 'एडिबिया इन्फ़न्स', 'बंगाली' और 'ही लाफ़ ओन ए बंगाली होमर' नामक चित्र बनाकर अपनी छत्रनामों भारत विद्रोह का परिचय दिया था।

सहयोगी 'बैराट्टोज' के हाली-हुड-फ़िल्म महाद्वारा ने चित्र सृजना की है कि वहाँ एक 'फ़िल्म चित्र' बना है। उस चित्र में ससार की सर्व-श्रेष्ठ चित्रों महात्मा गांधी को पश्चिमीय युवकों के साथ आ-खिलान, चुम्बन, वादन तथा प्रेमाचार करते दिखाया गया है। इस चित्र को समस्त ससार में विश्वाम को योगदान पर प्रचार हो रहा है। साथ ही यह भी पता लगा है कि महात्मा गांधी के उपर्युक्त चित्र को काटकाट कर भारत में भी दिखाया जायगा।

यह है अमेरिकन चित्र-निर्माताओं की मोचला की परीक्षा। उद्योगिक बिजनेस विदेशों में गुप्त रूप से महात्मा गांधी का व्यभिचारी सिद्ध कर यह विश्वाम चाहत है कि भारत का महाद्वारा जब इतना कामी है, तो साधारण जनता को कुछ कहना नहीं।

अमेरिका वाले तो जो करना था, सो कर चुके। पर हमारा इस समय पर कर्तव्य है कि इस मोचला का ज्ञान से विरोध किया जाय। मेरे मन में तो निम्न उपाय काम में लाय जायें, तो हमारा उद्देश्य पूर्ण होगा।

प्रत्येक भारतवासी यह प्रण कर ले कि जब तक अमेरिका के फ़िल्म निर्माता अपने कुकर्मा का परवालाप न कर तथा ऐव फ़िल्म बनाना बन्द न कर, तब तक हम अमेरिका का कोई चित्र न देखें। मुझे विश्वास है कि ऐसा करने में अमेरिकन फ़िल्म निर्माताओं को श्रेष्ठ पर प्रहार होने देख, प्रत्यक्ष कुर्को।

भारत की कलकत्ता करने वाले चित्रों का खूब विरोध किया जाय। प्रत्येक सिनेमा-प्रधान नगर में 'मोशन

## सिनेमा की दुनिया

### ऐसे फ़िल्म किस लिए ?

### यह अवश्य रोका जाना चाहिये

एक अच्छी काम से दूसरे ग़दर जाना पड़ा। कार्य समाप्त करके शाम का समय काफ़ी की समस्या था ख़ुदों हुई। आखिर तब पाया कि सिनेमा चला जाय। पता लगात २ 'कपिल' पड़ जा। यहाँ इतिहास पढ़कर मान्य हुआ कि आनन्द 'मुक्ति' सिनेमा' चल रहा है। फ़ौरन उन्हें पैर बाधित हुआ। यहाँ अपने पाठकों से यह कहना चाहता हूँ कि उन में जो उरा भी परि-मार्जित रहि के ही व इस फ़िल्म को हरिजन न देखें प्रत्येक दृष्टि से नि-सिम्बल सोनाहरी' के ध्यानी समिष्टि स्थिति की जायें। उन लोगों का येमे चित्रों के चिह्न प्रदर्शन करना, ईश्वरि छुत्ताकर जनता में बितरण करना मुख्य कर्म होगा चाहिये।

भारत-सरकार व प्रिडिय सर कार का कर्तव्य स्पष्ट है। ऐसी फ़िल्मों का निर्माण प्रण मन हो सके और इन फ़िल्मों को प्रदर्शन बन्द हो जाय, इसके लिये उन अपनी मोर म कुछ न उठा रचना चाहिये। म० गांधी भारत के हृदय-सम्राट् ही नहीं, समस्त ससार की सर्व-श्रेष्ठ चित्र हैं। उन्हें भाग का रक्षा जाता है। उनके चिह्न को प्रचार प्रत्यक्ष निन्दनीय और शरातपर है। समस्त है प्रिडिय छुत्ताकर या भारत सरकार उस फ़िल्म को रोकने में अपना प्रसन्नता प्रकट कर। लेकिन इसमें भारतीयों की विश्वास नहीं होगा। यदि प्रिडिय के किसी राष्ट्रीय नना के सम्बन्ध में ऐसी फ़िल्म बनती, तो प्रिडिय सरकार को कुछ बरती, उसे वह प्रण करना चाहिये। यदि प्रिडिय सरकार ऐसी फ़िल्मों का जब ईश्वर विरोध कर तो वह आममव है कि ऐसा करने में अमेरिकन फ़िल्म निर्माताओं को श्रेष्ठ पर प्रहार होने देख, प्रत्यक्ष कुर्को।

हायत रही फ़िल्म है। अस्तु, प्रकृत प्रकृत दूसरे सिनेमा 'रम्पीरियल' पड़ जा। दूसरी प्रकृत बस चुकी यो दसलिय टिकट कदा कर लेख का विज्ञापन बिना देख ही—बोझों वालों में दाखिल हुआ। (कोई कोई पाठक गायब ना हो सिक्कि, लेकिन ह हम में से अधिकतर बोझों वाले हो, यह मैं बूझ जाना हूँ।) खेर, खल शुरु हुआ। यहां पर मैं एक छोटी सी प्रसारणिक बात बताना सर्वे में कहना चाहता हूँ, वह यह कि मेरे कई भाई साहब हिन्दु-स्तानी बोझों फ़िल्म देखने के लक्ष्य लिखाए हैं। इसलिये नहीं कि वे दुरीययन स्टाइल के आदमी हैं। वे पूरे भारतीय—हिन्दा दूता, रहम, सहन, प्रचार विचार समी से लेकिन हिन्दु-स्तानी चित्रों में वे निराश हो चुके हैं। मैं उनको यह बात नहीं मानता। मेरी राय में अनक भारतीय चित्र मन बन चुके हैं, जो परिकुन कंचि क रंगों को समी हटियों में आनन्दित कर सकते हैं। लॉनर इर पिउर कुछ चित्रों से मैं जैन फ़िल्म देख रहा हूँ, जो खल कर भाग जो फ़िल्म देखा—उस में मैं इतना प्रत्यक्ष मान गया हूँ कि बने भाई साहबों को राय प्रकृत गलत नहीं है। हिन्दुस्तानी फ़िल्म बहुत जीव प्रकृत के बोध सच चाहिये। इतिहास भी मोर सच हो प्रकृतों की प्रतीतिना तक से बड़ा पोला हो जाता है। अस्तु, खल जो कुछ मैंने देखा उसका विस्तार कर के मैं अपने पाठकों का चेहरे सुझाना नहीं चाहता। सर्वे में यही देखा कि ४०, ४० साल के लुलत नायक महाय इस्लाम को अझा लिये मैदानों, पहाड़ों और जंगलों में पैदल भाग चले जा रहे हैं। उनके ४०—६० पिक्कल गुव मो रवी दूरा में दिखाई दें। नायक महाय का प्रेमिका का एक हज़ार 'काफ़िरी' के सखा के यहाँ रहने में पड़ जा थाय थे। नायक महाय पठित तो इन काफ़िरी के हाज़ पड़ गये, लेकिन वहाँ उस दुश्मन की लड़की, इन पर आधिक हो गई और उसको सहा-यता से अपना प्रेमिका के पास रात को महन में जा पड़े थे। वहाँ चाँदो में बैठ कर प्री प्री प्रेमिका दोनों ने 'रियलिटि' नहीं में बूँ गयेराको को!—हैरानी को बात यह है कि

दुश्मन के घर में इतना गला फाँवने पर भी किसी के मन में बूँ नहीं रंगी!—नायक महाय न अस्त में कुछ अज्ञान भ्रम के बाध प्रत्यक्ष प्रेमिका को, हाँ वो लिखा—साथ ही दुश्मन की लड़की—इस भाई साहब को भी हँकिया लिखा—मुझ-लमान बना कर!—यह है सच में कहानी। इस बात खल मे २-३ बातों पर बड़ा जोर दिया गया है। एक तो इस पर कि इस्लाम ऐसा प्रकृत और पूरा मजहब है कि उस क मानन वाले को दूसरे मजहब वाले युक्तियों में भी कभी 'कामेट' नहीं कर सकते। दूसरी बात यह है कि जब एक दृष्टि एक युक्त से कई रीतियाँ का सकना है—एक आल म कई रूप देख सकता है, तब एक दृष्टि से कई औरतों से मुक़ब्बल क्यों नहीं कर सकता?—परिधान-मन, नायक महाय को दो प्रेमिकाएँ पर हाथ साठ करते हैं! अस्त में यह भी प्रभाव जलने को कोशिश को गई है कि इस्लाम के बने का-फ़िरी पर हमारा फन ह आसिज कुल है और काफ़िरी को तो इस दुनिया में मामो-मिशन भी बाकी न बनना चाहिये।—यह है खल का साराई। इन कथा में ही पाठक यह अनुमान ला लगे कि फ़िल्म के दर्शन-वाद कोय सजा ब्रह्मण-समील माफ़ि दल कोटे हैं। लेंसख का यह दान ह कि कहानी तो बल रही है, गायद १३ ही सदा की, और महय दिखाय जा रहे हैं, 'पप-डू-डू' मोसवीं सरी के। अग्रिम फ़िल्मो पात्र का असाधारण रूप से प्रकृत तो कहा हा नहीं जा सकता, बलिक कई स्थल पर ऐसा स्थण बना प्रकृत है, मानो प्रमिय का अजडा नामा मजहब दिया आ रहा है। रजनों दुश्मन तलवार लिये लखे हैं और लिये एक 'इस्लाम का बग' बारी बारी में सब को घरा-घाघो करता आ रहा है। किसी दुश्मन को हारन और गिर पड़ने में जय भी उग्र नहीं!। संगीत 'चलता' हया है। 'अशफ़ा' की २-२ गजले सुन ला जा सकती हैं। सारे खेच में 'सुनता' हो एक पाथी है, जिसे चाहे देखा लिया जाय, चाहे सुन लिया जाय। उसी के नाम पर खल की इतिहास-नाम की गई है। फोडाम और और फ़िल्म आठकन प्रबन्ध, ठीक कहे जा सकन हैं। ख० का नाम 'जोह तन्-होर' रखा गया है।

(शेष पृष्ठ २९ पर)



नैयाल से एक गादी में शामिल होन के लिये देखली भाया। जहाँ मुझे सीखपुरा में देख पाऊ लैमल देह पाऊ बर्न देहन का ध्व सर मिला ओ हाव में ही जारी हुआ। निमलिखित कदम कहाना वहीं न एक कार्यकर्ता न मुझे सुनाई—

मुझे बी० ए० पास करन के पश्चात देसा बात होन लगा कि मैं न कवल 'अ' और जति के लिये ही बोक हू बल्कि स्वयं प्रयत्न लिये भी मर हो रहा हू इसम पहले मरा जीवन दुःख में कोसों दूर था। ७०-८० रुपय मासिक पता को भेजा हुआ मनीषादेव श्वरीय बरकत मे कम न था। मैं विधार्थी जीवन में लूब गुल्लक उठाया करता था।

अब भ्रान्त जीवन को लम्बा समय गुजर चुका। उन दिनों मुझे बिना भी नहीं था माँ बाप रिश्तेदार तथा भ्रातृस पड़ौस सब मुझे भार कर ही रहे थे 'आ' करत थे। मैं बाप या दूरी गेट न रहा करता था 'रूट' 'रूट' बना कर मरी की सजाय थे, मरा दुष्कम इश्वरीय दुष्कम था। मेरे पिता प्रयत्न मिलो न मरी बचारी के जुलू बाँधा करत थे। व काल मेरा लड़क का १०००० पास करन के पश्चात यह होगा और वह होगा। लेकिन मैं क्या हुआ मुझे एक वर्ष के अन्दर ही दुष्कम प्रयत्नो तरह बात होगी। मरा कदम हाथी का किस्ता एक प्राथमी पत्र म भार न हुआ ओ मैंने का० ए० पास होन के बाद एक लहर के पन्थर में फलकी के लिए दिया था। उसके पश्चात् भाज तब मैंने किन ही प्राथम पत्र दिय जिनकी गणना तक मुझे याद नहीं

है इनका एक सफा हू कि मैं लिखा लिखा ग भागया। अब मेरे जिन्म स्वयं मुझ से और आसकर 'अ' बकारा से ता भागया। अब मैं उनक लिये बोक था 'अ' क लिख बोक था जति क लिये बोक था और लूब प्रयत्न लिये बोक था काम मुझम पुछत—वहो कहीं लगे हो मैं लिर कर 'ता। बाप कहता—अधारा कहीं का, दिन रात बकारा जात तो हूय मा कामन होवने है कब तक बढ़या बनकर बाप की बकारी ब वागे पड़या लिखा यहाँ तक कि गादी को बरखी अब लड़े का हार बन बैठ हो जाने कहीं बाहर जाकर अपना काम समाओ। मुझसे नहीं पाया जाता। माँ

## दस्तकार

(एक मन्त्री कहानी)

(ले०—श्री बलदेवसिंह चित्रमी नैयाल)

कहती—नयाव कहीं का तुम्हारा लिये कहीं नोकरी नहीं। दँको मरतू का लड़का ओवरलॉयर हो गया। फला की दुकान पर १०० रुपय रोज की बिकी होती है। मैं तुव बना रहता और विल ही दिस में कहता—बी० ए० क्या हुआ जान का बवाल हुआ। परधान रहते लगा। मरा दुष्कम गिर गया। जाला पीना जाता रहा। प्राथमोपक्ष लिखात बह उस्ताह से लिखाक बन्ध करके मजना मगर मरी किस्मत तो करी का पड़ा लिखात कर भारी थी इसलिये मैं बका था।

चलन मरा पढ़ाओ तथा बचपन का फलावरणो था। वह मेट्रिक पास करने का बाद टेक्निकल कालेज में जला गया था जहाँ प्रथम तीन साल के पन्थर रोगनो बर्चन दस्तो तसवीर और चीनी के चित्राने बनान का कार्य सीखा लिया था और अब प्रयत्न हो मकाम में इतिहास काटह इस्वीज के नाम स काम कर रहा था। वह लूब नहीं पहनता या उसके कपड साँधे और डोल डाल होन था। उसकी लो क पोस काम पाउर साड़ी वगैरह महा थे। उसक यहाँ नोकरी नहीं या बकारा होनो दिनम परिश्रम करते गाव का चन् न बा जाऊ जाकर प्रयत्न दिनमर का कामाई की मकतत पाना और नुगो लुगो वर जला जाता था म उन पहले भूमा की हल में भेजा करता था उस की सादगी पर मुझे बसो भावो था। तथा मैं उस से मिलना जुलना एक पल लिख जिनमन क लिये दुरा समझता था लेकिन अब वह मरी शक्ति और सुख का सागर था मैं प्राय उसक यहाँ बजा जाता और प्रयत्न मन की लगान क लिये उसक जिलानो की मरगे य दूता रहता। मे उसकी सागे जेम्मा पर लुग होता और उसे भागशाला सम भता। वह सुखी था वह न कभी भ्रातृ लिखात या भागे न कहीं मजता या मे नोकरी की हड्डा न थो वह बापू सुख से प्रयत्नता या वह परिश्रम या मजदूर और दस्तकार था।

मैं बकारी से तग भागया जो बन होता था सीखन लगा यहाँ तक कि मैं अपनी परलुई में भी डरन लगा। मुझे इस दुःख म लूब बारा प्राप्त करन क लिये मीत की गोद मली मानम होन जनी। माता पिता स्त्री कच्चे रिश्तेदार और सम्बन्धा सब स्वाधी प्रता होन लगे घर में मानता थी आस्मान पर तारों की दिग्गमिताई हुई रातमो अपनी धाँव लिचोमी म मर दुष्कम जीवन पर इस रही थी। मैं उदा धार म दरवाजा खोला और चल दिया। गलो से निकलत ही दुल को भी मैंने मुझे 'आ' जा कहा। मैं मममा कि दम भी मैं मर दुष्कम यूस हो रहा हू। इस विचार में हुआ हुआ चलता गया यहाँ तक कि नदा का किारा बा गयो। नदा स उठतो हुई लहर मेर स्वागत के लिये किनारे की तरफ भाई मैं बड़ा-बड़ा और बहा। मैं बाहला था कि लूब निकलन न पहले मर जीवन का भन्त हो जाव कि इतन मैं मुझे मर पीछे पाना मैं किसी क चलन की आ बाज सुनाई दे। मैंन मुब कर देखा यह चलन था जो घर में मेर पीछे हो लिया था उसने मुझे पकड़ लिया और किनार पर ल लाया उसन मुझे साँवना की ओर उसक उपदेश की चमि मेर कानों में हर समय मृजता रहनी है। वर्तमान शिष्याप्रवासी बकारी पदा करन की एक कल है। वर्तमान सपनाभा मेकारी को बढ़नी ही जाता है। दस्तकारी कारागीरी और शिल्पि जेवा 'गय' न्हा रही है, यदि भाज 'अ' में शिल्प विधा को नाश न होता त भागत क हजारी सपुत हर साज रल गादी क नीव लिर दकर भासमहगा का पाप न करते। भायो बहू हो चुका। बी० ए० बन बाबू बने। बकारा हो कर दर दर का ठाऊ का अब मजदूर बने। पुत्रार्थी और कार्यशाला बने। शिष्यकार और दस्तकार बने। लूब कामाओ खाओ और परिवार को रोटी हा। लूब मेर साज काम करा लिखीनों का गारा यूसी, मिठी

उठाओ चीनो हूटो धार बा का बन कर अपने दुष्कमय जीवन का। लूब और शक्तिमय उनानो मर मजदूर का इश्वर न तुम्ह दिय दिया है विभाग दिया है और उस में विचारने की प्रयत्न शक्ति ही है ससार कायक न ह कर्म का हवीन तुम्हारा हाथ में है उन्नाओ और लूब चोट लगाओ मिशाना बाँधो बस याही तुम्हारा बाँधी बननी। र शूयू ये जो चलन क मुझ म निकल और मरी राम रोम म समा गया मुझे प्रयत्न भन्वर एक नया जीवन प्रत त होन लगा। मैं नुन मुक्त कि बापु की मरराताइय ओ यही भा ला रहा है। अब मजदूर बना उद्यमी और कियाशील बने। नदी की उठतो बूततम भी भ्रमना लिय किनारे म टकरा कर यहाँ राग भलाए रही री करीगर और शिष्यकार बना स्वयं कामाओ खाओ और परिवार का पोषक करो। मैं हू और चलन क पीछे हो लिया। मुरी 'नता' आकाश में दूर टप न अग्न रण पर सवार थे। मुझ में एक जाल थी किममत थी बकत थी और बकत के साथ दो एक इकत थी जिसक बब-बूते पर मैं ससार मे इजत का जीवन न्योल कर चाहता था

भाज तीन साल हो गय हैं चदन और मैं दोनो साथ साथ है। न-ह यम कटिज इस्वीज का काम लूब छोटा पर है। लगनम ३०० आरमो प्रविय काम कर रहा है। 'अ' क स्व-श्री प्रचार न हमारी दस्तकारी को बार बाँध लगा दिय हैं पचासों पावक यद काम मोल कर मेरत भमरीश भ्रमजर सहायनपुर लो हार अमृतसद, जानमर ललखल, भाई मैं अपनी जीवन नोका पार कर रहे हैं। जैमिग का काम बा सार जोग है। बागी के पिलोनी की मी। दिव प्रति दिव बह रही है। चलन क उस्ताह ओ हल हाई में बहुत नतुर ये भर विगम म और टनिग हासिल करके वास बा गय हैं। करकाल की एक हाग नहनी में काम हो है जिसक न्हा है बाज और भाविक हैं।

अब मैं किसी दफ्तर में फर्ग 'ता हू और न मुझे 'अ' य लुनता पड़ता है। मैं पहले का २० य लोखन बेकार। अब म मजदूर ह उद्यमी और कारागाल ह मुझ अपना और प्रयत्न पावर का र की पक नही कनी पकनी। कोर हू।

## आंखों में धूल

(ले०—श्री विद्वत्-नृणाव मिश्र मिश्रु०)

आजकल हिन्दी सभार में सा विविधक सचुता की खुश बहो की नीच गति से हो रही है। जान वना है कि प्रत्येक हिन्दी पाठो साहिबिक बन कर ही दुय गेग। यही पर धार रवन तो गनीमत थी लेकिन रुकें क्यों? वलिय आगे, य भाये 'कवि पुत्र' पंखुषि कि किलन है? तो सत्यवादी नहीं? जो तुक प्रभा दे बह कवि है। कजु महा उभाष उठ तो 'तुम की दुम ही तोष झाली। पृष्ठा बह क्या किता? बोले —स से बही प्रचवन भी मोषो का सचन को जाता था। अब ठीक है। भाषों की धर्मियाँ के जिय नेतुकी कर ही। एक कुर्मीय और मारो। लगे हाथों छुट्टो का मो भाव करो। कुछ मुठ राने लगे यह क्या कर जाना? उत्तर दिया—पुन आ देना है लिखन है और 'मिरालो' जी की रचनाय इसी तरह को हैं। फिर कहिये। लेकिन व कविराज (?) किम भी मण्डे हैं। कवल सौलो क मकफाल है, पर हन्ने तो दखिये। एक पद अपना ओर एक पद किसी अन्य 'कवि' का, पकौ लिखवो और रल ही सामन, कहिये साहब कैना स्वादे है? बन्ना बन्ना है, जोते रहो पड़ते। तुम ही हिन्दी का नाक हा।

उस दिन देखली के 'चित्रपट' का मासिकीक मिला। कप रग आकार प्रसार का क्या कहना। खूब सुन्दर बहा पसन्द आया। उलट पलट कर देखा, लखों और रचनाओं का सक छन भी बहिया है। कथिताप भा है, एक कविता है 'आंखों में लक्ष्म है कोई आ बालगोविन्दप्रसाद 'ओ वास्तव' है। ओ वास्तव शायद उगनाम है। रग विरग कागज पर रग विरगी स्वाधी म कविता छपी है। पद्यो भार हो पद पड़े तो बहा आचरने दुष्टा य तो कण्डुधर जी

मैंने उस कहा कि यदि इसी तरह शुनीसिदि टिपों के श्रेय प्रभुपद भी लोहरी का लान मार कर चकवाया की ओर लग जाय होउ म काम करन में घुषा न कर, खिलौना का हो काम शुरू कर दे जेउ कि आप बना रहे हैं ता 'शु का बकारा दूर हा आप ओर विन्गुग लिखाने तुरा जय सामान भान बन्द हो जाय।

उमन कहा—हाँ, यान तो आप का ठीक है—लेकिन, जब इस दस्त फार बन, तब न ?

हरिकृष्ण 'प्रेमी' की 'आंखों में कविता पुस्तक का उदघाटन है' यह कविता कही? सोचा शायद 'प्रेमी' ने अपना नाम बदल दिया हो। लेकिन इस पर विस्वास न हुआ, नाम बदलन की क्या आवश्यकता हो पड़ी, मोर प्रेमो न यह छल करना कहाँ साबो। और तब अपनी प्रिय पुस्तक आंखों में निष्काशी और इस कविता से मेल किया। देखा तो कहीं न आपन परिवर्तन ओर सयोग्य भी किया है। अब ओर भा सन्देश हुआ—'प्रेमी' न हो यदि कविता प्रशस्तिकी की है तो भला परिवर्तन क्यों किया?

अब दखिये—ओ वास्तव जी की कविता क हितार, ततीय, वष, सतम, अष्टम, मोर अन्तिम पद तो नितान्त नकल है जो कि पुस्तक में क्रमश २, ३, ३, १२ ६, २५ पृष्ठ पर हैं। अब अवशिष्ट पदों को ली जिय। पहिला पद पुस्तक में या है—

आंखों में पिछली अरुति है  
आंखों में प्रियतम का प्यार।  
त्याग, विराग, विलाप पिपासा,  
आगों की आहुति मनुहार।  
इस में तासर चरण को आवा-  
स्त्व आ ने पेसे लिखा है—'त्याग,  
विरोध, मिलाप, पिपासा। कहिये  
अब आपन दु खों का वयन कर रहा  
है, वहाँ बाव में आपन मिलाप'  
आन किस शिष्ट म कर दिया?

कीया पद है—  
आंखों में है हिन्तु किमपाग,  
आंखों में है सुन्दर शीप।  
आंखों म सगर का तल है,  
आंखों में है झूठे सीप।

इस में तासरा और चौथा चरण  
यो बरता है—आंखों में है सागर  
तल तो आंखों में हा ऊ उ सीप।  
तीसरे को तो शायद सानुसल होन  
क लिय बोला बरबता रहा है, परन्तु  
बोये में यह 'भो का हीसा जाने  
क्यों छिपा दिया?

पंचवा पद यह है—  
आंखों में है जागन मोहा।  
आंखों में है उषकी पतवार ॥  
आंखों में है चतुर लिखेया।  
आंखों में है पापाकर ॥  
इस में आपन वचन 'खिवया  
को गवाक समन कर 'खैयैया' बना  
कर नागिक कर दिया। अत्रा साहब!  
सजा दिया लेकिन इसमें ही सोबह  
मासामों की जगह नवह दो गई  
इसका उच्छरदायिक किस पर होगा?  
नव पद की पणिय—

नयनों की लोकाधो में मर,  
इदय लिपु ने खुग मोती।  
मेरी पीठा आपन घन पर  
हतराती गर्जित होती ॥  
इसमें चौथे चरण का परिवर्तन  
यह हुआ है—

हतरा कर गर्जित होती।  
अर्थात् पहिल हतरा लसी है,  
उसके बाद गर्व करती है क्यों कि  
हतराना और गर्व करना साथ साथ  
नहीं हा सकना यही बात है न ?  
दसवा पद लेखी—

आंखों में मेरी मय प्याली,  
प्याली में सकुलानी चाह।  
कितना मादक पो जान पर,  
प्याली दुकानान है 'आह'।  
आप कत है? 'कितनी मधिरा  
पी जाने पर क्याकि मादक तो  
कुछ और मो हो सस्ता है और  
आप उहग पू शराबो, सो मधिरा ही  
विया किन ?

आरक्षक पद स प्रकार है—  
आंखों में है हाट इदय की  
जिय में हं मरो दुवान।  
देकर अमर प्रेम प्रमिलाया  
पाना भ्रमन्त परा मदान ॥  
आप न लिखा 'पाना अमर  
पीर मदान' और कण ? 'प्रेमी' न  
मदान को मदान लिखे विया या,  
उप आप न शुद्ध रूप में पेश किया  
और अमर' की पूछ उलाह कर  
कै क हो? नृब किमो।

आरक्षक पद भी देख लोखिय—  
आंखों में वह मधुरमिलन की  
सुन्दर मतवाली साली।

## गुप्त मन्त्र

१००) इनाम

जिस काम को आप लालों रूपे  
खर्च करके भी नहीं कर सकते हैं उसे  
इस मन्त्र को सिर्फ ३ बार जाप कर  
हो कर सकते हैं, किसी कष्ट या साधन  
की आवश्यकता नहीं यह मन्त्र  
सिद्ध कर भजा जाता है। आप जिसे  
चाहते हैं, चाहे वह कैसा हा कठार  
इदय अभिमाना क्यों न हो, इसे  
जपन क साथ आपने मिलने क लिये  
ललापित होता। इन् मन्त्र में साधो  
दय होता है। मोरही जन्म मिलता  
हं मोरकोवानो का तलकी मिलती  
है, मामले-मुकम में जोत होता है।  
लोटर में जोत हाती है। यह मन्त्र  
बगीकरूप है। आपार में काम व  
परीक्षा में पास करता है। केबयसा  
साहित करन पर १००) इनाम। मन्त्र  
का मूल्य २५)।

पना—विश्व मन्त्र आध्रम,  
न० १०० प्रो० कतारोदराय (गया)।

आंखों में यह चिरह निगाह है,  
मतवाली काली काली ॥

लेकिन, ओ वास्तव जी लिखते  
हैं कि 'मतवाला बाबी काली' क्यों-  
कि 'काली' नहीं है, उसमें जो भा  
स्त्व जी स्वय बैठ गये हैं।

मो न तो ओ वास्तव जी ने  
परिचय है और न शिरोध पर किसी  
'कवि की हति का विषयुपल्लव  
टेल कर भी जुप रहना कम-नकम  
मर लिखात क प्रतिकूल है। केवल  
हली लिपि कुछ लिख रहा हू।

समय है कि ओ बांगगोविन्द-  
प्रसाद 'ओ वास्तव हा ओ हरि  
कृष्ण विषय वर्णन प्र मो हैं। एखो  
दृष्टा में मैं सुख दु क कि (प्रेमी  
मर अध्येय हैं) उन्हे आपनो रचना  
में परिवर्तन करा का गुण अधिकार  
है और मरा कुज कदा अनधिकार।

## सेफ डिपोजिट वाल्ट देखने के लिये

आपसे

## निमन्त्रण

किसी समय आपनो सुविधापु-  
कूल चांदनीचोक में घुमते हुए  
संग्रह बैंक के सफ डिपोजिट वाल्ट  
आसय देखिय यह वाल्ट येमे हैं,  
जिन पर आप व पानी का अक्षर  
नहीं हा सकतें। आप आपन कीमती  
बजर जवाहरात व दस्तावेज  
इसमें रखिय और आप, पानी  
चारा व डाका आदि के भय से  
मुक्त हा जाय। इसक लिये बैंक  
केवल २५) वारिक लती है। सेफ  
ल जेन पर ओ आप २-३० म ई बजे  
शाम तक किसी समय उसको लोल  
सकतें हैं।

बाउट लेन बाजे को एक बिशेष  
बाबा हो जातो है जिसको दूसरी  
नहीं हाती। सिवाय वाल्ट लेन वाले  
क अन्य व्यक्ति उसको नहीं खोल  
सकना। हजारों मर-नारिय आपन  
कोमली अंघर जवाहरात इसमें रख  
कर वन की नाद सोतो हैं। फिर  
आप कर्पा बक के इस आधिकार से  
लाभ नहीं उठात और उनको रखने  
के लिय क्लिप्त रहते हैं।

सेन्ट्रल बैंक आफ इन्डिया  
लिमिटेड,  
चांदनी चौक, देहली।

## बाल-बन्धु-परिषद्

### बालकों की एक कुटुंब

'हरिजन-बन्धु' में आचार्य श्री०  
पिण्डीरलाल मराठवाडा लिखते हैं—

"आमतौर पर यह देखा जाता है कि उड़नी बर्ष की छोटी उम्र के बालकों में भी अपनी इन्द्रियों को उड़ने को भावत होती है। लड़कियाँ पेंसिल प्रादि लेकर उमक द्वारा गप्पें खेल खेती हैं। लेकिन अकसर देखा गया है कि जायिया या 'नकर' पहनन क बाद बालक इस कुलव को भूल जाते हैं। कभी कभी यह भावत

आवश्यकता पकल यही है कि धीम में बालक का हाथ बंधा न डटा दिया जाय या उसे हटान का कहा जाय। जायिया पहनाय रखना भी एक उपाय है।

लेकिन इस सम्बन्ध में एक दूसरा महत्व को बात ता उस स्थान का स्थच्छता है। बालक तथा अपनी इन्द्रिय को छुटता है जब गन्धों का कारण वह खुजलान लगता है। बहुत कम भाव पेन हैं जो छोट बच्चों की इन्द्रिय को पणाय क बाद मली भाति खोते हैं। जब बालक घट बैठ पणाय करतो है, तो उसका मोक्ष का भाव मा गन्ध हो जाता है। इस जगह पर पूल लगान या मिट्टा का भार जमान न खुजली पकल लग ती है और बालक उम खुजलान को बिगड हो जाता है। इवालय का-स्थच्छता यह है कि शरीर क दूसर भा-ों का तरह हा य माय भी रुच्छ रखव जाय।

धोय हुए पा-ों को मूल गमड म न पोछकर यो ही इवा में सुखान म यो खजनी पदा हो खरता है। इसलिय पणाय-पाखि न निपटन क बाद बालक क भा-ों को प्रली-भाति पोकर उन्हें पोछ रना च हिय।

### मेरी नैया

मेरी नैया मेरी नैया।

कागज की है मेरी नैया ॥

आधो गाला, साता सुयमा,  
आधो मर माइन ५५।  
जमुना जो के जल पर अपनी,  
तरावे कागज की नैया ॥॥

मेरा नैया मेरी नैया।  
कागज की है मेरी नैया ॥

रग खिली, गन्धों, हल्की  
प्याले प्यरा है यह नैया।  
आल पोत का जामा पहिन,  
बैठा उस में नाव खिलैया ॥

मेरी नैया, मेरी नैया।

कागज की है मेरी नैया ॥

को, बैगनी हूं मैं उस में  
भलुया ५ बबुआ इण कन्दैया।  
देखो, पात उठानी फग-फग  
बह जातो कागज की नैया ॥

मेरी नैया, मेरी नैया।

कागज का है मेरी नैया ॥

—रमन-नाथ

हलमी मजबूत हो जानो है कि इसा में  
ले बावक हसन मजु का गिहार बन  
जाता है एक बहन न इस विषय पर  
मेरा प्यान आगिन करन हुए इस

सम्बन्ध में कुछ सूचनाएं बादा हैं।  
बहुतेर मर गय इस भादत की  
उपेक्षा करत है; वे गलन रहते हैं।  
पर बालों को रोकेते नहीं। क्वा-  
कमी नासयक मातायें और मोर-  
भादि भावनों को स्वय हो यह  
गम्भ भादन सखतो हैं। लेकिन यह  
उचित नहीं है। बहुधा कोर दन क-  
वले को खुलान के निय बचो न खु-  
गला कवन हैं, या इतान चमकाने हैं।  
हा भी ठीक नहीं। इस सम्बन्ध में

५ भाद

### अलोप

यदि चाहते हो तुम सब का  
देखो तुम्हें कोई न देख फिर गावय  
चम सुन्द, पून, वन मन, अविपर  
क दुःख सुख का सब बात,  
रोग और उसक दूर करन तथा  
कोष परलोह का ज्ञान ईश्वर  
और मूल आराधना क दर्शन  
आधार, पानाच दूरी बड़ और  
बाणी प्रमोत्तर, दवा गता आधोनि  
विज बन आधो, श्रुय उदार धन,  
सतान ज्ञापद्व खन विज, उध  
पद, राज सम्मान, इच्छित नीकरी,  
रोजगार लाभ, सब सुखों का खेद,  
प्रेमी या प्रेमिका का दुःख का आ  
धीनता न लुहा अपन गते का हार  
बताना, परछा में पास, सुन्दन,  
बैठ न। हर काम में निष्ठय भाज  
को बाधो करना। यह मजदुत भाव  
लकार ३ की बो० ५०० न आदेश  
सहित मंगली। नात्राय क म न  
करने को प्रस्ताव पत्र भेजना होगा।  
उत्तर के लिए टिकट न जवाबी कार्ड  
आवश्यक है। भी १०० स्वामी

धुयो निवाच, मुद्रणावक, ५० पी०।

## क्वेटा भूकम्प के तर्तान चित्र



बाबू मुहल्ला

शहर का सबसे बड़ा बाबाबू हिस्सा था।



मजुम क सरकार क बाटार



प्रस रोह, क्वेता

भूकम्प का बाबाबू हिस्सा न मजदुत भाव लकार ३ की बो० ५०० न आदेश

रतन पर भी यदि यह मान्यता हो  
कि गुरुवा बन्द नहीं हो रहा है तो  
काई खुलनामायक बन्तु भागान  
वाहिय। इसमें बालक इस कुटुंब क  
गसन स बचवा और खुजलान क  
उन आवश्यकता भा न रहेगा। म-  
जवा काई भी महान भागे पागुर  
की तरह लगान न खुजला मिट  
जातो है।

### पिछली पहेली

अभी तक बहुत कम बालों न  
पिछली पहेली का उत्तर मंजा है।  
सब पिकुना भा क दलहर पहेली क  
उत्तर मेंजे।

—सम्राज क 'अर्जुन'।

### ख्यान

आ भाई आ

सुये बाल-बन्धु परिषद् का  
सदस्य बनना स्वागत है  
प्रत्येक दल के प्रत्येक धा- जाल  
और रग के बालक बालिका  
का अपना भाई बहन मानू-  
और ससार में प्रेम और वरन  
स्वार्थित करन के लिय जिन्-  
का 'ब' का पालन कमत।

भा

मुहल्ला भादि

स्थान का पूरा पता

# व्यापार-डायरेक्टरां आवश्यक वस्तुयें निम्न पते से खरीदिये—

<p>हैजा का अचूक इलाज</p> <p><b>विश्वसुधा</b></p> <p>है</p> <p>मूल्य १) प्रति शीशी ।</p> <p>विश्वसुधा कार्पोरल, नया बाजार, देहली ।</p>	<p>५)</p> <p>प्रतिवार</p>	<p>२१)</p> <p>प्रतिवार</p>	<p>२१)</p> <p>प्रतिवार</p>
		<p>११)</p> <p>प्रतिवार</p>	<p>सुन्दर खिञ्जोने</p> <p>घर सजाओ या बालकों को बहलाओ</p> <p>एक० पात्र० प्लैमिंग पत्रा पादरी बर्क्स करील बाग दिल्ली</p>
		<p>३) प्रतिवार</p>	
			<p>२१)</p> <p>प्रतिवार</p>
<p>दांतों के सर्व रोगों के लिये</p> <p><b>दन्त सुधा मंजन</b></p> <p>प्रयोग में लाइये ।</p> <p>विश्वसुधा कार्पोरल नया बाजार, देहली ।</p>		<p>२१)</p> <p>प्रतिवार</p>	<p><b>डाका</b></p> <p>आजकल हाके की बहुतो लहरें आ रही हैं । यदि आप अपने कीमती मांस केयर को सुरक्षित रखना चाहते हैं तो उनको मेंटन बैंड विटमीनोस देहली के एक डिपार्ट्मेंट स्टोर्स में रखिये और जैन की भीड़ सोइये ।</p>





## नागरी लिपि के सुधार की योजना

### काका कालेलकर की विज्ञप्ति

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित लिपि सम्मेलन के सत्रों के तथा चरममेव काका कालेलकर ने निम्न वक्तव्य प्रकाशित कराया है—

लिपि परिवर्तन की वैदिक काल में ही हो चुकी थी और उनका विकास पर प्रयास के हिन्दी साहित्य परम्परा ने एक कर्मने ही उद्देश्य में स्थापित की कि वह नागरा लिपि से उद्भूत करने के लिये आवश्यक स्थितियों को नागरा लिपि को अधिक सहज और जटिल और उन दिग्गज (गुरु) के लक्षण के अधिक उपयोग के बजाय किन्तु ही सावधानिक और नई विधियों को ध्यान में रखा है। अब वह समय आ गया है कि वह कन्द्रीय समस्या इस काम का अपने हाथों में ले और समस्या हल करने में निरर्थक एमो स्कॉम बनाये जो नागरी लिपि का यथार्थ कल्पना को बनाए रखने को मजूर हो।

हिन्दी मराठी और गुजराती में नागरी लिपि का ही व्यवहार एक वास्तविक रूप में होता है। बंगाल, आसामी, उड़िया, गुजराती और शाखा लिपि भी हिन्दी में लिखा रूप में नागरी लिपि में ही लिखे जाते हैं। इन सब लिपियों का व्यवहार करने वाले लोग नागरी लिपि की उन्नति में दिलचस्पी रखते हैं। तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम लिपियों की सुविधा भी सहज बर्णमाला पर है। नागरी लिपि उन्नति होने में उस का असर दृष्टि के लिये पर भी आवश्यक पड़ेगा।

प्राचीन काल में सहजता भाषा का स्वतः प्राचीन प्रकार और वर्तमान काल में हिन्दी का राष्ट्रीयभाषा के तौर पर प्रचार होने से, नागरी लिपि को अधिक भारतीय प्रश्न की सुविधा पर उन्नतिशाल बनाने की समस्या सामने उपस्थित हो गई है। इस लिये जो लोग नागरी का सर्वप्रकारों के व्यवहार चाहते हैं उनमें में शामिल करता है कि वह हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की लिपिकमिटी से सहयोग करें।

अब गांधी इस वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष हैं और वे स्वयं इस विषय में बहुत निरर्थक रहे हैं। प्राशा है कि यह लोकमत उचित सहयोग के साथ सन्धि पर प्रकाश डालेगा ताकि कुछ

समय के भीतर काम चलाने लायक यह समस्या हल हो जायगी। जो सज्जन और सहयोगी इस राष्ट्रीय समस्या में विलम्ब नहीं रखेंगे, उन में शामिल है कि वह अपने सम्मेलन और स्वीकृत उन्नति और हिन्दी भाषाओं के साथ शीघ्र ही भेजें। इन सब पर कमिटी में बहस होगी और कुछ समय के बाद उन्हीं जनता के सामने पेश किया जायगा। प्राशा की जाती है कि हम नागरी लिपि का वास्तविक भाव रखने हुए उसमें ऐसी आन्धी

उन्नति कर सकेंगे जो वर्तमान भाषा प्रकृति को पूरि के लिये हमारे अनुकूल हो।

सब विद्वानों की निम्नलिखित पत्र में मञ्जरी चाहिये—

लिपि समिति कार्यलय भागलपुर, बर्मा (प्रथम प्रश्न)

लिपि समिति के बीच लिख सद्भावनाओं में ५ जून को बर्मा में निर्मात्रित किया गया है—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष मा० गांधी अध्यक्ष के राज-

पुनर्मा अध्यक्ष पर के अध्यक्ष ५० गोरीयकर हीराचन्द शोभा, प्रकाश विश्व विद्यालय के अध्यक्ष चालसर डा० ए० सी० कुलकर्णी, कलकत्ता विश्वविद्यालय के भाषा और उच्चारण विभाग प्रो० सुनीति-कुमार वर्मा जी लिपि परिवर्तन के सम्पादन और उपयोग के काका कालेलकर अध्यक्ष विश्वविद्यालय के डा० क० प्रो० पिसरोगे मद्रास सरकार के प्रधान लिपि एडिटरकारी

(शेष पृष्ठ २५ पर)

## ट्राली बसों, ट्रामकारों तथा बसों से याता कीजिये

यह अत्यन्त सुखद तथा साफ गाड़ियां हैं  
डी० ई०एस० और टी० कम्पनी लि०

### ट्राली बसों से—

बिरला मिल में पहाड़गंज को, सन्धीमण्डी, तुलु मिठाई और कुतुबगढ़ होती हुई।

दो पैसे का मोल की दर में।

### ट्रामकारों से—

सदरबाजार, जामा मसजिद और सन्धीमण्डी जामा मसजिद।

ग्रीष्म-ऋतु के सस्ते भाड़े पर

### बसों से—

- (१) नई दिल्ली और कानपुरा दरवाजे के बीच में। बसों नई दिल्ली रोड क्वीन्स रोड, कन्न-बाराग रोड, (लाहौरा दरवाजा) गालनरोड, अन्नमरी दरवाजा, मिट्टी रोड, कनाट प्लस, लेडी हार्डि रोड और गोला मसजिद होता हुई नई दिल्ली पोस्ट कार्डिस तक।
- (२) कन्नार और तामारपुर के मध्य में। कन्नार पुन कन्नार रोड लोचिन रोड कन्नारी दरवाजा, अन्नमरी रोड, और माल जकून होता हुई तामारपुर तक।
- (३) लाहौरा दरवाजे (सदरबाजार) से कन्नार तक। इस प्रकार नई निवासस्थान प्राचीन नगर में मिल जाते हैं।

ममय तथा किराये की तालिकाएँ कम्पनी के कार्यालय से मंगाने पर मिल सकती हैं।

निजी यात्रायों के लिये स्वाम वने खास तौर पर दी जाती हैं।  
सर्व प्रकार की वृक्ष इत्यादि से आप बचे रहेंगे।

(दस्तखत) एच० जे० डाङ्गिन  
जनरल मैनेजर।



## विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१ मन्नाडू का प्रसन्न व्यक्ति	मुखपृष्ठ
२ सन्नाह के हाथरी	३
३ मन्नाह का हलचल	
४ सन्नाहकाय	४
५ सुन्दर या प्रशन्न सागर का समस्या	आ मद्वात विधानकार ७
६ बन्धु जीवन में राधा का याद कविता	आ मद्वात गोविन्द ८
७ राधा	आ कल्याण ८
८ राधा	आ रमणचन्द्र धर्म ८
९ हमारा विवाहवा (१)	
१० हनुमान पदव्य और विगत भारत	११ कलचन्द्र विशारद १०
११ महिला जगत	
राधा का प्रस्ता	आ मुकुन्दबिहारी वर्मा ११
मारा का उपनि	आ एफ० डब्ल्यू० वन ११
क्या किराई प्रजनन कार्य के लिये हो है ?	आ धर्मानन्द १२
१२ राधा बागा	आ गोपालसह नेपाही १३
१३ विद्यालयों की फैशनपरस्ती	आ बाबाय प्रकुलचन्द्र राय १४
१४ प्राणगो कीन	आ रेव १६
१५ वर्षा ऋतु के नियम	आ बाबुरव मंडतो १७
१६ हिन्दुधर्म	आ २ करण १६
१७ राधा का स्मृति	आ जीवननाथ १७
१८ राधा धन्य	आ कल्याणद्वारा शशि २३
१९ मन्नाह का राशिफल	आ सक्थण व्यास २४
२० श्यामकि-संसार	२४
२१ हन्मन्-विज्ञान	२७

## नवीन वर्ष की नवीन आयोजना

हिन्दी-जगत की एकमात्र साहित्यिक मासिक पत्रिका

## माधुरी

के रूप-रंग और गुण में विशेष परिवर्तन

१—विश्व साहित्य के प्रधान महाद्विषी के जीवन और कृतिया का साहित्यिक निरीक्षण।

२—भिन्न भिन्न साहित्यों के भिन्न-भिन्न युगों का समकालीन एवम् तुलनात्मक अध्ययन।

३—जगत् साहित्य पर प्रकृति-प्रभाव।

४—सिन्धु का साहित्यिक स्वरूप।

५—महिला संसार की साहित्यिक शक्ति।

६—नव दारुण नई छाप है बिलकुल नया गेट अप।

मैपादक—आ० रूपनारायण पांडेय

आ० बाबूकिशोर मदनराय एम्० ए०

“माधुरी की नई माधुरा आपका माह लेगी। इनकी रचनाओं का श्रेष्ठता आपके हृदय में हृदय और तब के साथे का संचार करती।

यह आपकी १४ वर्षों से संचालित माह है इसका वार्षिक मूल्य ॥॥, छमाही मूल्य ॥॥ और एक प्रति का ॥॥ है

यदि आप अभी तक माहक न हो तो शुभ हो न जाइए

माधुरी का नववर्षा बहुत सख्तन के साथ एक कलात्मक प्रकाशित हो जायगा। इसका मूल्य ॥॥ होगा शायद माहक बनिये।

पत्र व्यवहार का पता—पैतना ‘माधुरी’ नववर्षा के लिए प्रेषित लखनऊ।

## उत्तर भारत के एकमात्र हिन्दी साप्ताहिक

## ‘विश्व-बन्धु’

को अपनाइये।

क्यों ?—

‘विश्व-बन्धु’ संस्कृत और निभाक लिपि का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

यह बन्धु आप नवम्बर और दिसम्बर के अंकों का अग्रज है।

मेनेजर—‘विश्व-बन्धु’, लाहौर, (पंजाब)।

## स्त्रियों के लिए

## महान उपयोगी पुस्तक

नाम—प० कृष्णकांत मानवीय

मुहागरात—मूल्य ४)

और

मातृत्व—मूल्य ४)

न० २८, ब्रिजचमनलाल रोड, प्रयाग।

प्रस्तावना लेखक

पञ्जाब कृष्णकांत मानवीय लाला कृष्णचरणराय जा अपनी स्त्रियों के लिए हैं—

‘मैं प्रार्थना करता हूँ कि सब हिन्दू निश्चिन्त हृदय में इसका पठ करें और इस विषय पर विचार करके समाज सहायन के कार्य में तत्पर होंगे।

अर्जुन के प्राद्वे के लिए सुप्रसन्न

सुहागरात और ‘मातृत्व’ नामक दोनों ग्रन्थों को एक साथ खरीदने पर ‘कृष्ण’ के प्राद्वे के उद्देश्य के दोनो प्रयत्न के साथ ६) रुपये में ही मिलेंगे।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

## साप्ताहिक डायरी

### ३ अगस्त

—राष्ट्री नदी में पानी की बाढ़ के कारण सेवधवाला करने का आधा भाग जल भय होता था है। बहुत से मकान, भौदर गिर पड़े हैं। डेरा जल रहे हैं।

—पेशावर की खबर है कि वहाँ लुभारिया का दो बनें से अचकर कर्माई होगई। इसमें दो आदमी मर और तीन की दशा विमोक्षण है।

—हाजिरी और नामस के जिस कये लिया पर फावर की मान की जाली में हड़ताल हुई थी, उन अक्षर सामग्य कम्पनी के अधिकारियों ने रद्द कर दिया है। हड़ताली मजदूर काम पर आ रहे हैं।

—हालावाले में गरम फरमाइ है कि पं० अवाहरलाल नहक अकबर मास में मिहा हाजायेने, कर्नाक हवन मासुल बंद-कवाच काम होन से पहिले उन्हे ४ मास की रियायत मिलेगा।

### ४ अगस्त

—बर्ली के सेगन्स जज न एक सुमर ४१ मार देन क अभियोग में ४ व्यक्ति को पाली और २ का तीन-तीन वर्ष की बड़ी बंद की सजा दी है।

—एक हिन्दू चमेराला पर अधिकार जमान क लिय लिखने क अरजे अमी तक लापर (कासमा) आ रहे हैं। इस फैसलाल में ३० लिखने का सजा हो चुकी है और उनपर कुछ निला कर ४००० जुर्माना हो चुका है।

—बर्लीवा न जगदीश मिल के हड़ताल मजदूरों व पुलिस में मुठभेड़ हो रही है। पुलिस न गालो बलाह, जिस स ३६ मजदूर घायल हुए।

—छुराज न जलती म मशीन बरान क मोमल पर दा-लीन गार्ड के लगभग २०० आदमी परस्पर माली-माली स कुल लड़, जिस स १२ व्यक्ति सरत घोसल हो गये।

—हा० जाल स हव फम ० एल० एन से एक वल य म क्शर है कि "सुधारी सिन्दमगारा पर जालय बल मेलन-क आग्य-नयुव है, सरकार सिद्ध कर कि सीमा प्रति के स्वयं-सक पठान जिसक है।"

—बहमदाबाद क पास क एक जंगल में वलश पुलिस बार्ड और खड्गको में ३ अघद तक कर्माई हुई। एक बाहु घायल हो कर गिर पड़ा और शव जाल गये।

—आहौर हादीयगज मसजिद के सम्मन्ध में मोरवा देन क कारण ३ मुसलमानों को फिर गिरफ्तार कर लिया गया है।

—"सरपंच" के सम्पादक पंडित केमल मिश्र ने इलाहाबाद के लिटी-मजिस्ट्रेट की अवागत में पोवा-गियर, प्रताप, वर्तमान, बहीकन प्रयागपंच और मिश्रत के सम्पादकों पर मामलात्मि का दावा दायर कर दियो है।

### ५ अगस्त

—अकमानिलाल में बाढ़ प्रान से प्लारकाल के पास देवगुल दरें में अन-धन की भारी हानि हुई है। २२ आदमी डूब चुके हैं।

—बम्बई में डोक-वर्ल्स युनियन के वार्षिक चुनाव में फगडू हो गये। पुलिस ने बीच में पड़ कर लाठी-बाज किया और ३ व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया।

—अजमेर के अलम्बकी खुवाब केस में बादो की मुकटबहारीलाल न अफमी बरकवोल वापिस ले छी।

—आहौर की खबर है कि पजाब में एक दिन में दुर्घटनाओं से १२ व्यक्ति मर गये।

—बंगाल और बिहार में पुलिस न बहुत से मकानों की तलाशी लेकर बम, बाकू, बारास क जायनामाइत बरामद किया है।

—गाजियाबाद में पुलिस न आंधीरात का एक मकान पर जगा मारा और दाई बाग केअन बरामद की।

—कोट (धुलान) में ६००० हड़तालियों न सरकारा दफ्तरी पर हमला कर दिया। फलतः पुलिस-बलो व हड़तालियों में मुठभेड़ हुई, जिस से ३० आदमी घायल हो गये।

### ६ अगस्त

—ओधपुर में एक कसार् न एक हिन्दू साधवी को लठ और पथरी स नृशसता-पूर्वक मारा बाला।

—हाउदू में शोम को ६ बज मुकमल का चक्का आया, जा कई लोचन तक बढ़ा। जमान म गड़-गड़ का शब्द भी हुआ था।

—पटना की खबर है कि प्रातः काल ४ बजे प्रसिद्ध आर्य-सन्ध्यावी होमी मुनीश्वरानन्द की डा देहान्त हो गया।

—आहौर की सरकारी विधान स हात हुआ है कि ४ अगस्त स आहौर क पर्वो पर स सेम्बर उठा लिया गया।

—भुवर्गिया बाला (आहपुर) के पास लिखन क दो बलों में मायव हवाई हो गई। फलतः ३ लिखन मर गये।

—बर्मी कैलिज में मिलिटरी में अधिकृत का प्रस्ताव, प्रस्ताव क समर्थनों की कमी के कारण, पेश न हो सका।

—आहाराबाद के आसपास एक अवात लूटारा जानवर ने कालक पैका रचना है। वह रात में आक्रमण करके कई लड़कियों को मार चुका है।

—कल में हाल में 'परोन्डे' नामक एक नई मशीन बनाई गई है, जिसमें बलून व पैराशूट (उत्तरे की कुन्नी) दोनों शामिल हैं। इस मशीन का परीक्षण किया आ रहा है।

—आहौर हादीयगज मसजिद क मामले में ८ अभियुक्त मारी मागकर छूट गये। शेष पर मुकदमा प्रस्थ हो गया। १२३ अभियुक्तों ने सजाई के लिए लगभग १००० गवाहो का नाम लिखाया है।

### ७ अगस्त

—आहौर किनारी बाजार में एक दुपे पर जिन हिन्दुओं का मिलकियत बताया जाता है, मुस्लिमों द्वारा छुट बनाया न, हिन्दुओं और मुसलमानों में मत मुताब-सा हो गया। हिन्दुओं न उच्च-मध्यमवर्गियों के नाम बरकवोल मज दू हा ह।

—काने प्राय (बजौरिलाल) में नात मुकदमा को समाप्तकारा हवाई-एफान आया, जिस स बहुत न मकान उड़ गये और बल गिर पड़े।

—कलकत्ता हाईकोर्ट क जजों न आसाम सरकार की एक अमीली काजिज करत हुये कहा ह कि "आसाम क्रिमिलनाला अमन्डमेड एक्ट का प्राप्त के बाद कोई अमन्ड नहीं है।"

—राबलपिण्डी क एक जाल न अफन अमीनस एक मविर की मिसारा करन का निश्चय किया है जिससे वहाँ के हिन्दुओं में सनमनो फैल गया है। हिन्दुओं न सरकार स मांगनो का है कि मविर उन्हें रिता दिया जाय।

### ८ अगस्त

—कलकत्ते का समाचार है कि मटियाजुड के पल गगानदी में एक नाव पर २० बंगाली बयवृत्तों न मकानों काला और ३ व्यक्तियों क जुग मीककर बहुत सा माल लूट लिया। अमी कोई गिरफ्तारी नहीं हुई।

—अमरेशपुर के पास औरकोई नदी में नाव दुर्घटना के कारण १२ आदमी डूब गये।

—अमरको के मशहूर उड़ाकू [बलीपोस्ट सबकालिस्को से कल

जति हुये अवास्ता से आगे बढ गये।

—सहारनपुर जाते हुए लोक सेवक सब के सदस्य भीखीबलदास लारी दुर्घटना में सख्त घायल होगये।

—मेट बडबंर केस के ४०० पू० अभियुक्त ओ मिरजकर गिरफ्तार हो गये।

—लठ समानाला बजाज गांधी जी की एक लाक की पैली क मिस-खिले में इन्दोर गय है।

—अमीली अफरअली उर्ली साबिकीरवा जेल में ४ साल की बंद मुकतकर रिहा होगई। उन के पति न उनको तार द्वारा तलाक की सुझा मंज दी है।

### ९ अगस्त

—ओधपुर में आषाढ की विभाग लोको और रीया प्राय के आगेरखार के आदमियों में गाबो बल गयो। जमोदार मारा गया। कई व्यक्ति और आदमी भी घायल हो गये।

—आहौर म्युनिसिपलिटि में अ ववस्था होन के कारण बहुत स-मन्धनः बह तोष दा जायया और अमज अफसर रला जायता।

—लखन क 'डवी पकसेन' क कथमाजुसार बहुत सभमनः लिख क पढले गदस्तर मन् जिहा बनाय जायन।

—वेस्टन हाइया मैब कैक्टरो बरक के १००० मजदूरों न हड़ताल कर वो है।

—आ० आर० पी० रलवे के बाडी बन्द के मजदूरों न हड़ताल कर दी है।

—डाला में जिला मजिस्ट्रेट न १२ से ३० साल तक क उअ बालो पर बहुत से आबजनिक स्थानों पर जोन को पाबन्दा एक साल क लिय और वहा दी है।

—नय आर्थि क कानुनो के कारण नृस क हाकालाती में अत्यन्त प्रसन्नप फैल गया है और हड़ताल न भोयव रूप बाल कर लिया ह।

—बंगाल सरकार पत्रिक डेने ने रिटी पेन्ड को बयार्थ स साल क लिख और बडान की साव रदी है।

—इंजीला और पार्बड में एक ब्यापारिक समझौता हो गया है।

—भी बलकर और आगे न नमनलिस्ट पा टी की स्थापना कर दी है और मालवीयो का स प्रतिम स्वाधीनता हो गया है।

सप्ताह की इलजल

## अबीसीनिया पर विषैली गैसों से हमला होगा ?

इटली को आर्थिक सहायता नहीं मिली

जापान और जर्मनी अभीसीनिया को सहायता देगे

यद्यपि इटली और अभीसीनिया के मामले पर राष्ट्र-संघ में समझौते का चर्चा जारी है तथापि दोनों देशों की युद्ध की तैयारियों में कोई कमतर नहीं आया।

इटली में लगभग सवा बार्स लाख सैनिक और कम से कम १५ हजार विशेषयुद्ध के लिये तैयार हैं परन्तु बजाय स्थल के इटली हवाई जहाजों में गैसा के सहारे अफास नया को कुचल देन की रणनीति बना रही है। मालूम हुआ है कि लवाई को शुष्कता में वह ४०० हजार जहाजों द्वारा अभीसीनिया में पना मल देना देन का इरादा कर रहा है जिस से अफासा नियत अन्ध से बन जावे और उनको अखिल में अन्ध ही अन्ध बने लगे। इनमें की मकलता म मिना नो देश जइसी गैस का प्रयोग किया जायगा परन्तु विश्व-राज्यी समेत और प्रयुक्तता के अखाल में अपने बल भर इसमें बच न की लगे की नायगी—साथ हा ऐसा करके वह उन लोगों की अपनी बिलकुल विषाणों की नही बना लना चाहता, जहाँ कि वह बस्ती बसाना चाहता है।

उन गैसों में स्वरक्षा के लिये इटली के सनिकों का ऐसी नकलें दी जा रहा है—ने इसी काम के लिये कासल तौर पर बनाई गई हैं। सिमिनी म २२२२२२ के २०० मय अफासा मना थाया या सातक गैस को उ जान व उ नतामी वायुमयानों के उपयोग की नता म सिमिनी दी जा रही है। फायर के काफ़लान में ५० इटली मो वायुमयान बन चुके हैं और अफ उम पर अफास फिया आ रहा है। १०५ मय वायुमयान का आदेश दिया गया है। प्रत्येक वायुमयान में, दो पकिसन होगा और ३०० मील प्रति घण्टा उनको चलाया होगा।

उधर अभीसीनिया भी जर्मनी व जापान म मल म बसाना वांछी नकलें और नय किस्म के इस्तेमाल मग रहा है।

इटली को फ्रांस म भी बहुत कुछ सहानुभूति मिलने की सभावना

है। अभीसी की फ्रेंच सीमा में इटैलियन सेना गुजर सकेगी। यह भी संभव है कि ब्रिटेन के बहुत नये अफरसल, सेमिक, इकगग और नलों न इटली को महयोग देन का वचन दिया है। इसके लिये इटली-सुरकर 'फोरम सीमान' की कयम कर रही है जो बिन्ही नागरिकों को मना में मर्ती करेगा।

इटली के मार्ग में एक बहुत बड़ी कठिनाई आ गई है। उसने इन्हीं फ्रांस और अमेरिका से कई तथा अन्य युद्ध उपयोग सामान उधार लेना चाहता, लेकिन किसी ने भी आर्थिक सहायता नहीं स्वीकार नहीं की।

वस्तुतः इटली की आर्थिक समस्या अत्यन्त गंभीर है कि वह अफ राणा से सहायता लिये बिना कोई बड़ा युद्ध उठ सके और अन्य देशों का यह विश्वास नहीं कि वह अपना वापस ले सके।

## ५ मरे : ७ घायल

प्रधान मंत्री दाँया

सरकारी वक्ता

अफारन जिले के फलहारा ग्राम में कई महीनों में हिट्टुओं व युवजिमों के बीच सघर्ष चल रहा था। बहरहाल के मोक पर हुट्टुक गंगारों भागने के फलहा प्रेम के एक मन्दूर में एक जिवह किए हुए मल्लू का निरफ क दिया था। इस घटना में दो सम्प्रदायों में घृणा बढ़ गया।

अफारन की शासक का महावीर फल्लू के जल्लू का रास्ता नियत कर दिया गया और हिट्टुआ न उसे स्वाकार कर लिया। पहले दिन फल्लू ने अफारन को कोई फलहा नहीं दिया परन्तु ४ अफारन को नामन पहर हिट्टु जल्लूसियों न समझीने की अवहेलना की और निवत निय नये मार्ग को छोड़ दिया। हिट्टुओं की मीठू अफिवा-चिक उम होसी गई और जब वह ईदगाह पर हमला करने लगी तब पुलिस को गोली बलानो पड़ी। जिस में ५ हिट्टु मरे और ७ घायल हुए।

## कांग्रेस और समाजवादी दल में संघर्ष नहीं होगा

मन्त्री साम्प्रदायी दल का बकव्य कांग्रेस और इसके अन्तर्गत साम्प्रदायी दल में कुछ समय से सघर्ष बढ़ रहा था। परन्तु अब मालूम पड़ता है कि दोनों सरवायों अपनी-२ मूल समय गई हैं। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति न जहाँ भी रहकर भी बात मान कर मजबूर सम्मन्धी समस्याओं पर सम्मोहता में विचार करने का निश्चय किया है, वहाँ कांग्रेसवादी दल न भी अपना दम बरहा है। काशी में इस दल की कार्यकारिणी समिति में इस प्रश्न पर विचार हुआ है। उसका बाद साम्प्रदायी दल के प्रधान मन्त्री भी जयप्रकाशनाथय्य न निम्न लिखित ब्राह्मण का बकव्य दिया है—

कांग्रेस समाजवादी दल कांग्रेस को पूर्ण समाजवादी सिद्धांतों की स्वीकार करने के लिये परिकल्पित करने का धन करना छोड़ दे। अर्थात् समाजवादी दल कांग्रेस पर बर्खा करने का धन न करेगा प्रयुक्त सच से सिद्ध कर के मजूर किसान तथा मध्यमवर्गीय जनसमुदाय के लिये जिनको बाज़ार हर तरह से शांख हो रहा है, पूर्ण राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने का धन करेगा।

मतलब यह कि जहाँ पहले कवल मजूर वर्ग का आक्रोश होता था, वहाँ अब सब शांति वर्गों की आक्रोशों का का अन्त्य किया जायगा।

कांग्रेस समाजवादी दल की कार्यसमिति यह स्पष्ट कर देना उचित समझती है कि हमारी नीति यह कभी नही था कि कांग्रेस पर अक्रमण किया जाय या उसको शांति घटायी जाय। कांग्रेस एक आदर्श है और एक सरवा है और इन दोनों की रक्षा करना तथा बढ़ाना हो वस्तुतः हमारा लक्ष्य रहा है।

## श्री सक्सेना ने नाम वापिस ले लिया

स्वागत-मिति के प्रधान पद की उम्मेदवारी स

श्रीधर मोहनलाल सक्सेना एम० एल० ए० न आगामी कांग्रेस की स्वागत समिति के समर्थित पद की

## अमरीका में बनवानी पर टैकम

श्री रुजवेल्ट का विज्ञ

अमरीका में बनवानी पर टैकम का मत है कि अमरीका के हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव (प्रतिनिधि-सभा) में पास होयगा। इस बिल के अंतर्गत उन व्यवस्थितों पर, जिनकी आयोदनो ५० हजार डॉलर से अधिक है, टैकम बढ़ा दिया जायगा। अब यह बिल सीनेट में पेश होगा।

बंगाल के बंगाल बाइराह



श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

आप की पुरोपतिथि इस सप्ताह मलाई गई।

## चित्र-पाठ्य

श्री अमनोलाब बजाज

आपन एक वक्तव्य प्रकाशित किया है कि आर कांग्रेस का सम-पतिव्य स्वोकार नहीं करेंगे।

श्री भूभाई दास

आप न राष्ट्रपति को एक पत्र लिखा है कि 'राष्ट्र प्रजा के लवध में वे कायल की नांम न पूर्ण सहमत हैं।

साईं जदवैज

आप भारत के नव मंत्री हैं और नय शासन विधा को कायाविवत करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

श्री रासनलाल

आपन कहा है कि अभीसीनिया इटली के सामन कभी नहीं मुकेंगा।

उमरवारी से अनाम नाम वापिस ले लिया है।

सयुक्त प्रो० कांग्रेस कमेटी की कार्य-समिति ने निश्चय किया था कि यदि लखनऊ के कांग्रेस कार्यकर्ताओं में दो सप्ताह के अन्तर अन्तर कोई सम्मोहना नहीं हुआ तो समिति कांग्रेस अधिवेशन का स्थान बदलने के संकेत में विचार करेगी।

# अर्जुन

सोमवार ता० १२ अगस्त १९३५ ई०

आजुनवय प्रसिद्ध लेखन में नया प्रकाश

## निर्वाचन क्षेत्रों की तैयारी

नया शासन-विधान अब कानून का रूप धारण कर चुका है, इसलिए राजनीतिक क्षेत्रों में एक विविध हलचल पैदा हो गई है। देश का प्रत्येक राजनीतिक दल नये शासन-विधान में अपने अस्तित्व को कायम रखान और उसे अधिक स्थिर, अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये अपनी से प्रयास कर रहा है। मद्रास की अन्तिम-वारदी क्रमों पिछले प्रलेखनी-सुभाष के चर्चके से ही नहीं संभव पायी है। महाराष्ट्र की डेमोक्रेटिक-पार्टी अपने नये विचारों संगठन के लिये विशेष चिन्ता करने लगा गयी है। संयुक्त प्रान्त में लिखरल दल भी सोचने लगा है कि भागी शासन-विधान में उनकी स्थिति क्या होगी बाह्य, उसे किस दल से सहयोग करना चाहिये। इधर क्रिस्स के 'पार्लैमेटरी-नेता' भी शासन गमभीरता से भाषी विधान में क्रिस्स-दल का नीति पर विचार करने लगे हैं। यह भी विचार विद्या जाने लगा है कि क्या निम्नी शर्तों पर अन्य राजनीतिक-दलों से भी सुभाष के सम्बन्ध में सहयोग किया जा सकता है या नहीं? ये सब दल अपने-अपने कार्य को प्रारम्भ करने लाले हैं, लेकिन संयुक्त प्रान्त के जमींदार दल ने तो ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी पारदी को संगठित करना प्रारम्भ कर दिया है। किसी गवाक में गवाह छुटारी के इस दल का संगठन करने पर विश्वास जा चुका है। जमींदार-दल के दूसरे प्रमुख सदस्य और संयुक्त प्रान्तीय सरकार के स्थानीय सदस्यों के सभी गवाह

सर मुहम्मद शुक के अपने पद की हस्तियत से प्रान्त के प्रभाव करते हुए जमींदार-दल का बड़े जोरों से प्रचार मुख कर दिया है। गमीना में स्थितिस्थलों कोई के अधिनस्थ-पद के उत्तर में उन्होंने जो भाष्य किया है, वह उन के अपने वे दल के संगठन के प्रचार को एक अच्छा उदाहरण है। नये शासन-विधान के मातहत अपने वाले चुनौतियों की चर्चा करते हुए वे कहते हैं—“अब तक तुम अपने को संगठित नहीं करते, जब तक तुम सभ्यता समझा पर गंभीरता से विचार नहीं करते, जबतक अपनी सब कठिनातियों को अपने सामने नहीं रख लेते, जब तक तुम उन विध्वंसकारी कार्यक्रमों का जो जनता को गुमराह करने वाले हिंदू दल, सुकायला करने के लिए, अपने को रुकड़ नहीं कर लेते, जबतक तुम उनकी परीक्षा करने, विवेक्षण करने और उनका प्रतिवाद करने की स्थिति में नहीं पहुँच जाते, (यह मोटो टाएप हमारा है) तब तक शक्ति प्राप्त करने में तुम्हें बहुत कठिनाई होगी।” मोटे टाएप में लिये गये शब्द स्पष्टपणे किसी दल का विरोध करने के लिये कहे गये हैं। और वह दल कौनसा है, यह कुछ भागे स्पष्ट हो जायगा। अपने भाष्य में वे आगे कहते हैं कि तुम से जो प्रतिभाएं कहते हैं कि तुम्हारे करो में सभी हो जायगी, उन प्रतिभाओं को वे कहाँ तक दूर कर सकेंगे, यह भी तुम्हें अभी से सोच देना पड़े। करो की इटान से स्थितिस्थिति-स्थिति का जिला कोई अपना काम कैसे करे। इस वाक्य में स्पष्ट यों दलों के क्रिस्स दल की और संकेत दिया गया है। कुछ दिन पूर्व संयुक्त प्रान्त की क्रिस्स कमिटी ने स्थानीय सदस्यों पर अधिकार करके कर कम कराने का कार्यक्रम रखा था। उस प्रान्त में साम्यवादी समाज वा और भी अधिक है, बर्निक में साम्यवादी भी दलका गवाह है। इस और प्रचार करते हुए गवाह साहब

ने कहा है—“हमें फासिज्म, नासिज्म और बोल्शेविज्म आदि की किलासक्तियों से प्रभावित नहीं होना चाहिये। ये आदर्श दल के जमींदारों और किसानों व पूँजीपतियों और मजदूरों में संघर्ष उत्पन्न कर देंगे।” स्पष्टतः ये शब्द क्रिस्स के विरोध में कहे गये हैं। किसानों के हित की भाषाज केवल क्रिस्स की ओर से उठ रही है। यस्तुतः गवाह साहब की विरवास है कि नये चुनौतियों में क्रिस्स का जोर अधिक रहेगा, लिखरल भाँवि अन्य कोई दल जोर न पकड़ सकेगा, इसलिए उसी के विरुद्ध हमें बाकायदा आंदोलन जारी कर दिया गया है।

क्रिस्स कार्यकर्ता इस ओर से उदासीन नहीं रहेंगे, यह हमारा विश्वास है। लेकिन हम उनकी सेवा में यह निवेदन कर देना आवश्यक समझते हैं कि विरोधी दल इस बार अपनी सभ्य शक्ति लेकर सुभाष के आकाश में उड़ना चाहता है। जमींदार के पास इस युद्ध के लिए पैसा बहुत है और गवाह की निरीक्षणी विज्ञान जमाता पर उसका हथका भी कम नहीं है। हम दोनों का प्रयोग वह आगामी सुभाष में पूरे जोर से करेगा। उसे यस्तुतः भय है कि क्रिस्स सदस्यों के बहुमत को अपने जमींदारों के झुल्लित हितों की रक्षा न हो सकेगी और उनका आज का वैभव, जो किसानों के पसीने की बर्सा से बना है, कायम न रह सकेगा। इसलिए वह पूरा जोर लगा कर अपने वैभव की रक्षा करना चाहता है।

इसलिये क्रिस्स कार्यकर्ताओं का भी कर्तव्य है कि वे आज के समय को स्वयं की बातों से न को कर अभी से निर्वाचन क्षेत्रों की तैयारी करने में लगा दें। उनके संगठन कार्य का अग्रगण्य अभी जल्दी से शुरू हो जाना चाहिये। विरोधी छेला भी क्यों न हो, उसकी उपेक्षा न करनी चाहिये। फिर जमींदारों के पास तो सत्ता और जन दोनों पर्याप्त दंडा हैं, जिसका प्रभाव सुभाष पर कम नहीं पड़ता।

इसलिये क्रिस्स नेताओं का कर्तव्य स्पष्ट है कि वे भी निर्वाचन क्षेत्रों की अभी से तैयारी करना शुरू करें, ताकि समय पर कठिनाता न हो।

## नया वायसराय

आखिर नये वायसराय का नाम घोषित कर ही दिया गया। लाई मिलिंगमो का नाम पहले से ही लगाया जा रहा था, इसलिये इस घोषणा से हमें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। बहुत संभवतः ये इस पद पर इस कारण नियुक्त किए गए हैं कि उपायद पार्लैमेटरी सिलेक्ट कमिटी के उनके अध्यक्ष रहने के कारण पारसीय स्थिति और नये शासन-विधान से वे अभिमानि परिचित हैं। इसलिये वे नय शासन-विधान को और सज्जनों की अपेक्षा अधिक क्रमशः तरीक फला सकेंगे, इसमें संदेह नहीं करना चाहिये। उपायद पार्लैमेटरी सिलेक्ट कमिटी की लम्बी बैठकें नये शासन-विधान की प्रत्येक धारा और उपधारा पर मूब विस्तार से विचार हुआ है। लाई मिलिंगमो एक प्रभु पर विद्वान के राजनैतिक दलों—और कासकर अनुदार और प्रतिगामी दलों के—बहिष्कार से लूख अच्छी तरह परिचित होगये हैं। नये शासन-विधान से परिवर्तित होने के कारण वे ऊई उठे भाले मति बना सकेंगे, वहाँ हम भाले-लीये के यह भी समझ लेना चाहिये कि ये उचित विराधी धर्मों में संशय न करेंगे। आखबार के निर्मित पाठकों में यह अवधि नहीं है कि उपायद सिलेक्ट कमिटी की वि-फासिरी ग्वाट पेपर का लिखरल से से कहीं उचितविरोधी थी। १९१९ को प्रस्तावना पर आग्रह, औपनिवेशिक स्वराज्य का नाम तक उड़ा देना, संघीय क्रमेस्वी और कौ-काय का प्रत्यक्ष सुभाष तथा गवर्नर जनरल का मेर भाग-विभाषी विरोधधिकांशों में वृद्धि भादि उस सिलेक्ट कमिटी की रिपोर्ट के विरोध का है, जिसके लाई मिलिंगमो प्रभाव थे। तब उन्ने बह आया

महो की जा सकतो कि वे उचित विराधी प्रयोग की उपेक्षा करते । यदि हम यह कहें कि मिशन के प्रति गोमी दल और अनुसर दल के प्रति जाग्रो का सम-व्यव उपकी शासन नीति होगी तो हम एसी काई मान न कहेंगे, जिसका सम्मान ही न हो । यह निश्चित है कि वे मि-लैंस-वरी के सरोचनों और सिलेक्ट कमेटो के सामने पेश की गई भारतीय दल की मांगों का विरोध है । इसल म उनका प्राप्ता नीति का कुछ अन्धा ज्ञ लगया जा सकता है ।

## सम्पादकीय विचार

सुखिम निर्वाचन सूत्रों से भी

सिचक प्रमुख कमिटी कार्य-कर्ता भी निश्चया न ठीक समय पर देश को और विरोधकर कमिटी को एक वेतापनी देकर बहुत उचित किया है । उनका कहना है कि प्राची शासन-निर्वाचन में कमिटी का और से कॉलेजों और असेम्बली का चुनाव लड़ा जायगा, यह निश्चित ही होगा है । कमिटी के कार्यकर्ता अभी से चुनाव को सकलता के लिए तैयारी और स शुद्ध कर देंगे और विभिन्न निर्वाचन सूत्रों में कुछ ही समय बाद चुनाव का प्रसिद्धान जोरों से शुरू होजायगा । आधुन सिचका कहते हैं कि कमिटी को केवल हिंदू निर्वाचन सूत्र में ही चुनाव का विपुल नहीं बनाया जायिगे । किन्तु मुस्लिम निर्वाचन सूत्रों में बोध और राष्ट्रीय विचार के प्रभावशाली मुसलमानों को भी खड़ा करना चाहिए । वस्तुतः उनकी सूचना बहुत महत्वपूर्ण है । दुर्भाग्य से यह सब है कि भारतीय मुस्लिम जनता पर सांसारिक नताओं का प्रथिक प्रभाव है । वे भारतीय जन कर देश की राजनीतिक समस्याओं पर विचार नहीं करते । असेम्बली के मत चुनाव में भी मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र में केवल एक मुसलमान लड़ा किया गया था । अन्य स्थानों में कमिटी मुसलमान असेम्बली पर नहीं लड़ें कि गय, सचक बहुत समझन नहीं करण था कि कमिटी कार्यकर्ताओं

को उन सूत्रों में विश्रव की प्राप्ता ही न थी या वे मुसलमान जनता को माराज नहीं करना चाहते थे । जब तक कमिटी मुस्लिम निर्वाचन सूत्रों पर अधिकार नहीं करती, तब तक वह कॉलेजों में कमिटी अपना प्रयोग शुरू नहीं कर सकती । सिच प्रभाव, सोमाप्रति और बगल में तो मुसलमान स्वस्थो का बहुत होना ही, अन्य प्रांतों में भी मुस्लिम सर्वो को सहायता का विना कुछ नहीं हो सकती । मुसलमानों का स्वतंत्र दल पर कमिटी को निर्भर नहीं रहना चाहिए । प्राची शासन विधान की कॉलेजों में सरकार अपना पूरा अधिकार लेना रहेगी, इसलिये उसका मुकाबला भी पूरी तैयारी के साथ होना चाहिए । वहाँ येम ही स्वस्थ जाने चायिगे, जो पारटो के नियमों में बंधे हुए हों । इसलिये कमिटी को इस बार अपना विचार प्रयोग स्पष्ट देना चाहिए । अपने को राष्ट्रीय कमिटी कहने वाले मुसलिय नेताओं का कर्तव्य भी स्पष्ट है । उन्हें चाहिए कि वे एक बार सावित्रा विजिता में हूँगे इसे मुसलिम जनता का सत्युत में हृदय में हृदय जोर से इसलिये सावित्रिक वातावरण न ऊपर के प्रायों । इस कार्य में प्राची वाली कठिनायाओं में उन्हें डरना न चाहिए । यदि इस समय उन्होंने अपना कर्तव्य पालन न किया, तो उनका यह देश विरोध ही होगा ।

२० मिनट म १५ फाउंड

५ अगस्त से १५ अगस्त तक सरकार ने १५ करोड़ रुपया देने के दिन निवत किया है । ५ अगस्त को १० बजे बंद होने और २० मिनट बाद सरकार को तार द्वारा सब स्थानों पर सूचना दे देना पड़ी कि कर्ज की रकम पूरी हो चुकी है और सब कर्ज नष्ट किया जायगा । यह कर्ज कौन जमाद सूत्र पर नहीं दिया गया था, कलकत्ता कोसवी सूत्र पर २० मिनट में सरकार को १५ करोड़ रुपया मिल गया । जहाँ यह भारत-सरकार की साज की उन्नति की सूचना देता है वहाँ यह इस बात का भी प्रमाण प्रमाण है कि आज देश की

व्यावसायिक व व्यापारिक वृत्ता कितनी बढाव है । विदेशों से लेकई प्रकार की चीनी बर्गो चीनों से भारतीय बाजार छाया हुआ है । यह किताबी प्रथिक व्यावसायिक उन्नति की प्रा-वश्यकता है, यह सभी जानते हैं, लेकिन आज हम करार है कि प्रतीपति अत्यन्त आवश्यक व्यवसायो व व्यापार में ऐसा लगाने से डरते हैं । क्या सरकार व्यावसायिक उन्नति को और विदेश रूप से ध्यान देगी ?

सब के दिल की बात

मैं जानता हू कि भारत बाकी क्या चाहते हैं । वे वैसी ही सरकार चाहते हैं, जैसी भी स्वयं के देश (इसल) में हैं । मद्रास के पुरो पियन एकोनियेशन की ओर से हुलाई गई समा में भी सत्युति ने भी जेम्स के एक सवाज का जवाब देते हुए सत्युत 'गम्ब' कहे थे । इस एक सत्युत में भी सत्यु-सुनि न प्रत्येक भारत वाली के दिल की बात कह रही है । मिडिय प्राधिकारी बार बार पूछते हैं कि प्राधिकारियों को सही कि तुम क्या चाहते हो । इसका जवाब भी सत्युति ने बहुत स्पष्ट रूपों में दे दिया है । जो मिडिय जनता अपने देश में अधिकार चाहती है, वही हम भी चाहते हैं । इसी में हमारा सब प्राणि प्रा गई हैं ।

मजदूर-नेताओं से

हर्ष की बात है कि भारतीय मजदूर-नेताओं को दोनो दल बर्ष में मिल गये हैं । अ-० सा-० द-०-नियम और नयनन ट्रेड-यूनियन के कार्य-कर्ताओं न मिल कर 'अखिल भारतीय व्यापक ट्रेडर बोर्ड' बनाया है । यह बोर्ड गांधीजी के अधिवेशन के समय पुण्य कर्ण दो दलों को एक करके भारतवर्ष के विभिन्न मजदूर आन्दोलन को फिर से संगठित करने का प्रयत्न करारा । हम इस प्रयत्न का स्वागत करते हैं । आज भारतीय मजदूरों की जो दुर्दशा है, उस का प्रधान कारण मजदूर-नेताओं की जागरूक में कुछ है । सम्पूर्ण की विप्लवी इङ्गलैंड का दुःखजनक समय इसी कारण हुआ था । मजदूरों को दल मिल गये हैं और हमें आशा है कि हम मजदूर आन्दोलन उन्नति करारा, इस समय पर एक निवेदन हम मजदूर नेताओं से प्रार्थना करते हैं । वह यह कि वे जहाँ मजदूरों की आर्थिक कठि-

नायों के लिये मिल कमिटी के कार्यवाहकों से उन की रक्षा करें' वहाँ म मजदूरों की सामाजिक कुरीतियों से मो रक्षा करने की ओर कम प्रयत्न न करें । हमारा यह अपन अनुभव के आधार पर एक निवेदन है कि मजदूरों की आर्थिक दुर्दशा का प्रधान कारण उनकी सामाजिक कुरीतियाँ तथा कुछ और कारण हैं । यदि हम मजदूरों का वास्तविक हित चाहते हैं, तो इस को और उपेक्षा रची मर मो न करनी चाहिए ।

प्रैम एव' की अवधि

मैंस आर्यनल की अवधि आगामी दिसम्बर में समाप्त हो जायगी, इस लिए सत्कार असेम्बली के प्राप्तामी अधिवेशन में प्रथमिक बढ़ान के लिये जोर देने का सवारी कर रही है आर्यनल असेम्बली पर एक ऐसी नब्दी तलवार है, जो उसे ईमानदारी से कुछ भी छिपाने में रोकती है । इस आर्यनल की बगल से सम्पादक न जनता के उ को को प्रकाश में ला सकता है और न देशहित को प्रतिबद्ध नीति को ही डाक तौर से प्रलोचना कर सकता है अतः प्रकाश जहाँ तक हो सके है— 'मजदूर' या प्रोस जैसे स्वतंत्र देश में ऐसा मैंने पक्ष एक भी मित्र बगल नहीं किया जो सत्कार । कम-वा का प्रकाश सम्मान में इसलिये पर विचार किया जायगा । हमें आशा है कि वहाँ उचितचित नीतिविरुद्ध इस के विरुद्ध प्रथम प्राप्ताप्रमाणों अधिवेशन को योजना अवश्य निमित्त करेगा कि सत्कार को बाधित किया जा सके कि वह आर्यनल की अवधि और न कहा सके ।

श्री मोहन लाल का त्याग

लखनऊ क कमिटी कार्यकर्ताओं न शान्तता समिति के अध्यक्ष में असेम्बली उम हो चुका था, यह पक्षों से प्राधिकृत नहीं है । समय भी मोहन-लाल स्वयंसेवक पक्ष पर न स्वागत समिति के अध्यक्षपद की उम्मीद जारी है अपने नाम प्राधिकृत किया है इससे हमें आशा करनी चायिगे कि नियति जरूर सुलभ जायगी । हम की मोहनलाल का इस त्याग के लिए अभिनन्दन करते हैं । वस्तुतः निज सत्या का गौरव को रक्षा हमारा जे-द्वर को उठाते के एवं के लिए परस्पर लड़कर उसकी प्रायतिष्ठा करने से एक कर को ही प्रदुर्योगिता नहीं हो सकती । श्री मोहनलाल न काँफला कार्यकर्ताओं के सामने एक आदर्श बना है । हम के लिये उन्हें प्रत्येक कमिटी बर्ष के देना ।

प्रशस्ति महासागर के पूर्वी  
तट पर चीन महाद्वीप तथा  
उस से उत्तर पश्चिम की ओर द  
मीन जपान की अक्षांश रेखा को बुरी  
दूर दिआमी डीपी समुद्र है। इन  
देशों पीनो देशों के सामन ही  
पश्चिमी तट पर कैमेरिया महाद्वीप  
है। दक्षिण में इस पश्चिमत ब्रिटे-  
नियों, जावो इत्यादि तथा अमज  
कश्चित्ता क्राष्ट्रोंके महाद्वीप  
म्यांमार् के इत्यादि द्वीप हैं। चीन  
के वाक्य में पूर्व क्रमात् मो है।  
चीन क उत्तर में मन्चूरिया से ऊपर  
साबरीरिया का पूर्वी विस्तार है,  
जिस पर सांघियत इस का क्रिय-  
कार है। इस प्रमत्त प्रशस्त महा-  
सागर के पूर्वी तट पर पीक्यांग  
जातिरा-जापान चीन क्रमात्  
है तथा दक्षिण पश्चिम तट पर  
मौरा जातिरा-बच्, अमज तथा  
कमेरिया हैं। इस प्रकार पश्चत  
प्रशस्त हो सकता है कि एक ओर  
अहां सक्च को पीको जातिरा क  
बीच सक्च की सम्भावना है वहां  
जातिरा की प्रमत्त सैय्युकि तथा  
वक्के द्वारा चीन महाद्वीप को  
कायरा को प्रमत्त म्हा बांर्याह  
के कारण पीत जातिरा में आ खूब  
समय म्हा हुआ है। यदि चीन  
को जपान दे न पूर्व दिश का  
थिक कोर सैनिक हटि स समाज  
सक्च ह त त प्रशस्ति महासागर स  
मेर-ह जातिरा क वक् क नद होतु  
की काया की आ सक्च की पीत  
वक् सम्भावना अभी बहुत दूर है।  
चीन में म्हु गान-क पतन का  
दूर वर्ण हा खुब। वहां जातिरा क  
की र्भावना भी हा खुब पर तु-  
चीन अती सत कम्पनी का तारिक  
कमोशिया स जुटकरा नही वा  
सक्च। इस के प्र-क प्रत्य में स  
प्रधान कारण की बात होता है  
कि हां सन्दातन की हुको मित्र  
तांग (मिचिगिट) पाट्रा चान  
की रा भीतिक को बांधि-  
क र्कत के वावहारिक तर्कों की  
कारणवार क्रियाना सक्च नहीं हो  
सकती।

जो बात वान में डा० सुन्यासेन  
की पार्टी जनक मिश्र या उनका  
होती है वहही बन-कछोरी में हमारा  
देश में महा मा रखी जा के पार्टी  
तथा उनके चिचारों द्वारा बोरार  
जाही है। म्यू राजस्थ के पतरक  
बाड़ी हुकी मिश्र-ग को बतव्य था  
कि कृषि प्रयाकी में सुधार किस जात  
बसुहाक में के है मी रक्षिया  
मासला हृषक जगती के महाजनी  
के कर्जों से बचावो जता दिविस्यो

## सुदूर पूर्व या प्रशान्त सागर की समस्याएं

( હે०—શ્રી મહાવત વિદ્યાલકાર )

को भी गई रियायतें शून्य २ वत्न कर सम्मान को जातीं महीन भवसाय प्रारम्भ किये जाते तथा कार्त्तिकी अक्षर बांझ भाषापर को तराकी भी जाती पर तुलस दायामें दुख नहीं बुझा। डॉ० सत्यनाथसेन को जीवनकाल में प्रजापति को प्रतिपेक्ष करी भक्ति जादू बरती रह्यो पर तुलनके दिव्यगत हो जाने पर जैसे तब्यथा शासन में योगस वेध शासन द्वारा केन्द्रीय सरकार को स्थापना की गई था वैसे ही योगस 'रिपब्लिकन सरकार को स्थापना की गई।

बीनी प्रजातन्त्र नवो की जाँझ  
 प्रथम महाविप्लव की श्रुति के शोका  
 अथा से धर्मो गीतो हो की कि  
 निष्ठ २ प्रांतो के स्थानीय शासको  
 न के श्रुती सुरक्षा के विवक्षित बलवा  
 कर विषो कोर अपन २ प्रांतो के  
 शासक बन गये। प्रांतीय शासक  
 की भावना के सध २ प्रभो मिमता  
 के व श्रुति रुगत पर भी व्यागहा  
 की कहरा बलवाकार की व्यावसाय  
 का विचार हो गया। शासक व्यावसाय  
 की श्रुति के हीन वर्ग के अर्थ हो  
 बीनी प्रजातन्त्र तथा उद्योगो नता  
 पानी १ वने कृष्य से निष्पन्न होगी।  
 शासक व्यावसाय की श्रुति के व हीन  
 बीन से अनसाधारण भी विद्याल  
 प्रगति का जू मुक्ता—जिस पर  
 साम्यवाद तथा यापार सच की क्षा  
 पो। इस प्रगति का व पर की क्षा  
 तथा क व सत्-त्वा व व्यावसाय  
 मन्त्र की श्रुति वने दतापो समाज  
 तथा देहोता का अर्थ हो सप्रो  
 वा पद वृद्धि प्रथम समाज था।  
 यदि बीन में इस प्रगति का उन्नति  
 निष्पत्ती कर १९०५ का विवक्षित  
 न होता (विषय में वांछनी श्रुति का  
 पद वृद्धि हवा हो) तो वैकी कला का  
 जाल भी की बीन से विपरीत मित्र  
 रिखा का कत हो जाया काम भी  
 इस क अनुकरण में साम्यवाद के पथ  
 की ओर अग्रसर हो जता ओर  
 कसता। परन्तु बीनी का प्रयोग कर  
 सक्ता। प्रभु बीनी १ प्रोपतिपर  
 ओर विदेशीय साम्यवादि का सा  
 जिश से बीनो की पुन यातन का तर्वा  
 ओर गुप्त-कला के उद्यम के

[illegible]

चीन की स्वतन्त्रता के इन सफ़र  
क दिना में यदि किसी को चोना  
स्वतन्त्रता की चिंता है तो उन्हें  
मजदूर किसानों के गोरिल्ला दर्ता का,

उह सोख की साम्यवादा फोरो की उम की पारोनी कुरा उमके नानाका को मिलके पीछा करके दुधवा नांग हाईसक यून न तक पहुच गया था इहो के दमन मे सम्पूर्ण विदेशीय साम्राज्यवाधिया का यह इतना प्रेम भाजन बना हुआ है। इस समय निम्नलेह जापान को चीन में गलतता मिलना विलक्षण है परन्तु साथ हा यह चीन में चीन मे रहना वाहिय के साम्यवादा रुस पर पडोस में रहत हुए चार प्रथमी शासन जिन मध्या का भूख प्रकाला काला तथा दुर्नान क प्रतिरिक्त राजनैतिक उठल पुथल के कारण महान सिल की सहन करत दुधवा इन सत्ताकार विचारों के प्राथमिक सन नहीं बच सकता। चीनी किसान समाज कार्य प्रथमी मार्ग कोर पारोनी को सगठन नहीं कर सका है असतु रिन्तु निम्नके भविष्य में वह अपन स्वयंयागियों को पाना जा रहा है। चीन क साम्यवादा के लिए सब बड़ा हा नयर है उह रुस तक भी। मोर जात प्रथ पौर्यागिक ग्यों में हो सकता है। यदि चीनी साम्यवाधिया को राजनैतिक साम्य में सफलता मिलत गयो तो चन्ता को बायकल कठिनाई का राजनैतिक सगठन का रूप द संकेते तो वह दिनु दूर नहीं जब जापान का अग्रजा आधिया को फल भोगने पर। चीन यदि जापान मे प्रथना मिस न बाहर क्केडन में समय होजायगा तब जापान को भी प्रथना कारिरिक आर्थिक कबध्दा क कारणों म पथ बाधित हा असो तरह कति क पर कसतर हावना पयगा औ चीनके शिशाल श्रम प आधिकारिक स दक सकता है। जापान को सामान्यवादी महाचार्य का किसी कदर साम्राज्य का क हास क दिना है—जसके सब सामा उपार्णों को क बाय कारिरिक प्रतिस्थायी कार विरग्य अपनी अस्ता की चरम सीमा पर पहुंचता जो रहा ह दुरा हाने का कसकर सिल सकता है। परन्तु उसक साथ २ उसकी विपरात दिशा में प्रकट उन्हाह कसक चह दिशामें है रह ह यदि चीन में अमजोबी शक्ति अपन को सुसंगठित करने में समर्थ होग तो सामाजिक हा उन्हाह रख सर पवित्रम की ओर ह गा कस यद् जापान चीना नेशनलिस्ट पार्ण के साथ मिल कर चीन पर अधिकार करने मे सफल ह गया तो मुह दिखी न किसी दिन शम्पा

( अथ पृष्ठ ५० पर )

( आय पृष्ठ २७ पर )



## बन्दी जीवन में राखी की याद

—:~\*~\*~:—

भय्या राखी पहनाती ह,  
बहिनी तंग यही डुलार।  
आज प्रबोधनक आदि बन कर,  
गिर गिर पड़ना है सो बार ॥  
तू बन्धन राखी का दे कर,  
लेती रक्षा का मनुमार।  
भाई बन कर मैं भी तारा,  
हरता था नित कष्ट अपार ॥

जियो 'जियो' है भय्या मोर-  
यह कह कर हस रंग मौन।  
तिलक बड़ाना हार पिनाना।  
बहिनी भूल सफा कौन ॥

मनुमबा पकवाना का मैं, देता था तुम को उपहार।  
उसको लेन को भी कब तुम, बहिना होती दुर्धी तय्यार ॥  
आज बेटा बन्धन में मैं हूँ, सहस्र मरी यह प्राचीर।  
कन तुन कन कुन बड़ी बजती, बंधी कलाई पर जंजीर ॥

एक आह बस उर में उठती,  
बहिना तुम को लेता डेर।  
फिर हो जाता मोन वहीं पर,  
चिन्तायें ऊट लेती घर ॥

स्वाधीन होकर आनां बाहर,  
तभी सजाना अपना वेध।  
बन्धन में है मुक्ति कहाँ यह,  
जन्म की का मुक्त को आदर ॥

बहिना अब तुम यही मनाओ,  
बन्दी का छूटे सब क्लेश।  
पराधीनता उग्र वेध में,  
कदापि रहे न उसक शेष ॥

— न लालच श्रीनिधि

—:~\*~\*~:—

## राखी

—:~\*~\*~:—

लाई हो बहिना तुम राखी,  
कैसे बुने बंधाऊँ मैं।  
क्योंकर हलका मान मान —;  
—सच्चा भैया कहलाऊँ मैं ॥

मही करो मैं बल-पौरव है,  
रक्षा को नारी-कुल की।  
फिर कैसे रक्षा-बन्धन  
इक द्रत में बंध जाऊँ मैं ॥

लज्जाओं के हाथ-पुल की;  
नित वध अकथ कहानो तुम।  
मही कौलता एक रंगों में;  
कायर सा बन जाऊँ मैं ॥

बिजब रहे शिष्ट दो शानों को,  
फुटी कौड़ी पास नहीं।  
तब कैय दिन बिय दृष्टिबा;  
राखी बहिन बंधाऊँ मैं ॥

तुम न दूँगी तार तार में,  
नेह-मरी वध आश्रये।  
किन्तु निराश्रम्य जीवन में,  
केत वे अपनाऊँ मैं ॥

राखी! ओ राखी! तुम ही तो,  
कह दो, क्या अचिन्ताई हूँ।  
कैन तुम्हें बंधाने का फिर,  
उस्ताइस दिखलाऊँ मैं ॥

किन्तु बहिन निस्वार्थ भाव में,  
हित चित ले राखी लाई।  
किस सुह से इनकार कदं अब,  
कैन विमुख फिराऊँ मैं ॥

हूँ 'कलेश' घर्म-संकट में,  
हो कैन उदार प्रभो।  
ऐम सबल करो कर जिन में,  
इस राखी बचवाऊँ मैं ॥

— 'कलेश'

—:~\*~\*~:—

## राखी

—:~\*~\*~:—

भारतीय सम्यता की याद थी जहाँ मैं जब,  
भाई थे धीर, जिन स्म-भान सदा राखी है।  
बहिनी का लाज बचे, चाहें प्राय जय भले,  
अब लो हतिहास राजपुत्र का साखी है ॥

उलटा जमाना, सोचा—'राखी-राखी या न राखी'  
चिन्ता है स्वरक्षा की हो भैया अब आखी है।  
मलो है, बुनी है - कढ़ि-आज की प्रचारित है,  
रक्षा का बन्धन—बीरगो न सही 'राखी' है।

— 'प्रेम'



श्री० चार्ल्स फ्रीर पंडित



आप स० गांधी से मिलने के बाद शीघ्र ही इंग्लैंड की रवाना होन जाते हैं।

जनरल प्रेजियानी



अरीका की ओर रवाना होने वाली इटैलियन सेनाओं के आप संवापित हैं।

मवाब बहावलपुर



आप बहुत सम्भवतः अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के वायस चांसलर बन गे।

श्री सदानन्द



फ्री प्रेस जनरल, नवशक्ति और नवभारत आपके पत्रों के पुनरुत्पादित करने पर आप विचार कर रहे हैं।

श्री कमचारेवो चनेपापाय



बनारस यूनिवर्सिटी में आपका आयोजन नहीं दिया गया।

तर हेगि हेग



आप यू० पी० के गवर्नर हैं और आठकल यू० पी० में दौरा कर रहे हैं।

श्री सुभाषचन्द्र बसु



आपने विदेशों में भारतीय प्रचार की ओर योजना रखी थी, वह आसानी से करनी ही है।

श्री रफीअहमद फिदवहा



आपने कहा है कि पद्मसूचक का प्रश्न क्रिस्टि ३ विदेशी आचिष्टन में पेश होना चाहिए।

श्री मुहम्मदबहादी भागव



आपने श्रीमद्वचन सोनी के विरुद्ध चुनाव की दखलास्त आपस में की है।

## - विशाल भारत और

## स्वा० सत्यदेव

( ले०—भी कदकचन्द्र विहार्य )

उस दिन कार्यवशान्त मैं मधुरी चला गया। हरि-द्वार की जल बाधुन मर पेट में गड़बड़ कर दी। मैंने सोचा कि चलो, मधुरी चल कर हवा बदल जाये। वहाँ 'लिखक पुस्तकालय' में मैंने सन् १९३४ का 'विशाल भारत' मेरे देखान में धाया। श्री स्वामी सत्यदेव जी के विन्द उस में लेख देख कर मैं विस्मित हो उठा। फिर जब 'चाप चक्रम' में सन्मार्थकीय अग्रिष्ठान की पराकोष्ठा देखी तो मुझे अत्यन्त दुःख तथा क्रोध हुआ। स्वामी सत्यदेव जी के विन्द इस प्रकार का लेख! जिस इति कि अपनी जन-भूमि वंशज प्रात की छुड़ कर आपन जावन का अष्ट-तम भाग संतुक्त-भान में शितावा और वहाँ हमारी माया की अपमान-कर 'हिन्दी, हिन्दु, हिन्दुस्तान' का भरोसा बुलबुल किया—यह भी उस वक, जब 'विशालभारत' का कर्ता था म था जो जिसन हिन्दी के सन्देश की मात्रा तक पहुँचाया—उस व्यक्त के विन्द इस प्रकार की बातें!

सवागच्छ यत् मित्र मे मँट हो जान पर मुझे पता लगा कि स्वामी जी भी यहाँ हैं। मैं फोन उठक पास पहुँचा। झड़ी हवाई हुई थी, स्वामी जी आपन कमर में जाट पर बैठे थे। मेरा भाषाज सुन कर वे प्रसन्न हो गये और प्रेम से मेरा स्वागत किया। मैं तो अस्तिमि या श्री। मैंने स्वामी जी से कहा—“यंत्रित बनारसीशेष चतुर्वेदी न आप क विन्द मैं के 'विशाल भारत' में बतरह विप उलगा है। क्या आप इसका कुछ उत्तर नहीं देंगे?” स्वामी जी मुस्कुरा कर बोले—“अरे, कोई लिखा करन वाला भी तो चाहिये। पण्डित बनारसीदास मर क्या बलिष्ठक है, यह तो मुझे अभी गुलि मालूम ही है, फिर वह उसका मूलान क्या कराना!” मैं स्वामी जी के साथ डाई वर्ष तक लिखर लेख लिखन का काम कर रहा हूँ। मुझे मालूम है कि पण्डित बनारसीदास जी नई देहली में स्वामी जी क निवास स्थान पर आय वे और तीन हफ्ते गृह क हिसाब म 'विशाल भारत' के लिए लेख भिज गये। मुझे यह भी मालूम है कि स्वामी जी न सन् १९३२ क 'विशाल भारत' में कई लेख लिखे थे और सन् १९३३ क जनवरी मास में 'उनका आचारी लेख 'विशाल भारत' में छपा था। वे लेख मर भारत क लिखे हुए थे और मैं यह भी जानता हूँ कि बार-बार तफ्ती

करन पर चतुर्वेदी जी ने स्वामी जी का परिभ्रमिक नहीं भेजा और बराबर टाकते रहे। मुझे यह भी मालूम है कि 'विशाल भारत' क कदाभी-घट की समालोचना के कारण बेचारे आचार्य बतुरमेव शास्त्री के चतुर्वेदी जी का मुक्त में कोषाभजन बनना पड़ा था और इसी वेष के कारण उनका 'इस्लाम का विषय' चतुर्वेदी जी की छपा में मिश्री में लिख गया। कदाभी घट की वह समालोचना मेरे हाथ की लिखी हुई थी, इस कारण मुझे चतुर्वेदी जी की अग्रानि कोषा का पूरा हाल मालूम था। उस समालोचना से हिन्दी-संसार में कान्ही बहल पड़ल रहे थे। बाद में 'भारत' के सन्मार्थक की बजह से जब चतुर्वेदी जी ने यह मालूम हुआ कि कदाभी-घट की समालोचना में स्वामी सत्यदेव जी का हाथ है, तो उनके बीच का पारो १२० दिनों तक लड़ा गया था। वे बदला लेना का मोक्ष दूढ़ रहे थे। बदला चढ़े का अवसर नहीं मिला क्योंकि स्वामी जी सन् १९३४ में जर्मनी चले गये।

जब स्वामी जी के जर्मनी से लौटन पर चतुर्वेदी जी ने बदला लेन के लिये लॉगर-संगिते कस लिखे हैं, लेकिन स्वामी जी तो इस प्रकार की लड़ाई के पक्षपाती नहीं हैं। वे साहित्य क्षेत्र में बसलोचना और गवर्नी फौजाने क नितास विराधी हैं। उनका मैं 'विशाल भारत' क मई के अंक में स्वामी जी पर किये गये आलोचों क कारणता-फहमी फील सकदी है, इसी कारण फतेह-बद हो कर मेन यह लेख 'अनुत्त' क पाठवर्ष के समुच्च रहन का निम्नत्व किया। मैंने स्वामी जी म कहा—“आप कुछ मत लिखिए। मैं 'विशाल भारत' के उस अंक में लिखी हुई बातों क विवरण में आप से प्रश्न करना जाना है”, हृषया आप उनके उत्तर टकर मुझे अनु-पुष्टित करें।” स्वामी जी बाते—“बहुत अच्छा।”

मर पास 'विशाल भारत' में किये गये आलोचों के नाट मौजूद थे, सो मैंने प्रश्न किया—“चतुर्वेदी

जी न आप पर कायरता का इह-आप लगाया है। उस लेख के उस भाग के लिए, जो आप ने पिछले साल बोध प्रस्थान करते समय लिखा था, वह माग यह है—“भारतवर्ष में रह कर यदि मैं अपने देश-वासियों के परम-वर्ष लेखिन अत्यन्त हासिक-विचार पक्षपाती के विन्द बालूंगा, तो लेन मेरे बहुत लिखाफू हो जायगे और दुष्ट लोग जनता के बड़का कर मेर पय में अधिक बाधाओं उपस्थित कर देंगे। अपने देश-वासियों से दूर रह कर जब मैं इसकी लिखा विराधी और लकर प्रमाद-मत्त की परिज्या उप-ऊंगा, तो इसकी लिखा पर पाप गुणा पढ़ा जल उठ सकेगा। निराग और ताजा विचारों क प्रभाव के कारण वह पुरानी कार्य-जालि विचार क गर्द में गिरी जा सकेगी। इसे बचाना हमारा कर्तव्य है।”

युरोप में रह कर काम करने का प्रस्ताव बड़ा कठिन पथ भी होगा कि कम्पनिज का जो बिच मोलन के अन्धक नवयुवकों में स्थायी और जल्दबाज बीहर फेला रहे हैं, उस की झुराही युरोप में बैठ कर अच्छी तरह से दिखाई जा सकेगी। इसके सन्मार्थ में आप क्या करते हैं?

स्वामी जी गम्भीर होकर बोले—“यदि मेरे देशवासी नवयुवक मेर इतना लिखन पर हाँ मेरी पिछली सारी मेवाओं को धूल कर मुझे कारर समझने लग जायेंगे, तो ऐसी जनता को मैं किसी प्रकार से बहादुरी नहीं लिखना सकता हूँ। नू कि मैं पाँच वर्ष के लिये जर्मनी जा रहा था, इस कारण मैंने यह सोचा कि जनता के लिये वाक् के विन्द तो मुझे लिखना ही है और अच्छी तरह से लिखना है। दूर रहन से जनता को शायद अधिक मोहा मरी बातों पर गामाभारता से विचार करने का मिटे। क्योंकि मैंने प्रायः देखा है कि विश्व में बैठे हुए प्रवासी-मायो के लेखों को उनके देशवासी बड़े गौर से पढ़ते हैं और उनके लेखों की अधिक कहर करते हैं। बल, इसी विचार से मैंने य वाक्प लिखे थे। चतुर्वेदी जी की कायरता और बहादुरी का

फैसला करने का मोक्ष तो मैंने विषा ही नहीं, क्योंकि कि मैं तो अब जनता क बीच में बैठ कर उन के लिखा विचारों की परिज्या पय देते प्रात में बैठ कर बहान लगा हूँ कि जहाँ जरा सो फल में सुरिया चल आती है। आहोरे मैं बैठ कर बुद्धिवाद का प्रचार करना, इस्लाम क विन्द अत्यन्त देना और पीर-वेगमरो के लिखा विचारों की उड़ दिखाना खालाजी का घर नहीं है। चतुर्वेदी जी आहोरे मे अन्धक प्रायःसमाजी अथवा सुखसमान जनता के विन्द जरा मुह बोल कर लिखाफू तो सही, तब उन्हें पीरक प्रमाद-मत्त का माय मालूम हो जाय। अथ विचारकों से मोत-मोत जोरोंते प्रात में मैंने बुद्धिवाद का पोषा ज्ञान का निम्नत्व किया है। मेरा कायरता प्रभाव बहादुरी का जैसा भावो समान करेगी।”

मैंने स्वामी जी से फिर पूछा—“यदि आप सन्मार्थक के विन्द लिख रहे हैं, इस लिए चतुर्वेदी जी तथा उनके विचार के लोगों को वह टिप्पणी करन को अपसर मिला है कि स्वामी जी शायद पूँजीपतियों के हृदये न चढ़ न पड़े। आप इस विषय में क्या कहते हैं?”

इस पर स्वामी जी खूब हँसे और कहने लगे—“चतुर्वेदी जी न अभी तक मेरे स्वभाव को नहीं पहचाना। मैं सत्य, केवल सत्य के लिये जाता हूँ। अथ से मुझे करीबन वाला भालमी अभी तक मेरी बजुरे” से नहीं गुजरता। मैं अपनी लेखनी के बल से अपना लारा कार्य कर रहा हूँ। नू कि मैंने योचन में ४ वर्ष रहना था और मुझे मालूम नहीं था कि मेरी आजा क इलाज में किताब उपया लख होगा, मैंने किसी परिबर्तित अवस्था का ज्ञान भा नहीं था, इस कारण मैंने प्रथम से साहायता क लिए प्रायन की थी। अथ नू कि मुझे स्वदेशी लौट जाने के कारणय अपने की मार नहीं है, इस लिए मैं निरिक्त हो कर अपना कार्य कर सकूँ। किसी को पूँजी-पति न प्रात तक मर विदेशगमन, आँखों क इलाज अथवा और किसी काम के लिय मुझे पाँच को या बहान करपा नहीं दिया। कलह बुद्ध-गया म मर के सन्मार्थ में मोयों-गेरहा करन क लिय सन् १९२२ में स्वामी विद्याभानुजी न मुझे आर्थिक सहायता दी थी, जिस के फलस्वरूप गया। कामिल क मोक्ष पर हमारा गुलामी के कारण” पुस्तक (ये पृष्ठ २० पर)

महिला-जगत्

## राखी की प्रेरणा प्रतिस्पर्धा नहीं, आदान प्रदान

सूना मीष था। तपन ग्रह भी है, किन्तु उसके साथ धरती की सुगन्धहीन आभा लगती हुई है। चिल्ला-कपकप हरियाली चहुँपोर छा रही है। गौर बोल रहे हैं और कीचड़ कुकड़ रही है। ऐसे रम्य और सुख-वातावरण में राखी का सुन्दर त्योहार हमारा सामान उपस्थित है।

बहन माई का सुन्दर पर्व दिन, कितनी पुरानी स्मृतियाँ को आहत कर रहा है !

एक बहन है और एक भाई ! बहन नवमीत-स्त्री स्त्रिय, कमल-की कोमल, लुई-लुई चिलन और लूझलुझी-सी उलूझ है। इसके बिबड़ भाई कर्कश, कठोर, उदास और गम्भीर हैं। बहन अपने केमल फरा से लुग का फलारा रङ्गा बचन भाई की ललित मुखा में बोध रही है और भाई कृतक भाव से उसे प्रशङ्ग करता हुआ, उसके बहने में अपने भारी कर्तव्य-पात्रन का ढङ्ग निरन्तर कर रहा है। दोनों ही सुखी हैं। दानों के मर्ता में एक विश्व आनन्द का आभास हो रहा है। मन की सारी कलुषतायें और दुःखान्धन मिटाकर, सशक आशु की भावना को चिस्मृत कर, दवाव और दासता के भावों से ऊँचे उठ कर, निश्चल और पवित्र नृत्त आनन्दों में वे एक-नल हो रहे हैं। उनको देखकर, कोमल सज्जनता है कि स्त्री पुरुष की दासी है और पुरुष स्त्री का स्वामी ?

बहन माई का यह स्नेह, एक-दूसरे के भावों का कैसा सुन्दर आनन्द प्रदान है ! राखी या रक्षा-बन्धन तो उन भावों का आनन्द-रत्न का बाण निरक्षण मान है, कस्तुर; ता स्त्री अपनी शुभ कामना-को के साथ पुरुष का अपनी शक्ति प्रदान करती है और पुरुष उस शक्ति में सशक्त बन कर रक्षा बन्धन को ग्रहण करने के रूप में इस बात का निश्चय करता है कि यह उन्मङ्गलता से नवता रहेगा और किसी क भी उसी प्रकार मुक्त जीवन व्यतीत करने में बाधक नहीं बनेगा, जसा कि वह स्वयं अपनी अतीत करना चाहता है। मतलब यह है कि स्त्रियों पर आधाकार करने या उन्हें कुदृष्टि से देखने का यह कभी साहस न करेगा, स्त्रियों के प्रति बहन को-सा निश्चल और सरल स्नेह भाव

रखेगा, यही नहीं, बल्कि जिस प्रकार अपनी बहन पर किसी क द्वारा कुदृष्टि पड़ना या आधाकार होना वह नहीं सह सकता उसी प्रकार बहन की जाति अर्थात् स्त्रियों का भी अनादर रखेगा और यह सब इसलिये नहीं कि की बलाहीन है और पुरुष बलवान बल्कि इसलिये कि पुरुष का जो बल है वह स्त्री के हो-त्योव और कष्ट सहन का फल रूप है। माता क त्याग से यह बना है बहन का शुभ कामना में उस सशक्त बनाया है और पत्नी की आत्म-विस्तृति एवं सेवा न उसे ऊँचा उठाया है, तब वह भी मर्ता क्यों न त्याग, स्मृति एवं सेवा की पूर्ण-रूप स्त्रियों क प्रति सज्जनता और कृतज्ञता में उपलब्ध कर्तव्य-भाव से प्रति हो ? इसी कर्तव्य भाव से प्रति हो, स्त्रियों का अमन चैन से रहने का आधादान दे, वह उनका रत्नक बना है। हम कहीं यह मूल न जाय, इसलिये मानो हर साल 'रक्षा-बन्धन' का महोत्सव मनाया जाता है।

इस प्रकार रक्षा-बन्धन' और कुल नहीं, भावों के आदान-प्रदान का एक सुन्दर और सुसंस्कृत बाण रूप है। व्यक्ति अभिन्न भाषा स्त्री पुरुष में यह सुन्दर सुलझ, पवित्र भावों का संचार करता हुआ हर साल इस बात की स्मृति करान आता है कि स्त्री-पुरुष में कोई आधा बंधा नहीं है, बल्कि भाई की तरह दोनों एक ही निष्ठा की स्मृति हैं, अल-बला परस्पर के आदान प्रदान से उनका न अपना कार्य विभाजन कर सकता है।

यही वह भावना है, जिसकी यदि हम मूर्तीभाति हृदयङ्गम कर लें तो स्त्री पुरुष में भाज जो श्रेष्ठ और दवाव की बाजी लग रही है उसका बड़ी लुणी के साथ अंत हो सकता है।

बही राखी की सर्वोच्च प्रेरणा है।

पुरुषों से प्रतिस्पर्धा के मार्ग पर आसक्त बहन, राखी को इस पवित्र पर्व दिन, क्या इस प्रेरणा पर कान देगी ?

—मुकुटचिहारी बर्मा

## नारी की उत्पत्ति

( ले०—डी० एफ० इन्सट्रु० बन )

हिन्दुआ क ब्रह्मा जब नारी की रचना करने बैठे, तब उन्होंने देखा कि उनका सारा मन्माहा पुरुष की रचना में ही समाज हो गया है कोई भी ऐसा ठोस पदार्थ बाकी नहीं बचा। अब तो ब्रह्मा जो बने चक्रार में पड़े कि क्या करें। फल में बहुत सोच विचार कर उन्होंने चन्द्रमा को गोलाही लताही की सक्तता ली, मर्ता-टहनियाँ से विमर्शना लिया, द्वावल का कम्पन लिया, मरुजल का लीपना ली पुरुषों का क्षितिम लिया पत्तियाँ की ताजगी ली, हाथी की सड़ का आकार लिया, हरगिये की हडि ली मनुष्यविश्व का परिवर्त का विषय कमा लिया धूर्य रमियाँ की प्रसन्नता ली काङ्गा ला, मर्ता का वदन लिया वायु का चक्कता ली शशक की मयानुता ली, मयूर का घमण्ड लिया कमल की कोमलता ली कल की कठोरता ला, शङ्ख का मयुरता ला बाघ की हुरता ला, अग्नि का ताप लिया, बर्त की डक ला, तल को घनवरन ट-ट ली, कोल की मनु कूक ली, कोर की मर्ताही ली और सारस की कपासरी ला। इन सब मर्ताही को शरत में डाल कूट पीस कर एक दल किया। और उसी म नारी की रचना करक ब्रह्मा ने उसे मनुष्य की दे दिया।

एक सलाह बाद मनुष्य लौट कर ब्रह्मा क पास आया, और बाला—मगवन, आपन जन्तु दिया है उसन तो मेरी जग्योनी बाला में डाल रक्की है। वह दिन भर गानातार गान करता रहती है मुझ इतना परधान किशो करता है कि खन करना मुश्किल है कमा अनेकल नहीं सुनना। उस पर हर वर्षी आनन्द तो पड़ता है, वह मेरा सारा समय ले लती है वह बिना बात का बात पर रता है बिना बात की बात पर मुस्क-राती है और हर वक्त बंकार रहता है। मैं उसके साथ नहीं रह सकता। आप ही ने उस दिया है, आप ही उन भाव से लीजिये।

ब्रह्मा न कहा, 'अच्छा' और उस ले लिया।

एक सप्ताह बात जाने पर फिर मनुष्य ब्रह्मा क पास पहुचा और कहने लगा—'मगवन'। जब म मेने उस जन्तु को लीगवा है तब स मुझे जावन बहुत पकाकी नीस जान पड़ता है। रह रह कर यद् धाती है कर्णाक वड मर लिय कसी प्रसन्न होकर नाचतो थी, कैसा मस्त होकर गानो थी, कमखियाँ से कैम प्यार से ताकतो थी। बह मर साव चलती थी मुक्त बिपट जाती थी। उसको हस म लगात पक, दर्शन में सोच्ये था, स्पर्श में कोमलता थी। मगवन' उस फिर मुझे लीजिये हाजिये।

ब्रह्मा न कहा अच्छा, और नारी को फिर मनुष्य को लोटा दिया।

केवल तीव्र ही दिन बोते कि मनुष्य फिर ब्रह्मा क पास आया, और बोला—मगवन मेरी सारम में कुल नहीं आता कि क्या होता है फिर भी आखिरकार इसी नताजे पर पहुचा है कि स्त्री मर लिये आनन्द का आधाता तुल का वसु है। उस आप सव फिर आपस ले लीजिये।

किन्तु ब्रह्मा न बिगाह कर कहा—निकल यहाँ म जाओ भाग। जैसे तुम से बने वेने मैं हूँ समझाण। मैं अय-याद तुमरी बात नहीं सुनूँगा।

हस्वर मनुष्य बाला—किन्तु मैं स्त्री के साथ नहीं रह सकता।

ब्रह्मा न उत्तर दिया—लेकिन तुम उसके बिना भी ता नहीं रह स-ते।

ब्रह्मा न यह कह मनुष्य का निकल बाहर किया और अपने काम में लग गया। मनुष्य लल लल म, न ता हवा के साथ ही रह सकता है और न उसके बिना ही फिर क्या कक ?

( विरोल भांत मे )

# -क्या स्त्रियां प्रजनन के लिये ही बनाई गई हैं ?

‘तीन एम० ए० पास स्त्रियां’ का उत्तर

(ले०—बी धर्मानन्द भाग्यवैद्यलाल, देहरादून)

‘अर्जुन’ के विगत साप्ताहिक संस्करण में म० स्नोही बन्धु मिश्रा रत्न श्री अश्विदेव गुप्त का—देहरादून की ‘तीन एम० ए० पास स्त्रियां’ के सम्बन्ध में—उन्हे उद्बोधन करते हुए—एक अद्भुत लेख छपा है। उसमें उच्चवर्गीय का स्वास्थ्य-दुःख का चरित्र बताया गया है।

परन्तु यह बात को देहरादून का कोन सामाजिकवर्गिक नहीं अलगा कि कृषिगत बहिनो का माता पिता का शारीरिक स्वास्थ्य उन बहिनों की अपेक्षा भी कहीं अधिक निरा दुःख है। मुझे उन तीन बहिनों के पिताओं के स्वास्थ्य के द्वाारा का अवसर हासिल है।

परन्तु य तीनों पिता किसी सुनिश्चितता के एम० ए० नहीं हैं। बहुत ही मासुली मित्रवत् इन्होंने प्रश्न किया है। जिस युग में इन्होंने बचपन और नौजवानी बिताई, वह युग सकारा, सरल और संघर्ष-रहित था। फिर भातार्थ की ऐसी कसमजोर शारीरिक कष्टधिया क्यों ? यहाँ कृषिजिव मर बन्धु का सिद्धांत कुछ स्पष्ट था मर्त्त में रह गया हो। तीनों पिताओं के कुर्बल छोट पिंजर हैं। पर आज देह में कोन ऐसा ‘यकि होना’ का चार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक लोभों में इन की प्रयत्न सेवाओं का प्रयत्न न हो। बड़े २ बलिष्ठ नौ-जवान कादमस्ता में इनकी पटु च को नगा पा सक है।

यद्यपि तीनों बहिन अपने माता-निर्गम में से उपरोक्त युग था दुःख विराजित में हासिल कृत्य हो तो कोई कारण समझ में नहीं आता कि मित्रवत्प्रत्यक्ष—‘आपका दिख छाटा है, दिमाग भा छाटा है, भाग पीछे रहते तो ठीक। एम० ए० बनन का बाध छोड़ दोजिव’ प्रभृति उपलब्धार्थ।

अथवा लेख के सम्बन्ध में कुछ मित्रया धारणा फैल गई है। वह लेख किन्हीं विशेष महिलाओं का लक्ष्य में रखकर नहीं लिखा गया था और न उससे किन्हीं व्यक्तियों को अपमानित करना ही इच्छा लक्षक की थी। उसमें तो एक बान उभोकर अपने विचारवाचक विषय पर ही विचार किया है। फिर भी यदि उसमें किसी को दुःख हुआ हो, ता हम समा-वाचना करते हैं।

—सं०

से उनका सहकार करे। इनका तो प्रमगवश दुःखा। अब आर्ये, उनके शेष लेख पर विचार करे।

विप्रावरजता के लेख में दो बातें मजर आती हैं। आप यह सिद्ध करना चाह रहे हैं कि ‘वर्तुल’ की शिष्टा विशेषकर धारमर्ग शिष्टा। मैं स्त्रियां को न उतरना चाहिये, यद्यपि इस निमित्त को आपने अपने लेख में अत्यन्त गीय कर दे दिया है। इस सम्बन्ध में जहाँ तक और जैसा आपका विचार है, उसमें मैं साराहो आन सहमत हूँ, परन्तु इनका और कहा देना चाहता हूँ कि यह शिष्टा-प्रणाली पुरवों के लिये भा उतनी ही विद्यार्थक है, जितनी कि स्त्रियों के लिये है। और पुरुषों के लिये भी आप हो के शर्तों में जरा सा परिवर्तन कर ‘इसका स्पष्ट नवीकृत प्रत्यक्ष पर क्यासे देखिये, खिर दर्द, योद्धे परिश्रम से भी थकन हो जाता है साथ ही ‘वीर्य-सन्तान’ भीमारी प्रसिद्धि को मिलती है।’

बकी भावाना म दोहारा जासकता है। इस प्रकार आप केवल स्त्रियों को ही ‘अभयान की रचना क विवद धार के उलट न चरिये’ का उपदेश कर द रहे हैं, जबकि हमारे मवयुवक भी मगवार्थ को रचना के विवद ‘बाक क उलट’ चल रहे हैं। आप ही क शर्तों में—नया धर्मजो शिष्टा क ‘इस सचर्य म समग्रता’—नच युवकों क—‘माये में’—भी—‘लुप्त’—न—‘निकलेगा’? स्मरय गमल के लिये कलुषा पुत्र्य और स्त्री दोनों के विविष कवता विवातक है, हम में प्रकृति न कोई विशेष भेद नहीं रखा।

आप क लेख क दूसरा शायद को, आपकी निम्न स्थापनायें बड़े जोर के साथ प्रष्ट कर रही हैं। आपकी स्थापनायें हैं:—

१—‘स्त्री का मस्तिक और हृदय दोनों’ पुरुषों में बजन में कम होते हैं।’ ‘अनको मारी दिमाग की जरूरत नहीं।’

२—स्त्रियों को तो प्रकृति न प्रजनन कार्य के लिए ‘ही’ बनाया है।’

३—‘यह कर आप सिवाय नीकरों के कुछ भी नहीं कर सकतीं।’

४—‘जि आप विवाह न करने

की पुन में आ जायें, जहाँ यह पुन आप को बढे, वहाँ आपके शरीर में पुन भी लग जायगी—यह सत्य है।’

अब हम क्रमशः, आप की स्थापनाओं को एक एक कर तुझा पर तोकते हैं:—

१—स्त्री का मस्तिक और हृदय दोनों पुरुषों से बजन में कम होते हैं, आपकी यह स्थापना साधारण स्थापना है।

यद्यपि स्त्रियां भीमसी एनी मेमेट्ट और देवी सरोजिनो आप और हम से बड़ा मस्तिक तथा बड़े हृदय रखती हैं, फिर भी मैं बहुत थोड़ी में आपक कहे हुए इस तथ्य को स्वीकार कर नेता हूँ। लेकिन आपका इस तथ्य में भ्रमो बढकर यह कहना, क्योंकि महिलाओं का मस्तिक प्रकृति में कम बज आर या छाटा बनाया है, इसलिये आप पुरुषों में भ्रमो बढन का यत्न न कीजिये।’ उतना ही ठीक है, जितना बड़े सिर और बड़े सिल वाले में परिचित (सुक्रण) इरिजम म—मुझे या आप को, इस दुनिया की रौद्र में पीछे रहन की सलाह देना है।

मुझे प्रतीत होता है—मर मित्र मूल रहे हैं, म आज से ५—६ शृणक पूर्वे प्राचलित मस्तिक को बजन सम्बन्धी ‘पूरी’ को बहुत अधिक महत्त्व द रहे हैं, यद्यपि आज क जीवन-शास्त्रियों के लिये वह ‘पूरी गरी मोता प्योरी है। यदि मेरे मित्र, पाब लोच बालसेर, पल, और जिना लोभलोभो प्रभृति जीवन-शास्त्रियों तथा पलबट्ट आदि प्रभृति मस्तिकविर्द क भाषुनिक अध्येण्या म परिचित होते तो संभव है, ये वेना लोभ न का साहस न करते। और तो और इस बजन-सम्बन्धी प्योरी क मस्तिक-गमल के आदि आचार्य (गाय) न भी इतनी प्रभावतो नहीं थी, जिन प्रभावतों में मरे बन्धु दे रहे हैं। आचार्यों की बात है इस विचार-स्वातन्त्र्य के युग में अष्टादशवीं फीसवी जन्मता के बाद प्राय करन वाले अर्जना क सर्वसर्वा हर हिटलर भा स्त्रियों को घर का मां विधान के लिय जिस युक्ति को प्रहय करन में संकोच कर गये, उस युक्ति का आश्रय नेकर मेरे मित्र स्त्रियों क विवद बन्धोकर आर्योन्मत्त जाति करना चाहते हैं। हिटलर न कर्ष स्त्रियों के लिए दूसरा कार्यवश चुना, इस सम्बन्ध में मुझे याही कुछ नहीं कहना है। हरक जानता है कि अर्जनी की नेकार

समस्या कितनी प्रबल थी, कर्ष-विभाजन द्वारा उन्का सामयिक हक कक्षा कितना अधोपयक था, जिसे हिटलर न किया।

मैं अपने बन्धु से पूछना हूँ क्या आप नहीं जानत कि अखिलतन श्वेत पुरुष का मस्तिक और हृदय मोखतन रवीय पुरुष क मस्तिक और हृदय से बड़ा बजनदार होता है। यह एक मभी भक्ति परिगमित सचारी है। उस अवस्था में क्या आप भी भारतीयों को यह सलाह देंगे कि आपका मस्तिक और हृदय छोटा है, भाइ आप श्वेतों के पीछे ही रहिये, आगे बढने का नाम न लीजिये।

एक और बात। मैं विष्णु-विष्णुति महात्मा गोपी के भात का कही बार खुरम निरीक्षण किया है। हृदय की शारीरिक परीक्षा को अवसर नहीं मिला, परन्तु मैं बहुत कुछ उस के परिभाषा क सम्बन्ध में कल्पना कर सकता हूँ। इधर मैं कुछ घोषों क सिर का घेरा अग्रयण महात्माजी से सचान-वृष्टा दाना, यद्यपि उसे कोई ‘बाइकोकेलस’ प्रभृति रोम नहीं है। इसी प्रकार हृदय का परिभाषा तथा बजन भी अवश्य उन से बड़े हैं। परन्तु मुझ में यतना सामर्थ्य नहीं कि किसी वन में ‘महात्माजी’ को कुछ घोषा के पांछे ही रहन के लिए बड़े, क्योंकि उन्का मस्तिक और हृदय उतन छोटा है।

मास्तिक बात यह है कि मस्तिक को उचनता उस क मित्र २ शक्ति-केन्द्रों क स्वाभाविक अथवा क्रियासज्जनित विकास पर निर्भर करते हैं, न कि उसक परिभाषा और बजन पर ही सब कुछ अवलम्बित है। चाहे पुरुष हो या स्त्री हो, दोनों क मस्तिकर्ष में साहचर्य वा विधान स्वाभाविक प्रतिभा क रूप में अग्रयक सलत अग्रयस द्वारा विकसित हो सकतें हैं। इस विकास क लिए मस्तिक क घटने बढन के विशेष आवश्यकता नहीं और न इसमें स्था या पुरुष का लेना-देना है।

मावल-पुत्रस्यार-विज्ञानार्थी को पुरुषों में, स्त्रियों का अग्रणी उपलब्ध के लिए प्राण अवसर के अनुसार, दक्षिण प्रभृति किन्हीं ही देशियों का नाम देन कीजिये। उधर रीत्यम-आधिकारों मादर करी को वैधानिक भी भी मात लीजिये।

(आगामी अंक में समाप्त)

## हमारी राष्ट्रवाणी

—11-11—

वह एक जमाता था कि हिन्दी दिल्ली और आगर के बाजारों में सर पर टेकरी लिये घूमती थी। कचन था, गरीबी थी, दुनियाँ निकट नहीं आती थी। सेन के होते चमकते थे, बीर साहिबों से लड़ा हुआ हाथी कुमला था, पर इस दुनिया का कचन में मुक्ति से ही अन्न का दान पकते थे। अन्न व्यास की मारी हिन्दी था तो पट के लिए कचन मुन्ती थी था सेनके के लिए सूखे लिनक। चिन्मी इमारतों की मि मित्र लिफ्टियाँ रह रह कर इस मि कारीरों पर चम्पा पाल उगलती थी। हिन्दी चौकरी चौकरी यदुना के कपड़ों में आकर बसती थी। आसमान नीला था सूरज में चमक था और तार जलमगत था पर बैया की सेहें आयाज सी वह क्या है यही उस समय इसका आ मन्त्रितन था।

कुछ दिनों के बाद दुनिया में यह देखा कि इस राजपुतान में आभय मित्र है। वहाँ के भाग और चारुय बने प्यास न सस का लालन पालन करते थे। यह कम्पे की राग दंठती थी, मोरों की कथाय याद करती थी और कपन स्वामी क इशार पर पासा मारताजा के दरबार में नूतुर लगा कर अन्न उठती थी। आँखों में नाचती प्यालों में अन्न कती कान में गुजती यह सदा कपन स्वामियों का सामन हाथ बांध खड़ी रहती थी। गुड़ की तरयारी में रणघाय बन कर गरजती थी। पशुओं के शिकार में राह बिखालती थी। शयन कक्ष में फुर्ली की पक्ष चियाँ बिलकती थी। इस तरह निज में तारे बिल्ला कर आचारान में यह कपन स्वामी माट के लिय मान बादी क कुछ ठुके लर जाती थी।

वह यह भासना कबोर जो इस रास्ते में मिले थे। उस समय सन्ध्या का अन्नकर राह देगा बिलालिनी एक जलामा में ताजे ताजे हुए फुर्ली पर पोरी हाथ रही थी। कवी प्रमय हाँ में ही सब कुछ समझ गया। उम्मेन इसके पैर क गुच्छ उतार बाले कचनवालों अलि था वीं और बल का काकर बने हुए बाँके का एक हलक भटके से खाल दिया। उनके साथ रह रह कर खिलारिनी कुछ ही दिनों में तपस्वीनी बनी और फिर बायी की नुतलाइट टूट गई। जिस समय उस महामा 'मुना और

साधो' के कहते से लग कर यह हिन्दी प्रेम का हाँ प्यार बनी। उस समय मन्दिर और मस्जिद में सवेरा हुआ। 'सर पर ककम लपट कलित का दूध दाली भक्ति का उम्माड़ कुछ ऐसा रहा कि कम्पेनी की बधा से 'पानी मीनन गया। तुलसी के राम कथाया वापिस होन भाव और 'सर क हरि कूजड़ियों में बाल उठ। नामक की बूझ हरी हुई। एक रस बमझ एक तार भनका और एक आग सुलगी। फिर मीरा के हाथ क जहर पर जो यह जाड़ की चर्नी की फिरी तो उस फालक के मधुर अमृत बनने में लगे।

( २ )

कई युगों के बाद इस चर्नो का अन्न बल २ कुरा में उलभ गया था। कोयल कुछ चुकी थी पपीहें देर के थकौर अमय में अयरा हा अयरा था। सो डर में भारेत्यु हरिचन्द्र जग की कम्पेर नगरा की राह पर था। चौकीर इस उमक प्राणी न गाना की लहरों पर चढ़ के पहले पहले राष्ट्रमार्ती के मन्दिर में दीप जलाया। य बार कृष्ण के सजा ये गानों के लालम था पर सब स पहले व स्वदेश की एक मुट्ठा धूल था जो प्राणियों को तरह बीलती थी और वीबाब का तरह सुनती थी।

इतन में १९वीं शताब्दी सामान हुई और आचार्य महाभारमसाद द्वितीय के बलिष्ठ कम्परा पर यह कर हिंदा न कयेग आँका। यज और बुनायन का घरा फल कर हिमालय सिन्धु बंगालुमारा और बाग नक आ गहुका और इस चर्ने में कानि क एक पक्षर से गा उठ। वय वह क्षा भूय बहला भावा बहला। हमारा शत्रुकि प्रम लवध प्रम भव। हमारी 'आह और लोह भोज फानुस क मड्डोस से बाहर न कला। हिन्दी अब किता नगर या जिल की वाली नहीं था कखिल देश की बाणी थी। हमारा भार दिल था तो दर्द की भावा बहो हिन्दी हमारा शरीर में आया बन कहा कूकनी थी। हिमालय में यह उठता था क 'आकुमारा म वह लहराना था सिन्धु में यह चौकती थी तो बामें यह नाचती थी। मन्दिर का प्रमाण करती मस्जिद का सामान करती, गिरजी में घुटने के बल उठ जाती थी। इनकी उलाह जवाला ने अब रासजालाय

अस हो चुकी थी। कानिगिरी की गोथा सुनान बाकी बाँसुरी अब ख उ खड़ हो चुकी थी। यह सवेरा हमारा यहाँ ससार को नात् में कृतता हुआ आया और सवेने हमारे इतिहास क पन्ने पन्ने भलक उठ थ। वृद्धाया अपन पचल आभ्रम में बेंडी सन्धास ले रहा थी और आमतों की वाली राजजीवन क प्रवेश द्वार पर भलक गान बना धूर खड़ा थी। भगवान बुद्ध भगवान महाभार भगवान बाल्मीकि और भगवान वद पास फिर एक बार इस भावों में बाल उठ थ। भन्तर खूबो पर केने बड़ा था इसन का व्यास कव चया था बार हमारे यहाँ सिन्धु कव आया था—य बात हमारी हिन्दा में बतला रहा थी। चीम की मुलभत जागिन का तथप और इगुलधत पारितन शालता हमारे कानों में कुछ कह रही थी। इसी बलवर पर तुलसी सूर और कबीर की याद हमारा दिन म फिर ताजा हो आई और मीरा के खिच घर घर में टगा। यह हिंदा और आमार क बाँसरी में मरनन वाली हिन्दा अब हमारा राष्ट्रवाणी था। भारतवर्ष से प्रम कवन बात हम हिन्दी कहते थे और हिन्दुस्तान से सुकभत खनन बात हम उर्दू क नाम म पुकारते थे।

( ३ )

आज हमें यह स्मरण करते हुए बड़ी लशी होती है कि हिन्दी राष्ट्र भाषा होन आ रहा है। इसमें बगलो का वैभव है गुजराती का सजीवन है मराठी की सुहृद है कम्पों की मधुरता है और सस्कृत का अन्न और है शहर न इसन श्रुतार किया। और उर्दू न इसक हाथ में मेंहरी लगाई है। यह आर्यों के स्वर में गाना है और अन्धायों की ताल में नाचता। हिन्दी सब राष्ट्रभाषा है। केवल हिन्दुओं की हा भाषा नहीं है। यह राष्टो के उपाय और पनन की समझा है। जलित जलित और फिरके फिरक के कम्पेर प्रम मचण करने की भावना हमें भरत बना रहा है। ज प्रति की दोकर स यह खड़ा हुई है और साधना के का लिनन से हमें रफ़्त मिली है और ससार क किसी कोन में रहिय आप का दर्द इस भाषा में शिवा नहीं रहेग। आपकी उर्गे न छाना 'मग इस महान बाणी को लू चुकी है। इसमें अब आग आया, आ मा परमात्मा का भर नहीं है। ये कवल यह है कि आग यह बसुंधरा के फरद तक को सूसन लगा है।

बोड़ो की शक्ति उल्ला का हम मूले नहीं हैं हमारा साहित्य जा

मत है। जेनियो की दिय भाषा राष्ट्रभाषा के शरार में घनमान है। पारसिया का सकाचरीलता हमारी निधि है। मुगलों की आम पर हम भरत है। पठानों की भाषा पर हिन्दा फरहा है। राष्ट्रभाषा हिन्दा न राग न्ला है कल समनो है और पाषा का प्यार किया है। रात बीतन ही नई टूटी है सत्र हो यह जथा है। यह आपकी प्रमया वषा है और हिन्दुस्तान का राष्ट्रभाषा है।

आज के इन नवानुयुग क लुन बले आनम में हिन्दी की खिडियाँ चारी भर गली हैं। फल में मीरा और कानों में फल की 'मन का भा इन अन्न जरा न सको रही है। अब फल खिलन हैं किता की तन्वार न कर। मीर गुजार करत हैं किता क प्रमयय स्वर में। तामारों के लिनन बान हमार कवि आज समुद्र का लहरों का शान 'मकर उठे मु ह म फुलन ह। सन्धु चर्रा नाग क मलो का गुगुगलि क 'गड कर उठीं रमलो की बच कर रोग कमान बाल झल्ला का दोनना हो आज हमारा कविता की कविता है। कहा हिन्दी खिलन बाल मी अब बलक उठ है। इसका की स्वाही लू को है। काहें आत्स्य क कलम डुबी रहा है। किता का आँका म दीनक का भाग है और काहि हिन्दी का बतलाता है। क कानिगिरी आज हमें बतलाता है कि दुनिया यह भासलस है जहाँ सदा पाप म गुवा और पारियों से प्रम न होना चाहिय। जीवन सरय का इस रगमयि में मानना का आनम नल वह लकार है जा गुप, वरा और शायत म कमा न मिन् व मेंहरी म खलन वाली उ गलिया अब सुत क डारि म उलभना है। अब क पायक उलम क गीत गीत है उनके गीतों म एक फा मा क बवर्ग विख्या मा को तथप हाती है। य रीत है दुनरी क लिय और हसन है तारार क लिय। अब हिन्दी क पास अपना महान भाषा है अपना धारवर्ण्य साहित्य है और यह सरया भाव की सूखा है।

इस क पास जो शब्दो का कमा है वह अत्रिक विन न्क न सगना। आप क सनहाद क श उ पुन हा इसक चरगा में य उ पुन की बषा हागा। इस का आग कर आप को छाक कर अन्नय जो नहीं सकता। किस्सा मरा मरा क रम कड़ा था भर म मग ना के टूट हकना न इसका लिय साधा करती है। आज बीसवीं शताब्दी का सगरा है और

राष्ट्र भाषा हिन्दी मरीयो क लिय दया, धर्मियो क लिय खदःभावना राजा महाराजो के लिय खलाह और मनुष्य मात्र क लिय प्रेम का संदेश लेकर आया क पास आई है। आप का घर हो इस का घर है और यह सब म पहले आपन घर में बजाता कर दुनिया की मस्जिदों में दीपक जलायागी। किन्तु इसको मतलब यह नहीं कि हमारे सामन आदर्श नहीं हैं। हमें असो कंटों पर सरपट दोड़ना है और ठोकर खानी है। पवित्र की भोग भिन्ना और पूर्व की अहममशता म हमें बचना है, हमें धर्म परीक्षा देना है। इस लिय राष्ट्र भाषा आपनो राह पर अगमी न रहे। यद्यपि दक्षिण में मद्रास के आस-पास हमारी प्रेम-मयी भाषी पूँज उठी है, तथापि बंगला और उर्दू में कुछ सारें रोमे हैं, जो हमारी नीयत पर अभी संदेह करते हैं। इस लिय हमारा प्रेम की पुचकार कुछ ऐसी मझुर होनी चाहिय कि बन भर के और धिरक उठें। यह आज का रक्षा-सहा विमोह कल न रेशा और पसों हमारी कुलवारियों में विश्व की मंगल कामनाएं हंस उठं गी।

(४)

हिन्दी का जोवन 'राष्ट्र-भाषा' की उपाधि प्रदण करन तक ही सीमित नहीं है। इन सभी योद्धे दिनों में बहुत कुछ करना है। आपा एक प्रेमवृक्ष है, संगठन की आधारभूतिका है। इसी प्रेम-वृक्ष में हमें विश्व को नहीं, तो उसके एक बड़े टुकड़े को बाँचना है।

कहत हैं हिन्दुस्तान गांधी में रहता है। यदि यह सत्य है तो फिर हिन्दी शहरों को धर्म-लाभों में कब तक रहेगी? इसे सार देश का भूभाग करना चाहिये। इसका भार हमारे ही सवाल निर्णय कर्ता पर है। हिन्दी गाँव गाँव घूम, सन बन फिर और घर घर बस। यह गाँव के किसानों को दान काटन का समय बतलाय, काले हाल मयों की सूचना दे और जब उनकी धाँकों के सामन इरी-भरी फनलें खड़ा हो तब उनकी हर्ष-बाणी बन कर पूँज उठ। उनकी जातीय-प्राधान्य, सामाजिक विचार और धार्मिक चचा—इसा भाषा में हो। यह उनक पखोन की बूँद हो और हृत्पित्त नयनों की जल धारा हो। इलाहोबाद हिन्दी पढ़ले और कबकला हिन्दी बाक ले तो कोई यही रियासत खड़ी नहीं हो जाती। जबरन है, इस की कि पैसीस कोटि कउठ एक स्वर में गाए, एक स्वर

में रोए। हिन्दी के खजाने में 'कैलाश' का गौरव, 'राजमहल' की सिसकी और 'चिन्ता' की याद होनी चाहिये। यहाँ 'गंगा' की रसी चमके, 'यमुना' की बुधि लहराए और 'नर्मदा' आपन बाँव में पचरो की घोती रहे। बसों के मस्जिर फिलन ऊँचे है, अजन्ता की गुफाओं की रेखाओं में किस की आभा खड़ी है और बुझ गया के 'मोचिस्तव' की शाखायें कहीं कहीं

कीड़ी हैं—इन सारी कीर्तियों को हम आपनो राष्ट्र भाषा से जान सकें। आंगन को मोती मस्जिद, अमृतसर के स्वर्णमन्दिर और नपाक के पट्टपलिनोष को राष्ट्रभाषा अभी भी याद करेगी तो कोई बहुत देर नहीं हुई है। मिथुरा काज जिल ससय हमारी महान संस्कृति को आपहरवा कर ले जा रहा था उस समय उस का एक छोटा सा टुकड़ा आज का हँसता हुआ 'नेपाल' है। उसके

उन्मुक्त संगीत से अब हमारी हिन्दी झलक नहीं रह सकती। गंगा और बागमती में कोई बहुत फलर नहीं है। प्र म ही रेशकर है, रेशकर ही प्रेम है और राष्ट्रभाषा हिन्दी इसी पुख प्रेम की परिभाषा है।

● यह भाषा मिला १५ जून को हिमाचल-हिन्दी-मयन वाणिज्य के सतुर्य सर्पिःकोषक के अवसर पर श्री गणेशसिंह नैपाछी ने दिया था।

## ट्राली बसों, ट्रामकारों तथा बसों से याता कीजिये

यह अत्यन्त सुखद तथा साफ गाड़ियां हैं  
डी० ई०एस० और टी० कम्पनी लि०

ट्राली बसों से—

बिरला मिल से पहाड़गंज की, सन्धीमयठी, पुल मिठाई और कुतुबरोड होती हुई।

दो पैरे फो मील की दर से।

ट्रामकारों से—

सदरबाजार, जामा मस्जिद और सन्धीमयठी जामा मस्जिद।

ग्रीष्म-ऋतु के सस्ते भाड़े पर

बसो से—

(१) नई दिन्नों और काश्मीरी दरवाजे के बीच में। अजवाँ जवाँ हेमिस्टन रोड, कबास रोड, बन-बागान रोड, (लाहौरी दरवाजा) गासनरोड, अजमेरी दरवाजा, मिटो रोड, कनाट ड्रेस, लेडो हाईवे रोड- और गोल मार्केट होती हुई, नई दिन्नों पोस्ट आफिस तक।

(२) फलवार और तोमारपुर क मय में। काङ्ग्रा पुल, कबीररोड, लोपियन रोड, काश्मीरी दरवाजा, अलापुर रोड, और साल जंक्शन होती हुई तिमारपुर तक।

(३) बाड़ा हिन्दूरोड (सदरदरमिनस) से कौलबाग तक। इस प्रकार नय निवासस्थान प्राचीन नगर से मिल जाते हैं।

ममय तथा किराये की तालिकायें कम्पनी के कार्यालय से मंगाने पर मिल सकती हैं।

निजी यात्राओं के लिये सास बसें खास तौर पर दी जाती हैं।

सर्व प्रकार की वृत्त इत्यादि से आप बचे रहेंगे।

(दस्तखत) एच० जे० डाङ्गिन  
जनरल मैनेजर।

( एक देव में प्राणे )

फिर श्यामा की ओर देखकर कहा 'श्यामा, देखा, तुम्हारी माँ इस बात को नहीं समझती, कारखाने वाले अपने मजदूरों का लक्ष्मीपति में मग्न किया करते हैं, उस डेन में कोई बच्चा नहीं'।

श्यामा ने समझा कि माँ सच-सच बूढ़ी होगी। इतना भी नहीं समझती कि मजदूरों की मदद कारखाने वाले किया ही करते हैं। उसे अस्वभा ने माँ से अधिक अपसम्यक् समझा, वह बात भी उसे अच्छी लगी। उसने अस्वभा की बात का कोई उत्तर न देन हुए माँ से कहा 'माँ, कारखाने की ओर मैं मग्न डेन में कोई हूँ नहीं। यह तो हमारी मेहनत का ही इनाम है।'।

माँ चुप हो गई। वह श्यामा की अपन न समझदार मसमती थी। बुढ़ापे में मोली मातायें अपने बच्चों की कमबख्तारी पर प्रायः अप्रयत्न विचारण करने लगती हैं। सुखदेई भी मोली माता थी। अस्वभा न प्राणे कह कर '०' का मोट श्यामा के हाथ में दे दिया।

श्यामा न हतबला पर नेत्रों में उसका हाथ देखा, ओर फिर देखा कि अँकड़ो बजाने लगी।

अस्वभा फिर डालचाल व्यापक करना की सुझाव देकर, उम्रत की बालों से श्यामा का ओर देखा। बुढ़ा वहाँ न बसा गया।

( क )

सुखदे मिल में काम हो चुकन पर उमरद सीधा सुखदे के घर पहुँचा। सुखदेवा की शरीर में कई स्थानों पर पीड़ा विद्यमान थी। श्यामा घर की फाँड़ बुढ़ार कर वृद्धों में आग सुझान का यत्न कर रही थी। उमरद न बाहिर न दरवाजा कलकटायन, तो श्यामा न पछा "कौन है ? उमरद न जवाब दिया "मे ह उमरदेसिंह"। श्यामा उमरद की ता पहिचान गई थी, परन्तु मान न प्रकटित थी। बोली "कौन उमरदेसिंह ? उमरद न कहा नहीं आँ कहा तुम लोगों का घर पहुँचा गया था।

जब से उमरद वहाँ से गया, श्यामा के दिल में तब से बराबर उसका एक अस्पष्ट जो चित्र बना रह रहा है। वह रह कर उसका स्मरण करता था। कारखाने के द्वार पर का खराब हथ, वस्त्रधारों की शराहत, उमरद की बीच में कुदमा, ओर गं बंदी की शिका करना, फिर वह तब एक पलाना, ओर वहाँ सहायतपूर्व पूर्ण स्पर्श हाथ में श्यामा की देलना— यह सब बानें बल विजो की घरद

धारावाही उपन्यास

## अपराधी कौन ?

( डे—भी देव )

उमरद का धनीत आवन बहुत बड़ा नहीं है। उसकी दूध माता ने ही उसे पाला था। सिद्धा न पाकर गली के कुछ शराती लहकों की सगत में शराते करमा सीख गया था। एक दिन फेरी बाते की भारिया लूटन के कारण पुलिस न उसे गिरफ्तार कर लिया। उसे जेल में भी तीन मास रहना पड़ा। वहाँ बतों का कठोर दृष्ट भी मिला। जब जेल से वह रिहा हुआ, उसकी माँ मर गया थी। अपने एक दोस्त बराह के बार की मदद न वह मिल में भरता होगया, जहाँ अपने लगन ओर परिश्रम में वह लाहन जाकर होगया।

कुछ मजदूर सुकरी श्यामा न कुछ मुयदे शराहत करने लगे। लेकिन उमरद के बीच में पड़न में वे भाग गये। उमरद उसकी पायल माँ को उसक घर पहुँचा गो। श्यामा पर आसक मिल का लखनवा मिल मरुका भी सहायतपूर्व विधान के लिए घर पहुँचा ओर उसकी माँ को १०) ५० देन लगा।

—सम्पादक

श्यामा के हृदय पट पर चूष जानी थीं ओर वह उमरद की ओर बिखल सी होकर वराजे का ओर देखती, ओर लम्बा हाँस ठेकर रह जाती। ऐसी अनुभव उसन अपने जीवन में पहली ही बार किया था। हो साल तक सुहृदों रही ओर पति का प्रेम भी गया, परन्तु वह प्राण धन का उपभोग था। अभाव ओर शायद अभाव परन्तु मनवादी वस्तु के हितों जो एक ओर गण्ठा पेटा होतो हैं, वह तो गनना ओर घमटा में अपना साथी नहीं रहतो। श्यामा भी अपने हृदय में एक तीव्र ओर वनी धरणीता का अनुभव कर रही थी।

परन्तु उमरद का शून सुन कर श्यामा सनच सी रह गई। कुछ न बोल सकी। माँ जाग रही थी। उस न लोच स्वर में श्यामा न कहा 'ओर सुनती नहीं है क्या' वराजे पर कल बाला बाढ़ गया है। दर बाजा बर्षा नहीं जोतती।' इस न श्यामा को सकोन तोड़ दिया। वह अस्पष्ट आँखें दरवाजे का फला कोलती हुई मोली लखन लो बन्द नहीं था आप आ क्या नहीं गये ?

उमरद अन्धर था गया। उसके दुख की वरा भी श्यामा जैसे ही थी। वह भी अपने हृदय को श्यामा से शून्य नहीं था सखा था। उठने बैठने ओर काम करते, सभी समय एक चूँचि, चूँचरित सखले मोल वेहर की लोई उमरद की आँखों क

आगे धूमती रही थी। वगेर क मागे में भेद दरना हो था कि जहाँ श्यामा के चिन्तन में उत्सुकता के साथ मय था सखा मिला हुआ था, वहाँ उमरद का चिन्तन हड़ उत्सुकता से मिला था।

उमरद की दिल अन्धर बात ही श्यामा के चहरे पर पड़ी। आज उस वह वेहरा कल से भी अचिक सुनर ओर आसक प्रतीत हुआ। कल चहरे पर गव् थी बाल बिखर हुए य ओर कपरे अस्त-वस्त थे। आज साधनका दगा से श्यामा बहुत ही मनी मालूम होती थी। श्यामा न भी उमरद की देखा। उसक दिल की क्या हो रहा था, उसे वह स्वय नहीं जानता था। उसे केवल इतना ही अनुभव हो रहा था कि वह उमरद की ओर गिल्लर देखा चाहती है, पर देख नहीं सकती। मोचे आँखें किय ही उसने कहा—

"भाइय, बैठिये मैं आप को बहुत बह करती थी।"

उमरद न सुखदेई की आँख के सिद्धान पर हृदय दक लकडा के सन्धूक पर बैठन हुए कहा।

"मैं भी तो माँ को कल न याद कर रहा हूँ। एक मिनट दूर के लिय मैं आप लोगो का भान दिल न नहीं हट सका। हा—तो माँ, तुम्हारा दर्द कैसा है ?"

"धमो तो वैसा ही है, बड़ा। बुढ़ा शरीर उदरा पुरानी इच्छों में जान ही कियती है ? मला हो तेरा,

जो तू न हमारी सुध तो ली नहीं तो हम लोगो की ओर कैसा है ?"

"ऐसा न कहाँ माँ, तुम शायद डो ठीक हो आभायो। आज मैं मालिका के लिए एक व्वा भी लेता आया हूँ। इसक मलने से दर्द जाता रहेगा, यह कहत हुए उमरद न कोट का जेब से एक शोशा निकालकर श्यामा के हाथ में दे दा। श्यामा ने लू ली। इस लन दन में शयन से श्यामा के शरीर न बिजली सी कर्वा होड गई, हम बह था समझ न सकी।

धोखा नेर तक उमरद सुखदेई में बाँते करता रहा। श्यामा देखन में तो घर क कामकाज में लग गई, परन्तु उसका भवान उमरद का ओर हा लगा था।

वह न वैसा ही हुई भी देख रहा थी, न सुनती हुई भी सुन रही थी। उमरद सुखदेई से कह रहा था—

"देखा माँ, मुझ से कोई बात न्यून न करे। क्या मुझे मानस नहीं कि तुम लोग किस तरीके से गुजारा कर रही हो। तुम्हारा काम कैसे चलागा। तुम्हें कब क लिये मुझ से डेन में रितराज न करना चाहिये। मुझे तुम अपना ही दादा समझो।"

सुखदेई न उतर दिया।

"बड़ा, ईश्वर तरा मला कर। व न मुझे माँ हलकर मर दिल को डारस दिया। मैं गरीब हूँ। मेरा भी अप्रम की बुझिया है। बचारी न वो दिन की चाँदी देवी थी, फिर अन्धरी रात होगी। जब न श्यामा क बचा परलोका गय, वब न मुझे कोई हिन्दू न मिला। तर प्रेम न एक हा दिन में मेरा दिल मोह लिया है। बटा, मैं तुम्हें सकोच क्यों करूँ ? कब मैं अपना डेन में इकाकर कर दिया था, क्यों क इस गरीबी में भी मैं कि कही दूसर क सामन हाथ नहीं पसारा पर प्रम तो मैं तुम्हें दूसरा नहीं समझती। तू मुझे माँ कहा है तो मैं भी दादा जानती हूँ।"

"तब तो तुम्हें बच क लिय कुछ लन न पतराज न होना ?"

"पर बटा, कल शाय, वह जो मिल का पारसो बाढ़ है, बह बोया था, ओर १०) का मोट दे गया था। वह मर पास वैसा क पसा चपा है। वह कहता था कि १०) मालिक न भेजे हैं। बरा श्यामा दिखाना वह मोट।"

पारसी बाढ़ क नाम पर उमरद क साथ पर त्पारी बड़ गई।

( क्रमशः )



## विद्यार्थियों की फैशनपरस्ती

( ले. - आचार्य प्र० च० राय )

तब विद्यार्थी और अरबों

**भा**रत में कालेज क विद्यार्थी को

क्रोसलम चालीस-पचास रुपये मासिक खर्च के लिए दिये जाते हैं। पठित हान क कारण उमे एक विशिष्ट स्थिति स्थापनकर उसका साथ बैसा हो बर्बाद किया जाता है। उसक माता-पिता धनप्राप्त को जोखन की प्रभावपूर्ण वस्तुओं में भी बचित रखकर वा धन घर द्वार वा जमीन का गिरवी रखकर भी उम कर्च के लिए प्रति मास रुपये बचने रहने और खर्च कर क छोट न छोट काम करत रहते हैं। जब बुद्धि का वित होत है, माता पिता को धारा इन युवकों को तपोकथित मालिक कार्य करने को तो कुछ रहता नहीं। सलिय वे गण्ड उड़ान, लास खाने का कोई नाटक खेलन की व्यवस्था करन में ही अपने मूल्यवान् समय नष्ट कर देत है वा दोषाकर्षक वाद लूब सोन में विन बिता दिया करत है। परन्तु प्राचीन काल में भारत क विद्यार्थियों को भा अभ में गुरु मा शिष्या प्राप्त करने के समय ही का मन्त्रा करनी पड़ती, ई धन रक्षण करना पड़ता और खी क काम की दक्षता करनी पड़ती थी—यौबे में यो समर्थि क उस समय विद्यार्थी का शिष्या प्राप्त क लिए उपायन करना पड़ता था।

विद्यार्थियों का अन्धग्राह्य खर्च

होस्टल और खासकर व होस्टल को गहनगण्य क प्रथमर्थ में है, बहुशया विद्यार्थी माव क प्रसार के खास स्थान बनन लगे हैं। वह बुद्धि धनी, जब लार्ड हार्डिन्ग ने क लकनऊ क प्रायश्चालन का करीब पन्द्रह लाख रुपये देम शाहा होस्टल बनवाने के लिए दिय ग जिन में आधुनिक सम्पदा जीवन क सर्वां दुःखीता को लम्बा यो यणीत उपरान्ति निश्चरन्ध्र प्राप्यन्त उत्तम विचार म हो बैसा किया था। इन होस्टल में रहने वाक विद्यार्थी का पेंतालीस रुपये महान से कम में काम ही नहीं चल सकता। प्रचुरिष्क विद्यार्थी तो इसम भी कदा अधिक खर्च किया करत हैं। लकनऊ में रहने वाला एक कतिपय मित्र मुझे यह विचार दि लात है कि पञ्जाब में और लाहोर

गहर में उन्हें अपने खर्चों को पढान में को रुपये महाने तक बन्द कर इससे भी अधिक खर्च करना पड़ता है और वे विद्यार्थी अपने माता-पिता की खाल नोचते हैं। मैं स्वयं कई बार बर्बाद गया हूँ और उनक कथन को सत्य बता सकता हूँ। हमारे प्रचुरिष्क विद्यार्थी क दिवांग को सामन केमिज और आक्सफोर्ड होते हैं और व इस देश में उसको स्थापित करना चाहते हैं। विद्यार्थियों क पास टेनिस खेलन क लिए ज्वेस और सुधन होने चाहिये और क्रिकेट क लिए फ्लाटन का सूट चाहिये हो। उनकी गृह गारा भी में बहुत अधिक खर्च होजात है। सब युवज तो एम नाथक वातावरण में ललक प्रत्येक विद्यार्थी विदेशी लुटेरा का प्रकारक बन जाता है।

युनिवर्सिटी स हानि

पाँच वर्ष पहले जब मैं परिस में था, जेक करन पर मान्दु ह्वा क बर्बा पोलैड तथा निकट क अन्य गरा क हजारा विद्यार्थी हैं जो हतन यौबे खर्च में पदते और रहत हैं, जिन जानकर आश्चर्य होगा। ध्याज भी ध्यान की एक सब न पुरानी प्रेम की युनिवर्सिटी में, जहाँ सर्वात्मन वैशालिक पण साहित्यिक शिष्या प्रदान की—तो है, विद्यार्थियों का बहुत ही पाके खर्च में काम चलाना पड़ता है। सो में वालोस विद्यार्थियों का प्रति मास तोता पाड अर्थात् २२) में काम चलाना पड़ता है, और कदनीस प्रति लेकर विद्यार्थी की पुरीव क कक्षा विद्यार्थियों हैं। विद्यार्थी का वहाँ लगभग द पाँच ५ पिनियन प्रयास तीस रुपये मासिक में जान, कपडे और रहने का प्रथम करना पड़ता है। तब यविकनीशरा प्राप्य-पाई क मिस्र का क सयतिमामानी गवार तैवार करने क ग्गोन कहत और उनका वरा कते ता वे इन दानां युनिवर्सिटीज की युनिवर्सिटी कर द, ता इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नाही है। मि० रेजें में ककाबद यदि लाहौर में यह कहत है कि "मरा विद्यार्थी है कि युनिवर्सिटी का जी-वन प्रचुरिष्क विद्यार्थियों का लाभ की अपेक्षा हानि अधिक पहुँचाता

है, ता इस में भी आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

कमाज पुतो की आमदनी क्या है ?

अब वह देखिये कि एक प्रेजुप्ट में क्रोसलम किना पद करने की समता है। उस दिन में एक बच्चा मारी अनुभवी माफसल ० टी० शाह से पूछा था कि कम्बई में प्रेजुप्ट की आमदनी की क्रोसल क्या है ? उन्होंने मुझे विश्वास दिया कि वह पचीस रुपये मासिक म अधिक नहीं हो सकती। मद्रास और कलकत्ते के प्रेजुप्ट की भी आमदनी मुझे प्रजाज म हताम हो मान्दु पड़नी है। जान पड़ता है कि पचन प्रति में कुछ और वा की नविदा बढ़ती है, नहीं तो वहाँ ऐसी आश्चर्य कदापि न होती।

एसी शिष्या की चिकार है

ऐसी शिष्या और सस्कृति की चिकार है जो आपने विदेशी मित्रों क पनले कपडों क फाटा देखकर क बने कपडों का निरकार करना सि काती है। उस शिष्या और सस्कृति का चिकार है, जो आपने यह समझना सिखाती है कि हुका और फर्श बरता के बिन्दु है। अगर आप सिमरत पीन की जिद करते हैं, तो दगी सिमरत थोड़ी का क्यों नहा पीन ? परन्तु आप पिये केम, फाकि बोझ में तयारु का जो घुसा है वह तो कसली स्वर्गी है और स्वर्गी पत्ता के भीतर लगेन हुआ है, अब कि सिमरत के मातर विदेशी नगा है, उसका पण सुबहला है तथा वह पतले विदेशी काज में लपटा हुआ है। इस तरह आप केवल विदेशी सिमरत का पीकर हों दरा का दो कदाक रुपया प्रति वर्ष विदेशों को एक दिया करत हैं। मैं माधिया और उस के पास-पड़ोस के बीड़ी के डुल कारखान दकन गया था। हमें वहाँ बताया गया कि मध्य प्रदेम के इस उत्तर और गुजरात भाग म लगभग पचास हजार पुरुष, स्थियां और बालक प्रतिदिन एक आने में दो घाने तक पैदा कर लिया करते हैं। इस तरह यह चिटुड पेरुल व्यवसाय और लाख लाख विदेशियों के सुह में राटी का डुकडा डालने-का साधन

है, ता इस में भी आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

बन रहा है। परन्तु इन विद्यार्थी को खरीदने वाले कौन हैं ? उच्च पदाधिकारी और सरकल कर्मी इन्हें नहीं खरीदत और न सरकृति की शोभी बघारने वाले कालेज में शिक्षित नौ-जवान हो इन्हें लेते हैं। इन बीडियों क खरीदार ता हुआ गाडीवान तथा इन्हीं की श्रेणी के मनीव लेग ही हैं। तयोजित शिक्षित लोग ता ऐम मनुसखार हैं, जा जन-साधारण के गाटे पसोन को कमाई क मये माटे होते हैं और देश का धन विदेशों क हाथे जान क सामन बन रहे हैं।

विद्यार्थियों का फल्लुखर्च

विद्यार्थी जो जिन गार्गी में गहर में पढ़वता है, वह अपने विद्यार्थी की नकल करता है और बहुत खर्चोंक व्यवसाय बना लात है। अब तो उसक कपडे साधारण पोषी न नहीं बकि जो ग दरब कमीना कपडियां से युक्त चाहिये, उसक बाल साधारण नाई द्वारा नहीं बकि तर्क-भङ्ग वाल ह्येर कटिंग सलून—बाल कटन वाली दुकानों में कटन चाहिये कि नीसर पहर वह रस्टरएट नाम क उन हाटलों में जलपान करन जानो है, जो शहर क भारतीय विद्यार्थी में अधिकधिक सख्या में मुकन जा रहे हैं। शाम को वह सलून में कम से कम दो बार लियेमा ( वायस्कोप ) देखन जाता है। वह सलून ही मूल जाता है कि इन सब क्वा का जुटाने क लिए उसके माता पिता का धन प्राप किन्तमा कष्ट सहन पड़ता है। जा विद्यार्थी इस तरह अपने माता-पिता स खर्च क लिए दयवो, पेंता और व दयव इन कामों में कंठ करता है, उसकी स्वाधीनता तो भीवत की हद तक पड़वती है। प्रथम विद्यार्थी का धन भाविमार्गी स अपने खर्च क लिए दयव लेना उचित हा सकता है, किन्तु वह खर्च इतना कम शाना वाचिये, जिस से और कम किया हा न जा सक।

दानवीर कर्मिणी

जो विद्यार्थी अपने भाविमार्गी की निशाने में कुछ भी हानि नहीं समझते, उन्हें रंक्ष कानीय का वह ( उप दृष्ट १८ पर )



लेखक

भारतीय भारतम्भोजन न छः श्रुतयोः के पृथक् २ आहार विहार के नियम बनाये हैं। इनके अनुसार वर्तन रखन में श्रुत-परिवर्तन राग नहीं होने हैं। आश्वत्थ हरक शीतल में हैजा, ज्वर आदि मोसमी रोगों को प्राप्तिमान होन लगा है। अतः स्वास्थ्य संरक्षण के लिये श्रुत-यो क पुष्क २ नियमों का पालन श्रुत विकारों न बचावो है प्रस्तुत लेख में वर्षा श्रुत के आहार विहार के नियम का प्रतिपादन किया गया है।

वर्षा श्रुत आगष्ट एवं आश्वय मास में भारी है। वस्तुतः आगष्ट में आश्विन तक वर्षा श्रुत का हा आहार विहार रहता है। इसी का वातुमार्ग कहा है। इस श्रुत में विशेष मोसम बदलता है, नभान जल वायु शरीर में प्रवेश होकर विकार उत्पन्न करते हैं, इस श्रुत में वायु को प्रकोप अधिक रहता है। इस प्रसार इस श्रुत में मोष्य श्रुत न अधिक उन्ह शरत्त आदि का अधिक उपा-याग होत स इस श्रुत में वायु-पित्त, कफ इस तीनों रोगों का परस्पर में युद्ध हुआ करता है। इस लिय इस श्रुत में आस तौर पर शुद्ध आहार विहार करना चाहिये।

#### पालनीय नियम

१—इस श्रुत में वायु के प्रवेश होने न तथा वर्षा के सफेद न सामान्यतः अग्निमंद होकर मलान-राशुत होजाता है। अतः इस श्रुत में विशेष कर अग्निवर्धक, पाचक, वायुनाशक पदार्थों का अग्रह करना चाहिये।

२—यदि हो सक तो इस श्रुत में मोक्ष्य में ही एक हफ्ता सा लुण्ठन ले लेना चाहिये, जाने में पुराने अन्न का व्यवहार करना चाहिये।

३—इस श्रुत में आहार में

#### स्वास्थ्य सुधार

## वर्षा श्रुत के नियम

( लेखक—आयुर्वेदाचार्य पं० बासुदेव मेहता शास्त्री, उज्जैन )

दाह, पतली राती, बुनिया, खिच-ड़ी आर्युक्त पदार्थों ग्रहण करने चाहिये। जिनका कच्चा किवा अ-ग्निमंद हो, वायल का उपयोग न करना चाहिये।

४—युग्म की दाह के पानी में मठा मिलाकर नित्य पीना बहुत लाभदायक है। इस श्रुत में वृद्ध अधिक प्रयुक्त होता है परन्तु उसमें नमक मि-१ कर उपयोग करना चाहिये, सामान्यतः लोगों का स्वाद है कि दूध प्राप्ति श्रुत में पायस करता है। और वर्षा में हासि करता है। परन्तु यह भ्रम है। इसी जाने में शीतल, परन्तु पावन होत हो पित्त उत्पन्न करक वायु का शक्ति करता है इसी में शूलर आदि मिलात से इसको गर्मी का शुष्क परिवर्तन होजाता है। इस श्रुत में वृद्ध वायु का शक्ति करता है।

५—इस श्रुत में कुले, तालाब, नदी आदि में स्नान जल आजाता है और वह जल पावन में भारी होता है, अतः जल का गरम करके लाना करक श्रुत में जल पावन स हैजा, अतिसार कच्चा आदि विकार नहीं होता है। इस श्रुत में जल योग्य ही पीना चाहिये।

६—इस श्रुत में आम नीबू आदि कट्टे पदार्थों का अग्रह सुर-क्षा अग्र्य श्रुतयो को अग्रहा में अधिक प्रयुक्त पड़ता है। इसलिये फलित तथा शरयल श्रुत सात प्रकार आना चाहिये, विशेषकर जिस दिन वर्षा का अधिक उन्न हो, आकाश में आच्छन्न हो, उस दिन विशेष कर हल्क, पाचक आहार—खीर अन्न पदार्थ खाना चाहिये।

७—वर्षा श्रुत में शीत न बने हुये पदार्थ यथा—पाचक, कचरी, सुखले तथा छूत तेल क बन हुए पदार्थों खाना चाहिये। इस श्रुत में तलक का सवन संव्यायमक, कालीमिर्च ही ग आदि मिला कर करना चाहिये, इससे अग्नि दीपन होती है। वायु शक्ति होती है, पावन होता है।

८—इस श्रुत में पान का उप-योग करना चाहिये। पान पाचक रस की तपकिरी, अग्निदीपक, वायुनाशक तथा क्षिमायक होता

#### अपालनीय नियम

१—इस श्रुत में वायुकारक, रुच, अल्पत शीत, भारी, उष्णस्थ आहार न करना चाहिये। क्यों कि इस श्रुत में स्वभावतः अग्निमंद हो जाती है। अग्निमंद होन से भूख न लगना, पावन न होना, मलवर्षा, भारीपन सुम्नो आदि होजाते हैं।

१०—शीतल वायु में बचना चाहिये, छाती का ठंडी हुई रखना चाहिये, नरो कुप, तालाब आदि का जल न पीना चाहिये, गरम करक योग्य चाहिये, बरसात को कीचड़ वाली गीली जमीन पर नंगे पैर कभी नहीं करना चाहिये, भोग कपड़े न पहनना चाहिये, अधिक वर्षा में न करना चाहिये, सामन की बीछार स बचना चाहिये। और के सामने गन्धवी मोषान न होत देना चाहिये वाली अन्न, वाली जल न पीना चाहिये।

११—दिन में मेला, अधिक गणायन करना, मलीन वस्त्र पहनना, धूप मखन, खा-सहवास १५ दिन के अन्तर में १ जागरण करक अधिक भोजन करना, खुले में माना, मिठाई, सुट्टे, कफ्फरी, चरपर, तोड़ल पदार्थ न खाना चाहिये, क्योंकि यह सब कारण हैजा, अजीर्ण, पेट क विकार तथा कृमि उत्पन्न करने वाले हैं। साधारणतः गरम ताजा, स्वच्छ, हलका भोजन करना चाहिये, भूख रख कर भोजन करना चाहिये। सप्ताह में एक दिन लेंशन कर लेना चाहिये। अन्नरुचि पेशीना, नीबू, कालीमिर्च, जीरा संधानमक्युक्त चटनी भोजन में रखन न सामान्य स्वास्थ्य रक्षित रहता है और श्रुत-जन्म विकार नहीं होते हैं।

इस श्रुत के अनुष्ठान कुछ प्रयोग

१. इस श्रुत में अन्नरुचि, संधानमक का शुभो हुवा चूर्ण भोजन के प्रयोग तथा मध्य में लेन से वायु शक्ति होता है, अग्नि दीपन होती है, भूख खूब लगती है, कार्य बढ़ती है।

२. अक्षिद विषयक चूर्ण—सोडा, कालीमिर्च, पीपल, जीरा सफेद, जीरा स्याह, अन्नवायन संधानमक २ तोड़ा लेकर चूर्ण कर उसमें घृत में मुनी हुई हिंग २ माशा मिला

पाचक, चूर्ण भोजन के साथ पोष्ट २ चटन में वायु का जोर पेट शूल हैजा, अजीर्ण, अपावन, भारीपन आदि दूर करता है। इस चूर्ण का इस श्रुत में नित्य भोजन के साथ उपयोग करने में हैजा होने का भय नहीं रहता है।

३. अक्षिद पाचक स्वादिष्ट चूर्ण—मेठ, जीरामिर्च, सोंफ, जीरा सफेद जीरा स्याह, काला नमक, संधानमक पीपल यह सब समान भाग लेकर तथा मिश्री दूनी मिला कर उसमें ६ माशा नीबू का सरस, पीपरमेठ २ माशा मित्रा कर शीशों में भर लेना चाहिये। यह अल्पत स्वादिष्ट रश्मि-कर सरल सत्ता चूर्ण है यह चूर्ण अग्नि दीपक, आहार पाचक गरम, लव शोचक, वायु को जोर दूर करक वायु को पेट में पकत्रि न होत ठहर बाहर फेंकता है।

४. अक्षिद गन्धक चटनी—घृत में तथा घृष में शोषित अमलासोर गन्धक ५ ताला, मीठ ५ ताला, संधानमक ३ ताला, इनका पीस कर नीबू, क रस का भावना देकर वन क प्रमाण गाली बना लेना चाहिये, यह गालिका वर्षा श्रुत में आग्निदीपक पाचक शोचक पत्र रश्मि कर है और वायु जोर शूल को दूर करती है।

५. इस श्रुत क चतुर्मुख अक्षिद आकाश गोष्पार्थ अक्षिदुमारा रस तजोबना बड़ा, अजीर्णकटक रस, कुमायसल, दादासल, शकदास लवण आकर चूर्ण, हिंगाह ८ चूर्ण, शक, कपफिका ५ रस आदि लेने चाहिये।

#### श्रुत रागा का उपचार

१. अजीर्ण—अधिक जल पान न, अग्रय भोजन करने, आचक भोजन करने स, सल सूत्र वेग राकने से, जागरण न, कच्चा वायल, कसा, उठा अक्षयल भोजन करने न अजीर्ण होजाता है। इसक लक्षण य होत है—पेट में दर्द, पेट फूलना, खड़ा हकार आतो, बचनी अन्नक प्रकार की वायु का पीड़ा, वमन आदि मुख्य लक्षण है।

उपचार—हिंगाहक चूर्ण गरम जल स २ माशा लेना। एक नीबू को जोर कर उसकी दोनो फाफ में खमिर नमक, मीठ और पोष्टी ली ही ग भरकर अन्नार पर गर्म करना। जब गरम होजावे, तब कुछ ठंडा होत पर गुमन पर पजीयें दूर होता है।

२. हैजा—इसक भी वंश कारण होत है जो अजीर्ण के हैं। बंदोश्री दस्त सफेदरस के बिजलूण पाले, पेट में छुरे खुपने की ली पीड़ा, नभान रोगों पावन जलन, इतल में

बैलोनो पैंग में वायु के घटन होना, लिख वर्तमान होने के मुख्य लक्षण हैं। हज क उपटय—नींद का नाश सूच का बन्द होना प्यास, बंधोरी, यह उपद्रव हैं।

उपचार—सुखाद्य—पीपरमैंग २ माग्रा, भोजनयन सत कपुर, २२ माग्रा पक्कव क शग्रा में भर दे, प्रव रूप हा जायगा। २४ बुद २-२ घन्ट में जल में देता जावे उपद्रव सहित हुआ शांत होना है। लशुन को ब्र १ तोना २-२ घट से पिखाना चाहिए। लोग ई माग्रा, इलायचो ई माग्रा, जायफल प्रकीम भाषा भाषा माग्रा इन सब का चूर्ण ई माग्रा लम्बाउ म गरम जल से देने से वस्तु वमन बन्द होता है। जब रोग बिलकुल न हो, रोगो को एक न दना चाहिए।

३ गुल्म—बषा श्रुत में लिखो व पुर्यों को गुल्म (बायगोला) का ओर होता है। पेट में वायु की शक्ति चिन्ती है। वर्तमान है इकारे आवी है, वस्तु बन्द हो जाता है। अतः में वायु भोजन है। अन्न पर अरवि, वमन आदि लक्षण हात हैं।

उपचार—जोबना वटी २ गो० उष्ण जल से देने में गोला शांत हो जाता है। दिगाष्टक चूर्ण जल म देने में शांत होना है, छोटी पोख को चूर्ण १ तोना यव चार २ माग्रा, अमरक को रस २ तोला मिला कर भाषा भाषा सुख शोम लेन म गोला शांत होकर आराम होता है।

४ श्रोत उवर—(मरेरिया) शीत से इस श्रुत में एक दम ठण्ड कर कुहार जाता है। मिथ्याहार—विहार म यही शीत उवर तिजारी चौथिया हो जात हैं।

उपचार—करज क बीज का चूर्ण १ माग्रा गरम जल म लेन से शांत म भाषा कुम्भो उवर, तिजारी, चौथिया तःकाल शीत करता है, कुनेन के समान लाभ करता है।

५ करज—सन् श्रुत में शीत के कनेइ और वायु को रुखि म बहुधा रुज हो जाता है। पेट भारी हो जाता है। आनि रहती है। नीचे लिखा चूर्ण लेन से एक वस्तु हो जाता है।

उपचार—खरपकव चूर्ण—कोइ, सोफ, संधानमक सनाय, कउर सनाम लकर—चूर्ण कर उ माग्रा शोम को गरम जल म लेन म १ वस्तु लाभ हो जाना है।

विहार पैदा होजाता है। अय्याशा का मोर जा प्यान जाता है, वह तो सय म आचिजनक बात है।

## विद्यार्थियों को फैशनपरस्ती

(१९३६ का श्रेय)

वाचक पढ़ कर काम उठाना चाहिए—'बहु बड़ा कठिन सयय था, जाके' में मुझे पिताजी को कनेवर में उठाना और कनेऊ करना उठाना होने क पहले हो करकान में पड़ु च जाना और बीच में थोड़ा देर के लिये जलपान की खुदी के सिवा अन्धरा हो जाने तक कोम में खुद रहना पवता था। वे उन्ट मुझे भार म लूम पवते थे और काम में मुझे कुछ खुशी नहीं मालूम पवती थी। लेकिन अब मैं यह समकन लगा कि मैं अपने ससाह—अपन घर क लिए कुछ कर रहा हूँ, तब हवन इधर-कुधर प्रसन्नता म लूम पवन लाता। उस समय मे अब तक मैं करोड़ों पैसा कर चुका हूँ, किन्तु उन करोड़ों स मुझे बेसी प्रसन्नता नहीं प्राप्त हुई, जैसी प्रथम सप्ताह की कमाई म मालूम हुई थी। अब म अपन घर को सहायक था, रोटी कमाना था और अपने माता-पिता क ऊपर भार नहीं था।' अपने उद्योग स करोड़ों का कमाई करने वाले स महापुरुष न परीकार क कामों में पतोल करोड़ डालर अव्यय एकसो करोड़ सयय दाम दे काते थे।

जित समय म लम्बन में रहता था लगभग उसी समय एक० जी० एकसो करोड़ कहे रहते थे। उन्हें सायब कनिगसिपटन क साहस क नामक स्कूच में गुप्त शिष्टा प्राप्त करने का सुभीता प्राप्त था और निवाह क लिए सप्ताह में एक निम्नी मिलता थी। पहिनबर्ग में (१८८७-८८) में काफी आराम क आय एक सो पौंड वार्षिक में अपने निवाह कर सकता था और कभी कभी घर में भी कुछ पड़ु च जाता था। लम्बन म वहाँ जायन निवाह का खर्च बहुत ही कम था।

सिनमा देखन बार्नो को उसको नया स हो जाता है। ऐय लखक भी देखने जातें हैं, जो उन्हे सनमा न करक सिनमा क लिए पैस बचाया करते हैं। कालेज क कितने हा विद्यार्थी ठीक न खाना म मिलन क कारवा कट पाते हैं, पर उन्हे सिनमा देखने को मिलना हा चाहिए। सिनमा के समतो विद्यार्थियों के पैस खर्च करो उन्हे कुछ तो बनावत ही हैं, साथ ही उनको नैतिक और शारिक स्वास्थ को भी हानि पड़ु बात है। उन्हे आरमियों से भर द्य हान में घर्षा बन्द रहना पडता है और नजर पर जोर पड़ने से उसमें भी

## हिन्दुस्थान कोआपरोटिव इन्शोरेन्स सोसायटी लिमिटेड

१९३३-३४ का व्यवसाय शीर्ष करार से न्यादा

बोनस एम्बोलेट पालिसियों पर २३)

सर्व जीवन पालिसियों पर २१)

इस में काम है यदि आप अपना बीमा उन्नतरील बालिस भारतीय सोसायटी में कराय।

## विज्ञापन के लिये खाली है

### जर्मन जनरल



कोसिल हारविन (जीन) न १४ वर्ष वाले बालों के असाध्य रोगियों को जिन्हें जर्मनी अस्पतालों न असाध्य कह दिया था केवल नव-सज्जोवन अउन का व्यवहार करा आर्वाँ बाले कर दिया। यदि बालों में कुछ भी जान बाको है तो हाइ फ्रिक्ता भी कटिन मे कठिन जाता, कुला, मोसिया विमृ अथवा कोई भी नैत्र रोग क्यों न हो इन सब क तिय नत्र सजोवन रामबाण है। कोमत प्रत्येक शरीर १) डाक कन भलग; २) या अधिक क लिए डाक कचे माफ; ३) प्रजेटी को नाद और उधार माल दिया जाता है। नत्र सजोवन डिग्री ई तुम्हा मसोवद, कन्वर् २।

## विलकुल एकांत में बैठ कर देखने योग्य

## खुफिया कोकशास्त्र वातस्वीर

इसमें श्री दुवच की पुर शवाब वीरसी आसन की जोइदार कोउ झाक की रमीन तस्वीरें। लुंक प-शवाब हासिल करन क तरीके, पहिल कोको के पैस ऐमे गुप्त राज कि जिन का लिखना बिलगत तहजीब है, दर्ज हैं। २५० कसे, सर पक रगीन। मूल्य २॥ प्रति पुस्तक। डाक व्यय मार।

पता—

अमरीकन स्टोर, देवबन्द, यू० पी०।

आवेदिक फार्ममभूटिकन कम्पनी लिमिटेड लाहौर का

### जगत विख्यात

# कामचक्षु

REGD

येकलन कलाप्रो दिल व दिगम्भ को अद्वितीय शक्ति देता है। एक बार आप भी येका को हरलुभ और हरलुभ में लाया जा सकता है। हर जगह विकल है। प्रति त्वाक ४) नमूना ४)

देहली के पत्रेष्ट—अमनवास पत्र कम्पनी बावनी चौक देहली।

## जर्मन व्योमयान-हिंडनबर्ग

(डे०—श्री संकरदेव बिर्घोकर)

[ अमेरिका, इंग्लैंड और फ्रांस जलवायों को बसाने वाले राष्टों में सब से आगे है। इसमें उड़ने वाले जहाजों को बसाने के परीक्षकों में ये देश निष्कल रहे हैं। इन देशों में बन हुए सभी जहाजों जहाज नाश के। प्रायः दो चुके हैं ]।

\* \* \*  
[ हजारों जहाजों को सफलता का बिचार सब से पहिले एक जर्मन विद्वान क प्रसिद्ध में आया था। फाउन्ट जेपलिन का वह स्थल महापुरुष में योग्य बहुत मूर्त हुआ था। सन् १९२७ में वह पूर्णरूप में मूल हुआ। इसी वर्ष वह विश्व-विख्यात जर्मन हजारों जहाज प्रायः जेपलिन तैयार हुआ ]।

शुः वर्षों तक बिना टूटे दुटे तथा बिना किसी प्राक-  
स्मिक घटना का सामना कर के जर्मन प्रकार की हजारों यात्राओं  
क उपराल उड़ी जालि थी, पर उसमें भी बहिया एक और  
जेपलिन तैयार हो रहा है। उसका निर्मायाय जगमग  
समाप्ति पर हैं।

इस में सन्देह नहीं कि जर्मनी  
न हजारों-जहाजों क निर्माण में  
असामर्थ्य उपरति की है। मिन २  
हजारों-जहाजों को बन क प्रकार  
के आकस्मिक आघातों से जूझना पड़ा  
है—यह बात समय समय पर अन्ध-  
नारी में पढ़ने में आनी पड़ी है।  
परन्तु जर्मनी का चिरमित्रित व्योम-  
यान 'जेपलिन' कुः वर्षों से लेंकों  
प्राप्त कर चुका है और हजारों  
अन को डाक को उठाता रहा है।

प्रायः जेपलिन ने एक बार भी  
आकस्मिक आघात नहीं आया है।  
कुः वर्ष क समय क प्रभुत्व इसके  
सब प्रकार क सम्मल क कार्य में  
हो की दृष्टियों न अधिक व्यय नहीं  
हुआ ]। इस 'प्रायः जेपलिन' स  
भी अधिक और बढ़िया और वायु-  
यान जर्मनी में बन कर तैयार हुआ  
है, उसको सहा है—'वल्फ जेड-०  
१२६'। इन् जर्मनी के स्वर्गाय  
राष्ट्रपति 'हियडनबर्ग' का नाम  
दिया गया है।

"आर १०१" के विमाय के बाद  
से इ गडि तान न तथा 'आकरोम'  
और 'मर्जीन' क सर्वेक्षण के बाद  
स अमेरिका न वायुयान बनान का  
कार्य छोड़ दिया है। परन्तु जर्मनी  
नी इस विषय न अभी प्रगतिशय  
की है। जर्मनी प्रायः वायुयानों के  
निर्माण क कार्य का अपनी राष्ट्रीय  
प्रतिष्ठा मान रहा है। बस्तुतः इस  
कार्य में वह अग्रिणी है।

सन् १९२७ में "प्रायः जेपलिन"

बनाया, उसके बाद एक नव वायु-  
यान बनान का कार्य शुरू किया  
गया है। जर्मनी के हजारों-सेव्यपति  
मि० गोर्गि की अध्यक्षता में एक-पाक  
जेपलिन कम्पनी स्थापित की गई  
है। अन्तराष्ट्रीय स्थितिप्रायः प्रायः  
जेपलिन का प्रधान कर्मान डाक्टर  
वल्कर इस कम्पनी की व्यवस्थापक  
समिति का समापति है। इस कम्पनी  
क पास अत्यन्त लाभ पोह की  
पु जो है। यह कम्पनी महीन नि-  
शांकाय जेपलिन बना रही है। इस  
के। अग्रि से किसी प्रकार की हानि  
न पहुँच सके, इस की व्यवस्था  
विशेष रूप से की गई है। बहुत  
लम्बी यात्रा के समय इसके प्रभुत्व  
प्रयुक्त मात्रा में सामान रखा जा  
सके, इसकी भी व्यवस्था की गई



यह बाह्य दृष्टि कोर्न पर नव  
व्यायानों की मेकटि कर रहा है।

है। यात्रियों को सामुद्रिक जहाजों  
में जितना सुख और अनुकूलता  
प्राप्त होती है उसमें ही सुविधा  
इस में भी रकी जायगी। प्रोजेक्शन  
और आस केविनों को आयाजन भी  
किया गया है।

एकसौ यात्री तथा सर्व प्रकार को  
सरसामान और मरम्मत का सामान  
मित्रा कर पकास टन (लगभग एक  
हजार मन) जितना भार पर जहाज

आसानी न उठा सकेगा।

यह व्योमयान बर्लिन न म्यून्खन,  
म्यून्खन से टोकियो तक ओकिया स  
अगोरा तक और अगोरा न बर्लिन  
तक बीच में कहीं भी बिना रुके  
हुर सोहसिक यात्रा कर सक्ता।  
यह जहाज सबैर बर्लिन से म्यून्खन  
जाकर आठे दिन सायकाल को पुनः  
बर्लिन में आ जान की पूरी आशी  
रक्ता है। ऐसी विराट्काय व्योम-  
यान अगो तक कभी

## डा० अग्रवाल का आँखों का शफाखाना, देहली कुछ मरीजों के चित्र



महा बना है। जर्मन  
एजिनियरी और वै-  
द्यनिकों न उसकी  
सिद्ध स्वरूप विधा है।  
इस में विशेष प्रकार  
स भी हुई दूसरी  
धातु का प्रयोग किया  
गया है। फास रास-  
यनिक रीति न बना  
हुआ सोहा और फास  
प्रयुक्त किया गया है।

यह व्योमयान क-  
हुत आसानी के साथ  
और सरलता क  
साथ सोचा गयी  
पर उत्तरता है और  
सकता है। इसको  
उतारने और बढ़ाने  
के सिने लम्बी जाग  
की आवश्यकता नहीं  
पड़ती।

यह जेपलिन की-  
सभी सबी को सर्व-  
श्रेष्ठ आश्रयमयी ब-  
कही जा सकती है।

यह लघुका जगम स उड़ी आँख स अया पो  
नेत्र व्यायान 'पायि' म करीब एक महीन में  
अच्छा हो गया आनकल यह मेरठ कालिज में पढ़  
रहा है।

सत्यवान शुक्ल कागरी



हरिद्वार जेक एक मल्लचारी जो  
पड़ते अग्रा हो गया था। यह अग्रा-  
धारी १० दिन में प्राकृतिक नेत्र  
चिकित्सा न अच्छा हो गया है।

## विशाल-भारत और स्वामी सत्यदेव

(पृष्ठ १० का शेष)

प्रकाशित करता है। वहाँ पर बनी यह या और दूसरे नोटिस मन्त्र के सत्यदेव में बने गये थे। हम मर सार पत्रिक जीवन में कबल यही एक प्राणिक सहायता है, जो बिना मनी स्वामी विद्यामन्त्री ने धाम-हा-धाम पांच सौ रुपये मुझे एक मारकाही से लेकर दे दिया था। निरुद्ध मेरे ऐस बनही प्रकाश है, जो मेरे बदन पर मुझे सहायता दे सकने हैं, परन्तु मेरी पुस्तक क्या मर कबल निकालती रही है।

हमना कह कर स्वामी जी छुप हो गये। सब मैंने फिर प्रश्न किया— 'बतुर्वेदी जी आप म ये पढ़ते हैं कि क्या मार्ग कम्पुनियम का विप्लवा फल है ?

स्वामी जी बोले— 'बतुर्वेदी'जो के हृदय में इस समय मेर प्रति विद्युत है, इसी कारण ये हमको स्पष्ट बातों को भेज सकतन भी चेष्टा नहीं करते। जब मैं सारा यह कह रहा हूँ कि उन मारजायन नवी कल्लवों में कम्पुनियम का भरपूर भी कम्पुनियम इन्द्रिय सार भी जिल्लो उठाता है वह विवाह के आधारी को नहीं मानता तो इस से बहुराज बतुर्वेदी जी को और क्या प्रमाण चाहिए। कम्पुनियम की लव (free love) के सिद्धांत को मानता है और स्वच्छन्दता से पति पत्नी के विच्छेद को करना सिखाता है तो देसा प्रकृत्या मे काम मार्ग का धामा स्वाभाविक है और मैं न तो उन कल्लवों के बीच में रहकर कम्पुनियम के काम मार्ग को न्हा है। बतुर्वेदी जी हम न मान ता न सही लेकिन उन्हें मेरे व्यक्तियुक्तप्रभो के आधार पर लिखा हूँ बातां को गप कहना का अधिकार नहीं है।

मैं अपने नोट खन लगा। मैंने स्वामी जी म कहा कि बतुर्वेदीजी के इस लेख के प्रतिम आशय की ओर उत्तर देकर 'दाजिपारा'कार यह आशय यह है— क्या आपक नवधर्म का सिद्धि साम्यवाद का निना और हितकर तथा उमक जर्मनवा की प्रशंसा से हो हो सकत है ?

स्वामीजी मुस्कताकर बोले— 'जब सन् १९३४ के पन्नी मास में मैंने 'हितकर' के विषय में यह लेख 'सरस्वती' में लिखा था, तब उस समय मैं हितकर के बमशाला में मशीन प्रकार परिवर्तित नहीं था। अब

तो मैं जर्मनी आकर जर्मन जनता से मिलकर, वहाँ के गरीब प्रभो' म बाते कर हितकर के शुभ योगों को मशीन प्रकार पढ़ता हूँ। मैं हितकर का प्रकाशक सत्यदेव हूँ कि उसन प्रपन दश के प्राये पर लगी हुई प्रपनम जनक मन्त्र के चिपटे उड़ा दिए हैं और जर्मन राष्ट्र को सगठित कर उन प्रपन पार्वा के बन लहा कर दिया है। जिस जर्मनी को दूसरी जातिगें डुकरता थीं, जो दूसरा को दया का मायन था वह जर्मनी मोज हितकर के कारण योगो को महाशक्तिगें के साथ एक कलार में लहा हो गया है। व्यक्तिगत रूप से हितकर न मर जर्मनी में रहना कठिन कर दिया मेरी आभारना क दूरवासे बन्ध कर विप, परन्तु मैं तो हितकर के। के अन्तिमार्थ में देश-वासियों के हितकार मे देलता हूँ, स्वार्थ को कहीने से नहीं। मैं कम्पुनियम का विपल अद्यतो होर पर करता हूँ, क्योंकि मैंने बलिम में हिन्दुस्तानी भीर जहाँ कम्पुनिस्टों का देवा है। जा मशानों गंधी जी और कांमस को भी ली गालियां दन थे और राष्ट्र धर्म को बलिदान उठाते थे। जहाँ कम्पुनियम है वहाँ राष्ट्र धर्म नहीं पनप सकता। कम्पुनियम, मशानियम और बल्लोकिम, इन तानों में म किलो का अनुवृत्त भा साम्यवाद नहीं है। यह किसी हिंदू लेखक न भूल से शब्द चढ़ा है। कम्पुनियम वगैरह है और साम्यवाद समाजवाद। मैं साम्यवाद के सिद्धांतों को आश्रय नहीं पिकुते बौद्धों बर्ग स मानता हूँ, लेकिन कम्पुनियम को मैं ब्रह्मचर विरोधा हूँ।

तब मैंने पांच बार मित्त क लिख चुकीं साथ की और स्वामी जी भी उत्तर देगजन लगे। कुछ मिनट के बाद ये आकर बैठ गये तब मैंने फिर प्रश्न— स्वामी जी, मैं तो आप से बतुर्वेदी जी के 'वायचकम' के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। उसमें समग्रदोषीय प्रगतिता का पराकाष्ठा हो गई है। क्या मैं उस में लिखा यह कुछ बातों के सम्बन्ध में भी आप म पुनरावलोक कर सकता हूँ? स्वामी जी न कहा कि— 'वायचकम' के विषय में आग लवों को। आश्रय तो व्याख्यात के कारण क्या हुआ हूँ।

लेकिन दूसरे दिन फल फल हा मुझे वहाँ से अकस्मात् चले आया था और मैं स्वामीजी से वायचकम के बारे में बात न कर सका। मैंने 'वायचकम' का फिर पढ़ा और मोचा कि स्वामी जी का प्रमवद जो पर

नाराजगी जिस पर वायचकम का आधार है, उचित हो या अनुचित' मैं तो एक पत्र के सम्पादक की यह अधिकार हो है कि वह को सचना दे काट छेद कर दे या न आ दे। लेकिन एक बात है। स्वामीजी का भी प्रमवद जी से जो सचय था, उस देखते हुए उनका यह कलम था ही कि व उनको सूचनाओं का अन्वय रूप में प्रया पत्रों में स्वात देते। मुझे याद है कि भी प्रमवद जो अब दिक्षा प्रांतीय साहित्य सम्मेलन के समारोह की हेमियत से विज्ञी प्राय ये तो स्वामीजी न उन्हें बने प्रेम से प्रपन यहाँ गुमया था। उस समय उन्होंने इस व 'आचार्य' लिख स्वामीजी न लेख लिखन को प्रार्थना की। पीछे उनका अनुदोषपूर्ण बन्ध भी पढ़ा। उन दिनों प्राय में देश-लंका लिखना था। उन्होंने सरस्वती के लिख जिल गये लभ प्रमवदजी का पत्र पाते ही बने उत्साह के साथ उनके पास भेज दिये। कई लेख इस और जागरण में छुपे। स्वामीजी ने प्रपन लखों का पुरस्कार नहीं मंगा। कलप एक बार भी प्रमवद जो न बड़ी अनुपम विनय के साथ १०) २०) ३०) तक स्वामीजी म क्षमायाचना की थी। स्वामीजी को ता इन बात का कोई परवाह नहीं। प्रमेक पत्रों में व विमो पुरस्कार मीग लभ जन है। तब भी प्रमवदजी का हमना तो कर्तव्य था हा कि ये 'मनी की सूचनाओं को अन्वयो तर्ह देते। और जब कि स्वामीजी की पाठशाला वेला कमान के लिय नहीं खोली जा रही थी। वह तो एक सौजन्यिक सरथा थी। राष्ट्रीय पत्रों के सम्पादकों को तो उनम सहयोग कदा ही चाहिए था। उन्हें यदि सहयोग न मिलत, और उन्होंने प्रमवद होकर कुछ शब्द भी लिख दिये तो वह अनुचित नहीं कहा जा सकता।

इसो 'वायचकम' में 'विशाल-भारत' के सम्पादक न केली थो, उनजद्व, अधिपतागुण और प्रशंसा बात लिखी हैं। य है घास-लता साहित्य के विच्छेद मोलो बाक्य चवान बोले। गोशालें मुक्तशालासज न सच कहा है—

'पर उपदेश कृष्ण बहुरी, ज आचरहि ते मर न जनर।

सन १९३० के 'विशाल-भारत' में शायद 'कोलोत का कार्यवाला' शीर्षक कविता स्वामीजी की छपा थी। उस समय तो बतुर्वेदी जी को वह कविता नहीं अच्छी लगी, स्वामीजी भी बड़े सत्यवादी लेखक मान्द

हूए। आश्रय पांच वर्ष के बाद जब बतुर्वेदी की हृदय में स्वामी जी के विच्छेद विद्वेष की प्रगति घटकने लगी है, तो आप उसी कविता की लिखी उद्गान लगे हैं। इस सम्पादकोय प्रसन्नता को तो देखिये। सच है मनुष्य का इतिहास ही तो है। जब वह किसी के विच्छेद हो जाता है तो प्रपन विच्छेद को को देता है और ऐसी बर्ग करन लगता है, जिनक कारण उसे पीछे पकड़ना पड़ता है। स्वामीजी ने स्वयं 'कोलोत का कार्यवाला लिखा है। इस घटना का प्रसरण मन्त्र सत्य बर्णन किया है। आज हिंदी बोले स्वामी जी की कीर्तन नहीं जानने लेकिन जब पण-पातयुद्ध इस का बातावय हूँ की आशना हो उस समय स्वामीजी की बेलनशुभो का मृदु मालूम होगा।

## हमार सेफ डिपॉजिट वाल्ट देखने के लिये प्रापक निमन्त्रणा

किसी समय अपना सुविधा-कृत वर्तमानोंक में समते हुए मन्त्राल बैंक के मफ डिपॉजिट वाल्ट प्रवेश देखिय यह वाल्ट ऐस हैं, जिन पर आग व पाणी का असर नहीं हो सकत। आग प्रपन कामती बनर जवाहरत व दस्तावेज इसमें रखिय और आग, पाणी-वारी व हाका आदि के भय से मुक्त हो जायेंगे। इसक लिय बैंक कवल २०) पायक लती है। सेफ के ठेक पर आप ६-३० सँ ६ बजे शाम तक किसी समय उसको खोल सकतें हैं।

बाल्ट ठेक वाले का एक विशेष चाचा हो जाता है जिसको दूसरी नहीं होती। सियय वाल्ट देने वाले के कन्वय व्यक्ति उसको नहीं खोल सकत। इजारा नर-नारिय प्रपने कोमो को जेवर जवाहरत इसमें रख कर वन की भी लोती हैं। फिर आप कर्ना बक के इस प्राधिकार से लाभ नहीं उठाते और उनको रक्षा के लिये कमित रहत है।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया  
लिमिटेड,  
चार्दनी चौक, देहली।



विन, भाज की धागेला  
रिज मकार के ये।  
रिजला का पकापि-  
पय, तब न था।  
आरतीया के शरीरों  
पर पीतवर्ण आभा उम  
मिर्मा न थी। तब

सोनपुरी का सोमपय-सिरूर उपा-  
काकीन हाजिमा से होव लगा रहा  
था। बाबिजुन-व्यापार के गालों पर  
मुआबीपण था। घम और सदाचार-  
निरन्तर के कलश आकाश वूम रहे  
थे। तौमी धनक गरीब-परिवार, भयन  
के प्रकाश में ही अपने जीवन के  
कृष्णपक्ष की रात बिताया करते  
थे। दीधे क खिर तैल का अभाव  
रहता था।

माहिष्यता की ओर जाने धाडे  
मार्ग के पाय में, एक छोटी सी  
कुटिया थी। सोमपय की भी लुटा  
कर रमिया की माता, अपने वैधव्य  
के पुनिन वसी की छाया में बिता  
रही थी। कभी वह 'कुले की मेक'  
पर सोती थी; परन्तु भाज उस क  
शरीर में मिठा के डेंडे चुभते न थे।  
एक दिन वह रानी के समान रह  
जुकी थी, परन्तु भाज आटा पीसकर,  
अपन धीर रमिया के पेट में दो  
रोटियाँ छालती थी। प्रावि न भ्रत  
तक उसका जीवन हृदय बद्ध जुका  
था। तब रमिया पाठ वर्ष की थी।

महति क नियमानुसार मीथ  
भ्रत आतो ओर बला जाती। दल-  
बल सर्जित वार का प्रवेश होता।  
प्रापाद जाना और भाव्य आ  
भमकता। न जान कहां न राखी की  
प्रतिष्ठा भी आ ही जाती।

सोनपुरी में घर घर बहोर्था  
चव्दी। पूरा कचौर्था, मुर्किया  
और पण्डिया तैयार होती। उन्हें बा-  
खाकार बालक बालिकाएं न जान कि  
तब भाज लुटा न था। घर बचारी  
रमिया, जब की कली रोटी पर ही  
खनुद रहती। उसन अपने घर में  
कफर-जैसा आर्हात ही न देखी थी।  
वह कभी पकावारी के लिए मखली  
न थी। तौ भी परोसित स्त्रियाँ उम  
जाने क लिए सब कुछ भज देती  
थी।

राखी क दिन, सोनपुरी में घर  
घर हस्त्य सा मनाया जाता। मगल  
मीत गाय जाते। बहिन अपने आर्या  
को राखी बाँचती। उनक भाई तब-  
कर छुकर भावन की रक्षा करन की  
प्रतिभा करते। रमिया क नेत्र भी ह  
धर्या को देख चुक थे। इन धर्या का  
अध्यय भाज उसके हाथ हस्त्य पर  
पड़ चुका था। वह हम एक छुहर  
लेख समझी थी और उसका हृदय

कहानी

## राखी की स्मृति

( ले०—श्री जीवन्महाल जीवास्तव्य )

एक बार ऐजा खेखेलेला वाहता  
था।

परन्तु बात सरल न थी। रमिया  
की माता न, उम के लिए 'भाई'  
नामक कोई भाज-शरीर उत्पन्न ही न  
थिया था। किन्तु रमिया इसे क्या  
जाने ?

सखी की भाँति उम बर्ष किर  
राखी-पूर्णिमा आई। घर-घर राखियाँ  
बाँची जान लगीं। न जान कितने  
भाजन्व को हृदय में भरकर, नर्तरीं छी  
रमिया, एक सूत का धागा लिए  
अपनी माता के निजट पड़ु की। भाज  
उसका मुलकमल लिल रह था।  
नको न एक प्रकाश उजेलि निकल  
रहो थी। आभ्यन्तरिक में उलके  
काँले कपीने की सात-लाह दो रहे

थे। वह असी भाँति यह न जानती  
थी कि राखी कितने बाँची जाती है  
और न उसन हय जानन का कभी  
प्रयत्न किया। अपनी एक स्वाय पूर्ण  
करन की भावना ज़िर हूय, उसन  
माना क मय पर प्योर का हाथ रख  
दिया। मग्व होरो हुरे, बाल-नुचम  
कउआ क सेरोवर में डुबती हुरे  
रमिया ने साहस कर के कहा—  
"माँ ! मैं राखी बाँच हूँ ?"

प्राथा पूर्ति के विश्वास के सहार  
रमिया न राखी का धागा माँ क  
हाथों की ओर बढ़ाया। वण भर में  
ही रमिया के हृदय की सारी हलचल,  
होते परख थी। असहाय और  
जुबिया माता रो उठी। काँजुओं के  
प्रवाह ने उसका अँखल मिगो दिया।  
भोत हूय कुजबुल्ले आभार क हृदय, उसे  
विचार से देने ला। स्मृतियाँ जाय  
उठी। किस प्रकार उसका योवन सता  
बचल्ल से प्रथम ही तुपार पात झारा,  
मिना एक 'लाल'—पुण्ड्र बिलियाँ ही  
तुरका नही, किस प्रकार उस का  
साजानय लय भर में धूल में मिला  
गया, प्रावि वीरी हुरे कण्य-कहा  
मियाँ उमे याद हो आरें।

मेवारी रमियाँ न समझीं—  
कुछ समझ भी न सकी। किन्तु माँ  
की रोती हुई आँखों ने, उमक नर्ती  
से भी तो-चर बूँद आँसु बाँचि  
ही ली। कुहर रम परका नही न अपन  
नेत्र पोंछ और एक गहरी साँस बाँ-

चले हूय रमियाँ ने कहा—'बेटी !  
भाई के हाथ पर राखी बाँची जाती  
है, माता के हाथ पर नहीं। तुम इसकी  
भावबताई कहाँ, जो तुम्हारे कोई  
'भाई' होता ?

रमिया की माता का गला भर  
आया और आगे वह कुछ न कह  
सकी।

रमियाँ उदास मुल हो चोराडे  
पर चली गईं और पेड़ के नीचे बैठ  
कर बालकें का फुलना उलने लगा।  
उसने यह मो देखा कि बूँद-बूँद  
ब्राह्मण, धान-जाने वाले पुरुषों व  
बालकों की राखियाँ बाँच रहे हैं।  
जोन उनको पैय देत हैं और बरग  
छूकर चले जात हैं। इस हृदय न  
रमियाँ की उदासी पर कर दी। उस  
की विचार चारा बल्ल गई। उसन  
समझ लिया कि माँ-बहिन क  
अतिरिक्त माँ काई राखी बाँच सकता  
है।

बादल जिर हूय थे, नभों नभों  
बूँदों की फुहार भर रही थी, परन्तु  
रमियाँ अपने विचारों में लगीं हुरे  
वाँचें बेटी थीं। उसक काँले काँले बाँचों  
पर फुहार की बूँदें, मोती सी चमक  
रही थीं। सहसा पानी की झड़ी लय  
गई। बच्चे अपने २ खो में छुप गय,  
रमियाँ उसी पेड़ तले सिमटकर चव-  
तर पर बैठ गईं। दो हाँ मिमट बाद,  
एक पानी युवक बर्ष आया। उसन  
अपना जोश पड के नीचे छछा किया  
और भाप चवतर पर जड़ा दो, बर्षा  
क बँद होने की प्रतीक्षा करन लगा।  
रमियाँ न उसे खिर से प्योर तक

देखा और देखा उस के हाथों की  
ओर। युवक को कलारें, राखी से  
साखी थी। रमियाँ न भाज क दिन  
जिना राखीयाँ हाथ न देखा था।  
उने कुछ आश्चर्य-सा हुआ। सरलता  
पूर्वक उने पृष्ठा—

"तुम्हारे हाथ में राखी नहीं  
हूँ ?"

रमियाँ का प्रश्न सुनकर युवक ने  
एक साँस ली और कहा—

"नहीं है, और इसलिये नहीं है  
कि इसने है, मुझे कोई बहिन नहीं  
ही।"

युवक को आँखों से दो बूँद  
टपक पड़े। उसके हृदय की पीड़ा का

अनुभव बचारी बालिका केम कर  
सकती थी। नो भी उसके बाँधुनो का  
एक कण्य प्रभाव, रमियाँ पर पड  
हो गया था। वह झरते-झरते, बिन्तु  
कुछ प्रसन्न होती हुई बोली—

"क्या मैं तम्हें राखी बाँच हूँ ?"

युवक का हृदय भर आया। भाज  
से पहिले, एक बालिका क मुल न,  
उसन इतन मिय छुल्ल न सुन ये।  
एक बार उस न रमियाँ की ओर  
देखा। मेले-कुचले और कटे वस्त्रों से  
लुनकर रमियाँ क चुबल शरीर का  
प्रकाश फैल रहा था। रमियाँ को  
मातृपुत्रता न यवक का विमल कर  
दिया। उदास और लज्जामर हृदय  
न युवक ने अपनी मुआ रमियाँ की  
भार बढ़ा दी। प्रसन्न हो रमियाँ ने  
अपनी 'धागे का राखी' युवक की  
बाँह पर बांध दी। रमियाँ का प्रस-  
न्नता का क्या ठिकाना था ? युवक  
न अपने नडा को सजल करत हूय  
पृष्ठा—

"तुम्हारा नरा नाम है—  
बहिन।"

"मरा नाम —'रमिया'।"

"तुम किस की बेटी हो ?"

"सिमलहारा की।"

"कहाँ रहता हो ?"

हलो गाँव में नोम के पेड़ क  
पास एक भक पको में।"

बचारा युवक कुछ समझ न  
सका। ओर न रमियाँ ही इस सं-  
भाव्यक कुछ बता सकीं।

पाना बरसना बन्द होगया। युवक  
जान के खिल तयार मिगो लगा। उम  
जात हूय देख रमियाँ ने पृष्ठा—

"अब तुम कहाँ जाओगे ?"

"माहिषमनो जा रहा हूँ, बहिन।"

"तुम कीन हो ?"

युवक न बोड़े पर चढ़न हूय  
अपना नाम बनावया। रमियाँ आ उस  
का नाम सुनते हुरे बर्षा न माय  
गई। युवक का हृदय भाज इस गर्व  
ने कुल रहा था कि वह एक गरीब  
बालिका का भोई है।

\* \* \*  
निपाद प्रदेश क जंगलों की स-  
पनता प्रसन्न है। बिजाल बुली को  
वहाँ बाँझा सा लगी है। इसकी  
खलन कि बिजिया भी उस ओर न  
जा सक। बाघ और बोलों की दवा-  
ली न बर्षा भूकम्प न आत है।  
साँपों की शू शू बहें २ साहसी  
मनुष्यों के हृदय कपा देती है।

पेय विकराल और भयकर बन  
में मातृपुत्र रहत है, हम ये ही  
जाने। तपस्वी सोलु, ससर्क क  
कहाते से यके मरि त्यागी, डाकू और  
चोर एवं राबड की भीति से डरे

हुय अघराची ऐमे की बर्ना की भाष्य लेन हैं। अग्रय और सुख की भाँव उन्नत। ऐम हो अग्रयोग मिलती है। पर कीमत जानती है कि उन दिनों निमाड क जगते में रहन वाले हाकू म या सातु अघराचा ये या साम्य चादी।

नर्मदा के पार्वर् प्राँय में, शूल पाणि की भाँवी के किनारे २ एक मार्गे जाना था। नगर ओर प्राँय निवासी वही मार्गे म घात-जान थे। माल से लुब्धे हुए गाँवियाँ चर्दी में गुजरती थीं। दूसर लौकर दिव रक्त पाल, मार-पीट दूट लसेट हो ही जाता था। जो इनम बचता, उसपर शेर कीर तेंदुय अपनी कालों काटाय रहते। तें भी साहस की सजीव प्रतियोग—मनुष्य वहाँ से निकलता हो था।

सावन की चतुर्थी थी। रात्रि के चार बजे थे। अननन वननन करतो हुई बैलगाडियों की एक कतार, गेला बाप हुय हिरन की अंतिम उसी मार्गे पर सरपट दोड रहा थी। कौंकिल ने स्वर्ग में प्राचीय रमणियाँ भगवती नर्मदा क शुभ गान कर रही थीं। पुष्पा की गाँवियाँ पर 'पूत बुलाखी क धटक' की कहाँनियाँ कही जा रही थीं। दूसर हो दिन रात्री की पूजा (पुण्या) था। पुण्या का स्नान करन प्रार्थियों को टोला नर्मदा को ओर बढ़ी जा रही थी।

अचानक—बाय बाय पाय—लौन बार गेला छूटने का शब्द हुआ। 'बाइ' भरतो हुआ अग्न वासी गाडो का हाँकन वाला 'अम मे अमीन पर डेर होगया। मीत ओर कहाँनियाँ समाज होतयीं। यात्रियों के हृदय काँप उठे। स्तब्धता छागई। गाडियाँ रुक गयीं। सिरों पर मनुष्य की परछाईँ दिखाई देने लगी। खियाँ ओर बालक गाँवियों के नीचे छुलन लगे। अग्रहाय यात्री अपनी अपनी लाटियाँ ने गाँवियों ने उतर पक।

बन्दे में देखा—लगाभग १०० हाकू वाराँ ओर ने गाँवियों के डेर कइ है। यात्री भी गाँवियों के निकट कइ होतया। लण भर तक दोनों ओर शक्ति छा रहा। किसी ने आक्रमण न किया। अलन म निस्तब्धता भंग हुई ओर मील सरदार की जय' से शल्लपाणि की भाँगे। गुज उठी। इस अवसर क नाद को सुनते ही यात्रियों क हृदय से जानक को आवाज चला गई। हाथों से लाटियाँ फिर पड़ीं। सिद्ध के समान स हसपण' कसम बढ़ाता हुआ 'मील-सरदार' अग्न आया ओर बोला—

“तुम लोग कीम हो ?”

“गरीब किसान हैं, मोलिक ।”

“गरीब किसान ।”

सुर न कहा—“गरीब किसानों के पास ऐमे शायी साज-बाज कहा ? कीयपू में छिपट कर घुप, मेह ओर शील में रक्ति दिव बिताये वाला बह तपस्वी, अपने जीवन में 'स्वण' की सुरत भी नहीं देख पाता। सब बोला तुम लोग है ?

“पीपरिया गाँव के ठाकुर”—एक व्यक्ति न कहा।

“कहाँ जा रहे हो ?”

“नर्मदा स्नान करने के लिये ।”

“तुम्हारे साथ कितनी मातायें और बहनें हैं ?”

“कमल घाट ।”

“कहाऊ उनको एक ओर बैठाना दो। उनम कह दो ये अपने का सुर वित्त सारमें। पील सताम, मी-बहिन पर हाथ नहीं उठाता। बालक की भी सुरक्षित समझो ।”

“ओर इम लेग ?”—एक हाँकन बाल ने प्रछा।

“तुम लोग, अपने पास का घन बैदर ओर हथियार यहाँ रक दो—सुना ।”

कपटे हुए हाथों से सबन अपने-अबेर दण्ड पैम ला लाकर रख लिये ओर सरदार की आभा की प्रतीक्षा करने लगे। सरदार न पछा—“ओर भी कुछ है या सब कुछ आ खुकी ?”

केवल खियों के शरीर पर क आभूषण लेन हैं ।

मील सरदार माताओ के आभूषण नहीं चाहता। अच तम सब देख ललवार की ओर देखो ओर अपने रक्त की धागे हम पिछान के लिए तैयार हो आओ। ओर ठ कुर साहब भी पील तम युक्त करना चाहते हो तो मील सरदार उन स्वाकार करता है। कतो ?”—सरदार न कड़क कर कहा।

किस में शक्ति थी आ काय म युक्त करे। लाटियों ओर शक्तों में परस्पर युक्त कैसे ? साहोय, लशखलवाओं म सरदार की ललवार के आग, मीन हो, सिर कुहा दिव । ‘मील सरदार की जय, ताँविया मात का जय’ का जय घोष फिर हुआ। सरदार का गद्ग आवाज में उठा। किला की नई नर पर उसकी तेज धार गिरता ही बाहरी भी कि—“ठकरो”—यह शब्द सुन पड़ा। सरदार का ऊंचा उठा हुआ हाथ उठा ही रह गया। सरदार न देखा, गाँवों में म एक युक्तो उसके सामने खड़ा होगई।

मातृभावि की एक साक्षात् प्रतिमा सामने लगी हुई देख कर ताँविया न अपनी ललवार कुकी की ओर बोला—

“क्या चाहती हो देवी ?”

नीक उसी समय अया की सुन हला प्रकाश बिंदक गया। आकाश पर छासी छा गई। कुछ छुड़ करती हुई कायल सरदार के ऊपर से उड़ गई। प्रकाश में मील सरदार की मुकादित स्पष्ट दिखाई देने लगी। युवती न एक बार सरदार का ओर भ्रम से देखा ओर बह बोली—

“यदि भूतता नहीं हू तो आज़ से बारह वर्ष पहिले मैंने तुम्हारे ही हाथ में राखी बाँधी थी। क्या तुम वही 'ताँविया' हो ?”

ताँविया ने अपने मस्तक पर हाथ रख लिया। झल्ले बंद कर लीं। अपनी सुदी हुई आँखों में उसन देखा—“गामी बरल रहा है आम क पेड तने उसका चेहरा लडा है ओर चतुर पर पैठी हुई एक गरीब कन्या उससे कह रही है—‘क्या मैं तुम्हें राखी बाँध दू ?’”

ताँविया की स्तुति आग उठी। अपनी ललवार डेड कर उसने कहा—“हाँ, मैं वही ताँविया हू, ओर क्या तुम वही मरी निर्धन बहिन रमिया हो ?”

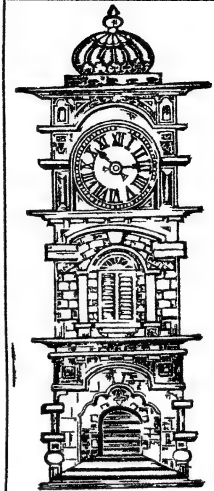
युवती ने की सुलभ कज्जा से अपनी भाँवि मीवी करते हुय कहा—“हाँ”

मील सरदार, रमिया के बरया पर गिर पड़ा। यात्रियों के शरीर मांगे फिर जी डटे। छात्र भर में कुछ न कुछ होतया।

राखी-पुण्या का प्रयास खिल उठा। अग्न न मील सरदार ताँविया का भारी बोझ। नावनी-भूमता चल रहा था। घन घन करती हुई ठाकुर साहब की गाँवियों उसके पीछे ओर चोग चल रही था। उनके पीछे सौ ओलों का सना मार्च कर रही थी। अग्न जल बाँटे पथिक इस 'सलमण' की समय देख कर अक्षित थे। खियों को गाँवों में म, रमियों का विजयो हृदय—यह कृपा हाला मैंने भया के सुन में भैया के राज में—मवार का राखी तान उड़ रहा था। कैसा सुहावना, कितना प्रेम भय ओर किन्ता ब्रदुमुष्य यो बह दण्ड।

तट पर पड़क कर नर्मदा के देखते २ रमियों ने आग्रज फिर ताँविया की सुनो पर राखी बाँध दी। रमियाँ क हृदय में स्नेह था, शक्ति थी ओर या एक विजयोहास, परन्तु अग्रिमामनहित। ताँविया के मुख

पर अग्रमन्द ध', प्रकाश या परलु हृदय समोयाचना के लिय मचल रहा था। राखी क सुन की कितनी बड़ी मझिमा थी !



## घन्टाघर यानी टावर क्लाक

हम बहुत सस्ती कीमत में देते हैं। स्कूल, व्यापार, रस्ते-रोड आदि की बिल्डिंग पर भी वही फिट करते हैं।

विशेष खिल्लि के लिये लिखियेगा।

सुख संचारक कम्पनी, मथुरा।

क्या आप वेकार हैं ?

क्यों नहीं पर वेड हाफ्टर बनते आज़ हो -) का फिट भेज कर लिपिमगाहव पता—मिसिपल मेनक होमोपैथिक इन्स्टीट्यूट विगनु लेन, लाहौर।

## जाति निर्णय

जाति अग्रमण्ड ३६१ हिन्दुजातियाँ का विवरण ३७१ पृष्ठ ॥) आक्षय निर्यय ६२० पृष्ठ ३२२ आक्षय जातियों का विवरण ४) हाँ वर्य मोर्मानी १॥) ललियवरा प्रदीप ॥) का मोरुविल आति प्रलिय ॥) वरा संट १०) हाक अग्रमण्ड। ममज ३) कर्ष व्यवस्था ममज कुक्रेता (जैव)।



## रक्षा-वन्धन !

—:—

(भई के प्रति)

धर्म बहिन हैं भागे आओ  
धर्म-सात हो मत लड़नाओ  
आओ करुणा हस्त-बन्धो  
हो पतिन बन्धन !

‘राखी है’ इस को अपनाया  
बढ़प तुम्ह वह कसा लाना  
पर तुम इसमें सुदृढ़ बनाओ  
हृदय-मेघ बन्धन !

सुम चित्तक भगिनी के, है धन,  
मिथ तुम्हारा हो धर्मबन्धन !  
ऊँके यह तुम में नवजीवन,  
मित रक्षा-बन्धन !

आत बहिन की लाज निभाना  
इस हृदय से मूल न जाना  
याद रहे बह मेरा आना  
चिर-अतीत बन्धन !

(बहिन के प्रति)

बह तो ‘विजय-धनु’ है आओ  
पगली ! तुम्ह इसे न बनाओ  
हो, हाँ ! ब्रह्म कर में पहिनाओ  
रक्षा-बन्धन आजर !

हृदय हो हृदयमे निभाना  
मैंन आज तम्हें पहिचाना  
कहो, क्या कहा ? मूल न जाना  
हिंम ह्रुद धामर !

तुम तो मेरा चित्तक हृदय हो  
मेरी गोष्ठा की सुरलव्य हो  
मेरा स्वर्ण अभिव्योह्य हो  
सुलग्न प्रसन्न-प्रखर !

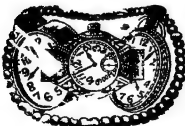
यह ब्रह्म प्रथ मित याद रहेगा  
स्वैर-रहित पर रक्त रहेगा  
बहिन ! कहा है, बहिन कहैगा  
तुम को जीवन भर !

—कल्याणकुमार ‘राशि’—

## मूल सुधार

साप्ताहिक के ‘अजुन’ के पिछले  
किसी अंक में ‘पगली की बाह’  
शोधक कविता क लेखक का नाम  
गलत छप गया है। वास्तविक नाम  
‘प्रमाणार्थकर गुप्त’ सँकर, है।

## तीनों घड़ियाँ मुफ्त



हमारा गुमान या दिना का दूध  
जो आपनी मस्ताने सुगन्ध से दिल  
को मस्त तथा दिमाग को तर करता  
है, सिर्फ प्रचार के लिये १२ घण्टा  
१॥॥ में एक साधो लेनेवाले को १  
बकिया केरली डमी रिस्टबन्धन मय  
फौला १ सुन्दर इ-केलड पाकेट बाव  
मय बैन, १ डायमण्ड डायमण्ड  
पायर्टी १० लाख तथा १ मोतियों का  
हार मिलकुल मुफ्त मिलेगा। वैरिंग  
‘वोस्टेज अडवा। नापल-व् दोने पर  
कीसत बापिक। डेडिंग कारपोरेशन,  
कम्बर २०५ ओडुविलाम, कलकत्ता।

(कालम ४ का शेष)

वांट बदलेंगे। राजकारणों में सफल  
होगे, मांगीवार को दगा देकर खुद पैसा  
का आर्येगे, छेदे वृक्ष के डोनों स  
आपनी बेहजरी छोड़ देंगे।

बायद के बाजार में तजी रहेगी,  
ता० १५ स बाजार कड़क रहेगा,  
बाँधी को रोज भर रहेगा, गल्ले पर  
साधारण तेजी रहेगी। ता० १५ १५-  
१०-१८ को कृषि बहुत होगी।

## तैयार

मिल्य व्योहार की घरेलू वस्तुएं  
कृष्णा अंगीठी, दिलखुश मशीन,  
लूख मशीन, बट्टे, हाथमदस्ता, जालो  
आदि ठेके का प्रत्येक ठलान का  
आमान, सफेस वस्त्र, आयर्न  
मैशिन, स्कुल, जोगा, जिब के पाये  
आदि। मशीनों के पुर्जे, पिस्टन,  
सिलिंडर, बकनी की मशीन के पुर्जे,  
कॉपिंग मेश आदि। नोज कोन्ड,  
राजपाथी, कल्लपट्टी, पञ्चबाँदर  
आदि सब स्पोर्तों से सस्ते और  
अच्छे। बिस्वत थ्योरे के लिये निम्न  
शिक्षित पते से माहुर कर :—

रामनाथ गुप्ता  
कारबाना ठलान, हौजकाजी, देहली।

## सप्ताह का फल

## राशि क्रम से

ता० १२ अगस्त से १८ अगस्त

तक

(ले०—श्री सकलेश व्यास, उज्जैन)  
शुभ

व्यसन की ओर कुहाव, खिर्वा  
की बीमारी से तभी, इस राशि की  
खिर्वा में गर्मपत्ता की समावना,  
बहुत सो राखबिकरना से प्रसन्न  
करेंगी, नौकरी की तलाश में निराशा,  
मालिक की तरफ से भय, राजकारणों  
में सफलता।

शुभ

कजैदापी से चित्ता, रिस्तेदार  
का सलाना, शारीरिक स्थिति साधारण  
रहेगी, शुभचर्चों की सम्पत्ता,  
बने हुए व्यापार का विगडन, बात  
रोग के रोगी को कष्ट, राजकारणों  
से भी भय, बाहर घूमना अच्छा  
नहीं।

मिशुन

आर्थिक स्थिति अच्छी, भाय के  
मधीन अर्ब, ईद मिर्ची की सहायता,  
घर के और मित्रों लोगों के व्यवहार  
से सलसलाना, मानसिक चित्तार,  
राजकारणों में सफलता देने का  
कालिस्थान, मांगीवार रक्तान अकरी,  
बाहर घूमने से लाभ की आशा कम।

कर्म

व्यास काय की बीमारी को पर-  
हेज की जरूरत, मकान जायदाद की  
रकमत, धनचित्त मांगीदार रक्तकर  
व्यापार करने में घाटे की समावना,  
शुभचर्च पर विजय, राजकारणों में  
निराशा, सप्ताह के आखिर में शु  
काय की गिकायत, बहुत स म्यादी  
नुसार के रिस्तर होंगे।

सिद्धि

स्वास्थ्य रहेगा, परन्तु खिर्वा  
की तरफ से सुख नहीं, उपचर, वैद्य,  
हकामों पर पैसा का खर्च, ग्रामधू म  
बर्च विशेष बाब बघो की चित्ता,  
नौकरी पैसे वाले सुखी।

कन्या

माई बन्धु ओर रिस्तेदार तथा  
बोरेत व सब घर में आराम से  
बैठकर खान नहीं देंगे, हृदय कुछ  
व कुछ मरुत, खिर्वा में बर्च, ग्रामधू  
के जय !

रामनाथ

बल्ले व्यापार १०-१५ सलामे

आता हुआ द्रव्य हाथ से निकलना,  
अपन की उभय क लिय दूसरा को  
खुशामय, मित्रा की ओर भागीदारी  
की सहायता, धर्म रोग के बीमारे  
विशेष कष्ट भोगेंगे, बाहन (सवारी)  
में भय रहेगा।

मकर

ग्रामधू मच्छी, तण्डुलनी अच्छी  
परन्तु लीबर्ग की तरफ से सलसलाना,  
व्यापार व्यवसाय न लाभ होने की  
आशा फुल्ल-बर्चों, दलाली करने  
वाले से समझ कर बलाना बाहिद  
राजकारणों में निराशा, भागीदार म  
कलह के कारण।

कुम्भ

रिस्तर धन्य बाल सुखी, नौकरी  
पैसे वाले आराम से, व्यापारी क  
लिये सप्ताह कष्टमय, राजकारणों  
में चित्ता, शुभ अम का अन्न कल,  
शुभ वर्ग पर सफलता, प्रगैह और  
बहुभूषण के रागी को परहेज न बलाना  
बाहिद, कारबानादारी को अपन  
नौकरी से बचकर रहना बाहिद,  
रक्त-बैरिस्तर और जज-बैरिस्तर,  
(इस राशि के अर्थात् कष्ट भोगेंगे, दूसरा  
में पैसा हुआ पैसा निकालना अ  
संभव, राजकारणों में असफलता,  
रिस्तेदार का रिस्तर, मालिक की  
तरफ से प्रायः भय, व्यापार में  
कलह, सप्ताह में ई रोज अच्छे  
निकलेंगे।

तुला

मानसिक परिस्थिति एक कम  
खराब, कामकाज में मन कम लगेगा,  
राजकारणों में धनकुलता, व्यापार  
से लाभ, परन्तु बेकार चर्चों न लाभ  
मिलना कम समय रहेगा, नौकरी की  
तलाश में घूमन का व्यर्थ अर्ब, घर के  
लोगों के वाकज कोन पर प्रायः शु आ  
करेंगे, माई माई में बिरोध होसकता  
है।

वृश्चिक

काम करने से ग्रामधू हो सकती  
है, घर का चित्ता, शरीर में हृदयम  
आलस्य, अनायास कहीं से पैसा  
मिल जाय परिश्रम न करना पड़े  
हुनि प्रायः रहेगी ग्रामधू से बर्च  
विशेष होगा, राजकारणों में सफलता  
सप्ताह अच्छा है, निम्न रिस्तेदार  
और माई बन्धु पर विशेष  
रक्तक नहीं बलाना बाहिद।

मीन

बाहर घूमने में पैसा बर्बाद  
करेंगे, नौकरी पैसे वाले कुछकर चर्चा  
न पैसा जोगेंगे एक दिन में दो २  
चार २ पर काम करक पेट भर  
पावेंगे, व्यापारी वर्ग के लोग बाटे में  
रहेगे, पैसिज और बर्च वाले भीटे के  
(शेष कालम दोरे को नीचे)



# व्यापार-डायरेक्टरी

आवश्यक वस्तुयें निम्न पते से खरीदिये—

<p><b>हैजा का अचूक इलाज</b></p> <p><b>विश्वसुधा</b></p> <p>है</p> <p>मूल्य १) प्रति शीशा</p> <p>विश्वसुधा कार्यालय, नया बाजार, देहली।</p>	<p><b>आग बुझाने का पम्प</b></p> <p>यह पम्प तुरन्त की लगी हुई आग को तुरन्त ही बुझा देता है</p> <p>मूल्य ४०)</p> <p><b>बाली कम्पनी</b></p> <p>चांदनी चौक, देहली।</p>	<p>२)</p> <p>प्रतिवार</p> <p>सी० पी० और बरार में आपका व्यापार किस तरह बढ़ेगा ?</p> <p>आपको अपने कारखाने का विज्ञापन हर जगह पहुँचाना पड़ेगा। इस काम को इस काम में सहयोग दे सकते हैं। पोस्टर्स और हैडबिल्ड्स हर एक बड़े शहर और गाँव में बिपका दे मे और बँट दे मे। बिज्ञापन जान कारी के लिए लिखिये—</p> <p>जन्म उद्योग मलेर पाटुखों। I N B y</p>	<p><b>डाका</b></p> <p>आजकल डाक की बहुत बचर आ रही है। यदि आप अपने कीमती माल बेचने की सुरक्षित रचना चाहते हैं तो उनको सेंट्रल बैंक वाणिज्यिक दिहली के मक डिपॉजिट बाण्डों में रखिये और वेन को मीट मोरय।</p> <p>१)</p> <p>प्रतिवार</p>
<p>५) प्रति वार</p> <p>दांतां के सर्व रोगों के लिये दन्त सुधा मंजन</p> <p>प्रयोग में लाइये</p> <p>विश्वसुधा कार्यालय नया बाजार, देहली।</p>	<p><b>भृगु संहिता</b></p> <p>( योगसागर फलित ब्रह्म भाषा टीका )</p> <p>सन् १९२० से २००० तक सप्ताह भर की जन्म कुण्डलियों का भूल, मन्थन, वर्तमान तीन जन्म का हास कात होगा। नल सुनकर लोग कहत है कर्णपिशाचिनी लिख है। बार मास क लिय रियायती मुख्य ३), पो० ११) फिर खी रुपये को भी न मिलेगी, पुस्तकें बोडी ही हैं।</p> <p>भृगु सहियों कुन्दली खण्ड</p> <p>( भाषा टीका उदाहरण सहित )</p> <p>सन् १९०० से २००० तक की पुण्यी वर क मनुष्यों की कुंडली मिलेंगी। नल जन्मपत्र बना जो कई उषय भी साख्यी हैं। मुख्य २) पो० ११) बार मास तक। फिर खी रुपये को भी न मिलेगी।</p> <p>पता—</p> <p>ज्योतिषरत्न, ५० अयोध्याप्रसाद मिश्र JHANSI कोठी नं० २१</p>	<p>३) प्रतिवार</p>	<p><b>गर्भ हरण</b></p> <p>जो स्त्रियाँ बीमारी अथवा कम ओरी के कारण अधिक समान पैदा नहीं करना चाहती वे इस कल से मुक्त होंगी। पराकृत है। पूरी सुराक का मूल्य ३) पो० ११)।</p> <p>गर्भ रच्छक</p> <p>इसे गर्भकाल में सवन करने से को के गर्भ की रक्षा होकर समय पर बह-पुत्र बोर्बायु पुत्र पैदा होगा। पू० पूरी सुराक ५) पो० ११)। पर शुच रख जात है।</p> <p>पता—डा० आर० जी० मिश्र, फोगल सोपरी बाजार, जहाँसी नं० ६।</p> <p>२)</p> <p>प्रतिवार</p>

व्यापार समाचार

दिल्ली का बाजार  
साप्ताहिक रिपोर्ट

(इकसवीं सप्टेम्बर-वेबेन विज्ञा (हारा)

६ अगस्त

सोने का बाजार इस सप्ताह बहुत माजुक रहा, क्योंकि सहा बाजों न बहुत खरीदा। कीमत किसी तरह स्थिर रही। पण्डे की कीमत पिछले सप्ताह २५॥॥ था। आज भी वही है।

सस्ता-क वहन मास में चांदी की कीमत विदेशी सस्ताहों के कारण स्थिर रही। सस्ताह के पिछले मास में कीमत गिरा। आज ६॥॥ मास है, जबकि पिछले सप्ताह ७०॥॥ था।

कपड़े—स्थानीय मिर्चों का बहुत कम आउट रिमिट। स्थिति का उत्साहजनक नहीं कहा जा सकता। कपड़े का बाजार भी बहुत मजबूत रहा। मचिलर और जापाना माल की शुष्कता भी बहुत प्रतिफलित हुई।

अनाज—अनाज का बाजार स्थिर रहा। गेहूँ सोधारण रहा जबकि चावल न कुछ उच्च दख दिखाया।

आज की भाँत—

गहूँ (खरबती)	२॥॥—III
सफेद	५॥॥—II
चावल (१)	६॥॥
(२)	३॥॥
शाल कर्डी	४॥॥
मूग	३॥॥—II
अरहर	६॥॥

गेहूँ का आमद टनों म

६ जुलाई को मवार हुए मण्डान

कलकत्ता	१८३५	१८३५
बम्बई	४१०५	४१०५
काशी	४१०५	४१०५

बाजार विदेशों का टनों म

बम्बई	४	४
काशी	१०	—

१ अगस्त से २७ जुलाई तक का आमद टनों में

कलकत्ता	४८०००	६०६६६
बम्बई	६१५०	७७४६६
काशी	१६६६६	२१६७७०

कलकत्ता	४	३
बम्बई	३६१	३६४
काशी	१२६	१०२

वर्षों की रिपोर्ट

फसलों की क्या हालत है ?

(निज व्यापारिक सम्पादना द्वारा)

बंगाल—पिछले सप्ताह में कुछ हल्की बारिश हुई। खड़ी फसलों की उत्तरी पश्चिमो बंगाल में पानी की पीढ़ को लगान के वास्तु बारिश की आवश्यकता है। खरोफ (ओटम) फसल की कटाई हो रही है।

आसाम—मौसम सोधारणतया अच्छा है। कुछ जगहों में बारिश की आवश्यकता है। आम तौर पर खड़ी फसलों को हालत अच्छी है।

बिहार—उत्तरी—मालगुजर जिल के किसान सब जगह बारिश हुई। पुरा सन्तुल्य और कटक के हिस्सों में भार बारिश हुई है। बाबा जगह हल्की और मजबूत दूजे की बारिश हुई है। खड़ी फसल का हालत अच्छा है।

आंध्रप्रदेश—फसल के लिये अमीन का तयारी अभी तक जारी है। धान और मोहो की फसल की बुआई जारी है। बिहार, छांग नान-पुर, छांगबाद, चम्पारन, पुरमिया और स्याल के परगना में धान और अगहन धान के लिये बारिश की आवश्यकता है। कटक, पुरी, बालासोर और अंगुल में धान की पीढ़ लगाव आ रही है। बम्बई कानाक

वृत्तियों दक्षिण मद्रास—कुछ भागों और पश्चिमी खानेरा के सिवाय यहाँ बारिश कम हुई है। बाका जगह अच्छी बारिश हुई। दक्षिण के पूर्वी भागों और कनटक में बारिश का आवश्यकता है। गुजरात में बारिश ठहरनी चाहिए। गुजरात और कानून में फसला का हालत अच्छा है और धान की पीढ़ लगे आ रही है। दक्षिण के महाराष्ट्र में म कपास की पीढ़ लगाव का समाचार प्राप्त है।

मध्यप्रदेश—वर्षा प्रायः सार प्राप्त में हो गई है। आंध्रप्रदेश में बादल रहे। रायपुर बामागट और बिलासपुर के भागों में बारिश की अत्यन्त आवश्यकता है। कपास का बुआई बहुत हो चुका है। धान और दूसरी खरीफ की फसलों का बुआई अभी तक जारी है। कपास के हस्ताके में नुबारी बरीरा के लिये बारिश की ठहरनी की आवश्यकता है।

मद्रास—सिरकार के हिस्सों और पश्चिमी जिलों पर भारी बारिश हुई है। सिरकार और

वृत्तियों पश्चिमी जिलों के इलाक में पानी की बहुत दूरी के हिस्सों में खुरक फसलों की बुआई जारी है। साधारणतया खड़ी फसलों की हालत अच्छा है।

पंजाब—प्रांत के सब हिस्सों में बारिश हुई है और खड़ी फसलों के लिये आवश्यक सिंचन हुआ है। खड़ी फसलों की हालत बोलत और अच्छी के वर्तमान है।

सन्तुल्यमान—प्रांत के सब भागों में बारिश हुई है। खड़ी फसलों के वास्तु लावदायक सिंचन हुआ है। लेकिन बारिश की भारी आवश्यकता है। फसल खरीफ की बुआई और अमीन का तयारी प्रारम्भ है, कुछ भागों में फसल रमो के लिये अमीन की तयारी प्रारम्भ हो गई है। खड़ी फसलों को हालत अच्छी है।

देशों के अन्तर्देशीय

व्यापार का विवरण

(निज व्यापारिक सम्पादना द्वारा)

अन्तराष्ट्रीय रूपि विमोचन श्रोम म जून मास के आधारे तक जो समाचार मिले हैं उनम यह रिपोर्ट तयारी की गई है।

गुप्त

समाचारों में जान होता है कि मई और जून मास में मोसम गड़ की फसल के लिये कुछ खराब रहा। अधिक सर्दी पड़ना का बजह म एक

स्थानाभाव का कारण प्रत्यक्ष

राष्ट्र की वर्षा नहीं जा सकती।

—सम्पदक

या हो सप्ताह का गरी गड़ की बदलाव में होगा। यूरोपिय देश म जून मास की ओसलन गड़ की फसल का हालत खराब थी बनिश्चन पहले महान के भार कहीं—पर तों काकी तुकमान को आनुम होना है परन्तु बहुत सी जगहों में हालत जून १९३५ में अच्छी मी है। मध्य जून की हालत को देख कर यूरोपीय देशों का पेशावर के ने अनुमान किये गये हैं उनमे पना चलता है कि इस वर्ष पिछले वर्ष में ५०० लाख युगत गेहूँ अधिक पैदा होगी।

रूस में मई और जून मास को मौसम गेहूँ के लिये अधिक रहा। मई में मई और जून मास में पहले ही सब सप्ताह होगा था।

चावल

आसाम में कुछ बुआई इस वर्ष १९३२ हजार एकड़ हुई, जबकि

पिछले साल थी २३६६ हजार एकड़ और वेदावार को अनाया इस वर्ष २०२६६ हजार और पिछले वर्ष का २१६६६ हजार सेंटल था। बांग्लादेश का अनाया १०६६ हजार ४४५३ हजार एकड़ था। इटली में सर्दी अधिक पतन की वजह म मोसम खराब हो रहा।

कपास

मिश्र की कपास का, प्रत्यक्ष रिपोर्ट के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि इस वर्ष की पैदावार १६६६ हजार गट है जबकि पिछले वर्ष १७७७ हजार गट है ७७० पीट प्रति गट) था। मगडा में उड़ी हुई कपास की उरति का अनुमान इस वर्ष २०६००० गटों का है। पिछले वर्ष की संख्या २००००० था। पांडो इजिप्टियन मूडन का कपास को पेशावर का कुल अनुमान इस वर्ष का और पिछले वर्ष का क्रमशः २०७०० और १३६००० गट था।

कहीं बाढ़, कहीं सूखा

मानसून को गति

मोसम इस बार अपना विविध रूप दिखा रहा है। कहीं ता काना-वृष्टि से उमिड़ पड़ रही है और कहीं बाढ़ आ रही है। पश्चिमी उपमहासागर म उमिड़ पड़ रहा है। स्थिति अत्यन्त गंभीर हो रहा है। उमिड़ पांडिता का अन्त बाढ़ा जाने लगा है।

सन्तुल्यमान के बवारन, खलनक, कानपुर बाघि जिला में काका बघा नहा डर। लकन अलाहाबाद में गन ४ अगस्त की भाव्य वषा हुई है मध्यप्रदेश की अमरक नदियां—हगन घाट, नर्मदा और वाघा में अमि पृष्ठ के कारण बाढ़ आ गई है जिनमे फसलों का मोरा तुकसान पड़ च रहा है। पश्चिमोपमहासागर में पश्चिम सरा पवन का अन्त अफगानिस्तान म भा बाढ़ के समाचार मल रह है सभार के पास सिंग में बाढ़ के अन्त क तथा लायलपुर में ओर भारत के समाचार आ मान डर है अन्त नर्मदा में पतन डराइ छ रही है।

सिलिपाहान श्रोम में दो नदियां में बाढ़ आने के कारण १८० प्रादम मर गये तथा फसला और इमारतों को बहुत तुकसान पड़ चा है।

मद्रास में रूसी तेल

मद्रास में अगस्त—मल सप्ताह रशियन अण्डक प्राकट्यक लि० को (अपेष्ट २६ कोसम ४ कोने)

## चप्पल कैसे बनती है ?

गांधी जी की मोचियों को बिस्त्रा

बर्षों में सत्यप्रदाशन का एक छोटा-सा चर्माचर है, जिसे कुछ पुराने आभारवासी चला रहे हैं। अब उसमें एक मोची का विभाग और बढ़ा दिया गया है। इस में सब हुए दोरी के चमड़े के चप्पल, स्त्रीय और अन्य अनेक चीजें बनती हैं। हम लोग ज्यादातर वर्षों में चप्पल कौता मंगते हैं। इस विभाग का जो प्रधान मोची है, उसका बर्षों में हुकाप हो। हुकाप बन्द करके अब वह हमारे यहाँ आ गया है। इसे मोची का और काम ता अन्ध्रा प्रान्तों है, पर हुकाप में उसन की चप्पलें बड़ी बनाई गईं। और हम सब लोग तो अधिक चप्पल चाहे हो उठें। जैसी चप्पल बनाकर वह हमें दे देता है, उसन हम अपना काम चला लेते हैं। पर गांधीजी की मला इस में स्त्रीय हो मकता है ? उन्होंने तो मोची विभाग के द्वारा कारीगरों को मानवाधी में सुलाया, ताकि वे खुद ही मोचियों को उनका मुक्ति बना सकें। और अपने सामन उन्हें खुश नके। सो यह विन शोचकर वे सब मोची का पढ़ू-वे और गांधी जी की श्रेष्ठ के सामन छोटी-सी लूने मानन की हुकाप उन्होंने लगायी। हम सब का यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने में राष्ट्रपति इन्दिरा गांधी, सरदार वल्लभभाई, कमिश्नर के मंत्री और कार्यकारी सचिव के कुछ सदस्य आ पहुँचे। गांधीजी उस बदन उन मोचियों का सुन्दर चप्पल बनाने का पर्वार्थ पाठ दे रहे थे। वे ता यह चप्पल शिखर देखकर आश्चर्यचकित हो गए। गांधीजी मोचियों को समझा रहे थे, "दला, यह पढ़ो यहाँ इस तरह भाई लगा तो बाधिय। टाँके इस जगह देन बाधिय। तल्ले में ऊर्ध्व दैर का दाँब पहुँची हो, यहाँ चमड़ के कुछ टुकड़े भाई डाल देन बाधिय, हगोए हगोए।" अपना प्रोक्ष के सामन उन्होंने तमाम स्त्रीय चप्पलें और फिर न टाँक लगाकर क लिए उस माची से कहा। पर उचर का कार्य कारियों सामित क सदस्य कुछ अपमान में हो रहे थे। उन्होंने कहा— "पर जितना समय हमें मिला है उस में से बहुत कुछ ता य माची ही लिये लेते हैं।" गांधीजी न हँसते हुए कहा, "भा, आप लोग बर्षों हम बनाएँ पर आपाँ करते हैं ? ये राज-राज तो आते नहीं आपको भी देखना हो तो दस कि चप्पल बधिया चप्पल

कैसे बनाता है ?" बेचारे ने मोची तो उन बड़े-बड़े आभारियों के देखकर घबरा-से गये मोची तुल्य हो बर्षों में उठकर बाहर बरामदे में जा बैठे। पर उनकी उठकर की भावाज तो हो ही रही थी। इसलिये कार्यकारी वाले फिर आगे हो उठे। एक भाव्यो भावाज बन कर करके के लिये उन लोगों में कहन गया। पर गांधीजी न उठे रोका और कहा, "भा, यह क्या करना की हमें श्रुत दासजी बाधिय ना। और फिर आप लोगों कि इस बात का पता कौन चलेगा कि यह प्राम उद्योग-संघ का कार्यालय है ?"

मेरा ऐसा क्या है कि कार्य-कारियों समिति के कुछ सदस्यों को और 'हरिजन मंच' के अनेक पाठकों का शय्य इस बात का पता न होगा कि गांधीजी न जूना जोड़ा बनाना मच म पहले दक्षिण अफ्रीका में टालस्टाय नामों में सीखा था और यहाँ इस कला में उन्होंने कुशलता इलगत की थी। स्व० सोरावजी प्रसादधिया न जूना जोड़ा गांधीजी क बाप करते थे। उन्होंने गांधीजी का बनाया हुआ एक चप्पल जोड़ा बंगाल के मद्रास क स्योब्ड नेता श्री सियमन्त बोस का भेंट किया था, जिसे वे बर्षों से एक दोलासा पत्र हार के रूप में बड़ी हिकाजत के साथ रख लिये हैं।

(हरिजन सेवक से)

## पडयन्त्र के अभियुक्त छूटे

भारता साहित्य नंद कर पकते

पटना के अधिशासन लेफ्टनन्ट जज रायबहादुर पल, जी, बटवजी न आज उस मुकदमे का फैसला सुना दिया जिसका या नामी एक मोटर हाथर प ७ अन्य व्यक्तिों क विरुद्ध सफाट क बिलाक लाई और सर गणेशदत्तसदन मिनिस्टर के कलश की पडयन्त्र रवन को अभियोग था। जज महोदय ने जुरी की राय से सभ्यत शोकर सब अभियुक्तों का छोड़ दिया।

विशाल जज ने अपने फैसले में कहा कि पडयन्त्र पत्र की गवाही के अनुसार अधिकांश अभियुक्त पटना शहर के आवासीय आसी हैं, इसलिये यह पडयन्त्र रवन के उच्च श्रेष्ठ के असाध्य हैं। इसके प्रस्तावा जुरी के सामने जो बातें बताई गईं हैं वे झूठी और झगरी हैं।

## भारत के नये वायसराय

लार्ड जिनसिखगो रोवे

ई ब्रिटन की सरकारी चिकित्सि है कि लार्ड जिनसिखगो की आज्ञा, जिन का कार्य-काल आगामी अप्रैल मास में समाप्त हो जाएगा, जिनसिखगो ने लार्ड जिनसिखगो को भारत का वायसराय और गवर्नर जनरल नियुक्त किया है।

इतने पहले घोषणा क्यों हुई ?

अगले वायसराय के लिये जो नाम जिन जा रहे थे, उनमें आगका नाम प्रमुखता में आ रहा था और अन्त में हुआ भी यही। आम गौर पर इतन पहले नये वायसराय का नाम घोषित नहीं किया जाता, यह इतन पहले घोषणा हुई है, उसका कारण यह बताया जाता है कि सरकार नय सुधारों का कार्यान्वित करन पर तुला हुई है और इसलिये वायसराय भी ऐसे व्यक्ति का बनाया गया है, जिसका नय सुधारों के निर्माण में बहुत अग्रदा हाथ रहा है। 'ए' प्राप क्षुब्ध के विरोध माने जोन हैं और जिनन क संश्लिख रिजर्व कोसल तथा इमपीरियल कालेज प्रास साफर एवड टेकनालॉजी क भी चेयरमैन हैं।

हिन्दुस्तान में प्राप सर्वप्रथम १९२६ में शाही हाँफ कमीशन क प्राणक्ष होकर भागे थे और १९३३ में भारतीय शासन सुधारों की विस्तृत रिपोर्ट तैयार करन के अर्वायंट सिलेक्ट कमेटी भी प्राप की ही अध्यक्षता में बनी थी।

## मैं हाँफस का प्रधान पद स्वीकार नहीं कर सकता

सेठ जमनालाल बजाज का पक्कनप

सेठ जमनालाल बजाज ने निम्न वक्तव्य जारी किया है— "मुझे आश्चर्य है कि समाचार पत्रों में यह हल्ला छप गई है कि कमिश्नर के आगामी इजलास के प्रधान की गरी के शोभा देने के लिये सम्भव अग्रोद्वार क तौर पर कार्य समिति क सदस्यों में मेरे नाम की भी आपस में चर्चा हुई है। मैं देखता हूँ कि मने कुछ निम्नो न इस खबर का ठीक मान लिया है। पूर्व इस के कि यह शरातर अगले बड़े में बता देना चाहना हूँ कि मैं इस मोक्ष को स्वीकार नहीं कर सकता, अपर अन्य किसी कारण से नहीं। तो इस कारण न ही कि मेरा स्वास्थ्य कुछेक यह लोक लेने की आज्ञा नहीं देता।"

## १० मंरे: अनेक वायल

भौड़ पर गोली चली

लोरान को छत्र स्थिति

मलेरकोटला में आसतोष असी तक बूझ नहीं कि पंजाब की खुशी रिहासल कोहाक में असतोष ने इस रूप धारण कर दिया है। इसको आधाशो केवल २३३३३ है।

वहाँ की प्रजा को लगान तथा अन्य गरी कर्त के विरुद्ध अस्से से विद्रोहय थी। प्रजा के बहुत निवेदन करने पर भी नवाब ने कोई धन नहीं दिया। सब वे उसके विरुद्ध घोषितान करन लगे। 'गाँव वाले कर देने में इकार कर रहे हैं' यह कह कर गाँव वालों पर नवाब की पुलिस ने आक्रमण कर घेर लिया, हाताई क प्रचुर में लगान वसूल होना बाधिय। यह भी छुपा गया है कि बहुत से गिरफ्तार किये गये, लाठीचार्ज मोर लाँगीन से मारे गये। पानी तक वे कुछो से पी नहीं सकन, खान में नहीं आ सकते। स्थिति सतनी बिचम हो गई कि नवाब ने निम्नो न परीज बुल। ३ अगस्त को मोमी वलाई गई। वहाँ से लोग भाग रहे हैं और निम्नो में शरब दे रहे हैं। १० मंरे और बहुत से चपकल हुये हैं। वायसराय पंजाब गवर्नर को तार लिये जा रहे हैं।

(पृष्ठ ५६ का शेष)

भोर से यहाँ ३००० टन पेट्रोल और ३०००० टन कोकस आगल आया है। यहाँ कसी तेल का यह पबला जोखान आया है। सुना है ४०-४० हजार टन मास के आठ अहाज बरगई आर है।

## रूमानिया और भारत

के बीच व्यापार

सब शान्दियाँ उठा दी गयीं 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सिमलोनियल सम्बाधना को बात हुआ है कि रूमानिया की सरकार न हाल में अपने यहाँ भारतीय मास के आयात पर जो शान्दियाँ लगा दी थीं वे सब उठा ली गई हैं।

—सोपर (ब्रामरा) की हिन्दू धर्मशास्त्र के मास ३ में सरकार ने २ हिन्दू और २ सिक्कों की एक कमेटी बनाई है। अतः सिक्कों का शोराध बन्द है।

## हसी-दिल्लीगी

अकलम र आदमा अ उ पति नही होते।

बाह्र अकलम-र आदमी पति ही नही बनत

एक गरीब लडका न ईश्वर क नाम पत्र लिखा कि मर माता पिता क लिए ५) भेज दो।

पत्र लाहौर क डड लंर आफिस में पहुच गया। वहाँ सरसिंह नामी एक सारनर ने उम खोल कर पत्रा छोड अकलम साप ल गया। फलत शेर सिंह न ३) लडकी क पास भेज दिया।

हुल्ले महीन बाड उस लडका न पहले का तरह ईश्वर के नाम एक पत्र फिर लिखा अगलर इस बार एक के धल में निम्न श्रु और ओह दिय—

शेरसिंह का मार्नेल न भेजना पल्लुली बार उसने -) रख लिये

एक नाम गरीबी नाम को किसी स्वामी में भोजन देना था। वह अपने एक परम मित्र क पास गया और उसम बोला कि आप भी स्वामी में भोजन रहना क'कि मुझे आपका मन्त्र को जकटते हैं। वह इस तरह कि जब भी मैं पानी पीऊं तो आप लातियाँ बजा कर लागीं मैं बाह बाह दिलावना और जब मैं अपने माय का पसना पूछूँ तो आप खिल खिल कर हसना तर्ग अन्य लोग भा हलें।

दो लान कुछकद दिना म बमा क लिएपद हल हावानो हापे। वह एक भा पना नहा था कि म प्रशम म मुजुरना हाँर और माय में कोन कोन म शहर मायग व दूर माजल दूर कुच सफर करत जा रह थ कि अभावक उन दोना म इस बात पर बहस छिडू रहि उ कान म हलाके म म मुजुर रह है। व बोसव में यु पां क जगना म म जा रहे थ मार उनर एक ता यह कहता था कि हम जापान में म मुजुर रह हैं और दूसरा यह कहता था कि बगाल में म मुजुर रह हैं। कारण अ-होन सडक क किनार कुछ खासी बोललें पडी देखे की था। उन बोललों के लेवना पर 'मह इन जापान व मेह इन बगाल लिखा हुआ था। इसी वजह से वे आपस में उपरोक्त प्रकार बहस कर रहे थे।

## कोमन वेल्थ

## एड्योरेन्स कंप्नी लिमिटेड पूना

यह कम्पनी धर्मो जीवन बीमा क ससार में बचावी है और इन का उ पति का प्रय कल एक प्रसिद्ध देशमक नेता का है। गत ५० वर्ष से पूना अपने एक स्थिति प्राप्त धाम विरुध मि० जा० एस० मराठ एस० ए० आर० ए० क लक्ष प्रसिद्ध या परतु इसी प्रथमा कोही बीमा कम्पनी सन् १९२० में पहले न था। पूना क ती एक एसो सस्था वैज्ञानिक और ठोम मान पर स्थापित करना चाहत थ और इसी उद्देश्य म १ नवम्बर सन् १९२० को ओ० एन० सा० केलकर की अध्यक्षतामिथ में उपरोक्त कम्पनी की राजस्वनी करार गई। ससार उस समय कठिन आर्थिक जीवन म म गुजर रहा था फिर भा पहले वर्ष में ही कम्पनी न ११५६५० रुपये क प्रोफिट्स प्र-त। किथ तब म बाबजूद यापारिक मरी क कम्पनी बराबर अति कर रहा है।

कम्पनी अपने कामादा कि हर समय खुशिया व सहयोग तो है व इसन कर एक उजाकल उ न तन प्रभाव प्रवातन का है। जनेने निव त मु फा का पावसा का शु क प्रति ५ व वर्ष १० प्रतिशत कम कर दिया जाता है व मन्त्रा का अ न तान प्रतिनिधि हाय क। क उ म में अत्र क क यनो का आर म अ उ कर है। हमला मरठ रफ्तवाड म अपने प्रसार का दृष्ट म कम्पनी न अपना जा रत स नयो सडक म च मह माइवला नदला में भी खोल न। कम्पनी गन निटन

पर १२ प्रात हजार वायक बासल का योगमा का व आगामा व युव शन धारस्त मास में सुनाथा ज्ञान वाला ह कम्पनी का प्रय व अति उत्तम व इसका पूजो भोरनमप में हा बह प्रगाम को सिक्योरिटाई में लगे हुए हैं। बोमो करान वार्ग का अन्य कदा ज्ञान म पुत्र इस कम्पनी का विवरत विविध न्ध लेना लाभ शायक सिद्ध होगा।

## साप्ताहिक अर्जुन मे विज्ञापन दाजिये

नकल म पत्र

मकल म पत्र

## वाल काला करन का तल काला तेल (रजस्टर्ड)

इस्तमाल करन म आपक सफर वाल काली रात की तरह स्थोह हो जाय। लिजोब बसमा और महदा म हमरा क लिए दुनकार मिल जायगा। तल का तरह हावी म लगाया जाता है। दग या घन्टा नही म्ता। कामन एक मीला ५) २०। डाक महल्ल अलम। ३ शींगो पुरी कोल ई) २०। डाक महल्ल मार। मिलन का पुरा। मयम—क० पल० कपुर एराड कम्पनी लाहौर।

एजेन्स मीसा—जे० पी० भागवत पड वरज जनरल प्रवे टल मानिक वीक आग्रमर—जनरल मेहोकर स्टोअर मयिल लाहौर मेल्ला—वायुच पण्ड नासम कमिस्टम चौबना वीक आग्रमर—विशुन प्रच कमिस्टम म ना म डा।

बिना तकलीफ का कम्पनी का

बादशाही

वाल सफा साबुन

हरगुहापर मिलता है

सी.सी. महर्जन एड कुं।

सुता बाक कम्पनी

## हैजा के वास्ते अमृतधारा से बढ़कर कोई औपधि नहीं (६६ प्रति शत आराम)

हैजा क दिना जरा भा तबियत खराब हो वेग का कोई खर ग ह जाने पान म कई असावधानी हा कर कई बच्चा हा पारल हैजा का राहा हाजानो है। ओर फल एस हा दिन है अमृतधारा पीरत इन कपा का दूर कर गेती है। यदि सवागवश हैजा भी शुध हो जाय ता भी अमृतधारा पीरत शुध कर ग। तमाम कप देखते दूर हो जायेंगे।

यत्र तथा तार हा पता "अमृतधारा" द लाहौर।

विज्ञापक मैनेजर अमृतधारा भवन, अमृतधारा औषधालय, अमृतधारा पाठ आफिस अमृतधारा राड लाहौर।

देहली में पता—चिद्रीलाल घालीराम कारी बाबली स्टो।

# सचित्र साप्ताहिक 'अर्जुन' का स्पेशल (महिला-अंक) नम्बर अक्तूबर मास के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित होगा

गत वर्ष के विशेषांक से अधिक आकर्षक होगा ।

यह अंक

कई दुरंगी, तिरंगी तथा सैकड़ों इकरंगी तसवीरों  
का गुलदस्ता होगा ।

इसमें—

देश विदेश के प्रसिद्ध विद्वानों तथा विदुषियों के स्त्री-समस्या पर गम्भीर तथा  
भावपूर्ण लेख होंगे । कहानी तथा कविताओं की भरमार होगी ।

इसीलिये

'अर्जुन' के पाठकों तथा विज्ञापनदाताओं का अपना आर्डर बुक कराने तथा विज्ञापन भेजने में शीघ्रता  
करनी चाहिये क्योंकि गतवर्ष बहुत सों को निराश होना पड़ा था ।

विज्ञापन के दर आदि के लिये निम्न पते पर पत्र-व्यवहार कीजिये—

मेनेजर,

सचित्र साप्ताहिक अर्जुन, दिल्ली ।

सचित्र

# आर्य समाज

सं. १

नं० १

पृष्ठ १०

सोमवार २ सितम्बर सन् १९३५ ई० : Monday 2nd September 1935

अबीसीनिया के सम्राट



अबीसीनिया की सम्राज्ञी



भी राखतकारी  
इटली के तांभाशाह



भीमती राखतकारी  
यूरोप के चर्मयुद्ध



सि० मुर्खागिरी

मरिस घोष

वार्षिक रूप ३१० ]

मुद्रादक—कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

एक पृष्ठ का मूल्य ८)

## विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ-संख्या
१ सत्ताह क प्रसिद्ध व्यक्ति		मुखपृष्ठ
२ सत्ताह की डायरी		३
३ सत्ताह का इन्तजल		४
४ सम्पादक		५
५ पंखिरा के परमहंस	प देव शर्माजी भाचार्य	७
६ उनकी स्तुति में (कविता)	श्री जगदम्बासदा	८
७ साध	श्री उमेश चतुर्धारी	९
८ किराएक प्रति	श्री ज्ञानप्रसाद	१०
९ कैसा दीन किसान	श्री कल्याणकुमार शक्ति	११
१० हमारी विन्यासि (१)		१२
११ गणेश जी के स्वरूप क सम्बन्ध में—श्री कालोप्रसाद बिरही		१३
१२ महिला जगत		१४
आधुनिक ह्या समाज और सगात	श्री डा० पी० डी० गोड	१५
पुरुष से दो- दो बात	श्रीमती गायत्रीदेवी	१६
१३ कवि का सर्वश्रेष्ठ विमूर्ति		१७
१४ ओ विनामयि का भाषण		१८
१५ नाव क गुण	श्री सत्यनन्दाव 'वेध'	१९
१६ वातत कीन ? (कहानी)	जगननारायण पाता	२०
१७ मूल क भाग क वा विषय		२१
१८ साहित्य-समालोचन		२२
१९ लाहौर का गोलीकांड	श्री जयनारायण 'वास'	२३
२० मरवाइ राय में बेगार	श्री गणेशलाव 'यस'	२४
२१ इतनी प्रत मायाविद्या क सतारा	श्री महादेव वि० श्र०	२५
२२ व्यापार जगत		२६
२३ सत्ताह का गतिकल	श्री सूर्यकांत व्यास	२७

नकल न बच ।

नकल न बच ।

वाल काला करने का तेल

**काला तेल** (रजिस्टर्ड)

इस्तेमाल करने में आपक सफ़ेद वाल काली रात की तरह है । इ हो जायग जिजाब, बसमा और सेंदहा में हमेशा क लिय नुडकारा मिल जायगा । तल की तरह हाया में लगाया जाता है । दाग या घन्था नहीं रता । कस्तूर एक मोहरा २) २० । डाक महसूल प्रलग । ३ शीशी पूरा काँस ६) २० । डाक महसूल मारक । मिलन का पत्ता—  
मुम्बई—क० एल० कपूर एण्ड कम्पनी लाहौर ।

पत्रपत्र भौसी—जे० पी० मार्गेश पंडे ब्रजें नराल मचेन्ट म मानिक चोक ।  
आमर—जनरल मेडिकल स्टोर्स लिखल लाहौर ।  
टंडली—चतुर्थ प एण्ड बाइले, कमिस्ट्रस चौथी चोक ।  
आगरा—किशन ब्रजें कमिस्ट्रस सजा मंडी ।

## स्त्रियों के लिए

### महान् उपयोगी पुस्तक

लेखक—पं० कृष्णकांत मालवीय

सुहागरीत—मूल्य ४)

और

मातृत्व—मूल्य ४)

नं० २२, बिचरनलाल रोड, प्रयाग ।

प्रस्तावना लेखक

पञ्जाब कएरी स्वर्णाय लाला लोचनपतराय जी अपनी स्मृति में लिखने हैं—

“मैं यथा करता हूँ इस सब हिन्दू निश्चित हृदय में इसका पाठ करके और इस विषय पर विचार करके समाज संशोधन के कार्य में लगे रहूँगा ।”

अर्जुन के प्राहो के लि० सुषमसर

‘सुहागरीत और ‘मातृत्व’ नामक दोनों ग्रन्थों की एक साथ खरीदने पर ‘अर्जुन’ क प्राहो का उपयुक्त दोनों ग्रन्थ रत्न केवच है) रुपय में ही मिलेगा ।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

## नवीन वर्ष की नवीन आयोजना

हिन्दी-जगत की एकमात्र साहित्यिक मासिक पत्रिका

### माधुरी

के रूप-रंग और गुण में विशेष परिवर्तन

१—विश्व-साहित्य क प्रधान महारचियाँ क जीवन और कृतियों का साहित्यिक निरीक्षण ।

२—विश्व-विश्व साहित्यों के विश्व-विश्व गुणों का समकालीन पद्यम तुलनात्मक अध्ययन ।

३—जगत साहित्य पर प्रकृति-व्यापक ।

४—सिन्धु का गिन्नायक स्वरूप ।

५—महिला-नसार की साहित्यिक शक्ति ।

६—नये टाइप, नई छपाई, बिल्कुल नया गेट-अप ।

संपादक—श्री० रुपनारायण पांडेय

और

श्री० बांकेबिहारी मदनमगर एम्० एम्०

“माधुरी” की नई माधुरी आपका माह लेगा । इसकी रचनाओं का श्रेष्ठता आपके हृदय में हर्ष और गर्व के भावों का सवार करेगी ।

यह आपकी १४ वर्षों से सेवा करती आई है

इसका वार्षिक मूल्य ६।), छमाही मूल्य ३।) और एक प्रति का ॥०) है

यदि आप अभी तक प्राहो न हों तो शीघ्र ही बन जाइए

माधुरी का नववर्षीय बड़ी सज्जब क साथ एक सत्ताह में प्रकाशित हो जायगा । इसका मूल्य १।) होगा, शीघ्र ही प्राहो क बनिये । पत्र-व्यवहार का पता—मैनेज ‘माधुरी’ नववर्षीय-म लखनऊ ।

## साप्ताहिक डायरी

### २२ अगस्त

—कन्नड़ है कि भोपाल के बिदु कार्यकर्ता अग्रस्ता गांधी के पास वैप्रेडेशन के आकर अपना डुकडा उपार्थित।

—मद्रास सरकार ने श्रंत भर की भूमिसंप्रदाय पर श्रंत भर का हुक्म जारी किया है कि सरकार की भूमिसंप्रदाय के बिना मिट्टि सजावटी सजावटी को छोड़ कर और किसी व्यक्ति के बिना, फोटो, प्रति या बस्त पर व्यय न किया जाय।

### २३ अगस्त

—बार्नालेरी (कन्नड़) परगना में अग्रस्ता कार्यकर्ता के एक भागे हुए गांधी ने श्रीधर बत्ताल मन्ना रखा है। एक आधुनी के मन्ने की खबर है।

—बम्बई हाईकोर्ट ने श्री० सदा-कन्ध की अपील स्वीकार करके सर कोर क नाम मोदिस जारी किया है कि 'श्री प्रो अमरक' की अमानत को बन्ध करने सबंधी सरकारी आदेश कर्षा न रह किया जाय।

—हाईकोर्ट ने एक ऐमे सर गणेश की फांसी की सजा को बदल रखा लिखन १५ लखकों के-साथ व्यक्तिवार करके बन्ध कर दिया था।

### २४ अगस्त

—मद्रास के समीपवर्ती सिद्धन जहाँ पहाड़ी पर गयी वर्षा के कारण कोट्टा कल्ल रेलवे स्टेशन तथा रेलवे ब्रान बह गई।

—ओय्यूर नव्हे के ट्रेडिंग आधीट्टर मि० कन्नू ब्रान्ड मेहता को रक्त में दुष्कृत स्थितियों ने बिना टिप्पट सरकर करने पर बाज बसल कर लेने के कारण कल्ल कर दिया।

—मिल्ली के श्री० आसफजहाँ वर० पक्ष० ५० ने ब्रॉडबोर्ड में कावे क्लान की कुमया की बह कराने मोदिस पक्ष एक बिल पेश करने को सिद्धन किया है।

—शिमला में यह अफसाह गम्भीर है कि भारत सरकार ने फौज में मर्फी हूक करदी है।

—ओय्यूर के जाली सिन्को केस से स्पेडल टिप्पन द्वारा रिहाई करण अमिमुक अन्त तक 'मिथी कोष' वन। रिस्तेद्वारा न मद्रास प्रावि को तार दे दिव है।

—मर्सीसपुर के अमि० सुपर-

बल्ट पुलिस अधीनस्थान बोधरी को, डि० सुपरबल्ट पुलिस की मात-बली में न रहने के कारण नौकरी न मीलित कर लिया गया है।

### २५ अगस्त

—कोयलपुर में सिन्धु-मुस्लिम दूजे के सबब में २५ लिखकों को गिरफ्तार कर लिया गया है।

—मुम्बई के एक मन्त्रि में १५ १६ लिखकों पर सज्ज करत हुए अन्नाचम्मी के विन एक मुसलमान लखके ने गनी तलवार से आक्रमण कर दिया। लखका लुप्टी कपके और तलवार सहित गिरफ्तार कर लिया गया।

### २६ अगस्त

—कन्यपुर में एक बिचविता बगाली ली व १३ मद्रोके सुवर्ण पर जो गुगान्तर नाक एक आत बगाली एवं के सन्ध बतलाये जात है। बोरी, बाके व बधियार एकसे करने के सुमें में मुचदमा शुरू हो गया है।

—कलकत्ता पुलिस न बर्ही क्यूट सेओसिगशन के २०० सन्धियों को फाटका का खुला सल्लन क अमिमुक में गिरफ्तार करके १००-१०० की अमानतों पर छोड़ दिया है।

—प० नकारिम शुमान अफील की है कि शा० फिलिप्पर को आरत-पर्व में लोकोक की दिक्रितो के प्रति सहायपूर्ण सिद्धान्त के लिए को-हार्क-विषय प्रमोला बाधिय।

—टोफिको (जापान) में नौद की महामारी शुरू हो गई है। इस बीमारी से अग्रस्त ३५ व्यक्ति मर चुके हैं।

—लाहौर के गुज्जारा शहीद गन्ध भगवत क अमिमुक केस में २ मुसलमानों का मास व पांच मास कर्षा कर्षा की सजा हो गई। एक अमिमुक माफी मंगने पर छोड़ दिया गया।

—अग्रामाडू मुस्लिम-मनिजिस्ट्री के निजाम हैदराबाद जानल्लर चुन गय हैं।

—बुधबल्ला (मल्लपुरा) के पास जाने गल्ल में सिद्ध जागे के दो दूधो में अग्रामा हो गया, जिसके कारण ५ सिद्ध भाला का शिकार हो कर मर गये तथा अन्नक पावक हुए।

—बी० बी० पन्ड सा० आर० रेलवे की दो जगहों की गांधीयों द्वारा की सांघधानी ने लखते-लखते बह गई।

### २७ अगस्त

—मंगलूर की खबर है कि मन्ना-

बौल्ल प्रमतीय कमिस् कमटी ने २४ अगस्त की होशगमाद की बैठक में कुछ मामूली सलोचनों के साथ नये कमिस् विधान को स्वीकार कर लिया।

—कलकत्ता गजल्लाल में श्री० शरतचन्द्र बोस की कारपोरेशन की ओर न मान-पत्र दिया गया। मान पत्र चांदी के पत्र पर खुदा हुआ था जिस में तिरंगा कायली सन्धा आर कारपोरेशन का विन्द श्री अमिस् य

—अग्रमर के नागरिको न एक सवा करक वध जोरदार मीन पेश की है कि उर्ल के मेड में क्यायो को नर्वि काया क नाम स भी न आन दिया जाय।

—अग्रमदाबाद की सागा में बन्ध अमिमुक रमश मद्रोको को बम्बई जान को इजाजत मिल गई है।

—सोमा प्रान्त की मद्रुहर नती विमनाई प्राज सुवर्ण मारा गया।

—रूम की खबर है कि येनन जिल्ल के प्रमवात क्येसिलपो मन्त्रि में इस वर्ष तीसरी बार डाका पडा और ५०० नोन् से उपर सोमा लू लिया गया।

### २८ अगस्त

—बाहरी बाजार दिल्ली में शुलाममुद्दमव नामक एक पढाको को किसी न रात न पायल कर दिया था अग्रमना में आकर उस की मरुतु हो गई।

—अग्राम क प० श्रीहृण्णल्ल पाशावाल पक्ष० पक्ष० ५० क प्रीन व कमिस् कमटी पालमटरा बोड तथा अग्रमन्ना से स्वीक दे देन की खबर है।

—देहली क श्री गणपतराय बर्षाल ने मी०श्रीचतप्रासी को मोनिल द्वारा दूधिन किया है कि उनका प्रीपियन वयम न इन्डल-बिल अग्राम की किया। दीवान्नी बाव की तैयारी हो रही है।

—श्रीनगर में यह अफसाह फैल रहा है कि मिगलिन पर मिट्टि सरकार का प्रमुख हो जान के बाद सरकार लहाल को भी हथिया लगा।

—जमनी में माजी सैनिक रद स्था का उद्घाटन करने क प्रमराव में ३० जमनी १० प्राज मात फल बरलिन में फासी द द्वा गई।

—जमान में मुल लोगो का हा हाकर बड़ रहा है।

—देवबन्ध में अग्रिकारियो ने श्रीहृण्ण-कला का अल्ल राक दिया था उसके विरोध में हिन्दू-मुकानदार ता० २३ अगस्त न हरतल्ल कर रहे हैं।

### २९ अगस्त

—नलजियम क गजाराको क साथ एक मे०र दुर्घटना हुए जिस क कारण रानी मर गया और राजा भा सल्ल पायल हुए हैं।

—सीमा प्रान्त में पजियो पर फिर गाथा बलाय जान का खबर मिली है।

—बडा गवि पर आक्रमण के खिल्लिले में २३ गोरा पर मुचदमा शायर कर दिया गया है।

### ३० अगस्त

—नवाब बहादुर अ०मुल्ल-समदुर्ग क ग्हात की खबर पाकर उनकी पत्नी भी एकापक मर गयी।

—देहली न चार मास दूर एक पुलिस बोरा क अलाय जाण की प्रामास निकल्लर मिता है।

—मामा स्वकर्ताना नदक अन्न शने शन स्वास्थ्य लाभ कर रही है।

—भारत सरकार क भू० वृ० नवापर सन्ध सर जोसत भार का कामगार क प्रान्त मन्त्री बनाने की अफसाह है।

—आल्लामाई दसाई न, श्री विटठवमा पदल की वसीयत का पड कर वह सल्लह दी है कि क्या लन में फैसले न पूर्व भा खुलाय बन्ध बोस की दयन पा दिया जाय।

—गोवाडीनालय की कडकी क खिल्लिले में कशी बिपदात और कमिस् क काय कर्ता भा गिरफ्तार हुए हैं।

—अग्रमन्ना क अग्रमन्ना न भी गिरि का अग्रमनिनाम-अग्रमन्नी प्रस्ताव पण बिच जान से शकर कर दिया।

### हैदराबाद में दंगा

### १७ वायल

आग्राम आ के रथ जल्ल पर हिन्दुओं व मुसलमाना न सिक् नराबाद (दिल्लि) स उपद्रव हो गया। वह दो दिन तक रहा। मुसलमानों ने पटल का राक लिया और इमना कर दिया। पुलिस मोक पर पहुँचा हिन्दुओं न इमनाय करवा। बहुत म हिन्दु मर पाक कर आया भा गय। उपद्रव न नुकान लूला। नोना क भा तयार रहन का दुक्म न लूला २९ अगस्त का ३ बजे हिन्दु नवाली कोर दो नोन दिन तक न नुकान लुल्ल गई। इस उपद्रव में ०० क करीब गायल हुए है घर व मर गये हैं।

तनवार बिदमा क हजिडा बटारिया क प्रमगा १०० लाडिया भा उपद्रवियो से मिता है।



सप्ताह की ठवचन

# इटली ब्रिटेन से झगड़ा नहीं करेगा ?

मुसोलिनी की महत्वपूर्ण घोषणा

१५ भारतीय व ब्रिटिश गिरफ्तार

असीसीनिया के सम्राट व सम्राज्ञी का उपवास

—28-42—

असीसीनिया और इटली के पारस्परिक युद्ध की समाप्ति बड़ी आ रही है। इटली अपनी मना बराबर असीसीनिया मना रहा है। ऐसा मान्य होता है कि वह सितम्बर के अन्त तक अपनी पूरी सत्ता वहाँ अंज देना चाहता है, जिसमें अष्टम्वर में युद्ध आरम्भ किया जा सक।

असी गत १० मारीच की बुल-जान में इटैलियन सैनिकों को एक वृत्त प्रवेश भी किया। इसी दिन इटैलियन सैनिक अष्टम्वर की महत्वपूर्ण बैठक हुई। इस बात मुसोलिनी ने एक बहुत महत्वपूर्ण वाक्यांश की है। जिसका सारांश निम्न लिखन है—

असीसीनिया में इटली को कुछ करना चाहता है उसमें ब्रिटिश सरकार को टारन की कोई जरूरत नहीं है। इसी दिन व कोई तुल्यकाल नहीं करना चाहता क्योंकि यूरोप की शांति के लिए बिना क सहयोग की ओर महत्व है उसे वह महत्व करता है।

४ सितम्बर की जिनवा की बैठक में इटली की सरकार अपनी वक्तव्य पेश करनी, जिसमें असीसीनिया सन्ध्या अपनी स्थिति पर स्पष्टीकरण होगा और एक लम्ब वक्तव्य द्वारा इटली असीसीनिया के सम्बन्धों का इतिहास बतलाया जायगा।

कल में टुकना के साथ यह भी कह दिया गया है कि—

अपने पापक हिन्दी की रक्षा इटली आसिर नक करना चाहता है। उसका लगाव है कि इस असीसीनिया के युद्धों पर परिस्थिति पर अन्तर नहीं पड़ना चाहिये। परन्तु यदि कोई राष्ट्र इटली को असीसीनिया में जहाँ कि अत्यन्त आध्यात्मपूर्ण दायता का ताव है और असीसीनिया रहन सहन बहुत हैं, व्यवस्था स्थापित करने में योग्यता तो वह अपने लिए ऐसे युद्ध का खतरा माने जो विश्वसनीय हो जायगा।

इस प्रकार जहाँ उसने ब्रिटेन में वर न बोलन का आश्वासन दिया है

वहाँ असीसीनिया के मामले में पेर पीठ में करने की इच्छा भी प्रकट की है। यह भी कह सकते हैं कि युद्ध की पूरी तैयारीयें वह कर चुका है और फलश भी हम साक्ष्य नुर है। कास कर गइ और चावज जिस में चाप पदार्थों की भी उनकी कठिनाई नहीं होगी।

सैन्य व्यर्थों क अत्यन्त दिन सीम्योर मुसोलिनी दिन भर बड़े असाह में रहा और एक साल मोटर के नवी तनी के साथ पहाड़ों में ऊपर नीचे दौड़ता रहा, यहां तक कि पहाड़ों को बहुत कोशिश करन पर भी उस की रफ्तार को नहीं पड़ सक। बोलजानो नगर में, जो कि सैन्य व्यर्थों का कन्द था रातो-रात मुसोलिनी की तस्वीरें व महापुरुषों इटली न जो भाग लिया उसने योनि क पांटर इतना तावद में चिका दिया गर कि सबेरे उठ कर लोगों ने दाना तो चरो की किर्कुरियां भी नजर न आईं।

यह भी सबर है कि इटली सरकार ने १५ भारतीय व ब्रिटिश व्यापारियों को सत्ता (इरिट्रिया) में गिरफ्तार कर दिया है। उन पर अफगान यह लगाया गया है कि उन्होंने अपने की कुछ व्यापारिक सत्ताओं को लिखा था कि वे इटली क प्रदेश में शासन न करें।

सब यूरोपियन राष्ट्रों की प्राप्ति ४ सितम्बर को होन वाली राष्ट्र सच की बैठक पर लगी है। सभी सरकारें इसक लिए अपनी रिपोर्ट तैयार कर रही हैं। इटली भी अपने मामले का निवेदन, नकली व अल्प भागजों द्वारा पेश करने की पूरी तैयारी कर रहा है। फ्रांस, ब्रिटेन न भी रिपोर्ट अत्यन्त सावधानी से तैयारी की हैं। मारश, स्वीडन, डेनमार्क और फिनलैंड की सरकारों भी सोच रही है कि ४ सितम्बर को क्या कल अस्तित्व पर किया जाय।

इस असीसीनिया में युद्ध को अत्यन्त सारी देख कर तैयारीयें कर रही हैं। शांति रक्षा के लिए असीसीनिया के सम्राट व सम्राज्ञी

न शांति की मांगों के लिये एक सप्ताह तक उपवास शुरू किया है। सम्राज्ञी पहले भी १६ दिन को उपवास रख चुकी है। विदेशी लोग अपनी यात्रिया छोड़ रहे हैं। असीसीनिया बैंक पर विदेशी सिक्कों की बड़ी मांग है। अतः उस बैंक ने विदेशी मुद्रा का पैसा खर्च कर दिया है। इटैलियन-मुद्रा-वाच अपने कागजात को वहाँ से हटा रहा है। और विदेशी लोग भी अपनी सामान्य अपने २ मुद्रावाच में लेज रहे हैं।

## बरमा, बंगाल, बिहार व सिंध में बाढ़ हजारों आदमी बे घरवार

फमच की भारी उतसानी इस सप्ताह बाढ़ न फिर अनेक स्थानों पर आक्रमण किया है। प्रभुत्व नहीं में बाढ़ आन में खिचकाई नामक शहर भारी खतर में है। सिराजगंज के सिद्धि कौट व अन्य सरकारों इमारतें पानी से खिच गई हैं। रामावर नदी में फिर बाढ़ आगई है। पहले बाढ़ से ही १०००० व्यक्ति अन्तरांतर होयय थे। अब की बाढ़ ने और खतरा पड़वाया है। रानोन्तर टुटती और दुमकार नामक स्थानों का समस्त इलाका बाढ़ के कांयय पानी में डूब गया है। पान क जेतों को सत्त उतसाना हुआ है।

बिहार में देहरी इलाका रेलवे का एक गुल मा खतम होया है। बहुत से गांव जल निमग्न हो गये हैं। पंजाब में सिरसा नदी में बाढ़ आगई है। सिरसा नदी के १५ गांव पानी में डूब गये हैं।

बंगाल में पदुमा नदी ने बंगाल दा रखा हैं। देहाती से सर्वथागी की खबरें आ रही हैं। अतुनामता ११३ गांवों का पूरी तरह नाश हुआ है और २५२४ घर नष्ट गये हैं। १६०० घरों के मरन की भी खबर है। पना नदी न पूर्वी बंगाल के द्वार बान्धनी में आसक की राज्य उपस्थित कर दिया है। सभी अन्ननिमग्न हो गई है। पाना की खबर १२४४ का बाढ में केवल ६ इंच मीचे है।

बरमा में गोवादी में जमातुदा पान को बहुत उतसानी पड़ गई है। १२००० बीर चावज मह हो गया है। पेरु व सारजरी में भी बाढ़ आन ने अनेक शहर का आधा हिस्सा जल-निमग्न हो गया है। मुम्बईकरपुर की भी खबरें हैं दोन की खसामनी है। सोतामकी में तो पानी भी पानी है।

## रूपाना वनाम तलवार

पंजाब में दो आन्दोलन

पंजाब की सिविल सुधारने के इरादा पर बिगड़नो हो जा रही है। एकदमर खिलों न एक में अग्रिक कृषावर कने का आन्दोलन शुरू किया है। सिविल का कहना है कि व सपने धम के अतुनार एक में अग्रिक कृषाव भी रख सकते हैं। कई सिविल पर एक में अग्रिक कृषाव रखने पर मुम्बई की क्रिये गय। किसी अन्न ने जो खजाने की ओर किसी ने रिखा कर दिया। कय यह मामला हार्ड-हार्ट में पेश है। पंजाब सरकार ने यह घोषणा प्रकाशित की है कि अब तक हार्ड-हार्ट का फैसला नहीं हो जाता, वह तक किसी विषय पर मुकदमा न लगाया जाय।

इपर मुसलमानों न भी तलवार आन्दोलन बतलाया है। जैन सिक्कों को कृषाव रखन की छूट है वैसे की मुसलमानों को तलवार रखने की छूट न हो जाय।

फाल इंडिया मजलिस अहमद की कार्य-समिति न पंजाब कांफ्रि के अपने प्रतिनिधियों (सर्वरों) को हिन्दुत्व ही है कि वहा व भारत पकट में पैना सगुवन करान का प्रयत्न करें। इस क लिये पंजाब पर न सितम्बर को तलवार दिवस मनायें की घोषणा की गई है।

## पैसा और वक्त

क्यों सौ डालने हो ?

मिरकशुल पना

केलाश पवत क माल वैदी-शक्ति वाली अनेधियों में यह ग्लास बनाया है। उनको सुन्दर बप्पन में रखा है। इस तास न कोई भी मनुष्य बनाम मून, वर्तमान तथा भविष्य की हाजत जान सकता है। मून मनुष्यों के खाद बातचीत कर सकता है, पुन अन्ध कहीं व यह भी जान सकता है तथा ग्रेम अदालती हाथ, अमरिजन पदुकर, लौकी, चवरा, परीकों का परिधान बरकर में इन बिजय पा सकते हैं, सिसनेखल तपुडकी और वेनग मिश खरीदा है। इन जगत में मुम्बियों का वह सत्ता मित्र बना रहती है।

अगर फायदा न हो तो पैकिम और पार्लेज का कुछ करवाकी हाथ बावस रिखा जायगा। दरेक करीद सके, इस लिये कोमल मामागन ६०० पररेर क लिये ५ डिजिन और १ हावक अमरिजन से पड़िते मेकन, न बनाम अन्न। (१६)

मेनेअर स्वीपीचपुत्र नरी मयु, रोड [१०१] देवनाडी।

# अर्जुन

सोमवार ता० २ सितम्बर १९३५ ई०

महोदय प्रत्यक्ष हरे नन्द्यं न पतायामस्य

## रचनात्मक कार्यक्रम का नभूलो

जब पहले पहल कमिंस कार्य-कारिणी समिति न पटना में अपनी असहयोग की नीति छोड़ कर कोसिल-प्रवेश की नीति को अपमान की योजना पर विचार प्रारम्भ किया था, तभी कोसिल-प्रवेश विरोधियों न इस का विरोध करते हुए कहा था कि यदि कमिंस अमेरन्धी व कॉलिसों के जाल में पक गयो, तो रचनात्मक कार्यक्रम धूल में मिटा जायगा। आज डेढ़ साल बाद कमिंस के कार्य पर दृष्टिपात करने से खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि उस समय का प्रेरित भव निरावार नहीं था। यद्यपि उस समय कांटेकी नेसाहों ने इस भय का तीव्र प्रतिवाद किया था और बम्बई कमिंस न भी देख के सोमन एक व्यापक रचनात्मक कार्यक्रम रखा था, तथापि कार्यक्रम का वह सब उ साह कमिंस की समिति के बाद आज थोले चुनाव संग्राम में ही स्फूर्तिप्राप्त हो गयो और चुनाव में अफसर्ता के बाद सब कमिंसि कार्यकर्ताओं पर विजय का ऐसा मद् द्वा गया कि ये यह भूल गये कि विपक्ष रचनात्मक कार्यक्रम उब के सामने पड़ा हुआ है। भागो अमेरन्धी चुनाव ही सफलता ही उनका ज्येष्ठ हो। अमेरन्धीप्रवेश तो वस्तुतः हमारे स्वतन्त्रता संग्राम का एक आवश्यक, परन्तु छोटासा मोरचा ही है। इस में अधिक उसे महत्व देना घातक है। लेकिन आज की स्थिति यह है कि कां पार्लमेंटरी बोर्डों को कमिंस का सर्वसर्वा बना रह है। आज प्रत्येक मन्त्र 'पर इवी बोर्ड' की दृष्टि से ही विचार किया

जाने लगा है। कमिंस का अग्रगण्य कौम हो, इस पर विचार करते हुए हमें यह सोचना पड़ता है कि वह पार्लमेंटरी बोर्ड के कार्य का संघालन अशुभी तरह कर सके। पहले यह खयाल किया जाता था कि पिछले अमेरन्धीनिर्वाचन के बाद कमिंसो कार्यकर्ता कुछ ठोस काम करंगे, लेकिन आम प्रचार मन्त्रालों का एकाध बार नाम तो सुनाई पड़ा, पर वह स्थायी न रह सका। अब नय शासन-विधान और कोसिल-प्रवेश तथा पद-प्रवेश को बचाई रहने जोंरों से डठ खड़ी हुई है कि रचनात्मक कार्यक्रम को भावाङ्क पहले तो कोई उठाता का साहस ही नहीं करता और यदि कोई उठावे भी, तो इसने पूर्ण संदेह है कि वह कोसिल-प्रवेश के महाजाल में चिपुल होजायगी। पार्लमेंटरी शासन हमारे ऊपर इतनी घर कर चुकी है कि हम सभी सस्थाओं पर अधिकार करने छिए उत्सुक हो रहे हैं। अभी प्रतीय और जिला कमिंस कमेटीयों स्थायीय संस्थाओं के चुनाव की ओर शोर से तैयारिण करन लग्यो है। और कोई कार्य हम आज सभिस के सामने नहीं है।

हम यह नहीं कहना चाहते कि कोसिल-प्रवेश या अन्य सस्थाओं पर अधिकार करना अनुचित है और कमिंस को इस ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। हम स्वयं इन काष्ठों में कोसिल-प्रवेश और चुनाव की तैयारी का समर्थन करते हैं। कोसिल प्रवेश आवश्यक, है और उसकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। परन्तु हमारा कहना यह है कि कोसिल प्रवेश को हम उचित से अधिक महत्व न दें, उसकी जितनी आवश्यकता है, उससे अधिक आवश्यकता हम न कते। कोसिल में प्रवेश कर सरकार में मोरचा देना हमारे स्वातन्त्र्य-संग्राम का एक छोटी सा अंग है। यदि वह व्यापक मोरच कमिंस के अन्य कार्य-कर्मों को हमारी दृष्टि से अधिकतर कर दे तो यह अत्यन्त हानिमद् होगा, और आज तुल से

यह स्वाकार करना पड़ता है कि पार्लमेंटरी बोर्ड न पहाड़ सा रूप धारण कर सब कार्य-कर्मों के हमारी दृष्टिसे अधिकतर कर दिया है।

आज कमिंसियों का ध्यान न किसानों का संगठन की ओर है और न मजदूरों का आमप्रचार व संगठन के कार्य का श्रोग्लेष तो हुआ, लेकिन कमिंसो अपना ध्यान इस आवश्यक विद्या में स्थिर न रख सके। कमिंस के जितन सदस्य हर एक प्राण का बचान चाहिये थे, वधर भी ध्यान बहुत कम दिया गया। कमिंस का कवल संग्राम के समय ही राष्ट्र का ननुल नहीं करना उम ता समुण समय राष्ट्र को प्राश देन ही और सार साल के लिय एक नीति स्थिर करनी है। कमिंस को यह न भूलना चाहिय कि उम नय भारतीय राष्ट्र का निर्माण करना है और वह निर्माण युद्ध क दिनों में नहीं, सचिकाल में हो सकता है। प्राचीनो की सेवा, उन में स्वा-मिमान के भाव भरना, उन क दुःख वृं दूर करना, मजदूरों का संगठन और पुर्जीपतियों के अत्याचारों से उनका आशय सब ऐसे कार्य हैं, जिनका और ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त सर्व साधारण जनता को राष्ट्रियता और राजनीतिक सिद्धांतों की शिक्षा देना भी कमिंस का मुख्य कर्तव्य है। अभी हमारा संगठन ही बहुत दीर्घा है। बम्बई कमिंस ने जो मया संगठन बनाया था, उसक अनुसार कितनी प्रतीय कमिंस कमेटीयों न अपना ऐसा सुन्दर संगठन किया है, जिस पर वे गर्व कर सकें। कमिंस को कुछ ऐसा प्रयत्न करना चाहिय कि वह सर्वसाधारण जनता के जीवन से सम्पर्क रहे, जनता प्रत्येक प्रश्न पर कमिंस के दृष्टिकोण और आदेश देकन की प्रतीक्षा करे।

यह सब आवश्यक कार्य हैं, जिन की ओर कमिंस के नेताओं को अपना ध्यान विशेष रूप से देना चाहिये। कमिंस के नेताओं में हम अपनी पूर्णशक्ति के साथ अनु-रोध करना चाहते हैं कि वे पार्लमेंटरी कार्य को करें, परन्तु उसे इतना

अधिक महत्व न दें, जिस न कमिंस का समस्त रचनात्मक कार्यक्रम उप लित हो जाय। अमेरन्धी-प्रवेश आखिर एक साधन हो दे, साथ का स्थान वह नहीं ले सकता। सत्य-प्रिय आज स्थिति हो गया है। इस लिय सभा प्रवर्तनीय कार्य स्थिति कर दिय जावे, यह व नहीं सोचने हेगे, लेकिन आज स्थिति नो यहा है। प्राचीनों की आर कमिंस न बहुत कम ध्यान दिया है। उन की सेवा करना यद्यपि अग्रगण्य कठिन है, तथापि अग्रगण्य महत्वपूर्ण है। कमिंस का भारतीय जनता क हृदय तक, स्नेहियता तक पहुचन की आवश्यकता है, अमेरन्धी और कोसिलों क भाव और शान्तिार भक्तों में भारतका हृदय नहीं है, व तो सरकार की किले ह, उन में उसन मारवा केन हुए यदि हम उन्हें हो मूल जावे, जिनके हम प्रतिनिधि होने का दावा करत हैं, जिन क लिय हम लड़ रहे हैं, तो यह दुरस्थिति न होय। यहा कमिंसो कार्यकर्ता हम पकियों पर ध्यान देंग?

## सम्पादकीय विचार

मुसलमानों न साध्याधिकता

मुसलमानों और खाल कर पंजाब के मुसलमानों में बहसी हुई मित्राधिक भ्रमोक्ति जो भीषण रूप धारण कर रही है, वह आज खल-मुख अग्रगण्य विचारणीय गंभीर हो गया है, उसकी अधिक समग्र तक उपेक्षा नहीं की जा सकती। अभी शहीदगंज गुच्छरा अफगोनेन विली नरह शान्त हो हुआ था कि गोर कफूरशाह क सरकार को लेकर एक दूसरा भगड़ा खड़ा कर दिया गया है। खलीफ जदीक गाया पर० एल० ५० जैल प्रमुख व्यक्ति इसमें उनका साथ दे रहे हैं। अभी यह आन्दोलन खल हो रहा है कि तलवार रखन क नाम पर एक नया आन्दोलन जारी किया गया है। सिला का जैन उपास रखन की ठूट है, वेन हां मुसलमान भी तलवार रखना चाहत न। प्रथम व्यक्ति को आत्मरक्षा शस्त्रास्त्र रखन का अधिकार होना चाहिय और इस

लिय मुसलमानों का इस मार्ग को अनुचित नहीं ठहरा सकते, लेकिन मुसलमानों के वर्तमान आन्दोलन की नद में जो मनोविषय काम कर रही है, यह सामग्र्याधिक और निष्ठ प्रमाण है, सिद्ध रहते हैं तो मुसलमान क्या न रहे, इस प्रवृत्ति को बढ़ाया जाय तो सम्पूर्ण राष्ट्र में एक विद्रोहिनी फैल जायगी। फिर मुसलमानों का यह आन्दोलन अर्थात् चरमकी भी है। सिलों के धर्मग्रन्थ रक्षाने का आदेश दे गये। अब मुसलमान भी यदि एक नया पीर बना कर मया मत बदल लें और वह शस्त्र रखन का आदेश दे, तो शायद उन की समस्या सुलभ सकती है। वर्तमान परिस्थिति में तो इस्लाम के नाम पर शस्त्रग्रहण की छूट मिल नहीं सकती। क्या मुसलमान नया सामग्र्याधिकता की शक्ति को उक्तान का प्रयत्न करेंगे ?

—:—:—

### निष्पन्न निपटारा की माग

सम्पूर्ण लोकमत को ठुकरा कर ब्रिटिश सरकार न निश्चित कर लिया है कि क्या को भारत स प्रयुक्त किया जाय। प्रयुक्त करण की स्थिति में भारत और बर्मा के पारस्परिक आर्थिक सम्बन्धों का निपटारा कैसे किया जाय, यह बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न था। इस प्रश्न के निरूपण में भारत और कर्मा के हितों का अत्यन्त सम्बन्ध है, इसमें किसी का हस्तकार न होगा। लेकिन हमारे यहाँ जो भी, धोखा है। इन आर्थिक प्रश्नों का निपटारा करने के लिये सरकार न जो दिव्य-मन्त्र बिछाया या उसमें न तो एक भारतीय रखा गया और न कोई बर्मी अर्थात् जिन दो राष्ट्रों का आरम्भ प्रश्न था, उन दोनों की ही प्रत्यक्ष करण निपटारा कर दिया गया। दिव्यमन्त्र में तीनों प्रश्न ही रखे गये। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होना था, उन दोनों रिपोर्ट अत्यन्त असत्यापन्न निकले। निम्नकी भी असत्यापन्नक। ब्रिटिश नागरिक भारतीय वृष्टि न विता कर ही नहीं सकता। उसपर तो कर्मा का भार बढ़ना या हलका होना नहीं।

वह उस प्रश्न के साथ एकीकता अनुभव ही नहीं कर सकता। अब कैथेरिन थारु इण्डियन वेम्बल आरु कामर्मे न इस दिव्यमन्त्र में परिवर्तन प्रकट कर एक निष्पन्न टिप्पणवर्जित में भारत और कर्मा के लोकमत के सर्व प्रतिनिधि हो, विधान का मार्ग की है। लेकिन क्या सरकार न इस मार्ग को स्वीकृत करने की आशा की जाय।

—:—:—

### मार्गदर्शिक मभा का फलवा

पंजाब के कुछ उद्भवों में प० बुद्धदेव जी का लेकर एक खासा विशद विद्वत् गया है। अल्प दिव्यमन्त्र की मूर्त की आर्थ्यसमाज पूजा नहीं करता, यह बताते के लिये उन्होंने अल्प के चित्र पर पाव रख दिया था। इसी बात का मतगुरु बना कर कुछ व्यक्तियों ने उनकी खब मभा को का मुक्त कर उनके विरुद्ध विप उल्लाना शुरू कर दिया। यह स्पष्ट है कि जिस यह तराके स यह आन्दोलन चलाया गया, वह अल्प अनुचित, निम्नोप और स्वाधर्मित है। यदि यह आन्दोलन उम्हा कुछ खास धन्यता तक रहता, तो हा-यद हम इसकी चर्चा करना भी अनावश्यक समझते, परन्तु आर्थ्यसमाज के उपयोग स उन्ही लागू न मार्गदर्शिक समा म भी प० बुद्धदेव जी के विरुद्ध प्रस्ताव पास करा दिया। मार्गदर्शिक समा आरु इतनी शिथिल है कि उनका भारतीय समाजों पर कोई प्रभाव नहा है, लेकिन फिर भी उसकी कानूनी स्थिति उच्च है। इस लिय उसकी चर्चा आवश्यक है। मार्गदर्शिक समा की बैठक में प्रायः वही सदस्य उपस्थित थे, जो इस आन्दोलन के प्रवर्तक हैं। अल्प होता कि अल्प सदस्यों के अभाव में यह प्रश्न उपस्थित कर दिया जाता। दूसरी मन्दीर वात यह है कि प० बुद्धदेव जी के विरुद्ध नृतवा दन न पूर्व उन का वक्तव्य सुना नहीं गया। ११ ता० की समा की बैठक थी और १२ ता० की प० बुद्धदेव जी की समा में उपस्थित होन का पत्र मिला। एक साधारण

आदमी को यह समझ सकता है कि प्रतिवादी की भाव सुने। निम्न निरूप देना अनुचित है। मार्गदर्शिक समा ने वही कर के अपनी प्रतिवादी को हानि दी की है। समा के अधिका-स्थियों का कथन है कि जब अपने निरूपण पर पुनर्वाचन कर और इस तरह अन्तर्वाचन के अपनी स्थिति को सामाजिक जगत में उपहासास्पद न बनावे।

—:—:—

### स्वास्थ्य की कामना

धीमती कमला नहक के स्वा-स्थ के सम्बन्ध में यूरोप से आन वाले समाचारों न देश को एक बार चिन्तित कर दिया है। वे बहुत समय से स्वास्थ्य यों और भारत में स्वा-स्थ-ज्ञान होता न देश कर उन्हे यूरोप जाना पया। उनके और पात और युक्त भारत के समूह पाहत जवाहरलाल नहक स्वा-स्थ की कै है। वे उनकी बिकरता कर नहा सकते। नहक परिवार न राष्ट्र के लिए अपने को उत्सर्ग कर दिया है। वह राष्ट्र का है और इस लिए उस परिवार की आपत्ति भारतीय राष्ट्र की आपत्ति है। हम भी 'अर्जुन' के पाठके क साथ प्रगल्भ भगवन् स प्रार्थना करते हैं कि वे भीमती कमला नहक को स्वास्थ्य दें, ताकि राष्ट्र की आपत्ति दूर हो सके।

—:—:—

### आत्म-रक्षा की नीमा

हैराई जगत् के धर्म-ग्रन्थ पोष न शान्ति-रक्षा के लिए कठम प्रकाशित करते हुए एक बहुत अल्पकाल बात कही है। आजकल जो भी राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण की तैयारी करता है, वह अपनी तैयारियों के सम्पूर्ण में एक ही मुक्ति प्रायः दिया करता है कि आत्म-रक्षा के लिए ही उसे सब तैयारियाँ करनी पड़ रही हैं। भीषण से भीषण तैयारियों को आत्म-रक्षा के नाम से उचित ठहराया जाना लगा है। पोष ने इस कहाने का अन्त में हुए शीक ही कहा है कि "आत्म-रक्षा की कोई

सीमा तो नियत करने चाहिये।" आज तो आत्म-रक्षा के नाम से कुछ की किया जाना लगा है। इसकी चर्चा भीमिया पर आक्रमण भी कर रहा है, तो प्रान्ति बलों की रक्षा के नाम पर। बहुत-बहुत एक 'आत्म-रक्षा' की सीमा नहीं नियत की जा-यगी, तब तक यह कहाना बराबर जारी रहेगा।

—:—:—

### लोहाक की स्थिति

लोहाक की स्थिति अभी तक नहीं सुधरी। आज भी वहाँ न प्र-अन्तोरजनक समाचार आ-रहे हैं। लोहाक के अधिकारी किसान आंदो-लन को, जो बिशुद आर्थिक प्रश्न है, जाट आंदोलन कहकर और उन कोर के आंदोलन स सम्बन्ध बता कर हट नहीं सकते। अधिकारियों का यह आरोप लिया है, यह पक्ष अन्त जाट नेता कह चुके हैं और अब भी अन्तनाला वजा न अपने वक्तव्य में स्पष्ट मन्त्री द्वारा आरोप का सत्यन कर दिया है। लोहाक का आंदोलन विशुद आर्थिक आंदोलन है। किसानों पर कर्तों का भार इतना अधिक है कि वे उसे बरदाश्त नहीं कर सकते। लोहाक की पचायत में महाजन, ब्राह्मण और राजपूत व मुसलमान भी सम्मिलित हैं। पकड़े गये और आहत व्यक्तियों में नेताओं की शिष्यायें दूर न करके उनपर अत्याचार व दमन जारी रखने की नीति कभी प्रत्ये में चलान नहीं हुई, यह अधिकारियों को समझ लेना चाहिये। किसानिभ आर्थों को लेकर चलाया गया आंदोलन दबाया जा सकता है, परंतु उन आर्थों को लेकर जैसे कि लोहाक का आंदोलन है—चलाया गया आंदोलन दब नहीं सकता। क्या लोहाक के अधिकारी हट और उग्रमर्क की नीति को त्याग कर उदारता से काम लेंगे ?

—:—:—

धी अरविन्द घोष वन महापुरुषों में से हैं जो संसार में कभी कभी व्यपक होते हैं। उनकी महापुरुषता अभी संसार को मालूम नहीं है। मालूम होने को है, कम से कम मेरी ऐसी ही धृष्टा है।

ऐसे महापुरुष के विषय में भी अपने मतलब में और विवेकतः बचपरी भारत में लोगों का बहुत कम ज्ञान है। इसका कारण यह है कि वे इस इतिहासवाजी के युग में भी विस्थावर (प्रोग्रेसिवा) में जरा भी परिवर्तन नहीं करते हैं। साथ में— साथ बबकप-परमेश्वर में— प्रतिष्ठित होने के बराबर उन्हें संसार की और किसी भी बात को परवाह नहीं है। इतिहास की तो उन्हें जरा भी परवाह नहीं है। यही कारण है कि हम लोग हमारे विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं, कथन जानते हैं, या प्रम पुरुष होते आते हैं।

गत बल्लभ प्रभु में मुझे पविचरी के भी अरविन्द आश्रम में जानकर ही म स तक रहने का सुकस-स परमेश्वर का कृपा सं मित्रा। इस को माक व परिवच के कायार कर ही इस लेख में मैं भी अरविन्द के विषय म कुछ जानकारी पाठकों को देन का यत्न करूंगा।

### भी अरविन्द की सिद्धि

सुरकार उनको एक और अना किन्द बरक उभरी है। काम जताता बल्लभ एक कानन देश-भक्तों के पुरोहित है। इसी शरते उनको ७-८ बरक के माक व प्रमाण वृ के शिव निमित्त बना जा चुका है। पर वे काम इस सिद्धि में उत्तर को चुके हैं। कम से पचीस वर्ष पूर्व वे बरक प्राप्ते तान पालनपन बताते हुए काय थे। वर हीश ही उनके दो वासनपन— कर्त्तव्य एक अरुणा कर्त्तव्य मरत माता व अनामाता की कोप वर का पालनपन और दूसरा भारत माता को बचन मुक्त करन का वासनपन— हीश वरत पालनपन में कर्त्तव्य अनामा के साक्षात्कार के पालनपन में काम गय। पविचरी बल्लभ कर वे पुरा तरह योग साधन में भीन हो गय। पाठकों को आश्चर्य होगा कि मत २० वर्षों से वे अपने अनाम तक से बाहर नहीं निकले। वे योग के सिद्धि प्येव के सिद्धि कायना कर रहे थे उस में उनको सन् १९२६ के २८ नवम्बर को सफकता प्राप्त हुई। तभी से भी अरविन्द न कभी को योग सिक्काने का बात भी अपने ऊपर किया। कोन तभी से भी अरविन्द योग आश्रम का आश्रम हुआ। इस

## पविचरी का परमहंस

(१०—भीपुत २० देवशर्माजी आचार्य गुप्तका काँगड़ी)

गत वर्ष मास में आप पविचरी के परमहंस भी अरविन्द घोष के यहाँ रह कर वापस आये थे। हमारे विशेष अनुरोध करन पर उन्होंने यह लेख लिखा है। आशा है, पाठक प्रमोयोग म पढ़ें।

से पहले कोई उनका बाक्यवाद आश्रम म था।

### माताजी

भी अरविन्द के योगाश्रम का बर्तान वहाँ की श्रीमाताजी के वचन के बिना नहीं हो सकता। वहाँ पर कम पूँच सकिता रहती है। जिनका नाम मीरा है। आश्रम में उन्हें सब माता, या, मम् (mother) नामस ही जानते व पुकारते हैं। उनकी आध्यात्मिक स्थिति भी अरविन्द की स्थिति के बराबर ही समझी जाती है। जब भी अरविन्द कैवल साधना में लगे हुए थे तब भी कोई लोग उन के साथ साधना के लिए आकर रहते थे। अन्ही विनो व माताजी लगभग १९१३ में पविचरी में आईं वे जापान में भी रहे हैं और भारत में भी अर्थात् भारत बाहर पविचरी में अनामक ही आईं। वे भी आश्रम से ही आध्यात्मिक साधना में थीं। यहाँ भी अरविन्द से मिली और आश्रम में रहने लगीं। सन १५ में योगा-विद्य युक्त के बराबर ३६ फूँस कोट आना पड़ा युक्त के माक वर वे यहाँ आईं। कायों पविचरी के काइह में भी अरविन्द वे निवासता थी। धीरे २ भी अरविन्द को यह मालूम हुआ कि उन माताजी की आध्यात्मिक स्थिति विशेष उत्तम है। अब तो वैसा ही मन उत्तर कहा है, योगी की स्थिति एक समझी जाती है। बकि कहाँ तक समझा आता है कि जो माता भी अरविन्द को कभी जाय वा लक्षण वही आश्रम वात लोग ने मालूम होजाती है। जब म आश्रम आरम्भ हुआ है, आश्रम की सब बाहरी व्यवस्था व माताजी ही करती हैं। भी अरविन्द तब से न किसी में बात करते हैं, और न मिलते हैं, मोक्षों हा खब काम करती हैं। मानी व माताजी प्रकृत हैं और भी अरविन्द युक्त हैं।

आम कोरों में पैठा हुआ है कि वे माताजी वास निहार की धर्मपत्नी हैं। पर यह सत्य है। २० वर्षों का विवाह होता है।

भी अरविन्द के दर्शन जैसा मेरे कभी कहा है कि भी

अरविन्द २८ नवम्बर १९२६ स सर्वथा एकान्त में ही होगये हैं, तब म उनसे न कोई मिल सकता है, न देख सकता है, बात ता करंगा ही क्या। माताजी भी एक मात्र अप बाव हैं। पर उन्हें भी बहुत हो क मिशन की आवश्यकता होती है। तो भी आश्रम लोगों क काम क लिय यह व्यवस्था की गई है कि वहाँ में तीन दिन एक दर्शन किय जा सकते हैं। वे तीन दिन निमित्तस्थित है—

२१ फरवरी (माताजी का जन्म दिन)

१५ अगस्त (भी अरविन्द का जन्म दिन)

२८ नवम्बर (भी अरविन्द की सिद्धि का दिन)

इन तीन दिन जो कोई उनके दर्शन करना चाहें उन्हें पहले म दर्शन की आशा प्राप्त कर लेने चाहिए। बिना आशा प्राप्त किए किसी को वहाँ नहीं जाना चाहिए। येम ही आश्रम व्यर्थ हो सकता है। गत २१ फरवरी के दिन तीन उनके दर्शन का आम प्राय किया। लगभग ३०० आश्रमी भिन्न २ अनाम म दर्शनाथ काय थे। इस बार क दर्शनार्थी महापुरुषों में से भी काको काले-लक्षर का नाम उल्लेखनीय है। पाठकों का यह ध्यान रखना चाहिए कि इस दर्शन क समय में भी उनम बातचीत कोई नहीं की जा सकती है। दर्शन के लिए १, १। निमत प्रत्येक दर्शनार्थी को मिलता है। प्रथा यह है कि दर्शनार्थी कुछ व माला लेकर जाते हैं उन्हें और साथ में धार्य बैठो माताजी को प्रणाम करते हैं। इस पर वे दोनों स्थिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद देत हैं। एक या दो वृत्त उनकी तरफ देखन हुए वा देर तक प्रणाम करत हुए दर्शनार्थी अपना १। निमत बिता देते हैं। दर्शन में तीन उनको दर्शन का फोते हैं देखी मुक्ति म आधिक सत्य पाया। पाठकों का मालूम होना चाहिए कि उनकी जो भी कोई कोश (सिद्धि) है वह कम से कम २० वर्ष की पुरानी है। इसके बाव रहनेन कभी कोई फोते नहीं लिखवाई।

### उनका आश्रम

लेग समस्त होंग कि उनका आश्रम किसी एक बड़े मकान में शहर के बाहर होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। आश्रम बारावा नहीं गया है। यह वन गया है। वनमाथे स्थिति वृषा है। अयः जिस मकान में भी अरविन्द रहते थे उस में तथा उसम कुछ दूरी पर ४० मकानों में आश्रमवासी रहते हैं। आश्रमवासी को जेकन बाते भी अरविन्द तथा माताजी हैं। केहें चिरा वृषा स्थान वा किसी अन्य बाहिर स्थिति को उन्हें आइने क लिए आवश्यकता नहीं है। हाँ, सब साधक भोजन, प्रणाम व भजन क साधनमिक काय एक जगह इकट्ठो मिल कर करते हैं।

आम कनव १५० साधक साधिकाएँ वहाँ रहती हैं। इन में ६०-१०० साधक और ४०-६० साधिकाएँ हैं। कुछ युरोपियन भी रहते हैं। तान वा परिवार सुलसगमन माहरी र्नी है। प्रमानी के दृष्टि स गुजरती सबसे कथिक हैं। दूसरे पर बानी कीर कि महात्मा हैं। सयुक्त भगत व भारद्वाज का वहाँ कोई नहीं है। पंजाबी हाल में वहाँ दो आश्रमी वहाँ पढ़े हैं।

### भोजन व्यवस्था

बहुता का शायद ऐसा मालूम होगा कि वहाँ आश्रम सभ्यो कोई नियम सयम नहीं है। वहाँ जाने में पूर्व में न भी सुन रक्खा या कि वहाँ भोजन, शराब का भी परहेज नहीं है। परन्तु वहाँ ऐसा नहीं देखो। (यद्यपि सिद्धान्तः उच्च आध्यात्मिकता क लिय येम कोई बचन वे कनिष्ठाएँ नहीं समझते) है—आश्रम साधिका का भोजन निम्न प्रकार है। आश्रमस—पावनपन गो का दुध, आउन म्रह ( बिना छन आटे की उकल रोटी) के वात टुकड़े और एक केला।

दोपहर—चावल, रोटी, दल या शाक, पावनपन दही, तीन केला। सायं—पावनपन दूध और रोटी, शाक या दल भी अरविन्द व माता जी को फेरी का रस, दूध व काक, रोटी आदि हो बहुत थोड़ी मात्रा में मयम करते हैं।

### अन्य व्यवस्था

आश्रम वाली ही भोजन बनने हैं। आश्रम की कभी किसी विमर्श की कभी तथा बचरी हैं। इसके प्रतिष्ठित ईशान्यरित, वक्ता, विनय, मायाशा (येम दृष्ट २० पर)

## उनकी स्मृति में

(१)

तुम्हीं तो थे मेरे 'अगली',  
तुम्हीं तो थे मेरे आचार।  
हृदय के किस कोन में अब,  
बसाऊँगा अपना 'संसार'।

(२)

बताओ! किस के चरणों पर,  
कहें जीवन अपना बलिदान?  
भरायेगा अब जिसको कोन,  
सुनाकर अपना अनुमय गीत?

(३)

गिरायेगा अब बिजली कोन,  
किसी दुखियापर हँस-हँस कर?  
वहाँ रहने आयेगा कोन,  
बनाया जो आँखा में घर?

(४)

आया 'अन्तर' करे प्रयत्न,  
समझने किस की भाषा मौन?  
धरे! पागल-पागल कद कर,  
जुलायेगा तुम को अब कोन?

(५)

कहो! अब किस के बल पर मैं,  
कई इस जीवन पर अभिमान?  
मिथाने आयेगा अब कोन,  
हजायें 'ओ, लाखों' अरमान?

(६)

हाय! मेरी स्मृति पर कोन,  
बहायेगा आँसु दो-चार?  
पूछने आयेगा अब कोन,  
"मुझे करते हो क्या तुम प्यार"?

—आत्मनिर्भर आनन्द लाना—

## “साध”

उपलब्धि के पथ पर सब विचरें मिल कर सेवा मार्ग गहें।  
हृदय बीच देशानुराग हो सत्य-विष्णु के भोव बहें ॥  
हों बाहे विपदा सहस्र पर एक बार भी उफ़ न कहें।  
दृढ़ प्रतिज्ञा हों प्राण हान भी देने को तैयार रहें ॥  
रहें प्रेम में पगे जाति की जीवन ज्योति जगा दे हय।  
मिटा जाति का अंग, जगत में कीर्ति भजो फहरा दे हय ॥

“अमेन” चतुर्दश

## किरग के प्रति

झिञों की झुनकर कदम तुझर  
देख कसिका को हृदयोद्धार  
पोछने धोख-झुंझ के जोर  
पार कर छरितो विष्णु-अपार।  
अमर कर फिर न कटिहार  
भारती सा करके शृङ्गार  
स्वर्ण केरी का किये प्रसार  
बगली भुति बीषा के तार  
कोणवी आशुति की भँकार  
मुचित करती सारा संसार  
कोककर अनुपम स्वर्ण-हार  
छुटाती रंगी का भग्नहार  
बनाती जग को स्वर्णहार  
चलाती तुमिया का व्यापार  
हटाती भूतल से तम-भार  
झुनाती भुति यह बारम्बार  
तिमिर-निस्वार, तिमिर-निस्वार  
किये नवजीवन का उपहार  
चित्तिज के परदे के इस पार  
भँकती आती हो छुड़मार  
अन्ध है तुमको किरग उदार  
मसले तुम का बारम्बार

—जगता-जगता अन्धकार—

## कैसा दीन किसान?

खुरद्वार यहि होन कहा अब;  
महा अमरमय है कहर  
नष्ट किया भारत का गौरव-  
कर कृषा अभिमान!

विष-प्रकृति का तरब निरन्तर  
हुआ मेह झुलक अमर  
मानव, मानव, मैं यह अन्तर  
आह, चोर अपमान!

बह गली है जग उपवन का  
है आचार पूज-जीवन का  
गमित है रस में विभुवन का  
रूप विराट महान!

शक्ति जाग न कहाँ सो रही?  
भारत की दुर्गता हो रही!  
स्मृति कायर कौ रो रही,  
हीर हुआ पाषाण!

—अन्धकार 'रति'—

सर वेमुचल होर



आप आपल मम्भारता से इन्की कर्षीसोनिया युद्ध की ओर सिनिग नीति पर बिचार कर रहे हैं।

महामना मातृवीय जी



आप एक वक्ता फिर बनारस में बरबस्थ हो गये हैं परन्तु शीन हो स्वास्थ-शाम कर रहे हैं।

सर मातृकम केम्पल



आप १०० मील की दूरी के हिसान में दोहन का रिकार्ड स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

श्री जमनालाल बजाज



आप हिन्दी प्रचार के निमित्त गाँधी-सेनो के लिए प्रयास कर रहे हैं।

आरुता कस्तूरीबाई गांधी



आप न देहला में २५ अगस्त को भवदा अभिवादन का समारोह किया।

श्री कृष्णदत्त पासीवाल



अरुवाह है कि आप का० पा० बोर्षी और अरेस्वली से त्याग पत्र देने वाले हैं।

डा० मु ने



आपन एक भाषण में कांग्रेस से भिन्न अगतीशील राजनीतिक दला के सलाह पर ओर दिया है।

मेजर एमिल के



आपिया के गृह मन्त्र्य मेजर क मोनर दुव्वना में वायल हा गय।

विश्व की दीक्ष में किसी देश अथवा राष्ट्र का कीमता स्थान है, यह जान लेने के हमारे पास केवल दो मापन हैं। पहला उस देश का इतिहास, और दूसरा, उस देश के स्वीकार। इतिहास हमें राष्ट्र और देश में जो सुन्दर वाली सुन्दर व घटनाओं की सूची बतलाता है, किन्तु, हमें किसी देश के राष्ट्रपति और जातीय स्वीकार उस देश की भीतरी दशा को पूरा पूरा परिचय देते हैं। इसलिय में यह कहना कि यदि हमें किसी देश अथवा राष्ट्र की भीतरी दशा का ज्ञान प्राप्त करना है। यदि हम यह ज्ञानवा चाहें हैं कि समुद्र देश अथवा राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति क्या थी ता हमें उस देश के स्वीकार का भ्रामपूर्वक आशयन और प्रयत्न करना चाहिए। यह वह सत्य है, यह कसौटी है। जिस पर कस आन पर किसी राष्ट्र की सफलता के खरे कसौटी को परख होता है।

किन्तु इसी सिद्धान्त को लेकर जब हम अपने देश की सभ्यता ज्ञान के लिये अपने स्वीकारों का ले डेते हैं तो हम गहन अध्ययन में अटक जाते हैं, हम हमारे स्वीकार एक पक्षी और उलझन बन जाते हैं और इस उस स ऊपर कर-प्रयत्न निर पक्षों से जो चुप कर उम्हें 'डिग्री पुराण' के गणेश कह कर हमें दते हैं अथवा उषेका में मुड़ कर लेते हैं। और अन्य मतासम्प्रियों का हमारे पूर्वजों की समझ पर खंका करने का प्रयत्न दते हैं, यह हमारा दुर्भाग्य नहीं तो क्या है।

हमारे समस्त धार्मिक ग्रंथों में सर्वप्रथम पुराण हमारे देव गणेश हैं। किन्तु नवगते दुर्गायक सब स पेश्वर थे ही हमारी शंकाओं तथा अन्य धर्मासम्प्रियों के 'महाक' के केन्द्र बन हुए हैं। हमारी बुद्धि स्वयम् गणेश जी का भ्राम करते समय हल देती है। हमारा ही नहीं, इन परिवर्तों के लेखक का पञ्चवर्षीय मनीषा शक्तिहृदय गणेश की मूर्ति के समझ जान में भी काँपता है। उस मोते को क्या जानर कि हमारे दशनामों की सम्मयी में इस स भी शक्तिरूप रखा के 'जीव' है। और यदि में यह कहें कि आज प्राचिकीय हिन्दू धार्मिक जगता में पञ्चवर्षीय मनीष से अधिक कुछ नहीं समझती तो मरा कोई अश्रय नहीं।

हमारा प्राचीन साहित्य-विशेष तथा पौराणिक साहित्य-अतिशयोक्ति और उलझा अलंकार प्रणाली साहित्य है। किन्तु, आज हम के क्षायावृत्ति के नामपर की जाने वाली अमूर्तचरणा-

## गणेश जी के स्वरूप के सम्बन्ध में -

(लेखक:— श्री काशीमसाद 'विरोधी')

जो की तरह नहीं-जिस का कोई चित्र नहीं, जिसका कोई प्रयं नहीं, हमारे पौराणिक साहित्य का प्रत्यक्ष, शब्द सार्वक है महत्वपूर्ण है, और सुन्दर है, हमारे पौराणिक कथाओं में 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' का बड़ा सुन्दर समझा है। यह में अपना वास्तव्य भक्ति के आशय में नहीं, किन्तु वास्तव्य का आचार पर कह रहा है कि हमारे पौराणिक साहित्य में हमारे लिय सत्य है-जीवन है भार हमारे 'परशु' मरे इस कथन के पुष्ट प्रमाण है,

पौराणिक साहित्य में गणेश जी को शिव का पुत्र कहा गया है। 'गणेश' का अर्थ है नाना। और 'शिव' का अर्थ है, कल्याण कर। जिस का स्वभाव है त्याग। अर्थात् जिस में कल्याण और त्याग की भावनाएँ निहित हैं उसी में नेतृत्व शक्ति का जन्म है और इस में भी स्पष्ट रूप से यह कला चाँदिय कि कल्याण और त्याग की भावनाओं में ही नेतृत्व की ऊर्जा होती की शक्ति है। और इसी स्वयं-सिद्धता को प्रलंकारिक भाषा में गणेश जी शिव के पुत्र में कह कर व्यक्त किया गया है, और महामा गणेश हमारे इस सिद्धांत की, कसौटी पर कसन पर आज ठीक उतरते हैं, व पहिले कल्याण कहें हैं, त्याग हैं, फिर है गणेश, नता है। हमारे कथन के अन्तिम उदाहरण : हाँ तो, क्या तनिक गणेश जी के स्वरूप का मो भावयन कीजिए, और देखिय कि—हमारे प्राचीन साहित्य-शारों के अपने सुन्दर भावों की कित, प्रशर प्राप्त कर दिया है, गणेश जी का स्वरूप और स्वभाव जो साहित्य-कारों ने वर्णन किया है वह सत्य में इस प्रकार है—

'गणेश जी का मलक हाथी का है। उसके साथ—शूल, नाक, कान और दाँत भी दाँत हाथी के ही हैं, किन्तु हाथी के दाँतों की तरह उनके जो दाँत नहीं, वे एक रत्न हैं, वे सम्मोदर हैं, उनके बाएँ मुख हैं, उनका बाह्य मुख है। और वे खाते क्या हैं, केवल फल के मोक्ष। यह है उनका जीवन और ही नहीं' स्वभाव का भी। किन्तु गणेश के इस

चित्र में हमारे लिये जो समर्थ दिया है, जो पाठ दिया है, वह अत्यन्त है और बड़ी दिया है जिसकी आज हममें बड़ी कमी है। गणेश जी का ऊपर कहा हुआ चित्र हमें जो पाठ पढ़ता है वह है निर्वाचन नियम का। वह मर्यके वष काकर पुकार न कर कह जाता है कि अब तुम 'स्वराज्य' में अपना व्यवस्थापिका समा के लिये व्यवस्थापक चुनो ता देखो जिने तुम अपना प्रयान नमा, राष्ट्र-पति बनाना आ रहे हो, उसका स्वरूप और स्वभाव गणेश जी के समान है



(श्री काशीमसाद 'विरोधी')

या नहीं, और स्पष्ट शर्तों में प्रो यह कहना चाहिए कि, जिसे तुम अपना नता बनाना आ रहे हो उसका मस्तक हाथी के मलक के समान है या नहीं, अर्थात् वह बुद्धिमान है या नहीं ? उसकी भाँति हाथी की भाँति के समान झोड़ी है या नहीं, अर्थात् वह स्वयं-सिद्ध है या नहीं ? उसकी नाक, हाथी के नाक के समान लम्बी है या नहीं ? अर्थात् वह 'लम्बी नाक वाला' समानपुत्र है या नहीं ? उसके कान हाथी के कान के समान बड़े हैं या नहीं ? याही उसके कानों में राष्ट्र की पुकार सुन सकने की शक्ति भी है या नहीं ? उसके हाथी के हाँतों के समान 'कान और दिखाने का' हाथ न होकर वही हाँत है न ? अर्थात् उसके कर्माँ और हाथी एक ही है न ? और जिन तुम अपना नता चुनो उसका चेह गणेश के चेह के समान बड़ा अर्थात् मनीष है न ? इसमें समस्त बातें समा जिन की पुँजाय तो है ? याही वह

भोज्या वाच तो नहीं है ? और तुम्हारा नता कार्य की अर्थकता आ करने पर 'मेरे बाप तुमको तो नहीं' कह कर काम में जी चुपने वाला तो नहीं, उसमें लवचक व मुझको के समान कार्य करने की शक्ति है न ? और वह वृत्ते के समान अपन लचक-लमन पर जानू भी किये हुए हैं अथवा नहीं ? और स्पष्ट शर्तों में वह संयमी भी है या नहीं ? और जिसे तुम अपना राष्ट्रपति चुन रहे हो, वह मेरा मिहान और बहुमूल्य काय पदार्थ का बोली तो नहीं ? वह अपना उदर सखी से सखी काय सामग्री में भर लेता का भावो है या नहीं ? यदि उसमें गणेश जी के स्वरूप और स्वभाव के समान गुण न हो तो तुम उसे मूखक भी अपना नता न बनाओ। जिसमें उप-रोक्त गुण नहीं वह कमी भी तुम्हें तुम्हारे राष्ट्र को, तुम्हारे देश की विपत्तियों और विरोधी शक्तियों से नहीं बचा सकता। यह है हमारे गणेश जी का सचवा चित्र और इसका सद्-उद्देश्य : जिसका आज हम महान लक्ष्य कर रहीं काय न सुपारी पर कड़ावा बनेट कर भक्ति में माया टेक कर अपनी बुद्धि-हीनता का परिचय देते हैं में वह नहीं कहता कि भयावृत्ति वस्तु है यदि 'मास स्टोन' तुम्हें फँसी असा से तुम्हारा मनोबलित कार्य पूर्ण कर के और तुम्हें पुनर्-प्राप्त, काय धान्य दे सके तो कीजिये कि, काय ही 'मास स्टोन' से 'मास स्टोन' का कोम लेना भी न सुविधा। आप गणेश जी को मस्तक छुकारन, उन पर सिद्ध बड़ाये, उनका भ्राम माया देखने किन्तु उनका जग का आशय भी न सुविधा, तभी आप सुपुत्र हैं, अपने पूर्वजों के लक्षी आप सत्य भारतीय हैं अब आप अपने साहित्य का उपयोग करेंगे, अपनी कला कीजिये, वह दिन दूर नहीं' अब आपसे गणेश जी आपसे पूर्वजों की हंसी उड़ाने के लिये जग्य की प्रदर्शनों में मज दिये जायें। कृपया अपने साहित्य को समझिये और उसमें काम उभारो। उसे 'गणेश' कह कर उसकी किता न उभारो।

## “गम निवारक”

जिन दिनों का साक्ष्य अथिक संताप होने के कारण दिगम्ब गयो हो, जो अब संताप न चाहती हो वह स्थिति ७ दिन 'गम निवारक' को सेवन कर सर्वथा के लिये इस संकट में बर्ष, सुख (२५) ३० ५० ५० पता—५० रामकिशोर वैद्यशाली, जेयज स्ट्रीट, मजराही,

### महिला-अगत

## आधुनिक स्त्री समाज और संगीत

( ले०—भी डा० पी० डी० गौड “व्यावहार” इतारी स्टेट )

सगीत का माधवी का काल क्या था—  
—वही तो हम कह नहीं सकते  
—किसी किसी मध-वधूयों, सिंहशास्त्री  
युगकर्म में इसका विषय विचित्र नहीं  
मिलता। किन्तु भावुकिक काल तो  
अपव्यय ही सगीत उल्लेख का कदा  
का सकता है। विशेषतः जब स  
समाकृत (दात्री) विमर्श का भाव  
माधव हुआ है तब से तो सगीत-संसार  
में हल-चल ही समा गई है। इस  
लोक में हम को देखना है कि स  
उल्लेख काल में किन्हीं का क्या स्थान  
है। किन्तु से अग्रिमपत्र विमर्श  
अग्रिमविषयों या वैयर्थ्यादो से स लिखा  
जाता। अतः उन विमर्शों को सत्य  
ही और सुन्दर ही है। इस समय हम  
देखते हैं, किन्हीं के लिए कोई मार्ग  
अवश्य नहीं है। समागमविषय  
अतः करव भी है यम व करक  
लेखी प्रोफेसरों को लोकोपाकरण बन  
रही है। समागमविषयों, कवच  
सिद्धि, अग्रिमविषयों, सिद्धि-  
कोई तथा कालों और अग्रिमविषय  
को से उनके स्थान सुरक्षित है।  
कवच का टापीय है कि यममय  
युग में उल्लेख किन्हीं कवचों का  
नहीं है। भावकाल किन्हीं लोकोपा  
की है और विमर्श का भी, तथा  
प्रोफेसरों को और अग्रिमविषयों  
को।

किन्तु हम इस सभ्यता में सभ्यतायिका तथा नृत्य कला के जानन वाली स्त्रियाँ को नहीं देखते। इसका कारण क्या है ? विचार करन पर इसके मुख्यतया निम्न ललित कारण जान पड़ते हैं।

१-स्कूल, कॉलेजों की स्त्रियाँ के लिए वर्तमान दूषित शिक्षा प्रणाली का पाठ्य विषय।

२—गीश्वर्य सगता तथा स  
रुक्ति का प्रारम्भ किन्हीं परम्परा।  
इस सब पर विचार करने से स्पष्ट  
हो जायगा कि काव्यिक भारतीय  
की समाज में संगीत का क्या  
स्थान है ?

१ वर्तमान शिक्षा प्रणाली न जहाँ पर कस्य कनक समस्यायें उपस्थित कर दो हैं वहाँ पर सगात-द्वियों को भी भारी घाता पहुँचो है। वह ता मानी हुई बात है कि प्रायः प्रत्येक क्लास को मध्यम ओदन व्यतीत

सारांग यह है कि भारतीय  
 खा समाज न भारतीय समाज को  
 एक समान ज्ञान के प्रपञ्च के विकास  
 बहुत महत्त्व दे रहा है।  
 यहाँ न कि प्रश्न का विषय दोषों  
 भी सारांग प्रश्न का जगह प्रश्नी  
 नाच का भविक प्रश्न होता जाना  
 है। १९४० का भारतीय विधि  
 विधान न हमारे देश के पुराने नाच  
 गानों के शान के खिलाफ प्रश्न  
 उभर चुका और प्रश्न सामाजिक  
 नियमों के कारण प्रश्नी नृत्यशैली  
 में भी न आ जगह के कारण विना-  
 शी नाच नागों भी नही चल  
 सता यह प्रश्न न खुदों दो प्रश्न  
 विनाशे समान, नष्ट कर रहे हैं प्रश्न  
 के शरीर। उनका नष्ट में प्रश्नी  
 भारतीय भी खा रहे हैं।

आत्मका स्थिति का सचाय  
सोचने की चेष्टा उत्पन्न होती है। नदी  
के बरत उसका स्वरूप का ज्ञान कर  
लेता आनिन्दित हो चुक है जिसको  
देखकर मनुष्य चाँकर जाता है।  
परन्तु कुछ ही रतन सोचने में  
पूरी हो गमारा हो समाज अपने हल  
सूचक का ज्ञान कर भारतीय  
मन की नमी नदी रचना चाहता है।  
यह मैं स्वीकार करता हूँ कि हमारे  
देश में स्थानिक हल का गोर्ना में  
कमिश्न बुलाई है। परन्तु कुछ बु-  
र्राई को कबब तुराई कर की  
न छोड़ देना चाहिये वरन् उसका  
उपयोग मानना का हूय। वास्तव में  
यदि समाज बु गराई तथा समीक  
कक्षा प्रविष्टा न हल चारा होय न  
स्थिता त उन्हे सो ही हकका धाम न  
पर पाशवध समीक का ही शरय  
लेकर हकल उत्ति करना पवनी।  
केमय ही तल हकी प्रर समाज  
के श्रम समीक पर भी मरय  
ही अमल में योग्य मरय गाथिका  
न मिलत पर स्थायती मेरी के की

स्त्री में नहीं होता। नतीजा यह होता है कि जब अपनी स्वयं की मूल्य ज्ञान के बारे में सुझावों को मूल्य बन जाता है। जो छात्रों पर प्राथमिक हो जाता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष (स्त्री) में एक स्त्री स्वीकृति की होने का कारण एक स्वयं रूप बनने की जगह एक कलहप्रवृत्ति बन जाती है। यदि हमारे ही रूपों जिज्ञासा कि हमारे ही रूपों में स्त्री का समीप विज्ञानों में खगोल ताप बढ़ प्रयत्न दिल बह सात प्रयत्न घर ही कर सके।

मर चक्र मित्र है जो हृदय व  
 पवन चलन को यथावत् ही तथा  
 धमनी की ओर प्रवाहित होता है।  
 में कार्बो प्रयत्न है परन्तु चर्बी  
 साक्ष्य प्रमाण के बहुत प्रमाणों के  
 कारण स्तन धमनी स्त्री में शान्त  
 सुन्न की दृष्टि के कारण है। परन्तु  
 'मार्डी' में धमन प्रवाहों आशय में  
 इस विषय का अध्ययन नहीं किया  
 पा स्त्री कारण वह बहुत प्रमाणों  
 में कारणों पति दत्त का दस धमनी को  
 पुष्टि करने में बहुत विचार  
 प्रमाणों की ओर ध्यान रखना  
 विद्या कि को स्त्रियों की  
 में विद्युत् की प्रणाली आय। परन्तु  
 को भी न मिल सके। इसी कारण  
 वह स्त्री प्रमाण में प्रयत्न की  
 इस कमी का अध्ययन होना

२—योरुपीय सभ्यता तथा  
संस्कृति का भी प्रभाव भारतीय  
संगीत पर पड़ा है। हमारे पुष्पों  
तथा मसाले के विज्ञान ने भी संगीत  
को स्त्री का प्रथम माना है।

याचीन कडुनो के बचे खुश गा-नो स  
 वध (सिद्ध हो ता) के किस्सी काम मे  
 सहीन स्त्री समाज क लिय कितना  
 कायम क तथा मत्सुपुत्रो शिवय या  
 विवाह प्रसंगज जग सहरा, तथा  
 सहीन अन्य प्रसंगता रिवाज को  
 उत्सव मे खीगत का प्रचार रिस्ता  
 या धर धर भी बच वर्तन न  
 के टूटू-फूटू मे उठ उठे वही कलन  
 मेने मे पुरानी रिवाज के नाम के  
 सुपन से जाग सक्त है। परन्तु न  
 स्वा-ल समुदाय क शायद हमारी आज  
 सहीन भी शिष्टतव को पाव सिय (भाव  
 तथा गाभा) के नाम से कोण न  
 मागरी है। वार्धव्य तो यद्य प्यो  
 किय न्बर्तितो के पाव सियन ही  
 भी उचल होतो। परन्तु दुनोयम मे  
 रेखा नही डाला। इस्का भी सम्भ  
 मे एक नाम ब्रह्म इस्का है। पुनः  
 स पाव सिवाय न भी पावनाय स  
 भन्ता का उच्छ्रय किय। परन्तु  
 कलनरय सहीन सम्भय यक भाव



## पुरुषों से दो-दो बातें

(ले०—श्रीमती गायत्रीदेवी लक्ष्मणलाल, मोतीदासी)

मेरे लेख का एक २ गुप्त मेरी और जितनी की कथा प्रकाशक कथना में वह प्रालू है जिन में दुर्बलता, परिवर्तन और हीन अवस्था का रोमरुत शरीर होय है। परन्तु अब इस का प्रसार कहाँ? देश आज उम्र वीरों से लालो है जो स्त्री जाति के भयमान के बदले अपना स्वतन्त्र स्वीकार कर देते थे। कहाँ? वह यादों और वक्तव्यों का नहीं है जो अक्षयशील और हीन दुर्बलों के कारण पत्नी को तरह अपना रक्त बहा दिया करते थे। मैं क्या, मेरी निर्बल सौभाग्य भी ऐन समय में जब कोई साधक देने वाला नहीं, कुछ कहत हुय मुल फेरी है। उस ने मेरे सहायक पर कायम को चुनते हुय प्रविष्टता से कहा। जे मेरे जीवन के साथी वह दुल भी कहानी मेरे निश्चित हृदय की वही हुई आवाज है जो मैं अपने रक्त से जिस सख और किन्तु ने बिलकुल स्पष्ट कर दिया है, तुम्हें इस जिय बनाती है कि तेरा मन उज्जवा और पवित्र होन के कारण इसे उन हृदयों पर आहिर कर दे जिन्हें मेरी इस हीन अवस्था के जिय कुछ बर्द है।

हाँ जो सब मैं निर्बल स्त्री जाति की वह निर्बल प्रकृति है जिस अपना प्राणीय इतिहास एक सज की धर्मों व स्वयं है कि मेरे देश की स्वयत्ता मुझे रवी के नाम से पूजनी थी, मेरे धर्म की रक्षा में वह अपना मन और गौरव समझना थी और अक्षयशील जानती थी कि उस की स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठा का सुल कारण कबल मेरी ही सुख और शान्ति पर निर्भर है। परन्तु आज मेरी क्या अवस्था है। यह

मान तथा नाम करान पड़ेंगे। हमारे स्त्री समाज में समीत बिलकुल उठ जायगा।

इस लिय अन्त में मेरी भारतीय कथाओं के उन माता पिताओं से प्रार्थना है जा समीन कला में तमिक भी प्रय रकते हैं कि वह अपनी कथाओं का शुद्धस्थ जीवन सुखी बानस के लिए अन्य शिष्टाओं के साथ भारतीय मनीत (माच व मान) का भी योग्य बहुत प्रयत्न काम करा दिया करें ऐसा करके वह उनका शुद्धस्थ-जीवन स्वयंसेवक बनान में सहायक होंगे।

जिन जिनजिन लेख में कथन कर गयी। वास्तव में कि वयसों को रूप पारस करके प्रयत्नित समाज को नष्ट भूष कर दूँ। तुम्हें की बह बहाने ले कर अपने भयमान करने लक्षा को रक्त बाट जाऊँ। मगर स्त्री जाति का व्यापार हृदय इस कोप में रोऊँ है, माता की क्षारी अपनी सन्तान के शिक्षाक कुछ कहने और करने को मना करती है। इस में मेरी कोस से जने हुओं को भयमान और निराह है, अन्त्य मे यति के नाम पर कलक है जिस न वनवास के १३ वर्ष अकेले अपनी मायज लेती के साथ रहते हुये भी उस के बरस कमलें में ऊपर देखना पाप और महापाप समझा था। यह अब क्या कर? शुद्ध की हृद को चुका, सख व सम्योक्त को प्योका भर गया। जिन का प्रसारता यों वह अब नहीं रहे, केवल सख की हलकी सी याद (मानस विष पट पर क प्रिन्ट) बाकी है लेकिन इस और अत्याचार के अमाने में उस से बचाव नहीं हो सकता। जीवन योन्तक मादृय पकृता है और मन एक निश्चित निर्णय पर तुल्य है कि या तो प्राधान राजपुत्र प्रयागी "मोहर" को स्मरण करके जलती बिलासों में कुद जायें या मनुष्य समाज के इस अत्याचार का अन्तर्भाव में विहर्षित बन कर मुकाबला कर जो भारतीय महिलाओं के भयमान को सुख कारण है। कहाँ है देश का नशा जिन की अज्ञान इन के लिय बन्द है। जिन के नशे में यह देखन पर भी लज्जा के मारे झरित नहीं पाते कि जिस प्रकार उन देश का सतवनी महिलाओं को अपना नित किया जा रहा है—

मुझे सभी प्रकार स्मरण है कि करीब १॥ वर्ष पूर्व जेन प्रजाप प्रतीय बटाणा नामक नगर निवासिनी १ वीर रमणी न मनुष्य समाज की इस क्रूरता के विरुद्ध प्रोवाचन उठाई थी कि उसे स्वयं को विष प्रकाशित करने का क्या अधिकार है। क्या बाजार में जाने वाली सख वस्तुयें बवल नारियल के चित्र देन स ही बिक सकती हैं? क्या लिय मोक्ष बताने वालों कैप्टेनर इन तसवीरों के बिना गलत हो जायेंगे? गदापन नहीं? बरिद इन रंग रिरने चित्रों न देश और जति की सम्भता नष्ट होती है और प्राचार विचारों पर बहुत बुरा असर पकृता है। यह जन भी और लज्जा रहित तख

कोरों का असर है कि प्राज्ञ देश की समाज पत्र पत्रिकाओं के पत्र स्त्री प्रयत्न को प्रकाशक के समाचारी से भर पड़े हैं। अने से अने घर को महिलाओं और लो और पवित्र लक्ष्यहीन पर भी इस भविष्य नहीं से अपने सोन की रक्षा नहीं कर सकती। लितेना बाजों ने लो रही सही कसर को भी पूरा कर दिया। रोशनी के रूप में अवेको और ले जाने वाले महप्रजब आहु अमो पापवरी समोकायना को पूरा करने के लिये जो को उपद्रव कर रहे हैं उन क शिक्षा (विद्य) को प्रामोखन करना होगा। नहीं तो क्या होगा, इस क वयन करने से मेरा विश कोणता है। मेरी इस का

मोहों में अपने देश की सुविधा बहिनों से माय्या है कि वह स्त्री पत्नी विरोधी और स्त्री सुधार प्रोत्साहन का प्रयत्न कर रही हैं कर्ष मनुष्य समाज के सुधार को और मा अपना पना देवें। सम्मान के मुख और अशुभ माता की स्वयंसेवक और नेकभाव के कारण होते हैं। इलक्षिते कमोराता और हड़ता में स्वयंसेवक के तैज का दोषक होय में लेकर इस वयसोर काका रोल में मददो हुई जाति को रास्ता बिचान बासो सगुनो देविर्वा लामित हो जिस स देश को नाम कई और इस मान मनीश में स्त्री जाति का मोक्ष बना हो !!

## विलकुल एकान्त में बैठकर देखने योग्य

# सुफिया कोकशास्त्र

मातस्वीर

इसमें स्त्री पुत्र की बौराती आखन की जोधवार फोटो श्लाक की रोगम लक्ष्मी पयित कोका के पेने-नेने मुक्त राज कि जिनका लिचिनी विनासक होजावे है, दर्ज हैं। २०० सफे, सर बर्क रंगीन। मूल्य २॥ प्रति पुस्तक। डाक व्यय माफ।

पता—

अमरीकन स्टोर, मुजफ्फरनगर, यू.पी।

## विज्ञापन के लिय खाली है

# बहुत दिनों बाद !!

मस्ता साहित्य मण्डल ये चार पुस्तकें प्रकाशित कर रहा है

- १—स्वतन्त्रता की ओर— १॥
- [ श्री हरिनाथ उपाध्याय द्वारा लिखित ]
- २—माँस के स्त्री रत्न [ वीरता योग ] १॥
- [ पूर्व प्रकाशित दो भागों के भाग ]
- ३—बुद्ध बाणो ॥००
- [ प्रभाकर बुद्ध के वचनों का मौखिक समग्र ]
- ४—भांगे को ! ॥
- [ युवक के लिए महान् पुस्तक ]

[ १५-२० विग में प्राहने के पास स्वचना में जना सुद होना, जो स्वयो प्राहक न हो ] ये वन जाहने को उनको ये पुस्तकें तीन मूल्य में मिलेंगी ।

सस्ता-साहित्य-मण्डल, दिरौली।

महात्मा गांधीजी की दिन-चर्या  
 नाम के प्रारंभ : सभी को  
 ब्रह्मदा रचनी है, ब्रह्मदा देव के  
 कविताएँ ही-पुनः उनके पास तक  
 नहीं पहुँच पाते और व सब के लिए  
 कीर्तनीय पदों महात्माजी की  
 रचना अपने ही हो सकती है। इसी  
 लिए सर्व साधारण की उपलब्धता  
 मित्रों के हस्तों में उन की दिन-  
 चर्या प्रकाश की जा रही है। लोग देख  
 सकते हैं कि इस दुर्लभता में भी  
 ब्रह्मदा जीवन कितना नियमित,  
 कार्यपथ पर अत्यन्त व्यवहारों से  
 परिपूर्ण रहते और मंगलवाणी के  
 भावना-सुमन को पढ़ाएँ, कर्तव्य  
 बर्णन आदि की देव देव का कार्य  
 सम्पन्न करते हैं, तथा खोटी से खोटी  
 बात का कर्त्ता तब प्रभाव होती है।

पिछली रात को प्रायः दो बजे  
 महात्माजी की नींद खुल जाती है  
 और वे उठती वस्त्र उठ कर पुनः वस्त्र-  
 धारण या पश्चात् स्निग्ध के कार्य  
 में जुट जाते हैं। दो घण्टे यह कार्य  
 करने के बाद शीत कुलाञ्जलि न  
 निम्न कर धा. से ५ तक प्रार्थना  
 करते हैं। उस समय किसी से कुछ  
 कथना-सुमन हो तो वह भी स कुल  
 है। इसके बाद कभी दलगत दो  
 बातचीत करते हैं और कभी सो भी  
 जाते हैं। किन्तु ६ बजत ही उनका  
 निरीक्षण कार्य प्रारम्भ हो जाता है।  
 ७। बजे माता करते हैं। इसके बाद  
 ताजे सामान्य पदों और भोजन  
 कर भी वस्त्रों की देख रक्ष करक  
 सामान्य सुखनायें देते हैं। इसी  
 समय में यदि कोई मित्रन वाला आ  
 जाता है तो बातचीत भी करते हैं।  
 ८। ९। बजे स्नान करते और  
 १०। बजे पढ़ती वजत ही सब के  
 साथ बैठ कर भोजन करते हैं। उनके  
 भोजन में बकरी का दूध, साधारण  
 पक, रस, कोली, बकी लाग या  
 बकरी की घी की चटनी, भीजू आदि  
 वस्तु पड़ती हैं। भोजन के बाद  
 महात्माजी कोई छुई हाक बिट्टी  
 पहनकर पढ़ते और उच्चर लिखन के  
 लिए अपने पीछे बैठ गंधी और  
 कालीदास गंधी को भीट बना देते  
 हैं। आरम्भ और महात्माजी  
 पत्र-व्यवहार के लिए भी महात्मा  
 जी देवाली (रुकींदरी) को बुला  
 रते हैं। इसके बाद १२ से २ बजे तक  
 विश्राम करते हुए १ घण्टा सो लेते  
 हैं। दो मं चार बजे तक दूध पी  
 पश्चात् लिखते कोल दुर्गरी के लिखे  
 पत्रों को पढ़ कर उन पर दस्तावर  
 करते तथा ४ बजे तक हाक रचना  
 करता है। इसी बीच में भी यदि  
 कोई मित्रन आ जाता है तो समय  
 बातचीत करते हुए चर्चा करता है।

## विश्व की सर्वश्रेष्ठ विभूति म० गांधी को जीवन-चर्या

१। बजे तक शीत आदि से निवृत्त  
 होकर भोजन करने पड़ते जाते हैं।  
 ६ बजे तक उचर से निवृत्त के  
 बाद प्रार्थना पढ़ता विश्राम कर लग  
 भय पीन वस्त्रा मंगलवाणी की सुन  
 पर दलगत हैं। उस समय प्रायः  
 आरम्भ कालिनी महात्माजी या बालि-  
 काजी के कर्त्ता का सहारा ले-  
 उनमें बातचीत करने और उनकी  
 शक्तियों या कठिनताओं को निरा-  
 करण करते हैं। उस समय और भी  
 लोग उनके साथ दलगत और बात  
 चीत करते हैं। दोक ७-१० पर  
 प्रार्थना की पढ़ती वजत ही प्रार्थना-  
 रक्षक पर आ निराश्रित और सब के  
 साथ प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना  
 सम्पन्न होने के बाद अपने निरीक्षण  
 में किसी का कोई दोष जान पड़ता  
 है या भीमानी मीरा प्रथमा  
 अन्य किसी की ओर से कोई शिका-  
 यत या मूल किये जान की बात  
 सुनाई जाती है तो उस पर शक्ति  
 और भीमरीता के साथ विचार करत  
 हुए वह प्रेम, सरलता और मार्मिक  
 भाव से उन सब बातों को समझते  
 हैं। कभी-कभी कुछ आवश्यक सूच-  
 ना भी देते हैं। चारदा, दिन भर  
 की विशेषता का दिखाने-लिखाने  
 प्रार्थना के बाद ही होता है। इसमें  
 कभी-कभी ५-८ तक बज जाते  
 हैं, प्रार्थना से पछि भी कुछ देर  
 तक महात्माजी लोगी से बातचीत  
 करते हुए तकली या चर्चा कातते  
 रहते हैं। बाद में भी सोने तक चर्चा  
 कातते हुए बातचीत करते रहते हैं।  
 निश्चित परिणाम में सुन कल उभन  
 पर ४ बजे रात तक महात्माजी  
 बिस्तर पर लेते हैं। पछि किसी  
 दिन अत्यन्त कार्यवश, सुत का परि-  
 माण पूरा नहीं हो पाता तो रात को  
 देर तक उभन कर उभन पूरा करते हैं।  
 किन्तु ऐसा कभी-कभी ही होता  
 है। अन्यथा वे प्रायः ६ बजे रात  
 तक को जाते हैं और फिर २ बजे  
 पिछली रात को जाग पड़ते हैं।

इस दिन-चर्या में कार्य विशेष  
 से कभी-कभी कुछ परिवर्तन भी हो  
 जाता है। किन्तु सामान्य रूप से  
 उनका यही कार्यक्रम रहता है और  
 समय पर संचाल होता है।

अब से महात्माजी बिमोबा के  
 सम्पादक आरम्भ से मंगलवाणी में  
 रहने के लिये चले हैं, तब से प्रायः  
 सुन्दर दिन अर्थात् मंगल, शुक्र और

शनिवार को प्रार्थना के लिए वे शाम  
 को भोजन न निपटते ही—आरम्भ में  
 पेशकश कर जाते हैं जो प्रान-  
 वासी स लगभग दो मील दूर है।  
 उस समय भी महात्माजी दोनो  
 तरफ स लम्बक या लम्बकियाँ क चर्च  
 पर हाथ रख कर बातें करते हुए  
 जाते हैं, वहाँ पहुँचन क बाद प्रार्थना  
 का समय जान तक आवश्यक विषयों  
 पर बातचीत करते तथा वहाँ के  
 ज्ञानों के प्रभाव शक्तियों को  
 सुनते हैं। इन दिनों का बिमोबा  
 एवं अन्य वहाँ कार्य कलाओं  
 से वे सभी के विषय में  
 कानन बातों का प्रति सदग  
 एक भान क हिसाब से मजबूरी दन  
 क विषय में वही गहराई से बात  
 चात एवं विचार-निमित्त जात  
 रहते हैं। और सुना जाता है अब व  
 आठ घण्टे प्रति दिन ५ तीन घण्टे  
 प्रति दिन को मजबूरी का पक्का  
 वचन मिशन पर सुपुष्ट होन तक आ  
 गये हैं। २० अगस्त की मीटिंग में  
 इसका निर्णय होता।

हाँ, तो आरम्भ में प्रार्थना से  
 निपटते ही महात्माजी बालकोश  
 तथा अन्य को एक व्यक्ति को से बात  
 चीत करक उठातरह वापस माता  
 बाड़ा सुन दते हैं। बालकोश भीमरी  
 हैं कदाचित् कथ प्रस्त हैं, अतएव  
 उनका महात्माजी अवश्य पॉक-चात  
 मिश्रत बातें करक तसली देन हैं। इस  
 प्रकार लगभग ५। बजे तक वापस  
 मंगलवाणी आकर कानन के बाद  
 विधान करते हैं। आरम्भ जाते समय  
 ही तकली और पुनी साथ जाते हैं  
 और वहाँ भी बातचीत करते हुए  
 कातत रहते हैं। अर्थात् अपना एक  
 साथ भी व अर्थ चर्चा जान देते।  
 किन्तु जिस दिन वहाँ होती रहती है  
 या कोई परिणाम कार्य आ उपस्थित  
 होता है, उस दिन महात्माजी  
 महात्माजी प्रायः ५। बजे तक जाते।

रविवार की शाम की प्रार्थना के  
 बाद आवश्यकता बड़े सुन कर  
 लगभग ५ बजे महात्माजी मीन अत  
 लेते हैं जोसोमरावा की रातको ८ बजे  
 सग सग होता है। इसी बीच में वे रात  
 को २ बजे जागने के समय से लेकर  
 दिनमें किसी से बातचीत न करन क  
 कारण करते हुए समय का उपयोग  
 “द्विजिन” व लिख लेक देवावर करन  
 में लगाते हैं। महात्माजी देशी स्थायी  
 से साथ के बने हुए कामज पर बड़े

को कलम से लिखते हैं और वह  
 टाईप करके प्रेस को भेजा जाता है।  
 महात्माजी वही हरिजन के सम्पा-  
 दक हैं, अतएव सारा मीटर यहाँ  
 होकर भेजा जाता है। महात्माजी  
 इस प्रयत्न में हैं कि उनका प्रार्थनी  
 लेखों का हिन्दी अनुवाद भी वहाँ स  
 करक भेजा जाय क, जिसमें वहाँ  
 अनुवाद—विषयक भूलें न होन  
 पायें। किन्तु अभी तक इस विषय  
 का समुचित प्रबन्ध नहीं हो सका  
 है।

महात्माजी क पास इनकी डाक  
 बाना है, कि लोग दग रह जाय,  
 किन्तु व सब की ही सतोषकारक  
 उतर गत हैं। समाचारपत्रों में व  
 “दास्य आक इण्डिया”, “देवी  
 मृग” पढ़ते और “बम्बई मालिक”  
 की साधारण धर्म न पत्र जाते हैं।  
 (‘स्वराज्य म’)

## हमारे सेफ डिपॉजिट वाल्ट देखन के लिये आपको

## निमन्त्रण

किसी समय अपना सुविधा-  
 कुल वाचनालय में घूमते हुए  
 मनुष्य के क सेफ डिपॉजिट वाल्ट  
 अवश्य देखिय, यह वास्तु देखें हैं,  
 जिन पर प्रिय व पाणी का अक्षर  
 नहीं हो सकता। आप अपने कामकी  
 जबर, जवाहरात व दस्तावेज  
 इसमें रखिय और आप, पाणी-  
 चारो व हाकों आदि के भय से  
 सुक हो जाय। इसके लिये बंक  
 कवल २०) वॉशक लेनी है। सेंक  
 ले लेन पर भी आप ६-३० में ६ बजे  
 शाम तक किसी समय उसका खोल  
 सकते हैं।

वाल्ड नेन वाले का एक विशेष  
 बाधा जा जाती है जिसको दूसरी  
 नहीं होती। लिखावत वाल्ड लेन  
 के अन्व व्यक्ति उसकी नहीं खोल  
 सकता। इतनी नर-नार्याय आपन  
 कामतो उचर जवाहरात इसमें रख  
 कर खन की नाई सोचो हैं। फिर  
 आप चर्चा बंक के इस वॉशकार स  
 लाभ नहीं उठाते और उनकी रक्षा  
 के लिय चिन्तित रहते हैं।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया  
 लिमिटेड,  
 चांदनी चौक, देहली।  
 —-1—-

जिसे देश के पराजित लोग  
स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये  
प्रयत्न कर रहे हैं वहाँ पत्रकारों को  
कुछ विशेष कठिनाईयाँ का सामना  
करना स्वाभाविक ही है। हाँ, यह  
खबर है कि कुछ देशों को अपनी  
राष्ट्रीय सरकारों भी ऐसा है जो अपने  
देश के समाचार पत्रों को तत्काल भी  
स्वतन्त्रता नहीं देती। उदाहरणतः  
कम्बुजिया, मैसूर तथा बांग्ला आदि  
मध्य-पूर्व के लोग अपने विरोध  
चिट्ठियाँ तथा प्रलेखन को जमाने की  
चिन्ता में हैं। हमारे ही देश में  
ऐसी बहुतों रिपोर्ट हैं जिनके  
बहाँ स्वतन्त्र पत्रों का प्रचलन अभी  
है। अंग्रेजों से जिनके सरकार ने  
अपनी साराज्जियों में प्रेम करना नहीं  
छोड़ा है। जिनमें अब भी प्रतिनिधि  
संस्थाओं का ही बोल-बाल है और  
कहाँ पत्रों को इतनी स्वतन्त्रता है  
जितनी और कहीं शायद ही हो।  
परन्तु साथ ही यह बात भी सच है  
कि प्रत्यक्ष हमारे देश में अधिकारी  
की बल रहना चाहते हैं और इसलिए  
इन देश में आज ही उन विचारों  
में अग्रगण्यता परिवर्तन हो जाता है  
और उन्हें स्वतन्त्र संस्थाओं को  
प्रतिष्ठापन के बजाय अपने  
अधिकारों की रक्षा की भाँति  
बिना रहता है। हमारा यह झुकाव  
हमारा स्वाभाविक है कि शासन  
को अन्तर्गत के हाथ में निकालकर  
साराज्जियों के हाथ में आ जाये और  
नोकरशाही के शासन के बजाय  
उत्तरदायी वृत्त शासन सरकार की  
स्थापना हो जाय। ऐसा अवश्य है  
हमें अधिकारियों की, उनके कामों को  
और उनकी गतिविधियों की नियंत्रित  
प्रणाली बनाना करना आवश्यक हो जाता  
है। हम उनका प्रभावना इसलिए  
नहीं करते कि हमें ऐसा करने में कोई  
असमर्थता है बल्कि इसलिए  
करते हैं कि ऐसा करना हमारा  
कर्तव्य है। इसका स्वाभाविक परि-  
णाम होगा है, स्वयं। और स्वयं  
में जो कमजोर होता है उसको को  
अधिक हानि सहन करनी पड़ती है।  
हम कहते तो सकते हैं, इसके बिना  
बाद और कर हाँ गया सकता है।  
लेकिन नोकरशाही हम गने भी नहीं  
सकती। एक और हम में कहा  
जाता है कि कुछ चीज़ें का हाँ करने हैं  
पर हाँ अपने रास्ते बना जाता  
है, और दूसरी ओर हमें शून्य से  
भी रास्ता जाता है और ऐसी-ऐसी  
कानून बना लिए गये हैं जिनसे  
हमारे अपने बिना ही बात का साफ-  
साफ कह सकते हैं स्वतन्त्रता का  
भी अर्थपूर्ण कर लिया है। किसी  
भी निष्पक्ष व्यक्ति या अमीर के

## भारतीय पत्र और दमनकारी कानून

श्री चिन्तामणि का भाषण

क्या सरकार को नजर में पत्रकार बदमाश हैं ?

'प्रत्यक्ष सरकार वकीलों के बिना चलते हैं, कि वह कानून के भी बिना है'—हार्ड मारके।

कहाते हैं पत्रकार सम्पन्न के अर्थ में चिन्तामणि ने जो भाषण दिया था उसका कुछ अर्थ निम्नलिखित हैं—

सोमवार ताजिस्त हिन्दू को दफा  
१८८५ ए या १९३४ ए या आज्ञा पत्र  
द्वारा की दफा १०० या सन १९१०  
के प्रत्यक्ष पत्र को पत्र दिया जाय  
तो वह निरस्येह यही फैसला दोगे  
कि यह आवश्यकता के अर्थ में या  
पत्र है हमने से १९१० का प्रत्यक्ष पत्र  
हो चुका है फिर भी मैंने उसका  
जिक्र किया है। इसका कारण यह है  
कि इस पत्र को पुरी से पुरी गानों  
को लेकर तथा उनमें और भी पुरा  
वात आज कर सन १९३१ में एक  
नया पत्र पास कर दिया गया है  
और अब भी वह जारी है। यह पत्र  
पास करते समय वह कहा गया था  
कि यह कथक कथक वचन जिय है  
लेकिन बाद का उसका मियाद बढ़ा  
गई। अतः पत्रकारों के लिये  
विशेष सात पाठ होना बाला बाला  
किमिलन का प्रत्यक्ष पत्र एक ओर  
भी कहा कर इय है मौजूद है। अन्य  
प्रति में विशेषाधिकार सम्पन्न  
कानून जारी है। इस सात उनकी  
मियाद पूरी होन वाली है, लेकिन  
अपवाद गरम है कि सरकार ने  
उनको मियाद बढ़ाने का निश्चय  
कर लिया है। मैंने इन सब पत्रों  
का कारी प्रभावना अध्ययन किया है  
और मैं कहूँ कि यह सच है कि वे  
समाचारपत्रों के विकास में नो  
बाधक हैं जो साथ ही स्वतन्त्र पत्रों  
की नीति में विचार करने के लिये  
कभी प्रिन्टिंग सरकार के लिए थी  
श्रीमान्त्रक नहीं हैं। यहाँ मैं इन वि-  
भिन्न चारों की विस्तारपूर्वक प्रलो-  
चना नहीं करता। हमारा समाचार पत्रों  
का कानून तथा व्यवस्थापिका सभाओं  
में उन पर अनेक बार विचार हो  
चुका है। इन कानूनों का जो बड़ी  
कठिनाईयें पड़े हैं उनका कारण तो  
कोई संशोधन कर नहीं दिया गया  
है। इसमें कोई आवश्यक भी  
बात नहीं है, यहाँ कि उनका सत्ता  
प्रत्यक्ष उत्तर दिया की नहीं आ  
सकता, यह बात ही है कि  
सरकार पत्रकारों को अपना अनु-

समकपी है। इसलिये तो समाचार-  
पत्रों की रिपोर्ट देने का काम मुश्किल  
पुनिक के विभाग के सुपुर्ण है।  
लेकिन पुनिक का काम व्यवस्थाओं  
की स्वर रहना है। अब हमारी  
देखकर भी उसके सुपुर्ण कर दी  
गई है, तो इसका मतलब केवल यही  
हो सकता है कि सरकार की नजर  
में हम भी व्यवस्था है। दमनकारी  
कानूनों के समय अक्सर यह कहा  
करते हैं कि जो शास्त्री को अनुचित  
काम करना नहीं चाहता उन उन से  
हमने को जरूरत नहीं है। इसी  
दलील का सबन देखा उत्तर बह-  
न बहुत पहले ही दे दिया है। बह-  
न कहा था कि अगर कोई कानून  
बनता तो यह कहने में कि उसका  
बहुत सीधे सम्पन्न कर व्यवस्था प्रा-  
प्त्युक्त होन पर दो प्रयोग किया  
जायगा, वह अवश्य नहीं हो सकता।  
एक तुलना को मौजूद होगा ही  
अधिकारियों के लिये भी और उन  
के शासन में रहन बाँटों के लिये  
भी बहुत बुरी बात है। एक ओर  
तो उसका यह परिणाम होता है कि  
अधिकारियों का अपने अधिकारों  
का उपयोग करने का साधक होने  
लगता है और दूसरी ओर अधिकारों  
के इस उपयोग से जिन लोगों का  
हानि पहुँच सकती है उन में काय-  
रता और मरकरी भान लगती है।  
आप में शासन करने वालों का  
और शासक जनता का दृष्टिकोण  
एक में होने के कारण उन के बीच  
मिल ही सचने रहता है। इसलिये  
कानूनीय कानूनों का अस्तित्व  
मिलना बहने के देश (विश्व) में बुरा  
हो सकता था, भारत में सबकी  
अपेक्षा उसमें कहीं अधिक हानिकार  
रहने है। यह कहना अत्यन्त या तक  
ही की बात नहीं है। अपने लिए  
अनुपम से हम कभी तरह जानते  
हैं कि शासन में बात ऐसी ही है।

दफा १००

मेरे दिल में बह कर एक प्रश्न  
है कि जिसका कोई उत्तराधिकारी

उत्तर नहीं है मुझे दो सौच सच  
है और मैं किसी दूसरे ने ही क  
सका है। यह प्रश्न यह है कि क्या  
जानता जो पत्रकारों में दफा १००  
मौजूद ही है तो फिर दमन के लिए  
और कोई विशेष अधिकार बनाना  
कानून पास करने की जरूरत ही  
क्या है? इस वक की भाषा ऐसी  
व्यापक है कि अगर सरकार उसका  
कारण पत्रों को केवल अनुचित कार्य  
करने में रोकना चाहती है और उहाँ  
की उचित स्वतन्त्रता का अपहरण  
करना नहीं चाहती, तो वह क्या  
सब तरह से काफ़ी है। सन् १९०५  
में भारत सरकार ने दृष्टि में होने  
वाली कुछ घटनाओं से सबका कर  
ताजिस्त हिन्दू में दफा १२५ ए को  
संशोधन किया था और दफा १२५ ए  
में अंग्रेजों की और जागना जो पत्रकारों  
में १०० पत्रों अंग्रेजों थी। इन लोक  
कार्यों का उसी समय सारे देश  
में बिरोध हुआ था और बिरोध करने  
वालों में स्वयंसेवा आ उमेरजद  
बनवाँ तथा दमन के स्वर्गीय  
महाराज सर लॉरेन्स विल्ड बालुवर  
केन व्यक्ति भा थे। परन्तु उस  
दिन का हो होता रहा है, जिस  
कार ने जनता के बिरोध की ओर  
तत्काल से स्थान नहीं दिया। उस  
समय के दोम मेबर के बड़े तपाक  
से कहा था कि मुझे इस बात की  
तत्काल भी परवाह नहीं है कि भार-  
तीय प्रान्तों के क्या करते हैं।

१ वर्ष पूर्व, मुझे देश के सब से  
बह अधिकारियों से यह प्रश्न का  
अवसर मिला था कि ऐसी कौन सी  
बात है जो आप दफा १०० द्वारा  
नहीं कर सकते और किस कारण से  
आप को प्रत्यक्ष अधिकारों का प्रा-  
प्त्युक्त है? इस का उत्तर मुझे यह  
मिला कि दफा १०० प्रत्यक्ष से ना-  
कानून हिन्दू हो चुकी है। मैंने कहा  
कि अगर आप इस बात का प्रमाण  
दे सकते हैं तो मैं, और मैं इस बात  
का अग्रगण्य है कि विभाग एक ओर  
के, अधिकारियों को इसके प्रयोग में  
सहाय्य ही सकता है। यही है। वह  
एक बार बाकी बचता यह है कि  
स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने जब  
वर्षा १८८५ में अगमल दृष्टि करने  
के कहा गया था तो बाँटों में  
अपील करने पर मजिस्ट्रेट का  
हुकम यह हो गया था यह दफा कुछ  
कर काफ़ीस वर्ष में जारी है, अतः  
है इस वक प्रत्यक्ष में दो एक अवस-  
रक और भी इस वक के जल में  
रहने से बच गये हैं, लेकिन यह  
लिखते हैं कि जो बार बार को को-  
कर प्रत्यक्ष सारा को अधिकारियों को  
इसके द्वारा जो कुछ वे करना चाहते

वे वही करने में सफलता मिली है। पर इतने से वे समुद्र नहीं हुए। 'नर्वे' में हिमा में तो इस प्रश्न को एक ही उत्तर बताया है और वह यह कि ब्रूक १०८ के सुनारिक फेसला करने वाले वही सरकार के मातहत कर्मचारी (मैजिस्ट्रेट) ही हैं। लेकिन कमिश्नरी को सफाई देने का तथा हाईकोर्ट में अपील करने का मोका तो मिल ही जाता है। सरकार शायद यह सहन नहीं कर सकती, क्योंकि उस कानून का राज्य की अपेक्षा अधिकारियों का राज्य ज्यादा पसन्द है। लाइ मारले न एक बार हाई मिस्ट्री को लिखा था कि भारत सरकार बकीलों के विरुद्ध इस लिए है क्योंकि वह कानून को बिन्दु है। यद्यपि किसी भारतीय पत्रकार के नहीं बल्कि एक भारतीय-सन्धी के हैं। सब बात यह माहिर होती है कि भारत-सरकार को स्पेसिफिकारि का इतना अभ्यास पड़ गया है कि उन अपने कामों में स्वतन्त्र न्याय-विभाग का हस्तक्षेप करना अच्छा नहीं मानते हैं।

देशी राज्य और मन्त्रालय

में पड़ते ही इस बात का जिक्र कर चुका है कि हमारे देशी राज्यों में समाचारपत्र कहलान योग्य समाचारपत्र नहीं हैं। कुछ उदाहरणों राज्यों को अपवाद स्वयं ही देकर बाकी राज्यों का बाबत मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि उनके कार्यों की स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिए भारत का समाचारपत्रों में हो होती है। भारत सरकार का देशी राज्यों में इतना प्रभाव है कि अगर वह चाहे तो उनके मंत्रियों पर इस बात का दबाव डाल सकती है कि वे अपने-अपने यहां समाचार पत्रों तथा अन्य स्वतन्त्र मन्त्रालयों को जोखिम में डालें। परन्तु यह तब ही हो सकता है जब उसने इस प्रकार के कानून बना दिये हैं कि ब्रिटिश भारत का समाचारपत्र भी उनको स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकाशित करने के लिए देशी राज्यों की प्रजा का ता शासन पर कोई नियंत्रण है, न उसका प्रतिनिधित्व का शासन कार्य में होय है, न उस माध्यमों द्वारा या समाचारपत्रों द्वारा अपने-अपने की प्रकाशित करने की स्वतन्त्रता है और अब प्रियम्न प्रोटेक्शन एक्ट की बलीयत उन ब्रिटिश प्रिन्सिपल का समाचारपत्रों से भी काफी सहायता नहीं मिल सकती। माजी शासन विन न में भी लिखावटों की प्रजा का नागरिकता के अधिकार नहीं प्राप्त होते भारत की व्यवस्थापिका समाचार में विवादास्पद की प्रजा का एक भा प्रतिनिधित्व

होगा। हाँ, मंत्रियों के प्रतिनिधित्व रवों और उनके द्वारा वे ब्रिटिश भारत के कानूनी मामलों में भी बल दे सकते हैं। परन्तु ब्रिटिश भारत के लोग देशी राज्यों के मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न कर सकते हैं। इसे बात का कोई लक्षण नहीं दिखाई देता कि देशी मंत्रियों की शासन प्रणाली में कोई समायोजन परिवर्तन होने वाला है। ब्रिटिश भारत के पत्रों को भी यह स्वतन्त्रता न होगी कि वे देशी राज्यों के मामलों की स्वतन्त्रतापूर्वक करी आगेचना करके राजा प्रजा दोनों को संतुष्ट कर सकें।

आवृत्ति कम-मध्यम-उच्च-कम्पनी लिमिटेड लाहौर का

जगत सिन्ध्या

# कामचक्षु

READ

रोषयत बहादुर सिंह व हिमा को ब्रिटिश राज्य के एक नगर प्राय भी प्रकाशित कर रहा है। इस माध्यम से आपका समाचार है। हर जगह किताब है। प्री स्वराक्ष ४ नमूना १०

देहली के एजेंट—जयमहाल एडव कम्पनी लाहौर को देखलें।

## ट्राली बसों, ट्रामकारों तथा बसों से याता कीजिये

### यह अत्यन्त सुखद तथा साफ गाड़ियां हैं

# डी० ई०एस० और टी० कम्पनी लि०

ट्राली बसों से—

चिरला मिल न पहाड़गंज को, सन्धीमवादी, पुन मिठाई और कुतुबरोड होती हुई।

तो पेरें फी मील की दर से।

ट्रामकारों से—

लत्तूरबाजार, जामा मसजिद और सन्धीमवादी जामा मसजिद।

शीष्म-श्रुत के सस्ते भाड़े पर

बसों से—

- (१) नई दिल्ली और काशीपुर दरवाजे के बीच में। अर्थात् जवाँ हेमिस्टन रोड, कानपुर रोड, बरौ-बाग रोड, (लाहौर दरवाजा) गालनरोड, अजमेरा दरवाजा मिटो रोड, कनाट प्लेस, केडा हाईवे रोड और मोल मार्केट होती हुई, नई दिल्ली गांधी फासि तक।
- (२) फज्जारे और लामारपुर के मध्य में। काङ्गड़ा पुल, फरीदरोड, लोथियन रोड, कनौजी दरवाजा, बलापुर रोड, और माल अंखन होती हुई तिमारपुर तक।
- (३) बाङ्गाली रोड (सर्वरदमिनल) से करीबवाग तक। इस प्रकार नय निवासस्थान प्राचीन नगर न मिल जात हैं।

समय तथा किराये की तालिकाएँ कम्पनी के कार्यालय से मंगाने पर मिल सकती हैं।

निजी यात्राओं के लिये खास बसें खास तौर पर दी जाती हैं।

सर्व प्रकार की वूल इत्यादि से आप बचे रहेंगे।

(दस्तखत) एच० जे० डाङ्गिन

जनरल मैनेजर।

नून दिनें वर्षाश्रुत में प्रायः कुछ श्रुतजित विकार उत्पन्न होते हैं। मन्थान, भयम (उकटी), पतले दस्त, हैजा (Cholera) और ज्वर आदि रोग काज कल को भीभी बरसो द्वारा दया हो रहे हैं। रोगों की उत्पत्ति से पूर्व ही उसके निवारण के लिए प्रकृति स्वयं ही उसके पूर्व उपायों का प्रवचन कर देती है। इसी प्रकार भाजकल के श्रुतजित विकारों की शक्ति के लिए भी प्रकृति ने प्रवचन दिया हुआ है। हमको चाहिए कि हम उन विकारों की शक्ति के लिए प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं का उपयोग करें। ऊपर लिखे हुए बिमारों की शक्ति के लिए भाजकल परमाणु बपाय यह है कि उसमें पके हुए नीबू के कटों का प्रयोग किया जाय। रोगों, निरोगी, दुर्बल, सबल सभी के लिए यह आवश्यक है कि प्रातः सायं और भोजन के साथ नीबू का उपयोग करें। इस हमके प्रयोग से कि भाजकल के लिए लाभमय है, पाठकों को बतलाते हैं। आया है पाठकपत्र हमको उर्वर्या से लाकर राम लंकते से बचेंगे।

### नीबू के गुण

पके हुए कागज़ी नीबू का रस तीक्ष्ण, फल (कट्टा), पाचक, रौचक, अग्निप्रदीपक, हजका, कृमिघ्न (कृमिनाशक), उर्वर विकार, शूल (Gool pain), अजीर्ण, मलबद्धता, अस्वस्थ प्रति रोगों को नष्ट करता है। गर्म शोध (जैन दान, काज), शूलित जल अजित विकारों की शक्ति के लिए यह वचन उपाय है। विमर्ष द्रव्य पित्त को शूल करता और अजीर्ण को मिटाता है।

### नीबू के प्रयोग

(१) साधारणतया नीबू के २॥ तोले यो ५ तोले रस में अम्लास के मनुसार घोषो को बीनी या शकर अथवा सेधा ममक डोलकर प्रातः और सायंकाल दोनों समय पोना अम्लमय लाभदायक है। इसके पीन से जठरपेन ताड़ होनी और आशर का अना प्रकाश पावन होता है। अजीर्ण के रोग पर जो कट्टा हकारें आता और छाती में जलन पड़नी है, यह इस प्रयोग से मिट जाता है। जहाँ कहीं हड्डन से आघात एक अण्डा हड्डन रहते हैं, यदि उनमें म किसी को खुजली का रोग हो जाय तो जो अण्डे चने लोग हैं उन्हें चाहिए कि वे लोग इसी रसो और नीबू का रस पिपा करें, वर्षाक इसके पान से यह (सुखसो-काज) बीमारो नहीं होती। सबसे अधिक लाभ इसके उपयोग

### स्वास्थ्य-सुधार

## नीबू के गुण और प्रयोग

(लेखक—स्वातक पं० जयस्यनाथ वेधवात्र आयुर्वेदाचार्य प्रामरा)

से यह होता है कि, वर्षाश्रुत के शूलित जल से उत्पन्न होने वाले विकार नहीं होने पाते। यदि किसी जगह पर दोषाण, मरी, पोखर आदि का मलिन जल पीना ही पड़े तो उस जल में नीबू का रस निवेष्ट कर पीने से केहें दोष होने का डर नहीं रहता, क्योंकि कि नीबू का रस चपनो तीक्ष्णता से सब दोषों को नाश देता है।

रस १ माग और शर्कराक ४ माग मिला कर उसमें लोम, काशीमिर्च का योग सा चूर्ण इलाकर रोगी को बार बार पिबाना चाहिये। यदि मौसमी हुबार की अधिक तेजी हो और रागी दुर्बल हो तो कट्टे चिपा यते का कांदा २॥ सोले और इतना ही नीबू का रस मिला कर पिबाना चाहिये। हुबार जिसमें देह उष्णता गर्म और पत्नीना रहित हो, व्यास



लेखक

(२) साग, सखी, हाथ में नीबू डोलकर बानो चाहिये, इसके लिये अम्लक, पोदीना हरी मिर्च को चटनी में नीबू का रस मिला कर खाना बहुत लाभदायक है। नीबू के दो बड़े टुकड़े नीबू में से कर के वनमें सेलममक और काशी मिर्च पीसकर भर दें और अग्नि पर गरम करके कायें। इसमें अजीर्ण, उर्वर शूल, अग्निमार्धा, अस्वस्थ आदि रोग दूर होते हैं।

(३) वमन (उकटी) जी मिलाजाना, दस्त, व्यास और ज्वर इन विकारों को शक्ति के लिये मिश्रानक बनाकर रोगी के लिये देना चाहिये। उसके बनाने की विधि यह है कि, वचन पके हुए कागज़ी नीबूघों का

उपादा लगती हो ऐमें मोके पर यह उपाय करना चाहिये कि ४५ नाउं खाकर उनके छिबके दूर बरें और उनक निछे पतले-पतले कतरे कर लिये जाय, फिर उन टुकड़ों (कतरो) का किसी पत्थर या बीनी क टकावार बतन में रखकर ऊपर से पाव डेढ़ पाव खूब उबलता हुआ पानी डाल दें। १५-२० मिनट बाद छानकर मिमरी या बीनी डाककर रोगी को पिबालें। इससे उर्वर की तजो और व्यास कम होकर बीमार को क्षामम मिलता है।

५ मुसक की सीरर को खुजली और मयूरी के फूलने पर नीबू का रस एक कट्टीक और एक पाव पानी मिलाकर डूको करना चाहिये।

इस प्रकार डूका करने से कंठ, शूल और शरीर के मयूरी से रोगों से छुटकारा मिलता है। इसका कारण यह है कि, नीबू के रस में कृमि लखड़ (Germ) को मारने की बड़ी शक्ति होती है। जो कृमि कंठ, शूल और शरीर में पड़कर कर रोग करत हैं, वे इस प्रकार डूको करने से मर जाते हैं। और रोग का नाश हो जाता है।

(४) यदि अज्वाण (Indigestion) का अधिक जोर हो, अग्निमंद पड़ गई हो, मूत्र भी रुक कर न लगती हो और अपच का कारण पेट में मयूरी बरें रहता हो, अथवा बद्धिजीवी से पतले दस्त रहते हो तो ऐसी अवस्था में 'मिम्बू अण्डेह' (नीबू की चटनी) का प्रयोग बड़ा लाभ करतो है। उसके बनाने का योग उसका यह है—

- १ नीबू का रस ॥
- २ अमलवास का गुश्ता ॥
- ३ सेधा ममक ॥
- ४ दशा मिखरो.... ॥
- ५ शाल चामी ॥ ५ मासे
- ६ लोम ... ६ ॥
- ७ काशी मिर्च ... ६ ॥
- ८ छोटी इलायची के दाने ६ मा.
- ९ छोटी पीपल ... ६ मासे
- १० सेठ ... ६ ॥
- ११ कोरा सफेद शुभा ... ६ ॥
- १२ हरी शुभा ... ६ ॥

बनाने की विधि—रस तो तैयार करने के लिये प्रथम किसी मिट्टी, बीनी या बरब के चौड़े मुँह के बर्तन में नीबू का रस भर दो, फिर उसमें अमलवास का गुद्दा ढोप पाव, सेधा ममक पाव पाव और मिखरी एक छुंईक इन को मिला दो, फिर बर्तन को मुँह ढककर २५ घंटे रखना रहने दो। अब गरम ५ से लेकर १२ तक की चान्नी को खूब मारीक कूट-छानकर तैयार करदो। नीबू के रस को २४ घंटे बाद हाथ से खूब मथकर सफ़ा शरीरक कण्डू में छान लो। छानन पर जो फोक बचे उसे पकें लो। कूने हुए रस को किसी उच्छम मिट्टी की बाँधी में डालकर अग्नि पर चढ़ा दो। चोटते चोटते जब सफ़ा मोड़ा होजावे तब उसको सूखे से भावे उतार कर उसमें उस कूटे हुए चूर्ण को मिलाकर चमच से एक जीव करदो। बस यह 'नीबू की चटनी' तैयार होगी। इस चटनी को रसम काँच की चौड़े मुँह का शीशी में भर कर रस लो। यह चटनी रोगों, निरोगों, कच्चे, बूढ़े स्त्री-पुरुष सभी के लिए लाभदायक है। इसमें से एक दो लीठे चटनी प्रातःकाळ



कुमार विभिन्न प्रकृति का मनुष्य था। वह ऐश्वर्य की गोद में पला था। लक्ष्मी उसकी बेटी थी। विज्ञान उस

का सखा था। मरिचा उसकी चिर-सन्निधि थी। उसका सुख पर बड़ा-कला और वाद्य में मस्ती थी। उस की युव सुकलम में आहु और नभो में 'अमृत' और 'हलाहल' दोनों थे।

वह दानवी था। स्त्री-शिला का नगर में सब से बड़ा समर्थक था। अमायापन का मंत्री तथा विषया अभिषक्त का अन्तराला था। विष्णु कलके द्वार में कभी विमुक्त न आया। कदा ही चार पाँच विषया कुल-नकुल स्वाध्याया प्रतिभाएँ उभान पाती थीं।

वह चण्डाल था। रहन-सहन, वस्त्र का प्रयत्न, लाभारण्य था। मोक्ष ग्राही और मोटर रोमी ही उसने पाया थी। पर वह स्वयं कभी मुले-भटक ही इनको अपने कोम में बाता। विपुल-तन्मय और विपुल चिन्तन भी उसका अपन मित्रों के भ्रूरोध से मकान में लगाव लिखे थे। विज्ञानी का रंभा उसके कान्ते में न था, कारख, पखे को-लीने बाँधी लाठ बर्षीय सुखिया पर उसकी निशेध कृपा थी। वह कदा का ही काम करती थी।

सुकुमार का मकान से सटा हुआ एक सज्जनीय ध्विद दुन्दुभ रहता था। उस दुन्दुभ में कथल दो पायो थे—एक सोहल बर्ष की विषया बालम्बी और दूसरी उसकी दाही (अवस्था प्रसो वष)। दाईं लाठ हुआ तब बालम्बी की विवाह हुआ था। किन्हा ई उसके पिता न लक्ष्मी सम्पत्त ऐतुक समर्थक महा-भूषण के बन्धक चल था थी। इस लक्ष्मी हुए तब बालम्बी फेरी थी। वह बालम्बी के सहाय सज्जु और

और लायकाह लांभी चाहें। यदि बापके के जिन बापा काने के बाप काई जाय तो कुछ हर्ज नही है। वह परम स्वाधिव रोचक, पावक, और उदरनिभ बर्ष के चरमी है। हर गुरुस्वी को इसको बनाकर घर में रखना चाहिये। बर्षों में इनको परमजपजला से जो डेटे है। पाठको का कानि के इसकी बनाकर सज्जु की पर का कर। यह बापकल भीवृत्ति के सुकुमारों से प्राप्त हाने के कारण अन्ध और अन्ध सुख में लैवार हो सकती है।

फ़ानी

## पतित कौन

(ले०—भी जगतनारायण जोशी)

देवर को कबलित कर चुकी थी। उस का पति भी स्वयं में अपन माता पिता की सेवा करने को कुछ ही दिन पीछे अपना सखस इस जगत् न जोड़ चुका था। माता पिता भी अपनी पुत्री की यह विपत्ति न देख सके और वह भी बहान का उसी मातेमारी के शिकार हुए। एक महीने का प्रत्यर यह सब लोला समाप्त होगई थी।

पर पर जो लैन-प्रति बचे थे वह सब बीरे २ दापो पोसो का पेट भरने में काम का लिये थे। अब घर में केवल दो दिन का भोजन शेष था। बालम्बी न कहा, दाही ने पति बन्ध बना होना । "बेटी, परमात्मा पर भरोसा रखो। वह अवश्य हमारी सहायता करेगा।"

"दाही, विश्वास नहीं होता। परमात्मा हमारा सहायक होता तो वह दिन ही क्या दिखान चुकते। यह कहते-कहते उसे अपना विस्तृत दुःख की पाख बागई। वह रीत लगी। बहने अपनी दाही की गांव में अपना लिख रखा लिया। सुखिया न उसे सम्पत्ता देगी बाही, परन्तु पुत्र की स्मृति जागृत हो उठे। वह भी रो पड़ी।

यह दोनों रो रहा था कि इतने में सुखिया बागई। सुखिया न पु-कारा—"बालम्बी! बटी बालम्बी! बाहीदो न कुछ उत्तर न दिया। सुखिया न सुखिया को अपने पास बुला लिया बाहीदो अभी रो रही थी।

सुखिया न कहा—"बावो, मुझे तुम से एक कास बात कहना है।" अन्तस्त्व मोक्षा बावो की दाही का बावो हो कह कर पुकारा था।

"सुखिया, क्या बात है?" "बाबू चाहते हैं कि तुम्हारी कुछ सहायता कर लिया करें।"

"मा सुखिया, जब तक हमारे हाथ पैरें खलें, हम कानि के बाधित न होगे।"

"तो बाबू काम भी दे सकते हैं।" "क्यों काम?" बाही ने पूछा। अब वह रो चुकी थी, और अपने स्त्री की गोद में बंटी थी।

"कुछ नहीं, केवल बाबू की राखी पकना।"

"यह तो मैं कर लूंगी। क्या मजूरी मिलेगी?" बावो ने कहा। "बार-बार क्या महीना, और एक बावो की भोजन।"

मुझे स्वीकार है और तुमका दाही!"

"मुझे भी।" सुखिया बजो गई। दाही ने कहा, "बावोदो, सुकुमार बड़ा पाखी है।" "पर उसने मुझे गोद जिताया है।"

(३)

"सुकुमार इस नई विधिया के फंसाते में इतना समय लग चुका। फिर भी तुम सकल नहीं हो।"

"लिख, बाबी दाता दाता है। पत्नी ने देख लिया है, अगर मैंने जानकर आज नहीं जैलाया है।"

"क्या?" "अबो सुखिया की बाबा नहीं है। वह समझती है, बाबी पत्नी उठ आया।"

तुम भी क्या उस सुखिया के वह काय में बावय? अगर मैं तुम्हारी जगह होता, तो ..."

"तो कम से कम एक बच्चे का कानिया सजापर से अपने बाव की काज उठावो या बहन की मार से बावपी कमर का दर्द मिटवाएं।"

"तुम का चिन्हाह को चुक रही है।"

"और आपका काम की!" इतने में सुखिया न बाकर कहा "बाबू भोजन लेया है।"

"मैं बावो हूँ, वह कहते हुए सुकुमार बाबू लखे हो गये।

(४)

सुखिया और सुकुमार बाबू बाकिर अपनी बावो में सकल हुये। विनाशित जीवन का सुख—बह सुखक दन्त—बालम्बी अभी न भूकी थी। उसको स्मृति अभी शेष थी। वह कोई हई बस्तु न रह गया था। सुकुमार ने बम का प्र-लोभन, बावपों की मंड, और

उसने भी व्यक्ति विवाहित जीवन का सुख देने का अब सचन किया, बालम्बी न भी कुछ-कुछ स्वीकृत दे दी। वह पुनर्विवाह करना चाहती थी। उसकी उसन स्वीकृत हो।

पर बाकर उसन अपनी दाही से कहा—"दाही, सुकुमार से पुनर्विवाह करने की मैं स्वीकृत दे आई हूँ।" दाही न अपना माथा ठाका, और कहा—"बालम्बी, बालम्बी, जिन व स्वयं समझी है वह तो पोतल भी नहीं है।" वह कहते कहते बह बेंदोया होगई।

पाँच दिन बाद सुखिया बज बसो। (५)

"बाज, बात का टाकते-टाकते कितने दिन हो गए।"

"तो अभी जवो क्या है?" "और मुझे यह दोखर महीना है।"

"यवो तो मार्ग में बाचक है।"

"क्या, क्या वह तुम्हारा नर्त है?"

"मेरे में कब अस्वोकार करना है।"

"तो फिर।"

"मैं सज्जु का सुह कैम विचारण।"

"और मैं,।"

"मैं क्या जानूँ। अपना पाप का पल भोग।"

"पापो कोन है?"

"तुम।"

"और बाव।"

"तो कथा बिगड़ी है। पाप को गठरी लवता। तू क्या बाव

मैं और पाप की गठरी।" ... परमात्मा यदि मनुष्यों के यह पाप को गठरी लवता। तू क्या बाव

सरस्वती की योग्यता बाकर कह सकते हैं कि यह पाप है।"

"हां।"

बालम्बी को कोव का गया।

पाव ही मेज पर कलमपान रखा था, उमे उठाकर सुकुमार क लिर पर दे मार। बाज और लोकी

स्वाधी दोनो और को बह गई। सुकुमार अपने को समझते इतन में उसने मेज पर रखा हुआ कुशभन

हाथ में उठा लिया और वह भी भद से उसके मार दिया। (६)

फिर वह सुकुमार क उर नहीं गई। पाँच महीने ब प्रभावस्था की दानि थी। कथम का महान था। नौ बने थे। चोरी को मालि कन्प

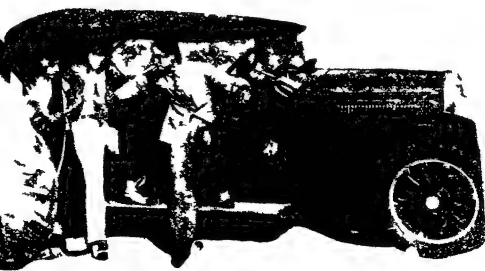
जानाकर सुकुमार उस के घर में उतर गया। एक कोन में दिया दिम-



‘मूल का भोग’ के दो दृश्य



रामपूतना फिल्म कम्पनी अजमेर ने पहली फिल्म ‘मूल का भोग’ तैयार की है। उसी क दो चित्र यहाँ दिये जाते हैं।





## साहित्य-समालोचन

समालोचनार्थ सब पुस्तकों की दो दो प्रति आनी चाहियें। एक पुस्तक आने पर समालोचना न हो सकेगी।

**माधुरी—(नव-वर्षा क) सन्ध्या-**  
एक श्री रुपनारायण पोन्डेय और श्री नौकिश्वारी मटनावर पम० ६०। प्रकाशक—नवकलशिएर प्रेस, लखनऊ। वार्षिक मूल्य ६।०।

माधुरी न हिन्दी सप्ताह में अन्य लेकर हिन्दी की पत्रिकाओं में नौकिश्वारी की थी, इस में कोई तरह नहीं। उसने एकाग्र कविता का स्टेडिङ्ग ऊँचा कर दिया। पाठकों की कविता हिन्दी-पत्रिकाओं की ओर बढ़ने का भय बन्दूक माधुरी को विश्व जगत् चाहिये। कुछ सालों तक हिन्दी सप्ताह में माधुरी की ही दूती बोझती रही।

बीच में कुछ सालों तक शिथिल रहकर कब माधुरी के संचालकों ने इन फिर से मय उत्साह में चलना का प्रयत्न किया है। यह नव-वर्षा क इसी की कविता है। लेखों का प्रथम प्रकाश हुआ है। तुलसीदास, बा० गंगाधर, का, लखनऊ, पुस्तकालयों का प्रचार, अथ विराट् कथा भारतीय प्रवासी भोज है। प्रायः प्रकाश लेख सुन्दर हैं। कविताओं में एक-प्राय की जोड़ कर सुन्दर है। कविताओं का सम्बन्ध में हमें एक बात अवश्य कहनी है। कविता और ऊँची कल्पना की कवि का उद्देश्य न होना चाहिये। मनुष्य का ऊँच आशय की ओर धीरे जाना उसका कर्तव्य है। आज-कल साहित्य की एक नयी प्रवृत्ति कविता में चल पड़ी है। कवि पाठक को एक नये जगत—सुरास्र जगत में ले जाते हैं, जहाँ शराब और मर्त्य—लाभ प्राप्त और मरम्मत वेदना आदि के बिना कार्रवाही की गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने यह समझ लिया है कि सब पाठक शराब के आनन्द को अनुभव कर चुके हैं। सुरास्र महापातक है, यह खगोल कविता को हमारा रहना चाहिये। इस जगत् में सुख के मय की प्रशंसा भी नहीं करनी चाहिये और सब शराब के प्याले में दूध या अमृत पिबाने की कोशिश करनी चाहिये। साहित्य की बढ़ती हुई प्रवृत्ति मित और प्रवृत्ति है। श्री राजकिशोर राज की 'और पिता' इसी गन्ती

प्रवृत्ति की परिचोचक है। एक शराबी का चित्रण ऐसी भाषा में अत्यन्त प्रभावित है, जो मरणोपान्त को उत्तेजित है। भी इतनी भी शराब के प्याले में बहुत-कुछ पिबाना चाहते हैं। क्या उन्हें और कोई प्याला नहीं मिलता। हमारी निम्नलिखित सम्मति है कि साहित्य की यह प्रवृत्ति बन्धु बान्धव चाहिये।

नव-वर्षा क की कथाएँ, गौरीधर और जिन कालन्त सुन्दर हैं। इसक कविता माधुरी के सम्पादक धन्यवाद के पाते हैं। आशा है, हिन्दी का साहित्यिक हल अवश्य आनावेगा।

—कृष्णचन्द्र।

**तेज का कृष्णाक्ष—** बधा पूष इस बार भी दैनिक तज, दहली ने ऊमाधर्मों के प्रचुर पर कृष्णाक्ष प्रकाशित किया है। अक का रंग रूप सुन्दर तथा गेष्टप्र उच्चतम है। तो निरन मनोहर बिज है। एक में मगवान ऊष्ण पात्रों पाँचों की निरगला जोड़ कर पुत्र के लिये तैयार होने को समर्थ दे रहे हैं। सुखी महानर्मा का है। दश विदेश के नेताओं, साहित्यिकों तथा उपायसाधकों के लेख तथा कविताएँ हैं। कविताओं का प्रकाश समग्र है, लेख मगवान के जीवन पर प्रकाश डालने के आन्तरिक सामयिक सम्बन्धों पर भी रोशनी डालते हैं। दृष्ट सखा सो मे अधिक है। मूल्य १०।

—'पाठक'

**राजस्थान (बेगार-अक) —** सम्पादक—श्री हरिभाऊ उपाध्याय और अष्टविन्द मंडता।

यह पत्र श्यावर (राजस्थान) से प्रकाशित होता है। रियासतों में बेगार की दृष्ट प्रायः आज भी समस्त ब्रिटिश भारत से अधिक जोरों में चिन्तमान है। उसे नष्ट करने के लिए ही यह पत्र प्रकाशित किया गया है। इसमें बेगार पर उज्ज्वल और विविध रियासतों में बेगार की स्थिति पर प्रकाश प्रकाश डाला गया है। श्री गणेशराज और श्री गोपीराम के लेख सुन्दर हैं। अन्य भी अनेक

लेख अच्छे और पठनीय हैं। आशा है कि रियासती राजा और ठिकानदार बेगार की दृष्ट प्रथा को नष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

**उद्गार—(नव काव्य) —** ६०

धीवृत्त 'कनक' अग्रवत्। प्रकाशक—भारतीय चित्रपरिचय कार्यलय—प्रजपतर। मूल्य सखा ५६। मूल्य १०।

इस छोटी सी पुस्तक में 'कनक' जी न अपने हृदय के 'उद्गार' कोश कर रखते हैं। एक युवक और उत्साही युवक की अग्रवत्प्रेमा के बरान हमें इन 'उद्गारों' में डूबे। सबकुछ पराधीन भी कल्पन-मुक्त करने का जिस भाव इतने में लौकिक भी बनकर है, उसे यह 'उद्गार' अवश्य पढ़ने चाहिये। यद्यपि पुस्तक की भाषा में कहीं-कहीं कुछ उच्चमन्त्री अवश्य है तथापि शैली सुशुद्धपूर्ण होने में कहीं-कहीं नहीं, फिर लेखक का यह प्रयत्न प्रशंसनीय तो है। आशा है अग्रवत् ने भाषा की और सुस्पष्ट और परिमार्जित बना सकेंगे। पुस्तक में प्रक-संगोष्णक की असावधानी से शब्दिक गलतियाँ भी रह गई हैं।

## ५०) इनाम

महात्मा ज्योतिबा फुले (बकरी की आधुनिक नौकाविग, तीन दिन में पूरा भारमा। यदि सैकड़ों इन्कीमें डाक्टरों, वैद्यों, किसान, दलालों की दूध कर निराश हो चुके हों तो इसे लगा कर कारोबार हो। बकायदा साबित करने पर १००) इनाम। जिन्हें विज्ञान न हो—) का टिकट लगाकर शर्त बिजाले। मूल्य २।

वैद्यराज अजित किशोरराय २०१ पी आ० कलगीसराय, (गया)

## प्राप्ति स्वीकार

वाल्कल्या—६० श्री बन्धुपति पम ९। प्रकाशक—संजीव आर्य प्रतिनिधि समाज पञ्जाब लाहौर। मूल्य १०।

भाषि विधान न तत्पर विधान प्रकाशक—जिनसद्वी प्रथमाज्ञा विधी। मूल्य १०।

—'रमेश'

मारवाड़ के ग्राम गौत—सम्पादक श्री जगदीशसिंह गौत। प्रकाशक—हिन्दी साहित्य मन्दिर—सदाशिव जोषपुर, मूल्य १०।

## गुप्त मन्त्र

### १००) इनाम

जिस काम को आप जानें कपड़े कपड़े कर के भी नहीं कर सकते हैं, उसे इस मन्त्र को लिखें ७ बार आप कर ही कर सकते हैं, किसी कपड़े या साधन की आवश्यकता नहीं, यह मन्त्र लिख कर मजा आता है। आप जिन बातों में, बाहे बर केला ही कठोर चाहते, अग्रिमानी क्यों न हो, इसे अपने के साथ आपसे मिलने के लिए जालविल होगा। इस मन्त्र से आशु-रूप होता है। नीकरी जन्म मिलती है, नीकरी वालों को लच्छो मिलती है, मामले मुकदमे में जीत होती है। जोटरी में जीत होती है यह मन्त्र बारीकरा है। व्यापार में लाभ बढ़ पट्टा में पास गराता है। बकायदा साबित करने पर १००) इनाम। मक का मूल्य २।

पता—सिद्ध मन्त्र शास्त्र, नं० ६ यो० बौ० कलगीसराय (गया)।

इसी ऋतु में आमाशय के रोग फलते हैं

## हैजा

हमें सब से भयंकर है, अतः

## अमृतधारा

का

जो सर्वश्रेष्ठ प्रतिफलक और रोग निवारक औषधि है

निरन्तर सेवन करते रहें।

हाम २।) प्रशिरीश, अथ श्रीपी १।), मधुमा १।) आमा मन्त्र।

पत्र-व्यवहार व तार का पता—अमृतधारा = लाहौर।

नकालो के पोले से बचो।

देखनी मे एजेंट—बिहारीलाल वासीराम, खारी बागजी स्ट्रीट।

## विप्लवी दुनिया

## लोहार का हत्याकांड और उसकी कथा

(ले—भी जयनारायण व्यास)

लोहार पंजाब की एक छोटी सी रिवास्त है। इस को रकबा २२२ वर्ग मील है और जनसंख्या २३३३२८ इस में लोहार ही एक भाग है जिस की जनसंख्या २६३४ है और बाकी ७० गांव। इस में ६ परिवार मांग बस्ती हिन्दुओं की हैं। बाकी मुसलमानों की। 'हिन्दुओं' में आधे बस्ती आते हैं। लोहार के उत्तर में हिसार जिला है परिसर पश्चिम और पूर्व में बीकानेर, जयपुर और जूझ रिवास्त हैं।

## लगान का प्रश्न

लोहार रिवास्त में लगान बहुतों के लिए कोई स्थिर नियम न होने से १९१६ में रिवास्त का लगान स्थिर किया गया था। लगान स्थिर करने के उपरान्त प्रसिद्ध सरकार के आदेश में जो खारी रिवास्त का लगान रु००००० रकमा बांटे थे, पर रिवास्त पर संशोधन नवाग को ५ लाख कर्ज और दोने से लगान बढ़ा कर साठाना लगान (७३०००) रक्का गया। यह भी तय किया गया कि यही लगान २४ वर्ष तक लिया जाय, पर सन १९२३ में रिवास्त ने लगान (७३०००) से १४०००० कर दिया। कहते हैं कुछ लोगों ने इस चुन का विरोध किया पर छुन लोग 'रिवास्तों' में आमतौरक स्वतन्त्रता जो ठहरी। कहते हैं गाम्बू बास क हीरा नाम क जाट को इस आपराध में निवासित कर दिया गया। और उस की सम्पत्ति भी क्षमा भी और बिलकुल, पाछे, बिस्वको और मागक क सम्बन्धों की सम्बन्धारी क्षमा का गई। कुछ लोगों को इस विरोध में नाजपाज तोर पर बिनास में भी रक्का गया बता या जाता है। कुछ भी जो इस सम्बन्ध स किशन लोह दग गय, पर वे लगानार नवाग साहब के पास जाते गले रहे और लगान क करने की धमकी करते रहे। नवाग ने अपना किष्मा पक्षी करने की ता मुक्ति भी कहाई है क्योंकि वही रिवास्त के लिए तो कोई क्षुण्णित व्यवस्था ही नहीं है। स्थिर एक उर्दू मिखि लुख लुख कले में है। दूसरे स्थानों में कोई लुख नहीं है और मादुस दुष्मा है कि न दूसरी को लुख लोखने की इजाजत तो जाती है। और—

## जमीन की मिलाकियत

सन १९०६ में जमीन को मिलाकियत भी किसानों को द दो गई थी और इस का जिक्र भी सरकारी गेजियर में है पर बाद में नवाग साहब ने इस मिलाकियत पर भी अपना अधिकार अमा किया। जमा मयियों में पुरान कानों के साथ एक नया काना जोड़ दिया गया जिस में जमीन को आधा माजिद नवाग साहब को बतया जान कता। मूमि पर अधिकार तथा मूमि कर सम्बन्धी य कथ तथा ऊट टैक्स की लोहार के लतामान आन्दोलन क मुख्य कारण हैं। तथा किसानों के बारे में छोटे २ कथ मित्राने की प्रार्थना करते रहे हैं और सब सोचता भी दुई है कि अन्य टैक्स नहीं लिए जायें पर आर्थिक स्थिति काय होन पर भी किसानों न लगान तो १९०६ के अन्यायक क मुभाकियत नहीं किया जा रहा है, न, ऊट टैक्स को उठाना या कम किया जा रहा है।

## ऊट टैक्स

यहाँ थोड़ा जिक्र ऊट टैक्स का भी कर देना चाहिये। पहिले कहते हैं कि किसानों के ऊट जंगलों में चरा करते थे और वहाँ क उपलब्ध में उन न टैक्स लिया जाता था, पर बाद में उन में जंगलों में ऊटों के चरन की व्यवस्था न होने पर भी टैक्स पक्का हो गया।

## दूसरे आरोप

आर्थिक टैक्स बढ़ान करन क प्रतिरिक्त दो और मयंकर आरोप किसानों के अधिकारों क निरुद्ध हैं। एक है बिपदाओं के विवाह (करवा) के उपलब्ध में मोटी २ रुकमें ले लेता और दूसरा १९३४ पहारी गांव पर कैम्प लगाकर कई बहानों सेनाआजय तरीको ने लोगों से इजार्जी करनी का बलुष किया जाना। ये ही वर्तमान आन्दोलन के मुख्य कारण हैं।

## किसानों का संगठन

जिन कचों को जिक्र ऊपर किया गया है जो क दूर करान के उर्दू इस से किसानों ने संगठन लुफ किया। उन में योग्य नवागों का तो आधाव था। बाहर के जाटों ने उन का नेतृत्व प्रसरीकर कर दिया। अतः

वे अपने ही दंगने पंचायतें करने लगे। हम रिवास्त के अधिकारियों ने मापसंद किया और एक बार पंचायत को इकट्ठा भी न होने दिया, परन्तु संगठन मजबूत हो जाने से देख कर स्टेट ने समझौते की नीति बल्लभार की। किसानों की पंचायतें बुलाई गई और उन में नवाग साहब और उन के मित्रेदार और भ्रष्टार भी थे। पहली पंचायत बेहड़ में हुई जो इस बात पर टूट गई कि वहाँ किसानों ने स्कूल खुलवान की शर्त कर दी। फिर न होना, बाइस गांव की डीपरी और बारवाल में पंचायतें हुईं। बारवाल में नवाग साहब ने १४ गांवों कोड़ दी पर मुख्य २ गांवों में जूझ न की। ये गांव ये हैं:—

(१) हाकिम १९०६ के कन्वैक्स्ट के अनुसार हो।

(२) जमीन को बचन का हक किसानों को हो

(३) जिन की जमीन बेची गई है उन्हें वापिस दू जाय और नवय वाले को क्षमा दिया जाय।

(४) ऊटों की जमागत न जो जाय।

इस पंचायत क प्रबल पर नवाग साहब न पंचायत करन के हक को स्वीकारकर लिया और स्कूल क सम्बन्ध में पैसा कहा हुआ जाता है कि स्टेट दूसरों को पठाया जायें

लोखने की इजाजत नहीं दे सकती पर कुछ खेम देगी और किसानों को का हथ कि जो पैसा वे रिवास्त में खर्च करना चाहते हैं स्टेट को दे दें ताकि वह जन्दी स्कूल खोल सके। किसानों न स्टेट की शर्तें नहीं माने।

## १५ जुलाई

अतः न पन्हुह जुलाई को एक दरबार हुआ जिस में ९० जो ० जो पंचायत स्टेट समाये। किसानों को प्रायः वहाँ पुरानी शर्तें मंजूर करन को कहा गया पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया और १० जो ० जो साहब को पैसला करने को कहा पर ९० जो ० जो साहब न इकार कर दिया और यह कह दिया कि 'मुझ्दारा पंचायत नवाग ही करने।'

## आन्दोलन

इस प्रकार अपनी मर्जी को ठुकरा दिया जात देस कर उन्होंने पंचायत का भीर मजबूत बनया। जन्दा भी इकट्ठा किया पर इन बात को मुकामिल को सरकार वहाँ कर और संगठन का बाधियों की हरकत बना कर किसानों को मारा पीटा गया और लूटा खलौटा गया जिसके परिणामस्वरूप २२ अगस्त को मर चुक है और कितन ही वायस हुए हैं।

## क्या आपको मालूम है कि विश्वयात्री क्या लिखते हैं ?

मनुष्य के मूलार्थ सहायक सम्पादक श्री भीपरम और सत्यानाम विचारक और सहायक पर यात्रा कर रहे हैं, अपने एक पत्र में लिखते हैं—

“५० पी०, मध्यप्रान्त और पूर्वी महाराष्ट्र क कत्वा और छोटे २ गांवों तक ने साप्ताहिक 'अजुन' को आये देखकर ऐसा प्रवेत हुआ कि हम आप से इत नहीं हैं। अजुन का यह सम्बन्ध अमर्य स्थानों में भी पहुँचकर महामातृ-कालीन अर्जुन की विजय यात्रा की स्मृति दिना देता है।”

## विज्ञापन दाताओं से—

क्या आप भी अपने मातृ को भारत के कोन २ तक नहीं पहुँचाना चाहते। आपको मातृ को स सीधा सम्पर्क न रखन का एकमात्र साधन 'साप्ताहिक अर्जुन'।

विज्ञापन दूर के कितने पत्र व्यवहार कोजिय।

मेनेजर 'साप्ताहिक अर्जुन', दिल्ली।

इन्हें अपने पेशे का कार्य सुचारु  
करना पड़ता है।  
( 'राजस्थान' से )

१९२८ में इटली और अफ्रीकी निष्ठा के बीच मित्रता की एक संधि हुई थी। इस की घोषणा सोवियत मुसोलिनी की फासिस्ट सरकार ने भी निम्न प्रकार की थी :—

“यह विश्ववत्, समग्र राष्ट्र-निष्पारी की भावा के बाद इटली और अफ्रीकी निष्ठा के बीच सम्बन्ध यथिष्ठ मित्रता के द्वे गये हैं। अन्य स्वार्थी (राष्ट्रीय) के एजेंडों की कृपा से अफ्रीकी निष्ठा के साथ सम्बन्ध पर जो काल बाधल हुआ गये थे, निम्न मित्रता के द्वे गये हैं। मित्रता की यह संधि—जो अफ्रीकी निष्ठा की ओर किसी योरोपियन राष्ट्र के साथ की है, उससे प्रथम है, और अविच्छिन्न सम्बन्धनाओं में यह इस व्यवस्था में अफ्रीकी निष्ठा की ओर भी पवित्र बना देगी।”

परन्तु योरोपियन राष्ट्रों के साथ मैत्री सम्बन्ध जिस की पवित्रता (?) की इतनी दुर्गति होती गई थी, उस के स्वार्थी के ऊपर निर्भर करता है। योरोपियन देशों में कभी मैत्री सम्बन्ध की पवित्रता की निमाया जगता ही नहीं। इतिहास प्रकृतिक के साथ इस की दुर्गति में उदाहरण पेश करता है। और वर्तमान इतिहास इस की कह रहा है।

विगत महासमर के पूर्व अमेरिका सयुक्त राष्ट्रों में अंश भावों इतिहास (जो अब घटित हुई जाके, जोरी, और उच्चकल्पन से आधुनिक कथाओं में) जाया करत थे, वे अमेरिका के नवीन शिष्टेय काल का हारा कह गये। उस समय इटाली के राजनीतिज्ञों को बुध होना पड़ा, क्योंकि इटली पूर्णतया था। ये इटली की बहुत जनसंख्या के स्वायत्त प्रमुख होने लगे कि कीर्तियों इत्यादि इतिहास उपनिषदों में बार उल्लेख से अधिक आवाही नहीं कर पा सकी। अतः नये देशों की प्रशंसा की हुई शुरू हुई। अहाँ लैटिनभाषी जनसंख्या बसाई जा सकी। इस आशय की विवेचनायों सकट के काल में सब देशों की ओर से एक दूसरे के व्यापार के चिन्तक टेरिक वास (वीवर) सब्दी जो जान स और उल्लेख जगता। इटली की ऐसा प्रताप होने लगा कि यह अफ्रीका सीमाओं में निष्ठा जा रहा है। अतः १९२९ में सोवियत अफ्रीकी के विदेश-सचिव ने इस कष्ट का प्रयाशन निम्न शब्दों में किया गया कि—

“यदि तुम २ नवीन परिस्थिति और नवीन राजनैतिक आवश्यकताओं की नीतिगत को मोक्ष उपलब्ध हो, तो हम इतिहास उपनिषद

## इटली अफ्रीकी निष्ठा की समस्या

(लेखक :— श्री महावत निपालकार)

सम्बन्धों समस्या की उपेक्षा नहीं कर सकते।

प्रथम यह कि, भोपनिवेशिक बुद्धि की आवश्यकता अनुभव होने लगी। और उस के लिए निम्न जातिवर्गों को हटाना की वाले जलो जात जागी। इटली को अपने पास पान अफ्रीकिया की ऐसी प्रशंसा निष्ठा, जिस पर अधिकार कायम करने से उस की जनसंख्या व्यापार, व्यवसाय, इत्यादि समस्याओं का हल हो सकता था।

फलतः समस्या को प्रियम-रिचों की प्रकल्प, स्वार्थवश परिभाषाओं और वाक्य-रचनाओं का आश्रय लिए गया—जिसका आश्रय इतिहास प्रतीति, पूर्व यावत् साक्षात् जगतायी देश के साथ गये, और आपन भावों भर रहा है। अतः सोवियत मुसोलिनी ने वैसासिक फासिस्ट प्रमत्तवा (१९३४) में इटली के अफ्रीकी और एशिया में वैसासिक-कलैर्य की बताते हुए कहा कि—

“इस, संधियों पुराने कन व क विषय में किसी प्रकार का भ्रम नहीं रहना चाहिये, जो मैं इटली की वर्तमान और भावी सतति को सोच रहा हूँ। सब समीप और दूरवर्ती की समग्र लेना चाहिये कि इस में गैर विजय का कोई प्रान नहा। यह तो आधुनिक प्रसार का प्रान है जिस का परिणाम इटली और अफ्रीका के निवासियों तथा इटली और एशिया के देशों के बीच सहयोग होगा।”

यह सहयोग (?) वेला हो होगा जैसा प्रमेज और भारवाहियों के बीच है—अथवा मोक्ष नाम्क दुर्गति जगताओं की मदद से याग और आपन के बीच अथवा अन्य किसी भी साम्राज्यवादी राष्ट्र की अधिकृत जाति के बीच है।

अपने प्रतिक्रिया साम्राज्यवादी देशों के विदेश-सचिवों की आशय करते हुए मुसोलिनी ने आगे बढ़ कर कहा कि—

“हम किसी प्रकार का लोभ (?) या मोहोपी की नहीं मानें। (और इटली को वास्तव में) परन्तु नये प्रान के पास पर्याप्त है, जो सतुष्ट है, और

जो अपने अधिकृत उपनिषदों की रक्षा करना चाहते हैं। इतना ही मानते हैं और चाहते हैं कि वे फासिस्ट इटली के आध्यात्मिक (?) राजनैतिक और आर्थिक प्रसार में जारी और मे रोड़े भटकाना का कुछ न करें।”

इसी आध्यात्मिक प्रसार के लिए इटली गरीब अफ्रीकी राष्ट्रों पर सवार होना चाहता है। यह मुसोलिनी की भावत सवाक के समुच्च स्पष्ट है। मुसोलिनी की भावनायवादी बुद्धि की सतता का प्रकाशन इटली में पुरी नामक वन मिं २६ किमी बार मुसोलिनी के बीच हुए वार्ता संग्रह में निम्न प्रकार किया। मिं २६ किमी न कहा कि—आप (अफ्रीकी निष्ठा) उच्च भूमि और निर्जन प्रदेशों को चाहते हैं अहाँ इटालियन अफ्रीका पर बना सक पाठ कर सकें, अपनी रीढ़ी बना सक और स्वयं का भंडा गाड़ सक।

मुसोलिनी ने उत्तर दिया कि— “मैं इटली के बार में उल्लेख प्रकाश सोचता हूँ जहाँ कि बड़े प्रमेज जिन्होंने विशाल इतिहास साम्राज्य का निमाय किया है, इतिहास साम्राज्य के लिए सोचते हैं, जैसा बड़े २ फंज भोपनिवेशिक उल्लेख और में सोचते हैं। मैं समझता हूँ कि मैं आपका उत्तर दे दिया।

इससे स्पष्ट उत्तर राजनैतिक क्षेत्र में मानना अनुचित होगा।

मुसोलिनी की यह साम्राज्यवादी बुद्धि की महावाक्या का आवश्यक महाप्राद के पूर्ववर्ती कारणों की विचारमना में—उल्लेख रहा है—जब कि अनेक राष्ट्र बेकारी, व्यावसायिक मन्दाता नया आधुनिक और अन्तर्राष्ट्रीय गृहयुद्धों से तथा और गृहयुद्ध के वलतमान नवीन स नवीन वैसासिक शक्तियों से सज्जित हो रहा है। १९३४ ई. के उम्बर राय राज्य के बाद आर इटली लोगों के बावत्ताने में पलीता लागने की चेष्टा पर तुला हुआ है। इसी समावना को हट्ट में रक्ते हुए इतिहास के अर्थव्यवस्था के मरम पक्ष के कर्मजों ने इटली की वेताभीयों के कि—

‘यदि हम प्रतिस्थापन के इतन उत्सुक हो तो यह इस लिए नहीं कि हम इटली के आध्यात्मिक अस्मिताका को रक्षना चाहते हैं, परन्तु इस लिए क्योंकि हम अफ्रीका पर इस आशय में आपन नया योरोप के लिए अग्रसर कतार खोल रहे हैं। किसी भी योरोपियन शक्ति द्वारा उठा गया कुछ चाहे वह अफ्रीका के सुदूरवर्ती कान में क्या न हो, अपनी आवश्यक प्रतिक्रिया बिना नहीं रह सकता। इसका प्रति कार्य परिणाम एक या अनक शक्तियों के बीच सम्बन्धों में तनावनी होगा। योरोप में पड़ित ही बहुत सा विदेशी नक मसाला विषयमान है। सोवियत मुसोलिनी ऐसा कतार उठा रहे हैं, जिस के परिणाम व अनेक प्रान देश तथा योरोप का शास्त्रिक व बार में कोई अनासा नहीं लगा सकता।

लाइ स्मोडन का निम्न विषय-वाचों में भी इतिहास भोपनिवेशिक अधिकार के प्रान पर अस्मिर खतों परा हो जायगा इस स्थिति में भावी विश्व व्यापार कुछ के सब कारव विषयमान है कानी सचाई है। उस तन राष्ट्र सच की लम्बी बढकों तथा पारिष के वार्तालापों में ‘शास्त्र और समझौते का जो योधा अभिनय हुआ है, उस में राष्ट्र संघ का प्रतिष्ठा रती भर आ नहीं रहा। इतिहास और इटली के बीच १९२० की युद्ध संधि (जिस में इतिहास राज नीतिव इतकर कर रहे हैं) यह स्पष्ट है कि निम्न-व्यवस्था जतिथी को इस में किसी प्रकार की आशय नहीं। यह गोरा शक्तियों का मच है। यह इतिहास स्थानों के साधक का अफ्रीका एक कारण के सब है एशिया के देशों का इन कारणों से साम्राज्यवादी युद्ध या राष्ट्र-संघ में अविश्वस तो अन्तन्त समाधिषिक है।

यद्यपि अफ्रीकी निष्ठा और उसके समस्त न प्रारम्भ में अन्त नर शास्त्र और समझौते के लिए प्रमाण किया है, परन्तु राष्ट्र संघ का कल-लाल्नी उडको द्वारा विरुद्ध इटली का इतिहास और सोमोनीलवध में फांश और शस्त्र मेजना का अवसर दिया जा रहा है क्योंकि सम्भव राष्ट्र संघ कुछ दिना बाद इतिहास-लेखक शस्त्र और जगता का स्वतन्त्र से रोक कर अपना नाक बचाना चाहता है। इटली की नगरी की काली अभाओं के लुप्त क उपलब्ध रहा, लम्बा अभिनय दिख रही है।

एक निम्न अफ्रीकन-जानि के स्वतन्त्रता के अफ्रीकन के बाद भाषण कृत राष्ट्र संघ के दलन २ हात वाला है। (शेष पृष्ठ २६ पर)

# व्यापार-डायरक्टरा आवश्यक वस्तुयें निम्न पते से खरीदिये—

हेजा का अचूक  
इलाज

विश्वसुधा

है

मूल्य १) प्रति  
शांशा

विश्वसुधा कार्यालय,  
नया बाजार, देहली।

आग बुझाने  
का  
पम्प

यह पम्प तुरन्त की  
लगी हुई आग को  
तुरन्त ही बुझा  
देता है

मूल्य ४०)

बाली कम्पनी

चांदन चौक,  
देहली।

जापान की हजारों बीजे के  
लिए पजेड कापिये, सब तरह की  
काम में जाने वाली वस्तुओं के  
बाम व पने इसमें खुलासेवार लिखे हैं।

दूसरा १९३५  
संस्करण

जापान देश व वि-  
देशों में

डायरक्टरों के लिए प्रान्त  
मूल्य लिफ्ट १) पोस्टेज जुता,  
आज हो इन लिखिये:—

मैनजर-सिद्धा पंड संस, (ए)  
लिम्बा बिज्जिय, इंदौर सी० आई०।

१)

प्रतिवार

बार्क लिफ्टों के पुत्र होंगे।  
बार्क लिफ्टों सब तरह के इलाज और  
हजारों रुपये खर्च करने पर भी  
निराश हो चुकी हैं वह हमारी  
अचूक दवा जो बार्क लिफ्टों को  
राज्यबाध के समान है एक या दो  
प्राइम के खाने में आवश्यक गन्धवती  
होकर पुत्र को सुख पावेगी। अधिक  
प्रशंसा वृद्धा है। परीक्षा कीजिये।  
एक माह की दवा की कीमत ५।।  
डाक खर्च। हेरिस प्रार्थन, कानून-  
गोपान स्ट्रीट, बलीगढ़।

नया आविष्कार शौन्दर्य सुधा

अर्थात् व्यटी कीम लिफ्ट एक  
शीशी इस्तेमाल करने से आश्चर्य-  
जनक बाम। कोई चोका नहीं जंगली  
अफी दूदी का बखर सोम्वर्य १)  
बाम मूल्य लिफ्ट २) छोटी शीशी १)  
पता—पत्त० क० गोस्वामी  
ब्यास घरे बुन्दारक

३) प्रतिवार

५) प्रति वार

भृगु संहिता

( योगसगर फलित बंध भाषा टीका )

संवत् १९२० से २००० तक  
संसार भर की जन्म कुण्डलियों का  
भूल, भविष्य वर्तमान तीन जन्म का  
हाल बात होगा। फल सुनकर लोग  
कहते हैं कर्मापिवाचिनी सिद्ध है।  
बार भास के लिये रियायती मूल्य  
३), पो० ॥ फिर खो रुपये को भी  
न मिलेगी, पुस्तकें खोदी ही हैं।

भृगु संहिता कुन्दली खण्ड

( भाषा टीका उदाहरण सहित )

संवत् १९०० से २००० तक की  
पृथ्वी भर के मनुष्यों की कुंडली  
मिलेगी। नए जन्मपत्र बना को कर  
उपयोगी खारिजी हैं। मूल्य २) पो०  
॥ बार भास तक। फिर खो रुपये  
को भी न मिलेगी।

पता—

ज्योतिषरत्न, पं० अयोध्याप्रसाद मिश्र  
JHANSI भाँसी नं० २१

५)

प्रतिवार

दांतां के सर्व रोगों के लिये  
दन्त सुधा मंजन

प्रयोग में लाइये

विश्वसुधा कार्यालय नया बाजार, देहली।

व्यापार-समाचार

# भारत और बरमा का व्यापारिक सम्बन्ध

## प्रतिबन्ध न लगेगा भारत-सरकार की विव्रिति

बर्मा का युवक होजान के बाद जो व्यापारिक सम्बन्धों भारत-सरकार और बरमा सरकार के बीच में आयवट होगा वह प्रकटित होगा।

ऑक्टोबर ३, ४ और १० के अनुसार कुछ साल मास पर भारत से बरमा में भ्रमण जाने पर किसी प्रकार की शुु गी नहीं लगेगी। धारा ६ के अनुसार बरमा के युवककरण का बाद प्रमल में भ्रमण वाले भ्रमण कर के नियम दोनो देशों के भ्रमण मास पर इस ऑक्टोबर की प्रथम सप्ताह का अनुसार लागू होगे। दूसरे देश से भ्रमण वाले मास पर दोनो देश परस्पर सम्बन्धों के शुु गी घटा दी सके हैं। दूसरी उपधारा के अनुसार इन्विजन नैतिक ऐक्ट तथा की कलमस ऐक्ट के अधीन मित्रे हुए अधिकारों का प्रयोग के मास का गवर्नर जनरल तथा बर्मा का गवर्नर मिना किसी सम्बन्धों पर प्रतिक्रिया की शुु गी कम कर सकते हैं। परन्तु उन विशेष अधिकारों का प्रयोग वर्तमान में वे नहीं करेंगे। जहाँ बास देश के आयात का प्रमण होगा या उपधारा ३ में बताया हुए सास प्रकार के मास पर विशेष प्रयोगसवय कुछ समय के लिये रियायत करन की जरूरत पड़ जायगी, उस प्रकल्प में दोनो में से कोई देश भी जो मास का नोटिस दे कर दूसरे देश में न वेनो होन वाला मास पर शुु गी घटा सकेगा तथा दूसरा देश उस का अनुकरण कर सकेगा।

धारा १२ के अनुसार यदि भारतवर्ष, वर्तमान इन्डो जपानीज में ३५ परमिट, जिसके अनुसार जापान का कपडा भारत में निर्यात परिमाणा में हो पा सकता है, की तिथि खत्म जान पर भी फिर से ब्रिटिश भारत में जापानी कपड़ों के आयात को मीमित कर दे तो बरमा, जब तक उसका भारत के साथ सम्बन्धों बालू रहेंगे, अपने देश में ऐसे मास के आयात का परिमाणा नियत करके १९३४ ३५ में मास मास से अधिक पर रोक लगा सकता है।

धारा ७ के अनुसार भारत में तैयार हुआ जो मास बाय, वह और लाख फिलों शुु गी के बरमा आ सकता है, उपधारा ३५ अधीन वही मास पुनर्निर्यात पर शुु गी न नहीं बच सकता। दोनो देशों के बीच में एक दूसरे में आ बसनेक सम्बन्ध में आ सम्बन्धों हुआ है, वह भी प्रकटित हो गया है। उस के अनुसार बरमा का भारत में तथा भारतीय का बरमा में प्रत्येक निषिद्ध नहीं होगा। परन्तु बरमा का गवर्नर और भारत का गवर्नर जनरल अपने अधिकार स इस नियम का उल्लंघन कर सकते हैं।

### नवम्बर का सिक्यूरिटी बाजार

१३ सितम्बर क बाद वायदे क सोदे न हो सकेगे  
बम्बई के बाजारी में इतली अमीनीनिया के युव की अन्वयों उता २ क कुछ लोग सनसनी पैदा कर रहे थे और हुमिज तौर पर कीमतों में बढ़ा-उतारी कर रहे थे अतः स्टोक एक्सचेंज के डायरेक्टरों के मोर्चे न सिक्यूरिटी क बाजारे में १३ सितम्बर के बाद वायदे क सब कीर्ती को रोक दिया, अबके बाद केवल तैयार छोटे हो सकगे। सर कारी कांगज के खरोहारी न इस प्रकल्प का स्वागत किया है। यदि ज़ोर बाजारे में भी उकलित हो गई तो उसक लिय भी ऐसी पॉन्डिया लगा दगा। बांदी के बाजारे पर पाबन्दी हट जाने न बांदी को कीमत का रुब तक की थोड़ी थोड़ी।

### पंजाब की खड़ी फसलें

कपास, तिल और इस की हालत (सूचना विभाग द्वारा प्राप्त)  
सन ३२-३३ में पड़ल ५ लाख क अन्तर पंजाब क जितने भूभाग पर कपास बोई जाती थी—वह ब्रिटिश भारत के उस रकबे का ६ की सवी थो जिस पर कपास बोई जाती थी। जनवरी मास में प्रति के प्राय, सभी भागों में इतली म ठेकर कीलत वर्ज तक की वर्षा हुई। फरवरी में वर्षा भ्रमण तौर पर कीलत स अधिक थी, जोर—जुलाई की इलाका न जोर—जुलाई और प्रति के अधिकांश भाग में काफी वर्षा हुई। इस तरह कपास होन क जिये सोल मी हालात अनुकूल हैं। नहरों में पानी काफी था। पंजाब क अग्रजो इतली के में २३ ५८,५०० एकड़ पर कपास बोई गई। इसमें ८०० एकड़ बढ़ा कर शामिल किया गया है। यह रकबा गत साल क अंशल रकब से १ प्रतिशत अधिक और गत वर्ष क पहले तखमीन से ११ प्रतिशत अधिक है। गत मास में कि ४,३२,४०० एकड़ पर देशी और २,४७,३०० एकड़ पर अमरिकन कपास बोई गयी है। इस साथ पिछले साल की अपेक्षा अधिक कपास बोय जाने क कारण है—एक यह कि बीज हालन क समय नोसम अनुकूल यह और दूसरा यह कि पिछले साल कपास का मास अच्छा रहा विशेष बुद्धि मुयताम, हिसार, अमृतसर, शेखपुरा, शाहपुर, जालन्धर और गुजराबाहा में हुई। जुलाई की वर्षा न खड़ी फसलें की लाभ पड़ना। जित २ रियासतों न सत्ताबाबा बाय में वही ४,२७,३०० एकड़ पर कपास बोई गई है। यह रकबा पिछले साल के आधारी तखमीन से २० प्रतिशत कम है। और पड़ने तखमीन न ५६ प्रतिशत अधिक है। सवाकार है कि कलशों की हालत औसत से ठेकर उम्मा तक है।

गन्ने की फसल  
सन ३२-३४ म पहिल ५ लाख में पंजाब में जिन रकब पर ईंध बोया

गया वह ब्रिटिश भारत क उस रकब का १४ ३० प्रतिशत था जिस पर ईंध बोया गया अतुमान है कि ५६,००० एकड़ पर ईंध बोया गया। यह तखमीन पिछले साल क समय खूब क बराबर और पिछले साल क पहले तखमीन स २ प्रतिशत कम है। कर मास में २० सप्ताह में १६ लायब पुर् में ४ और गुजराबाहा में ४ प्रतिशत बुद्धि और गुजरात में १० अम्बाला में ७ प्रतिशत कमाई रही। अम्बाला में ७ प्रतिशत कमाई रही। जुलाई की वर्षा स खड़ी फसला की लाभ पड़ना। गुजराबाहा में कीड के कारण हालि हुई थी।

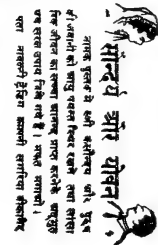
अर्जेटाइन में गेहू  
पंजाब क कृषि विभाग क डाइरेक्टर को रोय (स्टर्डी) के अलजाजातीय क्रियमथ क महाप्रमकी न तार द्वारा सूचना दी है कि इस साल अर्जेटाइन में पिछले साल की अपेक्षा गेहू कम बोई गई है। फसल की क्राम हालात खोपन वर्ज की है

तिल की फसल  
सन ३२-३३ की सप्ताल हुए ५ लाख म पंजाब म जितन भूभाग पर तिल बोया गया वह कुछ ब्रिटिश भारत क उस भूभाग का १० कीसदी था जिस पर तिल बोये गए। कुछ जिला में बीज हालन क समय वर्षा का कमी रहा। जुलाई क आकीरतक २६,४०० एकड़ पर तिल बोया जा चुका था यह तखमीन पिछले साल क अंशल रकब से २ प्रतिशत कम और पिछले साल क पहले तखमीन से ११ प्रतिशत अधिक है। कुछ जिला में अभी तक बीज पड़ रहा है। सम्भव है भ्रमण तखमीन तक कुछ और बुद्धि हो सकत की हावत २५ प्रतिशत है। तमाम बड़े बड़ जिलों म बीज बोने समय पर पड़ा।

### करांची में गेहूँ का निर्यात

समुद्र तट सम्बन्धी व्यापार में अजाता कंपनियों की प्रति स्पर्धा क कारण ११ लाख बोरी गेहूँ करांची से कलकत्ता की ओर रवाना हुआ। यदि फ्रिया कुछ और कम हुए तो गेहूँ क और भी निर्यात क सम्भावना है।

सोने पर और गोबन



सोने पर और गोबन

विना तकलीफ़ बात डालिये क

# बादशाही

बालसफा साधन

हरगुरुपर मिलाता है

## सी.सी. महाजन एड कुं।

सुख-प्राप्त-कर-प

## सप्ताह का फल

### राशि-क्रम से

(डे०—श्री सूर्यवै व्यास)

ता० २ से ८ सितम्बर तक  
ये

प्रकृति क्षात्र रहेगी, प्रायः आम के दस्तों को शिथिल होना मम्भव है। आमदनी अच्छी होगी, ता० २-३ बाराय में। भागीदार स सम्भव रखना ठीक नहीं। काशी तथा पीली बस्तु का व्यापार स लाभ हो सकेगा। चरों और पथरी रोग बाळा को बिशेष कष्ट रहना सम्भव है। तिल्ली अम्ली को व्यापार का फायदा उठायेगे। गुप

पत्नी और बाल बच्चों की तरफ से चिन्ता रहेगी। माई बच्चे और भागीदार तल्लोक द गे, ता० ५ ई अधिक कमाई कीमतों। शुभचर्चा अधिक बढेगा, राजकारणों में यश मिलन की आशा छूट जायगी, आल, काशी बस्तु के व्यापार में लाभ हो सकेगा है। जीमियर कारखानदार, मजदूरवर्ग के लोगों ५० महीनरी में दूर रहना चाहिये। वकील, डाक्टर के शिख सप्ताह अच्छा है।  
मियुन

भागीदार की तरफ से अचानक रहेगा, आमदनी अच्छी होगी। व्यापार में बचत की शु जागरूक है, बाल बच्चों की तरफ से बेचैनी रहेगी। शुभचर्चा पर जीत होगी, राजकारणों में यश के साथ यश मिलेगा, लिखन का व्यवसाय करने वाद बल्लर्न और आख्य जाति के लोग अधिक कष्ट भोगेंगे। नौकरी क यल में रहन से आशा मन्थ जायगी।  
कर्क

आमदनी अच्छा होगी, व्यापार में मन लगना, कमाई कर्णों में मही पड़ना चाहिये। भागीदारी में अचानक मन विक्षेप लाभ होगा। अमोक्ष क लगन म बचना चाहिये। मकान, जायदाद बनवान में विशेष सचं होगा। राजकारणों में सफलता होगी, ठाकुरी तथा थोक के व्यवसाय करने वाले ऐसा अवर्णन, पुनः कष्ट धन्य बालनो नुकसान पड़ु वाना।  
मिह

पत्नी और बाल बच्चा की तरफ से चिन्ता रहेगी। आमदनी साधा रहा रहेगी। बहुत अम पर योद्धा लाभ होगा। मजदूर पणे बाल सुखी रहेगे, कौशली, कोयला क व्यापारी कुछ फायदे में रहेंगे। सट्टे में पणना

ठीक नहीं, दूसरे के साथ हिस्सा रख कर व्यापार कर सकते हैं। जायदादी मण्डरी से नुकसान हो सकता है। राजकारणों में सफलता की आशा रहेगी।

कन्या  
प्रकृति अच्छी रहेगी, शुभचर्चा पर जीत होगी लोग में विश्वास रहेगा। काम काज में मन लगेगा। कर्जदारी कुछ हदकी होगी। लव् के धन बहुत बढेगा। हाफ्टर वैद्य, हकीमों में अधिक कर्च होगा। राजकारणों में यश मिलेगा। सट्टे के व्यापार में लाभ हो सफगा किन्तु तजी में रहना चाहिये, भागीदारी में व्यापार रखना ठीक नहीं। ठेकेदारी और पुनः कर यशे तथा दालाओं में लाभ हो सफगा।  
तुला

प्रकृति अच्छी रहेगी, काम बहुत मिलेगा पण्डु बाजार के तम क शिख दूखरों का सु द बखानदपकवा, रिस्तेदार में आन होके, कर्जदारी हदम मम में बिता बसायेगा। कोट दुर्जे के लाभ सुखी रहेगे, भागीदारी में काम करने म धारा लग सकता है, राज कारणों में सफलता की आशा कम रहेगी। वकीलों के यजे में फलना ठीक नहीं। वैमन का कर्च विक्षेप बढ जायगा सट्टे में कुछ आमदनी हो सकेगी।  
वृश्चिक

मन में अस्थिरता रहेगी। काम काज में दिल कम लगेगा, पत्नी और बच्चों को तल्लोक रहेगी। कर्जदार सतायेगे। बहुत अम का अच्छा लाभ होगा, सप्ताह क पिछले तीन राज ठीक हैं, आम, महीन और सखरी से बचना चाहिये, खिर दर्द को शिथिल रहनेगी, ठेकेदारी तथा दलाली और भागीदारी क कर्णों में लाभ हो सकेगा, सट्टे म दूर रहना चाहिये, राज-कारणों में लाभ मिलेगा, सप्ताह मम्भव ह।  
धन

आमदनी अच्छी होगी, नवीन र व्यापारियों में परिवर्ष होगी, इट मीलों की सहायता मिलेगी, यह सब सोच्य होत दूर मा लव्व को कोसन आमदनी म बढ कर रहेगी, मन में सताय नहीं रहेगा राज कारणों में सफलता मिलेगा, कारखान वालों का मजदूर-कर्म म सचेत रहना चाहिये वधर्न, डाक्टर और लेखक क फायदा उठायेग।  
मकर

व्यापार में किसी को सहायता लेना ठीक नहीं, स्तन्य करने में आम होना सम्भव है उन्म म पणु की चाट लगना सम्भव हैं, समझ कर

बलना चाहिये, अधिक सफर करना भी ठीक नहीं, घर के लोगों से अफा रहा कलाह उत्पन्न होगे, आलस्य कोकर कर्च में मन लगना चाहिये, स्थान प्राप्ति की कोशिश करने से मिश्रता सम्भव है, राज-कारणों में यश मिलेगा, सट्टे में साधारण लाभ हो सफगा, दलाली और ठेकेदारी में भी लाभ की आशा है।  
कुंभ

पत्नी की हालत से बदलम चला रहेगी, चातु-विकार की शिकायत वालों को सतर्क रहना चाहिये, व्यापार व्यवसाय में फायदा रहेगा, राज कारणों में सफलता मिलेगी, भागीदार पर विश्वास रख के व्यापार करना चाहिये, मिश्रो की सहायता रहेगी। व्यापारिक वर्ग के तथा वकील, हाफ्टर और ठेकेदार कायदे में रहेगे हव्व के धन्य करने वाले कलर्न, मोहतर यल लेखक मजदूर कष्ट भोग ने।  
मीन

बाहर म्मय विशेष होगा, पत्नी की हालत में बिता रहेगी, व्यापार स आमदनी होगी, राज-कारणों से भी सफलता की आशा है, भागीदार को कुटुम्ब पर विश्वास रखन से तल्लोक उठानो पथगी। बेकार खर्च बहुत बढेगा, पदार्थ कार्य विमर्ष जान से मन में पम्मासार रहेगा, धार्मिक कार्यों म विश्व में अग्रगति रहेगी, हाफ्टर वैद्य, हकीम, मुकदवार और दलाल य धन नुदेंगे।

बायदे क बाजार में साधारण तजी होगी, चर्चा के बाजार में प्रारम्भ में १२ कट छूट कर तजी आपणी, तीसो जुद क माव में विशेष केर बल्ल होगा, दुष्टि विक्षेप होगी दक्षिण पूर्व में वृष्टि म नुकसान होगा, मूकणको धोर यो के भाव में साधारण तजी रहेगी।

सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय एक हाथीवार का प्रयोग कर सकते हैं और करना चाहिये, वह है इटेलियन माल का बायकाट। इटली से कगर्गो रुपये का कपड़ा, बिजली का सामान इत्यादि प्रतिवर्ष भारत में जाता है इन्में उन्म खरीदने से सर्वथा इकार कर देना चाहिये। भारत वालियों को अमी राजनैतिक सहायुक्ति की पाठ उसकी गहराई से कीलना चाहिये। अयन स्वातन्त्र्य युद्ध में हम ससार की सहायुक्ति अतिरिक्त हैं इन्ही प्रकार प्राय कर सकते हैं।

## इटली अजोसीनिया की समस्या

(पृष्ठ २-६ का शेष)

अजोसीनिया तो अपनी स्वतन्त्रता के लिये ओमान म लगेगा ही, परन्तु विश्व शांति पर इस सङ्घ के समग्र परिणामों देशों की भी, विशेषतः दक्षिण भारतवासियों का कुछ कर्तव्य है। हमारा प्रथम कर्तव्य है कि अन्तराष्ट्रीय सम्बन्धों के परिवर्तन के साथ २ हम भी योरोपियन जातियों के साथ सम्बन्ध जोर गठभोरे की पधायीनो को समर्थन। यह पक्षीसीनिया वा इटली का प्रश्न नहीं अस्तित्व परिणाम और योरोप क प्रश्न है। उस समय परिणामिक देशों की स्वतन्त्र प्रगति जो अमी तक देकम्भिक है, उन्म व्यापक रूप सो-माय्य सहायुक्ति द्वारा ही दिया जा सकता है। अतः प्रत्येक परिणामिक जाति का यह दूरा मुम्भव कर्तव्य है कि यह पक्षीसीनिया क साथ सहायुक्ति का प्रकाशन अक्षरय है। हमारा कर्तव्य है कि "पक्षीसीनिया सं पर-दोटा नामक वा उस क समानार्थक सभा कोसादिया की व्यवस्था की जाय जो, स्वतन्त्रता की रक्षा क जिम्मेदार बने एक देश के प्रति अखिलय सहायुक्ति मां सहायता के केन्द्र हैं। यदि महासभा नवीन धोर-समीक्ष तथा मम्भवक समीचीन सहाय्य कर्तव्य की मद्द परबुद्धिमान कोर्ण, तथा स्वतन्त्रवर्षों की भर्ती द्वारा कर सकते हैं तो उससे अधिक सुयोग्य और युक्तिसम्मत-प्रससर इस बच की है।

साथ ही हमें इस बात को भी धदि से धोखल नहीं करना चाहिये कि पक्षीसीनिया में धारतवासियों की लम्बायें कट इजार्न में हैं। उनक प्रति भी हमारी सहायता का प्रवर्ध आवश्यक है।

परिणाम वालियों का कर्तव्य है कि वे एक अयने समान दक्षिण जाति पर आक्रमण के लक्ष्य को अयने उपर बोट समर्थन और पक्षीसीनिया की स्वतन्त्रता रक्षा के युद्ध में हाथ बटायें। उर्ध्व म अयन अजर्नली और धम्य युद्ध विधायिधार्खों को पक्षीसीनिया की सहाय-तार्थ भेजा है। आपन न भी मलाक द्वारा तय धम्य प्रकार म सहायता देन में कोई कसर नहीं उठा रकी है। अयन तथा धम्य मुसलमान देशों की भी अपनी जमता को इटली की सहायता के लिये मजदूरों से रोचना चाहिये। इसमें भारतीय मुसलमान नता बहुत कुछ आन्वीजन कर

## हिंदी का परमहंस

(पृष्ठ ७ का शेष)

बापूजी आदि के विभाग Department कायम की सरकार चलते हैं, जिनमें साक्षर लोग अपनी भाषा के तौर पर कार्य करते हैं। उनका हर एक कार्य साधना के तौर पर होता है। माता जी जिस साक्षर को जो काम सौंपती हैं उस वही करना होता है। और प्रायः साक्षर उसे अपना कर्त्तव्यकारी कार्य समझ कर ही करते हैं।

तब

पाठक लोग जानना चाहेंगे कि हेट की लोग का खर्च कैसे चलता होगा। आश्रम को खर्च ५-६ हजार रुपये माहवार होगा। वन तो है। आश्रम वाली बनता है—स्वीडर कर लिया जाता है वह अपना सब कुछ (जहाँ अपना अन्नरा मा और मन, वहाँ अपना भौतिक धन भी) आश्रम को समर्पित कर देता है। इससे कुछ संपत्ति आश्रम को मिली है। पर आश्रमवासियों में अधिकांश तो पेन भी हैं जिनका पास एक कौपी भी नहीं थी। और प्रत्येक आश्रम वाली पर ३०-५० रुपये माहवार तो व्यय होता ही है। यह खर्चा कुछ भक्त लोगों से प्राप्त होता है। श्री भरविन्द न कभी आश्रम के लिए पैसे की अपील नहीं की। जबकि भारी का भी आश्रम के लिए रुपया इकट्ठा करने की उन्होंने कभी इजाजत दी। वे इस सच्चा को साक्षात्-जनिक सच्चा नहीं समझते। अतः जनता ने व दानते हैं और न जनता के प्रति उत्तरदाता समझते हैं जो कुछ भक्त लोग स्वयंसेवक के तौर पर उनसे काम चलाते हैं। वे जानते हैं कि परमेश्वर का यह कार्य है, परमेश्वर ही कृपा देता है और दान। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि उन्हें कभी २ आर्थिक तंगी होती है तो भी आर्थिक के कारण उनका कार्य नहीं रुका नहीं है।

उनका भावी कार्यक्रम

क्या वे फिर पालिटिक्स में भागेंगे? यह प्रश्न है जो कि प्रायः पूछा जाता है। यह प्रश्न आम लोगों के लिए स्थापनाधिक भी है। पर जो मनुष्य जान गये हैं कि वे कितने प्रति महान कार्य में लगे हैं उनके लिए ये प्रश्न की कोई गुंजायश नहीं रहती। यद्यपि आज भी उनका हर कार्य के सामने प्रोच और विविध सो-आर्थिकी का पहरा लगा रहता है। और उस महान में चुनन वाला व्यक्ति आपन लक्ष्य में पता लगाये

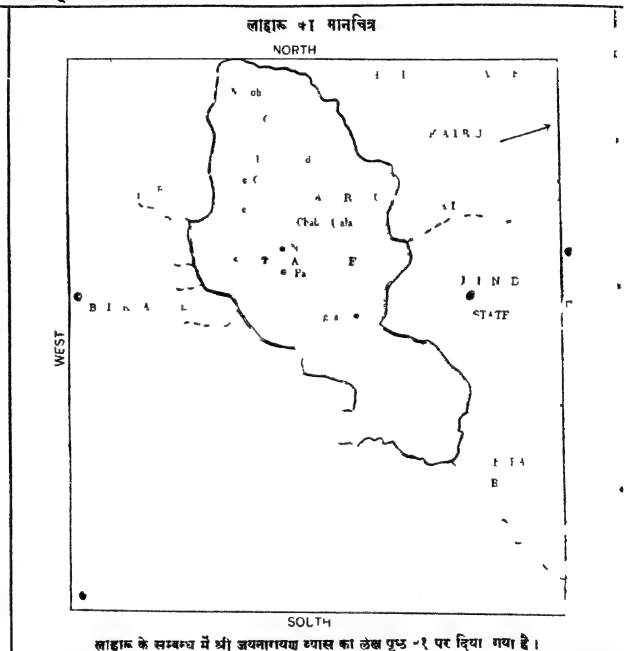
जाने से अपने को बचा नहीं सकता है तो भी सच यह है कि वहाँ शुद्ध आध्यात्मिकता के विचार और कुछ नहीं है। सन् १९२६ तक तो श्री भरविन्द यह कहते रहे 'भायो महा, प्रसी कुछ नहीं कह सकता', पर उसके बाद से तो वे एक महान कार्य में लग चुके हैं। वह कार्य है एक नई 'जाति' उत्पन्न करना, मनुष्य को देव बनाना। वे ऐसा मनुष्य तैयार कर रहे हैं जो सिद्धांत (Supernatural) तत्व को प्राप्त करना और उसके कारण उसका मन ब्रह्मा और सत्य की बीड़ा भूमि में रहकर सत्य प्रकाश

आंतरिक शक्ति से आश्रम का पथ प्रदर्शन करते हैं। उनका लगभग ६०८ प्रतिनिधि अपने हाथ में साधकों के पत्रों के पत्र इन में भीनते हैं। दिन रात में बसल दा तीन ७८ हो विश्राम निद्रा लेते हैं। वे इस समय जितना कार्य कर रहे हैं उतना कार्य कोई साधारण पुरुष नहीं कर सकता।

यश की स्वाधीनता उन पर है इस महान कार्य में कहा न कहीं स्वयंसेवक आजायगी। उसकी कुछ बिना नहीं करनी चाहिये।

जानें हैं जिनका उत्तर बहुत से लोगों पर दुरा प्रतीति है और कार्य का तब यह सब ही प्रमाण होता है परंतु मर मन पर इनका कोई दुरा प्रमाण नहीं हुआ है क्योंकि कि मैं इनका दुष्प्रतीति को भी जानता हूँ मरा तो यह क्षयाल है कि वहाँ पर एक बड़ा भार (आध्यात्मिक) कार्य हा रहा है जिसकी महत्ता को आज हम नहीं समझ रहे हैं।

इन परमहंस (श्री भरविन्द) के विषय में सर्व ज्ञातुओं का और भी जो कुछ न जानना है वतान का ट्यार है। अतः मेरा विचार है कि



को माँ बन जायगा उसका प्राण बचल कर काम, कोच, राग, द्वेष आदि से सर्वथा शुद्ध होकर कार्य करता और उसके शरीर का भी ऐसा रूपान्तर होजायगा कि वह यही मनुष्य के वश न होगा। यह बहुत भारी साधना है, इसमें गांधी एक युग लग जायगा। परंतु पाण्डित्य की ये परमहंस जिस कार्य के लिए उत्पन्न हुए प्रतीत होते हैं वह यही है। इसी महान कार्य का आरम्भ इन्होंने यह आश्रम खोल कर किया है। यद्यपि वे लोग और मिलते नहीं हैं तो भी मिलकर और अपनी

सुक पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

आखिर तो सुक में यह ज़रूर प्रकट है कि वहाँ मांस रहन का सुक पर क्या प्रभाव पड़ेगा। एक वाक्य में उसका उत्तर यह है कि—

'उनके पय पड़ कर मेरी उनमें बहुत श्रद्धा थी। परन्तु वहाँ रह कर मेरी यह श्रद्धा और भी अधिक बढ़ गई है।'

वहाँ काही नहीं पहिनी जलो, माता जा तो रोज नई नई रशमी साधियाँ पहनती हैं, वहा सुनता बहुत करता जाती है, पय और कई

समय मिलते वर में उन बातों को भी प्रकाशित करना जा कि पाकिस्तान में होतन पर माँया जो कथो आश्रम की तथा सुशुद्ध कागजात की हसी निमित्त हुई सम्पत्ति में मुसे किये गये प्रश्नों के उत्तर क ऊप में प्रकट कर चुका है। पर अतः नता ही।

क्या आप वकार है?

क्या नहीं पय बैठ डाकर बनन काज डा- का टिकन मज क नियम मगाय। पता—प्रिनियन—मंसल हाथपेयिक इन्स्ट्रुक्शन् नेन लाहोर।



छप रहा है ?

छप रहा है ??

सचित्र साप्ताहिक 'अर्जुन'

का

स्पेशल (महिला-अंक) नम्बर

अक्तूबर मास के प्रथम सप्ताह में  
प्रकाशित होगा

गत वर्ष के विशेषांक से अधिक आकर्षक होगा ।

यह अंक

कई दुरंगी, तिरंगी तथा सैकड़ों इकरंगी तसवीरों  
का मुद्रादस्ता होगा ।

इसमें—

देश विदेश के प्रसिद्ध विद्वानों तथा विदुषियों के स्त्री-समस्या पर गम्भीर तथा  
भावपूर्ण लेख होंगे । कहानी तथा कविताओं की भरमार होगी ।

इसीलिये

'अर्जुन' के पाठकों तथा विज्ञापनदाताओं को अपना आर्डर बुक कराने तथा विज्ञापन भेजने में शीघ्रता  
करनी चाहिये क्योंकि गतवर्ष बहुत सों को निराश होना पड़ा था ।

विज्ञापन के दर आदि के लिये निम्न पते पर पत्र-व्यवहार कीजिये—

मेनेजर,

सचित्र साप्ताहिक अर्जुन, दिल्ली ।

# अज्ञान

## का स्वराज्यांक

स पञ्जनम् प्रान्त न नैन्द न पञ्जनम्

१४ १२ ]

वार स २० कनक मन् ०० ०

। सं १६०

### सच्चा देवक

१ १० १ १० १ १० १ १० १ १०  
२ १० १ १० १ १० १ १० १ १०  
३ १० १ १० १ १० १ १० १ १०  
४ १० १ १० १ १० १ १० १ १०  
५ १० १ १० १ १० १ १० १ १०  
६ १० १ १० १ १० १ १० १ १०  
७ १० १ १० १ १० १ १० १ १०  
८ १० १ १० १ १० १ १० १ १०  
९ १० १ १० १ १० १ १० १ १०  
१० १० १ १० १ १० १ १० १ १०

१ सत्य प्रभा का बना हुआ है धररा व नहा इसलिय सच्चा सत्य प्रभा  
में जाकर ग्रामनिवासियों की सेवा करेगा ग्राम-सेवा के लिये सब से पापक अपराध  
सेवक की पवित्रता रहेगी

२२ ३४

—मार्ग ६० वागरी

## एकला चल रे

यदि तोर डाक सुने केउ ना आसे  
तबे एकला चल रे  
एकला चल, एकला चल, एकला चल रे  
यदि केउ कथा ना कय—  
[ ओर ओर ओ अभाग ! ]  
यदि मवाई थाके मुख फिगये  
मवाई करे भय  
तदे पगन खुले  
ओ तुई मुख फटे तोर मनोर कथा  
एकला चल रे  
यदि मवाई फिर आय  
[ ओर ओर ओ अभाग ! ]  
यदि गहन पथ जावार काले  
केउ फिर ना चाय  
तब पथर काटा  
ओ तुरु रक्त माखा चरन तले  
एकला दल रे  
यदि आलो ना घरे  
[ ओर ओर ओ अभाग ! ]  
यदि भद्र बादले आधार राते  
दुयार देय धरे  
तने पञ्जानले  
आपन वृक्ष पाऊ ज्वालिये निते  
एकला ज्वल रे  
यदि तोर डाक सुने केउ ना आसे  
तबे एकला चल रे  
एकला चल, एकला चल, एकला चल रे !

## अनुवाद

गद्य  
यदि तेरी पुकार ( आह्वान ) सुन कर कोई न आये  
तो अकेला चल रे  
अकेला चल, अकेला चल, अकेला चल रे  
यदि कोई बात न करे  
( अरे, अरे, ओ अभाग ! )  
यदि सभी मुख फेरे रह  
सभी भय करें  
तो प्राण खोल कर  
तू ही मुख फोड़ कर अपने मन की बात  
अकेला ( ही ) बोल रे  
यदि सभी लौट आने  
( अरे, अरे, ओ अभाग ! )  
यदि गहन मार्ग में चलते समय  
कोई मुड़ कर न देखे  
तो मार्ग के कण्टको को  
तू ही ( अपने ) रक्त-जित पैरों के नीचे  
अकेला ( ही ) दल रे  
यदि ( कोई ) प्रकाश न दिखलाये  
( अरे, ओ, ओ अभाग ! )  
यदि बादल और मझी की अधेरी गत में  
घर का दरवाजा बन्द कर ले  
बज्रज्वाला में  
नो अपनी छाती के पंजर को जला कर  
तू अकेला ( ही ) जल रे  
यदि तेरी पुकार सुनकर कोई न आये  
तो अकेला चल रे  
अकेला चल, अकेला चल, अकेला चल रे !  
( रवीन्द्रनाथ टागोर )

Rabindranath Tagore





पुनम वरुधा यव प्रथम बार  
 भार शिष्य जाता है कि नृप हमार  
 तमार शिष्यता भारत मे ही स्थाप्य  
 क प्राति लिख तलनी श्रावयक है  
 तव हन अनाक क पृथा त पर  
 भाताय शिष्यता का रना क  
 भाग मे क्या प है नसका उत्तर  
 यह है नृप त वक हजार उत्तर  
 न पथिक समय का नृप नृप  
 पार क भाताय नृपनायक  
 विस्तार न स्वाभिप्राय तव स्वा  
 ह श्रा नृपक सिद्धाय नृप स्वाय  
 सायक विस्तार न ह पंजिमा  
 भात मे भात का भात का  
 प्रमाण आन क लिप एक प्रमाण  
 का चिह्नका सो दोष न ह सो  
 नृप श्रावय चारा नृप वाह तव  
 करक रवना ह नृप मायिक प्रमाण  
 न कभा आना नृप नृप रसना  
 लिपन का शिष्यता नृप यात क  
 नृपनायक है त प्रमाण नृप  
 क प्रमाण न यातायत का नृप  
 नृप का नृप नृपनायक

[illegible]

इस स्थल में उन्होंने पचास अलीफा म भागताय व्यापारियों क साज्दान वाठ भाषण अन्त्यावार का परिचय न्त हुय भार ताया म अलीफ की है कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न का तावूत के साथ सगठित होकर विरोध करें।

[illegible]

भारत या का वगनगाडी  
यह नया प्रवृत्ति भूमिज मव  
रा व्यापार करन वाले अनक भार

मैंने जो कुछ कहा है उसमें मरा  
तो यंग धारणा रही है कि वह एक  
प्रकार के पुराने ढंग के साथ  
साथ अफ़ाकन लोग न तो समझते  
हैं और न ही उन्हें कुछ अधिक  
लाभ है।

म अफाकाम अनक एम प्रिन्सि  
अप्रिन्सियो म मिलाहू नो ननिव  
मामता क कामज्जर उहृज्जत ह  
अग उहान स्पष्ट शब्दा मे अपन  
आग क आग होता हुह धननाओ  
पर विन्ता प्रकृ का ।

[illegible]

मेन स्वयं धोक माल क एक  
भारताय दुकानगर क यहा जकर  
पूछा कि उसक हिस्से पैदा-  
वार का क्या मोस्त रर। गया है  
तो उस कुल ४०० बोर भूलाया।  
परंतु ज। मेन उसका गोदाम देखा  
तो उसम एक वाना भान न था।

एक ग्राहक ने हमें आ-  
पक नियंत्रण का कनिष्ठा प्रत्यक्ष  
रूप में प्रकट हो जाता है। यही  
कनिष्ठा २२ म सोवियत संघ में  
भी आई है।

[illegible]

## युवकों से

(लेखक—डॉ० एस० सत्यमूर्ति)



इस समय देश विपन्न, विचित्र और नाज़ुक परिस्थिति में मैं गुजर रहा हूँ। देश के मामले अत्यन्त गम्भीर समस्याएँ उपस्थित हैं, जिनका हल राष्ट्र के नेताओं व प्रतिनिधियों को करना है। कुछ लोगों का कहना है कि इतिहास अपने दो डुहराया करता है और अब भी डुहरा रहा है। एक बार फिर सत्तियोग प्रवृत्ति आन्दोलन स्थगित कर दिया गया है और स्व० मोतीलाल नेहरू व देशबन्धु दास क ब्रिटीश-प्रदेश के कार्यक्रम को स्थायी रूप में स्वीकार भी कर लिया गया है। रांची, पटना और बम्बई के अधिवेशनों में सत्युष राष्ट्र को प्रतिनिधि-सभा कांग्रेस वार्किंग कमिटी न यह निर्णय — लिया है कि सरकार के सुरक्षित गुर्ग, अन्वली, पर अधिकार कर लिया जाय और बड़ा निम्न-लिखित मोक्ष प्राप्त कराया जाय—  
(१) नया प्रस्तावित शासन-विधान, जो 'आइरपेयर' के नाम से प्रसिद्ध है, रद्द किया जाय। (२) पिछे ३ बी० सी० सालों में सरकार ने राष्ट्रीय भावना के दमन के लिये जित० अत्यायुक्त और दमनकारी कानून बनाये हैं, उन सबको वापिस लिया जाय और सब में बड़कर (३) देश का भावी शासन-विधान निर्माण करने के लिये कन्स्टीट्यूशनल असेम्बली चुनाई जाय। तीनों माँगें महत्वपूर्ण हैं। तीसरी माँग का विशेष महत्व इसलिये है कि इसके द्वारा कांग्रेस स्वयम्-निर्णय — अपना शासन-विधान हम बनाये — का सिद्धांत स्वीकार करना चाहती है।

कांग्रेस वार्किंग कमिटी के प्रस्तावों में किसी भी राष्ट्रीय विचार बाधे भारतीय को मत-जेंद नहीं है। सभी कांग्रेस की इन माँगों में सहमत हैं। परन्तु कांग्रेस के साप्ताहिक नियम सम्बन्धी निश्चय में राज्य मदनमोहन मालवीय और उनके सहियों को मत-जेंद है। इस विषय पर कांग्रेस का निर्णय स्पष्ट है। वह उन न तो स्वीकार करती है और न अस्वीकृत करती है। राष्ट्र के सब समस्याएँ और जानियों की एकमात्र प्रतिनिधि मस्था कांग्रेस इस के सिवा कर भी क्या सकती थी। साम्प्रदायिक निर्णय की निन्दा चारों ओरों में हो रही है और वस्तुतः वह ही इसी निन्दा के योग्य।

परन्तु कांग्रेस इस स्थिति में नहीं है कि उसे स्वीकृत या अस्वीकृत कर। यह स्पष्ट है कि अधिकतर मुसलमान उसे अस्वीकृत करने के विपक्ष में हैं, परन्तु उसके साथ यह भी स्पष्ट है कि हिन्दू उसे किसी भी हालत में स्वीकार करना पसन्द नहीं करते। इस अवस्था में दोनों की प्रतिनिधि सभा कांग्रेस यही उचित समझती है कि वह इस प्रश्न को अभी स्वीकृत या अस्वीकृत कुछ न कर आपसी समझौते के लिये रहती है। कांग्रेस अभी इसकी समस्या भी नहीं है कि वह इस प्रश्न का कोई सर्वसम्मत और सत्तोपजनक निर्णय कर सके, किन्तु क्यों ही कांग्रेस इस कार्य के लिये समर्थ हो जायगी, वह पहले रहल इसी प्रश्न को लेगी।

हम प्रश्न पर कांग्रेस की उदासीनता की नीति में कुछ हिन्दुओं का यह खयाल है कि कांग्रेस साम्प्रदायिक-निर्णय को स्वीकार करती है, उसके विपरीत कुछ मुसलमानों का यह खयाल है कि कांग्रेस इसे अस्वीकृत करती है। परन्तु दोनों भ्रम में हैं। कांग्रेस अपनी स्थिति स्पष्ट कर चुकी है, वह न इसे स्वीकृत करती है और न अस्वीकृत। इस प्रश्न का निर्णय वह भविष्य में हो न बाधे सब सम्प्रदायों के सर्व-सम्मत समझौते पर छोड़ती है।

(श्रेष्ठ पु३ ७ कालम ४ पर)

## आशीर्वाद

—१२—



श्रीमद् हृषिकेश व्यास ने महाभारत में श्रीकृष्ण भगवान और अर्जुन के चरित्रों का जैसा चित्रण किया है, ससार में उनकी उपमा मिलनी कठिन है। उन चरित्रों में अत्युत्कृष्ट बुद्धिमत्ता के साथ गुणों हुई अद्भुत प्रतीति और स्वायत्त-न्याय की भावना दिखाई देती है।

यदि श्रीकृष्ण परलोक और इहलोक की बुद्धिमत्ता का पुत्र दिखाई देता है, तो अर्जुन को हम बीरता सम्बन्धी समस्त

गुणों का समुच्चय पाने हैं। परन्तु अर्जुन को बीरता योद्धा की मध्यम कालीन बीरता की तरह अपनी नहीं है, वह भावना के बनावे हुए नीतिमार्ग पर चलने वाली और अतपव अत्यन्त सम-भदार है। बुद्धिमत्ता और बीरता दोनों एक दूसरे की सहायता और पुष्टि करती हैं।

कौरवों ने पाण्डवों पर जितना अत्याचार किया था, उसकी उपमा मिलनी कठिन है। कौरवों ने इन्हीं वश उन्हें अनाथित दुःख दिये थे। फिर भी आपस्य की बात है कि पाण्डवों की सेना ने युद्ध के जोरा में भी युद्ध के नियमों की सीमा का यथार्थिक पालन किया। अर्जुन की वीरता को एक मार्गदर्शक की, और उसके रूप में प्राप्त हो गये।

अर्जुन अपनी सेना को युद्ध-क्षेत्र में आगे बढ़ाता है, परन्तु कृष्ण हाथ में चोकरों की लताएं धाम हुए उस पर कभी दृष्टि रखता है कि कहीं सेनाएँ सीमा का उल्लंघन तो नहीं कर रही, या वह उत्साहहीन तो नहीं हो रही। श्रीकृष्ण जिस अंग में वृष्टि देखने उसी को पुरा करने के लिये आगे बढ़ जाते हैं। भगवान् कृष्ण ने महाभारत में जो महान् कार्य किया है, उसे विवर्धित करना हो तो यही सर्वोत्कृष्ट चित्र बन सकता है कि वह अर्जुन के युद्ध, रथ का सञ्चालन कर रहे हैं।

श्रीकृष्ण अर्जुन को अपना निज समझ कर समझता का व्यवहार

करते हैं, परन्तु अर्जुन का विनय उसन श्रीकृष्ण के प्रति 'शिष्य'—स्न०ऽम यही शब्द कहलाता है। अर्जुन की सरलता का तत्त्व यही कारण यही है कि वह युद्ध के आवेश में भी श्रीकृष्ण के नम्रवचन बाहिर नहीं होता। इसी बुद्धिमत्ता द्वारा नियमित बीरता का प्रयास था कि ३००० वर्ष पूर्व भारत में धर्म-राज्य की स्थापना हुई थी। श्रीमद्भगवद्गीता के निम्नलिखित श्लोक का यही अभिप्राय है—

यश्च योगेश्वरः कृणो  
यश्च पावां धनुर्धरः  
तव धीर्बलजो धनि-  
ध्वं वा नितिमितमम्।

जै, नृणा योगेश्वर कृष्ण हैं और बिजय, विभूति और धर्म-धर्म-धर्म का निश्चय मे निवास रहता है।

आशीर्वाद है कि 'अर्जुन' प्रति दिन प्रातःकाल प्रकाशित होता हुआ भारत के युद्ध और युवा नि-वासियों के हृदयों में ऊंचे स्वयं की स्थापना कर, और उन्हें मातृ-भूमि की गौरव-रक्षा के निमित्त हृद-प्रतिहर्ष मंत्रिक बनाने में सफल हो।

हृदय में यह अभिलाषा रखता हुआ कि 'अर्जुन' शीघ्र ही भारत-माला को वनधनुमुक्त करने की ऊंची महत्वाकांक्षा को पूर्ण कर,

में ह

सदा आपका

एस० एस० अग्र

## दरिद्रनारायण के व्रती राष्ट्रपति बा० राजेन्द्रप्रसाद



वि

हार के गांधी और हमारा नव-निर्वाचित राष्ट्रपति त्यागप्रसूति बाबू राजेन्द्रप्रसाद का जन्म हमारी राष्ट्रीय महा-सभा काँग्रेस के जन्म से एक वर्ष पूर्व ३ दिसम्बर सन् १८८४ ई० को बिहार के सारन जिले के जोरारई गाँव में हुआ था। आप के पूर्वज बहुत प्राचीन काल से किसी न किसी राज्य के दीवान होने वाले आए थे। आपका पिता बाबू महा-देवसहाय एक योग्य हकीम थे। दूरिद्रनारायण की मखा उन का उद्देश्य था। शापट लोक-सेवा और त्यागमय जीवन बिमान का अनुपम गुण आपकी वैयक्तिक सम्पत्ति है। १८९१ ई० में एक मालवी मालह के यहा आपकी प्राथमिक शिक्षा का प्रारम्भ हुआ। १९०० में कलकत्ता-विश्वविद्यालय की एण्ट्रन्स परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर आप आगे पढ़ने के लिए कलकत्ता चले गये। आप की प्रीतिना, विद्वत्ता और लोकसेवा-परायणता का परिचय कलकत्ते के विद्या-निर्वाचन में ही मिलन लगा था। सार्वजनिक क्षेत्र में आप इन्हीं दिना प्रवेश कर चुके थे। निम्नरी छात्रों की सहायता के लिए आप ने सच बना दूरिद्रनारायण की मद्रा का ५०० रुपियाँ का बही छात्र बहन-बहने इतना व्यापक हो चुका है। सार्वजनिक कार्यों में बहुत समय व्यतीत करते हुए भी आप की शिक्षा में कोई अन्तर नहीं पड़ा। एक० ए० और बी० ए० में आप न कलकत्ता विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया था। १९०७ में पिता जी का अकालिक देहान्त ने आप का विचारित जाना रक गया। इस क बड़ा आपका बड़े बरस नया पदना के जज या अध्यापन का कार्य करते रहे।

अध्यापन-कार्य के साथ साथ ही आप न एम० ए० और एम० एल० की परीक्षा दी। आप ने कलकत्ता में ही बकालत प्राप्त कर ली। १९१६ में पटना में हार्डकोट स्थापित होने पर राजेन्द्र बाबू पटना चले गये। यहाँ आपनी योग्यता और प्रतिभा के बल पर आप की गिनती उच्च कोटि के वकीलों में होन लगी। तत्कालीन बड़े बड़े बैरिस्टर और जज भी आप के कानूनी ज्ञान का लोहा मानते थे।

कार्य में पूरा समय देते हुए भी बकालत से आप को हजारों रुपये की आमदनी थी, परन्तु आप का रहन-सहन इतना सीधा सादा था कि लोग यह कल्पना भी न कर सकते थे कि यह पटना का सर्वोच्च वकील है। आप की हजारों की आय गरीब छात्रों तथा अन्य असहाय लोगों की सेवा में व्यतीत होती थी। जब आपने १९२० में बकालत छोड़ी, तब आपके बैंक एकाउन्ट में केवल १५ बाकी थे। सारी आय दूसरों की सेवा में जा

बिहार प्रान्त की उन्नति के इतिहास में राजेन्द्रबाबू का स्थान अग्रिम रहेगा। पटना हार्डकोट लख पटना-पुनिसिटी की उन्नति का बहुत कुछ श्रेय आप को ही है। बिहार का सामाजिक, राजनैतिक व शिक्षा-संबन्धी, कोई अक्षिप्त पैसा न था, जिसमें आप का पूरा हाथ न हो। आपकी सार्वजनिक, लघु, निरभिमानता और निरस्पर्श सेवा के कारण बिहार की अमल आप को अत्यन्त ब्रह्मा की स्ति में देखा है। आप उस के हृदय-सज्जद हैं। यही कारण है कि जहाँ अन्य प्रान्तों में भारतीय नेताओं के विरुद्ध पार्टी-बन्दी उम और तीव्र रूप धारण कर लेती है, वहा बिहार में आपके विरोध में किसी पार्टी का माधुमध्य नहीं हुआ। आप अजालराम हैं। सभी आप पर पूर्ण विश्वास करते हैं।

यों तो राजेन्द्र बाबू का नाम भारतीय जनता पहले ही जानती थी, परन्तु चम्पारन के खिलाड़ी गोरों के अत्याचारों में दूरिद्र छात्रों की रक्षा करने के प्रयत्न में २० गांधी को पूर्ण सहायता देने के कारण आप की गिनती भारतीय नेताओं में होन लगी। १९१७ ई० में महात्मा गांधी चम्पारन जाते हुए आप का ही यहा ठहरा है। गांधी जी की जाच करने और गोरों से बहस करने के लिए जिन वकीलों न सहायता दी थी, उसमें आप और बा० ब्रजकिशोर आचरम थे। दूरिद्रनारायणों के प्रति २० गांधी के असीम अनुपम को देख कर आप में उन के प्रति जिस अक्षय व भक्ति का उर्ज का हुआ, वह फिर दिन प्रति दिन बढ़ती ही गया। उसमें कमी कमी नहीं आई। आप कवल भयछु भी नहीं रहे; आपने अपना जीवन और भी त्यागमय कर दिया और जब १९२० में महात्मा गांधी न असहायों की बरी बजाई, आप आपनी हजारों रुपये की बकालत छोड़ कर उस संभ्रम में दूध पड़े। बैसे तो आपकी भवनक मान्य नेताओं न त्याग किया, परन्तु आप का त्याग सखुब अग्र्य था। तब आप के बैंक में कुल १५ श्रेय थे। सारी आय दूरिद्रनारायणों की सेवा में सब दो चुकी थी।



बिहार-रत्न

राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद

यदि परिस्थिति साधारण रहती, यदि भारतवर्ष अंग्रेजों का गुलाम देश न होता और यदि महात्मा गांधी न भूम तथा राजनीति का मिश्रण करके देश में प्रचल कालिकारी शक्तियों का प्रवाह न बढ़ाया होता तो बाबू राजेन्द्रप्रसाद आज पटना हार्डकोट के जज या सर्वोच्च वकील होते। सार्वजनिक

चुकी थी। त्याग और सेवा राजेन्द्र बाबू के अग्र्य थे।

आप का सदा से बही आदर्श रहा है—

न तर्ह कामयं राज्यं न स्वर्गं नापुनर्मेवम ।  
कामय दुःखतत्त्वानां  
अधिनामार्तिनामम ॥

१९२० में ब्राज तक का आपका जीवन ४० गांधी के बिहार-संस्करण का जीवन है। १९२२ में गया के कांग्रेस-प्रतिवेदन में स्वामी देशमुख साहब और प० भोवीलाल नेहरू की स्वरान्य-युक्त की योजना को अस्वीकृत कराने में जुड़ा भी राजगोपालाचारी को मुकद्दाम हाथ था, बहा प्राम न भी कम भाग नहीं लिया।

देश में राष्ट्रीय भावे का प्रचार करने के लिए असहयोग के किन्ने आप न देश नाम का साप्ताहिक पत्र निकाला और उस के द्वारा ४० गांधी का बहिस्ता तथा सत्याग्रह के विशालता को बिहार के घर-घर पहुंचाना का यत्न किया। असहयोग आन्दोलन की समानि के बाद ४० गांधी न घरका-सच कायम करके लाहरी-प्रचार का बीड़ा उठाया तो राजेश बाबू न बिहार में उन भी आगे बढ़ाया। जिस दिनों लाहरी की लोकप्रियता उठार पर थी, उन दिनों भी बिहार लाहरी का विशेष वैश्व बना हुआ था। ब्राज भी आप के ही प्रयत्न न बिहार की बागों बहुत अधिक उलट है।

इन्हीं दिनों कांग्रेस कमिटियां का समान वद्वि स्थिति हो चुक था। बाबू राजेशप्रसाद न इन्हीं प्रति में इस समान को भी व्यवस्थित किया।

#### सत्याग्रह आन्दोलन

सन १९२० ई० में कलकत्ता कांग्रेस न प्रस्ताव पास किया था कि नहर कमटी के आधार पर चर विधान की मांग को यदि एक साल के अन्दर सरकार स्वीकार न करे, तो कांग्रेस अगले अधिवेशन में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास करगी और सरकार को देना बन्द करेगी की सलाह देकर बहिस्तालक असहयोग आन्दोलन जारी करने की व्यवस्था कीगी। अगले वर्ष लाहरी में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ परन्तु उस में पहले ही सुगर में होने वाले प्रांतीय सम्मेलन में राजेशबाबू के समारपितत्व में बिहार न पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया। १९३० ई० में जब सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उस समय बिहार में भी आन्दोलन जारी हुआ। इस आन्दोलन के सिलसिले में राजेश बाबू को गया स्टेशन पर एक साराजेंट न धक्का दिया, पटना में नामक सत्याग्रह के अग्रसर पर आप को सारजेंट के घोड़े की ठोकर खाना पड़ी और भागलपुर जिलामन्त बिहार नामक स्थान के सत्या-

ग्रह में आप को पुलिस की लाठियों ने सत्त कर दिया। इस बहिस्ताल में आप दो बार जेल गये। जेल में आप का स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। स्थिति यहा तक गम्भीर हो गई कि देश में आप के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में बिस्ता प्रकट की जान लगी। लेकिन सरकार न कुछ नहीं सुना। इसाज तक की सुविचार्य आप को नहीं दी गई। आप को रिहा करने का आन्दोलन किया गया लेकिन आप अवधि न पूर्व रिहा न किये गये।

आप तीन बार कांग्रेस के हि-कट्टर भी रह चुके हैं। जिस समय गांधी-रविचन सम्मेलीता हुआ था उस समय आप ही कांग्रेस के हि-कट्टर थे। १९३२ ई० में पुरी में होने वाली कांग्रेस के आप ही अग्रत्वन मनोनीत हुए थे, परन्तु महात्मा जी के लक्ष्म ने लौटने के बाद ही फिर सत्याग्रह समग्र छिड़ जान क कारण वह अधिवेशन नहीं हो सका। आप फिर सत्याग्रह समग्र में नल चले गये। आप बाहर रह ही नहीं सक्त थे। आप का स्वास्थ्य गिर गिर गया। दंग में फिर आन्दोलन हुआ इस बार सरकार न जबरदस्ती के प्रयत्न सत्याग्रह में रिहा कर दिया। शायद यह रिहाई ईश्वरीय प्रेरणा थी, क्योंकि उस न कुछ ही दिन पूर्व बिहार में जो प्रलयकर भूकम्प हुआ, उसमें आप का समान कोई मन्वा-कार्य न कर सक्ता था। आप का स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ था, परन्तु वरिन्दारयण की मैवा का वृत्ती इस समय अपनी विन्ना लोडकर उन थोड़े-थोड़े

में जी जान स जुट पड़ा। जनरल प्रेडलिन का भीषण प्रकोप हुआ था। बा० राजेशबाबू के धार के भूकम्प में अनेक लोग मर गये, बहा सला की बरफसीमा थी। उनके इस कार्य न देश में उनक प्रति एक अग्रत्वं भक्ति उत्पन्न कर दी। राजेश बाबू की योग्यता, तपस्वता आर्थ्य और लोकप्रियता पर सब को—शुभु मित्र दोनों को विस्वास है। उन्हें अपना शत्रु मानन वाली सरकार न भी उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त किया। सच तो यह है कि उनकी सहायता के किन सरकार बिहार की सहायता का महत्त्वपूर्ण कार्य कुछ भी न कर सकती थी।

हिन्दी और साहित्य मन्वा न भी आप को पूरी खि है। आप क 'देश' न राष्ट्रीयता के साथ हिन्दी का भी प्रचार किया था।

१९१२ ई० में कलकत्ते में जब 'प्रमथ' जी के समारपितत्व में जब

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था, तब आप स्वागत समिति के मन्वी थे। १९२० ई० में पटन में होने वाले सम्मेलन की स्वागत-समिति के मन्वी थे। बिहार प्रांतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन तथा कोकनाडा में होने वाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के विशेष अधिवेशन के अग्रत्वन पर आप सुशोभित कर चुके हैं।

राजेशबाबू को ठलकर अनजान ब्राह्मी उनके अग्रत्वन गुणों न परिचय सुगमता न नहीं प्राप्त कर सक्ता। उनका वेश और मुख-मुद्रा इतन सीध और सरल है कि कवल उन्हें देखकर यह कोई कल्पना भी नहीं कर सक्ता कि इस साधारण न शरीर और वेश क पीउ इतना महान् भावना छिपा है। ऊपर न देखन न वह सीध सादे कुपड़ प्रामाणीय प्रतीत होत हैं, किन्तु उनका ही समय का संसर्ग देखन वाले को विस्मय तथा आश्चर्य न जाल देता है। उन न मिलकर भावनीय बनन क बाद उनकी सरलता और हृदय की शुद्धता न प्रभावित हुए बिना रह जाना असम्भव है। किसी आधिष्य पर उनका भाव्य सुनन क पञ्चात्त हृदय न उनक प्रति भ्रष्टा अग्रत्वं उपन हो जाती है। बिहार प्रात की जनता की समर्पित करन, उन उसक अग्रत्वन समझान और उन्नत बनान क लिए उन्होंने जो कुछ किया है, जो न्याय और तप किया है, उसकी कमा सुनन क पञ्चात्त भ्रोता उनका भन हो जाना है।

आज 'श' न वरिन्दारयण क इस सत्वे मन्वा को राष्ट्रपति कर सब न वहा सम्मान दिया है। राष्ट्र उनक हाथ न सुरक्षित है। परमात्मा उन्हें आशुष्य और स्वास्थ्य के साथ भारत की मन्वाओं में अधिकाधिक लाभ उठा सक।

उनक सीधे सादे और सरल स्वभाव न सन्वी साधुता निवास करती है। एक जगह इतनी सरलता, सोम्यता, त्याग, तपस्व साधुता और महान् भावना का अग्रत्वं मन्वा बहुत कम मनुष्यों न दीख पड़ता है।

मुसलमानों को पगम्बर सा० क उदाहरण न बहिस्ता की शिक्षा लेनी चाहिये। उन पर इतन परवर भाग्य कि नृत बह निकला, वन जूनों पर ऐसा जम गया कि उनका परे न निकालना मुश्किल हो गया। परन्तु पगम्बर सा० फिर भी जो क न्यो खडे रहे और उस ब्राह्मी क लिय सुमा-याचना की जिसन उन्हें परवो न मारा था।

—आनन्द-कुलपतिप्रकार ला

हमारा उद्योग यह होना चाहिये कि (हमारा सोम्यता से) देश में भिन्न-भिन्न धर्मों और आतिथ्यों में जो अब उपस्थित है उन हम पूर्णकूप में बनाय रहे। उनको मिलान का प्रयत्न न करे। 'ऊठ उपस करके राय्य करना' ही भारत-सर्वकार का सिद्धान्त होना चाहिये। —कनल जन कोक

(पुष्ट २ का मन्वा के क्षेत्र) अन्त में मैं राष्ट्र क नवयुवकों न दो शब्द कहना चाहता हू। प्रत्येक देश क स्वातन्त्र्य आन्दोलन का आधार नवयुवक ही रहे हैं। ब्रितिस का बल भी नवयुवक ही हैं। उनकी ग्राह्यता विशुद्ध होती है। सुखे पूरी आशा है कि कांग्रेस जो भी कार्यक्रम स्वीकार करगी स्वयंशी विश्वास बहिस्ता या कोसिल-प्रवेश हो, उसमें नवयुवक अपनी इस प्रति सत्या के प्रचर रहेगा और इस अन्तिम-परीक्षा क समय राष्ट्र का पूरा साथ देगे।

—१९३१—

## भाग्य की परीक्षा

टाइल पेज क अन्तिम पुष्ट पर नम्बर लगाया गया है। हम सम्मेलन कर रखिय। कुछ दिन बाद दो भाग्यशाली नम्बरो की घोषणा की जायगी। यदि व नम्बर आप ही क पास आय तो यह हिस्सा काट कर हमारा पास या जिस वन पर हम लिखे, मज दीजिय। आप इनम प्राप्त हो जायगा।

मेनजर।



## अपना संसार

कंसा हो अपना संसार ?

जैसा एक बड़ा परिवार ॥

न तो देव हो और न दानव,  
रक्त मनुष्यत्व हो मानव,

सब मे समता का व्यवहार ।

ऐसा हो अपना संसार ॥

न तो देवियां हो न चेष्टिया,  
हो पत्नी, मा, बहिन, बेटिया,

मन मे समता का संचार ।

ऐसा हो अपना संसार ।

बैर-विराध और ये घातें—  
कर्म भ्रतात काल को घातें,

रक्ते वाद विनाद-विचार ।

ऐसा हो अपना संसार ॥

सुख के लिये दुःख भी आवे—  
क्षणिक विरह मे बह बड़े जाने,

रुचि-रक्त उसके उद्वार !

ऐसा हो अपना संसार ॥

फल हो जिसकी आशाओं मे—  
एक भाव तो भाषाओं मे,

राग निज हो छिज न तार ।

ऐसा हो अपना संसार ॥

कर्म कल्पनायें कवि मर्मा,  
सच्ची कर दिखलायें कमा,

हा अपना के भी तिथि-वार ।

ऐसा हो अपना संसार ॥

घन कहते हैं जिसे, न हो वह  
फिर भा सब द्रव्यों का संग्रह—

कर आया का परिवार ।

ऐसा हो अपना संसार ॥

प्रगति मिले जिनसे जीवन मे,  
एक मनोगन्ध हो जन जन मे—

वह अपना ही आविष्कार ।

ऐसा हो अपना संसार ॥

आवें, विपत्तियां भी आवें,  
जिनसे हम नूतन बल पावें,

और तुरंत प्रभु दें न विचार ।

ऐसा हो अपना संसार ॥

—मैथिलीशरण शुभ

## विजया से

( १ )

विजये, विजय मिले, यह कर दे !

आज परीक्षा की हैं भीर;

उच्च राजसुख की जागीरें;

इधर जेल की हैं जंजीरें;

कठिन कमीटी पर कंचन है—

फस कर कालिख हर दे ।

विजये, विजय मिले, यह कर दे ॥

( २ )

विजये, विजय मिले, यह कर दे !

कर्म पर पुलकित पाण्ड मंगल;

पीकर देश-प्रेम के प्याले;

कर्मो से अनेक मतपले;

भटक रहे स्वभाष्य निर्णय को—

ध्येय ध्यान में कर दे ।

विजये, विजय मिले, यह कर दे ॥

( ३ )

विजये, विजय मिले, यह कर दे !

जनता में जीवन उमड़ा है;

स्वतन्त्रता का कर्म पड़ा है;

बालिवेदी पर देह खड़ा है;

भीख मांगता है स्वराज्य की—

अब तो सोलही भर दे ।

विजये, विजय मिले, यह कर दे ॥

( ४ )

विजये, विजय मिले, यह कर दे !

प्यारा है गत जीवन सारा;

दुर्गा ने दानव संहारा;

राम-लक्ष्मण ने रावण मारा;

इस कलियुग मे गांधी को भी—

सफल मनोरथ कर दे !

विजये, विजय मिले, यह कर दे ॥

—कैलाशचरण शर्मा 'कलक'

तासरी अंशो को पीछे कर लिये  
 छोड़ कर हम पहले बनेंगे। अंशों  
 के सम्बन्ध में विचार करने। अंशों  
 अंशों में हमने उन देशों को रखा है  
 जिन में प्रजापति शासन प्रचालनी के  
 पूर्व में अस्तित्व हुआ। परन्तु साम्यक  
 प्रचालनी प्रचलित है। उन्हीं में कोई  
 बंधनपूर्ण शासन नहीं है।  
 बंधनपूर्ण अस्तित्व के साथ स-  
 माप्त हो गई। वर्तमान शासनक  
 युक्त का कालापरान्त को प्रजा न  
 निर्माणित किया है। इस प्रकार उन्हीं  
 को शासन प्रचालनी को हम प्रजा-  
 लक्ष्यक कह सकते हैं, परन्तु सुख  
 ही हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा  
 कि कालापरान्त को शासन-शक्ति  
 निश्चित सत्ताप्राप्त कि जाऊँगी शासन  
 शक्ति में सैकड़ों युवा प्रथमि-  
 है। यह युवा जननी को है, जर्मनी  
 का राष्ट्रीय विद्वत् मनी स्वेच्छा-  
 वारिता का जीता जगता समुदा है।  
 जगल का सत्ताप्राप्त की खनन में  
 भी उस स्वेच्छा वारिता के प्रयोग को

कल्याण नहीं कर सकता, जो हिन्दू लर के लिए बापे हाथ का खेल है। कमालधारा या हिन्दू जैम शास्त्रक असाधारण दशाओं के परिणाम होत हैं। उन्हे स्वामी रूप में किसी देश की शासन-पद्धति का भाग नहीं बनाया जा सकता। सम्भव है कि भारतवर्ष को भी सुयवस्थित रूप में आगमन पूर्व हिन्दूराष्ट्री में म युज-रत्ना पदे क्योकि परिवर्तनकाल में प्राय असाधारण वस्तुएं पैदा हो जाती हैं, परन्तु अन्त में या तो खोल ही रहेगा या अखली वस्तु। पूजातन्त्र पद्धति और हिन्दूराष्ट्री विरुद्ध तक इकट्ठी नहीं रह सकती।

**प्रजासत्तालक आगमन पद्धति**  
आप दो धेखों में रह जाते हैं। एक तो वह धेखी जिस में

जो सर्वप्रथम हो रहा था अमरीका का प्रजातन्त्र उस का अग्रिम रूप है। दूसरे के प्रजातन्त्र का आधार ही दूसरा है। यदि अमरीका की रिपब्लिक को हम पुरानी दुनिया के राजनातिक इतिहास का अग्रिम अग्रिम रूप कह सकें हैं तो दूसरी रिपब्लिक नवीन दुनिया के राजनीतिक इतिहास का पहला अग्रिम है।

### पू जीवाद् ?

**गृह** तो हम देखते हैं कि भारत की भावी राज्यप्रणाली में वरा-परपरगत राजसत्ता को किसी रूप में भी स्थान नहीं मिल सकता। विपुल प्रजासत्तात्मक राज्यप्रणाली हा उस का लिय सम्भव है। अग्रह न यह देखना है कि प्रजासत्तात्मक प्रणाली के दो प्रकारों में से कौन सा प्रकार भारत के लिए

शाप सिद्ध हो चुका है। मनुष्य जाति न साम्राज्यवाद और पू जीवाद् के बहुत भजे ले लिये हैं। इन दोनों बातों का फल यह हुआ है कि घोर लोग खुशी रहे हैं और अधिक दुःखी। मनुष्य जाति के बड़े हिस्से को इन दोनों बातों के व्यावहारिक रूपों न अपाह्नक और हीन बना दिया है। मनुष्य जाति इन से उकता गई है। जिस बला में दुनिया छूटने का यत्न कर रही है यन्त्रपूर्वक भारत उन्ने गले में धारण कर यह कितनी भरी कल्पना है।

### भयन का अग्रिम

अमरीका की सी प्रजातन्त्र-पद्धति भारत के लिए उपयोगी नहीं बन सकती। इस का एक यह भी कारण है कि कोई भी राष्ट्र तब तक

सक्ती है कभी अनुकूल सिद्ध नहीं हो सकती।

### ता फिर क्या ?

हमें भारत का भावी शासन सर्वथा नया आधारों पर स्थापित करना पड़ेगा। भारत के अधिकांश-निवासी कृषि करते हैं। जो कृषि नहीं करते वह मजदूर मजदूरी करते हैं। एक बहुत थोड़ा हिस्सा है जो उपजु के पत्ते में क्या हुआ है। भारत का भावी स्वरूप उस थोड़े से हिस्से का स्वरूप नहीं हो सकता। उसे न एक भाषा की शक्ति मिल सकती है, और न एक धर्म को। जिस शक्ति पर वह अविश्वत रह सकगा वह शक्ति कोई दूसरी ही होनी चाहिये। गरिब और परिश्रमी प्रजा की एकल भावना ही वह शक्ति है जिसके आधार पर भावी भारत का राज्यभवन बना किया

## विश्व की दो विभूतियां

भारत के साहित्यकार



चिन्मय रवीन्द्र

भारत के जन-नायक



विश्व गंध

हुकु भारत पूर्व अमरीका के न्यूयार्क नगर में अन्तरा-ष्ट्रीय भवन की एक भोज-सभा में यह विवाद उत्पन्न हुआ था कि इस समय सप्ताह में ऐम कान दो व्यक्ति हैं जो सबसे अधिक यशस्वी एवं माननीय हैं। इस भोज-सभा के समापित थे कालम्बिया यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर। उन्होंने कहा— ऐम दो व्यक्ति हैं सही किन्तु क्या वे अमरीकानिवासी हैं ? आताओं में से हा कान वालों के सक्त को देखन पर उनका सत्या अधिक नहीं थी।

अतः उन्होंने प्रश्न— तब क्या वे अग्रज हैं ? इस बार भी स्वीडिश-न्यूयार्क सक्त अधिक नहीं देल गय।

उन्होंने फिर — या वे फ्रांसीसी जर्मन भाषा यूरोप के अन्य किसी देश के निवासी हैं ? कई व्यक्तियों न इस विषय में भी सन्देह प्रकटित कि तब समापित न खड़े होकर प्रश्न—तब क्या उनमें के एक व्यक्ति भारत के महान् जन-नायक म० गांधी एवं दूसर भारत के ब्याप्तनामा विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं।

बाँरों विशाओं न उन्ने समय एक स्वर से हा—हाँ जलिन गू उठी।

अमरीका फूस आदि मुख्य है और दूसरा वह धेखी कस को जिस का सब न उत्कृष्ट नमूना समझा जा सकता है। इन दोनों धेखियों में समानताएँ तो यह हैं कि दोनों ही वरापरपरगत राजनीतिक अधिकारों का सवधान उपेक्षा करती हैं और प्रजा के अधिकारों न सर्वांगि मानती हैं। परन्तु दोनों में विषमताय भी कम नहीं है और मालिक है। अमरीका की शासनप्रणाली का आधार पू जीवाद् है और कस की शासन-प्रणाली का आधार साम्यवाद। पुरान मोक्ष में गन ! न शनान्तियों न राजा और प्रजा के अधिकारों का

उपयोगी हो सकता है। हाक देश की राज्यप्रणाली में अपना अपनी स्थिति के अनुसार गोंग मद्र रहा करत है। इस कारण अमरीका या कस की राज्यप्रणाली अपन उसा रूप में भारत न प्रवर्तित हो सके यह असम्भव है। उन में परिस्थिति के अनुसार ता परिवर्तन करना हा पणगा परन्तु कई कारणों न प्रनात हाता है कि भावा भारत के लिए वह प्रजातन्त्र पद्धति जो अग्रगण्य में प्रवर्तित है अधिक उपयोगी नहीं हो सकता। सब न मुख्य कारण तो यह है कि उस का आधार पू जीवाद् है और पू जीवाद् सप्ताह के लिए एक अग्रिम

एक राज्य के स्व में गिरोया नहीं जा सकता जब तक कि उस के मिलान वाला एक मजबूत बन्धन न हो। भारत में वह मजबूत बन्धन कौन सा है ? एक शास्त्र का व्यक्ति वह बन्धन नहीं है क्योंकि सारा भारत किसी एक वरापरपरगत देवी शास्त्र को स्वीकार नहीं कर सकता। धार्मिक बन्धन भी नहीं है क्योंकि दुर्भाग्य से भारत में अनक धर्म प्रवर्तित हैं। यहाँ भाषा भाव और सरकारी के मद्रभी उम रूप में विषमता है। ऐसा देश में भारत के लिय वह शासन-प्रणाली, जो यन्त्रो-सेक्सन जाति के लिए उपयोगी हो

जा सकता है। इस कारण भारत का भावी स्वरूप ऐसी प्रजातन्त्र शासन-पद्धति पर अवलम्बित होना चाहिये, जिसका आधार पू जीवाद् न हो। भारत की शायद ६६ की सरी जनता अम सं जाचित है। कोई भूमि पर अम करता है तो कोई कारखानों में। ६६ की सदी भारतवासियों की एक अभिन्न भाषा ही ऐसी प्रवृत्त होती है जिस न भावी भारत के समग्रत्व को मजबूत किया जा सकता है, इस प्रकार हमारा स्वरूप अम की समता के अधिकारों पर अवलम्बित प्रजातन्त्र प्रणाली के अनुसार होना चाहिये, यह अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है।

भारत का गान्ध

भारत का गान्ध  
भारत का गान्ध

भारत का गान्ध  
भारत का गान्ध

भारत का गान्ध  
भारत का गान्ध

भारत का गान्ध  
भारत का गान्ध

## कांग्रेस से पूर्व का राष्ट्रीय आन्दोलन

(१०—११०० सी० वाधवा)

कांग्रेस से पहले भारत में वर्तमान राष्ट्रीयता का उद्गम कैसे हुआ ब्रिटिश शासन के प्रति असन्तोष ने पड़ा हुआ हिन्दुसमाज के सुधारकों व अग्रजा शिक्षा और तत्काल राजनतिक नेताओं ने भारत का एक राष्ट्र के रूप में स्थापित किया गया।

कांग्रेस से पहले भारत में वर्तमान राष्ट्रीयता का उद्गम कैसे हुआ ब्रिटिश शासन के प्रति असन्तोष ने पड़ा हुआ हिन्दुसमाज के सुधारकों व अग्रजा शिक्षा और तत्काल राजनतिक नेताओं ने भारत का एक राष्ट्र के रूप में स्थापित किया गया।



कांग्रेस से पहले भारत में वर्तमान राष्ट्रीयता का उद्गम कैसे हुआ ब्रिटिश शासन के प्रति असन्तोष ने पड़ा हुआ हिन्दुसमाज के सुधारकों व अग्रजा शिक्षा और तत्काल राजनतिक नेताओं ने भारत का एक राष्ट्र के रूप में स्थापित किया गया।

कांग्रेस से पहले भारत में वर्तमान राष्ट्रीयता का उद्गम कैसे हुआ ब्रिटिश शासन के प्रति असन्तोष ने पड़ा हुआ हिन्दुसमाज के सुधारकों व अग्रजा शिक्षा और तत्काल राजनतिक नेताओं ने भारत का एक राष्ट्र के रूप में स्थापित किया गया।

तीर्थ राजनीतिज्ञों ने राष्ट्रीय आन्दोलन किया, वह इसी को आधार मान कर।

नयगुण का आग्रह  
वर्षा लार्ड मैकाल ने अंग्रेजी शिक्षा की योजना केवल काले अभ्रम को सरकार व जनता के बीच में गड़खला का कार्य कर सक पदा करने के उद्देश्य में हातपाय की थी तथापि यूरोपीय स्वातन्त्र्य-युद्ध अधिकार प्राप्ति के लिए किया गया पूजा के पृथग्वी और यूरोपीय शासन के इतिहास का अध्ययन करने में अंग्रेजी-शिक्षितों में भी एक ऐसा दल पैदा हो गया जो भारत में भी ब्रिटिश विधान के अनुसूत प्रतिनिधिशक्ति का इच्छुक था। इस दल की अपनी महत्वाकांक्षा थी। शासन में यह भी समाज-व्यवस्था भाग लेना चाहता था। अंग्रेज राजा को जो अधिकार प्राप्त थे, उन्हें वह भी चाहता था। अपनी जाति के सामाजिक पतन को दख कर यह भी था। निवार-व्यवस्था की भावना में इस दल में एक तरफ ब्रिटिश शासन था। इस परिस्थिति में राजा राम-मोहनराय ने प्रारम्भिक कार्य किया। इन जहाँ सामाजिक सुधार का आवाज उठाई वहाँ गण-नतिक महत्वाकांक्षा भी लोगों के हृदय में जागृत कर दी। इस समाज में गणतन्त्र के अवधारण, नवयुग की भावना नवीन सृष्टि का संचार कर दिया। कृष्णचन्द्र सन ने एक जगह लिखा था विज्ञता और विज्ञित ज्ञान में आनुभव का काल। जब भारतीय भारत को एक वैश्विक लोभ में समर्पित कर उसने युद्धा करण है, तब एक देशी भी उस भयकर विषय समझ कर उसने डरना है।

पं० कृष्णचन्द्र विद्यासागर के विचार-विचार-आन्दोलन और श्री पार्ष्वचरण सरकार के अग्र-नय-आन्दोलन ने भी बंगाल की प्रमुख जनता में जागृति उत्पन्न कर सक सहायता नहीं दी। इन आन्दोलन में श्री सुगुप्ताय वनर्वा और आनन्दमोहन बसु भी सम्मिलित हागय तब इस आन्दोलन को बड़ा बल मिला।

उत्तरीय भारत में नवयुग के आचार्य ब्रह्म दयानन्द ने जहाँ सामाजिक सुधार की ओर ध्यान आराम उठाई, पारंपरिक कुतिलियों व अग्र-धर्मों के विरुद्ध जहल गेला वहाँ उन्होंने भारतीयों में स्वदेश के प्रति अनुभूति प्राचीन सभ्यता के प्रति प्रेम और स्वातन्त्र्य के लिए व युद्ध की पैदा की। उन्होंने लोगों को सुलभ-सुलभा बताया कि "विदेशी राज्य

राजा राममोहन राय  
मे सन्दर्भ पड़ा हागया। विद्रोह वाचना की भाँति फेल गया। वर्तमान राष्ट्रीयता-अंग्रेजी शासन में युद्ध होने की इच्छा का पहला प्रदर्शन भारतीय गणमन्त्र पर इसी विद्रोह के रूप में हुआ।

यह विद्रोह सफल न हुआ परन्तु इसमें ब्रिटिश सरकार के कान ध्वंश कर दो गया। ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इंडिया कंपनी में शासन लेकर अपने हाथ में लिया और तत्कालान महारानी विक्टोरिया ने प्रसिद्ध घोषणा की कि भारतीय शासन में बिना किसी जाति व धर्म के खयाल के लोगों को लिया जायगा।

बहुत से लोगों ने इस घोषणा-पत्र को भारत का 'मोमोचर्चा' समझा और बहुतों ने इसे शरी कापाल को एक दुकान। पर फिर भी जिन भार-



अर्जुन सा रविवार - अर - ११८

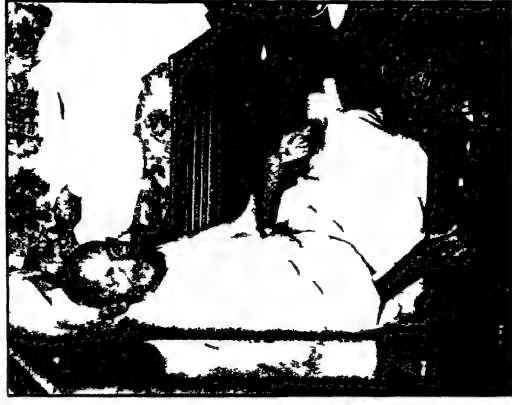


## भारतीय गोट कटा योग-प्रवर्तक



लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

स्वराज्य और नवोद्योग का प्रवर्तक



श्री ११ मा महानास रूपान्तर मा ३३

काम्य और निवास यन्त्रिस्वर १ मिलन भी ह ग त मा यम स्वीर र ननी कला



**गं** भी-बाद पर अधिकार-पूर्वक लिखना कठिन है। एक तो इसका अभी पूरा विकास नहीं हुआ है। इतनी प्रगति को अभी नहीं पढ़ जा है कि उसका समूचा ओर निश्चित स्वल्प लोगों के सामने रखना जा सके। दूसरे जब तक महात्मा जी म्रियुं हैं तब तक इस विषय पर लिखन का अधिकार एकमात्र उन्हीं को है। जो जिस वस्तु का प्रणेता है वही उन अधिकारपूर्वक और वास्तविक रूप में कान्छों तरह रख सकता है। मुझ जैसे लोग जिन्होंने गांधीवादी को बोधा बहुत इतनायम करने का अधिकार प्रयत्न किया है वे तो बहुत हुआ तो उस का कपूरला मास दे सकते हैं। इधर उधर में कुछ रोशनी ही नल सकते हैं।

महात्मा जा जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं जिस के आधार पर उन्होंने अपना जीवन उनसा है जिस के चल पर उन्होंने बहिया अफ्रीका और भारतवर्ष में अग्रज सरलतार्य प्राप्त की हैं एक म एक बड़ कर चमत्कार दिखाये हैं उन उन्होंने सत्यप्रह नाम दिया है। एक अग्रजकारणोद्भव न सत्यप्रह का स्वतन्त्र अर्थ करने का प्रयत्न किया है, परन्तु मैं समझता हूँ कि जिस व्यक्ति न जिस शब्द को जम दिया है उसको उसा अर्थ में दूसरों को प्रयत्न करना चाहिये जिस अर्थ में वह — उसका उन्मदाता — उस का प्रयोग करता है। कम म कम

न कर लिया था वर्ग में दूसरा अम सस्था क्या चोला गई? कट्टे ऐतिहासिकों का कहना है कि अग्रज सुदृढता के प्रभाव में सरकार इतनी थी कि लोग उसी स्वयं प्रतिक्रिया के लिए सरकार का अधिकार प्रसन्न न करना चाहते थे और इसाविय सुदृढता उनका जो राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रयुक्त राज न न क उद्भव म उन्हीं उनकी अनुपस्थिति में काभस का स्थापना कर डाली। लेकिन उनका यह विचार किताब अस्फल सिद्ध हुआ यह सभी जानते हैं।

कॉन्सिडर के जन्म का प्रब सुधारना कार्यो लक्ष्य व नताओ न जिस राष्ट्रीयता को जन्म दिया उसा को आता उदान का कार्य काभस न अपन जिम्मे ले लिया। यदि व ऐसा वाता वर्णन तैयार न कर जान तो काभस को इतनी सरलता मिलना कठिन थी जितना वह आज देख रहे हैं।

— ० —

## गंधी वा द

(ले—भी हरिभाऊ उपाध्याय)

इस लेख क लेखक श्री हरिभाऊ उपाध्याय न कल राक्षस्थान क प्रमुख कार्यकर्ता हैं अपितु आपन गांधा ना क सम्पर्क में रहकर उनका विचारधारा को इतनायम करने हुए सन्तुष्टता को आपन जावन में परिणत करने का भी प्रयत्न किया है। इसलिये इस विषय पर उनक विचार पाठकों क लिये मननीय और उपयोगी होंग।

सत्य क्या है आहस्ता न्या है न्य और भौतिक नल में कोन प्रधान है?—आदि प्रश्नों का दार्शनिक विवेचन बहुत उन मता में ललक न नल नल म किया है।

न्याय आधित्य और सत्य प्र म का यही तलजा है।

मत्याप्रह

अब हमें यह जान लेना चाहिये कि सत्यप्रह म महात्मा ना का अभिप्राय क्या है? सत्य+आग्रह न्न दो शब्दों को मिला कर सत्यप्रह बनाया गया है। इस में मूल और असली शब्द तो सत्य हा है। सत्य पर इतने रहन का नाम है सत्यप्रह। अत्र प्रह यह है कि सत्य क्या है? इसका निष्पत्त्यात्मक उत्तर वहां सत्यता है जिस न सत्य को पा लिया हो जिसका जावन सत्यमय हो गया हो जो स्वय हा सत्य हा गया हो। इसार प्राचल ऋषि मुनिया और द्वाणकारों न हम समझान का यन किया है पर व इसका महिमा का बखान करके या कुतु मलक दिखाकर ही रह गये हैं। मैं समझता हूँ—इस म अधिक मनुष्य क उस में है भी नहीं। सत्य का प्रगता या पलता और धलता न ना उडिया य हा है और न वलन-साय हा है। उसको व्यापकता पर विचार करने लगत है तो यह ब्रह्मा या छाग मन्दुस होता है प्रता क तरु बहत हं तो कलित या मनागत नि कचा दिखाई पता है। वह सत्य म सून और विराट न भा विराट है। इस में अधिक वलन उसका नहीं हो सकता।

मनुष्य कैसे?

तब मनुष्य उन समझे के न प्रत्येक मनुष्य अपना बहिर आर शक्ति के ही अनुसृत हैं उस समझ या प्रहम



अदिमा

अब इन आशिक सत्यों में मजरा

शुक्र हो ता न्या किया जाय? आप एक जात का सत्य मानें हुए है म दूसरा जात का। और व दोना पर सत्य विरुद्ध हो ता आपका मरा मरुपर व्यवहार और सचय कसा हाना चाहिये? सन्तुष्टता का या जाग जु म का? यदि जाग-बुल्ल का ता फिर आप मुझ म मर सत्य पर न रहन का अधिकार छानन ह। यह ता सत्य का आगधना नहीं हुई। आप का अपना हा सत्य प्रिय है नसा का आप का चिन्ता ह मर सत्य का आप निश्चल हा नसा करत है तो आप बुला स्वाअ नकाया पनपाता न्या महा हुर? यदि आप का उत्ति पला है तो फिर क्या आप स्वयं भा अपन सत्यगोधन का रास्ता नहीं राक रहे हैं? इस दशा म ता आप अपन और मर ननों क सत्य क बाधक न गया। दूसर शब्दों में आप सत्य क द्राहा बन गये। पर यदि आप सन्तिता का व्यवहार रखत ह ता अपन और मर ननों क सत्य गोधन का माग विरुद्ध कर न ह। दोना म विरुद्ध और इ व का नसाह प्र म आर मिदाल का भाव एव सम्मन्य उद्गम ह। इसा वृत्ति का नाम आहस्ता है।

सत्य क शोधन म आहस्ता क चिन्ता काम चल हा नहीं सकता। आप एक कदम भी आग नहीं बढ सकन। यहा नहा बलिष्ठ बनन का निमलता बुद्धि का सांनिका निमक निना आपका बलन करन सत्य स्फुरित होन क यास्य हा नहीं बन सकता वास्तव म राजा जय ता इस आहस्ता-वृत्ति क हा फल हो सकत है। अलन करण को निमल आर बुद्धि को सांचिक आप तमा उना सकत हैं जब आप अपन को रान ड व न ऊपर उठान रहेग। रान ड व न ऊपर गना आहस्ता का हा दूसरा नाम है।

इस तरह सत्य क सा आहस्ता अपन आपा उठा रहे है। ननों एक दूसर म अलन नहा हो सकन। नना का एक दूसर न वृक्ष ग मित्र कलना इरना अपन को सत्य म दूर हटाना है फिर भा यह तो न्हना म पडगा कि सत्य साथ ह आर आहस्ता मारन। आहस्ता र निना आप सत्य को पा नहा सत्य न लिये नस का मरु न स उ हा बगार ह किनु उसका नगना सत्य क गारन नहीं हा मरना।

मत्य नया भौतिक नल सत्य यदि वास्तव म सत्य सारा महाशब्द यनिक सत्य ह है या सत्य निमम प हा न्य ना आधार और अस्तित्व है और यदि वहा



सत्य हम में प्रोत-प्रोत है तो फिर हमें अपनी छोटी-सी तलवार पिस्तौल या मशीनगन अथवा अन्य भीषण भीमकाय शस्त्रास्त्रों से उसकी रक्षा करने की आवश्यकता ही क्या है ? क्या हमारा ये भयानक और भारक साधन उसकी रक्षा भी कर सकेंगे ? यदि हम मानते हैं कि हा तो फिर ये सत्य में बड़ कर साक्षित हुए । तो फिर सत्य की अपेक्षा हमें की प्रज्ञा क्यों न होनी चाहिये ? सत्य एवं परम धर्म की जगह शस्त्रमय परम धर्म का प्रचार होना ही उचित है । सत्यमय जयत नाउतम् की जगह शस्त्रमय जयत की घोषणा क्यों नापाये । तो फिर अब तक जगत् में किसा न शस्त्र को सत्य में बड़ कर क्यों नहीं बताया ? इसीलिये कि सत्य और शस्त्र की कोई तुलना नहीं । शस्त्र यदि किसी बात का प्रतीक हो सकता है तो वह असत्य का । सत्य तो स्वयं रक्षित है । सूर्य की कोई रक्षा क्या करेगा ? सत्य क तेज के मुकामले में हजारों सूर्य कुम्भ भी नहीं हैं । चूकि हम में सत्य बसा होता है इसीलिये हमें शासन की सत्तायता की आवश्यकता प्रतीत होती है ; क्योंकि असत्य हम में अधिक होता है और वह अत्यन्त मित्र साथी या प्रतीक की ही सहायता प्राप्त करने के लिए हमें प्रेरित करता है । अतएव सत्य का हिसा या शस्त्र से कोई नाना नहीं । बलवत् सूर्य के प्रकाश की तरह हमारा सामने स्पष्ट रहनी और हो जानी चाहिये ।

### शक्ति और प्रकाश

सत्य की गोच और सत्य पर ढेर रहने की प्रवृत्ति में ही वह प्रतिकार-बल उत्पन्न होता है जो सत्यप्राप्ति का वास्तविक बल है । सत्य को शोधन का बुद्धि उभे नित्य नया प्रकाश देता है और जो सत्य स्फुरित हुआ है उस पर ढेर रहन में उस में लड़ता उल और असत्य में लड़न की स्मृति आती है । इस प्रकार सत्यग्रह में ज्ञान और बल दोनों का समावेश अपन आप हो जाता रहता है । जहा ये दोनों हैं वहा पराजय असफलता अपमान दुःख और विनता केन निक सकत हैं ? सत्य के इसी अन्नत और नियन्त्रीन ज्ञान एवं अग्रोच बल क आधार पर महात्मा जी कहा करत हैं कि शुद्ध सत्यग्रही एक भी हो तो वह सारी दुनिया को हिला सकता है । कोन कह सकता है कि उन का यह दावा बुद्धिगम्य नहीं है ? सत्य के बुद्धियुक्त अग्रण और

## कांस्टिट्यूट असेम्बली की समस्या

(ले-ओ-बी अमरनाथ विद्यालयर सदस्य सर्वे टस भाक ही पीपल सोसल्वी, अयुवर)

काम्रेस की कांस्टिट्यूट असेम्बली की माग की प्राज्ञ देश में बची है । इसी माग को पेश करने के लिये यह है क्या बला हमका ज्ञान अभी कम लोगों को है । परन्तु विद्वान् लेखक न कांस्टिट्यूट असेम्बली क्या है उसका विकास कैसे हुआ किन्-किन् देशों में इसका निर्माण हुआ-आदि प्रश्नों पर अत्यन्त योग्यता से विचार करत हुए बताया है कि इस असेम्बली के निर्माण का कार्य यह प्रकट करना है कि भारतीय शासन की शासन-सत्ता भारतीय जनता के पास है न कि ब्रिटिश पार्लियामेंट के पास । बस इसीलिये काम्रेस इस प्रश्न पर इतना धामध रह रही है ।

### महावपुर्ण घोषणा

अ १७ जून १९३४ के कार्यरि वाले अधिवेशन में 'एन एन आर' मित्र साप्ताह्य की साम्प्रदायिक व्यवस्था क सचबन्ध में अपना मत प्रकट करके काम्रेस-कार्यसमिति न जो प्रस्ताव स्वीकृत किया है उसमें शासन-विधान (Constitution) की दृष्टि में एक बहुत ही महावपुर्ण घोषणा की है । इस प्रस्ताव में कहा गया है कि—

भारत क भावी शासन-विधान का सन्तोषजनक निर्माण करने का एक ही तरीका है कि शीघ्र में शासन का कांस्टिट्यूट असेम्बली गृहणा जाये जिसका चुनाव सार्वजनिक मतप्रतिकार (Lun-

गुटे प्रयोगों में भी जन हमन जवर्देस्त शक्ति उत्पन्न होती हुई देवी है तो इस में क्या शक हो सकता है कि सत्यप्राप्ति जितना ही अधिक शुद्धता और पूर्णता के निष्कट पड़ बेगा उसनी ही उस की गति तेज उल अपरमित आर तुरन्तगम्य होग ।

साधारण यह कि एक और मन्थ का प्रमित तज उल परक्रम पणिग साहज और इसरा और अहिंसा की परम भाष्टना मरुता मनुजान विमर्शमोला सन्मत्ता सुजन्ता इन दोनों क सम्मेलन का नाम है सत्यग्रह और हमी को गांधीवाद कह सकत हैं ।

—:—:—

### versal adult Franchise

के द्वारा हो । यह असेम्बली ही भारत के भावी शासन-विधान का सर्वोत्तम तैयार कर और विभिन्न सदस्यों के परस्पर सलुलन क प्रश्न का भी निर्णय कर ।

काम्रेस-कार्यसमिति की यह घोषणा राजनीतिक और कानूनी दृष्टि में उद्गुर ही महावपुर्ण है और इस क द्वारा काम्रेस न अपन राजनीतिक स्वयं की ओर एक कदम आगे उठाना है । वस्तुतः कांस्टिट्यूट असेम्बली की माग पूर्ण-स्वाधीनता क प्रस्ताव का एक आवश्यक भाग होना चाहिये था । परन्तु जिन दिनों काम्रेस न पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकृत किया था उन दिनों तक काम्रेस के नेताओं को यह विचार-विमर्श था कि ये ब्रिटिश राजनीतिकों क साथ किसी समझौते पर पहुचने में सफल हो सकेंगे । उस समय काम्रेस केवल एक गोलमेज कान्फरन्स की माग पेश कर रही थी जिस कान्फरन्स में भारतीय और ब्रिटिश राजनीतिक मिल कर बैठ जाय और एक दूसरे क साथ खूब विचार-विमर्श के पश्चात् किसी निर्णय पर पहुच जायें । असेम्बली में भी काम्रेस की तरफ न स्वराज्य-पार्टी न यही माग पेश की और जब सार्वजनिक-मतीय क अस्फुल्लता से दाराश होकर तत्कालीन वायसरय लार्ड इरविन ने स० बाल्फी और पब्लिश मोरलीलान नहक को मध्यव क लिये बुलाना, तब भी इन नताओं न गोलमेज-

कान्फरन्स की ही माग पेश की । परन्तु इसीसे ही अनुसार वल की सरकार स्वा इस माग को उकुरणी रही ।

गोलमेज कान्फरन्स की अस्फुल्लता शासन-शक्ति मजदूर-वृद्ध के हाथ में आन क पश्चात् ब्रिटिश सरकार न एक गोलमेज कान्फरन्स बुलाना का ही निश्चय कर लिया । परन्तु ब्रिटिश कृष्णमोहियों न कानन को तो गोलमेज कान्फरन्स की माग पूरी कर शा परन्तु उस स्फिरिट में काम नहीं किया जिस स्फिरिट में हमारा राष्ट्रीय नेता चाहते थे । कान्फरन्स में बजाय देश के प्रतिनिधील जनता के प्रतिनिधि नताओं को बुलान क सरकार न अधिकार्य ऐसे व्यक्ति भर लिये जो जनता के प्रतिनिधि नहीं थे । इसकी सहायता से सरकार न उक्त कान्फरन्स में भारत क साम्प्रदायिक वैमनस्य और कूट का खूब जोर से—और खूब बला-बाजार प्रदर्शन किया । जो भारतीय अपनी एकता के बल पर साधन-कमीशुन की रिपोर्ट को टेम्प नदी के अन्दर दफनाने में कामयाब हुए थे, वही सरकार के इशारा पर नाचकर दुनिया क सम्मुख उपद्रासास्पद बने । गोलमेज कान्फरन्स भारत की राजनीतिक और साम्प्रदायिक समस्या का हल न कर सकी । इस कान्फरन्स क प्रियर्थों के आधार पर ब्रिटिश सरकार न जो राजनीतिक भ्रष्टाचार 'व्हाटवर' क नाम से तैयार किया है, उसमें अधिकार भारतीय सलुल नहीं हुए और साम्प्रदायिक समस्या का कान्फरन्स में कोई हल न होने पर ब्रिटिश प्रथम-मन्त्री न अपनी मरामती व्यवस्था हम पर लाई दी है ।

गोलमेज कान्फरन्स अस्फुल्ल हुई क्योंकि यह कान्फरन्स वह कान्फरन्स न थी जिस की काम्रेस न माग की थी, बल्कि सरकार के कुछ पिटडुओं का मरमा तैयार किया गया था । एक तो इस में जनता के प्रतिनिधि ही नहीं थे, दूसरे इस कान्फरन्स को यह ज्ञात था कि उसके निर्णयों का कोई मूल्य

नहीं है। अन्तिम फौसला ब्रिटिश पार्लमण्ट करती है—वह चाहे कानून-रूप के निर्णयों को माने, चाहे उन्हें ठुकरा दे। इसलिये कानूनरूप पर कोई ज़िम्मेवारी न थी। जब कोई ज़िम्मेवारी ही न थी तो यह बहुत स्वाभाविक था कि उसके अग्ररथ गुप्त लोग धारण-धरणा राग ही जोर-जोर से प्रस्तावित थे। ज्ञात थे कि हम अपने भाषणों में कानूनरूप को प्रभावित नहीं करना किन्तु ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को निम्ना कर अपने सङ्कलित स्वायत्तों को पूरा करना है। इसलिये यह प्रयत्न अर्थ रहा।

जिन दिनों शासन-कमीशन भारत का दौरा लगा रहा था उन दिनों भी ओमली वनी बोमट्ट और कुछ दूसरे नेताओं ने एक नयाल कन्वन्शन बुलाकर भारी शासन-विधान का मसौदा तैयार करने का प्रस्ताव सामने रखा था। परन्तु उस समय यह विचार था कि यह कन्वन्शन जनता व बाकायदा बुन हुए प्रतिनिधियों द्वारा समर्थित होगा। साथ ही उस समय काबिले क इन्दौर और बाह्यर यही भाव प्रबल था कि ब्रिटिश सरकार ने कुछ ठे-उकर समझोता कर लिया जय। मैताओं का विचार था कि ऐसा समझोता सम्भव है और उस क परिणामस्वरूप कोपनिवेशिक हग का स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। कलकत्ता-काबिले ने पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा की एक साल के लिये स्वगित कराने के पीछे भी यही भाव था और लाहौर ने भी काबिले के नताओं ने पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव को मजबूर होकर स्वीकृत किया था। गांधी-नरसिंह-समझौते तक और महात्मा जी के इसीवद्द जनत को यही भाषा कान्य कर रही थी।

### नया अध्याय

जैन ने ऊपर कहा है वस्तुतः कास्टीट्युएण्ट अधमल्ली को मग्न पूर्णस्वाधीनता की घोषणा की आवश्यक भाग थी। और गोलमज कानूनरूप की अस्मरुता के पश्चात् ब्रिटिश सरकार के साथ समझौते में किसी निर्णय पर पण्ड-कन की आशा भग होन क पश्चात् काबिले के पास इसक लिये कोई चारा न था कि यह घोषणा करनी कि भारत के मांसी शासन-विधान की निर्णय करने का अधिकार भारतीय जनता का ही है और इस लिये शीघ्र जनता के बुन हुए प्रतिनिधियों की समा बुलाई जावे। मैं ऊपर कह आया ह कि राजनीतिक

और कानूनी दृष्टि में यह घोषणा बहुत ही महत्वपूर्ण है। यदि हम इस घोषणा पर दृष्ट रहें तो भारत के राजनीतिक इतिहास में इसमें एक नयी अध्याय का आरम्भ होता है। काबिले की इस घोषणा व महान् को सम्मान के लिये यह समझ लेना आवश्यक है कि कास्टीट्युएण्ट प्रायोजन की क्या वस्तु है और इस का क्या इतिहास है। आग पकियों में हम संक्षेप में यही वतलान का प्रयत्न करेंगे।

### कास्टीट्युएण्ट 'अधमल्ली' का विकास

कि की शासन-विधान की समाप्ता करत हुए मग्न प पहला प्रयत्न यह उठता है कि उस विधान के अनुसार शासन-सभा या प्रमुख (Sovereignty) का केन्द्र कहा निहित है? जिस समय समार में स्वेच्छाचारि राज्यतन्त्र का जोर आ उस समय राज्यतन्त्र व समर्थकों की ओर से कहा जाता था कि शासन-सत्ता का केन्द्र राजा है और यह यह सत्ता सीधे परमात्मा में प्राप्त करता है। इसलिये राजा के बिना कुछ कहन का किसी को कोई अधिकार नहीं है। राजा परमात्मा का प्रतिनिधि है। इस सिद्धान्त को ईश्वर प्रदत्त-अधिकार' (Divine Right of the ruler) का सिद्धान्त कहा जाता था।

१५ वीं सदी में जब राजसत्तात्मक शासन के बिना कानून की लहर उठी और जनता व बिना राजाओं के स्वच्छाचार शासनो व खिलाफ विद्रोह के भाव जाग्रत हुए तो हास्य, इसी वगारा विचारकों ने एक और सिद्धान्त की घोषणा की। उन्होंने कहा कि राजा का प्रमुख ईश्वर-प्रदत्त नहीं किन्तु यह प्रमुख उस जनता में प्राप्त हुआ है। जनता न ही किसी समय अराजकता और अनियन्त्रण में बचन व लिये परस्पर सलाह करके एक अधिकारी नियुक्त किया और शासन-सूत्र उसके हाथ में सौंप दिये। इसलिये राजा की शासनसत्ता और प्रमुख का जोत परमात्मा नहीं किन्तु जनता है। इस सिद्धान्त को उन्होंने साम्राजिक समझौते का सिद्धान्त' (Social Contract) का नाम दिया और घोषणा की कि आग यह राजा अपने कर्तव्य पालन नहीं करता तो जनता को यह अधिकार है कि वह उसके हाथ स शासन-विधान कापस लेकर अपने लिये नयी व्यवस्था करे। इस सिद्धान्त के अनुसार शासनसत्ता या प्रमुख (Sovereignty) जनता में

निहित है। वह वस्तुतः जनता की ही सम्पत्ति है। जनता उसे जिसके हाथों में चाहे सौंप दे। जनता को अपना इस सम्पत्ति को भी जिस किसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के हाथ में सौंपन का हक हासिल है। उसके इस अधिकार को स्वभाष्य-निर्णय का अधिकार (Right of self-determination) का नाम दिया गया है।

वर्तमान जनतन्त्र-शासन का मूलआधार यहा सिद्धान्त है। और आज समार में सबन इसी सिद्धान्त को स्वीकृत किया जाता है। जब किता नय शासन-विधान की रचना का जाती है, या किसी पुरान विधान में कोई परिवर्तन करना होता है, तो उस पर जनता का मन और स्वीकृति लेनी आवश्यक समझी जाती है, क्योंकि सम्पूर्ण शासनसत्ता और शक्ति का झोन जनता है। यह आधुनिक 'शासन कानून' (Constitutional law) का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है।

परन्तु जनता की स्वीकृति लेने का क्या दाय है? जनता स्वयं अपना विधान किस प्रकार तैयार कर सकती है? जब भी किसी देश में कानून द्वारा या अन्य व्यवस्थाओं के कारण शासन की पुरानी मर्यादारी टूट-पूट जाती है या निष्कर्षी हो जाती है तो जो लोग व्यवस्था की रूप में शासन की बागदोर अपने हाथ में न्त है, उनका यह कर्तव्य होता है कि व जनता से शास्य में शीघ्र शासन करने की आशा प्राप्त करें—इतना ही नहीं बल्कि जनता को अपसर दें कि वह जिन चाहे शासक नियुक्त कर ले और शासन को व्यवस्था चाहे प्रचलित कर दे। इसके लिये शीघ्र में शीघ्र जनता के प्रतिनिधियों की एक सभा बुलाई जाती है। अस्थायी ताप पर शासनोधिकार इसके हाथ में दे दिये जात हैं। यह सभा नय शासन-विधान का मसौदा तैयार करती है और उसे जनता में भन लेकर स्वीकृत कराता है और स्वीकृति के पश्चात् उस विधान के अनुसार नयी शासन की मर्यादारी की रचना करके सब शासन-सूत्र उसके हाथ में दे देती है। इसके बाद यह स्वयं भाग हो जाती है। 'शासन-विधान को तैयार करने वाली इस सत्ता को ही कास्टीट्युएण्ट अधमल्ली कहा जाता है। कास्टीट्युएण्ट अधमल्ली विधान का जो मसौदा तैयार करती है, प्रायः यह आवश्यक समझा जाता है कि उस पर एक बार जनता का मत

लिया जाय। और यह प्रायः निरन्तर के जरिये किया जाता है।

कास्टीट्युएण्ट अधमल्ली का दर्जा व्यवस्थापिका सभा और शासन की सत्ता सारा मर्यादारी क ऊचा है। उसकी रचना प्रायः ज्यादा विस्तर मर्यादारी पर होती है। वह जनता की सीधा प्रतिनिधि माना जाता है, और उसका काम सिर्फ नयी शासन की मर्यादारी को खड़ा कर दना भर होता है। जब तक कोई शासक अपने लिये जनता व शासनोधिकार प्राप्त न कर ले और अपना शासन-विधान जनता द्वारा निश्चित कास्टीट्युएण्ट अधमल्ली द्वारा स्वीकृत न करा ले तब तक वह शासक कानून शासक नहीं माना जाता और उसका शासन कानून द्वारा स्थापित (Government established by law) नहीं कहा जा सकता।

### वर्तमान इतिहास

आधुनिक युग में कास्टीट्युएण्ट अधमल्ली का इतिहास अमेरिका के रिक्वा की राज्यकानून पर आरम्भ होता है। कानून के पश्चात् विभिन्न देशों की निश्चित सत्ताओं—काबिले—ने शासन की बागदोर अपने हाथ में ले ली, और नय शासन-विधान को बनाने का कार्य भी अपने हाथ में लिया। कहीं-कहीं विधान बनाने का अधिकार को उन्होंने पहले जनता में वोट लेकर प्राप्त किया, और जहा ऐसा नहीं हुआ वहा अपने विधान के मसौदे को उन्होंने सार्वजनिक मत (Referendum) द्वारा स्वीकृत करा लिया। बर्जिलिया और दक्षिण कोरोलिया की काबिले ने जब नयेर जनता की स्वीकृति प्राप्त किये नय शासन-विधानों को वाचक चुनाया वहा तो जनता ने इसका विरोध किया और फलतः में उन्हें विधान को फिरसेद्वार द्वारा स्वीकृत कराना पड़ा। नइ हैट्यशायर ने भी ऐसा ही हुआ।

अमेरिका का फेडरल शासन-विधान भी इसी प्रकार की अधमल्ली द्वारा तैयार कराया गया और विधान में यह भी नियम रखा गया कि विधान में परिवर्तन करने का अधिकार ही कास्टीट्युएण्ट अधमल्ली को है।

अमेरिका की कुछ रियासतों में यह नियम रखा गया है कि एक निश्चित अबाधि के पश्चात् कास्टीट्युएण्ट अधमल्ली का चुनाव कर उसका अधिकारन बुलाया जाय ताकि जनता को अपने शासन-विधान में समय-समय पर गरी-

बदल करन और उसकी कार्यशैली का पर्यावरण बनन का अवसर आप म आप प्राप्न होता रहे। उदाहरणार्थ न्यायक में हर बार वृद्धे साक्षर भग्न हैमशायर में हर सातव साल अममली बुलान का नियम है। परन्तु अधिकांश रिया- नतों के विधान में ऐसा कोई नियम नहीं। इसमें कास्टाटयुपट अममली बुलान के नियम भी यह आवश्यक समझा जाता है कि पहले जनता की स्वाच्छित प्राप्न की जाय। इटियाना के सुप्राय कोर्ट ने १९७३ में यहा निर्णय दिया था कि अममली बुलान या न बुलान का प्रश्न पहले आम लोगों द्वारा निश्चित कर- उसके पश्चात् हा कास्टाटयुपट अममली का निर्वाचन किया जा सकता है।

फ्रांस के शासन विधान का रचना भा इना प्रकार की गयी। पत्र १८७० के फ्रांस-जर्मन युद्ध के पश्चात् नच नगेलिप्न पताय का पतन हुआ और नये संस्था- पित सरकार ने विस्मार्क ने संविध करनी बाही, जो विस्मार्क ने कहा दिया कि यह विधि-विधान द्वारा बाध्यता स्थापित सरकार से सियाय और किमी न सुलह की बातचीत करन के लिय तयार नहीं। इस पर नगमल अममला का चुनाव किया गया, और उसन नया शासन- विधान जन तन शासन के सिद्धांतों के अनुसार तैयार किया।

महायुद्ध के पश्चात् यूरोप में जिन नवीन राष्ट्रों की उत्पत्ति हुई उन सबके शासनविधानों की धृा के रचना कास्टाटयुपट अम- ने १९०० मला द्वारा की गयी और अममला के प्रभाव की जनता में निरन्तरता द्वारा स्वीकृत करायी गया। जब तक ऐसा नहीं किया गया अन्तर्राष्ट्रीय जनता में उन राष्ट्रों का सम्म की किंसा राष्ट्र न स्वाकार नहीं किया।

पोलैंड का शासन-विधान पिन्टुस्का ने १९९० में कास्टाटयु- पट अममला द्वारा कर तयार करया। जुगोस्लाविया जेकोस्ला- विया आस्ट्रिया प्स्लोविया आर जर्मना सबक ऐसा हा किया गया। औरगुस्लाविया में जरा कास्टाटयु- पट अममला चुनाव जात नया ता लोगों को चुनाव एक विविधनी चीज प्रदात होत य स्याकि एतन में प्रदेशों के लोगो न वहा चुनाव का नाम तन न सुना या। लोग वृद्ध अग्रिमिषित थ। परन्तु फिर भी हर वालिग को मतधिकार दिया गया, और लोगो के अग्रिमिषित होन

के कारण कोई विशेष विकल पैदा नहीं हुई।

यह हम ब्रिटिश उपनिवेशों के वर्तमान शासन-विधानों के इतिहास पर निगाह डालते हैं तो हमें मित्र पता लगता है कि उनमें पश्चिमा जनता के स्वभाष्य-निर्णय के अधिकार को महायुद्ध म भी पहले स्वीकृत किया गया है। इन उपनिवेशों का द्वाा है कि ये साम्राज्य के अन्दर रहने हुए भी खुदयुस्कार हे और साम्राज्य के भीतर रहना या न रहना उनका अपनी इच्छा पर निर्भर है। इस द्वाये का आधार यह है कि इन उप- निवेशों के विधानों को जनता द्वारा स्वीकृत करारक सब मूलभूत सिद्धांत को स्वीकृत किया गया है कि इन विधानों में शक्ति का मूल स्रोत जनता है न कि ब्रिटिश पार्लमन्।

आस्ट्रेलिया के वर्तमान ा- रल कास्टाटयुपटन की रचना के लिय १८९१ में सिडनी में कास्टा- टयुपट अममली बुलाई गई। इस- में तैयार किया हुआ संवत्ता मि- मिश प्रदेशों की पार्लमन् के सामन रखा गया। परन्तु वह सब पार्ल- मन्तों में पास न हो सका। १९८३ में फिर कन्वैन्शन नुसार किया। इस बार जिन प्रदेशों का पार्लमन्तों ने मनेज को स्वीकृत नहीं किया वहा वह संवत्ता रिप्टरमन्ट के अन्तर जनता के सम्मुख रखा गया। वहा वह स्वीकृत हो गया। इस प्रकार जनता की स्वीकृति प्राप्त होन पर उसे १९०० में ब्रिटिश पार्लमन्ट में भी स्वीकृत कर लिया। जो ढग आस्ट्रेलिया में वता गया ठीक वहां केनडा में और ब्रिजिया अफ्रीका में वता गया।

आयरलैंड की फ्री स्टेट का कास्टाटयुपटन भी इसी प्रकार वहा का निरापिन अममली के बचन वल आग्रयन की स्वाच्छित में प्रवर्तित किया गया। पहले आयरिश आर डिगिभ नताओं में एक सम्मोना दुआ आर उन्- पर वल आग्रयन का स्वाच्छित ली गयी। उसको पश्चात् पार्लमन्ट न अपनी मुद्रा उस पर लगा दा। इस प्रकार हम व्कन हे नि मसुपों शासन-विधानों का आग्र- नता की स्वाच्छित है। ब्रिटिश उप- निशों में भा जनता के प्रभुव (Sovereignty) का सिद्धांत स्वीकृत किया गया है।

हम ऊपर कह आया है कि कास्टाटयुपट अममली शासन का सारी मेगनरी न ऊपर है। व्यवस्थापिका समये या एजोक्व-

टिव उस के अधिकारों में कमी नहीं कर सकत उस के कार्यक्रम में हस्तक्षेप भी नहीं कर सकन। वह भा यद्यपि शासन के कार्य में हस्त- क्षेप नहीं करता, परन्तु शासन- विधान में शासन के अन्ध विभाग के लिय शर्तें आयुक्त कर सकती है। और ऐसो शर्तें भी लगा सकती है जिसम व्यवस्थापिका सभा किसी हानिकारक नोति को दुहरा न सके।

कहा जाता है कि कास्टाटयुपट अममली में प्रायः ये सब दोष रहत हे जो निवाचित संस्थाओं में प्रायः आ जात हैं। वह कोई बार सामयिक विचार-प्रवाह में वह कर शासन- विधान में ऐस ढग बन्धन लगा गनी है जो आग्र चल कर बहुत हानिकारक सिद्ध होन हैं। परन्तु इस न इन्कार नहीं किया जासकत कि जनता की इच्छा को कार्यक्रम में परिणत करन का आर कोई अण्डा तरगा भा नहीं। कास्टाटयुपट अ- पमली का चुनाव यदि भली भांति आर न्यायानुसार किया जाये तो इस में प्राय सब विचारों के लोग आ जात हैं और इस के निर्णय जनता का स्वीकृत इच्छा के प्रतिनिधि होत हैं।

### वास्तविक समस्या

यदि भारत की पूर्ण स्वाधीनता के प्रश्न को छोड़ कर कबल ओपनिवेशिक दर्जे का भी खयाल किया जाय तभी भारतीय जनता को वह अधिकार प्राप्त होना चाहिये जो महायुद्ध म भी पहले ब्रिटिश- साम्राज्य के अन्ध उपनिवेशों की प्राप्त हुआ था और जो महायुद्ध के बाद आयरलैंड और प्रिजिया मा- दनर के रचित राष्ट्रों (Protectorates) को दिया गया। भारत के लिए जो भी शासन-विधान तैयार किया जाय उसपर भारतीय जनता की राय अवश्य ली जानी चाहिये आर भारतीय जनता द्वारा स्वीकृत होन पर ही उस कानूनी स्थिति प्राप्त होनी चाहिये। परन्तु ब्रिटिश सरकार ऐसा नहीं करना चाहती। भगदा वस्तुतः निश्चयन का है। जेसा मैं न आग्रम में कहा है, किसी शासन विधान की समीक्षा करन न प्रश्न उत्पन्न होता है कि शासन- सत्ता कहा निहित है कि ब्रिटिश राजनानिभो का द्वाा है कि निरा- नाय शासन की शासन-सत्ता (Sovereignty) भारतीय- जनता में स्थित नहीं किये उसकी स्वािमिनी ब्रिटिश पार्लमन्ट है। इस- लिय उन का वधा है कि भारत का शासन-विधान बनान और उस में

रदोबदल करन का अधिकार कबल ब्रिटिश पार्लमन्ट को ही है। भारत के स्वभाष्य-निर्णय के अधिकार को ब्रिटिश राजनानिभ स्वीकृत नहीं करत। उप के मत में भारतीय जनता अपन भाष्य को स्वय स्वा- मिनी नहीं किन्तु उस के भाष्य की भगडोर ब्रिटिश पार्लमन्ट के हाथ में है।

इस म पहले कि भारत और इंग्लैंड में कोई परस्पर समझौता हो या कोई शासन-विधान तैयार किया जाय इस मुसलत कानूनी (Constitutional) प्रश्न का निर्णय हो जाना आवश्यक है। भारत के शासन-विधान में शासन- सत्ता और प्रभुत्व (Sovereignty) कहा निहित होगी—ब्रिटिश पार्ल- मन्ट में या भारतीय जनता में, यह महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न है। सुचारी अधिकारों इतरतावरित भाररहित विषयों सामय्याधिक कडारों के सब प्रश्न गोया हैं—पहला मुख्य प्रश्न यह है। जब तक इस प्रश्न का निर्णय न हो जाय इंग्लैंड और भारत का भगदा तय नहीं हो सकत।

कामेस न अपन नय प्रस्ताव द्वारा इस मर्म को स्पष्ट किया है। भारतीय जनता के स्वभावसिद्ध अधिकार की (Constitutional Law) परिभाषा (Laws) में उसन ओषणा की है। इसलिय यह ओषणा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस ओषणा म ससार पर यह बात भी रोशन हो गई है कि भारतीय किसी भा शासन-विधान की स्वी- कृत न करेंगे जब तक भारतीय जनता द्वारा उस स्वीकृत न करया जाय या कानून की परिभाषा में जब तक शासन-सत्ता की स्वा- मिनी जनता की सन्तलीम न किया जाय। और बातों में ले-उ कर सम- कोता हो सकत है परन्तु शासन- सत्ता (Sovereignty) का श्र-यार नहीं हो सकत। भावी शासन-विधान की धारयें कुछ भी हो उस में बाटे समुपों विषय रचित रखे जाय परन्तु उस की प्रस्तावना में यह ओषणा स्पष्ट गटो में होनी चाहिये कि भारत की शासन-सत्ता (Sovereignty) भारतीय जनता में निहित है।

—:—:—

हम अपने इस की सम्मय विमर्शों से

बचिक यन्त्री न ह सुनका मजक है

—बहादुरलाल नेहरू

स्वप्न में

## पुण्य-प्रभात

कब होगा वह पुण्य-प्रभात ?

जब कि एक दिन दिनकर की उन नव किरणों के साथ  
फैल जायगी सफ़ल विश्व में बिजली मी यह बात—  
'आज से भारत है स्वाधीन, आज से भारत है स्वाधीन ।'

x x x x

कब होगा वह पुण्य-प्रभात ?

जब विकसित कुतुम्हों के अश्रुओं पर होगी मुक्तकान,  
मुग्ध उषा के बन्दी गायन यह संगल-गान—  
'आज से भारत है स्वाधीन, आज से भारत है स्वाधीन ।'

x x x x

कब होगा वह पुण्य-प्रभात ?

जब नाचेंगे हर्ष-विकल हो सप्त-मिन्तु मुमहान,  
ठकरा कर हिमगिरि-शिखरों से गुंजेगी यह तान—  
'आज से भारत है स्वाधीन, आज से भारत है स्वाधीन ।'

x x x x

कब होगा वह पुण्य-प्रभात ?

पतिम काटि कष्ट-ध्वनि से मिल वाद्य-धोष जिम काल,  
स्पष्ट खवना देगा सब को यह निर्भय उताल—  
'आज से भारत है स्वाधीन, आज से भारत है स्वाधीन ।'

x x x x

कब होगा वह पुण्य-प्रभात ?

जब कल्पानिधि ! कभी स्वप्न में ही हें नाय प्रवीण !  
देख सङ्गा दृश्य—देश है मेरा बन्धन-हीन,  
'आज से भारत है स्वाधीन, आज से भारत है स्वाधीन ।'

x x x x

कब होगा वह पुण्य-प्रभात ?

मल्य नहीं तो, होली में ही दे कज यह संवाद  
क्षुण्ण भर जब अस्वार चला देगे स्वतन्त्रता-स्वाद,  
'आज से भारत है स्वाधीन, आज से भारत है स्वाधीन ।'

x x x x

कब होगा वह पुण्य-प्रभात ?

उस कल्पित स्वाधीन वायु में दम लेकर इक-आध  
रह न जायगी मन में मेरे कि कम कोई साथ ।  
'आज से भारत है स्वाधीन, आज से भारत है स्वाधीन ।'

—जगदीश्वर विद्यालकार ।

ज कल सब तरफ साम्यवाद को बचा है। सभी स्थानों पर साम्यवादियों की सभा-समितियां बड़े वेग से खुल रही हैं। यह हुआ कबल भारत में ही नहीं परन्तु सम्पूर्ण संसार में बह रही है। साम्यवाद आज क समय की लहर पीछली है। संसार के बहुत से प्रतिभाशाली विद्वानों को इसन अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है। साम्यवाद के विरोधी फासिम और माजिम भी आज साम्यवाद का बाना पहन कर और उसी की भाषा में हमारा सामन उपस्थित हो रहे हैं। हमें यह देखना चाहिये कि क्या खादी को भी साम्यवाद की भाषा में उचित और सत्य उद्देश्यता जा सकता है। जिन आन्दोलन का एक ही उद्देश्य—मानव जाति की उन्नति हो उन में परस्पर कोई समर्थ नहीं रहना चाहिये यह भी अत्यन्त आवश्यक है।

माम्यवाद का तथ

समस्या के दार्शनिक और बहाना निक भ्रमभयन क लिय इसे यह बहुत झन्झटी तरह से समझ लेना चाहिये कि साम्यवाद का मुख्य उद्देश्य और तत्व क्या है? यदि हम अपन हृदय में जिना काई पूर्व-परमाणु क्रिय निपल गिमे न विचार कर तो हम वह निस्सन्देह स्वीकार कर लग कि धर्म प्रवर्धन परित्याग जीवन राप व्यवसायवाद नया धर्म येन अनक प्रवर्ध जिन्हें इस समय अध-प्रतिष्ठित और साधारण मरिण साम्यवाद न सम्भव मानता है वस्तुत इसक मूलभूत प्रश्न नहीं है।

साम्यवाद का तथ वस्तुत इसक अतिरिक्त मुख्य (u plus valū) क सिद्धान्त में (रीक हो या गलत) विद्यमान है। इसी अतिरिक्त मुख्य क जगह ही जगता को (पू जोपरि) लुप्त है। यहा अतिरिक्त कीमत लाभ लगान और व्याज का रूप धारण करती है। येन व्यवसाय को जिसस अतिरिक्त मुख्य अर्थात् लाभ लगान या व्याज की गु नाशक नहीं है साम्यवाद क सिद्धान्त क अनुकूल ही मानना चाहिये। कोई व्यवसाय साम्यवाद क सिद्धान्तों के अनुकूल है या नहीं इसका परीक्षा क लिय यह जानना आवश्यक नहीं है कि उस व्यवसाय का सवालक या प्रवर्धक परिणामों में निवास करन वाला है या प्रवर्धकारी की पुष्ट

## खहर व साम्यवाद

( लेखक—आचार्य कृपलानी )



साम्यवाद का तथ समझने वाले स कोई मतभेद नहीं हो सकता।

साम्यवादी दृष्टि में एक विचार को मानता है या दूसर विचार को, प्रत्यक्ष व्यवसायवाद (Industrialization) में विस्थापन करता है या नहीं। आवश्यकता तो इस बात की है कि वह साम्यवाद क तत्व को स्वीकार करता हो

खादी में माम्यवाद

खादी-व्यवस्था में न अतिरिक्त लाभ की गु जायस है न गलत 'ग्राज' और लाभ की। सब आय काम करन वाली की ही जेब में जाती है। किसी दूसर दल को चाहे वह वास्तविक या काल्पनिक कार्य भी करना हो कुछ नहीं दिया जाता। काम करन वाली क कतनों में भी बहुत अन्तर नहीं होता। कुछ इस हान और भी स्पष्ट कर दें। एक पुनरकी की मासिक आय आसतन (१३) ४० म (१५) ४० तक है। घोषा (१५) म (१५) ४० तक रमासतन (५५) म (३०) ४० तक और उर्दू (५५) म (३०) ४० तक महीन में क्या तत्व हैं। कनेय की आय जम्बर कम है परन्तु कतना सार दिन का समय नहीं है यह तो कबल खाली समय का उपयोग है। दूसरी ओर खादी क सगठनकताओं का भी परिश्रमिक (५५) ४० है यद्यपि उन में से अन्तक उच्च मि-जित भी होत हैं।

राष्ट्र की सम्पत्ति

‘अतिरिक्त कीमत’ क सिद्धान्त के परिणामस्वरूप ही साम्यवा-दियों ने सम्पूर्ण उत्पत्ति-साधनों के

आचार्य कृपलानी देश के उन कार्यकर्ताओं में हैं जो न कबल त्याग, तपस्या मन्वा और अद्भुत कार्य-कुशलता क कारण ही प्रसिद्ध हैं परन्तु आपका योग्यता व विचार-शक्ति भी प्रमुख है।

इस लक्ष में उन्होंने यह बतान का सफल प्रयत्न किया है कि खहर का आन्दोलन साम्यवाद क मुख्य सिद्धान्त—उत्पत्ति-साधनों क राष्ट्रीय-करण व सम्पत्ति क समानवितरण—में अन्य सब आन्दोलनों की अपेक्षा अधिक मूल खाता है। इसलिय किता साम्यवादी को इस आन्दोलन

राष्ट्रीयकरण (राष्ट्र की सम्पत्ति बनाने) का सिद्धान्त स्थिर किया है। जहा तक खादी का सम्बन्ध है चरखा और खड्डी ही उत्पत्ति क साधन हैं। इन क राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता नहीं क्योंकि इन का व्यव इतना कम होता है कि प्रत्येक प्राम-निवासी इन का क्वे बरदास्त कर सकता है। जहाँ कोई प्राम निवासी काम करना चाहता है परन्तु चरखा और खड्डी नहीं ले सकता वहा चरखा-खड्डी—जो सार्वजनिक सत्पत्त है—उस की सहायता करता है। उत्पत्ति क य सीध-साध सामन वस्तुत राष्ट्रीय साधनों से किसी तरह कम नहीं है।

प्र जी भी

उत्पत्ति का दूसरा प्रधान साधन प्र जी भी है। यह भी चरखा-सच क हाथ में होने क कारण राष्ट्र की ही सम्पत्ति है। यह ऐसी सार्व-जनिक सम्पत्ति है जिस पर न लगान मिलता है न व्याज या लाभ। खहर पैदा करने वाले जो थोड़े बहुत निजी कारोबार हैं उन्हें भी चरखा-सच द्वारा स्थापित आ-दर्श का अनुकरण करना पड़ता है। उनके हिसाब-किताब व मुख्य-निर्धारण पर चरखा-सच का निरी-क्षण और नियन्त्रण रहता है। उन्हें चरखा-सच की प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करना पड़ता है इसलिय उन्हें कलत उत्तन ही लाभ स स्वीकार करना पड़ता है जिस स

वे अपने मामूली नेतन निष्कल सके। वस्तुतः खादी का सारा व्यवसाय ही साम्यवाद का एक परीक्षण और साम्यवाद की दिशा में ही एक साहस है। मुझे इस में कोई संदेह नहीं है कि यदि आज की बिदेसी सरकार के स्थान पर देशी सरकार कायम हो जाय तो किसानों के लाभ के लिए राष्ट्रीय-सरकार ही खादी क राष्ट्रीय-व्यव-साय का सगठन करगी।

खादी आन्दोलन का आधार

साम्यवाद के तर्कों का आधार प्रत्यक्ष जनताओं का अभ्यन्त्रण ही है। आज चाहे भारतीय साम्यवादी पश्चिम न बनी भारी भाषा में आन हुन साम्यवाद समझी या बोलशविक सहाय्य को कितनी हा लालचभरी निगाहों में क्यों न देखे यह किसी तरह नहीं कहा जा सकता कि साम्यवाद के सभी सिद्धान्तों का आधार वस्तुत प्रत्यक्ष व ठोस घटनाओं का अभ्यन्त्रण ही है। वे व्यापकवर्ती हैं। सम्पूर्ण साम्यवादी दार्शनिकों का यह दावा है। परन्तु किसी प्रकार के पूर्व-निर्धारित विचारों प्राचीन अर्वाचीन ऐति-हासिक धार्मिक या बहानिक धा-न्याग पर खादी क आन्दोलन का आधार नहीं है। इस का तो मुख्य आधार सल लाख गांवों में होने वाली ठोसमरों की प्रत्यक्ष और ठोस अनुभवों पर—धर्म-विचारों व परिश्रमियों क मुच व दार्ष्टिक्यमय जीवन पर है।

चरखा और खाति

साम्यवाद अन्य बातों क साथ कति में भी निवास करता है। चरखा भी न कबल स्वय धूम-ता रहता है परन्तु अन्य अनक दार्शनिक कान्तिओं का भी प्रेरक कारण है। अतिरिक्त जगता हिंसा-त्मक उपलक्ष पुष्ट को ही कान्ति समझती है। परन्तु वास्तविक कान्ति विचारों क सशोधन, परि-माजन और पुनर्गठन—विचार-धारा या दृष्टिकोण के परिवर्तन में है। इस दृष्टि से खादी आन्दोलन न कितनी सर्वांगीय कान्ति की है उसकी कान्ति ही अन्य आन्दोलन न नहीं। किसी एक क्षेत्र में ही नहीं, प्रायः सभी क्षेत्रों में इस ने कान्ति की है। जिसमें हथ पालेला सव-भक्त थे अब उसमें प्रामाण्य सम्-भक्त लग हैं, जिसमें पहले प्रामाण्य था, अब उसमें सम्मान दीक्षक लग हैं। पहले का सुन्दर अब दुष्ट दीक्षक लगा है और पहले की कुपल वस्तु में हम सीधमें दु हने बने हैं।

## कांग्रेस का क्रमिक विकास

( लेखक— श्री कृष्णचन्द्र विद्यालक्षार )

### क्रान्तिकारी परिवर्तन

त्रि शत्रु साम्राज्य में मजबूत-विच्छेद कर पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये सरकार ने सशमक करने वाली अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा (आल इण्डिया नेशनल कांग्रेस) के पिता मि० एम० नमक एक अग्रज सज्जन थे, जो सिविल सर्विस में रिटायर हो चुके थे। उन्होंने केवल भारतीयों की इच्छा में प्रेरित होकर ही कांग्रेस की स्थापना नहीं की थी, परन्तु तत्कालीन वायसराय लार्ड डफ्रिन ने पूर्ण परामर्श करने व अनुमति देने और इङ्ग्लैंड में वैधान-वास्ता एक्सो-रिडिपणों से भी आशीर्वाद लेने के बाद इस कार्य का सुरु-पात किया था। लार्ड डफ्रिन केवल अनुमति देकर ही हम में उदासीन नहीं हो गये थे, परन्तु दूसरे अधिवेशन में एकत्रित प्रतिनिधियों को उन्होंने दावत भी दी थी। पहले अधिवेशन के सभापति-पद के लिये भी बम्बई-वायनर का नाम पेश किया गया था। ( वायसराय के इन्कार करने पर ही भी उमेरशयन्त्र

सुन्दरता, कला, आवश्यकता और स्वास्थ्य सभी खादी के कारण बदल गई है। चरने में केवल साधारण जनता के ही नहीं, परन्तु अधिकांश के भी अर्थशास्त्र-अर्थव्यवस्था विचारों में परिवर्तन कर दिया है। खहर एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति और एक विशेष प्रकार की विचारधारा का प्रतिनिधि है। चाहे हम उस विचारधारा से सहमत हों या नहीं, परन्तु खहर या चरने में एक भीषण और व्यापक क्रान्ति फैलाने का ही है, जिस की कोई निष्पक्ष व्यक्ति उपेक्षा नहीं कर सकता। जो व्यक्ति साम्यवादी, वैज्ञानिक और पर्यायवाद की मनोवृत्ति का है, वह कभी खहर की उपेक्षा कर ही नहीं सकता, उस के मूल्य को कम कर ही नहीं सकता। ये दोनों बातें एक साथ रह ही नहीं सकती।

वनजों सभापति हुए थे )। वस्तुतः कांग्रेस की वर्तमान नीति व ध्वज को देखने हुए आवश्यक होना स्वाभाविक है कि सरकार में पालित-पोषित सत्स्था में इतना क्रान्तिकारी परिवर्तन कैसे ? कांग्रेस में जो क्रमिक विकास हुआ है, उस का अध्ययन न केवल उपयोगी है, परन्तु मनोरंजक भी है। हम इस लेख में इसी विषय पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

कांग्रेस का जन्म

कांग्रेस की स्थापना में कई वर्ष पहले ही भारत के खिलत सन्तुष्टय में सरकारी नीति ने कुछ असन्तोष उत्पन्न होना लग

### कांग्रेस के दो महापति



दादाभाई नौरोजी



सर फीरोज्जाह मेहता

गया था। परन्तु वह केवल शासन-प्रण्य की कुछ घुमियों तक सीमित था। अग्रजों सरकार में स्वतन्त्र होने की इच्छा इस समय तक भारतीय नेताओं में प्रकट नहीं हुई थी। वे अग्रजों शासन को शायद टैवर की छुपा और भारत का सामान्य सम्मत थे। लेकिन फिर भी शासन में भारतीयों का पद-पद पर अपमान, शिक्षित भारतीयों को नौकर न रखने तथा प्रेस-सम्बन्धी कठोर नियमों से उच्च शिक्षितों में असन्तोष बढ़ रहा था। जनता में भी असन्तोष रहने शुरू हो रहा था। सदाभाई नौरोजी, काशीनाथ त्र्यम्बक नैलगा, सुरमनाथ बैनर्जी, सर फीरोज्ज शाह मेहता, आनन्दमोहन बोस

एक रिटायर्ड सरकारी अफसर न जिस कांग्रेस की स्थापना सरकार की अनुमति लेकर की थी वही कांग्रेस अब पूर्णस्वराज्य की प्राप्ति के लिये अत्यन्त ही है, इस आन्वयजनक पहली का ही इस लेख में उल्लेख दिया गया है। कांग्रेस में सरकार की छुपा कैम खोई, असन्तोष किस तरह अग्रज धारण करता गया नरमदल का स्थान गरमदल न कैम लिया, जनता के साथ कांग्रेस का सम्बन्ध कैम बढ़ता गया, और अन्त में केवल प्रस्ताव पास करने वाली कांग्रेस राष्ट्र की सबम वहाँ कियाशाल राजनीतिक प्रतिनिधिसभा कैम बन गई इत्यादि का खिलत विवेचन इस लेख में किया गया है।

प्रगति नताओं के प्रयत्नों में जाग्रुति उत्पन्न होना लगी थी। मि० एम० को, जो सिपाही-विद्रोह का जमाना रम्य चुके थे वह भय हुआ कि कहीं यह असन्तोष सिपाही-विद्रोह की पुनरावृत्ति के रूप में परिणत न हो जाय। इस चार यह भी डर था कि अग्रजों शिक्षित सन्तुष्टय भी वहाँ उन का साथ न दें। इसीलिए उन्होंने ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता समझी, जिस में सरकार को जनता के आन्तरिक भावों का शान होता रहे और असन्तोष विद्रोह का रूप धारण न कर वैध-आन्दोलन में ही परिणत हो जाय। लार्ड डफ्रिन तथा अन्य अग्रज

सरकार के प्रति उत्पन्न असन्तोष को दवान के बजाय उस की ही नीति की निन्दा कर उन प्राग की उभारत है एकत्र होने के कर गक शक्ति बनाने तथा सरकार के नियर किनी भी प्रकार लाभप्रद नहीं है। तत्कालीन ५० पी० चम्बरन आकनेड न तो कांग्रेस में सहयोग को 'आग में खेलन' की उपमा दी। सरलिंग कांग्रेस के चोथे अधिवेशन में ही सरकार की नीति बदली। इलाहाबाद में सरकारी अधिकारियों न केवल स्थान-सम्बन्धी अनु-विधा ही उत्पन्न नहीं की, किन्तु यह भी कोशिश की कि मुसलमान कांग्रेस में सम्मिलित न हों। सर सत्यद भद्रमदलान न जो सिविल-सर्विस आन्दोलन में सुदृढता व वनजों का साथ दे चुके थे, कांग्रेस में मुसलमानों को अलग करने का प्रयत्न किया। तब में आज़ तक मुसलमानों को कांग्रेस के साथ मिलाने के कितन ही प्रयत्न किए गये, अनेक बार थोड़ी बहुत सफलता भी हुई लेकिन अब तक भी अधिकतर मुसलमान सरकार व सारप्रदायिक नेताओं के खगुल म नहीं निकल सके।

### असन्तोष का बीज

कांग्रेसी-नताओं न भी फूले सरकार की सहायता पकर

अधिकारियों न भी इस विचार में बहुत रुचि दिखाई। तत्कालीन राजनैतिक नेताओं—श्री सुदृढता वनजों, आनन्दमोहन बोस, दादाभाई नौरोजी तथा अन्य ई० प्रति-निधियों—को निम्नलिखित देकर १८८६ ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस को जन्म दिया गया।

### वापक नीति का प्रारम्भ

एकूडे दो तीन अधिवेशनों में सरकार न उस के साथ पूर्ण सहयोग किया, परन्तु शीघ्र ही उमे मादृस्य हो गया कि उन्व-शिक्षित भारतीयों को, जिस की सदायाकासा व अभिलाषा उसमें बहुत अधिक मागन की थी उस सरकार उन्व देना चाहती है और जो जनता में

समझा कि वह उनकी महाव्याका-क्षाओं का साथ देगी, परन्तु तीन-चार अधिवेशनों में उन्होंने जो जो मागें पेश कीं उन में न किसी की स्वीकृति न होता देख कर उनके विश्वास को टैस पडु हुआ। नैना-व्यय कम करने, नमक-का घटाने, भारत में भी सिविल-सर्विस की परीक्षा प्रारम्भ करने, जनता के प्रतिनिधियों को शासन में अधिक-धिक स्थान देने, प्राधिक निधि की जाच करने और रिटायर कर्मिल तोडु दन कालि के प्रस्ताव ही प्रायः प्रत्येक अधिवेशन में पास किए जाते थे। लेकिन सुनवाई एक को भी न होती थी। अब सरकार कांग्रेस के अधिवेशनों में भी बाधा डालन लगी थी। कांग्रेसी-नेतों में धीर-धीर सरकार में असन्तोष बढ़न

लगा और नताओं को सरकार की नीति व उद्देश्य में भी समझें होन लगा।

भारत-सरकार न निराश हो कर कामेस न मिटने में प्रचार करन का प्रियव किया। लखन में फासेस की शाखा खोली गई। दादाभाई नौरोजी पालमेंट के सदस्य बन और 'इण्डिया' नाम का पत्र भी निकाला गया।

कुछ सालों तक कामेस के इतिहास में कोई विशेष घटना नहीं हुई। प्रति वर्ष अधिवेशन होता और कुछ प्रस्ताव पास हो जाते। कामेस न सर्व साधारण जनता के साथ कोई सम्बन्ध स्थापित करन का प्रयत्न नहीं किया।

परन्तु जनता में असंतोष बढ़ रहा था। उधर सुगन्धनाथ, बाबा और गोखले लखन में बैल्वी कमीशन के सामन गवाही दे रहे थे, इधर दामा में लैली हुई प्लेग को रोकन के लिय सरकार न जो कठोरता धारण की, उसमें तीव्र असंतोष उत्पन्न हो गया। दो अमेज फासेस मार गए। बम्बई में बिक्टोरिया की मूर्ति तोड़ दी गई। सरकार न दमन शुरू कर दिया। जनता के हृदय-सम्पाद लोकमान्य तिलक को कैद कर लिया। दो सम्पादकों को देश-निर्वासन की सजा दी गई। इस समय युवक भारत में एक अग्रवर्ग उत्साह फैल रहा था। जो नता लीले और स्पष्ट शब्दों में सरकार की असोचका करता, युवक-दल उसकी खूब प्रशंसा करता। इन्हीं दिनों दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की समस्या भी कामेस में उपस्थित हुई और गांधी जी न दाम्भावेलेन शुरू किया।

#### असंतोष का जन्म

ऐसे अग्रवर्ग था, जब लार्ड कर्जन भारत में वायसराय बन कर आया। कामेस न १८८६ के अधिवेशन में उन का स्वागत करके उन न बढ़ी बढ़ी कामेस प्रकट की, किन्तु कुछ ही समय बाद उन माझुस हो गया कि लार्ड कर्जन दमन-नीति का हथियार लेकर भारत की राजनैतिक जागृति को कुचलन के लिय ही शायद कटिबद्ध हो कर आये हैं। लार्ड कर्जन न एक भारवम कामेस के प्रस्तावों को 'सोसायटि के उवाल' कह कर उन को हँसी उड़ाई। पर फिर भी इन दिनों कामेस की नीति में कठोरता व दृढ़ता नहीं पाई थी। प्रायः प्रायःक प्रस्ताव में ब्रिटिश सरकार की न्याय-प्रियता में विश्वास

प्रकट करते हुये उसकी न्याय-बुद्धि को जागृत किया जाता था। प्रायः प्रायःक अधिवेशन में एक प्रकार के प्रस्ताव पास किये जाते थे। बहुत से प्रस्ताव हर साल उदहराये जाते थे। पाठकों की जानकारी के लिये १८८६ के प्रस्तावों के विषय नीचे दिये जात हैं—

१—शासन और न्याय-विभाग का पृथक्करण, २—पञ्जाब के लगान का कानून, ३—ब्रिटिश सिपाहियों का कर्ष, ४—विमियम और मुद्रा, ५—सिविल मज्जिकल सर्विस, ६—समाचार सम्बन्धी कानून ७—स्थानीय स्वराज्य-सम्बन्धी सरकारी नीति, ८—शिक्षकों को राजनैतिक अन्वेलन में भाग न लेन की आशा, ९—आय कर, १०—कामेस का संगठन, ११—ब्रिटिश कामेस कर्मदी, १२—भद्रास और बम्बई का शासन १३—आय कर, १४—शुल्क कानून १५—सैनिक फाजेज, १६—यूरोपियन नौकरों के प्रत की पावनी, १७—गिला विभाग का पुनः संगठन १८—नमक कर की बुद्धि, १९—आसाम के मजदूर, २०—जूरी सिस्टम (जूरी का भारतीयकरण), २१—आय कर, २२—सिविल सर्विस की मारन में परीक्षा २३—देशी रियासतों के क्षुण्खलाने, २४—कला कोशल सम्बन्धी शिक्षा, २५—पंजाब कांसिल, २६—होग का ध्य, २७—दादाभाई नौरोजी पर चिन्तन आदि। इसी प्रकार के प्रस्ताव प्रायः प्रति वर्ष पास होते थे। यद्यपि अब इन की भाषा में कठोरता आन लगी थी, तथापि जनता पर इसका प्रभाव कम पड़ता था। कामेस केवल अमेजी शिक्षितों की ही सभा थी। विसय्वर की छुट्टियों में वे अपने काम-कर्मों से छुट्टी प्राप्त करे थे, परमागमन भायव सुन कर और प्रस्ताव पास कर के चले जाते थे। कामेस न जनता के साथ सम्बन्ध जोड़न का कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। इसलिये कामेस में वह बड़े प्रभावशाली व योग्य वक्ताओं के होते हुये भी वह सर्वसाधारण की चीज नहीं बन सकी थी।

#### अग्रमोष की ज्वाला

लेकिन लार्ड कर्जन की दमन-नीति और विरोध कर बंग-भंग न उस का भी अवसर मौन उपस्थित कर दिया। सब के बहुत विरोध करन पर भी उसन कलकत्ता व बम्बई की म्गुनिपलिटिण्डियों के अधिकार छीन लिए। अमेजी शिक्षितों के बहुत हुये प्रभाव को देख कर युनिवर्सिटियों पर भी कुडारप-

वात किया गया। 'युनिवर्सिटिज एक्ट' से नतीजों के लिये उच्च शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो गया। युनिवर्सिटियों पर सरकारी नियन्त्रण कर देन में भारतीयों का प्रभाव बहुत कम हो गया। उस का बहुत विरोध हुआ। शिक्षित लोगों में असंतोष फैल गया। उन्होंने समझा कि सरकार शिक्षा का विस्तार भी नहीं चाहती। १८९३ की कामेस के भाषणों में यह असंतोष प्रकट हुआ। समापति श्री लालमोहन घोष ने अपने जोरदार भाषण में युनिवर्सिटिज बिल की निन्दा करत हुये विभी दूरबार को 'एक फुल्ल तमाशा' बताया। सुप्रन्नाथ बर्माजी न 'युनिवर्सिटिज कमीशन के सम्बन्ध में कहा—'वे छिप कर बैठ, छिप कर ही फैसला किया, और मेरा खयाल है कि छिपे-छिपे ही छलंग भी हो गये।' १८९४ के अधिवेशन में वक्ताओं के भाषणों में और भी तेजी आगई। लार्ड कर्जन न कई भारतीयों की आलोचना कर दी थी। श्री सुगन्धनाथ न उसका बहुत कठोर शब्दों में जवाब दिया। 'इसमें पहले सत्राक के प्रतिनिधि न भारतीय जनता की निन्दा कभी नहीं की; यह हमारा जोर प्रथमान है। क्या परिणामवासी यूरोपियनों ने छोटे हैं? जापान से इसका उत्तर पड़ो। क्या भारतीय यूरोपियनों ने गिर हुए हैं? लार्ड जार्ज हैमिल्टन इसका उत्तर देगे। सचमे, क्या हम, जिनके पूर्वज जब वर्तमान यूरोपियन जातियां अग्रज और क्षम में पड़ी थीं सम्मता के शिलर पर पड़ु वे ये, नीच जातियों के हैं? क्या हम छोटी जाति के हैं, जिसके पुत्रों न संसार के एक सिर से दूसरे सिर तक घूम कर दो तिहाई विश्व को नैतिक प्रियता का पाठ पढ़ाव था?' मि० वाडिया न वायसराय के मिशन को 'शरावत मय' कहा।

अग्नि में घुताहुति-बंगभंग वंगभग न असंतोष की इस अग्नि में घुताहुति का काम किया। लार्ड कर्जन न इसके द्वारा जनता को खुला सैलेंज दे दिया। बंगभग का उद्देश्य उहां सरकारी भाषणों में 'शासन की सुविधा' बताया जाता था, वहां वास्तविक कारण यह था कि सरकार बंगाल में बढ़नी हुई राजनीतिक जागृति को नष्ट करना चाहती थी। पूर्वीय बंगाल को, जिसमे मुसलमानों की आबादी अधिक है, अलग करके मुसलमानों को हिन्दुओं से अलग करने का उद्देश्य स्पष्ट हो रहा था।

लार्ड कर्जन ने पूर्वीय बंगाल में घुम कर मुसलमानों को यह वतान का प्रयत्न भी किया कि यह सब तुम्हारे हितों के लिये किया गया है। बहुत ने भोले मुसलमान इस बहकाने में आ भी गये। पीछे ने जब बंगाल को फिर एक कर भी दिया गया, तब भी इस समय पैदा किया हुआ साम्प्रदायिक विद्वेष नष्ट न हो सका।

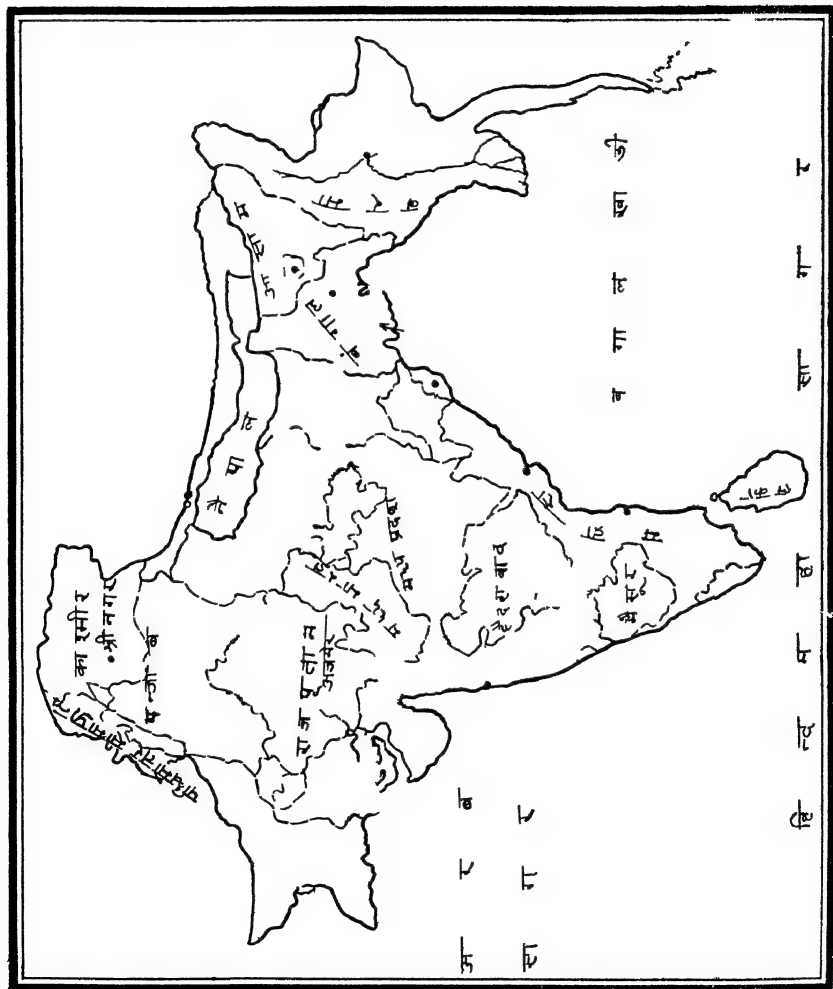
#### सैलेंज स्वीकार

बंगाल ने सरकार के इस सैलेंज को स्वीकार किया। सारे बंगाल में जागृति की एक लहर फैल गई। बच्चा-बच्चा सरकार की निन्दा करने लगा। दिसम्बर १८९३ के अक्टूबर १८९४ तक हिन्दुओं और मुसलमानों की २००० सार्वजनिक सभाओं में बंगभंग का विरोध किया



#### लोकमान्य तिलक

गया। पर सरकार के कानों पर जू नही गैरी। तब ७ अगस्त १८९४ की कलकत्ता की एक विराट सभा में बंगभंग के विरोध में ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी बूत-ओं के प्रस्ताव पास कर देश ने न केवल अपने असंतोष का विराट प्रदर्शन किया, बल्कि राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक नये कांसिकारी आध्याय का आरंभण भी किया। बंगभंग के दिन १६ अक्टूबर को सार बंगाल में दृढ़ताल की गई। जनता न उस दिन वृत्त रखा, स्वदेशी गीत गाये और एक दूसरे की कलाई में राखी बांधी। 'वन्देमातरम्' गीत सब का मन हो गया। राष्ट्रीय शिक्षा का भी सुत्रपात किया गया। कई राष्ट्रीय शिक्षणालय खोले गये। बंगाल की यह लहर केवल उसी तक सीमित न ठेरी। लोकमान्य तिलक भारत केरे पञ्जाब लां लाजपतराय के प्रयत्नों ने महाराष्ट्र और पंजाब में भी राष्ट्रीयता के एक नये युग का मधुमौल हो गया। स्वदेशी का वृत्त लाखों लोगों ने









साहयन-कमीशन की बलि



पंजाब केमरी पर लाठी-शरार के चिन्ह

लिया गया। इसने गरम दल कांग्रेस से अलग हो गया और आज तक नहीं मिला।

### महात्मा गांधी का नेतृत्व

गुप्तिय म० गांधी इस समय तक चम्पारन व खन्दा में अपने अधिसायक सत्याग्रह द्वारा दो विजय प्राप्त कर चुके थे और प्रति वर्ष कांग्रेस के अधिवेशन में भी सम्मिलित होना था परन्तु उन्होंने सम्पूर्ण देश का नेतृत्व १९१६ में ही अपने हाथों में लिया। सार देश क विरोध करने पर भी सरकार ने १० मार्च १९१६ को लैटिड निल पास कर दिया था। म० गांधी ने इस विरोध में सत्याग्रह का घोषणा की। सार देश में अग्रज उत्साह का संचार हो गया। १९०६ में कलकत्ता में जो जागृति हुई थी वह अग्र सार देश में फैलन लगा। सर्वसाधारण का नामस के साथ ऐसा सम्बन्ध था एक नेता क नलच में इतनी जागृति अग्रजुत्तु थी। ई अग्रज को हलाल विजय मनान की घोषणा की गई। परन्तु दिल्ली में ३० मार्च की ही हलाल हो गई। उल्लिखित जनता पर पुलिस ने गोलीया जलाई। सम्भव था कि

उपद्रव हो जाता, पर स्वामी अग्रजलन्ध की प्रत्युत्पन्नमिता के कारण उपद्रव न हुआ। उस समय दिल्ली में जो विराट प्रदर्शन हुआ वह भारत क इतिहास में अग्रज दृश्य था। हिन्दू और मुसलमानों की पक्ता का स्वर्णोप दृश्य भी दिल्ली न देखा। पंजाब में भी यही हो रहा था। पंजाब-सरकार इस जागृति को सहन न कर सकी। पंजाब में मारगल ला जारी कर दिया गया। इस प्रसंग में जलियावाला बाग की घटना घटना हुई जिसन सार भारत क हृदय को दहला दिया। सम्पूर्ण भारत में अग्रजलन्ध की नीच अग्रि प्रज्वलित हो उठी। विजय-कवि रवीन्द्र न इसके विरोध-स्वरूप सर की पदवी लाना दी।

पंजाब डिग्र-मिन्न हो चुका था। ऐस समय स्वा० अग्रजलन्ध और प० मोतीलाल नहक न जाकर पंजाबियों को सार राय की ओर न सामन्या दी। अग्रजलन्ध क प्रयत्न म ही अग्रजलन्ध के कांग्रेस भी हो सकी। इसम म० गांधी क प्रयत्न म मादन् रिपोट को स्वीकार कर लिया गया। उसने सार-पाच दिन पूर्व डिग्र-सरकार न जलियावालाबाग-जाच कमीटी

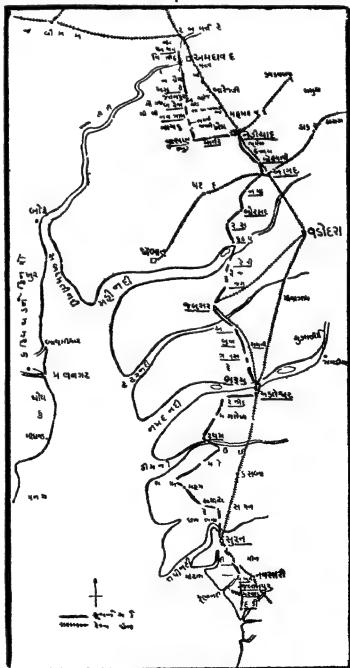
बिदारी थी और राजनैतिक कैदियों को छोड़ने का हुक्म दिया था। इसी कांग्रेस में म० गांधी न खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमानों का साथ दिया।

अग्रजलन्ध कांग्रेस की एक विरोधता और भी थी। स्वाभिमानी स्वा० अग्रजलन्ध न राष्ट्रभाषा हिन्दी में भाषण दिया और सामाजिक-सुधार व अग्रजलन्ध-निवारण आदि पर कांग्रेस क प्लेटफार्म से जोर दिया। म० गांधी न बाद में यही सामाजिक कार्यक्रम अपना लिया।

### फिर भाग — असहयोग

स्थिति शांत हो चली थी। सुधार स्वीकार कर लिए गए थे। कलकत्ता खिलाफत का प्रश्न जरूर जोरो पर था। परन्तु इसी समय इस्टर कमीटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उस न इस्टर का समर्थन किया था। देश में फिर आग लग गई। अग्रजो की स्वाभिमानीता में सदा न विश्वास रखने वाले महात्मा गांधी न सरकार को

'मैतानी दृष्टिकोण' कहा। उन का सरकार पर से विश्वास उठ गया और वह अब तक नहीं बैठा। म० गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने कलकत्ता के विशेष अधिवेशन में असहयोग की घोषणा कर दी। लोग धनार्थक सरकारी पदवियों छोड़ने लग, स्कूल व कलेज विद्यार्थियों में कांसी होन लगे, अदालतों में उल्लू बोलने लगे, कौंसिलों और बिदेसी माल का भी बहिष्कार किया गया। कांग्रेस की शक्ति बढ़ती गई। सरकार व्याकुल और चिंतित हो उठी। 'मिस आर्क वेल्स' के भारत आन एक उनका जो सफल बहिष्कार हुआ उन देव कर वह आगे से बाहर हो गई। कांग्रेस का स्वयं-सेवक दल गैरकानूनी करार दिया गया। कांग्रेस न इसी प्रश्न पर सत्याग्रह शुरू कर दिया। अली-बन्धुओं क नेतृत्व में मुसलमान भी पूर तौर से इस आन्दोलन के साथ थे। नागपुर की कांग्रेस ने सत्याग्रह का समर्थन किया और अधिसायक उपायों में स्वरज्य-प्राप्ति को अपना म्यैय बना लिया।



इसकी पन्ना का माग

हस्त सत्यम् स्रक्कार के विरुद्ध इतना व्यापक असन्तोष था कि सम्भव था, जन्ता उत्संजित हो जाती, परन्तु महात्मा गांधी के अहिंसा-प्रचार ने देश को रक्तपात से बचा लिया। देखकर बुद्धिमानों का स्रक्कार और त्यागमूर्ति पर मोतीलाल नेहरू अपनी लाखों की बकायान छोड़ कर इस संग्राम में आ कूदे। आन्दोलन बढ़ता गया।

सरकार ने दमन-चक्र उठाया। खिलाफत के नेता गिरफ्तार किये गये। २०,००० सत्याग्रही स्वयंसेवक भी जेल में भेज दिये गये। देशबन्धु-दास भी गिरफ्तार कर लिये गये।

पढ़ गया। लोगों में उनसाह शिथिल हो चुका था। महाप्राचीय नताओं में कॉन्सिल-प्रेषण की कार्यक्रम आपनान की सलाह दी। देशानुवास व मोतीलाल नेहरू न स्वराज्य पार्टी कायम कर ली। इस के बाद फ मिताहास बहुत ताज है। धमी लोग उमें न भूटे होंग। किस तरह अप्रवर्तनवादियों और स्वराज्य पार्टी में अगुआ हुआ, किस तरह महात्मा जी भीमर हो कर जेल में डूटे, किस तरह उन्होंने साथी बागदोर स्वराज्य पार्टी के हाथ में सौंप दी, स्वराज्य पार्टी न असत्यशी और कसिलों फ केम

मैं एक जलूस का नेतृत्व करते हुए  
पंजाब-केसरी ला० सावतणपथ पर  
लाठी-झड़ा हुआ। जिसका धक्का  
झाड़ने के कथनादुराज उन के  
देहान्त का प्रधान कारण हुआ।  
सामान-भ्रमंजित के मुकाबले  
मे स्वयं राजनैतिक वलों न मिल  
कर पहिले मोतीलाल नहड़ के  
नतृत्व मे शासन-विधान की एक  
योजना तैयार की, जो नेहरू-रिपोटों  
क नाम से प्रसिद्ध हो गई। कलकत्ता  
कांग्रेस न सखर की एक वर्ष की  
मोहलत दी कि वह औपनिवेशिक  
स्वराज्य दे दे, अन्यथा कांग्रेस पूर्ण  
स्वतन्त्रता की माग करगी। इस

सत्याग्रह

इस के बाद १९३०-३१ में डाडी-  
याभा में श्रीगणेश काके सत्यवाद्  
संग्राम हुआ। वह कुछ या कम  
सत्याग्रह, इस पर कुछ लिखा  
पाठकों की स्तुति-शर्क का भ्रामण  
करता है। गांधी-ग्रन्थिन्म सम्मर्शन  
के रूप में कांग्रेस न अपना विचार  
मार्ग। फिर गांधी जी न गोलमज्ज  
कायकरा में कांग्रेस की ओर न  
क्या झरोपे की, उन के भागन  
य लाइन में पूर्व हो सक्कर न  
किस तरह दमन-नोति का प्रयोग  
तुल्य हाथों करु का विया, किस  
खुद हाथों खुश न गांधी जी

माइमन कमीशन के अध्यक्ष



म्याइमन कमिशन को रिपोर्ट का जवाब देने वाले



स्वराज्य पार्टी के नायक



सर जोन साइमन

पं० मोतीलाल नेहरू

देशबन्धु विस्तराज्यन दास

षष्ठमदानन्द काविले ने मोर जौरे  
 ते प्राणोदने चलान का निष्पन्न  
 कर मो गाँधी को निश्चिन्त कर  
 दिया। काविले सब वास्तोरी की  
 लसना न रही थी, सब कसे भ्रमरों  
 की प्रथमतया थी। मो गाँधी एही  
 वाद देश के निरंकुश सत्तावाद  
 निम्ने गये। अस्तव्यस्त ने वादोलो  
 ने लगातारबन्दी के तार्यजलिक सत्या-  
 ग्रह का निष्पन्न करके ६ फरवरी  
 १९२२ को सरकार को भी सुचना  
 दे दी। लेकिन इही समय चौरी-  
 चौरा का हत्याकाण्ड हो गया।  
 मो गाँधी ने देश को 'उत्तरी' का  
 हुस्न दे दिया। मेमोपति ने कहा  
 कि देश भूरी आत्मसत्ताक सत्याग्रह  
 के लिये तैयार नहीं है। देश में कुछ  
 संस्थापना फैल गई, पर क्या करना,  
 निरपेक्ष की भाषा थी।

### स्वराज्य-पार्थी का जन्म

सरकार ने मौका पाकर गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया। उन के जेल जाते ही सत्याग्रह दीला

कब्जा किया, यह आज भी सच को याद है। देश की राजनैतिक दशा खराब हो चली थी। हिन्दू-मुसलिम विद्वेष चरम सीमा पर पहुँच गया था। एक भद्रान्वय मुसलमान ने स्वामी अश्वत्थाम् की हत्या कर स्थिति को और भी विषम कर दिया। कांग्रेस ने हिन्दू-मुसलिम समस्या के हल के अन्तर्क यत्न किये, किन्तु उमें सफलता न हुई। कांग्रेस का प्रभाव एक बार निर देश पर न रहा।

### साइमन-कमीशन

लेकिन इसी समय सरकार ने  
साहमन-कमीशन नियुक्त किया,  
जिसमें एक भी भारतीय नहीं रहा  
था। सारे देश में इस के विरुद्ध  
तीव्र आन्दोलन उठ चढ़ा हुआ।  
गरम, गरम समीचीन दल मिल गये,  
हिन्दू मुसलमानों का विभेद भी  
बहुत कुछ कम होया। साहमन-  
कमीशन का देशव्यापी बहिर्काण  
हवा। इसी बहिर्काण के सिलसिले

समय तक प० जवाहरलाल नेहरू क नृत्व मे कांग्रेस में युवक-दल को प्रधानता हो चुकी थी। सरकार न कांग्रेस की माग पर ध्यान न दिया। इसका फल यह हुआ कि लाहोर मे मि० ह०म द्वारा स्थापित श्रीर वायसरय द्वारा भारीवांद्-प्राप्त कांग्रेस न युवक-नता जवा-



**લાર્ડ અર્વિન**

हरालाल के सभापतित्व में ब्रिटिश साम्राज्य में संबंध-विच्छेद कर पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

मिलन स भी इन्कार कर दिया और कांग्रेस को विघटन हो कर सत्याग्रह करना पड़ा, वृत्ते में कैमै समूहिक सत्याग्रह वैयक्तिक सत्याग्रह के रूप में बदला गया और डाब पटना में कांग्रेस कमेटी न सत्याग्रह वापस ले कर कांसिल-प्रवेश का कार्यक्रम कैमै स्वीकार किया गया, यह सब किसी म बचवित्त नहीं है।

इस लेख में संक्षेप में हमना  
काफ़ेस का क्रमिक विकास बताता  
का यत्न किया है। काफ़ेस किस तरह  
उच्च-शिक्षितों की वाद-विवाद-सभा  
में देश की ओर से सब अधिकारों  
के स्वातन्त्र्य-संग्राम करने वालों  
युद्ध-सभा बन गई, इस का सचित्र  
परिचय इस लेख में मालूम होगा।  
परमात्मा करे कि यह काफ़ेस अधि-  
काधिक गतिशीलताओं होकर अपने  
वर्धन में सफल हो।

# प्रजातन्त्र का दैत्र

(लेखक—श्री आसफअली बार-ए-ला)

मि० आसफअली बार-ए-ला उन सार्वजनिक कार्यकर्ताओं में हैं जिनका लोकप्रियता और प्रसिद्धि सार्वभौमिक हो रही है। काग्रस पलमेसरोपी बोर्ड के आप मुख्य कार्यकारी में से हैं।

इस लेख में आप बताया है कि प्रजातन्त्र क्या है और उसका मनुष्य की व्यक्तिगत और सामाजिक स्वतन्त्रता के साथ क्या सम्बन्ध है। इस समय जब देश राजनिति और स्वरूप को जवाँ कर रहा है और मनीषी होगा।



आतन्त्र का अर्थ प्रायः हम शब्दों में ही जिस की नींव लोकमत पर स्थापित हो। अगर कोई राष्ट्र तन्त्रक व राष्ट्र बन सकता है और नहीं कोई उन्नति कर सकता है जब तक कि उस के साधारण लोगों की अवस्था ठीक न हो — अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति करने व स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन व्यतीत करने का पूर्ण सुविधा प्राप्त हो न हो।

आदि-काल में मनुष्य पशुओं की भाँति जंगलों में जीवन व्यतीत करता था। समयता के युग में वह विभिन्न समूहों में विभिन्न वर्गों पर रहा उस न आपस में मिल-जुल कर रहना सीखा और धीमे धीमे उपज व प्राकृतिक शक्तियों में ह्रासता लेकर अपने मानसिक व शारीरिक परिश्रम में एक नयी सभ्यता की बुनियाद डाली। इसी समय उस न व्यवस्था जिसे हम सभ्यता का प्रथम व अंतिम कदम कह सकते हैं — पैदा का। इस व्यवस्था में यह नियम था कि सब प्रथम उन लोगों का श्रेष्ठ हारा हो जो शारीरिक व मानसिक शक्तियों में सुसज्जित न। रक्षक व परिवार काल और उन के समर्थ पदा हुए। तदनन्तर परिवार तथा काला में एकता स्थापित हुई और राष्ट्र बन। एक राष्ट्र प्राचीन काल में और राजाशाही काल में सम्राट व सा आन्यवाद का जन्म था।

इस युग में पहले पहल कुछ बुद्धिमान लोगों ने शासन व्यवस्था में राजा का अधिकार प्रत्येक के बल पर शासन किया। शन शन अब प्रकृति व विद्वान लोगों का

दायर विस्तृत हुआ तो कुछ विद्वानों की जगह ज्ञाना निमाग न लेला, और होत-होत अब जिस युग से हम गुजर रहे हैं। उसमें प्रजातन्त्र प्रचुरता पतनित व फैलित हो गया है। प्रायः सब राष्ट्रों का नींव लोकमत पर रखी जा चुका है। यद्यपि यूरोप में प्राचीन परिधि की भाँति आज भी तानाशाह (डिक्टेटर) हमलावर होत हैं अगर यह सब लोकमत की राजमन्दी में एकन्याय शासन करत हैं।

आखिर यह प्रजातन्त्र क्या है ? यह तो इतिहास को कहाँ लाना है अगर सिद्धान्त प्रजातन्त्र की असला बुनियाद जसा कि उपर कह गया है हरेक मनुष्य के निम्न लिखित जन्मसिद्ध अधिकार पर अवलम्बित है—

(१) हम अपनी मानसिक व शारीरिक शक्तियों को उन्नत करने का उतना ही अधिकार है जितना किसी दूसरे मनुष्य का — चाहे वह भी हो या पुरुष काला हो या गोरा एक पत्र का हो या दूसरे धर्म का

(२) शासन-व्यवस्था संवसारा राष्ट्र का राष्ट्र व राष्ट्र उनका अधिकार है उन्नति के लिये हमला चाहिये,

(३) इसलिये प्रत्येक हम राष्ट्र को जो हम नियमा पर कायम हो उन में बदलन का सत्सत्तावाच्य का हक है।

दूसरे उपरान्त यह प्रश्न पैदा होता है कि वास्तव में स्वतन्त्रता का अर्थ क्या है। स्वतन्त्रता जहाँ पर कमलिद्ध अधिकार है वहीं प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्रता दूसरे आश्रितों के आश्रित भी है क्योंकि सब को एकसा स्वतन्त्रता

का अधिकार है। अर्थात् स्वतन्त्रता का यह तात्पर्य नहीं कि एक आदमी जो चाहे करे खाहे इसमें दूसरे के स्वतन्त्रता के अधिकार का आप हस्तक्षेप न हो जाय। इसलिये उन देशों में जहाँ स्वतन्त्रता का शीर्षक है उजाग्र हम के कि लोग जो चाहे करे व कबल वहीं कर सकत हैं जिसमें दूसरों का हक न मारा जाय। उदाहरणतः प्रत्येक व्यक्ति को हक प्राप्त है कि वह दिन भर के परिश्रम के बाद रात को आराम में सोय। इस के यह अर्थ हैं कि हरक मनुष्य को हम न कम न अधिक आराम से सोन का पूरा अवसर है। अतएव प्रत्येक पेशेवाली का कर्तव्य है कि वह १० या ११ बजे के बाद गुल-पापा मामोफीन हारमोनियम आदि का बजाना रात को रुक कर ताकि पेशेवाली आराम में सो सके। इसी तरह प्रत्येक आदमी को अधिकार है कि वह किन्हीं के नियन्त्रण और जो पहले जाय उन हक है कि वह किन्हीं पर पास कहा हो। दूसरा को जो वार में जाय यह अधिकार नहीं कि पहले में जो किन्हीं पर पास खड़े हैं उनका पीठ हार कर स्वयं आग में जाय इत्यादि। या यह कि यदि एक आदमी का किसी दूसरे का तत्कार हो और नोबत हो जाय तब तब तक तो कबल उन्हीं दो व्यक्तियों को लक्ष कर फैसला कर लन दिया जाय और दूसरे कबो की भाँति नाय फाय करके एक या दूसरे का साथ न दे।

इस प्रकार स्वतन्त्रता जहाँ एक उम्मा वस्तु है वहाँ दूसरे पान्दिया भी सतत है। अगर यही वह हालत है जिसे कवि न स्वर्ग से उपाया दी है —



यह लेख पाठक का लिये उपयोगी

बिहित आजा कि अज्ञान में बाध, कनिरा बाकले कार न बाध।

इस स्वतन्त्रता के साथ ही लोकमत का इतना अस्तर होता है कि मनुष्य प्रत्येक कार्य लोकमत के मातहत करता है। अर्थात् यदि बहुमत यह चाहता है कि काली गोपिया विशेष तर्ज की पहनी तो आजाद मनुष्य बाधजूद इसके कि जो चाहे पहने सर्वसाधारण की राय से प्रभावित होकर विशेष प्रकार की काली गोपी ही पहनता है और अपनी दपली व आपन राय की कदाचित् चरितार्थ नहीं करता। मतलब यह कि लिबास आदि मामलों में भी वहाँ हद तक राष्ट्रीय समानता होती है।

प्रजातन्त्र का पहला तत्त्व यह है कि शासन-व्यवस्था सर्व-साधारण की राय में कायम हो। हम इस सम्बन्ध में भी लोकमत अपना दृष्टिकोण करता है कि किन लोगों को बहुमत मिलता है ? फिर यह भी क्यास आवश्यक ही होता है कि बुनिया कबल राय न नहीं चलती बल्कि व्यवहारिकता का भी क्यास रचना पकता है। उदाहरणार्थ चाहे बहुमत का एक विधि विचार हो — अगर विरोधियों की संख्या यदि इतनी बड़ा है कि उसके विरोध का ध्यान न रखन स योगे व मुसोफा का सम्मान हो तो नहुमत वाले परिस्थितियों के अनुसार कार्य करत है। अर्थात् यदि १०० आश्रितों में ५१ एक आश्रित ही तो यद्यपि ४९ विरोधी पक्ष में होंगे — अगर उनकी राय का बोझ इतना बड़ा होगा कि ५१ आसानी में उन के खिलाफ न जायगे। योहें हैं यह सब व्यावहारिक जीवन के मातहत हान हैं और यद्यपि मूल लोग रोपी पर न लगे और डुक पर न करन को तैयार रहत हैं — अगर राष्ट्र समीर होत हैं और व लोक-समर्थ कर फैसला करत है।

व्यक्तिगत एवं सामूहिक या राष्ट्रीय अधिकार प्राप्त होकर प्रजातन्त्र स्थापित करने के अनेक तरीके हैं—अगर यह सब शारीरिक सर्वसाधारण की राय में व्यवहार में लाय जाय हैं। यह अधिकार सब के लिये समान है। किसी को किसी पर लगजोह नहीं दिया जाय इस के प्रत्येक व्यक्ति का अपनी शारीरिक व मानसिक शक्ति तथा योग्यता विधान का पूरा अवसर मिलना चाहिये। यदि ऐसा कायम न हो तो हरेक आदमी बिना शारीरिक व मानसिक परिश्रम के दूसरों



नाम कि कल  
यात्रा-काल-स्नान-  
पूजा से निकट,  
तिलक लगा पी-  
ताम्बर पहन  
सजाऊ पाव मे  
काल, बगल में घना वस्त्र हाथ में  
मोटा सा शम्भू-भस्त्रक-भजन ले  
एक अजमान के घर चला। विवाह  
की साहस विचारणी थी। कम न  
कम एक कलदादा का होल था।  
जलपान ऊपर से। और मेरा जल-  
पान माथुली जलपान नहीं है।  
बाह्य भी तो मुझे निमित्त करने  
की हिम्मत ही नहीं पसंदी। उनका  
महान भर का माया मेरा एक दिन  
का जलपान है। इस विषय में तो  
हम अपने नेटों साहसिकों के बायल  
हैं। ऐसा खिला है, ऐसा खिला है,  
और इतने खुले मन में कि जोला  
भाननिष्ठ हो उठता है। अजमान  
का दिल वेक कर ही मैं उसका निम-  
न्त्र स्वीकार करता हूँ। खिला  
समय किसी न रोमी सूरत नवाई  
और मरी लूपा गाथन हुई। रोकर  
किसी न खिलाया तो क्या? ऐसा  
मोहन कम मे कम मुझे नहीं पचता।  
अजमान ऐसा चाँदिय कि लला-  
रता जाय — तो शास्त्री जी एक  
बातुसाही और, और मैं कहता  
जाऊ — नहीं अजमान, अब नहीं।

रात को खूब वर्षा हुई थी।  
सक पर जगह जगह पानी जमा  
था। मैं अपने चिचारी में मगन  
चला जाता था कि एक मोटर  
छप-छप करती हुई निकल गई।  
छुड़ पर झूँटि पड़े। जो देखता  
ह, तो धोती पर मानो किसी न  
कीचड़ बोल कर बल दिया हो।

के परिश्रम का फल खान को नैवार  
रहेगा और इज्जती सालों में बना  
हुआ सभ्यता का भवन गिर जायगा  
मनुष्य पशुओं के जीवन व लक्ष्य  
पर कयर बाध लेगा। बिना मान-  
सिक व शारीरिक परिश्रम किए  
किसी व्यक्ति को जीवन की सुवि-  
धाएँ प्राप्त करने का कोई हक नहीं है  
और जो आधुमी दूसरों की  
महान को अपने शायम का  
जर्जिया बनाते हैं उन्हें आकाशबल  
से उधमा दी जा सकती है जो  
हरे-भर दुर्गों को खा-खाकर सुखा  
देती है। ऐसी 'आकाश बल' को  
मनुष्य की सम्प्रदाय काग में कोई  
स्थान नहीं मिल सकता।

अतः मे यह प्रश्न उठता है कि  
मानसिक व शारीरिक परिश्रम का  
फल क्या होता है? उभिया न



## मोटर के छींटे

पेदल चलाने वालों के कपड़े खराब करने हुए सपर मोटर  
आइना वालों को हमारे हजारों पाफ़ा न कमा न अभी दिल में  
अवश्य गालियाँ दी होगी। परन्तु इस कथक द्वारा उन्मास सभा में  
प्रमत्तव्यजी न ऐसे नवाब क नानियो का जो इलाक उताया है  
उन यद्यपि हमारे पाठक बहुत पसंद करेगा तथापि हम इसे यह इलाक  
करने से पूर्व खूब सोच-समझ लेने की सलाह अवश्य देंगे।

कपड़े भूषण वह अलम, नेह  
भूषण हूँ वह अलम आर्थिक सति  
जो हूँ वह अलम। अगर मोटर  
वालों की एक पाला तो ऐसी मर-  
ममत करता कि वह भी याद करत।  
मन मसोस कर रह गया। इस  
वष में अजमान के घर नो जा नहीं  
सकता था अपना घर भी माल  
भर न कम न था। फिर आन-जान  
वाले सग मरी  
आर मर-मर  
करतालिया बजा  
रहे थे। ऐसी  
मरि मरी कभी  
न हुई थी।  
अन करीम मन?  
वर जावेग तो  
पटिलातल  
कहेगी?

मैन चटपट  
अपन बनैय का  
निचयन कर लिया।  
इधर-उधर में  
वस-बाहर पथर  
क टुकड़े बंदोर  
लिंग और दूसर मोटर की राह  
देखन लगा। ब्रह्मतल सिर पर बट



(ले—प्रमत्तव्यजी)

इस का जवाब अनेक प्रकार में  
दिया है। साधारणतः मानसिक  
परिश्रम को शारीरिक परिश्रम में  
अन्त्या माना जाता है चाहे वह  
किसी शकल में हो। अतः आन  
रुस में भी, जहां हरक आधुमी  
को पूरी बरपारी का दावा है और  
जहां प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मान  
सिक् व शारीरिक उन्नति करने की  
सब सुविधाएँ प्राप्त हैं शासन-सच  
का प्रधान स्थान है जिस की  
विमांगों महान को दूसरों की  
दिमांगी महान व युवावने में  
उत्तम स्थान दिया जाता है।

इन सीमाओं के अन्तर्गत प्रजा  
को पूर्ण अधिकार है। वह  
शासन-व्यवस्था को लोकमत व  
लोक-हित की नींव पर कायम कर।

बैठा। अभी वस मिनट सा न गुजरे  
हो कि एक मोटर आनी हुई  
विलाई थी। ओहो! बड़ा मार  
थी। शायद स्वामी को मर-म  
लेन लाने लगी थी। ओहो! समाप  
और मैं एक पर-पर जलाया भर  
पर जोर लगा मर-मन। नाह  
न गोपी उठ कर सड़क क उस  
बाजू पर गिरी। मोटर का चाल

धामा हूँ। मन  
मर-मर किया।  
निद्रा का क शास्त्र  
दूर दूर हो गय  
आर एक टुकड़ा  
साहज उठाए  
क गाल में भी  
लगा। खून बहन  
लगा। मार  
रना आर साहज  
उतर मर मर  
तरफ आय और  
वूसा तान मर-  
मर। तुम  
हम तुम को  
पुलिस में गंगा।  
इतना सुनना न

कि मैं पो-पो-पता जमान पर फका  
और पकड़ कर साहज की कमर  
आधी लगाई तो कीचड़ में भद  
मे गिर। मैं चट सवारी गादी और  
गारन पर कम पचीस रहे  
ताम-नोब जमार कि बांधिया गय।  
इतने में उनकी पत्नी जी उतर  
आई। ऊन की जूता जूता रंगीनी  
साबा गालों पर पाइटर ओगे  
पर रम भावों पर स्थानी दुखे  
लान नोदने लगीं। मैं साहज  
को छोड़ दिया और उड़ा समालता  
हुआ बोला — देवी जी आप  
मर-मर कीचड़ में न पड़े कहीं चो  
वर आ जाय तो मुझे टुकड़ा होगा।

साहज न अवसर पाया तो  
समल कर उठ आर अपने बुरान  
पैरों में मुझे एक ठोकर जमाई।  
मर-मर में कभी चोट लगा। मैं  
बांखला कर उठता उठा दिया आर  
साहज के पाव में जमा दिया। उट  
पैरु की तरफ गिरे। मेरा साहज

छुतरी तान कर बोधी। मैं भी न  
उनकी छुतरी छीन कर फेंक दी।  
डादर अभी तक ठा था अब  
वह भी उतरा आर दुखा ठेकर मुक  
पर पिल पका। मैं एक डगन उस  
क भी जमाया लोप गया। एवालों  
आधुमी नमाशा मन्मज जा होय व।  
साहज भूमि पर पड़े पड़े बोले —  
रेखल हम तुम को पुलिस में  
गे।

मैं फिर उड़ा समाला और  
बाहता था कि पोपकी पर जमाऊ  
कि साहज न हाव जोड़ कर कहा —  
नहीं नहीं बाबा हम पुलिस में  
नहीं आया। माफ़ी मे।

मैंने कहा — हाँ पुलिस का नाम  
न लेना नहीं वही लोपणी रंग  
रूपा। बहुत हो गई महीन की  
झूठा जो जयागी मार तुम्हारी  
आवन हुआ दुगा। मोटर चलत  
हो तो भी उठत चलत हो मा  
घन न अर्थ हो नात हाँ सामन  
या उगल न कीन ना रहा हँ उसरा  
पान न नही रचन।

एक वृक्ष न आलोचना की—  
अ मगान मोटर वाट जल-  
बुध कर डीट उगल है आर उर  
आरमा लभ्य हो जाता ह ता  
सउ उसका तमाशा रचन है आर  
खर सन हँ। आप न वग अछा  
किया कि एक को ठीक कर दिया।

मैन साहज का ललकार कर  
कण — खुला ह डुख जन्ता क्या  
करता ह। साहज न उस आवमी  
का और लाल-लाल आँखों में न  
कर कहा — तुम भट बोसता है,  
गिलबल न फू-पोसता है।

मैन उगा — अभी तुम्हारी  
हेकरी कम नहीं हुई, आऊ फिर  
आर व एक सोप सस क?

साहज न विधिया कर कहा—  
अ नहीं बाबा सब मालता है  
सब बोसता है। अत ना खग  
हुआ।

दूसरा वृक्ष बोला—आधुमी जो  
चाहे कष्ट लकित पोधी गंधी पर  
उठ फिर वही हरकत शुरू कर देंगे।  
गांधी पर उठत ही सब अपने को  
नमाज का नात समान लगन ह।  
नस महारय मोर — इस प  
कलिय थक कर ना।

तीसरा मगन न कहा — नहीं  
कान पर न उगाय न पन।

चौथा बोला — और डादर  
का भी। यह सब आर उमम  
होत है। मासमन का भी  
धमक कर तो एक बात हँ तुम  
किस बात पर अकबत हो। कन्वर

हाथ में लिया और धीमे से परखा पड़ा।

मैंने वह प्रस्ताव स्वीकार किया। झावर और मालिक दोनों ही को कान पकड़ कर उठाना-बैठाना चाहिए। और मेम साहब मिलें। सुना मेम साहब तुम को गिनना होगा। पूरी सौ बैठकें। एक भी कम नहीं, ज्यादा जितनी चाहे हो जायें।

दो आदमियों ने साहब का हाथ पकड़ कर उठाया, दो ने झावर महीदय का। झावर बेचार की डाग में बोट थी, फिर भी वह बैठकें लगाने लगा। साहब की प्रकृष्ट अभी काफी थी। आप लेट गये और ऊल-अलू बकन लगे। मैं उस समय रुद बना हुआ था। दिल में ठान लिया कि इस से बिना सौ बैठकें लगवाए न छोड़ूंगा। चार आदमियों को हुक्म दिया कि गाड़ी को डकेल कर सड़क के नीचे गिरा दो।

हुक्म की देर थी। चार की जगह पचास आदमी लिफट गये

और गाड़ी को डकेलने लगे। वहाँ सड़क बहुत ऊँची थी। दोनों तरफ को ज़मीन नीची। गाड़ी नीचे गिरी और टूट-घाट कर डेर हो जायगी। गाड़ी सड़क के किनारे तक पहुँच चुकी थी कि साहब काँल कर उठ खड़े हुए और बोले — बाबा, गाड़ी को मत तोड़ो, हम उठें-बैठेंगे।

मैंने आदमियों को अलग हट जाने का हुक्म दिया। मगर सबों को एक चिह्नी मिल गई थी। किली ने मेरी ओर ध्यान न दिया। लेकिन जब मैं डंडा ले कर उन की ओर दौड़ा तब सब गाड़ी छोड़ कर भागे। और साहब ने आलस बन्द करके बैठकें लगाना शुरू कीं।

मैंने दस बैठकों के बाद मेम साहब से पूछा — किली बैठकें हुईं।

मेम साहब ने रोष से जवाब दिया — हम नहीं गिनता।

‘तो इस तरह साहब दिन भर कासले रहेंगे और मैं न छोड़ूंगा।’

अगर उन को कुशल से घर ले जانا चाहती हो तो बैठकें गिन दो। मैं उन को रिहा कर दूंगा।”

साहब ने देखा कि बिना दबाइये जाने न बचेगी, तो बैठकें लगाने लगे। एक, दो, तीन, चार, पाँच।

सहसा एक दूसरी मोटर आती दिखाई दी। साहब ने देखा और नाक रगड़ कर बोले — पंडित जी आप मेरा बाप है। मुक पर दया करो, अब हम कमी मोटर पर न बैठेंगे। मुझे भी दया आ गई। बोला — नहीं, मोटर पर बैठने से मैं नहीं रोकता, इतना ही कहता हूँ कि मोटर पर बैठ कर भी आदमियों को आदमी समझो।

दूसरी गाड़ी तेज़ चली आती थी। मैंने धराया किया। सब आदमियों ने दो-दो पत्थर उठा लिए। उस गाड़ी का मालिक स्वयं झावर कर रहा था। गाड़ी घायमी करके धीरे से सरक जना चाहता था कि मैंने बड़ कर उस के दोनों

कान पकड़े और लूट और से लिखा कर और दोनों गल्लों पर एक-एक पड़ावा देकर बोला — गाड़ी से कूटि न उड़ाना करो, समझे। चुपके से चले जाओ।

यह महीदय बक-भक्त तो करते रहे, मगर एक सौ आदमियों को परवर लिये खड़ा देखा, तो बिना कान पकड़ डुलिये चलते हुए।

उन के जाने के एक ही मिमिट बाद दूसरी गाड़ी आई। मैंने १० आदमियों को राह रोक लेने का हुक्म दिया। गाड़ी रुक गई। मैंने उन्हें भी टोकने दिया और चार पड़ावे देकर बिदा किया। अगर, यह बेचार भले आदमी थे। अब से जोटे खाकर चलते हुए।

सहसा एक आदमी ने कहा, पुलिस आ रही है।

और सब के सब दूर हो गये। मैं भी सड़क के नीचे उतर गया और एक गली में घुस कर गायब हो गया।

— ३० —

## सुख संचारक कम्पनी, मथुरा की अव्यर्थ आयुर्वेदिक औषधें

### द्राक्षासव

यल पुरगर्भ, लघा शक्ति स्फुर्ति  
और रक्त मास, वर्षक, मधुर स्वादिष्ट  
कीमत छोटी बोतल १) पकी २) २००

### सुधासिधु

कर वासी, हेजा, दमा, शूल, संभ-  
हसी, अतिसार, कैं, दस्त आदि रोगों  
की बिना अनुपान की बरेज्द दवा की ॥

### ददुगज केशरी

बिना जलन और तकलीफ के दस्त  
को २४ घण्टे में फायदा दिवाने वाली  
दवा कीमत ।

### वालसुधा

दुग्धे और कमजोर बच्चों को  
मोटा लाना और सारतवर बनाने की  
मिठी दवा कीमत ॥

### च्यवन प्राश अवलेह

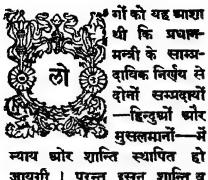
दुर्गम अण्णर्ग मधुक, खर्बू, खांसी  
जुकाम आर क्षान्ति के रोगों को प्रसिद्ध  
दवा कीमत २६ तोले की १)

### सुख संचारक

### अशोकारिष्ट

हर प्रकार के प्रदर रोग की दवा।  
एक पौंड (आधा मेर) की बोतल का  
मूल्य १॥ डाक खर्चे १॥

दवाइयां सब जगह दवा बेचने वालों के पास मिलती हैं।



गों को यह प्रशा  
धी कि प्रधान-  
मन्त्री के साथ-  
दायिक निर्णय से  
दोनों सम्मेलनों  
—हिन्दुओं और  
मुसलमानों—में  
म्याय और शान्ति स्थापित हो  
जायगी। परन्तु इस शान्ति व  
न्याय दोनों का गला घोट दिया है।  
यह केवल साम्प्रदायिकता की अक्षि  
की बढान वाला ही नहीं अपितु  
राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्र का धातक  
भी सिद्ध हो रहा है। इस मामले  
में ब्रिटिश सरकार न अपनी प्रतिष्ठा  
का भग किया है। सरकार न भारत  
में 'उत्तरदायी शासन' या औपनि-  
वेशिक स्वराज्य स्थापित करने की  
प्रतिष्ठा की थी। यदि सरकार अपने  
वचन का कोई मूल्य समझती है तो  
उस मतधिकार की ऐसी बुरी  
प्रयाली जारी नहीं करनी चाहिये  
धी जो न केवल रास्ट्रपतिक विधेय  
बढान वाली है परन्तु उसकी धम  
तक की प्रतिष्ठाओं के साथ बिल-  
कुल मेल भी नहीं खाती। यदि  
इसन ध्रापस में कोई समझौता न  
कर सकन की बजाय न उसका कोई  
फैसला कर देन के लिये कहा था,  
तो इसका यह मतलब कभी नहीं  
था कि इसन सरकार को कोरा  
कानून पकड़ा दिया था। हमें यह  
पूरा आशा थी कि विभिन्न सम्म-  
द्वारा के परस्पर-विरोधी दावों और  
हितों के साथ अधिकतम न्याय  
जिया जायगा। परन्तु प्रधानमन्त्री  
का निर्णय बिलकुल एकरस है।  
उसमें अल्प-संख्यक जातियों के साथ  
जबेदार के लिय भी कोई एक सा  
सिद्धान्त निधारित नहीं किया  
गया। उसका तो एक ही उद्देश्य  
दीखता है एक सास सम्प्रदाय की  
रक्षा। इसका उयाल नहीं किया  
गया कि वह अल्प-संख्यक है या  
बहुसंख्यक। अल्प-संख्यकों की रक्षा  
का सिद्धान्त हिन्दुओं के लिय नहीं है।  
क्योंकि शायद व इन चाहत ही नहीं।  
वर्तमान शासन-विधान में  
हिन्दुओं का गैर-मुस्लिम कहा  
गया है और नय प्रस्तावित शासन-  
विधान में उनका कोई नाम ही नहीं  
रखा जायगा। उनकी स्थिति साधार-  
ण मतदाता कहकर बहुत कम कर  
की गई है। और फिर यह चुनाव  
सम्मिलित चुनाव नहीं है किन्तु  
पृथक चुनाव है जिसमें हिन्दुओं  
को उनका इच्छा के विरुद्ध अवश्येस्ती  
माग देने पड़ेगा।

नया राजनैतिक गणित

साम्प्रदायिक चुनाव और विरोध

प्रतिनिधित्व की एक ओर



(ले०-प्र० राधाकुमुद मुकुर्जी, लखनऊ: जूनियरलिस्टी)

प्र० राधाकुमुद मुकुर्जी की गिनती भारत के उच्चकोटि के विद्वानों में होती है। साम्प्रदायिक-निर्णय और अल्पसंख्यकों की समस्या को तो आप विशेषज्ञ मान जाते हैं।

इस लेख में आपन अत्यन्त योग्यतापूर्वक बताया है कि साम्प्रदायिक निर्णय कबल हिन्दुओं के साथ अन्याय ही नहीं है परन्तु राष्ट्रीयता का गला घोट कर भारत को सत्ता के लिये 'स्वराज्य' के प्रयोग्य कर रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य यूरोपियनों को अनुचित महत्व देकर ब्रिटिशसत्ता को स्थायी रखना है।

भी बड़ी विशेषता है। हिन्दुओं का विशेष प्रतिनिधित्व आवादी के अनुपात में भी नहीं रखा गया। उगल और पजाब के अल्पसंख्यक हिन्दुओं को अपनी सत्ता में भी कम प्रतिनिधित्व दिया गया है। लेकिन अन्य स्थानों पर आप संख्यक अनुसूचितों को उनकी सत्ता के अनुपात से भी अधिक सीटें दे दी गई हैं। बगल के ४३ फीसदी हिन्दुओं को अब २८ फीसदी मिला जायगा और पजाब के ८६ फीसदी हिन्दुओं को २८ फीसदी लेकिन २० फी० के १४ फीसदी मुसलमानों को २२ नये राजनैतिक गणित के द्वारा ३० फीसदी मिला जायगा। कबल एक स्थान पर — सीमाप्रान्त के अल्पसंख्यक हिन्दुओं को इस नय गणित में लाभ पड़वा है और इस ऋणा के लिये भारत के सब प्रान्तों में हिन्दुओं को अपनी सत्ता के अनुपात में कम प्रतिनिधित्व की सजा मिली है।

वास्तविक उद्देश्य

इस कल्पनात्मक साम्प्रदायिक निर्णय का वास्तविक उद्देश्य क्या है? वस्तुतः प्रजातन्त्र की राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलना इसका उद्देश्य मत-होना है। यह एक ऐसी व्यवस्थापिका सभा का निर्माण करेगा जो नागरिकता या साम्प्रदायिक के समान हितों को धुँध में रखकर नहीं, परन्तु विभिन्न समूहों के व्यक्तिगत और स्वायत्त हितों को धृष्टि में रखकर काम करेगी। इस निर्णय की यह में एक बुरा उद्देश्य यूरोपियन मत को सन्तुलन-शक्ति देकर नय सत्ता में ब्रिटिश सत्ता का प्रभाव कायम रखना है। यूरोपियनों को उनकी

सत्ता में बहुत अधिक अनुपात में प्रतिनिधित्व दिया गया है।

यह पृथक चुनाव हमें कहा ले जायगा? साधारणतया सभी समुदाय यह माग पेश करते रहे हैं कि जनसंख्या के अनुपात में उनकी शक्ति अधिक मिलनी चाहिए। परन्तु इस निर्णय में महात्माजी गैर-मुस्लिम सम्प्रदायों को तो जनसंख्या का अनुपातिक जल भी नहीं मिला गया। सिक्कों का यह दावा है कि यद्यपि मर्यादा की दृष्टि में वे १३ की सखी हैं तथापि कच्छता की दृष्टि में वे ४० फीसदी के (पंजाब-सरकार को मान होने वाली ध्राप का ४० फीसदी सिक्कों में मिलता है)। बगल के हिन्दु भी सत्ता के अनुपात पर बन हुए शासन-विधान को स्वीकार करने में इन्कार करते हैं। व सत्ता में ४३ फीसदी ही हो परन्तु सरकारी विभागों के अनुसार प्रान्तीय कार्य का अधिकार्य नहीं देते हैं। सकृति आर्थिक-क्रान्ति 'शमक' और मारुमिष के लिय किच गय त्याग न उनका जो भाग रहा है, उसकी गजाना तो रूपयों में की नहीं जा सकती। भाद अकाल में अन्न की सहायता व प्रान्त-मुस्लिम लक्षों में गिला की जो अभिमत सहायता उन्होंने नी है वह अकाल है।

आज न बहुत समय पहले इस्लाम के प्रसिद्ध राजनैतिक एड-मराइड बर्क न विना प्रतिनिधित्व के कर व ठेके के सिद्धान्त का नये जोंरों में समर्थन किया था। परन्तु आज भारत न इसका विपरीत ध्रापे लगाया जा रहा है। ठट्ठस उयाला लिया जाता है प्रतिनिधित्व कम दिया जाता है। इसीलिए सिक्कों व हिन्दुओं की यह माग है

कि जहां वे अल्पसंख्यक में भी हैं वहां उनका कर संस्कृति आदि का लगावा करत हुए उन्हें प्रतिनिधित्व देना चाहिये।

ब्रिटिश-सरकार के हाथ में भारत की साम्प्रदायिकता का गढ़ न निकालन का ठुम धक्कर ध्रापया परन्तु उसन उमे को दिया। गेरुसुलिम सभी अल्पसंख्यक जातियों न जिनम भारताय ईसा भी सम्मिलित थे प्रजातन्त्र में अपना अटूट विश्वास रखत हुए ध्राप विना कोई खास प्रतिनिधित्व माग सम्मिलित चुनाव की माग की थी। यह सब मिलकर भारत की तानकीर्ण सत्ता होती है। लेकिन एक कोषा की ध्रावाज सरकार को भारी प्रतीत हुई। इसका कारण वही जानती है।

अन्तर्राष्ट्रीय हल

इन सब गेरुसुलिम सम्प्रदायों न अन्नक बार साम्प्रदायिक सत्ता का अन्तर्राष्ट्रीय हल के लिये प्रार्थना की। वह हल प्रसिद्ध अल्पसंख्यक-रक्षा-सन्धि में स्पष्ट है। अत्रादर बात तो यह है कि इस सन्धि के निर्माण में ब्रिटिश-सरकार न स्वयं बहुत भाग लिया था। इस सन्धि का अधिक उपर-स्थित्व उसने प्रतिष्ठित प्रतिनिधित्व सर आस्टिन जैम्बरलेन ने ही जिसन भारत को उपरदायित्वपूर्ण शासन देने की ब्रिटिश-नीति की भी पोषणा की थी। वीन-कोषाई उपर-स्थित्व की अन्तर्राष्ट्रीय साम्प्रदायिक हल की माग पेश करने का मार्ग में ब्रिटिश-सरकार का सामन काल सी बड़ी बाधा का सामना थी जब कि भारत भी राष्ट्रसत्ता का स्वाधीन स्वत्वं है और उसन भी ब्रिटिश-सरकार के प्रतिनिधित्व के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय अल्प-संख्यक-रक्षा-सन्धि पर हस्ताक्षर किये थे? मि० हैडरसन के शब्दों में यह अन्तर्राष्ट्रीय समझौता 'सत्ता व यूरोप के सावजनिक नियम का एक भाग है। राष्ट्रसत्ता की अग्रगण्यी क तासर अधिवेशन में प्र० मिलबर्टे मर का यह प्रस्ताव पास हुआ था कि राष्ट्रसत्ता के सब सदस्यों को इस सन्धि का पालन करना पड़ेगा और इसी के अनुसार अपनी वरुद्ध साम्प्रदायिक सम्प्रदायों न हल करना पड़ेगा। यह भी एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता है कि अल्पसंख्यक-संख्यकों को अपना किसी राष्ट्र का धरुद्ध प्रत्येकी माना जायगा और उस राष्ट्र-संघ में पेश करना ही पड़ेगा।



अपना आप खसडन

लेकिन शायद मि० रेन्जे मैकडानलड के साम्प्रदायिक निर्णय पर सब मे अच्छी टीका गोलमेग काफ़ीरन्स पर हाउस आफ़ कामन्स में दिया गया उम्मी की माग्य है—

“यदि प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र को अलग-अलग साम्प्रदाय या धृक् २ हित रखने वाला मान लिया जाय, तो विशुद्ध राजनैतिक संगठन के, जो सब सम्प्रदायों, सब धर्मों और सब धेशियों को परस्पर मिला देता है, विफल के लिये कोई स्थान ही नहीं रहेगा। यह एक समस्या है, जिसका हम हल करना है, क्योंकि यदि भारत में हमें राजनैतिक जीवन का विकास करना है, तो ऐसी राजनैतिक पार्टियों के विकास की शुझायश हमें जरूर रखनी होगी, जिनका लक्ष्य संपूर्ण भारत का हित हो, न कि संपूर्ण भारत में छोटे किसी समूह का हित।

“कुछ परिवर्तन के बाद इस समस्या के हल के लिए एक प्रस्ताव रखा गया है। न साम्प्रदायिक रजिस्टर हो और न साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्र हों, सब निर्वाचन-क्षेत्रों का एक रजिस्टर हो, परन्तु कुछ सम्प्रदायों को विशेष प्रतिनिधनक प्रतिनिधित्व की गारण्टी जरूर दी जाय। यह साम्प्रदायिक चुनाव पद्धता प्रस्ताव है, जो कुछ अधिक व्याकरण और प्रजातन्त्रीय रूप में है। परन्तु वस्तुतः यह उतना वांछनीय नहीं है।

‘मुझे इन प्यार लोगों (सम्प्रदायों) को यह समझना बहुत कठिन हो रहा है कि यदि एक सम्प्रदाय को विशेष प्रतिनिधित्व देने हो, तो तुम ‘शून्य’ में न प्रतिनिधित्व उत्पन्न नहीं कर सकने, किसी और का अधिकार ही डोनाना पड़ेगा। तब उन्हें माझूम होना है कि वे राष्ट्रव्यक्रावे में पड़ गये है और उनके सामन एक परदा की दीवार है, जिसमे मे वे निकल नहीं सकत।’

लेकिन मज़ा यह है कि जिन अम्लों व प्रस्तावों की प्रधानमन्त्री अपन भाष्य में निन्दा करन हैं, उन्हीं को वे सरकारी साम्प्रदायिक नियम मे आधार मानन हैं। प्रधान मन्त्री के अपन कथनानुसार यह (साम्प्रदायिक निर्णय) ‘विशुद्ध राजनीतिक संगठन’ या ‘एक हड़ राजनीतिक जीवन’ या ‘राष्ट्रीय राजनैतिक दलों’ के स्वतन्त्र विकास में बाधक होगा।

हम किस रेन्जे मैकडानलड से अपील करें, हाउस आफ़ कामन्स में भाष्य देन बादे रेन्जे मैकडानलड से या साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा करने वाले रेन्जे मैकडानलड से ?

कोई भी सन्तुष्ट नहीं

सभी सम्प्रदाय इसमे असन्तुष्ट होखते हैं। हिन्दुओं को तो यह विलकुल भी स्वीकार्य नहीं है, जिनके साथ इसमे सब न अधिक अन्याय किया गया है। उन्हें यह अल्पसंख्यक भी नहीं मानता, और ऐसा भी कोई प्रतिनिधित्व देने में इन्कार करता है, जो और सम्प्रदायों को बहुत उदारता में दिया गया है। सीमाप्राप्त के सिवा कहीं संख्या के अनुसार मत भी प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। साम्प्र-



रमजे मैकडानलड

दायिक निर्णय के आधारभूत हो सिद्धान्त है और दोनों एक दूसरे को काटत है। एक विशेष सम्प्रदाय के लिये संख्या का सिद्धान्त और दूसर सम्प्रदाय के लिये योग्यता का सिद्धान्त। हिन्दुओं को दोनों सिद्धान्तों—संख्या और योग्यता—में वादा है। यूरोपियनों की तो योग्यता देखी गयी है और मुसलमानों की संख्या। हिन्दुओं को दोनों में से एक का भी लाभ नहीं मिलेगा। पता नहीं किस तरीके में, जिन हम नहीं समझ सकत, हिन्दुओं की योग्यता यूरोपियनों की योग्यता में कम मानी गयी है। देश की संरक्षित में उनकी क्या देन है ? वे तो शासन का मार अश्रय उठा रहे हैं।

इसरा एक भी उदाहरण नहीं

अन में यह निर्णय अल्पसंख्यकों की रक्षा का एक विधि

भौर नया उदाहरण सामने रखता है, जिसका वर्तमान इतिहास व राजनीतिक में एक भी उदाहरण नहीं मिलता, क्योंकि यह उन बंधनों को ही ढीला कर देता है, जिससे राष्ट्र एक रूप में प्रगति रहता है। इस निर्णय मे सम्प्रदायों को ऐसा समझ गया है, जैसे वे परस्पर लड़न वाली बिरेद्री जातियां हैं। उन्हें व्यवस्थापिका समझो व शासन-प्रणय में टुकड़े-टुकड़े करके बाट दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि एक राष्ट्रीय शरीर बनने की अपेक्षा राष्ट्र अनेक विभागों में सखा के लिए विभक्त हो गया है। सरकार यह अच्छी तरह जानती है कि शुद्ध राजनीतिक प्रतिनिधित्व केकर अल्पसंख्यकों की रक्षा करने का परिणाम निम्नवत् ही यह होगा कि

स्वीकार करता है—धार्मिक, भाषा-सम्बन्धी और जाति सम्बन्धी। इस के सिवा अन्य सब अल्पसंख्यक जातियों की रक्षा से भी वह इन्कार करता है, जिन्हें यहां साम्प्रदायिक निर्णय ने जन्म दिया है। राष्ट्रीय स्वायत्त शासन का अभाव पण्डु भारतीय साम्प्रदायिक निर्णय के प्रतिष्ठित लेखकों ने जलद्वक कर अन्तराष्ट्रीय साम्प्रदायिक निर्णय को स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने प्रजातन्त्र की स्थिति की कल्पना ही भारत में नहीं की और इसीलिये शायद विलकुल नवे राजनैतिक गणित का आविष्कार किया गया है।

इस समय ब्रिटिश सरकार की स्थिति यह है कि ‘शासन-विधान मे पूर्व साम्प्रदायिक निर्णय जारी कर शासन-विधान की रूप-रक्षा खींच दी जाय। शासन-विधान को इस तरह से तोड़ना-मरोड़ना जायगा कि वह साम्प्रदायिक निर्णय क अग्रकूल हो जाय, निर्णय को शासन-विधान के अग्रकूल नहीं बनाया जायगा। यह निर्णय हमें भान बादे शासन-विधान की रूप-रक्षा बना रहा है, जिसमें राष्ट्रीय स्वायत्त शासन का, जो देश की मयुक्त मांग है, विलकुल अभाव रहेगा। साम्प्रदायिक निर्णय के आधार पर बना हुआ शासन-विधान एक ऐसे अनेक सिर बादे राष्ट्र की तरह होगा, जिसकी न एक सार्वमल आवाज होगी और न एक सार्वमल कार्य-शक्ति। इस निर्णय को स्वीकार करने का बरवे यह होगा कि भारत स्वराज्य या प्रजातन्त्र का दावा सखा के लिये झोड़ कर अपने को उसके अयोग्य घोषित कर दे। साम्प्रदायिक निर्णय सुधार के नाम पर अंधों की पीछे ले जाने वाला है। लखनऊ में कांग्रेस ने जो समझौता किया था और जिमे सामान-विधान न भी स्वीकार कर लिया था, उसे भी यह रद्द कर देता है। अब ब्रिटिश सरकार न यह फंसला किया है कि भारत को वह शासन-विधान भी न दिया जाय, जिसकी सामान करीगन न सार्वमल की थी, किन्तु उसमें भी अधिक खराब, कम राष्ट्रीय और प्रजातन्त्रीय और उसमें भी अधिक साम्प्रदायिक शासन-विधान दिया जाय।

आशा की किरण

लेकिन अभी तक इस अल्पकार में एक आशा की किरण है। यह निर्णय भारतीय राष्ट्रीयता को खुला वेलीन है। प्रधान मंत्री स्वयं कहते हैं कि योंही सब सख परस्पर

युवक भारत के सम्राट



पं० जवाहरलाल नेहरू

जवा पं जवाहरलाल नेहरू एक युवक के रूप में और अज्ञानता  
है और एक राजनीति का प्रियक भी है। उन व्यक्ति मणि का  
नामि पात्र है उनका मन्त्रालय लेना इच्छा में पा है वह अस्मिन्  
अज्ञान-दल य प्रकाश है। गांधी ने क ज्ञान में संगठित है।”

—स. गांधी





प्रेस का जन्म सन् १८८६ में हुआ था। इसके जन्म-दाताओं न पहले-पहले 'दी इन्डियन नेग्रेशन' दैनिकों की कार्यरत्नस पत्रा में करन का निम्नत्व किया था। उसी कार्यरत्नस का उपान्तर हमारी कांग्रेस है। उस कार्यरत्नस में बंगाल, बम्बई और मद्रास प्रान्तों के कांग्रेसी भाषा में भाषी भाषी प्रतिष्ठित लोगों की निम्नस्थित किया गया था। पहले-पहले जो अधिवेशन हुए, उन में सरकारी नौकरियों और ब्रिटिश भारतीय शासन-संस्थाओं के विषय में ही ज्यादा बर्चाएँ थीं। अतः इस बात का अनुमान लगाने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती कि कांग्रेस का जन्म ब्रिटिश भारत और ब्रिटिश-भारतीय कांग्रेसी-निष्ठित समाज के हित के लिये ही हुआ था।

### पहली चर्चा

देशी राज्यों के सम्बन्ध में कांग्रेस के दसवें अधिवेशन में पहली चर्चा सन् १८९४ में हुई थी, जब सिकन्दरवाद के श्री० रामचन्द्र पिल्लाई ने निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया था :-

“इस कांग्रेस की राय है कि ब्रिटिश शासन के भीतर देशी-राज्यों के प्रान्तों पर दबाव डालने वाली भारत-सरकार के विरोधी-विभाग की २५ जुल १८९१ की विज्ञप्ति अनुचित, स्वच्छन्दतापूर्ण और हानिकारक है और राजनीति तथा

समझौता कर लेने, ये इस निर्णय को फाड़ देंगे। ये स्वयं इस पर लेख प्रकाश करने हैं कि वह उपरान्त में लायी गयी चीज है, आपसी समझौते में उत्पन्न नहीं।

क्या मैं समझता-पूर्वक यह कह सकता हूँ कि समीक्षक यशश्री भारतीय समस्या के अन्तराष्ट्रीय समस्या पर सहमत हैं, जो सारा के सहायक मति-तर्कों और राजनीति में कि निर्णय है। यूरोप के २० देशों में, जहाँ साम्प्रदायिक समस्या बहुत उग्र व तीव्र है, यही अन्तराष्ट्रीय समस्या काजू है। उन्हीं में भी यही समझौता जारी है। क्या भारतीय मुसलमान मुस्लिम राष्ट्र उन्हीं के अग्रदूत का अनुकरण न करें ?

## देशी-राज्य और कांग्रेस

(ले०—श्री० जयनारायण व्यास)

श्री० जयनारायण व्यास रियासतों के प्रसिद्ध कार्यकर्ता और रियासती समस्या के विरोध हैं। इस लेख में उन्होंने देशी-राज्यों के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति का संक्षिप्त परीक्षण देने हुए यह बताने का प्रयत्न किया है कि कांग्रेस की दृष्टिकोण न करन की नीति अनुचित है और कांग्रेस को अपनी नीति और भी स्पष्ट तथा निश्चित करनी चाहिये।



लोगों की स्वतन्त्रता के विरुद्ध है। वह कांग्रेस इस विवक्ति का नम्रतापूर्वक प्रवल विरोध करती है तथा अनुरोध करती है कि वह बिना विलम्ब रह कर दी जाय।”

सन् १८९४ की सार्वभौम कांग्रेस में, जो पुराने में हुई थी, फिर एक विज्ञप्ति का विरोध किया गया। इस बार प्रस्तावक श्री० सैय्यु के ये, जिन्होंने कहा कि हेदराबाद रियासत में — जो मेड ब्रिटेन और आयरलैंड के संयुक्त राज्य में भी बड़ी है — एक विज्ञप्ति के कारण कई क्षोभित बरबाद हो गये हैं और कांग्रेसी पक्ष का एक विपक्षी भी प्रकाशित नहीं होता है।

श्री० रामचन्द्र पिल्लाई ने अनुमोदन किया। श्री० वी० वी० मोदक तथा ए० ए० देसाई ने मेसूर और काठियावाड़ में जो चीत रखा था, उसका विमर्श करवाया। इसका माध्यम होता है कि देशी-राज्यों की राजनीति और राजनीतिज्ञों को १८९४-९५ में ही कांग्रेस में प्रवेश तो मिल चुका था।

जिस विवक्ति का जिक्र उपर किया गया है, उसका आग्रह यह था कि बिना पोलिटिकल एजेंट की सलाह के १ अगस्त १८९१ में कोई अन्याय, पक्षिणा आदि किसी रियासत में प्रकाशित न हो और यदि कोई ऐसा करेगा, तो उसे सताह कर के अन्तर-अन्तर स्थान छोड़कर

चले जान तथा बिना आग्रह वापिस न आने को आग्रह दी जावेगी और न आने को अवस्था में जबरदस्ती निकाल दिया जावेगा।

सन् १८९४ ही में कांग्रेस के अवसर पर मेसूर महाराजा की मृत्यु होगी। कांग्रेस ने इस संबंध में शोक का प्रस्ताव पास किया था। इस में ऐसा प्रतीत होता है कि उसीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय लोकमत नशों के विरुद्ध नहीं था। न राजा लोग देशी राज्यों की जनता की स्वतन्त्रता का अग्रहण करने के पक्ष में थे। ये पोलिटिकल एजेंट ही थे, जो एक विज्ञप्ति के कारण अपने भाव प्रगट करने की जनता की स्वतन्त्रता में बाधक हुए और जिसका अन्तर राजाओं पर इतना परना था कि लार्ड मेणरो जैसे राजनीतिज्ञ ने एक बार लिखा था—

“These Politicals in the name of advice press orders on Indian princes which are never refuted”

“ये राजनैतिक अफसर सलाह के नाम पर देशी राजाओं पर ऐसी आशयें छोड़ देते हैं, जो कभी टाली नहीं जाती।”

सन् २० से

सन् १८९६ के बाद एक आग्रह बार क्षोभितों पर प्रकाशित करने का विरोध करने

वाला प्रस्ताव दोहराया अवश्य जाता है, पर उस के बाद लम्बे अन्तर तक देशी राज्यों के सम्बन्ध में कोई चर्चा ही नहीं होती। बराबर, कांग्रेस में देशी राज्यों के प्रतिनिधि जात अवश्य हैं, पर वे भी ब्रिटिश इन्डिया की जिस समस्याओं में ऐत उत्पन्न जात है कि उन्हें अपने जन-स्थल याद ही नहीं रहत। बंग-मंगा तथा स्वदेशी-आन्दोलन, फिर टोलेट एक्ट और सत्याग्रह, इन सब हलचलों में लोग इतने मगलून होत रहे कि उन्हें यह खयाल ही नहीं रहा कि देशी राज्यों के अन्तर भी दुष्-वर्ष है। परन्तु देशी राज्यों में सम्बन्ध रखने वाले कांग्रेस-वादियों में कुछ विचार कायमुर कांग्रेस के अवसर पर पैदा होत हैं। उसी समय में कांग्रेस का सन् १० देशी-राज्य-प्रजा-परिपक्व के अधिवेशन भी शुरू हो जात है। इन्हीं दिनों काठियावाड़ और राजपूताना की अननक रियासतों में जागृति उत्पन्न हो रही थी और अननक कार्य-नशीबों न अपने २ संगठन कर आन्दोलन भी शुरू कर लिये थे। अन्त में सन् १९२७ में प्रायः सब रियासती सार्वजनिक कार्य-कर्ताओं न इस बात की आ-वश्यकता अनुभव की कि देशी-राज्यों में विशेष निम्नित स्थानीय और उत्साह में संगठित हो कर कार्य करना चाहिये। इस विचार के परिणाम-स्वरूप १९२८ में बम्बई देशी-राज्य-प्रजा-परिपक्व का स्वतंत्र सत्या के तौर पर जन्म हुआ। इस न पहला कार्य यह किया कि कांग्रेस के पास एक डेपुटेशन भेज कर रियासती-प्रजा की स्थिति उन समझाई।

इस वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन मद्रास में हुआ था। यहीं न देशी-राज्यों का प्रश्न कांग्रेस में अधिक जोरों न आया। लगता है। मद्रास कांग्रेस में डेपुटेशन की हलचलों के कारण निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ—

“इस कांग्रेस की जोरदार राय है कि देशी-रियासतों की प्रजा और उन के शासक दोनों के हित की दृष्टि न उन्हीं अपनी रियासतों में बहुत शीघ्र उत्तराधिकार शासन स्थापित कर लेना चाहिये।

इसका बाद सन् १९२८ में कलकत्ता कांग्रेस में एक प्रस्ताव पास होना है, जो देशी-राज्यों न संबंध रखने वाले दूसरे सभी प्रस्तावों न अधिक महत्वपूर्ण है। वह यह है—

‘यह कांग्रेस खुदशुस्कार देशी-राज्यों में ब्राह्मण के साथ करती है कि वे अपने राज्यों में प्रतिनिधायक संस्थाओं के आधार पर उत्तरदायित्व-पूर्व विधान जलावे और फौरन ऐसी घोषणाएं निकालें या ऐसी कानून पास करें, जिन में समा समिति बनाने, आयदा करने और शिक्षण की स्वतंत्रता तथा जल-माल की हिराजत तथा इसी तरह के दूसरे सुख नागरिकता के अधिकारों को सुरक्षित रहने की बात हो।’

“यह कांग्रेस रियासती जनता को विस्थापित दिलाती है कि यहाँ उत्तरदायित्व-पूर्व शासन स्थापित कराने के उनके आन्दोलन के साथ कांग्रेस की पूरी सहायता है और वह उस का समर्थन करती है।”

सन् १९२६ में लाहौर कांग्रेस में एक प्रस्ताव द्वारा रियासती शासकों को प्रजा की उत्तरदायित्व-पूर्व शासन और नागरिकता के भी-

तिक अधिकार देने के लिये कहा गया।

सब घटनाओं में यह मान्य हो सकता है कि कांग्रेस की देशी-राज्यों के सम्बन्ध में कितनी सहायता है और वह उस के आन्तरिक शासन का क्या स्वरूप उचित समझती है

हस्तक्षेप न करने की नीति

पूरा कांग्रेस देशी रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की नीति के बिल्कुल विरुद्ध मान्य होती है। इस सम्बन्ध में कई गताओं के वक्तव्य भी निकले हैं। उसका अन्तर आन्तर भयंकर हुआ है। देशी राज्यों को राज्यों के भीतर सार्वजनिक कार्य, विशेष कर कांग्रेस-कार्य की प्रगति को रोकने के लिए हस्तक्षेपक आचार्य निकालने की सुविधा हुई है। यही कारण है कि देशी राज्यों की प्रजा में आसन्नोप फैल रहा है और

कांग्रेस में वे अपना आसन्नोप प्रकट करने के लिए उतावले हो रहे हैं।

देशी राज्यों में कांग्रेस-कमेटियाँ देशी राज्यों में कांग्रेस का काम होना चाहिये, यह तो सब स्वीकार करते हैं, पर कांग्रेस की तरफ से होना चाहिये या नहीं, यह विषय अभी स्पष्ट नहीं हुआ है। कांग्रेस का वर्तमान विधान देशी राज्यों में कांग्रेस की जिला-कमेटियाँ बनाने की मनाई सी कर रहा है। उसके “और प्रांत के अन्तर्गत हरे रियासतें मिश्र-मिश्र जिलों को छीप रही हैं” यही शब्द स्पष्ट करते हैं कि जिले या जिला कांग्रेस कमेटियाँ ब्रिटिश भारत ही में हैं।

दुखी तरफ हम यह भी देखते हैं कि देशी राज्यों में जिला कांग्रेस कमेटियाँ बहुत पहले से मौजूद हैं। अभी हाल में महात्मा गांधी के कुछ वक्तव्य निकले थे, जिनमें प्रतीत होता

था कि देशी राज्यों में कांग्रेस का कोई संगठन ही नहीं बन सकता। इस पर महात्माजी प्रतीत कांग्रेस कमेटी के समारंभ से गोविन्दराव जी ने महात्मा जी को पत्र लिखा और उत्तर में महात्मा जी ने स्पष्ट कर दिया कि देशी राज्यों में कांग्रेस कमेटियाँ बनाई जा सकती हैं। बरेल्लख में कई जिला कांग्रेस कमेटियाँ पहले से मौजूद हैं, उन्हें रहना चाहिये और उन के द्वारा काम भी होना चाहिये।

देशी राज्यों में कांग्रेस कमेटियाँ बनने न बनने के सम्बन्ध में ‘विधान’ तथा ‘रियास’ अलग-अलग हैं। प्रता: ब्रामाजी कांग्रेस को यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिये और यह निश्चय कर लेना चाहिये कि कांग्रेस समस्त राष्ट्र की है और देशी राज्य भी उसके वैसे ही भाग हैं, जैसे ब्रिटिश भारत के प्रांत, जिला और तहसीलें।

## तरुण तपस्वी

कपिलवस्तु के मिश्रामन के सुख की ममता त्याग—  
किस गोलम के योवन, मे यह जाग उठा वैराग ?  
बाधि-वृद्ध है नश, हिमाचल की छाया क नीचे,  
कौन मनस्वी तप करता है कर्षण लोचन मीने ?

बोल उठी गंगा की लहर—

“यह है वह नगनाश,  
जिमकी जग में अमर क तिं  
माता का लाल, “जवाहर”।

नगर-नगर में ग्राम-ग्राम में, गुड़ गुड़ में जा-जा कर,  
आज़ादी की अलख जगाना, तन में भस्म रमा कर;  
यह त्यागी है काटि काटि तरुणों क उर का स्वामी,  
सारा भारतवर्ष आज है इका ही अनुगामी।

× × × ×

आ भारत क तरुण तपस्वी,  
तुम प्रनिष्ठ, जन-जन में,  
स्वतन्त्रता की ज्वाला बन कर  
धक्क उठा मन-मन में।

—सोहनलाल द्विवेदी, बी० ए०

मनयुक्तों के सखा



पं० जवाहरलाल नेहरू



(ले०—श्री पद्मनि सीतारामैया)

श्री पद्मनि सीतारामैया महात्मा गांधी के अन्वय-भक्त और सच्चे सहयोगी ही नहीं, एक अच्छे विचारक भी हैं। सत्याग्रह और गांधी जी की फिलासफी को उस आन्दोलन में नियात्मक भाग लेने के कारण आप खुब समझ सके हैं।

इस लेख में आपने सत्याग्रह का वैयक्तिक विवेचन करते हुये यह बताया है कि भारत में पञ्चचायत आदर्श सफल नहीं होगा वहां तो भारतीय आदर्श ही सफल होगा। सत्य, अहिंसा, प्रेम का आदर्श जहां बांझनीय है, वहां नियात्मक भी है। इस के द्वारा भारत में अनेक विजय प्राप्त किये हैं और आगे भी इस के द्वारा सफलता प्राप्त करेगा।

## सत्याग्रह का जीवन और राजनीति के प्रति सन्देश

~

---  
,भारत महात्मा

आन्दोलन अभी पूर्णता तक नहीं पहुँचा, जिससे अभी अपनी कुमारावस्था से ही बाहिर कदम नहीं रखा, उसका अध्ययन करना और फिर उस पर आपन विचारों को लेखबद्ध करना बहुत कठिन और जिम्मेवारी का काम है। खास कर के उस व्यक्ति के लिये, जो उस आन्दोलन का पक्का हिमायती हो और उसकी महती शक्तिमत्ता में हार्दिक विश्वास रखता हो। ऐसे व्यक्तियों पर प्रतिबन्धी लोग हस्तें हैं। शत्रु उनमें घुसा और ढ़ेच करते हैं। प्रत्येक आन्दोलन को इस विषय आवश्यकताओं में से गुजरना पड़ता है। पहुँचे उधे केवल एक उपहास का विषय समझा जाता है और तत्पश्चात् किसी नकली आन्दोलन से उसकी तुलना की जाती है या फिर उसके किसी ऐसे अंगे और

अधिकतम रूप को पकड़ लिया जाता है, जिससे में उसे अपनी प्रारम्भावस्था में गुजरना पड़ा है।

‘सत्याग्रह’ और ‘निष्क्रिय प्रतिरोध’ में भेद

हम ‘सत्याग्रह’ और ‘निष्क्रिय प्रतिरोध’ को लेते हैं। इनका पारस्परिक सम्बन्ध हीर और कोयले की मिसाल में स्पष्ट हो जायगा। हीरा और कोयला एक ही भौतिक तत्व के दो भिन्न-भिन्न रासायनिक रूप हैं। ‘सत्याग्रह’ और ‘निष्क्रिय प्रतिरोध’ तभी एक समझे जा सकते हैं, यदि हीरे और कोयले को आवश्यक रूप से एक समझा जाये। जिस प्रकार हीरा और कोयला दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, उसी प्रकार ‘सत्याग्रह’ और ‘निष्क्रिय प्रतिरोध’ भी दो भिन्न-भिन्न आन्दोलन हैं। इतना ही नहीं, इन दोनों में परस्पर महत्त्व विरोध

को को यह होना चाहिये महात्मा गांधी के

आगमन से कुछ समय पूर्व ‘सत्याग्रह’ का प्रारम्भिक प्रकाश ‘निष्क्रिय प्रतिरोध’ के रूप में ही हुआ था और सर्वसाधारण जनता इसे इसी रूप में समझती थी। सर्वे प्रथम १९१७ में भीमती पत्नी बीरगढ़ के नज़रबन्द किये जाने पर कांग्रेस ने ‘निष्क्रिय प्रतिरोध’ की धमकी दी थी, लेकिन उनकी रिहाई के साथ ही यह विचार समाप्त हो गया। इसके बाद महात्मा गांधी भारतवर्ष के राजनीतिक मंच पर कदम रखते हैं। आपन पहुँचे कांग्रेस के बाहिर से रोलट-एक्ट के विरुद्ध और फिर कांग्रेस के अन्दर में खिलाफत को नष्ट करने तथा पंजाब के हत्याकांड के विरुद्ध सत्याग्रह-संग्राम प्रारम्भ किया। इसमें जनता के काफी बड़े भाग ने हिस्सा लिया, लेकिन वह ऐसे उसी आन्दोलन का पुनरावृत्ति

समझता था, जिसकी धमकी दी गई थी।

‘सत्याग्रह’ के विविध रूप

वर्तमान राजनीतिक घटना-चक्र में एक ऐसे आन्दोलन को जन्म दिया है, जिसके भिन्न-भिन्न अंगों का विकास भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न नामों से हुआ है। इसका एक अंग ‘निष्क्रिय प्रतिरोध’ भी रहा। उसमें अहिंसा, कठुना धृष्टा और हिंसा के लिये स्थान था। आपने ‘असहयोग’ के रूप में इन उन दृश्य-दृश्य और दुःखी लोगों का आश्रय मिला, जो आपन शासकों से अत्यन्त असन्तुष्ट थे और उन्हें चोट तो पहुँचाना चाहते थे, लेकिन बिना प्रहार किये। जब इसने ‘असहयोग’ आन्दोलन का रूप धारण किया, तो इसे इस बात में कुछ समय लगा कि इसके अनुयायी आपने व्यवहार में ‘असहयोग’ पर ही अपना ही बल दें, जितना कि वे

गी हिंसा और कतरता को उद्बोधित कर दिया है। समाज तो सत्याग्रह के गधार पर खड़ा है जो भागन का उपदेश न दे रिग्रह का उपदेश देता है। हम सत्याग्रही होकर पारंपरिक भावनाओं को और अपने स्व को पवित्र भाव और मज्जा 'मारे जीवन का भग बन

इ का आधान कैसे कर सकते हैं ?

न यह कैसे ? हम उन गुणों धर्मों का अपन में आधान कर सकते हैं जिनका समीप हम सत्याग्रह है ? इस ही मांग है—तपस्या। 'अहिंसासत्यास्त्यनन्यथायुगा' "शुचि सन्तोषाध्यायेश्वरप्रशिक्षणानि नि

पर आचरणा करना।

क सुखों में रमन का अर्थ को पारंपरिक भावनाओं को देना है जो मिथ्याभिमान के पीछे लहर में हमें हिंसा के चक्कर में मारे पर ले जाती चारों के भाव को उच्छेदन है और मनुष्य पालतू हो गरीबिका की भाँति पैमे सज धज के पीछे भागता है। इस में साधनों का नहीं रहता। अन्ध-धुराओं में अपना उद्वेग सीधा किया जाता है। आवश्यकता है आम सन्तोष की। यह मतलब नहीं कि सत्कार छोड़ कर मनुष्य सत्याग्रह ले ले अपितु तपस्या पर आवश्यक करके अपने को आवश्यकताओं की प्रति के बोझ में मुक्त कर ले और अन्दर के प्य को बढ़ावा। स्व गर्वनि शिवा में एक ऐसी नव सैलिक शक्ति पैदा होगी कि संपूर्ण भारतवर्ष जो न्यय के दार्शनिक वित्तगुहावादों में बिछा पड़ा है एक बार फिर सत्कार के समक्ष उभर माल करक विमोहिताक रूप में खड़ा होगा। इस शिवा के अनुसार हमारा कर्तव्य है कि हम अपने अन्तर्मन को साथ ही सम्बन्ध स्थापित करने का उपाय हमें लेकिन कुछ शर्तों पर उसका सहायोग करने में इत्तार कर दे ताकि अपनेपन और धर्म-सम्मान की रक्षा हो सके। प्रत्येक व्यक्ति को उचित है कि वह नित्य नियम-पूर्वक अपने हिस्से के भ्रम को छोड़ और गरीबों को अपना पीछी-पकड़ा

कमान में मद्ध करे। इन स्वाधर्मों की साधना के लिये मन का शरीर पर और आत्मा का मन तथा शरीर पर नियन्त्रण होना आवश्यक है, ताकि शरीर कोई काम मन की आज्ञा के प्रति-कूल न कर तथा मन आत्मा की आज्ञा के प्रतिकूल। इस अवस्था की प्राप्त के लिये समय और अपरिग्रह में बद्ध कर कृप साधन हो सकते हैं। भोजन और विद्या-स्वाध के सम्बन्ध में समय का कृप उपवास है। विचार और भ्रमण के सम्बन्ध में मौन तथा मानसिक और शारीरिक वृत्तियों के सम्बन्ध में ब्रह्मचर्य।

भारत का सार्वजनिक जीवन में

मत्याग्रह का चमत्कार

ज साधारण लोग उपवास को केवल शारीरिक यातना मान कर मजबूरी और ब्रह्मचर्य को असम्भव समझ कर इनक प्रतियों पर हस्त हैं तो वे उस उपहासा-भित आलोचना का आशय लें हैं जिसकी अनिवार्य परीक्षा में म प्रत्येक प्रगतिशील आन्दोलन को अपने प्रारम्भिक दिनों में गुजरना पड़ता है। परन्तु सच प्रगतिशील आन्दोलन ऐसी आलोचना पर विजय पान में सफल हो जाते हैं और भावी सफलता की नशा में नव-जीवन का संचार करने के साथ-साथ बनत हैं। इसी प्रकार पिछले दश वर्षों में भारतवर्ष का सार्वजनिक जीवन भी कुछ पवित्र हो गया है। उसमें आत्मिकता की चमक हल्कि-गोबर होता है।

राजनीति में अहिंसा की सफलता

मुक्तता कुछ लिख चुकने के बाद भी कई लोग राजनीतिक मामलों में अहिंसा की सफलता में आश्चर्य व्यक्त करते हैं। हम लोगों के विचार यह पूर्णतः ठीक है कि जिस प्रकार अहिंसा जीवन का एक अकाट्य सिद्धान्त है उसी प्रकार कम से कम हमारी वर्तमान परिस्थिति में राजनीतिक दृष्टि में भी यह एक सन्देशदायी दृष्टिकार है। भारतवर्ष जैसे विशाल पराधीन देश में अहिंसा का नीति-रूप में भी आश्रय लिये विना जायज पैदा करना असम्भव कार्य है। निस्संदेह एक लोग कम नहीं हैं जो अहिंसा और असहयोग की असफलता का हारफले कितने हैं लेकिन एक ही कुलांग में किने सफलता मिलती है — साक्षर के उस देश में जो नवीन आन्दोलन को पकड़ने में अत्यन्त दुस्त हो। फिर, सफलता

हृदय  
उस के  
करना तो

हम प्य नह  
जनक जैसे उ  
विजय प्राप्त करन  
प्रह नहीं है।  
कहीं कहीं में निराशा के साथ  
ध्वनि उठती है कि पारंपरिक बल  
पर आश्रित अग्रजों के शासन पर  
हम सत्याग्रह में कैसे विजय प्राप्त  
कर सकते हैं ? मैं प्लुता हू कि  
यदि हमारा दुष्मन प्यु न होता तो  
सत्याग्रह की आवश्यकता ही क्यों  
पड़ना ? जीवन सन्धी जो  
विचार हमें इस निराशा के गढ़ की  
आर धकलता है वह हम पुराना  
पड़ गया है। हमारा मानस-वृत्त  
पर उक्त निराशा के भय के भाव को  
अहित करने वाला पाश्चात्य विचार  
का जिस की लानी उस की  
मैंस ( r l f l e f i t )  
वाला सिद्धान्त भारतीय समाज का  
आधार नहीं बन सकता। उस न  
हमारी हीन भावनाओं को उद्दीप्त  
करके अभिमान और उस के अति-

न भाग  
क ये। इस में

अ। अब भय कतरता कोष  
व प्रतीकार की भावना का स्थान  
में साहस, धर्म सहिष्णुता और  
आत्म पवित्रता न ले लिया। धन  
को सेवा के त्याग का सामन धन  
देकन पड़न है। शत्रु पर बल  
प्रयोग में विजय प्राप्त न करके उस  
के हृदय पर विजय प्राप्त का जानो  
है। इस नव युग का उद्देजित  
सन्तान और भय विह्वल मान  
सौत्य के प्रति सन्ध है कि  
संपूर्ण भय हमें घुसा बना कर  
हमारे हृदि चक्र लगा रहे हैं।  
जिस दिन हम इस भय और स्वा  
की भावना का परिणाम कर दें  
उस दिन हम मनुष्य का भा नित्य  
हो कर सामना कर सका। प्रत्येक  
सत्याग्रही को सत्य का शोध में  
धूमना पड़ता है। उन इस की  
सिद्धि के लिये मनुष्य सरकार,  
समाज निषण्णता और मनुष्य अवि  
स्य का भय छोड़ना होगा। इस  
उद्देश्य की प्राप्ति में असहयोग

और असफलता तो दो सारेषे परिणाम हैं। कोई असफलता सम्भव है असफलता की सीढ़ी का ही एक शब्द हो। असफलता अपने आप भी तो असफलताओं की शृंखला-परम्परा में मिलकर गड़बड़ा का नाम है।

इसके इतिहासिक परिभाषा की एक ऐसा नित्य सिद्धान्त है जो दो बिंदुओं द्वारा में सार्वभौम, सार्व-कालिक और सार्वजनिक शान्ति व प्रेम उत्पन्न कर सकता है। यदि न्याय व निर्णय की गद्दी पर एक बार हिंसा की बीटा दिया तो दोनों ओर की पारस्परिक दुर्भावनाओं का कमी भूत न होगा। विजयी और पराजित दोनों इसका समान रूप में सत्ता प्रयोग कर सकते हैं और करते। आर्यलौक में माइकेल कोल्लिन्स और डि क्लर का दलों न क्लस में टोटलरकी और स्टेलिन का दलों न ठग्य जर्मनी में हिटलर और उसने पूर्ववर्ती शासकों ने एक दूसरे के विच्छेद यही किया। भौतिक विजय कमी स्थिर नहीं होती। शत्रु के हृदय का परिवर्तन ही शाश्वतिक हो सकता है। ब्रिटिशशासक का पक्ष में यह एक बड़ी भारी दलील है। कम से कम उन लोगों को तो इसकी शक्ति शक्तिता में सन्देह नहीं करना चाहिये जिन्होंने सन् १९३१ में इसके सामरिक प्रभाव का अनुभव किया है। १९३४ में इसमें अचम्ब कुल डील था गई है लेकिन निरन्तर-अभियन्त्र में ही इसकी असफलता फैलती का कोई तबली प्रमाण हमारी आँखों के सामने धाने वाला है। आभयकता केवल इस बात की है कि हमारा बहिर्मुख शत्रु पवित्र हो और हम विनयशीलता तथा साहस का कमी परित्याग न करें।

### सत्याग्रह का भीमपेश

अब हम थोड़ी देर इस बात पर विचार करना चाहिये कि व प्रशासिक जल पन बाले सिद्धांत किस प्रकार हमारा रोजमर्रा के इतिहास और राजनीतिक व्यवहार में काम आते हैं। पहले हम इस सिद्धान्त को १९१६ में अशुल्लस-कामेस के अवसर पर रामग्रह पर आता देखते हैं जब ५० गांधी न इस बात पर जोर दिया था कि होशियार चार अंग्रेजों का बंध किंवा जान की सत्य नगमल बैंक को आम लगाने की निन्दा की जाये। चमारान विचार-सचर्य के बाद गांधी रात को कामेस की निष्पत्ति-समिति न उक्त प्रस्ताव को रद्द कर दिया। इस पर महात्माजी ने कामेस कीपुनर् की घमडी की। बारतव में जो वह घमडी न थी केवल उस

कस का सकेत था, जो महात्माजी के सिद्धान्त-अंग का अनिवार्य परिणाम होता। वगैरे दिन बुतेरी नाफ-भौं सिंकोचन के बाद महात्माजी का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। उस पक्ष में महात्मा गांधी न धीर-धीरे कापेस का कानों में ब्रिटिश का बारतविक अर्थ पतना प्रारम्भ किया। जो कांग्रेस यह सम्मन लगी थी कि स्वराज्य का मतलब अंग्रेजों को भारतवर्ष से बाहर मार निकालन में है उस यह सबक सिखाया गया कि अंग्रेज भी भारतीयों के साथ नमस्कार की हैसियत से रह सकते हैं और यहाँ रहने वाले एक भी विदेशी का बाल तक बाका नहीं किया जाता चाहिये।

### चौरीचौरा-काण्ड

लेकिन देवकत हैं कि राष्ट्र उस अन्वि-परीक्षा में उगीय नहीं हो सका और ई करखरी १९२० के दिन चौरीचौरा में एक यान में २१ सिपाही जिन्दा जला दिये जात

मरा मजबूत हकमरस्ती (सत्य की पूजा) है।

मेरी गिल्लत (धर्म) कोमपरस्ती है।

मेरी इबादत (इश्वर आराधना) मुक्तमरस्ती है।

मेरी ब्रदालत मरा भन्त करण है।

मेरी जायदाद मेरी कलम है।

मेरा मन्दिर मरा दिल है।

मेरी उमग सदा जयान है।

—स्व० लाला लाजपत राय।

है। परिणामस्वरूप १२ फरवरी १९२० को कामेस की कार्य-समिति ने असहयोग आंदोलन बन्द कर दिया जो स्थानिक व्यवसाय का रूप धारण किए हुए था। कार्य-समिति के निर्णय का सम्मन करन कि देश ७२० फरवरी १९२० को दिल्ली में ब्रिटिश भारतीय कांग्रेस काठे की बैठक हुई उस समय ५० मोती-लाल नडक और लाला लाजपत राय न विरोध में लम्ब लम्ब पत्र लिखे। ब्रजपुरी भारतीय जेलों में बन्द पड़े थे। लेकिन महात्मा गांधी पर्वत की तरह अचल थे। सत्याग्रह न केवल लोभ का अग्रित मित्र और सबकर्मियों तक का भी मय नहीं मानता। उसे केवल सत्य में भय लगता है।

### गांधी जी प्रथक होगये

यह सब कहित है कि किस प्रकार महात्मा गांधी जी ने अगस्त १९२४ में रिहा होने के बाद अहिंसक को पद अचलित करने

का प्रयत्न किया, लेकिन कामयाबी नहीं हुई। आपने कीसिल-अवस्था के कार्यक्रम के लिए मेवम बाली कर दिया। १९२४ के सितम्बर मास में आपने लहर के समान को प्रथक रूप में प्रारम्भ किया और इसी रचनात्मक कार्य में सन्तोष किए रखा। एक प्रयास से आप राजनीतिक क्षेत्र में प्रथक ही हो गए।

### पुन रमगच पर

लेकिन १९२० के दिसम्बर मास में ५० मोतीलाल नडक न कलकत्ता न वजा की तार पर तार लखकाय और फिर एक बार महात्मा जी को राजनीतिक क्षेत्र की घुमर-धरी में जीव लिया। उस का बाद स महात्मा जी के साथ कार्य इसी एक घुमरी पर प्रथम नजर आते हैं। लाहौर-कामेस दाही-यात्रा १९३० का सत्याग्रह-आन्दोलन गांधी-अर-विन सम्मेलन सकारा की ओर न इसका मग गोलमेज कान्फरन्स में महात्मा जी का भाग आन्दोलन

स्वरूपा का है। इसी के आर्थिक सामाजिक और नैतिक नाम में अनक पहचू है। ये सब एक ही दरी के अनक पाव हैं। उन को एक दूसरा न अलदहा नहीं किया जा सकता। लहर अशुल्लस-निष्कारण और मय-निष्पत्ति का मगम आर्थिक सामाजिक और नैतिक पहचूओं में सम्मन्ध है। प्रत्येक को एक का बाद एक करके लिया गया और एक सदी का काम दस वर्षों व एक ही वर्ष में होगा। लकाशगर न १९०३ में ३ लाख रुपये मूल्य क कपड़े के साथ भारतवर्ष की प्रथमा गुलाम बनना प्रारम्भ किया था। यह प्रक्रिया १९२० में अपनी चरम सीमा पर पहुच गई उस ७२ कपड़े कपड़ों का बन्ध और लुप्त प्रता था। लेकिन हमन कवल १० लाख के स्थिति काल में इस गु-नामी के पद को अपने गले में उतार फेंका है। सवियों के पाप—असह्यता को हमन बाहर मारत के बन्दर अनुभवना भा किया और हम की डाला। कोई भी सुधार पूर्ण रूप में तो कमी भी नहीं होता। सुधार की परीक्षा यह नहीं है कि ुराई का एकदम अन्त हो जाय। हमारा अन्दर उस के विच्छेद नैतिक अनुभूति आनन्द को जानी चाहिये। बल, हत्या पर्याप्त है।

### सत्याग्रह का भविष्य उज्जल है

सत्याग्रह न हमारा सामन ही हस्त चमक कर के बहुत निय है। भविष्य में अभी यह और अनक चमक कर दिखाना बहनों के महात्मा जी पर अनुप्रासियों का अनुचित बोझ न पड़ जाय। व सत्य-बुद्धि से बहुत धरन हैं। महात्मा जी गुण के भूले हैं, गिनती क नहीं। एक पवित्र आत्मा का सत्याग्रह जितनी असफलता मान कर लगा उतनी सफलता साधारण आ मा ला को होन पर भी नहीं पा सकन।

### सत्याग्र का मंगनता

सचमुच दश के उजार में सत्याग्रह आन्दोलन का बहुत उदा भाग है। महानता की यह प्रक अर विशासता है कि आ चीज महान होता है वह जीवन में महत्त्व की ओर प्रगति करता चला जाता है और अन्त में महतो महा-न्याय के सा उधर को एक कर देतो है।

सदिया का कास साठा में ये सब एक कलित मतलब की धनार्थे मालूम पवती है। किसी की तरह अक दण्ड्य उदी-जन्दी आलोच के सामने से गुजर जात है। लेकिन व कपन-नगम की बाने नहीं हैं। सत्याग्रह के उच्च आदर्शों को सत्यपूर्ण जीवन-दृष्टि में व्यावहारिक रूप दे कर दिखाना गया है। सत्याग्रही जीवन को अविभाजनीय 'एक' समझता है न कि जुदा-जुदा विभागों में बग दका। राजनीति नाम ही जीवन का



## आर्यसमाज

और

## स्वराज्य-आन्दोलन

सुप्रसिद्ध राष्ट्रकवि सत्यदेव जी उन व्यक्तियों में हैं जिन्होंने देश और समाज की सेवा का वत ले रखा है। स्वामी अज्ञानन्द जी की जीवनी के यशस्वी लेखक भी आप हैं। आप दिवानन्द और आर्यसमाज के राजनैतिक स्वरूप का ऐतिहासिक दृष्टि में आपन अद्भुत अग्रणी बन गया है। उसी विषय पर आप की लिखी 'दिवानन्द दर्शन पुस्तक की भूमिका में स्वामी अज्ञानन्द ने लिखा था कि मैं चाहता हूँ कि इस ग्रन्थ को भारतवर्ष के राजनैतिक नाना तथा आर्यसमाजिक पुण्य मानन करने के उद्देश्य में पढ़ें। अर्जुन के पाठकों को इस लेख में भी अध्ययन के लिये उचित सामग्री मिलेगी।

साधू नीति से पराजय

क्या वह नहीं बना रहा है कि वास्तव में भारत-वर्ष का वर्तमान इतिहास बनान वाला आर्यसमाज ही है; किन्तु यदि सरकारी कर्मचारियों आदिवासी होकर आर्यसमाज पर कुछ दोषारोपण करते तो आर्यवर्ष ही क्या है?—य सत्य है जो महात्मा मुन्शीराम जी ने आर्यसमाज पर सरकारी कोप के कारणों की सीमासा करत हुए सन् १९०० में लिख था। सन् १९०१ में १९०१-०२ तक का समय आर्यसमाज के लिये राजनीतिक सत्य का समय था। वे तो आर्यसमाज का वर्य जीवन ही मर्याद सत्य है किन्तु यह सत्य 'मूल्यवान् महत्वपूर्ण है कि इन सत्य के दिनों में आर्यसमाज की कर्मजनों की वेग सरकार की ओर न का गई थी। वे न भी यह वेग उठाने परहेज न शुरू थी। स्वनामधेय पत्राचारसंगी लाला लाजपतराय ने अपनी जावनी में आर्यसमाज के 'यस गुरुकुल' के सम्बन्ध में जिन आर्यसमाज सत्य के लिये दो 'राम' में निम्न को गवा, लिखा है। 'गय मुन्शीराजजी को महात्मा राम के आर्यराय पैदागम को का 'नल के लोग सरकार का मरिया आया हूँ तब समस्त और कहने भी थे। लोगों का विचार था कि ये दोने सज्जन सरकार के सक्त पर समाज

में कुछ डाककर उनकी शक्ति को निगल रहे हैं। यदि यह विचार ठीक है जिसको कि ठीक न मानन का कोई कारण नहीं है तो यह कहना होगा कि आर्यसमाज की शक्ति को पहले फूट डालकर कम करने का मिशन की कोशिश की गई किन्तु उसमें आर्यसमाज के अन्दर एक ऐसी नयी शक्ति पैदा होगी जिस पर सरकारी कर्मचारी और भी अधिक घबरा उठ। स सरकार न आर्यसमाज के विरुद्ध दस का प्रयोग किया और कानून तथा दमन की सब शक्ति लगाकर आर्यसमाज को मिगन की कोशिश की गई। इन कोशिश में भी सरकार को यथय सफलता प्राप्त न हुई। तब सरकार ने सामनीति में काम लिया। आर्यसमाजियों को सरकारी महकमों में ऊँची-ऊँची मोरिया और रायसाहब तथा रायचन्द्रादिक लिताय खुदे भी दिये जात ल। जिन आर्यसमाजियों पर सरकारी अधिकारी कभी भ्रूणकर भी विचारस नहीं करता थे उनपर इतना अधिक विचारस किया जात गया कि कुछ ही समय में सरकारी नोकियों में आर्यसमाजियों का अद्भुत प्रवेश हो गया। आर्यसमाज के जिन कर्मियों को सेवा ही रूढ़ की गयी में सेवा जाता था सरकारी अधिकारियों द्वारा उनकी प्रशंसा के पुल बाते जात ल। हर्द्वार के परले पाक गाँव के उस निवासी पर एकल पहाड़ी जंगलों में गुरुकुल का स्थापित किया जमा सरकार के लिये



(वे०—श्री सत्यदेव जी विद्यालकार)

आर्यसमाज का सचन अधिक सत्य-हास्य और अमल कार्य था। उस समय सरकारी कर्मजों में यह लिखा गया था कि—

'आर्यसमाज के सगठन में अभी अभी जो महत्वपूर्ण विकास हुआ है वह वास्तव में सरकार के लिये बहुत बड़े सक्त का कोत है।' गुरुकुल के सम्बन्ध में ये शब्द तब लिखे गये जब आर्यसमाज के प्रसिद्ध सरकारी दमन नीति में काम ले रही थी। बाद में उन सामनीति में काम लिया गया तब उसी गुरुकुल के सम्बन्ध में सयुक्त-प्रान्त के लेफ्टिनान्ट गवर्नर सर (इस समय के लार्ड) मस्टर ने गुरुकुल में आकर यह कहा था कि एक आर्यवर्ष विचारविमर्श के लिये मेरा आर्यवर्ष गुरुकुल है। निस्सन्देह इस सामनीति में सरकार ने आर्यसमाज की शक्ति को कुटित कर दिया। आर्यसमाज की जिस तज धार में अधिकारी घर-घर काया करते थे उस पर बहुत जग जग गया। आपस की गृह-क्रोध, जबरदस्त फूट और दस बारह-बर्ष का निरन्तर दमन, जिस शक्ति के तेज को कम नहीं कर सका वह कुछ ही दिनों में बिलकुल निहामी कर दी गई। आज आर्यसमाज के प्रति सरकार को न कुछ सन्देह है न उसमें कुछ भय है और न उसका उसपर कुछ दबाव ही है। निर्वाचन समितियों के समान आर्यसमाज का अस्तित्व प्रायः निश्चित हो गया है।

राष्ट्र-विधाविनी नीति

सरकार ने आर्यसमाज की बहरी शक्ति को कुचलन की इस प्रकार चेष्टा क्यों की? महात्मा मुन्शीराम जी के शब्दों में इस प्रश्न का उत्तर यह दिया जा सकता है कि जो कि आर्यसमाज भारतवर्ष का वर्तमान इतिहास बनान वाला था। इतिहास वस्तुतः राष्ट्र की अस्मिता संपत्ति है। विजेताओं ने पराजितों के इतिहास को आर जिस सामग्री ने इतिहास को बनाया जाता है उस सब को न कबल विगा-बन केन्तु मिगन तक की चेष्टा की है। ऐसा यत्न किया है कि पराजित अपनी प्राचीन सभ्यता, प्राचीन इतिहास, प्राचीन गौरव और प्राचीन परम्परा को एकदम में भूल जाय। भारतवर्ष की अपनी सभ्यता अपना इतिहास, अपना गौरव और अपनी परम्परा इतनी ऊँची, महान्, विशाल और प्राचीन थी कि विजेताओं के लिये यह सम्भव नहीं था कि भारतीयों के सामन में उस सब के आर्यवर्ष को दूर किंच बिना व चेष्टा अपना संप्रत्यक्ष की जगों को मजबूत कर सकते। लार्ड कलाचन ने कुटनीति के जोर पर गोरों के जिस शासन को भारत में कालम किया हुआ था, लार्ड मैकाले ने उस को अपनी कलम के जोर से स्थिर किया। लार्ड मैकाले ने १८३४ में लार्ड मैकाले ने भारत की शिक्षा के सम्बन्ध में जो लेख लिखा था वह विजेताओं के उन यत्नों का जीतना-जगता उदाहरण है जिनके द्वारा वे पराजितों को अपना आर्यवर्ष स दूर ले जाने का यत्न किया करते हैं। लार्ड मैकाले ने उस लेख में भारतीय इतिहास भूलोल विचार, साहित्य, आर्यवर्ष और धर्म इत्यादि सभी विषयों का मजकूर किया है और उनको एकदम होय था तुच्छ बतात दिये लिखा था कि 'हमें अपने सब यत्न हिन्दुधर्म में एक ऐसी प्रमाण पैदा कर देने में लगा देने चाहिये, जो हमारे ओर उन करोड़ों के बीच में मधुसूदन का काम करे, जिनपर इस शासन करे। यह जमात भले ही हाथ-पास तथा बहिर में भारतीय रहे, पर आचार-विचार, रहन-सहन और भाषा-व्यवहार में पूरी प्रवेश हो जानी चाहिये।' अग्राजी विचार-विधायकों से निष्कलन चारे-सुचकों को ऐसा बना लेने में भारतीय राजनीतिज्ञों को जो सफलता प्राप्त हुई है, वह इतनी स्पष्ट है कि उसके सम्बन्ध में कुछ भी लिखन की आवश्यकता नहीं।



बाई मैका ने कुछ ही दिनों में इस सफलता को पूरी तरह भाग लिया था और अपने पिता को १०३६ में ही एक पत्र लिखा था— जो भी हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर लेता है वह अपने धर्म में सच्ची अन्धा को बेटा है। कुछ लोग कबल विश्वास के लिये उसको मानते हैं। परन्तु अधिपति ईसाई हो जाते हैं। यह भरा पक्का विश्वास है कि यदि शिक्षा की हमारी योजना का पूरी तरह अनुसरण किया गया तो अब स ३० बरस बाद बंगाल क प्रतिष्ठित पत्र उन्नत घरानों में एक भी हिन्दू अपने धर्म में अन्धा रहना वाला नहीं रहेगा। यह भी त्विण क प्रकाश के समान स्पष्ट है कि लाख मैका ने का यह वह विश्वास कि तना सत्य सिद्ध प्रमाण है।

#### भयानक षडयन्त्र

अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली द्वारा जिस प्रकार उन्नत तथा प्रसिद्धि वरान के नवयुवकों की अपन धर्म पर से अन्धा दूर की जा रही थी उसी प्रकार सर्वसाधारण में यह कार्य ईसाई-मिशनरियों द्वारा किया जा रहा था। ईसाई-मिशनरियों का ध्यान धर्म में अन्धा थी और वे उस अन्धा से ही प्रेरित हो कर भारत में ईसाई-धर्म का प्रचार कर रहे थे—इस को मानन के लिये लेखक तैयार नहीं है और न यह यह की मानन को तय्यार है कि उपकार की किसी पवित्र व ऊंची भावना से प्रेरित हो कर ईसाई पादरी इस देश में आये थे। उस का यह हठ विश्वास है कि लाख मैका ने उन राजनीतिज्ञों और ईसाई पार्षदों में सदृश भारत को ईसाई बना न का एक बड़ा गहरा षडयन्त्र और भयानक षडयन्त्र था। ईसाईयों का पहला गिराव जो मद्रास प्राया उस की यह स्पष्ट और निश्चित योजना थी कि एक चौथाई शताब्दी में सदृश भारत को ईसाई बना दिया जायगा। हिन्दू-समाज की उस समय की अस्त-व्यस्त सामाजिक-धर्मस्था और धर्म-जीवी लोगों की धर्म के नाम पर ही जान वाली समझती व्यवस्थाओं में ईसाई पार्षदों ने पूरा प्राण लगा उठाया। प्रभु क विनाश खेल और दिया बुझा कर बखर सोन वाले मालिक के भ्रम को जमे चोर सड़क ही में छूट लेते हैं लखलहाती हुई सखी की रखवाली करने की चिन्ता में बेचुन होकर मस्त पड़े रहने वाले के सेतों को जैसे पछ

अनायास ही कर जाते हैं और जैसे शकाल से सुसज्जित रहन पर भी अनियन्त्रित और अश्रयस्थित स्ना पर दुश्मन खुलासा से विजय प्राप्त कर लेते हैं, ठीक वैसे ही ईसाई पार्षदों ने भारतवर्ष में ईसाईयों का प्रचार करने में सफलता प्राप्त करती शुरू की। परिवार के परिवार और गांव क गांव ईसाईयों की दौड़ा में दीक्षित होन लग गया। पश्चिम की यह लहर आधी से भी अधिक तेजी के साथ सार देश में फैल गई। किसी लेखक ने यह विलकुल ठीक लिखा है कि पश्चिम के विजयी लोगों ने शायद गोली और बारिल क जोर पर ही विदेशों में अपना शासन स्थापित किया है। भारत क सम्मन्ध में उस लेखक का यह कथन सोलह आना सत्य है। यहा गोली से भी उतना काम नहीं लिया गया जितना शराब और बाइबल से लिया गया है।

#### भार्यसमाज कार्यक्षेत्र मे

देश के आदर्श देश की नित्य बढ़ता और देश की राष्ट्रीयता को मिट्टी में मिला देने वाली इस लहर का मुकाबला करने के लिये कौन-बड़े कौन-कौन किये गये। पर वे सब इस लहर में घिलीन होते चले गये। बंगाल में ब्राह्म-समाज और बम्बई में प्रायश्चित्त-समाज को भी प्राप्ति मिल गये यन्त्रों को यह लहर वैध भी अपने में समा गई जैन पानी की छोटी धारायें किसी नदी में जा मिलती हैं। काशी के परिहर्तों क हाथ में धर्म के नियन्त्रण की बागडोर देने के बाद सब देर-बारी विलकुल निश्चित हुब पड़े थे। पर, शास्त्री नीलकण्ठ सखीलों ने जब ईसाइयत के सामन सिर ऊंचा किया और भी कष्टवन्धन सखीलों ने यह उद्योगित कर दिया कि हिन्दू धर्म किसी काम का नहीं है, तब ईसाइयत की इस वेगवती धारा में गहर लेने वाला कोन था? कौन उसके प्रभाव को रोक सकता था? यह समय वस्तुतः बहुत ना-नुक था। देश का भाग्य जीवन-मृत्यु क बीच में खटक रहा था। पराजित पर दलित, साधन-हीन और अक्षयक्ष की ओर सदा के लिये पराधीन बनाय रहन का षडयन्त्र पूरी सफलता प्राप्त कर रहा था। यह समय था जब अर्थात् दयानन्द सरस्वती द्वारा संस्थापित भार्य-समाज कार्यक्षेत्र में आता है और जीवन-मृत्यु की सदिग्ध अवस्था में स देश का बदल कर उस के

सामन प्राचीन आदर्श को उपस्थित करता है।

#### गुल्लत या 'षष्ठ राजद्रोह'

महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों और व्याख्याओं में राष्ट्रीयता का जिस प्रकार प्रतिपादन किया है उस का परिचय देने से पहले भार्यसमाज क कार्य पर दृष्टिगत कर लेना चाहिये। महर्षि दयानन्द की मृत्यु के बाद उन का स्मारक बनान की चर्चा होती है। कई प्रस्ताव सामन आते हैं। साहोब ने भार्यसमाज का विशेष जोर था। बहा स्कूल तथा कालेज कोलन का प्रस्ताव हुआ और वह कार्य में भी परिचाल हो गया। साहोब में स्कूल और कालेज का १००० में खुलना एक असाधारण घटना थी। वह कालेज कबल भार्यसमाज के स्थापक महर्षि दयानन्द का ही स्मारक न था, किन्तु शिक्षा-क्षेत्र में ईसाई-पार्षदों और सरकारी अधिकारियों द्वारा किय जान वाले प्रयत्नों का एक जबरदस्त मुकाबला भी था। आगे चल कर कालेज पढाई के सम्बन्ध में अतमेव हीन पर विचार के पास कामनी गांव में गुल्लत की स्थापना हुई। कालेज की सरकारी अधिकारियों ने अपने चतुर्गुल में फसा लिया। पञ्जाब विश्व-विद्यालय क साथ उस का सम्बन्ध हो गया। सरकारी कालेजों और भार्यसमाजी कालेज ने नाममात्र का ही भव रह गया। कालेज के संचालक रूप उसके आदर्श-फलता पर भार्यसमाज न भारी विप्लव की एक अथानक लहर उठ करी हुई और इस समय के प्रथम-मन्त्री सि० रैम्से मैकडान्डन १९१४ में गुल्लत आन के बाद जो लेख लिखा था उसमें गुल्लत के वास्तविक रूप उसके आदर्श और धर्म का पूरी तरह उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा था कि—

सरकारी लोगों के लिये गुल्लत एक पहली है। आध्यापकों में एक भी भ्रमज नहीं है। अंग्रेजी साहित्य की पढ़ाई और ऊंची शिक्षा के लिए पञ्जाब दूनि-सिटी द्वारा नियुक्त मुत्तर्क भी यहाँ काम में नहीं लाई जाती सरकारी विश्वविद्यालय में परीक्षा के लिये यहां से एक नौ विद्यार्थी को नहीं भेजा जाता विद्यार्थियों को गुल्लत में अपनी ही उपस्थिती दी

जाती हैं। सचमुच यह सरकारी की चमत्ता है। व्यवस्था इस सरकारी अधिकारी के मुख से पहली बात यही निकलेगी कि यह स्पष्ट राजद्रोह है। सन् १८३५ के उपरि लेख (जिस की ओर ऊपर संकेत किया गया है) में भारत की शिक्षा के सम्बन्ध में मेकले के सम्मति प्राप्त करने के बाद भारत की शिक्षा के क्षेत्र में यह पहला ही प्रयत्न यत्न किया गया है। उस लेख के परिणामों में प्रायः सभी भारतीय असन्तुष्ट थे, किन्तु जहा तक मुक्त को मस्त्रम है गुल्लत के सहायकों को सिवा किसी और न उस अस्त-व्यस्त को कार्य में परिचाल करते हुए शिक्षा क क्षेत्र में नया परीक्षण नहीं किया है। गुल्लत क सम्बन्ध में महात्मा गांधी का मत यह है कि भार्य-समाज क कार्य का सर्वप्रथम परिणाम गुल्लत की स्थापना है। यह सर्वत्र धर्म में राष्ट्रीय सत्य है, जिसका शासन और संचालन सब स्वतन्त्र है। येन और भी उद्देश्य दिया जा सकते हैं। इन सब उद्देश्यों का सारांश यह है कि भार्यसमाज द्वारा गुल्लत का स्थापित किया जाना वास्तव में देश क स्वतन्त्र-आन्दोलन की दृष्टि से बहुत बड़ा कार्य है। मले ही भार्यसमाज का लक्ष्य केवल क विद्यालय अथवा भार्य-समाज के उपदेशक देना करना ही क्यों न रहा हो किन्तु सरकारी लोगों के लिए वह स्पष्ट राजद्रोह-पूर्ण कार्य था। जिस कार्य द्वारा बहुत सोच-विचार क बाद अपने शासन को स्थिर तथा हठ करने की सरकारी की नीति का विरोध होता हो और सरकारी की सत्ता की इतनी स्पष्ट तथा पूर्ण अन्धता होती हो वह यदि राजद्रोह नहीं था तो और क्या था? भार्यसमाज गुल्लत द्वारा जिस उपदेशकों के पैदा होने की आशा रखता था उन क सम्बन्ध में सरकारी का प्रयास यह था कि—

इस (गुल्लत) का अर्थ न काहे कि तन ही दोष क्यों न हों किन्तु भक्तिभाव और बलिदान की उच्च भावना में प्रेरित जोशीले धर्मपरपरा व्यक्ति का वह तैयार करने का वह सब से सुगम और उपयुक्त साधन है। इस परकित से जो युवक तैयार होंगे वे सरकार के लिए अत्यन्त अमूल्य होंगे। उन में यह शक्ति

होगी, जो इस समय के आर्य-समाजी उपदेशकों में नहीं है।

उन का उद्देश्य सार भारत में एक ऐस जति-धर्म की स्थापना करना होगा जिस से सारे हिन्दू गुरुमुख की एक गुरुता में बंध जायेंगे। वे सब दयानन्द क सत्यायुक्तवाद का म्यारहवें सलुलस की इस आशा का पलन करेंगे कि अष्टा और प्रेम से अपने तन मन धन—सर्वस्व को देश हित के लिये अर्पण कर दो।" एक लम्बे

गुरु सरकारी लेख की ये कुछ पंक्तियाँ हैं। भले ही आर्य-समाजी आर्यसमाज को धार्मिक, सार्वभौम, ब्राह्मण या उपदेशक बताकर गुरुमुख को भी बेसा ही बनाम की कोशिश क्यों न करें, पर इस सन्नाह से कौन इनकार कर सकता है कि गुरुमुख के सो में सो स्वातंत्र्य राष्ट्रीय वृत्ति क है, एक भी सरकारी नौकरी में नहीं है, आर्यसमाज में उपदेशक का कार्य करने वालों की अपेक्षा कामेस का काम करने वालों की संख्या कहीं अधिक है और कामेस के प्रसन्नयोग तथा सत्यायुक्त-समाज में जिस निर्याता सन्नाह, त्याग, बलिदान और तत्परता का परिचय उन्होंने दिया है, वैसा कहीं आर्य मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। गुरुमुख की स्थापना देश के स्वराज्य-आन्दोलन के लिये आर्यसमाज का इतना महत्व कार्य है जितना कि किसी भी और संस्था न अब तक भी नहीं किया है। महात्मा गांधी के प्रसन्नयोग-आन्दोलन से समग्ररूप में देश का ध्यान १८९०-२१ में जिस राष्ट्रीय शिक्षा की ओर आकर्षित हुआ, आर्यसमाज न उस का धीमणेश १९०१ में ही गुरुमुख के रूप में कर दिया था और राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में उस समय तक एक सरल परीक्षण भी करके दिखा दिया था। भारत की प्राचीन सभ्यता प्राचीन इतिहास तथा प्राचीन साहित्य के जिस उच्च आदर्श को सदा मैकाने और उसके साथी मर्यापट करन पर तुले हुए थे, उसी की रक्षा के लिये आर्य-समाज न गुरुमुख की स्थापना की थी और इस प्रकार उनके यत्नों की सफलता को सदाई में डाल दिया था।

### वृद्धन का महाभोगे

गुरुमुख की स्थापना के समान ही आर्यसमाज के प्रचार पर भी थोड़ा विचार करना चाहिये। पहिले से आधी के समान उठी हुई ईसायत की लहर के लिये

आर्यसमाज चीन की दीवार साबित हुआ। ज्यों ही आर्यसमाज की बढ़ान के साथ ईसायत की लहर टकराती है, ईसायतों के मुख-स्वप्न टूट जाते हैं और सरकारी अधिकारियों को भी मादूम हो जाता है कि ईसाई पादरियों के सदा अपराध को यहा स्थिर आया हट करना उनका सुगम नहीं है। आर्य-समाज के प्रचार-कार्य न उन हिन्दुओं के कान खड़े कर दिये जिनको

कि उनकी जड़ों को ही हिला दिया। अतः दयानन्द और आर्यसमाज के खड्गनात्मक कार्य पर इसी दृष्टि में विचार किया जाना चाहिये। ईसाई-पादरियों और सरकारी अधिकारियों के पवयन का आर्यसमाज न जो भगदा नाक कर दिया उसने आर्य-समाज पर सरकार की इतनी नेकी दृष्टि रही कि उसको नामशेष करने में सरकार न कुछ भी उठा नहीं रखा। आर्यसमाज क हर एक कार्य

अपि दयानन्द की राष्ट्रीयता क मूलक



सामी श्रद्धानन्द

अन-भरियों की तरह ईसाई पादरी बिना रोक-टोक क मूढ़ रहे थे। हजारों के बीच में रुका हुआ आर्य-समाजी युवक भी बूढ़ पादरी का मुँह बन्द कर देता था। हिन्दुओं के पुराने रीति-रिवाज, अन्धविश्वास, झूठ-झात सरोक्षी प्रथा और खान-पान के मेक-भाव से ईसाई बहुत लाभ उठा रहे थे, आर्यसमाज न उस सब पर ऐसा कुतरपात किया

अन अपि दयानन्द क हर एक नेत्र में म सरकार को राजद्रोह की गंध आन लगा। वलोलान्द शिरोल से स्वामीजी की गोकुणानिधि तक को राजद्रोही प्रत्य बताया है और उनके गोयध बन्ध करान के यत्नों को भी प्रिंग-विरोधी-भाषना में भरा हुआ कहा है। उसन यहा तक लिखा है कि "बहा-बहा आर्य समाज का जोर है, बहा-बहा

राजद्रोह प्रबल है। आर्यसमाज का निकल हठात् निल-सम्प्रदाय की याद डिलाता है जो सोलहवीं शताब्दी क आरम्भ में नामक द्वारा आरम्भ किये जान पर धार्मिक एवं नैतिक सुधार का आन्दोलन था और पचास ही वर्षों में हजरोविन्द की आधीनता में वह एक शक्तिशाली राजनीतिक और मज्जिक भगउन बन गया।

### आर्यसमाज का दमन

आर्यसमाज को कुचलन के लिये किये गये सरकारी दमन की सन कहानी यहा देन की आवश्यकता नहीं। सकल मात्र के लिये इतना हा लिखना उस होगा कि मनाओं की राजभक्ति के लिये आर्यसमाजियों को सब म अधिक भयानक समस्या जाता था। कुच-लिया में आर्यसमाजियों का जाल निपिट था। म्ना विभाग की मो-रिथो म नर्या को आर्यसमाजी हान न हा अलग किया गया था। स्वाभिमानी अर्या गैरमक सिख अर्या गुप्तलोन की भा आर्य-समाजी कहा जाता था। सरकार प्रजातंसिंह का आर्यसमाज क साव परोक्ष में भी कोई सम्बन्ध नहीं था पर उन को आर्यसमाजी कहा गया। कोमगाता मात क बीर नता बाबा गुरुद्वारासिंह भी आर्य-समाजी हटार दिये गये थे। पणि-याला का गुरुद्वारा आर्यसमाज को कचलन क लिये किये गये यत्नों में सत्र म अधिक बमोनी हरकत है। सत्याधर्मकण क प्रतिवृत्ति भी गुरु-वम बलाय गये थे। पुलिस की वृत्त नमर की लिस्ट आर्यसमाज क रजिस्ट्रार पर स तय्यार की जाती थी। साराहिक अधिवेशनों पर भी निगरानी रखी जाती थी। महात्मा मुन्शीराम जी के शब्दों में आर्यसमाजी आरज ला था, राज-ग्राह का सत्र विधान उन के लिये हा था और कोई भी उन पर नि-शाना साध सकता था। पञ्ज-कमरा लाला लाजपतराय और भाई परमानन्द जी पर इतनी न्दी दृष्टि का कारण उन का आर्य-समाजी होना था था।

### मन्येह निराधार न था

सरकार का यह सन सदैर और दमन बिलकुल निराधार ही न था। आर्यसमाज का कार्य नहा सरकार के प्रतिकूल था बहा उनमक प्रवर्तक अपि दयानन्द का जीवन और उन के आरज उपरश ही स्वातन्त्र्य-भावना—राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत थे। देशिये तथा

देशभक्ति की भावना उनमें बूट-बूट कर भरी हुई थी। सन् १८५७ के पराजय के बाद देशवासियों में स्वदेशी स्वरूप कचवर्ती साम्राज्य आदि की भावना उदीर्य करने वाले पहले व्यक्ति श्रुति दयानन्द थे। उनके सत्यार्थप्रकाश में कवल ख-सहन-सहन समाज-सुधार और धर्म-प्रचार की ही बातें नहीं हैं, अपितु उस में देश-प्रेम, देश-भक्ति, स्वदेशी स्वरूप और कचवर्ती-साम्राज्य का आदेश उपदेश, तथा भार्यों का भी जहा-तहा प्रतिपादन किया गया है। छुट स-मुत्तम में राजनीतिक चर्चा का सिवा और कुछ भी नहीं है। श्रुति दयानन्द क स्वरूप का भार्यों किन्ना ऊँचा था ? उन्होंने लिखा है कि—

‘कोई कितना ही कर, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह स्वधर्परि उत्तम होता है। राजशा मत-मतान्तर के आग्रह-रहित अग्रज और पराज पिता मता का समान कृपा, न्याय, और दया का साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदयक नहीं है।’ ऐस उद्धरणों का समग्र कर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा जा सकता है। वहाँ की राष्ट्रिय हृष्टि से व्याख्या करके उन में स्वरूप तथा स्वदेशी आदि क उपदेश की ओर निवेश करने वाले भी पहले महापुरुष दयानन्द ही हैं। ‘आर्यभित्ति’ में ईश्वर की राजा महाराजा, महाराजाधिराज, सम्राट आदि शब्दों से प्रार्थना की गई है। उसी में ‘कन्या पितृस्व का महर्षि ने यह अर्थ किया है कि—

‘हे महाराजाधिराज परमहंस’, ‘कन्या’ अलखड—वचवर्ती राजा क लिय शीर्ष, चैर्ष, मोति, चित्त, पराक्रम और बलाहि उत्तम युद्धक कृपा में हम लोगों को यथावत पुष्ट कर। अन्य देशवासी राजा हमारा देश में कभी न हो तथा हम लोग पराधीन कभी न हों। यजुर्वेद-भाष्य अध्याय १० में महर्षि ने स्पष्ट आदेश दिया है कि—

‘मनुष्यैश्चिन्त्या प्रयोजनाभ्या प्रवर्तितव्यम्। प्रथमम्—अन्य-न्यपुत्रायाश्चैरीरारोगाभ्या चव-वर्तारज्यप्रतिपत्तिरुक्तम्। द्वितीयम्—सर्वो, विद्याः पठित्वा तासा सर्वेन प्रचारी करणम्।’ अर्थात्—‘मनुष्यों को अत्यन्त पुण्यार्थ कर शरीर-

रोग्य द्वारा चकवर्ती राज्य की प्राप्ति करनी चाहिये और सब विद्याएँ पढ़ कर उन का प्रचार करना चाहिये।’ इसी हृष्टि से श्रुति दयानन्द न ब्राह्मणसमाज और प्रार्थना-समाज में स्वधर्प-भक्ति की बहुत मूल्यवान् बातों के बाद लिखा है कि—

आर्यसमाज के साथ मिलकर उस के उद्देश्यनुसार आचरणा करना स्वीकार कीजिय, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थ में अपना शरीर बना, अथ भी पालन होता है, आग होगा, उसकी शक्ति अपने तन-मन-चयन में सब जन मिल कर प्रीति में करें। इसलिये जैसा आर्य-समाज आर्यवर्त देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता।’ श्रुति दयानन्द के इस उपदेश और आदेश को सामन रख कर यदि जीवन-कार्य पर विचार किया जाय तो सहज में समझ में आ सकता है कि महर्षि देश-प्रेम की किस भावना से प्रेरित होकर किस आशय से राजपुत्रान के देशी राज्यों में भ्रमते कितने थे ? उन्होंने बारी बारी में जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, शाहपुर आदि राज्यों को परखा किन्तु उनकी आशा किसी से भी पूरी न हुई।

स्वर्गाय श्री श्यामजीकृष्ण वर्मा, जिन्होंने कुछ वर्ष इंग्लैंड में बितान के बाद अपना शेष जीवन पेरिस में पुरा किया और वहा ‘इण्डिया होम’ की भी स्थापना की, श्रुति दयानन्द के अत्यन्त शिष्य थे। इसमें कौन एकाग्र कर सकता है कि उन क हृदय में देशभक्ति और देशप्रेम का अङ्क पड़ा कम वाद श्रुति दयानन्द ही थे। श्रुति दयानन्द क राष्ट्रीय रूप की प्रतिमूर्ति युद्धक क सत्प्राप्त दिग्गज स्वामा अग्रानन्द जी थे, जिन क जापान की कई घण्टायें भारत क राजन-तिष्ठ स्वतन्त्रता की प्राप्ति क सामग्री में सहा ही अभिमान के साथ यह की जाती रहेगी। उन्नीसवीं भारत विराजत, पञ्जाब और सयुक्तप्रान्त की साधारण जाति में आर्यसमाज का बहुत बड़ा हाथ है। उन प्रान्तों क नताओं और कार्यकर्ताओं में नवी सख्या आर्यसमाजियों की है। शिला, समाज-सुधार, धार्मिक जागृति आदि क तन्त्र म भी उस न उल्लेखनीय कार्य किया है। उस क इस सब कार्य में देश के स्वरूप-

आन्दोलन म निश्चय ही विशेष शक्ति और बल प्राप्त हुआ है। इस प्रकार स्वरूप-आन्दोलन में आर्यसमाज का जो हिस्सा है, उस पर सदैव अभिमान किया जा सकता है।

### नैतिक पतन

पूर, वह भी कुछ कम दुःख का विषय नहीं है कि इतन गोरख और अभिमान का कार्य करने वाली इतनी महान सख्या इतनी जल्दी अपने राजनीतिक स्वरूप को बिच्छू मूल ही गई। आज उस के लिये अपने सत्प्राप्त क आशय तथा उपदेश, जीवन तथा बलिदान और त्याग तथा मित्र का कुछ भी अर्थ नहीं है। तभी तो आर्यसमाज देश की आजादी की लड़ाई से बिच्छू किमारा कटे हुए है। उस के सामयिक नेताओं ने यहा तक घोषणा कर दी है कि आर्यसमाज धार्मिक सख्या है, राजनीति से उस का कोई प्रयोग नहीं। राजनीतिक हथि म भी ऊँचे से ऊँचे आर्यों को सामन रख कर स्थापित किये गये आर्यसमाज का यह सहज नैतिक पतन एक स्वतन्त्र आस्था पृथक् लेख का विषय है।

—०—

### अकालों की करुण-कथा

वर्षा ऋतुहवीं शताब्दी में भारत की दशा बहुत खराब हो गई थी, तथापि उन जो सालों में बार बार से अधिक प्रकल नहीं पड़ा था। लेकिन १९वीं सदी में अनेकी राज्य फैलते ही हमारी सुखला सु-फला शस्यप्रणाला मात्र-भूमि में देशव्यापी और भीषण दुर्भिक्ष न अपना घर बना लिया। सन् १८०१ से १८२५ तक भारत में प्रकल से १० लाख आदमी मरे। कमरा: बहुत बहते १९वीं सदी के उत्तरार्ध के १८ भूमिओं में प्राय: २ करोड़ ६० लाख आदमी मर। इनमें से कवल ७० वर्ष क अन्दर २ करोड़ ६० लाख भारत क साल हा अन्न 'हा अन्न' करते हुए सुधा की भीषण पन्थानों में कृष्टपा कर मर गय। इस हृदय-विदारक दुर्घटना पर हमनामों को सम्बोधन कर मि० डिम्बि न लिख था— You have died, you have died uselessly”

१७६३ से १८०० तक दुष्पवी भर में ३० लाख से अधिक आदमी नहीं मर। पर इसी समय भारत में सवा दो करोड़ आदमी मूल से मर गय।

—०—

## देहली क्लाय एण्ड जनरल मिल्स कं० लि० देहली

देहली क्लाय मिल की निम्नी उत्तरीय हिन्दुस्तान क सबसे बड़े मिलों में है। इस मिल में हर किस का सूती कपड़ा बनता है। इसकी बनी हुईं सुजनी तालिया टैपेट्री डेविल-कवर इत्यादि मुख्य वस्तु हैं। इसके अतिरिक्त सीटिंग, गार्डिंग, लैट्रस, डुल, जीन इत्यादि प्रत्येक वस्तु के बने छोटे मनुष्यों क लिय तथा अत्यन्त सुन्दर-सुन्दर डिजानों की किनारी वाली साडिया कियों के लिये तैयार होती हैं। इस मिल के माल की सुन्दरता सस्तापन मजबूती प्रशस्नीय है और देहली तथा आगरा में खरीज की दुकान तथा अन्य बरेबरे शहरों में इसके निम्न एजेंटों म तैयार हो सकता है :—

१—दयाचन्द हरदयाल अमृतसर।

२—“ साकर ( सिन्ध )

३—“ जम्मु तवी ( काश्मीर )

४—जम्दाला लूजमल कानपुर।

५—“ लखऊ।

६—वावुराम रामरतन कलकाता।

७—जैसाराम खुरीराम मुलतान।

८—ला० काशीराम सहाजी पेशवर।

९—रामजीदास श्रीराम कलकता।

१०—कन्देयालाल मोलामां जयपुर।



गबान न मनुष्य को जीविका उपार्जन करने के लिए भूमि उपहार में दी है और उस का पदाना या

बहाना मनुष्य के अधिकार से बाहर है। यह सम्भव है कि किसी भूमि को जहाँ पानी लड़ा रहा है अथवा किसी और प्रकार से उसकी उपेक्षा-शक्ति नष्ट हो गई हो, मनुष्य ठीक करके भूमि के रकबे में कुछ वृद्धि कर सके। इसी प्रकार भूमि को अन्य कमियों में लाकर रकब में न्यूनता भी की जा सकती है। परन्तु यह वृद्धि और न्यूनता इतनी थोड़ी है कि मनुष्य भूमि के घटान या बढ़ान में कोई विवेक महत्त्व नहीं रखता। यह मनुष्य के अधिकार में है कि वह अपने ज्ञान या जानकारी के किसी खेत से एक मन की बीया अथवा १० मन की बीया गेहूँ पैदा कर सके। जब भूमि भगवान का दिया हुआ उपहार है और उसकी उपज का मनुष्य या अधिक होना मनुष्य के परिचय पर निर्भर है तो प्रत्येक जाति और देश का वह कर्तव्य हो जाता है कि वह उसे नियम बनाये, जिस से पृथ्वी से अधिक से अधिक लाभ उठाना जा सके। साधारणतया कोई भी देश ऐसा नहीं है, जिस न इस समस्या का हल करने का प्रयत्न न किया हो। प्रत्येक देश न अपने इतिहास और जनता के विचारों के अनुसार भूमि-समस्या का हल किया है। इस छोटे से लेख में भूमि-समस्या सम्बन्धी सभी परलुप्तों पर विचार करना असम्भव है, परन्तु एक शब्द में यह कह सकते हैं कि प्रत्येक जाति व देश को वे सब उपाय काम में लाने उचित हैं, जिन से खेत की उपज अधिक से अधिक की जा सके। यदि ऐसा करने न किसी व्यक्ति को इतिहास भी पढ़े हो, तो उसकी परवाह नहीं करनी चाहिये।

भारतवर्ष में

भारतवर्ष में जो नियम भूमि के बाट करों उस के स्वत्व के विषय में पाये जाते हैं, वे किसी प्रकार भी आदर्श नियम नहीं कहे जा सकते। जो मनुष्य भूमि से लाभ पदार्थ उत्पन्न करता है, उसका भूमि पर कोई स्वत्व नहीं है। आज यह इस खेत को जोतता है। आज उसे दूसरे खेत की देख-रेख करनी पड़ती है। जिस देश में यह स्थिति हो, उस में यह अवसर यह है कि किसान अपने काम को खेती

## भूमि-समस्या

( ले०—डॉ० मुख्तारसिंह भू० पू० पद्म० पल० प० )

किसानों की भूमि-समस्या आजकल की महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक है। डॉ० मुख्तारसिंह भू० पू० पद्म० पल० प० इस विषय पर अधिकार-पूर्ण लिख सकते हैं। उन की लिखी 'Rural India' अत्यन्त प्रामाणिक पुस्तक है।

इस लेख में उन्होंने सरकार को परामर्श दिया है कि यही समय है जब सरकार को बहुत कम सूत्र पर अपना मिल सकता है। उन सब जमींदारों से जमाने लापट कर किसानों को नव देशी चादिय और ५०-६० साल की किन्न बाघ देशी चादिय। इस तरह कुछ ही समय में किसान भूमि के मालिक बन सकते हैं।

कर सके। जहाँ किसान को भूमि में कोई अधिकार प्राप्त है वहाँ उन जमींदारों को कर देना पड़ता है, जो प्रायः इतना अधिक होता है कि उस कृषक के बाद किसान के पास कुछ भी नहीं बचता। एम देश में, जिन कृषि-प्रधान बड़ा जाता है, खेती करने वालों का दगा अत्यन्त शोचनीय है।

यह सिद्धांत भली-भांति प्रत्येक देश में माना जा चुका है कि भूमि की उपज बढ़ाने का एकमात्र उपाय यह है कि खेती करने वाले किसानों का भूमि पर सब प्रकार से पूर्ण अधिकार हो जिस से किसान भूमि को अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति कर अपने बच्चों का पालन-पोषण कर सकें। जमींदारी अथवा यमि में अन्य प्रकार के अधिकार रखने वाले मनुष्यों की सस्या प्रत्येक देश में रहती आई है परन्तु प्रत्येक देश के निवासियों ने इस समस्या को हल करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने जमींदारों को हटा कर किसान को भूमि का स्वामी बनाना अपना ज्ञान समझा है। इस नैयम देश में तो जमींदारों को कुछ दिवस बिना ही उन की भूमि छीन कर किसान को स्वामी बना दिया गया है। बहुत से देशों में समाज में घोर परिवर्तन करना उचित नहीं सम्भव गया और सरकार की तरफ न जमींदारों को ज़माने खरीद कर किसानों को खरीदने की सुविधा पदा करके भूमि के अधिकार खेतों करने वालों को दे दिये गये हैं।

किसानों का भूमि पर स्वाभिल

हमारे देश में तीन तरीका काम में लाना चाहिये इस बात का विचार हमें करना है। हमें यह

कहने में तनिक भी आपत्ति नहीं कि आजकल की अवस्था कदापि सतो-पजनक नहीं कही जा सकती। जो किसान खान के लिए धान, वस्त्र के लिए कपास पैदा करता है वह भूला धार नगा रहता है। दूसरे मनुष्य जो उसमें ५० वा भाग भी काम नहीं करते व अधिक खा-लाकर अजीर्ण हुए करने के लिए द्रोण-सोचन करते हैं, उसमें से उत्तम वस्त्र पहन कर न केवल वर्षों गर्मी और जाड़े में अपने शरीर को बचाव हैं, प्रत्युत वस्त्र पहनना शरीर की शोभा के लिए आवश्यक सामान हैं। भूमि पर किसान का स्वत्व प्राप्त करने के लिए एक तरीका यह हो सकता है कि ऐसा कानून पास कर दिया जाय कि जो मनुष्य जिस भूमि को जोतता है, वही उसका मालिक हो और यदि उस की आय इतना हो कि वह खान-पीन से कुछ बचा सके तो सरकार को कर दिया कर। यह तरीका बहुत से लोगों को अच्छा प्रतात होगा परन्तु इस में भी एक आपत्ति है। उन लोगों को, जिन्होंने बहुत सा धन द कर भूमि के स्वामित्व को खरादा है बिना कुछ दिवस राजा से रक बना देना कहा तक न्याय्य और उचित है ? यह ठीक है कि प्राचीन राजा ने राजा तक भी भूमि का राजा न सम्भाला जाता था परन्तु आज देश बल्लभ है और प्राचीन नियमों को आदर्श सम्भलना ठीक नहीं है।

दूसरा तरीका, जो हमारे विचार में न्यायपूर्ण और सम्भव प्रतीत होता है यह है कि साधारण जमींदारों की जमींदारियाँ सरकार खरीद ले और उन्हें किसानों को लम्बे अर्थ पर बेच दे।

उस अर्थ का सद् मूल में न्यून होना चाहिये और उसकी अवधि ५० या ६० वर्ष की हो। जितना कि किसान आज लगान देता है वह उतना या उसमें भू-मालिक उस सम्पत्ति तक देता रहे, जब तक वह भूमि का पूरा मूल्य अदा न करे। इस प्रकार कुछ दिनों में किसान अपनी भूमि व मालिक बन जायेंगे और वह समस्या बहुत दूर तक हल हो जायगी। जयन्ती व इन्विन्शन आदि देशों में इस प्रकार का कानून बनाया जा चुक है और उनपर कार्य भी किया गया है। नेमार्ष के जा आज सारी दुनिया में कृषि की वस्तु धान, मक्कन आदि पैदा करने में प्रभावी है, स्वयं आज से ४० वर्ष पूर्व वही हीन अवस्था में था। आज उसकी अवस्था के उन्नत होना का सबसे बड़ा कारण यही है कि वहाँ १०० वर्ष पूर्व किसान ऐसा हैं, जो भूमि के स्वयं स्वामी हैं। यह देश स्वयं पैदा नहीं हुए परन्तु सरकारी नियमों के अनुसार धीरे-धीरे किसानों के लिए भूमि खरीद कर उनको स्वामी बनाया गया है और आज वह देश स्वतंत्र है इस बात के लिए अमरसर है कि वहाँ प्रत्येक किसान भूमि का स्वामी है।

आज सोमनाथ में देश में यह स्थिति पाए पड़ रही है कि सरकार बहुत थोड़े सूत्र पर सुममता में अपना उधार ले सकती है। जमींदारों की जमींदारियाँ आज में १० साल की अवधि आय और चोथों दामों पर मिल सकती हैं। वस्तुतः यह कहना सर्वथा सत्य है कि भूमि खरीदने के लिए यह उसमें न उसम समय है और जति की उचित कलिय सला दर पर अपना अर्थ लेने के लिए भी अर्थ सम्भव है। यदि सरकार के लक्ष्य जमींदारों की भूमि खरीदकर किसानों को भूमि का मालिक बना देने और यह बर्ज किसानों को उसी मद पर देकर धीरे-धीरे वस्तु कर लगान ता सुममता में किसान अपने खेत का स्वामी बनाया जा सकता है।

यह ठीक है कि ऐसा करने में कर लगान व अपने नियमों में सरकार को परिवर्तन करना होगा और यह भी सम्भव है कि उस कमी का पूरा करने के लिये या मालयुनाग हटान में होगा नय कर लगाना पड़े, परन्तु भूमि पर किसान न स्वाभिल अत्यन्त आवश्यक है इसीलिए उसका माम में मान वाला बाधों को किसी तरह दूर करना ही होगा।



## फासिज्म और समाजवाद

( ले०—श्री सम्पूर्णानन्द बनारस )

सत्सार की अन्तरांगीय प्रगति को समझने के लिये फासिज्म और समाजवाद के सघर्ष को समझना जरूरी है। लेखक की सम्मति में भारतीय कांग्रेस में भी फासिज्म जोर पकड़ रहा है। यह फासिज्म क्या है समाजवाद न्या है और इनका पूँजीवाद से क्या सम्बन्ध है, इन सब विषयों की चर्चा विद्वत् लेखक ने इस लेख में भलीभाँति करत हुए बताया है कि पूँजीवाद के सशस्त्र, सशस्त्ररूप का नाम ही फासिज्म है। अभी एक बार इसका फिर बोलबाला होगा परन्तु रात के बाद दिन की तरह इसकी भी प्रतिक्रिया होगी—आर उग्र पूँजीवाद के स्थान पर उग्र समाजवाद स्थान लेगा।

### समाजवाद और फासिज्म



धर कुछ दिनों में समाजवाद (साम्यवाद या - di) क साथ ही फासिज्म का

प्रचार बढ़ रहा है। समाजवादी राज्य तो एक कस ही है, पर फासिज्म के सिद्धान्त के अनुसार—यद्यपि सिद्धान्त के स्थान पर प्रवृत्ति कदना अधिक उचित होगा क्योंकि फासिज्म का कोई सिद्धान्त, कोई दार्शनिक आधार नहीं है—बालित होन बाबू इस्ली और जर्मनी दो राज्य वर्तमान हैं। आस्ट्रिया का शासन भी उसी दंग का है और प्रिटन में नरमलिस्ट सरकार तथा अमराका मे रुचवल्ड भी न्या पाके के अनुसार उसी ओर झुक रहे हैं। इस का अर्थ यह हुआ कि फासिज्म इस समय अधिक जोर पकड़ रहा है। यह स्वाभाविक भी है। वस्तुतः समाजवाद न ही फासिज्म को जन्म दिया है। समाजवाद का आचार्य कार्ल मार्क्स न जर्मन दार्शनिक हीगेल के डाइलेक्टिकल मेथड को मान लिया है। हागल की अन्य बातों को न मानन दृष्टि भी उन्होंने यह सब ढर ढर लिया है कि इस जगत् का विकास डाइलेक्टिकल विधि में होता है। यह सिद्धान्त न तो समाज में था करता है। साधारण तर्क-शास्त्र के अनुसार ना तो विरोधी वस्तुएँ एक साथ नहीं रह सकती। प्रकाश और अंधकार का कोई मेल नहीं है। यह अजगत् ही—जीवित-सिद्धि समाज जगत् में—दूसरी ही बात है। जो वस्तु किसी क्षण-निष्ठ है होती है, वह अपनी

विरोधी वस्तु को जन्म देती है या नष्ट करती है। दूसरे क्षण में यह विरोधी वस्तु प्रगल्भ हो जाती है और पहली वस्तु विरोधित हो जाती है। और तीसरे क्षण में इन दोनों विरोधियों के संयोग में एक तीसरी ही वस्तु बन जाती है जिस में इन दोनों का अन्तर्भाव हो जाता है। अगर फिर वही किया चलती है। फिर दूसरा का विरोधी नष्ट होता है। फिर दोनों के संयोग में नयी वस्तु बनती है। हमन वस्तु शब्द का अर्थोय किया है पर इस में अर्थव्यवस्था भी अन्तर्भाव है। यदि पहली वस्तु को 'वाद' कहें तो दूसरे को प्रतिवाद और तीसरी को 'युक्तवाद' कह सकतें हैं। हीगेल और उस का वाद मार्क्स न इन्हें थीसिस, एंतिथीसिस और सिन्थिसिस कहा है। यदि जगत् का अर्थ में शुद्ध चेतन ग्रहम् की सत्ता थी तो उस न स्वयं प्रतिक्रिया-स्वरूप अचेतन अन्तर्भाव सत्ता को नष्ट किया और फिर इन दोनों के मेल में ग्रहमहम् चेतन अचेतन सत्ता उत्पन्न हुई। इसा प्रकार सीधी-सीधा उत्तरत उत्तरन जगत् का वर्तमान रूप बना है। यह निरम अन्तर्भाव की ही भाँति राजकीय चर्चा अर्थशास्त्र क क्षेत्र में भी लागू है। क्रिया में प्रतिक्रिया अर्थव्यवस्था होती है पर वाद में क्रिया-प्रतिक्रिया में मेल कर को तीसरी ही वाद उत्पन्न होती है। कुछ काल में यह तीसरी चीज अपनी प्रतिक्रिया पना करता है। पुनः इतिहास में बहुत दूर तक जा का अन्तर्भावकता नहीं है पर उस युग पर ध्यान दीजिय जब वह प्रवृत्ति, जिसे पूँजीवाद कहत हैं, सर्वत्र स्थापित हो गई थी। वह

युग अब भी चला नहीं गया है पर जा जकर रहा है। धर्मोपायों, राजपुरोष पबकारों विद्वाना सत्र न हा इसकी प्रशंसा की थी और प्रोग उस स्वायत्त और प्रतियोगिता-मुक्ति को जो इस की तह में है उन्नति का मूलमन्त्र उद्घरणा था। जिस स्वायत्त में प्रेरित होकर पूँजी-पति स्वयं प्रमान में प्रवृत्त होता है वह परार्थ का साधक माना गया और जिस लोभ के चरपीकृत होकर मनुष्य दूसरे को हरा कर स्वयं भाग बढ़ाना चाहता है वह सभी मनुष्यों में व्यापक होन में उन्नति का ईश्वरनिर्मित सोपान (सीढ़ी) माना गया। परन्तु पूँजीवाद बहुत दिना तक अकला निक नहीं सकता था। वह इस बात पर निर्भर था कि पूँजीपतियों न अतिवृत्त प्रतियोगिता हो और अधिक मजदूरी लेकर मालिकों के लिये शुपचाप काय करत जाय। यह बात विरथधारी नहीं रह सकती थी। इस वाद का प्रतिवाद भी नष्ट होना ही था। पूँजीवाद न स्वयं समाजवाद को जन्म दिया। इस बात को सभी समाजवादी मानत हैं कि यदि पहले पूँजीवाद न आता तो समाजवाद के लिये कोई स्थान न था। समाजवाद प्रत्येक समाज क लिये प्रत्येक अवस्था के लिये उपयुक्त और आवश्यक नहीं है पर समाजवाद भी डाइलेक्टिक निरम के भीतर है। समाजवाद का प्रचार होगा पर बाद में सम्भवतः किसी देस 'सुचवादा' का प्रचार होगा जिसमें पूँजीवाद और समाजवाद दोनों का अन्तर्भाव हो जायगा। कुछ लोगों की धारणा है कि फासिज्म ही यह अतिवृत्त युक्तवाद है, वह पूँजीवाद और समाजवाद का

समन्वय करत भाषा है। पर यह धारणा गलत है। अभी समाजवाद का काफी प्रचार नहीं हुआ, उसने पूँजीवाद की पूर्वस्था परास्त ही नहीं किया है। अतः अभी किसी युक्तवाद या किसी प्रकार के समन्वय का समय ही नहीं आया है। फासिज्म समाजवाद के विरुद्ध अवश्य है पर उस प्रकार नहीं जिस प्रकार के प्रतिवाद वाद के विरुद्ध होता है। वस्तुतः फासिज्म पूँजीवाद का ही एक रूप है। पूँजीवाद न ही समाजवाद का मुकामिला करने के लिये फासिज्म का रूप धारण कर लिया है। थोड़ा सा विचार करने से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है।

नाजी धापन को फासिज्म नहीं कहना चाहते। ऐसा कहने में फासिज्म की सुसोपितता का शिष्य मानना पड़ेगा। पर दोनों विचारधाराओं के ही फलस्वरूप 'कार्पाटस् स्ट्रे' स्थापित हुई है। दोनों की शासन-विधि में बहुत अन्तर है पर एक बात तो स्पष्ट और निर्विवाद है वह यह है कि दोनों न निजी सम्पत्ति की रक्षा का बीधा उठाया है। समाजवादियों का विचार समाजवादों में वस्तु विषय में मतभेद हो सकता है कि विषयों के पास पर भ्रमन, रूपया-पैसा आदि थोड़ी बहुत निजी सम्पत्ति रख पाय या न रहन पाय पर रक्षक बात में तो सभी का एक मत है कि उत्पादन, विनिर्माण और वितरण के मुख्य साधन—कल-कारखाने जमीन-रिया खान रक्ष, जहाज बैंक—यह सब समाज की सम्पत्ति हो जाय। इसी स्थल पर फासिज्म क सब सम्पदाओं का अन्तर्भाव देखा सकता है। क्या इस्ली में और क्या जर्मनी में, यह बात सारक कर दी गई है कि इस प्रकार की सम्पत्ति पूर्ववत् व्यक्तियों और कार्यालयों के ही हाथ में रहेगी। समाज की या राय की सम्पत्ति न बनाई जायेगी। इस का तात्पर्य यह है कि इन देशों क पूँजीपतियों को एक दूसरे के साथ प्रतियोगिता करने और एक दूसरे को तबाह करने, आपन देश को और दूसर देशों क गरीबों को तबाह करने दुर्बल देशों को गुलाम बनान और समय समय पर युद्धों को रकरजित करान का अवसर मिलता जायगा और इन के लिए धन कमान वाले अधिक मजदूर क मजदूर रह जायेंगे। उस तक में जहाँ अधिकों का राज है, बहु-तल करने का अधिकार है, पर जर्मनी और इस्ली में नहीं है, उन्हे

## कांग्रेस पार्लिमेन्टरी बोर्ड के सूत्रधार

का० पा० गान्धेय

मद्रास का० पा० गेड्डे के सहायक

बोर्ड के परम सहायक

का० पा० गान्धेय के स्थानापन्न अध्यक्ष



डा० एम० ए० अम्बेडकर

श्री० एस० सत्यमूर्ति

श्री राजगोपालाचार्य

श्री० अबुलकलाम आजाद

जिला म गान्धेय के मुख्य सहायक

का० पा० गान्धेय के मुख्य कलधार

उपराज गान्धेय के सहायक



डा० राजेन्द्रप्रसाद

महान्या गांधी

श्री भूलाभाट दसाद

पञ्जाब व यु० पा० गान्धेय के सहायक

बम्बई म गान्धेय के मुख्य सहायक

बंगाल गान्धेय के सहायक

गान्धेय म सिखा के प्रतिनिधि



डॉक्टर आसफअली

सरदार वल्लभभाई पटेल

डा० बिधानचन्द्र राय

सरदार शाहीद कबीर









प्रेस भारतवर्ष का सच मे बड़ा राजनीतिक संगठन है। और इसी में आज

कल सब मे अधिक मतभेद उठ खड़े हुए हैं। जो साथी एक समय कच मे कच्चा मिठा कर एक ही उद्देश्य को सिद्धि के लिये जुझ रहे थे, उन्ही में आज राजनीतिक मतभेद न कड़ प्रापन उत्पन्न कर दिया है। इतिहास हमें बतलाता है कि स्वतन्त्रता के सपना मे ऐसी घटनायें अन्य देशों में भी हुई हैं। इस कारण वर्तमान परिस्थिति पर शान्तिपूर्वक विचार करना कम मनोरंजक नहीं होगा।

सन् १९२६ में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ था, उस के बाद से भारतवर्ष का ध्येय पूर्ण स्वराज्य घोषित किया जा चुका है। जबतक हमारा ध्येय तथा लक्ष्य यह है, तब तक इस की प्राप्ति के लिये जो भी उपाय बतलाये जायेंगे, उन का मुख्य इसी बात मे आँका जाएगा कि वे पूर्ण-स्वराज्य की प्राप्ति में कहां तक सहायक हैं।

सुधार की वास्तविकता

**आज** हमारे देश पर ब्रिटिशों का अधिकार है। और वे धर्म, रीति, व्यापार व्यवसाय, लोक रीतियों और वैयक्तिक सम्बन्धों आदि पर अपना नियन्त्रण रख कर चाहते हैं कि अधिक मे अधिक जितनी शक्ति हो सके, उतनी शक्ति यहाँ उन का ही राज्य बना रहे। वे कुछ जानते हैं कि अथ तक वे जिन उपायों ने बड़ा राज्य करत रहे हैं, वे धीरे धीरे पुराने हो चुके हैं और यदि ब्रिटिश शासन के अज्ञान को निचिन् न बना रोक-टोक बतलाता हो तो इन उपायों में परिवर्तन करना पड़ेगा। इसलिये वे हम को कुछ ऐसे 'शासन-सुधार' देने को तय्यार हैं, जिन मे उपर मे तो यह मालूम पड़े कि ब्रिटिशों ने अधिकार छोड़ दिये हैं और वे ऐसे बहुत नकारात्मक को भी देश के शासन में भाग लेना का अवसर दे रहे हैं, जो उन की तरफ नहेँगे, पण्डित वस्तुनः उन के द्वारा हमें मतलब को कुछ चीज नहीं मिलेगी और सारी शक्ति ब्रिटिशों के ही हाथ में रहेगी।

यह स्पष्ट है कि कोई भी शासन की शक्तियों को बिना विचारात के नहीं छोड़ता। जो एक बार छोड़े सुधार हो जाता है, वह आप कभी नहीं उतार करता और न

## कांग्रेस और असेम्बली

भी आर० एस० पण्डित स्व० प० मोतीलाल नेहरू के दामाद हैं। आप इलाहाबाद के प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्ता, चित्राङ्ग और अष्टो लेखक हैं। इस लेख मे आपन सरकार के सुधारों का रहस्योद्घाटन करते हुवे बताया है कि असेम्बली, अन्य सरकारों में क्या भूमिका तथा सुधारों का उद्देश्य राजनीतिक संसार मे नेताओं का क्या भूमिका और आपने मायाजाल में फँसना है। इसलिये कांग्रेस को असेम्बली-निर्वाचन की मूल नहीं करनी चाहिये।

काठी तथा छोड़े को ही छोड़ना चाहता है। ब्रिटिश लोगों को अधिकार है कि उन्हीं भारतीय साम्राज्य का विजय तलवार के बल मे किया है और तलवार मे ही वे उसे अपने कान्ठ में रखेंगे। ऐमे प्रसिद्धाभि नाम, उद्गता की ओर मे आकर अपनी महत्वा-

वर्तनों न जलियावालागं, पेशावर और इलाहाबाद आदि की गलियों में ब्रिटिश शासकों द्वारा निहत्थे लोगों पर बरसायी गयी गोलीयों की गड़गड़ाहट अवश्य सुनी है। सब तो यह है कि यदि ब्रिटिश सरकार भारत को 'शासन-सुधारों' के बजाय किसी सन्धि द्वारा पूर्ण

स्वतन्त्रता दे भी दे, तो वह उस काज के मुख्य की भी नहीं होगी, जिस पर वह लिली जायगी।

आजकल मिश्र और ग्रेट ब्रिटेन मे एक सन्धि है, जिसके अनुसार ग्रेट ब्रिटेन न मिश्र की स्वतन्त्रता स्वीकार की हुई है। तो भी

देश पर और उसक किलों आदि पर कब्जा ब्रिटिश मेना का ही है और मिश्र पार्लमेट ऐसा कोई कानून पास नहीं कर सकती, जिसका मिश्र-निश्चय ब्रिटिश प्रतिनिधि विरोध कर दे। इसमे स्पष्ट है कि केवल वही स्वतन्त्रता प्रदत्त करने योग्य है, जो अपने बल मे प्राप्त की गयी हो और उसी बल मे हम उसकी रक्षा भी कर सकते हैं।

भारत के साथ की हुई ब्रिटिश प्रतिज्ञाओं का वास्तविक रूप जैसा जलियावालागं की घुमटना न प्रकट किया, वैसा उसमे पूर्व कभी प्रकट नहीं हुआ था। इसी के बाद मे भारतीयों न ब्रिटिश साम्राज्य-लोकुता तथा सैनिक प्रबलता का विरोध करना अपरम्पक है। इसके बाद का कांग्रेस का इतिहास उस असाधारण उन्नति की कहानी है, जो भारतीय जनता ने म० गांधी

के नेतृत्व में राजनीतिक जागृति के रूप मे की है।

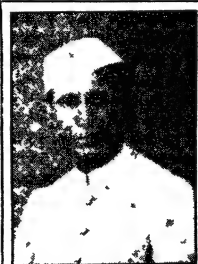
संगठन तथा अहिंसा

**महात्मा गांधी के हम बहुत** श्रुती तथा कृतज्ञ हैं कि उन्हीं राजनीतिक कार्यकर्ताओं की शक्ति को ब्रिटिश सरकार के पास निश्चय प्राप्तिपर अज्ञेय करने मे हटाकर जनता को जागृत तथा संगठित करने में लगा दिया। उपायों का यह महत्वपूर्ण परिवर्तन ही वर्तमान काल के राजनीतिक इतिहास में म० गांधी का सबसे बड़ा काम है। जनता का सफल संगठन ही हममें उस बल तथा शक्ति को उत्पन्न कराता, जिसमे विदेशी शासकों को भारता-निवासियों के साथ हिंसा सात करने के लिये मजबूर किया जा सक्ता। बिना जनता का संगठन किये, शम्भ-बल तथा हिंसा के आचार पर दृढ़ता मे संगठित हुए हुए लोगों का सामना करना संभव कार्य नहीं है।

महात्मा गांधी का दूसरा महत्वपूर्ण काम हमारा राजनीतिक उपायों मे अहिंसा का समर्थन है। इस का महत्व हम न समझी उतना नहीं समझते हैं, जितना आग जाकर समझेंगे। भारत सरील बड़े और राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक भेदों प्रभों ने बिखुरे हुये देश में, बिना पूर्ण शान्त वातावरण के, किसी भी प्रकार की राजनीतिक उन्नति का होना अथवा विचारवास्तव मामलों का सुलभता असंभव काम नहीं है। साथी लड़कें को सफल होना हो तो वह संगठित जनता की लड़कें होनी चाहिये। संगठित जनता बड़ी भारी शक्ति होती है। अहिंसा के आचार पर संगठित होने से उसका बल बढ़ नहीं जाता, यह निर्वर्त्ता का नहीं, स-बलों का शक्त है। यदि संगठन अहिंसा के आचार पर किया जाय तो अपना मुख्य उद्देश्य सदा सामने रहता है, हिंसा प्रथम दयाभावना हो जान मे मुख्य उद्देश्य रहि मे ओझस हो जाता है।

सुधारों का उद्देश्य

**स्वतन्त्रता** का संसार एक बार शुरू हो कर फिर एक नहीं सकता। भारतीय राष्ट्रीयता और ब्रिटिश साम्राज्य-लोकुता में कोई सुलह नहीं हो सकती। जब तक स्वतन्त्रता नहीं मिल जाती, तब तक हिंसा संशय भी जारी रहेगी। इसी रूप से बचने के लिये ब्रिटिश सरकार लोगों का क्या ऐसे अवास्तविक कर्मों की तरफ खींचने का बल



ले०—श्री० आर० एस० पण्डित

कर रही है, जिन स स्वातन्त्र्य-सन्ध्या निबंल पड़ जाय। इस प्रयोजन की निधि के लिए ब्रिटिश सरकार का मुख्य साधन 'शासन-सुधारों' का देना है। इन शासन-सुधारों पर आसल करों से साम्राज्य-सोलुपो ने कुछ न कुछ सबधोग करना ही पड़ेगा, जिससे देश में आन्दोलन का वेग मन्द पड़ जायगा और हमारा बहुत सा बल ऐसी चारा-प्रधाराओं में बह जायगा, जो हमारा विरोधियों ने विशेष इसी प्रयोजन से जारी की है।

#### सरकार की रियासती-नीति

हमारा सचर्य अब एक ऐसी मजिल पर पड़ ब चुका है जहाँ पड़ बन के पीछे कांग्रेस उस राजाओं जमींदारों और किसानों मालिकों और मजदूरों मिल-मालिकों, औपतियों और श्रमजीवियों सरीख विविध विरोधी स्वायों क लोगों की अंणी-विशेष में नियन्त्रित करके नहीं रह सकती। यह मधुर्य अब तो अविष्य में अधिकधिक लुटन और लुटन वालों — बाहे लुट्टे ब्रिटिश हो बाहे भारतीय — क बीम में ही चलेगा। इसी कारण ब्रिटिश लोग तमाम अधिकार-प्राप्त स्वायों लोगों को अपन साथ मिला लेने की भागा रहते हैं। यदि इसमें उन्हें सफलता हो गई तो वे भारत-वर्ष में हिलतर म भी बह कर हिलतर-शाही स्थापित कर देंगे। अधिकार-प्राप्त स्वायों लोगों को अपन साथ मिलान की ब्रिटिश-नीति का उदाहरण लेना हो तो भारत के देशी राजाओं क साथ ब्रिटिश सरकार के व्यवहार को देख लीजिये। एक समय था जब देशी रियासतों क शासक ब्रिटिश सरकार के अपल सन्देश का लक्ष्य बन हुए थे और उन्हें सदा एक दूसरे न भला रहन का पलन किया जाता था। बाद को उन क पुत्रों को विलय रूप में अमेज अन्ध्या-पकों द्वारा और विशेष कालिजों में शिक्षित किया जान लगा ताकि वे ब्रिटिश प्रभुता का आदर करना सीखे और जब उनको शासनाधिकार दिय जाय तब वे जिला-अधिकारियों की तरह ब्रिटिश सरकार की हिदायतों पर ही सब काम करें। जब इतना काम हो गया, तब सरकार को राजाओं क परस्पर मिलने-जुलन में कुछ उन्न नहीं रहा बल्कि राजाओं क लिए एक नरेश-मण्डल की सृष्टि कर दी। राजाओं को उस मण्डल में आ कर अपनी राजनीतिमत्ता प्रदर्शित करने के लिए उत्साहित किया गया, ताकि

ब्रिटिश साम्राज्य-सोलुपता की उद्देश्य-निधि में सहायता मिल सक। परन्तु अब देश में ब्रिटिश साम्राज्यवाद स लुटन का आन्दोलन अधिक और बढ़ गया और नरेश-मण्डल नियोजन हो गया, सब सरकार क प्रत्युत्तर दीश में बढ़े कि केन्द्रिक शासन क अन्तर्गत एक फइरल चेम्बर बनाकर उसमें राजा-ओं क मतों का लाभ उठाया जाय। भारत की बहुत सी बड़ा बड़ी रियासतों का शासन आज ब्रिटिश सरकार क 'रियायतें' अफसरों अथवा उधार दिय हुए अधिकारियों द्वारा हो रहा है। रियासतों क अन्धकमी मामलों में दस्तन्दाजी न करने की पुरानी नीति यद्यपि अब भी जारी बतलाई जाती है, परन्तु जो कुशासन पहले परोपकार-पूर्ण ब्रिटिश शासन का विरोधी उदाहरण सेवा करन क कारण बर-दास कर लिया जाता था, वह आज बरदस्त नहीं किया जाता, क्योंकि सरकार को डर है कि कुशासन न रियासती प्रजाप्रा म भी ब्रिटिश भारत की प्रजा की तरह आन्दोलन करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होरी है। जो राजा या नरेश भारत क स्वातन्त्र्य-आन्दोलन न कुछ भी सहायुधुति दिलाता है या जो अपना रियासत क आन्दोलन को हदता स द्वाशन न असमर्थ रहता है उस को तुरन्त गद्दी न उतार दिया जाता है। इस प्रकार रियासतों क राजा मुद्गर-मात्र रह गय है और जब उन की रियासत न आन्दोलन कुछ भी बड़ जाता है तब वे स्वयं शासनाधिकार ब्रिटिश सरकार क उधार दिय हुए अफसरों क हाथ

चार पक्षों तकलाफ जाती रंगी कमान ससार इतनाल ररया गया, ४ वर्ष न मासिक चर्म की तकलीफ थी। आपकी दुवारा क इतनाल स आराम है। इस न पूर्व बहुत इलाज कराव गय किन्तु आप की दुवारा के अतिरिक्त किसी ने लाभ नहीं हुआ। (ला० रामलाल कौर ककर सर-मोवा) ल्यूकरीया क लिये सन्तान सागर भारतल में अ-द्वितीय है। (सर्वदा सुककसिंह बानी)

में सौंप देन को और आप नाम-मात के राजा रह कर परम्परागत 'राज्याधिकार' भोगन को सदा तथ्यर रहते हैं।

#### कोमिल बहिष्कार ही उचित है

मुसलिम वेग के कई माननीय मतारो क बिन्दु मरी नम्र सम्मति है कि यदि कांग्रेस अपनी शक्ति ब्रिटिशों द्वारा बनाये हुये निर्वाचकों क पास जान और कैं-सिलो तथा आसमली में घुसन में जय करगी तो वह अपना कदम पीछे हटा लेगी; क्योंकि क कौलित बनार ही हमारे पाटियों में फाड़ कर हमारा स्वातन्त्र्य-संघर्ष का बल ग-गन क लिए गयी है। यदि हमारा उद्देश्य तुरन्त ही पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति है ताकि भारतवर्ष क निवासी और भारतवर्ष का प्रा-कालिक धन साम्राज्यवादियों की लूट न बच कर ससार क अन्य उन्नतिशाली गणो क साथ सहायोग करने न स्वतन्त्र हो सके तो हम को ब्रिटिश साम्राज्यसोलुपो के साथ किसी भी प्रकार का सहयोग करने न अलग रहना चाहिय। हमारी तमाम शक्तिया भारत की श्रमजीवी जनता क शिष्टता तथा सभ्यता न लगनी चाहिय क्योंकि यही हमारा सच निवाचक है और हमें क हाउ में राजनीतिक तथा आर्थिक शक्ति प्राप्त क बाद सदा स्वराज्य होगा। हमें उन सब अधिकार-प्राप्त स्वायों लोगों का भी विरोध करना चाहिय जो अपन विश्वासपाधिकारो और विशेष सुखो को बढ़-बुल करने क लिए ब्रिटिश साम्राज्य-सोलुपो क साथ मिल कर

स्वातन्त्र्य-सन्ध्या का विरोध कर रहे हैं। आज महता गांधी क सन् १९२१ क प्रोत्सा का जमाना नहीं है, शक्ति प्राप्त करने क आ-गांधी सचर्य में इस न काम नहीं चलेगा। इस न ऐसा परिवर्तन करने की आवश्यकता है कि इसम जनता को इस प्रकार सभ्यतित किया जासक कि वह स्वयं देश के तमाम लोगों का सच्चा प्रतिनिधित्व करने वाली कान्स्टिट्यूशंस अममली तुला सक्त और उसक द्वारा सत्त-तन्त्र भारत की आवश्यकता न आसल अपना शासन-विधान आप बना सक।

—:०:—

'किसी न किसी रूप में हम उस दुःखी देश (भारत) में प्रति वर्ष पूर ३,००,०० ००० पौड खींच लेते हैं और वहा क निवासियों की भाय की श्रोमन्त के लिये १ पौड वार्षिक है। इस म भी कुछ कम।'

—५० वे० बिल्लन

'हमारे देश का सर्वनाश जान-बूझ कर किया गया है। इस लिय ब्रिटिश-शासन को क्षुब्ध कर और कोई भी नाश का सफल करण नहीं कहा जा सकता।'

—लो० मा० लिलक

### स्त्रियों का यौवन और सुन्दरता

स्थापित रखने वाली जगत विल्यात औपधि

कविराज १० अमरनाथ भगवत केसर रत्नचन्द्र का ईसाई कदां गर्बनमेंड इण्डियन न रजिस्ट्री किया हुआ

### सन्तान सागर (रजिस्टर्ड)

जब आपकी बीबी जयन्तुप्रेरय या इवन लाल पील पानी यहन अर्थात् ल्यूकोरिया जय भयानक नेग में प्रस्त हो हावक सुस्त आर रोगी रहती हो। मासिक-धर्म की बकायद्गी, कमर दुर्दुआर गभीरश क विकार में तुली हो सन्तान-विहीन हो तो सन्तान सागर इस्तेमाल करावें। जिसको किया बड़ी प्रसन्नता न खाली है और लुत्तक यह कि प्रत्येक प्रभुत में प्रयोग किया जा सकना है। कोई क्षात परहेज नहीं है। गुण नेगों न आग्र-रक्षण की जरूरत नहीं रहती। कीमत की बक्स (३० रोज के लिये) ५) डाकथय ॥— मिलन का पता—मैनजर सन्तान सागर फायुर्वैकिक शायर पोस्ट बक्स नं० ११ लाहौर (लोहारी, अमरकली टागा बेल के सामने)। दिल्ली के एजन्ट—मेसर्स जमना-दास पण्ड कम्पनी, चावनी बाक, देहली।





## असि-धारा-पथ-गामी



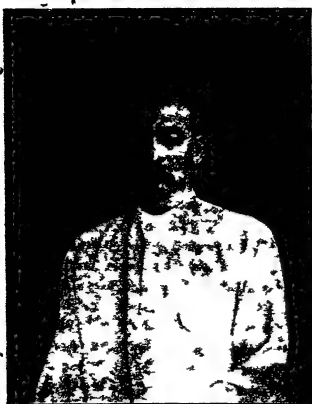
ओ, असि धारा-पथ के गामी ।  
 विकट लुभ्त तुम, अथक पथिक तुम, कष्टक क्षीणित मग-अनुगामी ॥  
 ओ, असि-धारा-पथ के गामी ।  
 तुम विकराल मृत्यु-भासन के साधक, तुम नवजीवन दानी ।  
 तुम विप्लव के परम प्रवर्तक, वरम शान्ति के निष्पूर स्वामी ॥  
 ओ, असि धारा-पथ के गामी ।



शत श्रव श्रवाब्दियो, के पातक पुज हो रह पानी पानी ।  
 अजलियां भर-भर जीवन शोषित देने गाले तुम निष्कामी ॥  
 ओ, असि धारा-पथ के गामी ।  
 हे प्रचण्ड, उग्रचंड, असंख्य महाघ्न के पालक विद्वानी ।  
 तडप उठा है यह जग, जरा ठहर जाओ हे मौन अनामी ॥  
 ओ, असि धारा-पथ के गामी ।



—बालकृष्ण शर्मा 'मवीन'



सरदार बल्लभभाई पटेल

## गांधीवाद की त्रिमूर्ति

बल्लभभाई, राजगोपाला-  
चार्य व राजेन्द्रप्रसाद क  
शब्दचित्र

(ले०—श्री रामनाथ सुमन)



श्री रामनाथ सुमन

### (१) वल्लभभाई—'वर्ष से ढका ज्वालामुखी'

बल्लभभाई अपने सर्वमान रूप में भारत को गांधीवाद की देन हैं। इस व्यक्ति को देखिय, इस के कार्य को देखिय और इस के भावयुक्त स्वरूप। ऊपर स कला, ठगड़ा ऊपर, नीचे जिन्दा दिल और वह कला हुआ। यह वह भाग है जो कभी ठगड़ी नहीं होती। जब सुनिप, कही तोल, कलेज के आर-पार हो जाते हैं। यह वह भाग है जो जैसा इस व्यक्ति का जन्म ही विपरीत और विष उगलन के लिए हुआ हो। अस्तव्योक्त-काल के मा-लगाया शक्तिशाली न दीक ही कहा था—

१ बल्लभभाई वर्ष से ढके जल हुआ था है

भारत में केवल दो ही नता हैं जिनकी वाणी का तज परिस्थितियों से परे है, वर्षों के दमन न, और आनन्दभाई ने जिनकी आवाज में कण्ठ या शिथिलता नहीं आन दा। एक जवाहरलाल, दूसरे बल्लभभाई। वे दीपक की वे गिलाखें हैं, जो आग्नी और पानी में एक-दूसरी एक सौ से जल रही हैं।

बल्लभभाई गांधीवाद के समिय-पक्ष हैं। वह व्यक्ति गांधी की तरह आचक नहीं है और न शिल्पक है, वह एक योद्धा है। वह चोट खाता ही नहीं जानते, चोट कराना भी खुप जानते हैं। वह सच्चे सत्या-

श्री रामनाथ सुमन हिन्दी के उन लेखकों में हैं जिनका भाषा और अपने विचारों पर पूर्ण अधिकार है। किसी वस्तु का किसी व्यक्ति का विश्लेषण करने के लिए वे तीव्र शक्ति रखते हैं। इस लेख में इन्हीं गांधीवाद के तान प्रमुख अनुयायियों—सरदार बल्लभभाई राजगोपालाचार्य और बाबू राजेन्द्रप्रसाद—का विश्लेषण करने का सुन्दर प्रयत्न किया है। पाठकों का इसमें मनोरंजन होगा और वे अपने नताओं के व्यक्ति और चरित्र को जान सकेंगे।

श्री की तरह अपने को शून्य में नहीं मिला सकते। उन में सत्याश्री की अज्ञातशक्तियाँ नहीं हैं, धीरे धीरे की लम्बाई। इसीलिए बल्लभभाई युद्धकाल में अत्यन्त शक्तिमान हो उठते हैं। न केवल भौतिक शक्तियों की कोई आदमी इतनी शक्ति मिश्रित रूपमान उनक नहीं स नहीं देखता जितना बल्लभभाई देखते हैं। वह तो सार-सार बातों में विश्वास रखते हैं—जो कदो करके दिखा दो तुम बल्लभभाई के सिर माप, लखेदार शब्दों को यह देख समझ लें। इमे समझना हो तो बल्लभभाई को तब देखो जब युद्ध का गलनाद हो चुका हो—जब वातावरण में उत्कण्ठा आकुलता हो और जब ऐसा समय हो कि दिल और न घबकता हो और नाभी तज चल रही हो। क्षाती में एक क्षाती लिए हुए फरकती गुजार्ते और शरारत मरी आवाँ स युद्ध की और एक अद्भुत विनोद के साथ देखन वाला। सिर से पाव तक पोरे-पोरे उमगों क सुन्दर पर चढ़ा हुआ। एक जीता भाग के साथ इस-दूस कर खेलन राजपूत—यह बल्लभभाई हैं।

यह आदमी अपने जीवन की प्रत्येक सास के साथ कतरे को प्यार करता है। जोर-शक्ति को वह इस तरह अपनाता है जिन प्रेमी प्रेमिका को। जन्म के लिए उस का दिल सदा बुझियों उल्लसता है। उस के लिए सदा ही सान्त्वना है। जीवन में प्राण कोई लगाव नहीं, कोई बन्धन नहीं कोई राना नहीं। जूमना की जूमना है। बार-बार-युद्ध की दागबल जब पण रही थी तब उस न बहा था—'मेरे साथ कोई शिल्लबाद नहीं कर सकता। मैं किसी ऐम काम में नहीं पड़ता जिसमें कोई कतरा या जोलम न हो। जो लोग आपत्तियों को निमग्नण में उनकी सहायता के लिए मैं सदा नैपथ्य हूँ। इसीलिए उन समर्थियों (सोशलिस्टों) की कोरी लम्बी चोरी गन तुच्छ प्रतीत होती हैं। वह युद्ध कम का प्राणी है। जो कबो उस मर्द की तरह करके दिखा दो।

स सत्य न गांधीवाद को अपनाया तो दिल से है पर उसका स्वभाव लोकमान्य-जैसा है। वह कोमल की अपेक्षा तजस्वी विवक-दान की अपेक्षा धीरे, साधक की अपेक्षा योद्धा अधिक है। हाँ, वह

ह कि स्वभाव के इस लोकमान्यत्व पर गांधी के निष्कर्षपूर्णकन मिश्री की कोणक कर दा है। गांधी के शठ प्रति सत्य को वह अपनाता तो चाहता है—बहुत कल अपना भा लिया है और उन अक्षर भी समझता है पर उन के जीवन तत्वों में वह शिल्लुल निम्न नहीं होता, शिल्लुल शिल्लुल ही एक नहीं हो जाना कुछ अलग-थलग स रहता है। परिस्थिति युद्ध विवक और दिल में वह गत का तरफ झुका हुआ है और प्रकृत स्वभाव और प्रकृति में उस का तरफ। वह शनों का मि-ए है—आर इतन पर भा उसम नाना का कुछ बात है कुछ नहीं है।

उस में वह लगन वह अथक परिश्रम की प्रवृत्ति है जो लोकमान्य की विश्रुता थी। लोकमान्य की भाति वह नया म आस-विस्मृत होकर चलता है। जोर-मान्य के सहा हा वह अपने महत्व का समझ नहीं ररता अपने नियम में युद्ध कम शिल्लता या मोलता है। फिर भा लोकमान्य का भाति वह कृपातिन नहीं वह यादग है। इस विषय में नाना म तबन अक्षर है। राजमातिन क लिए उसकी जमान एक अक्षर है। उस के शब्द गलत प्राय दोषपूर्ण होत हैं। वह अपने मन में अनुभव कुछ करना है पर उस पर पणना जलन के लिए कई गार उस में उल्लग करता है। उह अवसर का उपयोग करता है। और योद्धा जिसे हम उपयोगिता कहते हैं उस

छेहर नहीं चलता, भावना को, स्फिग्म' को लकर चलता है। भौतिक सुविधाओं प्राप्त कर लेना उस का उद्देश्य नहीं जितना मैतिक विजय लक्ष्य है। वह कठोर को प्यार करता है। वीरता उसकी देवी है, साहस अनुचर। जब शासमान पर राज्य झा रही हों तब जहा राजनारिष्ठ क लक्षण पर विचार की रखाये होता है और आसनों में किता की छाया, बहा मोक्ष का दिन उमग म भरा हुआ अब उमडा अब उमडा ऐसा होता रहता है। इस विषय न लोकमान्य और वल्लभभाई म अन्तर है।

गांधी और वल्लभभाई को सामन रखकर देखते हैं तो उपर भी जहा सामान्यता है वहा अस्मानता भी कुछ कम नहीं है। मैं मानाओं क अन्तर का बात नहीं कह रहा हूँ, मरा मल्लभ प्रणुलियों के अन्तर से है। गांधी साधक है। सत्य, आत्म-साक्षात्कार उस का लक्ष्य है। इसलिय स्वभावतः उस का जीवन अनादृत-तुला हुआ है। उसका पंच एक निर्माडा आभ्यासिक साधक का पंच है पर वल्लभभाई एक सचच आत्म त्यागी की भक्ति अपन जावन क अभिमान है। गांधी विरोधा क साज लहता है, पर युद्ध क समय भी विरोधी के सचच कल्याण मा ध्यान उन रहता है। यह साधक का अन्त-करण का गौर पोर में बिना हुई उदारता है जिसकी उन्नीह वस्तुतः कोई शत्रु नहीं रह जाता। वल्लभभाई की उदारता वीर मोक्ष की उदारता है जो डिपकर वार करना नहीं जानती पर सामन का लड़ाई में शत्रु को आनय नभै म देखा है और उन मलियामन्त्र कर देना चाहती है, जो शत्रु की पराजय म उल्लसित है। जर गांधी विरोधा को अपन कायकम की सूचना पट्ट कर देता है तब वल्लभभाई क मुट म शत्रु या मित्र कोई किया म आन क पड्ड उनका कायन्म नहीं जान सकता।

कर्मवीर सम्राट् क श्री मालन-साहजी न ठाकलिया म— महात्मा जी छोट म छोट आदमी क कुन्डलों तक का नवाय त है (लग) वल्लभभाई म सवाल पूछन का साहस ही बहुत कम को हा पाता है। उनक विषय में तो कजल यदी कहा जा सकता है कि वह जवाब सचच अपन विरोधी को ही देते हैं। महात्माजी जीवन की आन-अथा लिख सकते हैं किन्तु वल्लभभाई आत्म-चर्चा कमी करते ही नहीं।

ऐरे गैरों की दवा सेवन करके स्वास्थ्य और धन मत खोओ।

स्वास्थ्य-रक्षा और चिकित्सा-चन्द्रोदय के लेखक,  
गरीबों के दुख से दुखी होने वाले, अन्याय से डरने वाले

**बाबू हरिदास जी वैद्य**

की

आयुर्वेद-महासागर को मथकर निकाली हुई, चालीस साल तक लाखों मरीजों पर आजमाई हुई, अचूक महोपधियां सेवन कीजिये

**आधी कीमत ! नवम्बर और दिसम्बर आधी कीमत !!**

### १—महापुष्टिकारक बटी

इन गोलीयों क मेवन में प्रमद-जिरियाल धातु का पेशाब के आगे पीडे गिरना, सूता या तार सा निकलना स्तम्भन न होना, कमर का कम्पा चिच ठिकान न रहना वगैर शिकायतें आराम हो जाती है। मूल्य ०० गोलीयो का ७ रुपय।

### २—नपुंमक-मंजीवन बटी

इन गोलीयों म हजार १०० तक पूर मर्द हो हो गय। निरुचियों न पुनरुत्पन्न पाय। इन म काम-च्छा खुब तेज होता है प्रमद आदि अनक रोग नाश होत जिरोन लहकपन म नासमझी से अप्रणा सच कुछ दों दिया है। व इन गोलीयों को तीन बार महीन खाये। मूल्य ०० गोलीया का ३।

### ३—नपुंमक-जीवन

य भी गोलीया है पर य अमीनों क लायक है क्योंकि इनमें मकरज्वन आ मर कस्तूरी मोतीबग, अन्नक वगैर कीमता चीजें पन्ती है। इनमें नामद मर्द होता ससाग का सन्धा सुख लेना वीर्य गाढा होना और उदता कामच्छा प्रबल होती है। स्तम्भनलिक बहुत, बहर् पर रोनक आती जितनी तारीफ कम है। मूल्य ०० गोलीया का १५ अठारह रुपय।

### ४—सुगनाभ्यादि बटी

जादे में य गोलीयां कामियों क लिये असूत क समान है। इन म मरी दुर्ध धातु जी जाती है। जिन्हे प्रमहादि कोई रोग नहीं है, कबल कामच्छा कम होती स्तम्भन नाहीं नहीं होता सम्मोग में पूरा आनन्द नहीं आता उन्हीं अमीरों को य गोलीयां २३ मास सेवन करनी चाहियें। इन्हें 'कामी कल्पवृक्ष' कहें तो भी अग्र्युक्ति न होगी। मूल्य ०० गोलीयो का १० बीस रुपया।

### ५—अधगन्धा चूर्ण

यह चूर्ण जाने में खान म बूढ़ों में जवानी का सा जोश पैदा कर दता है। नया वीर्य पैदा होता धातु पुष्ट होती, सारी इन्द्रियों में अग्र्य बल आता

है, सभी के लिये लासकर बूढ़ों क लिये अमृत है। चालीस दिन लायक एक सर का मूल्य १५ बारह रुपया।

### ६—धातु-रोगान्तक (अटल)

यथा नाम तथा गुण है। ४० या ६० दिन खान स धातु-सम्पन्धी समस्त रोग नाश करता है। इस म प्रमद स्वन्वीष, धातुशीघ्रता वगैर निस्तन्देह बने जात है। चालीस दिन योग्य का मूल्य १५ पन्द्रह रुपया।

### ७—तिला नं० १

इसक ४२ दिन लगान स युव इन्द्रिय की खराबिया दूर होकर वह काफी सक्त और तेज हो जाती है। इस तिले म न तो छात्रे पकृत है और न कोई दूसरी तकलीफ होती है। हेड प्रिन्टस वालों क लिय इसम नबकर भारत में दूसरा तिला नहीं है। मूल्य ४२ दिन योग्य ३ शायियों का १५ पन्द्रह ४०।

### ८—पोटली की दवा

तिले क बाद इस दवा टाप मेक करन से सारी खराबिया निकलकर युव इन्द्रिय असली हालत में आ जाता है। सूनापन वगैर रहता ही नहीं। तिले क बाद मकजकरी है। मूल्य ३ शायियों का ७५ ४०।

### ९—सुधा नं० १

इसको मलाई, मक्खन या शुलकन्द में खान से धातु सम्पन्धी कोई रोग नहीं रहता। गरीबों क लिये प्रमद, स्वन्वीष आदि नाशक अचूक दवा है। मूल्य ०० माता का ४५ ४०।

### १०—सुधा नं० २

इसमें भी वही गुण हैं जो नम्बर १ में हैं। अग्र्य दवा है। जो बहुत ही निचैन है इन खावें। मूल्य ०० माता का ३५ ४०।

### सूचना

उपरोक्त सभी दवाएँ नवम्बर और दिसम्बर को महीन आधी कीमत में मिलगी। उपर दूरी कीमत छुपी है पर आधा या सब रुपया पहले ही मज देने वालों को य सब आधी कीमत में मिलेगी।

**मेनेजर—हरिदास एन्ड कम्पनी, मथुरा सिटी।**

महात्माजी का समय और उन्का  
 तब महान् प्रयत्नों की सिद्धि है।  
 और साधनार्थों का सम्यक् रूप दिन  
 प्राप्त का उद्देश्य बना। हुआ किन्तु  
 यथेष्ट निम्न बाला प्रकाश का  
 प्रण है। महात्माजी साधक सुधार-  
 क और शिक्षक हैं। सहस्र-  
 भारों ने सुधारक, ने साधक  
 ने शिक्षक हैं। वह योका हैं, सेनानी  
 हैं, सिपसाला हैं।

महात्माजी बालक, सुख और श्रु-  
 त्ति की युवा सीखन के लिये प्रसुत  
 हैं, किन्तु महात्माजी उन्की का  
 मूल्य विवेक के बालार-पर से अधिक  
 नहीं कृत। महात्माजी  
 की महान् क्षमा में आत्म-निरीक्षण  
 और आत्म-चिन्तन होना ही  
 चाहिए। महात्माजी की क्षमा विरो-  
 दित क्षमा है, उसमें अपने योका  
 के लिये माफ है—यदि व बहा-  
 दुरी के समय में ने की गई हैं।

बल्लभभाई वस्तुतः उन उप-  
काय से जन हैं जिन्हें ये उद्दिष्ट का  
सूत्रण होता है। वह एक योद्धा हैं।  
मुक्ति, विवेक, परिचित्यमानाव-  
लम्बन और सगठन शक्ति न इस  
योद्धा को योद्धा के ऊपर उठाया है  
और ननापित्य का आश्रय पर हा  
कड़ा किया है। बल्लभभाई न वह  
लूट-स्वयम्भटा नहीं जो राजनी-  
ति का रास्ता वाज है पर उन में  
बहु गम्भीरता और वह आधुनोन्मा-  
कारी भावावस्था दोनों उपयुक्त मात्रा  
में हैं जो एक कल्पन का स्वरूप—नाना-  
पतित—के निर्माण के लिये आवश्यक  
हैं। गुप्त में वह इस तरह स्वतन्त्र-  
वादीय खलत हैं जैसा पानी में  
मछली नहीं है। उस समय कोई  
कतिनाई उनका दम नहीं तोड़ स-  
कती। परन्तु राजनीतिविशेषता का बातों  
समर्पित को बचावों में उनका वह  
भावस्थिति स्थिति पड़ जाता है। वह  
स्वयय कहते हैं— मुझे लाने  
लकत को सच्चा अणु उलभन लाने  
के उद्ग में लडाक में सुलभन  
लूना। ऐसी उलभन सुलभन की  
सुख मुझे कदा मिलती है मैं नहीं  
जानता। परन्तु सम्भवतः की डीली  
बचावों में मरा जो नहीं लगता।  
ऐसी अक्रम्रीय बचावों में कितनी  
ही रातों में गडबड में पड़ जाता  
है ।”

ऊपर मैं लिखा है कि जब युद्ध चल रहा हो तब वल्लभभाई को देखिये। जैसे भयंकर वृहन्नाथ स गोले और नोप से बारूद निकलती है, उसी तरह इस व्यक्ति के मुह से आग-में जलते और भुजग-में फुफ-कारते शब्द निकलते हैं। नमून देखिये,—“भारत-भरत की ता-

लोभ सिपाहीन को डेन में सरकार को  
सिपहीन लानत है । हमें तो  
सिपहीन मरना ही चाहिये । उस में  
तो सिपहीन भी मरने काग चालिये ।  
सिपहीन की परियारा सुनिज —  
पिब्रान, यह जो सारी भाषा को  
छाटनी पारो — कलम बूझा दे ।  
सिपहीन को ये सामान फोसत हुए —  
‘आर, क्या साप को काली काचवा  
कर, फेका फेका में खुद डूब दोता  
है । या कोई महन्त पसली है ?  
होती तरह हम भी एक दिन पार  
शासन की काली जाली में । उस  
में थम और कूफ काहे का ?’ इसा  
प्रकार सिप राजसत्ता अन्धकारी हो  
तो किसान का साया उभरती है —  
जा, जा ऐग ऐग निजनी ही राज  
में सिपही में साहल देखे ।  
बालोड का भाषण में — सरकार  
जम क महसान नाहनी है । भाप  
उम उम काला महसान देग ।

यह तो युद्ध क समय का  
बोलना है। पर वैन बल्लभभार्द में  
बोलन का तात्पर्य बहुत कम है।  
यह गौतम कम है क्या स्थिति है।  
बाल-भूत उन्हें लभ नहीं सकता।  
यह गरजन वाला मध नहीं बरसन  
वाला धुआधार है। यह वह योद्धा  
है जो ठास का पुजारी है, पोल  
क शब्द उस आरपित नहीं कर  
सकत।

[illegible]

बल्लभमाई का नाम यन् मम स  
शरणा आत्मा है

(२)  
राजगोपालाचार्य : 'मी०  
आर०'

यदि बारीकी में देखें तो काले फूँम का अक्षमा और लम्बी नाक की व्यक्तित्व में पेरेस्ट राजगोपालाचार्य

बलभारमर्मा के ठीक उलटो हैं । बल-  
भारमर्मा को भोग्य पस्तु है; वह चुप-  
चाप काम करता है, तो राजभोगाला-  
चार्य, जिन्होंने माधवी जी के 'पद्म  
क' की जी की स्थापना पर चल कर  
जी धार-० काम से अपने को  
मगड़ कर लिया है, बहुत मोहित  
होकर बहुत खिलत हैं । भारत में  
दूसर किसी नती को मैं नहीं जानता,  
जो पञ्चन (स्टेडिड) निष्कामन  
में इतना द्रुत होकर इतना पड़ु हो ।  
दखन में सायन्-थ्री ओर सल हल  
ब्रह्मण में सायन्थ की विचयता है ।  
यदि सायन्थम की विचयता की कोहों  
हूयनी-पण मयम है तो जी  
राजभोगपालाचार्य उस क सायन्म  
प्रतिनिधि है ।

सब पड़े तो गांधी जी की किरक  
अनुयायी हो कर भी गांधीवाद की  
'स्फिरि' — आमा — राजा जी  
में बहुत कम है । गांधीवाद तो  
आमा का अनावृत रूप लकर  
चलता है, इस में डिण्डोमसी नहीं  
है नीति ह शतरज की चाहें  
नहीं, कतय का आभनग है । यह  
विरोधी क उख म दुखी है । पर



आ० गचगोपलचार्ज्य  
 राजा जी ५० मोतीलाल जी का  
 हँस के आवादी है। वह एक महान  
 'स्टुडेंट' और 'टेक्नोशियन'  
 (हिन्दी में चाल-चाल इसका  
 अनुवाद है) वह एक शब्द आजकल  
 कुछ महान् अर्थ में प्रयुक्त होता है।  
 इसलिए मैं अभी जी से एक राजन  
 हूँ। है। स्वामी मोतीलाल जी  
 और देवगुरु के बात कहें करने  
 वाले हैं वह व्यक्ति भी विचित्र  
 गण-कामेश्वर के समय हमने देखी  
 थी। तब मैं देखता था कि वह  
 और देवगुरु वस-वस कहें भी  
 मर मर है कि शुभ गांधीवादी  
 राजा जा अपने को श्रोत भी नहीं  
 कर सके हैं। गांधीवाद को कर्तव्य  
 एक मेरा ही मिमिडी मिलित-  
 और अमात्य होकर चलता है।  
 मैं को हृदय में दबाये हुए। कर्तव्य  
 भी धाम में मैं सदा अवतार  
 एक कर लोग की तरह चलता हूँ।

राजा जी में अपनों क लिय बड़ा मोह है और अपनी सन्तति को सूक्ष्म विलासिता क — आराम-तलबी क — वातावरण मे रखन में वह प्रसन्न है।

सब बात तो यह है कि राजा जी एक बलवान (बलवानचुभ्रण) प्राणी है। उन म बड़ा विद्वान्प्रमाण है जो एक प्रतिभाशाली बौद्धिक व्यक्ति भी होता है और बड़ा दुबल-तपस्वी भी है जो प्रतिभा आदि बल के साथ चलता है। यह योगी ब्रह्मसाधक का साधना पथ नहीं है। यह न्यायिक और सांख्यिक का बल और बुद्धि-पथ है। गांधी जी प्रत्युपायिका म शायद ही बड़ा दूरस्थ व्यक्ति हों, जिस में राजा जी-जैसे सदा सत्यना-शक्ति, तुष्टि की निष्कलमता, हठधर्मिता, कठिना-शक्ति, किसी चीज को टुकड़े-टुकड़े, असंगठन करके रखने की शक्ति और निरोधी को शान्तिकर करने की कमता हो। पर जहां साधारण-राजनीतिक की दृष्टि म योगवास्य विरोधता है, वहां कुछ साधारण की नष्टि म यह बलका दुर्लभता है। गांधीवादी हाथक है अथ्य करण है। पर उस क हास्य और व्यथा में चुपन वाली किस्मिता-विषय नहीं होता, यह हास्य और व्यथा विरोधा को ब्रह्म उस म भी शान्तिकर उठकी पथनी श्रमसा को उठा डालता है। यह एक 'सिद्धि' है, जब राजा जी के व्यय की काटक-विरोधा क कठक के प्रभाव-पथ को नाना हल में दे दे जाता है। यह सत्य एक इत्यन्तिका क प्रहार है, जिस म विरोधा को चूर-चूर कर डालने की कमता है।

गांधी जी व अणुन्यायिया में कोई दूसरा सामान्यतः गांधी जी की लेखन शला की इतनी सफल कापी नहीं कर सका है जितना राजा जीन की है। लखक का दृष्टि में लेख तो इस दायर में उन का स्थान उठा ऊँचा है। उन की कहलिया कभी कभी गलतस्थ का याद निलातो है।

राजा जी एक व्यक्त परिश्रम  
करने वाले कार्यकर्ता हैं। दक्षिण  
भारत में महत्त्वपूर्ण-निधन का  
जो कार्य उन्होंने किया है उसमें  
दूसरा क्या कारण ? देश का विपन्न  
उन्होंने फकीरी बना धारा का  
विरोध है और वैसे वह एक बड़ ही  
मेलकल्लु ( धन प्रश्रुति ) शा-  
स्त्री हैं। परन्तु उन में दोष यह है  
कि उन का विमर्श उन के दिल धीरे-  
धीरे नहीं ज्वाला मारी पड़ता है।



हसीलिय कर बार जब वह गल्ली करते होते हैं, या गल्लद रास्ते पर होते हैं, तो भी तर्क और बुद्धि के सहारे अपनी गल्ली को ठीक सिद्ध करते हैं। जब सत्यप्रह-बुद्ध बल रहा था, तब भी मल्लिक-प्रवेश बिल के सम्मन्ध में इनके दंग का प्रेम-वर्षियों को प्रभाव था। राजा जी उस समय का प्रेम के कार्यवाहक प्रभाव थे; फिर भी बिल के लिए मद्रास-गवर्नर ने मिलन, 'खिलोनो-सी' व्यवस्थापक समाजों के सर्व-स्वों से मिलन एवं उन ने अनुपरोध करने में अपना अधिकार समय प्रतीत करते थे। यह एक विद्वत् की परस्पर-विरोधी वस्तु था और इस बात को लेकर का प्रेम-वर्षियों, विवेकतः २० पी० वांटे, इतन मात्र-ज थे कि प्रेम ने राजा जी को उस पर ने इस्तीफा दे देना पड़ा। पर वे विव भी नवीन थे; आज तो उन में 'केलता हूँ' कि इन को मिलन के कहर-विरोधी, १९२२-२३ के 'परिणम मद्रास' और अप्रतिवर्तनवादी, देशकृत और मोती-लाल के सामन नन कर लड़ा होने वाले, तथा देश में एक प्रथम प्रेमी की सम्पत्ता लक्ष्मी कर देन वाले राजाजी वोट-मिलारी का निर्वाह बना पाए कि वे धूम रहे हैं, तो प्रामा कोप जाती है और देश के दुर्गम पर रोना प्रता है। राजाजी की विलक्षण बुद्धि को प्रेमी उन्मत्तवादी के लिए बोट की उम्मा मगने में लगे, यह उसका दुर्ग-योग भी है और अपमान भी है। वह इससे ऊंचे कार्य में लगनी थी। आज भी उन के भाषणों में और तर्कों में तजस्विता है; दक्षिण भारत में को प्रेम-पत्र में दिये गये निर्वाचन-सम्बन्धी भाषणों में उन के भाषण स्वच्छम हैं, पर सब पड़-सुन कर भी ऐसा लगता है, जैसे कोई विचलन बकौल मुन्दरे को जित्ना करन की चेष्टा कर रहा हो।

पर राजाजी जब किसी का पक्ष लेते हैं, तो तथ्य और उस की मूल शक्ति की श्रेष्ठा अपने बौद्धिक रमका पर ज्यादा प्ररोध करते हैं। मोर यही उन की बड़ी भारी दुर्बलता है।

यदि वज्रमहार् गांधीवाद के प्रभाव या कर्तृपक्ष है, तो राजा जी उस के बुद्धि-पक्ष हैं। यह प्रणीत ब्रह्मण हनुमन्तिष्ठ और निरुद्ध सेवक दोनों एक साथ हैं। और यही उस की 'ट्रेजेडी' है।

## ( ३ ) राजेन्द्रप्रसाद : 'विहारी गांधी'

सांख्य रंग, देशी गांधी टोपी, जिन को कभी भारें से काम न पड़ा हो, ऐसी लम्बी मूँछें, दमा के गिराए, पर कभी न इटने वांटे उस्ताह से पूर्ण, भीतर से महान पर ऊपर से धरपटे—राजेन्द्रबाबू को देख कर दिल भक्ति से उमड़ता है। इस व्यक्ति की 'गंधारपन' की सीमा तक बड़ी हुई सरलता की देख कर अच्छे-बुरे सेवक भी



बाबू राजेन्द्रप्रसाद

दंतों लगे उंगली दवाते हैं। जब तक आप नहीं पहले-ने न जानते-पहचानते हों, आप को ऐसा मान्य होगा, मानो कोई प्रसिद्ध विहारी है। दृष्टिनाशायक की सेवा में इस व्यक्ति ने अपने को ऐसा भोत-भोत कर दिया है। इसे देख कर कौन कहगा कि एक जमाने में यह प्रथम अंग्रेजी का बकौल रद हुआ है और हजारों पचे की 'प्रिन्सिप' छोड़ कर सेवा के इस युगम, कंटीले, मार्ग में प्रयास है। और यह कौन कहगा कि सारी युनिवर्सिटी-परी-लाओं में 'बेह' खदा प्रथम प्रता रहा होगा ? विषय प्रभाव स्र पी० सी० राय के दूसरे किसी प्रसिद्ध नाम के सहयोगियों में हैं, जिनमें उनको 'प्रिन्सिप' को ग्रहण कर लिया है। छूटे राजनीतिक शास्त्रों में राजेन्द्रबाबू बहुत बचते हैं। उन का क्षेत्र ठोस सेवा का क्षेत्र है। हसीलिय वह बहल-मुखा-हलों में बहुत कम पड़ते हैं और जब पड़ते हैं तो भी बड़ी बेला

और ब्रिजिन्दा के साथ। जब से यह इस क्षेत्र में प्रारंभ, बिना किसी आशा, पुस्तक या प्रलोका की भावना के चुपचाप काम कर रहे हैं। और इसका मुख्य अपन-आप ही उन्हें मिल गया है। प्रथम प्रतीतों में जहाँ किसी गता के नदुत्त के विषय में, उस के नाम के प्रयोग-विन्द लगाया जाता है, तथा विहार में हर प्रकार के देश-सेवक राजेन्द्रबाबू को अपना एक-मात्र नता मानते हैं। इसका कारण यह है कि विल्लु बुलान वाले व्यवस्था-उनकी जिज्ञा से नहीं निकलते; उन में बहुरूप की वृ नहीं है; उन में अधिकार के लिये प्रमाद और प्रामत्त-वचना नहीं है और न ईर्ष्या-हृष है। उनकी सेवा का क्षेत्र तन मद्रास है कि उस म हर प्रकार के जन-सेवक का रसातल है।

राजेन्द्र बाबू में निरंतर कार्य करन की असाधारण क्षमता है। फिर बहुरूप के साथ भगवान ने, वाणी भी दी है। उनके भाषण तर्क-युक्त, बुद्धि और भावना को 'प्रणीत' करन वाले होते हैं। इस विषय में उनका दंग एक असाधारण का दंग है। उन में राजनीतिक की दुष्प्र-क्रियाकर बात करन की पटुता आप को न मिलेगी। प्रतीतों और सम्-

स्याओं को राजेन्द्रबाबू आपके सामने सुलझे रूप रूप न रख देते हैं। हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं पर उनका असाधारण अधिकार है। उनकी की प्रीति को लीखी की लीखी का होता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। हिन्दी और हिन्दी-साहित्य के बह न केवल प्रेमी हैं, परन्तु मेवक भी हैं।

राजेन्द्र बाबू में बुद्धि और भावना का बड़ा सुन्दर सम्मन्ध हम देखते हैं। जहाँ विवेचना की शक्ति उन में चरम सीमा तक पहुँची है, वहाँ हृदयोन्मादकारी भावना का भी उनमें सुन्दर विकास हुआ है। विनम-प्रतिक के पद गाते-गाते मान-विभोर हो जाते हैं।

और राजेन्द्र बाबू का विशेषण क्या किया जाय ? उनके कुक्कुड़ नहीं किये जा सकते। वहाँ तो सब कुछ ही दुष्ट है। इसमें मिलावट नहीं, पानी नहीं। उनके दंग-रूप और उनकी, प्रार्थनिक महत्ता दोनों को देखकर तो ऐसा मान्य होता है, मानो मिह्री की बसुरत और बेहोल दादी में भगवान न प्रमत्त भूत किया हो। जीवनी-लेखक येमे व्यक्ति का क्या चित्रण कर ? वस, वह तो उसे प्रभाव करता है और येमे मनुष्य को राष्ट्रपति चुन पर राष्ट्र को बर्धते देता है।

## इंडियन टेलरिंग कालेज

दोशियारपुर (पंजाब) याद रफ्लो घनी पुरष घनी नहीं हुनरमन पुरष घनी है १२० विवास, सीख कर अपनी सृष्टि शाप कोल हैं। इस हुनर की दुनिया में हर उम्र जरूरत है नियम आज ही भंगवायें। गवर्नमेंट विहार उड़ीसा न पहली बार पुस्तक अपनी पाठशालाओं में बतौर कोर्स स्वीकार की हैं, लचमुच अतिरिक्त पुस्तकें हिन्दी, उर्दू, पंजाबी १२ कमीज़, २५८ प्रश्न, कपड़ा लगाने पर २६ चित्र १) क और १७२ प्रश्न, ४८ चित्र १(१), २ पाठ्यक्रम १) फ्राक पिनाहार १), अग्री अम्पर, बलाउस पेदीकी १(१), न पत हूर १) वास्कर १(१), लुकी १२२ प्रश्न १(१), वाय = लुस्फेदी १), दोलत दोजियां हलम कटारें पर लासानी पुस्तकें ४), १०० चित्र काई साहज पर १), साहज ४०×६० इंच १(१), कैमलम १), दर्जी की पहली १) और टेलरिंग सामान अति सुन्दर।

## मुफ्त में संगीत-विद्या

संगीत विद्या सिखाने वाली पुस्तक

सुरल संगीत शाक ज्यप ने एक मुख्य प्रथम माग हिन्दी ॥)

उर्दू ॥) द्वितीय भाग हिन्दी १) २०। इस के द्वारा प्रत्येक ली, बालक तक गायन गायन बड़ी ही आसानी से सुपुत्र में ही सीख सकते हैं। इस के अतिरिक्त हिन्दी में राष्ट्रीय धार्मिक गाने की १ पुस्तकें १-२)॥ मुख्य की १-३) में ही दी जा रही है।

पता—नैनकर संगीत-सदन, मोहम्मद नौकर, पोस्ट बन्दौसी (२० पो०)

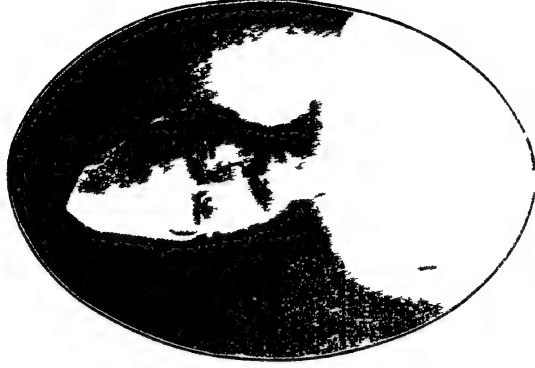
## अर्जुन का स्वराज्य-अंक

पुराने राष्ट्रपति

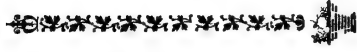


मरदाग वल्लभभाई पटेल

नये राष्ट्रपति



बिहार-रल बा० राजेन्द्रप्रसाद







गमन एक सो व-  
र्षों में राजनीति  
अथवा पालि-  
टिक्स शब्द का  
जो अर्थ हम स-  
मझते आ रहे हैं  
उस में पराधीन-  
मिति का ही अन्तर्भाव रहता है।  
राजनीति और उस के सिद्धान्तों का  
शास्त्रात्मक व्यवहार तभी होता है,  
जब देश स्वाधीन होता है परन्तु  
वे सम्बन्ध-विग्रह करने की हमला-  
इष्ट में होती है, अर्थात् सत्कार के  
प्रश्न-सम्बन्ध में वह आदर तथा  
भय के साथ याद किया जाता है।  
इस व किसी नियम अथवा उप-  
नियम का परिणाम समीपस्थ स्वा-  
धीन देशों पर पड़ता है अथवा  
अग्रज-सत्त्वन्ति के अन्य देशों की  
मिलिशिया में रणी हुई बलपों की  
प्रशिक्षण मैत्री के बलपों, वह  
सत्कार के अन्य क्षेत्रों में अपने  
क्याही की किरण फैला सकता है।

**राजनीति का प्रथम साधन**  
**सन् १८९७ के नवम्बर मास की**  
**१७ वीं तारीख की 'स्वाधीन**  
**राष्ट्र-राज्य-संघ' पर अमेरिकी भाषा**  
**प्र जादू कागजर हुआ था। हिन्-**  
**दुआशी की स्थापना करने की**  
**मिलिशिया में रणी हुई बलपों की**  
**प्रशिक्षण मैत्री के बलपों, वह**  
**सत्कार के अन्य क्षेत्रों में अपने**  
**क्याही की किरण फैला सकता है।**

## लोकमान्य तिलक की राजनीति

( ले०—श्री सिद्धांत मानव आचार्य )

भारतवर्ष के स्वातन्त्र्य-संग्राम में लोकमान्य तिलक का एक विशेष स्थान है। व एक युग के प्रवक्ता थे। उनके राजनीतिक सिद्धान्त मगधी के सिद्धान्तों में भिन्न थे। आ सिद्धांत मानव आचार्य सम्पादक स्वराज्य न इस लेख में उन की नीति का परिचय देन दृष्ट वताया है कि व अधिकार स्वदेशी एवं राष्ट्रीय शिक्षा की विगुणामक विचारधारा पदा करना चाहते थे। व ब्रिटिश शासन की अग्रोका पुस्तिम शासन को सहन क लिये उद्यत थे उचित अवसर का प्रयोग करना जानते थे।

है—वह अपनी परिस्थिति को ही शांत सुन्दर सुलभ अवस्था समझन लगते हैं—उन्हे दुर्गन्ध नहीं आती। ऐसी अवस्था में सर्वप्रथम लोकमान्य तिलक ने जन-सोचधारा में पराधीनता के प्रति तीव्र असन्तोष पैदा करना आरम्भ किया। हिन्दुस्तान के निवासियों की राजनीति का प्रथम सोचधारा यही हो सकता है। स्वाधीन राजों के होनाहारा युवक २०-५५ वर्ष की अवस्था में अपने देश के मेला-सत्वालन, अर्थ-व्यवस्था पर-राष्ट्र विचार-विनिमय आदि में अपनी बुद्धि का कोशल निर्यात हैं, परन्तु किसी भी पराधीन राष्ट्र की सर्वप्रथम अन्तर्का के छोटे-म-छोटे भाग तक राजनैतिक असन्तोष पैदा करना पड़ता है। इस असन्तोष के पैदा करने के समय इस बात की भी विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं हमारी वाणी अथवा लेखनी में कोई ऐसी बात न निकल पड़े जिसका उपयोग हमारे विरोधी अपने दिल के लिए कर सकें। लोकमान्य तिलक न सन् १८९० में केसरी पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया था। तब में केसर-लोक-मान्य की मृत्यु तक (१९००) कसरी न राजनैतिक असन्तोष जागृत करने की अपनी नीति में उर्रा भी परिवर्तन नहीं होता दिया। सर वेलागल पिरोल न अपने एक प्र-व में तिलक को 'भारतीय अग्रजालि का जनक' कहा था। पिरोल न यह बात चाहे किसी और उद्देश्य में कही हो, परन्तु बात ही ठीक। लोकमान्य तिलक की

राजनीति का आधार अग्रजालि पर ही अवलम्बित था। किसी भी वड़े उद्देश्य की साधना के लिए साधक में तावृ अग्रजालि का होना आवश्यक ही होता है।

### कुछ विशेषतायें

**लोकमान्य तिलक की राजनीति** में कुछ बातें प्रमुखता में निर्यात देती हैं। एक-लिख धनिक अथवा प्रभावशाली व्यक्तियों तक ही वे अपनी राजनीति का अन्तर्का रखना नहीं चाहते थे। समाज के अग्र प्रत्यग में राजनैतिक जीवन पड़ना वांछनीय आवश्यक समझते थे। प्रस्ताव अनुग्रह विनय आदि वध कहलान वान साधनों पर उन का विश्वास नहीं था। व मनुष्य को मनुष्य ही समझते थे। मनुष्य की कसरीयों का उन्हे ज्ञान था। उन का सिद्धान्त था कि जब तक किसी शासन को आन्दोलन की तीव्र विरोधी शक्ति द्वारा दमना नहीं जा सकता तब तक उस में किसी लाभ का होना असम्भव है। यत्किमत रूप में अग्रज के सद्भाव पर वे विश्वास रखते थे परन्तु अग्रजों के सामुहिक मन एवं अग्रजों की राजनैतिक प्रतिभावों पर उन्हे निश्चिन्त भी विश्वास नहीं था। व कहा करते थे कि जरा तक लोहा गरम है, तभी तक उस ठीक कर लेना चाहिये। परिस्थिति के बदलन पर मानवी मन की गति और विचार भी बदल जाते हैं। अपने राजनैतिक विरोधी की तथाकथित सज्जनता और उदारता पर लोकमान्य तिलक ने कभी विश्वास नहीं

किया और इसीलिए उन क जीवन में एक अवसर बहुत कम आया, जब कि व शासन के किसी जाल में फन हों। कागजा धाँधों न नवान में शासनकताप्रा पर कोई असर नहीं होता यह बात व प्रवृत्तया मानन थे। परन्तु इस क सा-साथ व यह भी मानन थे कि सरकारी गैर सरकारी कानना कार्यवाही की अग्रहेलना भी नहीं जा जाना वा हिय। एक व्यवहार-कुशल राजनीतिज्ञ की तरह एक तरफ बहिष्कार पर स्वदेशी का शब्द कुक कर यापारियों द्वारा मन्चालित होन जाना ब्रिटिश सरकार को ग्यान का व प्रयत्न करते थे तो दूसरा तरफ शासन-सम्बन्धक वध के प्रत्येक पुत्र पर अपने ग्राहकालियों का अविचार स्थापित करने के लिए भा प्रयत्नशाल रहन थे। लोकमान्य की बहिष्कार में हिंसा नहीं आसती थी। राजनीति सामुहिक स्वाधीन है। एक देश का स्वाधीन दूसरे देश का हानि हो सकता है और विसय-कर किसा पराधीन ग्राहक का स्वाधीन तो उस क शासक का स्वाधीन के विपरीत ही होता है। जब कोई देश अपना स्वाधीनता स्थापित करने जा रहा हो तब वह कबल अपने दिल का ही लक्षण रख सकता है। वसुधैव कुटुम्बकम् की बुद्धि लोकमान्य की भी परवन् थी, परन्तु व करते व वसुधैव के कुटुम्ब में बराबरी की हीस्तिम में बैडन की योग्यता रखन बल्ला देश ही इस उच्चतम मानवी भावना का पालन-पोषण कर सकता है। बहिष्कार आन्दोलन द्वारा प्रत्यक्ष-अवरोध (Direct Action) की शिक्षा जेत समय लोकमान्य तिलक की राजनैतिक बुद्धि में भावना की ऊँची उड़ान का प्रवेश नहीं होता था। बहिष्कार स्वदेशी एवं राष्ट्रीय शिक्षा की विगुणामक विचारधारा स लोकमान्य तिलक देश में गल पड़ा करना चाहते थे। व्यवहार-रिजनीति में धर्माधर्म की शिका उन्नत मन में कभी प्रवेश नहीं कर पाता थी।

### साम्प्रदायिक नीति

**लोकमान्य तिलक** साम्प्रदायिकता को राष्ट्र-कार्य में बाधक नहीं होन देना चाहते थे। वेस तो सन् १८९७ क वर्षा प्रत्य क हिन्दु-मुसलिम दंगा और हिन्दुओं की बलनता को देख कर उन्हीं गुणेश्वर और शिवाजी उस्त्वों जैसे प्रचार-साधनों की सक्ति की थी, परन्तु वह केवल आत्मबल-

वर्षान के लिये थी। बम्बई के हिन्दू-सुलतानम में उन्होंने देख लिया था कि हिन्दू-समाज, अंग्रेजों के शासन में कलहीन एवं परावलम्बी बन चुका है। वह अपने घर-बार की रक्षा के लिये भी शासन सत्ता की ओर देखता रहता है। उस में आत्म-जाग्रति होनी चाहिये। इस को मानन हुये भी उन्होंने किसी मुसलमान का केवल इसलिये विरोध नहीं किया कि वह हिन्दू नहीं है। अली-बन्धुओं के राज-नैतिक गुरु लोकमान्य तिलक ही थे। इसतर मोहम्मदी जैसे कार्यकर्ता लोकमान्य का ही अनुकरण करने में अपने गौरव समझते थे। लोकमान्य की राष्ट्रीयता की कसौटी सन् १९१६ का 'लखनऊ पैक्ट' था। कहकर सनातनी परिदृष्टि, प्रमुद विचारक, गम्भीर तत्त्ववेत्ता तिलक की ओर सभी हिन्दुओं की दृष्टि उस समय लगी हुई थी। कई हिन्दू-ता मुसलमानों की मांगों से दूर की हानि देखते थे, परन्तु लोकमान्य तिलक कहते थे कि यदि ब्रिटिश गोरक्षाधी के स्थान पर, आज, भारत पर मुसलमानों का राज्य स्थापित होता हो तो, मैं पहला व्यक्ति हूँ जो इस परिवर्तन का साथ दूँगा। अतएव हम सब भारतीय हैं। मुसलमानों को कोसिलों में रक्षित जगहें दिये जान की बात का लोकमान्य न बड़े जोरों से समर्थन किया, जिस क परिणाम-स्वरूप 'लखनऊ पैक्ट' की खपि हुई। व्यवहारकुशल तिलक की राष्ट्रीयता न साम्प्रदायिकता की तिलांजलि देना चाहा था, परन्तु आज साम्प्रदायिकता न जो रंग बदला है उसे देख कर तो यही कहना पड़ता है कि लोकमान्य के जीवन में यह एक गम्भीर भूल हुई थी।

कानून-समाजों के उपयोग के विषय में तिलक का मत स्पष्ट था। वे मानते थे कि वर्तमान धारा-समाजों में देश का कोई लाभ नहीं हो सकता है। परन्तु ये यह भी जानते थे कि यदि इन धारा समाजों की दुर्तियों पर स्थायियों का कुलट जा बैठेगा तो वह देश को हानि अथवाय पहुँचाएगा। इस हानि की रोक के लिये वे कोसिलों पर कब्जा करने के पक्ष में थे। लोकमान्य तिलक की मृत्यु के पश्चात्, 'नौकर-पंच' वालों ने प्रति-सहकार, वृक्ष की ओर झुकाव, लोकमान्य का नाम ले ले कर की, वह तो उस महात्मा राजनीतिज्ञ का अपमान था। कोसिलों का उपयोग लोकमान्य

किस प्रकार करना चाहते थे, इस का उत्तर उन के सुलकारी और सहचिन्तारि स्वयंसेवक विहलभाई पटेल ने अपने अनेकश्री के समापनत्व में दे दिया है। लोकमान्य की राजनीति में प्रति-सहकार का कार्य यही था। परन्तु उन का अग्रिम विरोध करने वाले लोग भी जब 'प्रति-सहकार' में कुछ पड़े तब उन्होंने उस दल को केवल 'नौकर-सोपान' ही बना डाला।

लोकमान्य की मृत्यु सन् १९२० में हुई। आज चौदह वर्षों के पश्चात् भी हम देखते हैं कि लोकमान्य की राजनीति की उतना ही आवश्यकता है, जितनी उन के जीवनकाल में थी। तिलक साधु अथवा सन्त नहीं थे। सत्य को वे परम धर्म समझते थे, परन्तु सत्य की विवृत कल्पना के बशीभूत होकर, वे अपने देश को हानि नहीं पहुँचाना चाहते थे। वे तत्त्वविद थे। मसार क व्यवहार का उन्होंने अवयवन किया था। मनुष्य स्वभाव की कमजोरियों को वे जानते थे। जीवन में कई बार उन्हें निराश होना पड़ा था, परन्तु उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र से पीछे हटने की कल्पना कभी भी नहीं की।

मन्त्रों में तिलक-राजनीति में ये बातें आनी हैं:—(१) सामूहिक जाग्रति एवं असन्तोष, (२) प्रत्यक्ष अवरोध म ही विरोधियों को दबाया जा सकता है, (३) उचित अवसर का पूर्ण उपयोग करना चाहिये, (४) कम म कम अधिकार देन चाहे शासन-यन्त्र पर भी कब्जा कर लेना चाहिये, (५) राष्ट्र-हित क लिय साम्प्रदायिकता की बलि चढ़ा देनी चाहिये। (६) धारा-समाजों पर राष्ट्र का अधिकार होना चाहिये।

—१०—

'शताग्रियों में लाखों मनुष्यों के एकत्रित किय हुए धन पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया और उस वे लपटन ले गये। ठीक इसी प्रकार, जैम रोमन लोग यूनान और पीतस में लूट में मिले माल को इस्ली ले गये थे। यह कोई नहीं कह सकता कि इस धन का मूल्य कितना था। परन्तु यह लाखों पीढ़ के लगभग रक्षा होगा। उस समय योरुवासियों के पास जितने रत्न और जवाहर रहे होंगे, यह धन उस से कहीं अधिक गहा होगा।'

—११ फस पक्षम ।

## सस्ता-साहित्य-मण्डल के

### कुछ राष्ट्रीय

एवं

## राष्ट्र-निर्माणकारी ग्रन्थ

—११—

- हमारे राष्ट्र-निर्माता— (ले० रामदास 'सुमन')  
ले० तिलक, महत्मा गांधी, महावीरजी, मोतीलालजी  
जिन १० राष्ट्र-निर्माताओं के जीवन-चरित्र मुख्य २४)
- आत्म-कथा— (अनु० हरिदास उपाध्याय)  
महात्माजी की आत्मकथा उपनिषदों की भांति पवित्र और  
उपन्यासों की भांति मनोहर सजिल मुख्य १५)
- गांधी विचार दोहन (ले० किशोरीलाल व० मयकवाला)  
महात्माजी के विविध विषयों पर उनके विचारों का दोहन मू० ॥)
- स्वाधीनता के सिद्धान्त—  
ट्रिप्स मॉस्विनी लिखित Principles of Freedom  
का अनुवाद मुख्य १५)
- नरमेघ— (ले० बन्धुभाल जोहरी)  
मोटेल की Rise of Dutch Republic का सारांश; इस्लैण्ड  
की राज्य क्रांति का इतिहास मुख्य १५)
- दुस्ली दुनिया—  
भी राजगोपालाचार्य की सुन्दर कहानियाँ; भारतीय जीवन  
की मधुर मौकियाँ मुख्य १५)
- विदेशी कपड़े का मुकाबला—  
हममें हम ध्यान यहां के कपड़े में विदेशी कपड़े का का मुका-  
बला किस तरह कर सकते हैं, यह बताया है। मुख्य १५)
- रोटी का सवाल—  
प्रिंस कोपेटकिन की सुप्रसिद्ध Conquest of Bread का  
अनुवाद मुख्य १५)
- इंग्लैण्ड में महात्माजी— (ले० श्री महादेव देसाई)  
गांधीजी की इंग्लैण्ड-यात्रा तथा वहां की उनकी हलचलों का  
वर्णन; सरस और सुन्दर मुख्य १५)
- हमारा कलंक—  
महात्माजी के इरिजन-आन्दोलन सम्बन्धी लेखों का संग्रह;  
महात्माजी के आशीर्वाद सहित मुख्य १५)
- जीवन साहित्य—  
काका कालेलकर के जीवन निर्माणकारी निबन्धों का संग्रह मू० ११)

महल के स्थायी प्राक कनकर ये उत्तम पुस्तकें  
पान मुख्य में हैं।

नियम मंगाने का पता :—

सस्ता-साहित्य-मण्डल, दिल्ली ।



सो० कमलाबाई किंव

## भारतीय महिलाओं की जाग्रति

( लेखिका—सो० कमलाबाई किंव )

‘यान यदि भारत की नारी-शक्ति जागृत हो जाय तो, वह भारत की अन्य बुद्धियों को दूर करने में सब न अधिक सरल हो सकती है। नवीन राष्ट्र-निर्माण क कार्य के लिये उन से बहकर कोई समर्थ नहीं है।’

आज वारों और दृष्टिगत करने से सब स्थानों पर सुचारों की चर्चा चल रही है। महिलायें भी कम उन्नति नहीं कर रही। पाठशाला महाविद्यालय, समाज-समिति, उत्सव म्यूनिसिपल कमेटी और कसिल सभी स्थानों में लिया प्रयुक्तता में भाग लेती हुई नजर आती हैं। सुधार-में भी सज्जन समाज-सुधारक इस चित्र को देख कर बहुत प्रसन्न होते हैं। वे समझते हैं कि समाज आगे बढ़ रहा है। परन्तु हम वास्तविक उन्नति कर रही हैं या नहीं, इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं करते। अनक सुधारक तो वर्तमान सुधारों के दूसरे पहलु को देखना भी अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझते हैं। वे हमें प्रत्यक्ष सुधार में आन वाला परिहार्य विरोध समझ कर उधेका की दृष्टि में देखते हैं। किन्तु हमने वस्तुतः कितनी उन्नति की है, इस का निरीक्षण आवश्यक है।

### प्रशिक्षण

बड़े नगरों में भी जहाँ शिक्षा का बहुत प्रचार है शिक्षित महिलायें परिमित मर्यादा में मिलती हैं। पक्की-पठन महिलाओं की संख्या तो छोटी भी कम है। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए महिला-समाज की साक्षरता की समस्या अत्यन्त कठिन तथा परिश्रम और व्यय-साध्य प्रतीत होन लगती है। परन्तु कठिन होन के कारण यह उपेक्षणीय नहीं है, इस तरफ राजनैतिक और सामाजिक नेताओं की अन्तर्गत व सरकार का पूर्ण सहयोग लेते हुये निश्चित कार्य-पद्धति बना कर अत्यन्त प्रयत्न करना चाहिये। हमें सम्प्लता अवश्य मिलेगी।

### गांवों में

गांवों में महिला-शिक्षा की समस्या और भी अधिक विचर

है। बाल-विवाह को प्रथा प्रचलित होन के कारण माता पिता लड़कियों का शीघ्र ही विवाह कर देते हैं और वे पढ़ नहीं सकतीं। फिर कन्या पाठशालाओं का भी अभाव रहता है। उनको मनोबुद्धि का विकास नहीं होन पाता। हम लोग प्रामों के प्रति इतन अधिक उदासीन हैं कि कुछ मीलों के अन्तर पर रहत हुये भी उन क साथ विदेशी का सा व्यवहार करते हैं। जहाँ शिक्षित समाज का व्यवहार इस प्रकार का है, वहाँ यदि लियों में भी यह तोप दिखाई दे, तो उस में कोई आश्चर्य नहीं है। आज पढ़ी लिखी लिया प्रामों के सम्बन्ध में—जहाँ वास्तविक भारत निवास करता है—बिल्कुल उदासीन हो चुकी हैं। प्राचीन सन्कटित प्राचीन साहित्य और स्वदेश-गौरव की भावनाओं का हमारा अत्यन्त-अभाव हो गया है। वस्तुतः हमारी कन्यायें तो अपन देश का गौरव-भय इतिहास भी नहीं पढ़ पातीं। फिर उनमें वेग-प्रम की भावना ही कौन जागृत हो। प्राचीन पवित्र महिला पुण्यभूमिओं के स्मरण-भाव में उन की निर्यता हुई, त्याग और आत्मोत्सर्ग की भावनाओं का चित्र हमारा सामन कक्षा हो जाता है। परन्तु आज क चित्र में उस का कोई अंग नहीं मल खाता। हमारी पूर्वजाओं का एक भो तो गुण हम अपन में नहीं पातीं। न स्वधर्म में हम पररग्य है, न पतिव्रत या सत्यव्रत की ओर आज की शिक्षित महिलाओं का भाव है। वह आदर्श ही हमारे सामन नहीं है। शिक्षित महिलाओं का कर्तव्य है कि वे एक स्थल पर बैठ कर गम्भीरता से इस पर विचार करें कि वर्तमान महिला-समाज का जिस भी कृपा सम्पन्न, साधुता आदि कामोत्तम गुणों के कारण सम्

कन वाले प्राचीन भारतीय महिलाओं के चित्र के समान उज्ज्वल होगा? हम यह नहीं जानती कि हमारी क्या परिस्थिति है। हम पर अज्ञान का बहुत अधिक गहरा आवरण पड़ा हुआ है। भारतीय महिला-समाज का मानसिक और बाह्यिक पतन इस सीमा तक पहुँच चुका है कि एक भी ऐसी प्रामा दृष्टिगोचर नहीं होती, जो इस पतन को रूढ़ कर तब्यती हो, जो इनकी मेधा करन के लिये कटिबद्ध हो। हमारा मानसिक उन्माद अन्तःकरण की प्रसन्नता और अपन कर्तव्य का व्यर्थान्तरण सन कुछ नष्ट हो चुका है।

समाज की उदासीनतापूर्ण वृत्ति समग्रता का अभाव तथा दूरिद्रता आदि महान् सफ़टों में भारत का स्त्री-समाज घिरा हुआ है। सात लाख लोट जो गाँवों में फैली हुई इस दुर्देश को दबा कर उन का कल्याणलट करना वस्तुतः बहुत कठिन कार्य है। परन्तु परिस्थितियों में डरन या सफ़टों से घबरान न काम न चलेगा। जिस दिन हमारा अनवरत परिश्रम में गाँवों महिला-समाज में जागृति हो जायगी, वह दिन भारत क इतिहास में स्वर्णचरो में लिखा जागा।

### सर्वाङ्गीण उन्नति

भारतीय महिलाओं की कवल सामाजिक उन्नति का ही प्रश्न नहीं है उन की भौतिक व आर्थिक उन्नति भी अत्यन्त आवश्यक है। आज तो हमें पेट भर अन्न लज्जाराखण्ड के लिये झरत तथा खिर खिचने के लिये झोंपड़ी तक का मिलाव कठिन हो रहा है। लम्बी हमें त्याग चुकी है, दूरिद्रता विप्लव हाव्य के साथ हमारे घरों पर कक्षा

किन्ने हुये हैं। हमारे पास स्वस्थ और निरोग रहन के साधन भी नहीं हैं, सब प्रकार के रोगों, दूरिद्रता, अशिक्षा, सामाजिक अत्याचार और शोचनीय उपेक्षा के कारण भारतीय महिला समाज मरणासन्न हो रहा है।

### नि.शुक्र शक्तिप्राप्ति

प्राचीन शास्त्रों में नारी को शक्ति का अवतार माना है। आज वही शक्तिप्राप्ति स्वयं विपन्न और अशक्त अवस्था में है। इस का उत्तरदायी कोम है उस क अन्तःकरण की भावनार्य किस न कुचल डालीं। दूनवों का सहार कर उन का दर्प-वलन करन वाली शक्ति क अवतार की यह शक्ति वह गुणों की परखी म डर जाता है। यह परिवर्तन कैम टुड़ा और इस के मूल में क्या कारण हैं, इन प्रश्नों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। पढ़ी लिखी वर्तमान सुधारों के पीठ जान वाली महिलाओं तथा समाज-सुधार-में भी महाबुद्धियों को इस प्रश्न पर गम्भीरता में विचार करना चाहिये। पाश्चात्य समाज का स्वेचरता-पूर्ण सुधार उसकी आधुनी धन-शालिता व्यक्तित्व स्वतन्त्रता की सीमाबद्धित व्याख्या आदि बातों की बाहरी चमक से मोहित कर बहुत सी बहिनें पाश्चात्य-सम्पत्ता क पीठ चलन लगी हैं। यदि उन्हें भारतीय-सम्पत्ता की शिक्षा दी भी जाय, तो वे उमे इस कर टाल देती हैं। जो व्यक्ति अपन धर्म, और अपनी सभ्यता में प्रेम नहीं कर सकता, वस्तुतः वह अपन देश से भी प्रेम नहीं कर सकता।

### राष्ट्रीय उन्नति

भारतीय महिलाओं की जागृति और सर्वांगीण उन्नति का प्रश्न कवल उन्हीं की उन्नति का प्रश्न नहीं है, यह सम्पूर्ण देश की सामाजिक और राजनैतिक उन्नति का प्रश्न है। यदि हमें अपनी मारुभूमि की उन्नति अभीष्ट है तो महिला-समाज की उन्नति की ओर अनिवार्य रूप से ध्यान देना होगा। यान यदि भारत की नारी-शक्ति जागृत हो जाय तो वह भारत की अन्य बुद्धियों को दूर करने में सब न अधिक सरल हो सकती है। नवीन राष्ट्र-निर्माण के कार्य के लिये उन से बह कर कोई समर्थ नहीं है।

शिक्षित महिलाओं का कर्तव्य है कि वे अपनी बहिनों का उत्तार करने में प्रयास से लग जायें।

इस सेवा में प्राप्त होने वाला सच्चा आनन्द ही उन का सर्वश्रेष्ठ फल होगा। भारतवर्ष की वास्तविक सम्पत्ति का उपयोग भी आज की जाति बहुत अच्छी तरह कर सकती है। हमारे देश में विपुल धन धान्य है बिनाश भूमि है सब चीजें पैदा हो सकती हैं परन्तु फिर हम दरिद्र हैं। कर्तव्य परमेश्वर व कर्मद्वारा भारत को सुखी व सम्पत्तिशाली बना सकती हैं। आनन्दव्यक्ता है कवल गीता क सच-मान्य उच्च तन्त्र क अनुसार फल की प्राप्ति न करन हुए एक दम कार्य में लग जान की। यही एक सरल और सर्वोत्तम मार्ग है।

भारतवर्ष के ४०० ०० ०००  
निवासी पेन्शनर भोजन कभी नहीं  
पात।

—हटर

आज मे आर्थिक किसान बापे  
के एक सिर से दूसर सिर तक यह  
भी नहीं जानत कि पेन्शनर भोजन  
करना किने कहते हैं।

—सर चार्ल्स इलियट

यह अनुमान करना अनुचित  
न होगा कि १० ००,०० ००० भारत  
वासी रोने हैं, जिनकी वार्षिक आय  
५ शिलिंग प्रति अनुप्य मे अधिक  
नहीं होती।"

—इण्डियन विटनेस [ पावरियों  
की पत्रिका ]

'भारत में जिस पद्धति क अनु-  
सार ब्रिटिश शासन चलाया जा रहा  
है यह इस सत्ता में अन्यन्त  
निष्ठ और पतित — एक राग की  
दुःख राग द्वारा लट् खसोट की —  
पद्धति है।

—डा० वी० एच० रयबोर्ड

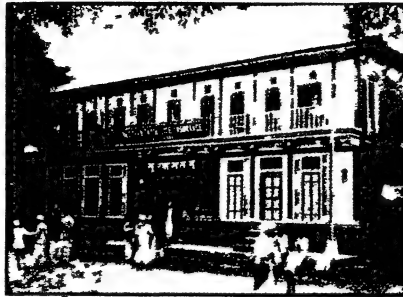
'भारतवर्ष की वर्तमान शासन-  
व्यवस्था कवल इसा लिए अन्न तक  
बिद्यमान है कि यह न्यब प्रकार की  
स्वतन्त्र और बुद्धिमत्तापूर्ण आलो-  
चनाओं न बची हुई है।

—सर लुइस मेलेट

[ यू० प्र० उपमन्त्री भारत ]

—३०—

# वैस्टर्न इण्डिया



लाइफ  
इन्शारेन्स  
कम्पनी  
लिमिटेड

हेड आफिस—वैस्टर्न इण्डिया इन्शारेन्स विलिडङ्ग, सतारा

स्थापित—मन् १९१३ ई०

विशेषतायें

प्रीमियम जस्त न होन वाली धारा  
सुरक्षित धन विनियोग

रिजर्व का बड़ा अनुपात और बहुत ही मितव्ययता  
बोनस सब से अधिक

१८३४ की सन्ध्यायें

३१-१०-३८ तक समाप्त होन वाले ३ साल के  
वतुपराम की आकषर्क सन्ध्यायें

बीमा जो जारी है	५,५०,००,०००	सूद जो मिला	६०%
लाइफ फराइ	५०,००,०००	सूद जिसका अनुमान किया गया था	४२%
रिजर्व फराइ	६,५०,०००		
इनवस्टमेंट में बढ़ोती	५,००,०००		
प्रथम वर्ष के प्रीमियमों पर व्यय का अनुपात	१०		
दोष वर्षों के प्रीमियमों पर व्यय का अनुपात	६%		
रिजर्व-फराइ की ह्राय भी न लगा कर सबने अधिक बोनस <०> व <५> प्रति हजार प्रति वर्ष का कायम रक्सा गया।			

लियों का बीमा किया जाता है।

स्त्री-पुरुष दोनों न सम्मिलित बीमा जारी किया जाता है।

भारतवर्ष की यह पहली कम्पनी है जिस न १५ वर्ष क ही जीवन में सबने अधिक बोनस दिया है। उन्नतशील कम्पनियों में यह सर्वप्रथम कम्पनी है जो कवल सूद की ही ह्राय न अपना व्यय १६ वें वच से पूरा कर लेती है।

**आवश्यकता है** बहुत ही उदार शर्ता पर जीविजनल और डिस्ट्रिक्ट भोपलाहजरो व एक्सेन्टों की जो कम्पनी क लिए काम कर सके। इस क लिए कार्य करन न आप को बहुत ही सुगमता अधिक आमदनी और स्थानी प्रसन्नता प्राप्त होगी।

जीवन बीमा करान वालों को इस न उच्च कम्पनी नहीं मिल सकती। देश के इस भाग में अपना व्यवसाय प्रारम्भ करने क लिए कम्पनी न अपना वृत्तर चान्दनी चौक, देहली में स्थापित कर दिया है। जो लोग भारतवर्ष में उन्नतशील व माली अवस्था में ठोस कम्पनी की खोज में हों वह निम्न पते पर मिलें या पत्र-व्यवहार करें।

आर० पी० मार्गा, औरम्नाहज़र, वैस्टर्न यू० पी०  
चांदनी चौक, देहली।

चिन्तिते कई महीनों से हमारे देश में साम्यवाद के प्रश्न ने बहुत जोर पकड़ लिया है।

साम्यवाद का सचिवय शब्दवा आन्दोलन लन के शिथिल अवस्था भयसकल होने पर यह स्वभाविक भी था। जब तक यह आन्दोलन जोर पर रहा, देश के जल्दबाड़ी और कार्यक्रम युक्त उसमें कने रहे। जब यह लुप्त निर्वल पड़ कर छिन्न-भिन्न हो गया तो उनका मिश्र-मिश्र विभागों में बँट जाता जिसव्य ही सा था। इन्हीं में से कुछ व्यक्ति साम्यवाद की तरफ भी खड़े हुए और उनकी चेष्टा ने इस आन्दोलन में भी कुछ वम धा गया।

कहने के लिये तो यह आन्दोलन बर्षों से जारी है। बम्बई, कलकत्ता, कानपुर आदि अग्रजीवी-प्रचलन नगरों में कुछ लोग बहुत समय से इसके प्रचार की चेष्टा करते आये हैं। फिर जब बम्बई और कलकत्ता के बार साम्यवादियों का कानपुर में बोलचालिक सङ्घर्ष केस सन् १९२० में चलया गया और उनको लम्बी सजायें दी गईं, जो इसकी चर्चा और भी बढ़ गई। उसके बाद उसी प्रकार के विचार रखने वाले कुछ व्यक्ति इस आन्दोलन को नैजाने की चेष्टा करते रहे। उनकी चेष्टा का फल अधिक तो नहीं हुआ, पर इसकी चर्चा बढ़ती गई। कुछ समय पश्चात् पं० जवाहरलाल नेहरू ने इसका समर्थन बनकर जोरों से इसका प्रचार शुरू किया। पंडित जी साम्यवाद साम्यवाद के प्रेमी बहुत समय से थे, पर कराची कांग्रेस के समय से वे इस तरफ विशेष रूप से ध्यान देन लगे। वे कांग्रेस के प्रभावशाली नेता थे। फलतः कांग्रेसमेंनों की एक अच्छी संख्या इस आन्दोलन की प्रचार-सिन्धी बन गई। इस समय ये ही कांग्रेसमेंन इस आन्दोलन का विशेष रूप से प्रचार कर रहे हैं और इसे जातसम्प्राप्ति बनाने की चेष्टा कर रहे हैं।

इन कांग्रेसी साम्यवादियों को अभी तक जो कुछ सफलता प्राप्त हुई और उनके आन्दोलन का लन का देश के विभिन्न विभागों में हलों द्वारा जैसा स्वागत अवधा विशेष हुआ है,

उससे यही अनुमान होता है कि अभी तक समर्थकों के बजाय इसके विरोधियों की संख्या ही अधिक है। कम से कम इतना तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि कांग्रेस के कार्यचार स- गांधी तथा अन्य प्रमुख प्रेक्षी के नेता उनके पक्ष में नहीं हैं।

## भारतवर्ष और साम्यवाद

( लेखक—श्री सत्यभक्त )

श्री सत्यभक्त हिन्दी के पुराने लेखक हैं। इस लेख में आपन भारत में साम्यवाद के प्रचार के विरोधियों का वर्गीकरण करते हुये प्रत्येक श्ल की युक्तियों का निराकरण किया है। साम्यवाद के सम्बन्ध में उत्पन्न प्रश्नों का भी आपने भली भाँति निरूपण करते हुये बताया है कि साम्यवाद यह दावा कभी नहीं करता कि सब लोगों की भौतिक व मानसिक स्थिति एक हो जायगी। यह तो प्रत्येक मनुष्य को उन्नति करने तथा आा बढ़ने के लिये समान रूप से अवसर और साधन देना चाहता है।

यद्यपि कांग्रेस को जहाँ तक सम्भव हो फूट से बचाने की गरज ने वे स्पष्टतः इसका विरोध नहीं करते, पर यदि दोनों दल सवाय के साथ अपने-अपने सिद्धान्तों पर डटे रहे तो एक दिन अवश्य ही उनको अलग-अलग खेदफर्मों पर जला जाना पड़ेगा।

इन नेताओं के सिवा और भी बहुत-बहुत व्यक्ति साम्यवाद के विरुद्ध विचार प्रकट करते देखे जाते हैं। हमने से कुछ तो बड़े और छोटे जमींदार हैं, जिनका हित सर्वथा साम्यवाद का विरोधी है। कुछ बड़े-बड़े व्यवसायी हैं, जो साम्यवाद को अपनी धरापर सम्पत्ति तथा जायदाद के लिये खतरनाक समझते हैं। कुछ पण्डित, पुजारी, महन्त आदि धर्म-व्यवसायी हैं, जो साम्यवाद के सिद्धान्त को अपनी जैन की प्राप्तिविष्णु के लिये घातक समझते हैं। क्योंकि साम्यवादी शासन में किसी तन्त्रुपक्ष आधमी को बँकारा बैठे रहकर अपने की प्राप्ति नहीं मिल सकती। इन तीनों श्रेणियों के व्यक्तियों द्वारा साम्यवाद का विरोध किया जाना स्वाभाविक है और जब तक हमने कुछ भी अधिक नहीं किया तो वे विरोध करते रहेंगे।

पर हमने सिवा कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं, जिनको वर्तमान स्थिति में किसी प्रकार का विशेष अधिकार (Privilege) प्राप्त नहीं है, तो भी वे साम्यवाद का विरोध करते हैं। इन्हीं दो प्रकार के व्यक्ति देखे जाते हैं। एक जैसी का कट्टर है

कि साम्यवाद भारतीय मरुहति के प्रतिफल है और दूसरी का मन है कि साम्यवाद इस देश की वर्तमान परिस्थिति में असम्भव तथा हानिकारक है। नीचे हम इन दोनों मतों पर क्रमशः विचार करेंगे।

जो लोग भारतीय संस्कृति के नाम पर साम्यवाद के विरोधी हैं, उनको दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। स निम्न १ एक इस प्रश्न पर धार्मिक दृष्टि से विचार करते हैं और दूसरे सामाजिक दृष्टि से। धार्मिक विचार में साम्यवाद हिन्दू धर्म के पुनर्जन्म और कर्मफल सिद्धान्तों का विरोधी है। उनके मतानुसार जो लोग इस लोक में दुःखी श्राप-भस्त और अन्याय-पीड़ित दिवंगत पड़ते हैं, वे अपने समकाल के कर्मों का फल भोग रहे हैं। उनकी दशा को सुधारने का उपाय साम्यवाद नहीं है। उनको वहिषे कि इस जन्म में वे शुभ कर्म करें, जिनके फल से दूसरे जन्म में उनको सुख प्राप्त होगा। यद्यपि इस सिद्धान्त का आधार अन्धधृष्टा पर है, पर इसका प्रभाव अनुलनीय है। इस सिद्धान्त ने हिन्दू समाज के अन्धधारा-पीड़ित वर्ग को सैकड़ों वर्षों से सामाजिक कान्ति करने से रोक रखा है। इसी का परिणाम है कि एक व्यक्ति के छोटे-छोटे बच्चे आबों के सामने दूध-प्यास से लड़प-लड़पू कर कर जाते हैं, पर उसको दूध में अन्धधारी समाज के अति शिथिल का भय उत्पन्न नहीं

होता और यह केवल अपने भाग्य को दोष देकर सततसे धारण कर लेता है। इसी के कारण लोग अन्यायपूर्वक अपन स्वतः में वंचित कर लिये जान पर भी अत्याचारी का विरोध नहीं कर पाते और अपने बिल को समझा लेते हैं कि या तो पूर्वजन्म में हमन उस के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया होगा अवधा अगले जन्म में उसे इसका प्रतिशोध देना पड़ेगा।

यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के अन्ध-अंधालुओं को दलीलों द्वारा समझाया जा सकता असम्भव है। पुनर्जन्म और परलोक कार्यात्मक वस्तु हैं। पर हजारों वर्षों से मनुष्य इनका चिन्तन करता आया है और इसलिये इन वस्तुओं ने मनुष्य के दिमाग में साधार स्वभाव प्रवृत्त कर लिया है। इस अन्ध-विश्वास की अड़काटन का एकमात्र साधन विज्ञान है। पर एक तो स्वयं विज्ञान इस दृष्टि से अभी अशुद्ध अवस्था में है और दूसर इन व्यक्तियों की उस तक पहुँच भी नहीं है।

दूसरा दल उन लोगों का है, जो भारत की प्राचीन बर्धाभ्रम-प्रवृत्ति को ही समाज-संश्लेषण की धारद्वारा-प्राप्ति सिद्ध करते हैं और साम्यवाद को समाज के लिये हानिकारक मानते हैं। इन लोगों की भूम-पूर्ण धारणा का कारण भी प्रचलनः उनका अज्ञान ही है। वे नहीं जानते कि जिस युग में बर्धाभ्रम-धर्म का प्राविर्भाव हुआ था, उस में और वर्तमान युग में कितना अधिक अन्तर है। उस काल में समाज को केवल चार ही श्रेणों की अव-श्रवणती थी, जब कि आजकल हजारों भेद श्रेणों की उत्पत्ति हो गई है। यह सब है कि भारत का प्राविर्भाव आग, जो गावों के रूप में है, अभी तक हजारों वर्ष पुरानी अवस्था में ही पड़ा हुआ है, पर यह स्थिति स्वाभाविक नहीं है। जन्मी या देर में उसे संसार के अन्य देशों की श्रेणी में खड़ा होना ही पड़ेगा। उस समय बर्धाभ्रम को कहाँ स्थान मिल सकेगा? जब इस देश में कान-रखालों की बहुलता हो जायगी, तो सभी व्यक्ति मजूर — हिन्दू धर्म की भाषा में शूद्र — बन जायेंगे। इसका उदाहरण अब भी बम्बई, कलकत्ता आदि व्यवसाय-प्रचलन नगरों में देखा जा सकता है, जहाँ बाह्य और लुप्त चमार और मजूरों के साथ ही बैठकर काने पीते हैं



# हमदर्द दवाखाना (यूनानी)

तार का पता—हमदर्द

देहली की

देवीप्रीत नं० १७७८

## दो विश्वविख्यात औषधियां

### कुर्स जिर्यान

जिर्यान जैसे बरपाद करने वाले मर्ज के लिये यह गोलिएय एक जाड़ है। जिर्यान किसी तरह का हो हरएक मे काम करती है। जिनेन्द्रिय को कही हुई गर्मी को ठीक करने सही हालत पर लाती है। इस दवा की दो एक खुराकें ही स्वप्नदाय को रोक देती हैं। २० दिन की दवा के लिये कीमत फी बोरी २) दो रुपया।

### तिला-ऐ-ब्राज़म

लहकपन और जगनी की गलतियों को ठीक करता है। उमरी हुई मुदा रंगो मे खून पहुँचाकर निहायत ताकत देता है। जिनेन्द्रिय की तमाम ख़ाबियों को यानी उसका फलपान, कमी आदि को दूर करने की शीघ्र ही उस मे नई जान पैदा करने मे जाड़ का असर रहता है।

## दवाखाने की सचिव फेहरिस्त मुफ्त मंगाइये

### इस जादू के शीशे से हर प्रकार की सफलता प्राप्त कीजिये

प्र०० औहरी के शीशे को करीब कर जीकममें निश्चित सफलता प्राप्त कीजिये

सन् १९३२ ३४ मे ६७ प्रतिशत सफलता हुई

क्योंकि यह जादू का शीशा आपको आपके अनिष्ट प्रहों क दूर प्रभावों को प्रशरित कर क आपके मन्त्रियों को प्रकाशित करता है और बतलाता है कि किन किन दुर्दनाओं से आप बच सकते हैं। आपके जीवन की सर्वसिद्ध घटनाओं अर्थात् परीक्षाओं, व्यापारों, प्रेम, मुकदमों अस्वास्थ्य रोगों दुबदौह आदीकम कीचरों, लोडरी नम्बरों इत्यादि में सफलता प्राप्त करने का पथ प्रकाशित करता है।

संसार में ऐसी कोई कठिन समस्या नहीं

जो इस जादू क शीशे से हल न हो सके।

न० १ विशेष आत्यधिक शक्तियुक्त १०)

० २ विशेष शक्तियुक्त ४)

न० ३ साधारण २) हाक व्यव १=)

हका व चिहनों से मूल्य ब्रिटिश पोस्टल आरडरों द्वारा भ्रमिम आमा वाहिये। न० १, २० शिलिंग, न० २, ८ शि०, न० ३, ४ शि० नोट—अत्येक शीशे के साथ असन्वुष्टि के लिये मूल्य वापिसी की गारन्टी मेजी जाती है।

प्रोफेसर जोहरी, रिपोर्टेड सी० (२०७) ब्रेवलाली कैम्प।



स्वेष्टी ! स्वेष्टी !! स्वेष्टी !!!

व्यापारिक संसार में बिल्कुल नई चीज साडुन तथा स्लेट पेन्सिल वालों को

### खुशखबरी

हम ने भारतवर्ष का लाखों रुपया सोडा सिलिकेट द्वारा बाहर आता देव स्वदेशी वस्तु प्रचारार्थ बड़े परिश्रम से देवी सोडा सिलिकेट जो कि साडुन तथा स्लेट पेन्सिल कमान के लिये बड़ी आवश्यक वस्तु है, कमान प्रारम्भ किया है। जिसन कि गल बरतों में इस व्यापार में बड़ी भारी उन्नति प्राप्त की है। मूल्य में भी विदेशी सिलिकेट से २) प्रति इन्चकैट सस्ती पवती है। हमारी कमी हुई सिलिकेट इतनी छुट होती है कि कुँके व्यापारी इसी को विदेशी अनुभव करते हैं। तथा गुणों में भी हमारी सिलिकेट प्रति श्रेष्ठ है।

हमारा विचार है कि जो व्यापारी एक बार हमारा सोडा सिलिकेट को आजमायता वह विदेशी माल लेन का विचार बिल्कुल ही छोड़ देगा। थोक करीदार जो पूरा बैगम समायें वे हमारे बड़े कारखाने की रल सिलिकेट क० कतरासगढ़ जिला मामगोम से विशेष सुविधा के लिय पत्रव्यवहार करें। बैगम समान में आत्यन्त लाभ है।

दूर कतरासगढ़—न० १ ६॥ प्रति इन्चकैट न० २ ६॥

देहली पञ्चदस—कोदेलाल मेरमाल नई सड़क, जोहरी का तनेला। दूर देहली—न० १ ६॥ प्रति इन्चकैट न० २ ६॥

फूट अलग, दूध पूरी ५) प्रति इन्चकैट ५) " " फूट अलग, दूध मुक्क खुदा समाने वाले की दूध १०) देहली में है।

और इन्हीं के बगल के दरों में उन के साथ मिल-जुल कर रहते हैं।

पर जो लोग भारत की वर्तमान राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति के आधार पर साम्य-

राजनीतिक व शास्त्र का विरोध करते

हैं, उनकी मर्यादा उप-

स्थिति युक्त प्रेरितियों के व्य-

क्तियों में नहीं की जा

सकती। उन के विरोध का आधार

असम्भव अथवा अज्ञान नहीं है।

इन को भी हम दो दलों में बाँट

सकते हैं। एक वे, जो राजनीतिक

कारणों से साम्यवाद का विरोध

करते हैं और दूसरे वे, जो सामा-

जिक कारणों से। राजनीतिक वि-

चार बाह्यों की मुख्य व्यापत्ति यह

है कि साम्यवाद के आन्दोलन के

कारण इस देश के विभिन्न दलों,

अर्थात् किसानों और अमीरों के तथा

अखिरी और पूँजीपतियों में फूट

उत्पन्न हो जायगी और हमारा

स्वराज्य-संग्राम एकदिवस हो

जायगा। ऐसी अवस्था में भारत-

स्थित विदेशी सरकार की बन जा-

येगी और यह हमारी परतन्त्रता

के रूप को और भी बड़ बना

देगी।

पर यदि विचार-पूर्वक अवस्था

का निरीक्षण किया जाय तो इस

दृष्टी में बहुत कम सार मान्य

की संस्था थी, और उसके प्रस्तावों

अथवा प्रतिवाद का कुछ भी महत्व

नहीं समझा जाता था। पर जब

मग़ाबी ने देश के जन-साधारण

को उसमें शामिल किया, तब उस

का महत्व बढ़ गया।

इस प्रकार साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

प्रभावों का हमें साम्यवाद के

## राष्ट्र-गान

मो ! वीरोचित गान सुना दे।

योग्या-पाणि ! मय स्वर-मण्डित,

अनुपम भारत-भाग्य जगा दे ॥

अमल कमल-दल पुलकि उठे अति,

बड़े पाग लिये मंजुल गति,

लख प्रभात हो दूर सकल चति,

ऐसा प्रणय-पाश फैला दे।

मो ! वीरोचित गान सुना दे ॥

विषम दामला तब जीवन की,

सुनें तान मधुमय 'मोहन' की,

मिटे तमिस्र-भावना मन की,

वह शुभ घड़ी समय वह ला दे।

मो ! वीरोचित गान सुना दे ॥

वह सीमन्त 'खान' मुखदायक,

रहे सदा ही तब गुणगायक,

हों 'राजेन्द्र' राष्ट्र-अभिनयक,

वीर 'जवाहर' के गुण गा दे।

मो ! वीरोचित गान सुना दे ॥

हय 'कलश' से कीर्तिमान हो,

दश-दिशि मे भ्यातन्त्र्य-गान हो,

साम्य-भाव ले मय मृगान हो,

ऐसा मोहन-मन्त्र सुना दे।

मो ! वीरोचित गान सुना दे ॥

—श्यामबिहारी 'शम्भु'

मैं एक नई जल बाग़ और उसने

शुक्तिमयी अमित्री शासन को भी

शिमिल कर दिया। पर वह अर्धो-

त्तन भी पूर्णतया साम्यवाद जगता

न था, बल्कि उस में जगता एक

आन्दोलन के लिए बड़े लोगों की

विशेष आवश्यकता नहीं है, बल्कि

उसका मुख्य आधार साधारण श्रेणी

की जनता ही है। इसमें स्पष्ट

है कि यदि वे दोनों दल मिल

और अधिक परिमाण में मिल

सकती है, पर यह एक असम्भव

सी कल्पना है, क्योंकि इन दोनों

दलों का स्वार्थ एक दूसरे में मिला

है। इसलिये यदि इन दोनों को

मिलान की चेष्टा की भी जायगी तो

बिना किसी और अस्थायी ही

होगी। इन में सच्ची एकता नहीं

हो सकती है जब कि बड़े कलान

वाले लोग अथवा पूँजीपति तथा

जमींदार साधारण लोगों के स्वयं

का कीमती बन्द कर दें। उस अव-

स्था में वे अवश्य मिल कर कार्य

कर सकते हैं और उस में बहुत

कड़ू परिणाम निकल सकता है।

पर उसका नाम फिर 'साम्यवाद'

होगा।

एक दल ऐसे लोगों का भी है,

जो साम्यवाद का विरोध इसलिये

करते हैं कि उन की

समानता का हटि में यह समझ के

अभिनय कल्याण के लिये अनिवार्य

कारी है। उन के मत

में सब लोगों में समानता स्थापित

हो ही नहीं सकती और यदि ऐसा

करने की चेष्टा की भी जाय तो

उसका फल कभी अच्छा नहीं हो

सकता। इस विचार के लोग अपनी

शक्तियों प्रायः समाचार-पत्रों में

भी प्रकट करते रहते हैं और इसी

आधार पर इन्हें भारतीय-समाज क

लिये अनुपयुक्त बतलाया करते हैं।

वे कहते हैं कि यह प्राकृतिक रूप

में अवश्य है कि सब लोग

समान हो सकें। इन लोगों की

युक्तियाँ प्रायः अज्ञानमूलक होती

हैं। य समझते ही नहीं कि सा-

म्यवाद के अनुसार समानता का

वास्तविक अर्थ क्या है, इस स-

म्बन्ध में एक अग्रज साम्यवादी

का बचन, जो उस की एक मध-

प्रकाशित पुस्तक में प्रकट हुआ

है, विशेषरूप से उपयुक्त है। वह

लिखता है:—

"समानता राज्य के निःस-

न्देह विभिन्न अर्थों हो सकती

है। इस में यह भी सम्भव

आ सकता है कि सब मनुष्य

योग्यता और शक्ति की दृष्टि

में समान हों और एक दूसरे

की समान रूप से सेवा करें।

पर यह प्रत्यक्ष है कि इस

प्रकार व्यक्तियों को समान

योग्य बना सकना मनुष्य की

शक्ति में बाध है। इस सम्ब-

न्ध में इतना ही सम्भव है कि

वर्तमान समय में बहुसंख्य

मनुष्यों के मार्गों में जो साम्य

मौजूद हैं और उनके कारण

वे अपने भीतर सुखी हुई



## दिल्ली की राष्ट्रीय कार्यकर्त्री महिलायें



बाई आर से पहली खड़ी हुई पंक्ति—(१) रामायणी, (२) चम्पादेवी, (३) सरस्वती देवी, (४) इक्ष्मणीदेवी, (५) सोतादेवी, (६) गंगादेवी, (७) राधाहानी, (८) त्रिकोदेवी  
(९) रामप्यारी, (१०) अम्बदेवी, (११) मुनिपदेवी, (१२) गानकीदेवी, (१३) आत्मादेवी ।

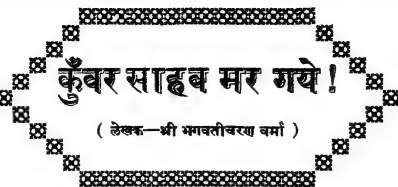
” दूसरी ” —(१) द्रौपदीदेवी (२) चन्दचंदी (३) अनारोदेवी (४) रूपानी (५) कलावती (६) जगरानी (७) स्वदेशीदेवी (८) मानकीदेवी (९) राजरानी  
(१०) चन्द्रावली (११) जोगमाया (१२) चम्पादेवी (१३) भगवती ।

” तीसरी कुर्सी पर खड़ी हुई पंक्ति—(१) रूपकोर (२) सावित्रीदेवी (३) गानकीदेवी (४) सत्यवती (५) जगरानी (६) अरुणा (७) माता राजपति कौल [ १० जवाहरलाल की मास ]  
(८) मेनोबाई (९) कस्तूरीदेवी (१०) आत्मादेवी (११) चन्द्रावतीदेवी (१२) राजरानीदेवी ।

” चौथी मीन पर खड़ी हुई पंक्ति—(१) जयदेवी (२) लज्जादेवी (३) गौरीबाई (४) बन्दादेवी ।

पितामो की डाट, माताजी की विनय भ्रमरोजी के झानू और भीमरूजी की अशक्तता मुझे रोक सकने में समर्थ न हो सका। तीन दिन तक सुलाह में पड़े रहने के बाद चौथे दिन सुबह ६ समय जैने ही छोटे भारे न हसन हुए देस्पारकर नारमरुन पर धान की खबर थी वैसे ही केशव न मुह लटकाय हुए उसी दिन शाम के समय निकलन चाहे काफ़ेस क जलूस की सूचना दी।

कमय क मुह लटकान का कारण था। उस दिन नतामो के दिमाग में न जान क्यों दफ़ाकर यह ब्याल धा गया कि जलूस जरा सिविल लाइन्स की हवा लाय, या यों कहिय कि सिविल लाइन्स जलूस की हवा लाय। वैसे तो सरकार जानती थी कि जलूस निकलता है जन्ता जानती थी कि जलूस निकलता है और जलूस निकलन वाले जलाल य कि जलूस निकलता है पर बात यों हुई कि सिविल लाइन्स क बगलों में नोकरी, सवारियों और कुत्ते न फिर रहन वाले साहबों न (हिन्दुस्तानी और गैर-हिन्दुस्तानी दोनों ही) काफ़ेस का जलूस न देखा था। काफ़ेस क नता दशमक होन क साथ-साथ परोपकारी होन का भी दम भरण है, अर्थात् उन साहबों पर दया भाव। बड़े-बड़े विप्रेतर कानिवाल सरकार, सिम्रा बाल-डास, कैन्सी ड स-बाल, दुइराइ आदि-आदि उन लोगों न देख अगर कुछ नहीं देखा तो काफ़ेस का जलूस आधिर यह तमाग्या भी तो व लोग दख ले इसी बात को ध्यान न रखकर काफ़ेस क नतामो न यह ते किया कि कुआ प्याम क पास बड़े, यानी जलूस सिविल लाइन्स बड़े। इसकी सूचना मिली सरकार को, और सरकार को डुल्ल उता लगा—वरा सगन की बात आ थी। सरकार न सोचा कि उसक परम भक्त, दया-पाय लायक, फरमानगार बड़ों को दखना चाहिये लाट साहबों का जलूस जहा वंश रजान हुए तोयों बहूनों, तलवारों न सजी हुई फीजें माने करता है गोर्ग पर मृदु पेंशन हुए अफसर दुलाग मानन है (घोड़े दुलाग मानन है हसिलिय उन घोड़ों पर सवार अफसर भी) फूलों न सजी हुई मोरग पर कीमती पोशाकें पहिन हुए रंस सकोहवा या भाट घोड़ों स सिबिन वाला स्ट्रेकोब क पीछे-पीछे गैत है और सड़क पर खड़े हुए लाकी बर्ही तथा लाल पगामी स सजित सिपाही जलूस देखन के लिये पक-



हिन्दी के कहानी-संसार में श्री भगवतीचरण वर्मा अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। उन की यह कहानी भी पठकों का मनोरंजन प्रत्यय ही करी।

—

जिल जन-समूह को गरदन मे हाथ लगाकर बड़े प्रेम के साथ भापा क चुन हुए शब्दों को प्रयोग करते हुए पीछे उलते है, न कि व देले काफ़ेस का जलूस जहा नगे सिर नगे पैर, खहर की फनी घोरी और फन कुरता पहिन हुए अस्थाय बागी भाप बाय साय उक्त है। उस जन्माव काफ़ेस क नतामो न कहा इस सिविल लाइन्स यूगा और सरकार न कहा—मिया फाफत न रहे, तुम काल निरं की क्या भजाल कि सिविल लाइन्स मे घुमो, काफ़ेस-नतामो न कहा कि हम तो आवा ही, सरकार न कहा—हम तुम्हें जलूस आन देग, काफ़ेस-नतामो न कहा—हम साया ५४ करेग सर-कर न कहा हम मार डगो क तुम्हारी कोपरी नोड देंगे। बस, इतनी सी बात आन नतानी टो गई। लेकिन हम सबका नताजा भोगना पदगा कशुक को न्याकि नता थोड हू इस न्यायग टगड लायन कशुक और उनक भार-बन्धन कश्य स्वयंभक्त। इसलिय उसका मुह उतरा हुआ था।

हा, तो अस्थायरो मे पड़ा था कि लाठी चार्ज होता है पर लाठी चार्ज हान न गेला था। मरा भाय खुल गया, जिन खन रा अण्डे तरस रही थी उन खन का मोका झा डी गया, उसको भला मे कब चुपन वाला था। शाम क समय तागे पर लटकर मैं काफ़ेस-आफिस पडू था।

एक अजीब सचमा हुआ था। लैकडा स्वयं-उक हा ५ में तिरग भगड लिय खड़े राष्ट्रीय गान गा रहे थे। मुल पर हडता थी और हडतो मे जोश। बीच-बीच मे सहस्रा गांधी की जय भारत-माता की जय के नार नुलन होता ये।

जलूस चला, लेकिन लोगों न मुझे साथ ले चलन स इनकार कर दिया। मैंने लाव कहा कि मैंने कमी लाठी चार्ज नहीं देखा है भगवान् क नाम पर मुझे भी साथ ले चलो, पर किसी न एक न मानी। एक न कहा, 'तुम कमजोर हो।' दूसर न कहा 'भार लाठी चाला चाहते हो तो चल सकने हो क्यों-कि अगर लाठी चार्ज में एक भाइ मरा नहीं तो लुकर ही क्या रहे। अगर तुम इस हालत में हो कि दो लाठियों में ही बड़ी आसानी से शहीद हो सकत हो। लेकिन मैं शहीद होने को तैयार न था इस-लिय नहीं कि मैं मरुन मे इतरा है बल्कि इसलिय कि देश को मुझ से उधा-बहीआशय है। अन्त में यह ते हुआ कि मैं काफ़ेस-आफिस मे बैठ और पुलिस की सूचनाएं सकलित करता रहा।

(२)

मैं अकला काफ़ेस-आफिस मे बैठा हुआ था और टेलीफोन से खबरें मिल रही थीं। बटरी बजी और टेलीफोन पर सुनाई पड़ा, प्रोमेशन रोड पर पहुंच गया है यहा पर पुलिस फोर्स रास्ता रोक खड़ी है उन लोगों क पास डबाव है। सुपरिस्टेण्डंट न आभा सुनाई कि प्रोमेशन आगे न रहे और पीछे लोट जाव। प्रोमेशन वालों न सुपरिस्टेण्डंट की आभा मानने से इनकार कर दिया। इस-पर सुपरिस्टेण्डंट पुलिस न लाठी चार्ज की आभा दे दी है। लाठी चार्ज हो रहा है जनतातिर-तिर हो गई है कल स्वयमेवक जमीन पर डेव गन है।

इसके थोड़ी देर बाद टेलीफोन पर फिर खबर मिली—स्वयमेवक फिट रहे हैं और नतामो की निरपेक्षारी हो रही है। एक ताडसुब की बात है कि कु कर कम-

लनारवाय न एकारक आकर 'भारत माता की जय' बोली और वे भी निरपेक्षार कर लिय गए। मेरे हाथ से रिस्तरा डूट पड़ा, खबर धट्टी रह गई।

कु कर कमलनारवाय निरपेक्षार हो गय, हवा करके नहीं, भर फाँव के गहाँ बहिक 'भारतमाता की जय' बोलकर, भर लिय यह इस युग की सबसे आश्चर्यजनक बात थी। कु कर कमलनारवाय उन रौतों में एक हैं जिनका काम है चौबीसों घंटे शराब के नले में डुल रहना। चिना गाली बात न करना और जब मोका मिल जाय, पेयारी करना। उनक देशभक्त बनकर निरपेक्षार होने पर चाहे और किसी को आश्चर्य हो या न हो, पर मुझे उतना ही आश्चर्य हुआ, जितना बन्दर क भरकर खा लेन पर होता था ब्याडा हसन निजामी के हिन्दू बन जान मे होता।

किर घट्टी बजी, 'सबके सब स्वयम्भक्त निरपेक्षार किय गड आइ का प्रोमेशन आकर' हो गया।

मैं भी उठ, तागा मगाव कर पर पडू वा। मुझे देखते ही पिताजी न अपना मुह डर लिया माताजी न एक सीधे निम्न्यास के साथ आवाँ से दो आत्मा गिराय, भीमारी न मराधारीजी पर पाँच पेग के बतारी चढ़ाये और भीमरूजी पलंग पर लुटकर पड़े।

आखिरी लगी ही थी कि किसी ने मेरे कमर क निचाट्टों में धक्का दिया। बड़ी मुश्किल न उठा। किवाह खोले तो देखा कि केशव खड़ा है। एक आइब हालत थी, कपडे फटे हुए, चेहरा पीला और निडलियाँ काप रही थीं। मैंने केशव का हाथ पकड़ कर उसे अन्दर डुलया।

केशव मरा हुए का भार होता है। भी ५० पाय करन क भार जब नोकरी की तलार में उसने अफसरों की इतनी चहलचढ़ती के कि उसका वजन एक मन से बढ़कर ७५ मन हो गया तब उस न काफ़ेस में नाम लिखाया। इस समय वह साधारण स्वयमेवक न बहुरकर स्वयं-सेवको का लयक बन गया था और साल भर के अफसर की नता बनन की सोच रहा था।

हाँकि हुए उसन कहा 'भार' एक गिलास पानी।

मैं खुर भीमार—नहीं, बीमारी स उठा हुआ था, फिर भी मैंने केशव को पानी दिया। जिस पलंग पर मैं पड़ा था उस पर अब केशव डेढ़ पैर फैलाये लेटे थे। पानी डेढ़ पेग मैंने कहा 'कहो क्या हाल है?'

लेटे ही लेटे पानी पीकर उसने कहा "मार बला बद्मशायी ने!"

केराब की हालत देखकर कुछ दुःख होता था, कुछ हंसी आती थी। अपनी हंसी दबते हुए मैंने कहा "तुम तो गिरफ्तार हो गये थे, इस समय यहां कहाँ!"

"क्या बताऊँ, अभी बालू मील का रास्ता पैदल तो किये हुए चला आ रहा हूँ।"

"यह कैसे?" मैं अपनी हंसी अब अधिक न दबा सका।

केराब बिगड़कर बोला "यहां जान निकल गई और तुम्हें भी सरकती है। बद्मशायी ने लारी पर लादकर बालू मील की दूरी पर छोड़ दिया।"

"पूरा हाल तो बतलाओ!"

"हाल क्या बतलाऊँ। दो बन्ने पड़े, इसके बाद गिरफ्तार हुआ। हवालात पड़ना। वहां से एक लारी पर लादा गया और सब लोगों के साथ छोड़ दिया गया जंगल में। लारी चल रही थी और हम लोगों को बापिस आना पड़ा पैदल।"

केराब का किस्सा समाप्त हुआ। एकाएक मुझे कुंवर कमल-नारायण की याद आ गई। मैंने पूछा "तुम लोगों के साथ सुना है आज कुंवर कमलनारायण भी गिरफ्तार हुए थे।"

केराब उड़ल पड़ा, कुछ पर छाई हुई सुर्यनी गायब होगई। "अरे हाँ, अच्छी याद विलाई। तो फिर कुंवर साहेब का किस्सा आदि से सुनाऊँ?"

"और नहीं क्या।"

केराब ने आरम्भ किया—कुंवर साहेब के ड्राइवर का कहना है कि कुंवर साहेब के यहाँ कल कुछ भ्रममान आ गये थे। सितनी शराब की, वह सब खतम हो गई। आज शाम के समय घर में एक बन्द नहीं और कुंवर साहेब को उसकी सबी आनन्दप्रस्ता, क्योंकि नशा उतर गया था।

शराब की इतनी ललब कि उन्होंने माया कर पीन की फुरसत न थी। कार पर बैठकर रुकान पर ही खरीदकर पीन के लिये चल दिये। शरद रुकान पर धरना बैठा हुआ था। लोगों ने लू लू बोली और कुंवर साहेब ने कार सिविल लाइन्स की तरफ बढ़वा दी। रास्ते में जल्द मिला। कुंवर साहेब को देखकर लोगों ने फिर काले और उन्होंने तासियाँ दी—

रोह के चौकड़े पर उस समय लाठी बाजें हो रहा था। कुंवर साहेब ने कार रोक दी। उतरकर वे लाठी बाजें देखने लगे। कुछ देर तक उन्होंने यह तमाशा देखा। फिर वे एकाएक कठान साहेब के पास पहुँचे। उन्होंने कहा "कमला साहेब! आप इन हिलियों को क्यों मार रहे हैं। अपने आदमियों को रोक दीजिये।"

कतान क्या था, वह कुंवर साहेब को पहचानता न था। उस ने कहा—"तुप रहो, तुम अपना काम देखो।"

कुंवर साहेब को बुरा लगा, पता नहीं उन्हे स्वयंसेवकों का पिढा अधिक पुरा लगा या कतान साहेब का जवाब। उन्होंने धाव देखा न ताव, गरज कर पुलिस वालों ने कहा—"इन लोगों पर लाठी चलाता बन्द करो।"

एक लण के लिये पुलिस वाले आवाज रख गये। लोगों ने जब देखा कि कुंवर कमलनारायण लाठी चलाने को बन्द करा रहे हैं तब उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने नारे लगाये—'महात्मा गांधी की जय' 'भारतमाता की जय' और कुंवर साहेब ने भी दुहराया—'महात्मा गांधी की जय'।

इसी समय कतान साहेब ने कुंवर साहेब को गिरफ्तार कर लिया। लारी पर बिठला कर वे हवालात भेज दिये गये।

हम लोग भी हवालात भेजे गये। वहाँ कुंवर साहेब से कोत-वाल साहेब की जो बातें हुईं वे हमें मालूम हुईं। वे इस प्रकार हैं—

कोतवाल साहेब ने कहा—'कुंवर साहेब! आप यहां कैम मूल पड़े?'

कुंवर साहेब का मुन् कोय ने लाल था, कोनवाल साहेब ने ताड़ लिया। कोले—माइयु होता है आप को प्यास लगी है।

कुंवर साहेब ने अपना सिर हिला कर 'हाँ' कहा।

हिस्की का एक बेग बरफ और सोडा के साथ कुंवर साहेब के पेश किया गया, एक चूँट में पूरा गिलास खाली करके कुंवर साहेब ने गिलास लाने वाले की ओर देखा। कोतवाल साहेब के रशारे पर दूसरा गिलास आया।

कुंवर साहेब की जान में जान आई।

कोतवाल साहेब ने मोका देखा। बोले—'कुंवर साहेब! आप कैसे मूल पड़े?'

एक ठगड़ी सांस लेकर कुंवर साहेब ने कहा—आज घर में शराब खतम हो गई थी और प्यास जोर की थी। शहर में दु-कानों पर धरना था, इसलिये सिविल लाइन्स आ रहा था।

कोतवाल साहेब ने कहा—क्या बनलाऊँ कुंवर साहेब, इन कोमिसे वालों ने तो नाक में दम कर रखा है। आप जानते हैं आज सिविल लाइन्स की दुकानों पर भी धरना देने आ रहे थे। जब रोका तो माने ही नहीं। भगन पीटे न जाते तो सिविल लाइन्स की शराब की दुकानों पर भी वे लोग धरना करते।

'ऐसे बात है'—कुंवर साहेब ने चौथा पैग पीते हुये आश्चर्य से पूछा।

'हाँ साहेब। अब बतलाविये, क्या किया जाय? और आप हम लोगों को इन बद्मशायी को पीटने में रोक रहे थे।'

कुंवर साहेब ने कोनवाल का हाव पकड़ कर कहा—'दोस्त, गलती हो गई, क्या बतलाऊँ, अब क्या हो सकता है?'

'कुछ नहीं, आप कतरे इस की क्रिम न करें। पर जा कर आराम करें।'

कुंवर साहेब की कार वाहर खड़ी थी। उस पर लाद कर वे घर भेज दिये गये। उस समय कुंवर साहेब करीब करीब एक मोतल व्हाटर्न हार्न की समाल कर चुके थे।

केराब ने कहाँनी समात की और मेरी झलमारी में रफले हुये रूलों पर इस प्रकार भपटा जैम मूली बिल्ली चूहे पर ऊपटती है।

( ३ )

दूसरे दिन पनों में निकला—सुपरिन्टेण्डेण्ट साहेब ने गलती में कुंवर कमलनारायण को सत्याग्रही समझ कर गिरफ्तार कर लिया था। उस समय कुंवर कमलनारायण कुछ नरों में भी थे, नहीं तो सुपरिन्टेण्डेण्ट साहेब को यह गलती करने का मौका न मिलता।

इस खबर की पड़ कर हम लोग बार आधारी कुंवर कमलनारायण का भ्रान पनों में निकले हुये समाचार की ओर आकर्षित करने के लिये पहुँचे। बंगले के बरामदे में कुंवर साहेब बैठे हुये थे और उन के सामने पड़ी हुई मंज पर एक व्हाटर्न हार्न की खुली हुई मोतल, तीन बार सोडा की बोतल तथा एक शराब में भरा

गिलास रफला था, और कुंवर साहेब की नजर बाग में काम करने वाली जवान मालिन पर थी। हम लोगों की देखते ही वे उठ खड़े हुये। उन्होंने आवाज दी—अब मैं कलुमा, देख तो इन बहुर-पौरों को किसने बंगले में घुस जान दिया? इन में कह दें कि कुंवर साहेब मर गय।

—०:—

'प्राचीन रोमन राज्य का सि-दात था:—'शामित प्रजा में फूट उसख करके राज्य करो।' यही हमारा सिद्धान्त होना चाहिये।'

—लार्ड पलमिन्टन,  
( बम्बई के ५०० ५०० गर्वनर )

—२:—

हमारे  
सेफ डिपोजिट वाल्ट  
देखने के लिये

आपको

निमन्त्रणा

किसी समय अपनी सुविधा-नु-हूल चार्जी चोक में घूमते हुये सेंट्रल बैंक के संफ डिपोजिट वाल्ट प्रत्यक्ष देखिये। यह वाल्ट पेमेंट हैं जिनपर आग व पानी का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। आप अपने कोमोटी वेबर, जवाहरलाल व दस्ता-वेज़ इसमें रखिये और आग, पानी, चोरी व डाक आदि के भय न मुक हो जायें। इसके लिये बैंक केवल २५ वार्षिक लेवी है। सफ ले लेन पर भी आप ६-२० से ६ बज शाम तक किसी समय उसको खोल सकते हैं।

वाल्ट लेने वाले को एक विज्ञाप चार्जी दो जाती है जिस की दूसरी नहीं होती। स्विताय वाल्ट लेने वाले के अन्य विज्ञाप उस को नहीं खोल सकता। हजारों नर मारिया अपने कोमोटी जूत जवाहर-लाल इस में रख कर बैंक की नींद सोती हैं। फिर आप क्यों यत्र न इस आविष्कार में लाभ नहीं उठाएँ और उन की रक्षा के लिये विगिन रहते हैं।

सेन्ट्रल बैंक आफ इंडिया  
'लिमिटेड,  
चांदनी चोक, देहली।

## स्वराज्य दल

(ले०-श्री सूर्यनाथ तकड़  
एम० ए० बनारस)

भारतवर्ष के स्वातन्त्र्य-संग्राम में स्वराज्य-दल का वही स्थान है, जो आपरिग्रह स्वातन्त्र्य-युद्ध में पार्लेस क दल का था। स्वराज्य दल का जन्म कैपे डुभा, सरकार के गड में जाकर दल के नीति-कुशल वीर योद्धाओं ने सरकार के कैपे डुबक डुहा दिये, इसका सलित, प्रामाणिक और रोचक वर्णन विजय लेखक ने इस लेख में दिया है। आज देश तित उसी मार्ग पर चल रहा है। इस समय यह लेख बहुत उपयोगी रहेगा।

### स्वराज्य-दल



१९२२ ई० की बात है। राष्ट्रीयता का प्रथम आन्दोलन समाप्त हो चुका था। देश स्वराज्य के पक्ष की एक मजिदल बन चुका था। लोग विभ्राम चाहते थे। किन्तु कड़ दूर दीवान थे जो यह चाहते थे कि यह युद्ध कन् न हो। मावा डटा रहे, समरभूमि में स्वाधानता के सेनिक जूझन रहे और स्वातन्त्र्य युद्ध-यज्ञ में श्रावितर्या पवती रहे। उनके

हृदय में बलिदान था, उनके हृदय में कलक थी, उन की लगन सरा-हनीय थी। यहा वे एक छोटी सी बात नहीं याद रख सक। मानव-स्वभाव और मानव शरीर दोनों ही परिवर्तन के पक्षपाती हैं। सत्याग्रह आरम्भ हो या न हो, देश के सामान यह समस्या थी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने, लखनऊ में जून के दूसरे सप्ताह में बहुत बात-बिबाद के बाद इस समस्या को सुलभान के लिय एक उप-समिति का संगठन कर दिया, जो बाद में सत्याग्रह-नायक-कमेटी के नाम पर प्रसिद्ध हुई। मसीहलमुख स्व० हकीम अजमल का उस के

### स्वराज्य-दल का प्राम



त्यागधृति प० मोतीलाल नहर

### स्वराज्य दल के जन्मदाता



देशबन्धु चित्त जन दास

अग्रज थे और सदस्य थे स्व० प० मोतीलाल जी नहर, स्व० श्री विट्ठलमार् पण्ड स्वर्गीय श्री कस्तूरी रमा भायगर, श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और डा० कस्तूरी सरीख प्रभावशाली राष्ट्र नेता। इस कमेटी ने सा देश का दौरा किया। प्राय सभी प्रसिद्ध सत्याग्रहों तथा राष्ट्रपुत्रों के मत जलन की चेष्टा की गई और अन्त में ३० अक्टूबर १९२२ को इसन अपनी रिपोर्ट की छाप दी। कमेटी के सभी सदस्य इस बात पर एकमत थे कि देश सत्याग्रह के लिय न तार नहीं है। किन्तु एक बात ऐसी थी, जिस पर कमेटी में मतभेद था। तीन सदस्यों का—हकीम जी पण्डित जी और पटेल जी—यह कहना था कि कानिस्ले और अन्यवर्गीय सरकारी किले ह। उनपर अधिकार जमा लेना उचित होगा। शेष तीन सज्जन इसम असहयोग का अन्त देखते थे। वे विरोध पर कटिबद्ध हुए। देश भर का वायुमण्डल इस प्रश्न में गुंज उठा। दोनों पक्ष—जो परिवर्तनवादी और 'अपरिवर्तनवादी' के नाम से विख्यात हुए—पूरी चेष्टा करने लगे कि लोकमत उनकी ओर हो जाय। गया में देशबन्धु चित्तजन दास क समाप-पत्रिक में राष्ट्रीय महासभा का अधिकार्यन हुआ। दोनों दलों ने

अपनी-अपनी शक्ति आजमाई। किन्तु अपरिवर्तनवादियों ने 'निहार' में परिवर्तनवादियों को हारना पड़ा। 'परिवर्तनवादियों' को भात ही में कुछ अधिक बोट मिले और उनके विरुद्ध 'अपरिवर्तनवादियों' ने सत्रह सौ स भी अधिक बोट पाय। इस करारी हार के बाद भी कानिस्ले-वादी चुप नहीं रहे। ३ धीहून नहीं हुए। देशबन्धु दास त्यागधृति नहर जी और वीरवर पटेल कीई माधुली आदमी तो ये नहीं जो हार कर चुप हो रहते। वे थे अपनी चुप के पक्क, कर्मठ, वीर। तुरन्त ही उन्होंने 'अखिल भारतीय कांग्रेस-खिलाफ स्वराज्य-पार्टी' की जन्म दिया। देशबन्धु दास ने कांग्रेस क समापित्व में और प० मोतीलाल जी ने प्रधान-मन्त्रिय से त्यागपत्र दे दिया।

सारे देश में घूम-घूम कर उन्होंने परिवर्तन की आवश्यकता लोगों को समझाई। उन्होंने बताया कि कबल कबले के बल पर ही सार्व-जनिक जीवन नहीं चल सकता। सत्याग्रह के प्रभाव में और अन्य किसी जीवित आंदोलन की अनुप-स्थिति में यह तो निर्विवाद है कि दास-नहर का कार्यक्रम अधिक-धिक बल प्राप्त करता गया। महा-राष्ट्र के नेताओं से परिवर्तनवा-दियों को पराजित सम्भवता मिली



## भारत के दा दिवंगत प्रकाशद राजनीतिज्ञ

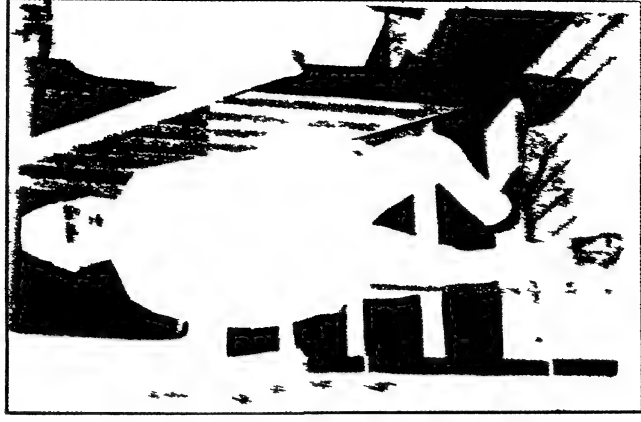


“मे रोग से लड़ुगा,  
मृत्यु से लड़ुगा और सब  
के ऊपर दासता-रूपी  
राजस से लड़ुगा ।”  
-मांतीबाल नेहरू।

My Country,  
My Delhi,  
27/4/30 V.K. 1930

“मेरा देश ही मेरा  
वर्म है ।”  
दहली, -वी० जे० पटेल ।  
27/4/30

न्यायभूति १० मांतीबाल नह-



श्री विट्ठलभाट पटल (असम्भलो) ३ अ यक्ष





## अमेरवली का गौरव



श्री विठ्ठलभाई जनेरभाई पटेल

और कामेस के लोग भी इस दुःख-कलह से थक गये। सितम्बर मास सन् १९२३ में विल्ली में कामेस का एक विशेषाधिवेशन मीलमा अग्रुल-कलाम भाजाद के समापनित्व में हुआ। तब तक मौ० मुहम्मदअली भी जेल से छूट आये थे और उन्होंने भी परिवर्तनवादीदल की लुप्त मद्दद की। उनके इस कथन ने कि 'महात्मा जी ने उनके पास आध्यात्मिक सन्देश भेजा है कि कामेसवालों को व्यवस्थापिका समारोहों में जान दो' अनेक गान्धीयक निरुत्तर हो गये। खैर, किसी तरह उस 'बुलकंदे' में जान की इजाजत तो मिली।

मुनाब-युद्ध का संगठन हुआ। स्वास्थ्यदल की सहायता करने के लिये कलकत्ते में 'फारवर्ड' का जन्म हुआ। देशबन्धुदास, प० जवाहर-लाल नेहरू आदि नेताओं ने धैर्य मचा दी। स्वास्थ्यदल के पास ८-१० की कमी तो थी, पर उसके नेता रणकुराल वीर थे, जो अपनी चुनके पीछे सर्वस्व स्वाहा करने की हिम्मत रखते थे और लगन समर की लहर से बड़ी वीज भी तो है। 'फोर्ड ही फोर्ड' में स्वास्थ्यदल ने अग्रमुल विजय प्राप्त की। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्री सतीशचन्द्र-

दास, श्री जोगगिरि ऐयर, श्री चित्तामणि, श्री कामान्त, श्री हृदय-नाथ कुंजक सरीखे कीर्तिमान नेता भी स्वराजी प्रतिक्रान्तियों द्वारा परास्त हुये। श्री सुरेन्द्रनाथ के पराजय ने तो विदेशों तक में सन-सनी कर दी। बंगाल का वह नेताज का बायशाह, बंगाली-हृदय-सम्राट्, भारतीय राष्ट्रीयता का जनक, एक साधारण स्वराजी सिपाही द्वारा हरा दिया गया। लोगों को यह मानना पड़ा कि कामेस स्वराजीदल का भी जमना पर कुछ अधिकार है और उसके नेता केवल वाम्परी ही नहीं हैं। यह तो हुआ, पर मध्यमान्त को छोड़कर कहीं भी स्वराज्य-दल का बहुमत न हो पाया। हमारी धारा-समाजों का संगठन ही ऐसा है कि जब तक ७०-७५ फीसदी निर्वाचित जगहों पर विजय प्राप्त न हो तब तक बहुमत होना सम्भव नहीं होता। अस्तु।

## सरकार की चिन्ता

स्वराज्य-दल का कार्यक्रम था 'सरकार का सतत विरोध' और सरकारी पदों को स्वीकार न करना उन्होंने तब कर लिया था। बहुमत न होने के कारण

स्वराजी ऐसा न कर सके। अब उनके सामने यह समस्या थी कि वे क्या करें और कैसे कर। बड़ी व्यवस्थापिका सभा में स्वराजियों की संख्या केवल ४३ थी। ३ बरमे और ६ अन्य मतवादियों के मिल जाने में उन की संख्या ४२ हो गई थी। उन्होंने अपना नेता प० मोतीलाल जी को चुना। पंडित जी के पुरे गौरव और उनकी पुरी योग्यता एवं समता का परिचय देश को अग्रमंथली द्वारा ही मिला। उप-दलपति हुये श्री विठ्ठलभाई पटेल और दल-मन्त्री बन श्री रगा-स्वामी आर्यगर। स्वराजियों के आग्रामन से सरकार भी सशंक हो गई थी। ३१ जनवरी १९२४ को लार्ड रीडिंग ने दूसरी भारतीय धारा-सभा का उद्घाटन करते हुये अपनी इस बुद्धि का जिक्र किया था। उन्होंने कहा था—'मैं अवि-ष्यवासी नहीं कर सकता हूँ। मैं नहीं जानता कि भविष्य के गर्भ में क्या है। परन्तु मैं इस बात को क्षिपान में असमर्थ हूँ कि भारत की राजनीतिक परिस्थिति और उस की व्यवस्थापक समारोहों कुछ ऐसी हो गई हैं कि जिनके कारण मैं सु-धारी के भविष्य के सम्बन्ध में वि-न्यायील हो गया हूँ।'

केवल यही नहीं, वायसराय महोदय ने यह भी संकेत कर दिया था कि 'यदि प्रांतों में परिस्थिति अधिक गम्भीर हो गई तो प्रांतीय सरकारें इस बात में निश्चित रहें कि मैं उनका पूर्ण समर्थन करूँगा।'

स्वराजी बचने तो ये नहीं। उन में अनेक विचक्षण विद्वान् थे। उनके अतिरिक्त श्रीमान् प० मदनमोहन मालवीय, श्री विपिनचन्द्र पाल और मि० जिन्हा सरीखे राष्ट्रभक्त सज्जन भी अग्रमंथली में आ गये थे। सब लोगों ने चर्चा करके संयुक्त राष्ट्रीय दल का निर्माण किया और उसका नेतृत्व एक कमटी के सुपुर्दे कर दिया। इस कमटी के सदस्य सर्वश्री प० मोतीलाल नेहरू, विठ्ठलभाई पटेल, नृसिंह चित्तामणि कलकर, रामचन्द्रराव, रंगारामाजी आर्यगर, मदनमोहन मानवीय और मुहम्मद अली जिन्हा थे। सत्तर सदस्य इस दल में भर्ती हो गये। इस दल की शक्ति के आगे सरकार की एक न चली।

## राष्ट्रीय मांग

राष्ट्रीय दल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य 'राष्ट्रीय मांग' थी। मांग का प्रस्ताव रूप में म-द्रास के दीवान बहादुर टी० रगा-वायें ने पेश किया था। किन्तु उस पर प० मोतीलाल जी ने एक सं-शोधन पेश किया। दीवान बहादुर ने उस संशोधन को स्वीकार कर लिया। उस संशोधन द्वारा पंडित जी ने भारत की समस्याओं को सुलझाने के लिये गोल-मेज सभा आमन्त्रित करने का प्र-स्ताव किया था और भारत के स्वाधीनता के अधिकार को स्वी-कार करने को कहा था। दो दिन तक उस मांग पर गरमामग्न बहस

## अमेरवली में स्वराज्य-दल के परम सहायक



मदामोहन मालवीय

होती रही। प्रस्ताव (६४ वल व ४८ विषय) बहुमत से पास हो गया। महात्मा जी की रिहाई के प्रस्ताव के पक्ष होन के पूर्व ही वे रिहा कर दिए गये थे।

बजट नामज़ूर

सन् १९४४ का फाइनल बिल (आय-व्यय का सरकारी मखिया) पेश हुआ। स्वराजी चाहते थे कि वह पास न हो। पर सयुक्त राष्ट्रीय दल के अन्य दलपति सहमत न होते थे। सरकारी माग (६४ व ४८) को ही रद्द कर देना व पर्याप्त समझल था। भीक से एक बात हो गई। जैतों में सिक्ख सत्याग्रहिया पर गोली बरसी। एक दर्शन न उसका कल्याण विधरा आकर देखली में खुलाया। राज्य मालवीय जी का नवनीत-कौमल ब्राह्मण-दृष्ट्य दृष्टीभूत हो उठा। उन की आत्मा कन्दल कर उठी। उन्होंने बट नहक जी को फोन किया कि वे (मालवीय जी) 'बजट' रद्द करने का प्रस्ताव पेश करेंगे। नहक जी के लिये तो घर बैठे गंगा आई। उन्होंने काल संधीकार कर लिया। पूज्य पंडित मालवीय न बजट का खिरोज बरत डुब बड़े भाई का भाग्य दिया था। उन्होंने कहा — जब तक 'गवर्ने-मेंट' आर्य इन्डिया एकता का समी-धन नहीं होता, आर्य-सम्मान की भावना और परमात्मा न जो थोकी बहुत उजि मुझे ही है वे मुझे आशा नहीं देती कि मैं आज या निकट भविष्य में करें 'समर्थन' करूँ।

बजट पास न हो सका। ४० वोट मालवीयजी के पक्ष में थे और सरकार १७ वोट ही पा सकी। इसन स्वराजियों की बड़ी श्रम मच गई। लगइन तक सन-सनी पक्ष नहीं और कानून के विमर्श पणित प्रवर भी कपि उठे।

स्वराज्य दल में कूट

सन् १९४४ स्वराज्य दल के लिये और भारत के लिये वषा ही क्षणम वषा था। इस साल स्वराज्य-दल के समारोप 'शुक्लपुत्री' की चित-रजमनाम जी की प्रसमय में ही इहलोक-लोला सवरण हो गई। देशबन्धु की मृत्यु के कुछ पूर्व ही बनाम के कई सुप्रसिद्ध स्वराज्यी, जिनमें आ सुभाषचन्द्र बसु, श्री सत्येन्द्रचन्द्र मिश्र श्री अमिलकरण्य राय आदि के नाम मुख्य हैं—कई कानून द्वारा नगर-कन्व कर दिये गये। यह तो हुआ

ही था। देशबन्धु को निधन हुए दो मास भी पूरे नहीं हुये थे कि मध्यप्रान्त के श्री तानन—आप बाद की गयनरी भी पा चुके हैं—सर-कारकृत मंत्री पद स्वीकार कर लिया। यह खुला विद्रोह था। मध्यप्रान्त के नेता डॉ० मुञ्ज न उनके इस कार्य की प्रशंसा की और बम्बई में मि० जयकर और पुन स मि० नेलकर न भी उनके इस कार्य का समर्थन किया। किन्तु स्वराज्य-दल के बहुमत को यह विद्रोह पसन्द न आया। फिर अला प० मोतीलाल जी में तेजस्वी पुरुष यह कन सहन कर सकत थे। उन्होंने कटोर शर्तों में मि० तावे के इस कृत्य की निन्दा की और महाराज-नताका प्रति भी असन्तोष प्रकट किया था।

संघर्षविल नहीं हैं। हम अपनी कमजोरियों न भी चाँकि हैं। देश की वर्तमान गिरि हुई हालत में हम यह भी जानन हैं कि हमारा ब्रह्मसत्यप्राप्त भी सम्भव नहीं है। फिर भी हम यह समझते हैं कि हमारा अर्थ यहाँ ठहरना व्यर्थ है। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि लड़ाई जारी रहेगी और स्वराजी लीटग। प० जी के इस वक्तव्य से आश्चर्य है कि उनको उस रणमच तक का भी मोह नहीं था जहाँ के वे सर्वश्रेष्ठ अभि-नता थे। जिन जीवन का मोह न हो वह क्लिष्टों को कन प्यार कर सकता था। स्वराज्य दल के उठ आन क बाद हो सम्भाषित पन्त न चारसमा यह कह कर अंग कर दी कि वू कि खिरोजी-दल उठ गया

## चाह !

चाह नश है नता उन कर जग म पेर पुजाने की !

चाह नश है अखिल निष से महापुरुष कहलाने की !

चाह नहीं है राज्य पदविषा, पद वषापिया पाने की !

चाह नहीं है विश्व शिखर पर विजय ध्वजा फहराने की !

चा ! एक उम है जीवन म क्या पूरी होगी भगवान् !

जन्नी जन्म भूमि क पद पर हा जाऊ हस कर बलिदान !

—कल्याणकुमार जैन शशि—

महाराज-नता कहते थे आपन स्वयं पन्त जी का सम्भाषित चुनवाया है। पर नहक जी आदि का उत्तर था कि सम्भाषित का पर सरकारकृत नहीं होता। इसी बात को लेकर स्वराज्य-दल में कूट पड़ गई।

श्री विठ्ठलभाई भट्टेभाई पन्त का निषाधन भारतीय इतिहास की अनुपम एवं चिरस्मरणीय उन्ना है। उनका भुक्तापिला था दीवान बहादुर १० रगाचार्य म। कबल दो बोट के बहुमत न पन्त जी विजयी हुये। इतिहास सखी है कि श्री पन्त सरीखा विचल्ल विद्वान एवं निष्पल सम्भाषित बिरला ही हुआ होगा। सन २६ में स्वराज्य दल वाले धारसमा से उठ आये। प० मोतीलाल न जी एक वक्तव्य दिया। उसमें उन्होंने कहा कि हम सर सरकार की शक्ति

इस सर सरकार को यह शोभा नहीं नेता कि वह धारसमा जारी रहे। पर दूसर विन उन्होंने धन्य वक्तव्य की व्याख्या कर दी और यह कहा कि पहिले दिना वाला वक्तव्य केवल सलाह-मात्र थी।

सन १९४४ के अन्त में कानपुर कांग्रेस में स्वराज्य-दल और प्रति-सहयोगियों का भुक्तापिला हुआ। प्रतिसहयोगी-दल का नन्तव प्रहय किया मालवीय जी न। नहक जी को सोभाय म लाला लाजपतराय का सहयोग प्राप्त हो गया। विजय स्वराज्य-दल को हुई और प० मालवीय का सशोधन मिर गया। उसके बाद प्रतिसहयोगी हिन्दुसमा स्वतंत्र कांग्रेस आदि २ नाम रखकर निष-निष स्वायों और पूर्वा के लोग खुनाष की लड़ाई लड़ने को कटिबद्ध हुये। सन २६ का-सा कटु-

निषाधन भारत में तो अचलक हुआ नहीं। अखिल की कोन कह सकता है। इसी बीच में अन्तव कार्यों से लाला जी भी दल से ठो गये थे। वे भी मालवीय जी से मिलकर स्वराज्य-दल के विरुद्ध उठने में सहायता दे रहे थे। भीषण सचर्चे क बाद खुनाष समान हुआ। पञ्जाब युक्तप्रान्त और मध्यप्रान्त में कांग्रेस की करारी हार हुई। ला० मुनीषन्द, श्री आसकरभली डॉ० सत्यप्राप्त, दीवान चमनलाल (ला० लाजपतराय सन् २६ में दो निषाधन क्षेत्रों न बड़े हुये थे और सफल भी हुये थे। बाद में उन्होंने एक म त्याग-पत्र द दिया और उन के स्थान पर दीवान चमनलाल निषाधित हो गये थे) श्री श्रीप्रकाश श्री अ-भ्यकर सरीके प्रसिद्ध राष्ट्रकर्मी पराजित हुये। किन्तु यह कमी मद्रास और बिहार न पूरी कर दी। मालवीय जी के दल को भी कुछ बहुत अधिक सफलता नहीं मिली। फिर भी कांग्रेस के १० और मालवीय-दल के १७-१८ सत्य निषाधित हो गये। सत्यो-धन की बात है खुनाष की कटुता को लोगों न सना मरहप के बाहर ही छोड़ दिया। देश के हितों का पन्त समी न पूरा पुरा रखला और कमी भी व्यक्तिगत वमनस्य द्वारा देश को क्षति नहीं पहुँचाई।

अन्य महत्वपूर्ण बिल

तीसरी अनेमली का इतिहास बहुत ही महत्वपूर्ण है। देश की अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का निर्णय हुआ। पहिला महत्वपूर्ण कार्य तो विटलभाई का अखिरोष निषाधन ही था।

'रिजर्व' बक की नींव भी इसी अनेमली में पड़ी थी। तत्कालीन अनेमली, सर जैसल मेन्ड, इन अपना सर्वश्रेष्ठ कार्य बनाम चाहते थे। बैंक का विचार न इसका था। कांग्रेस वारियों न इसका स्वागत किया। कांग्रेस की ओर से श्री जमनादास महता श्री रगासमसी आगार और श्री आर० के० पयसुधम वेदी (अब सर पयसुधम सभाषित अनेमली) उपसभाषित सदस्य उन। उपसमिति की रिपोर्ट में मतभेद था। भारतीय सत्य चाहते थे कि बैंक का सचालन निषाधित शरारमट करे, पर सरकार को यह उचित नहीं था। श्री श्रीनिवास आगार — स्वाभाव्य कांग्रेस-नेता (प० मोतीलाल जी पुरीय गये हुये थे) — न समझते का एक अखिष निकाल दिया और उन सर सरकार ने

स्वीकार भी कर लिया। परन्तु इसके बाद यह बिल कटार में पड़ गया। देहली में एक नया बिल पेश किया गया। किन्तु भी अग्रे न उस पर आपत्ति की कि पुराना बिल जब तक उठा न लिया जाय, तब तक नया बिल पेश नहीं हो सकता। भी पटेल ने इस मत का समर्थन किया और नय बिल को रोक दिया। फिर अन्तर्गत सरकार न यह बिल ही उठा लिया।

इसके अतिरिक्त दूसरी महत्वपूर्ण आर्थिक समस्या थी, सिक्के की दर। दूर १६ पैसे हो या अठारह पैसे—यह प्रश्न था। भारत क हित की दृष्टि से तो दूर-निर्णय उचित न था। १ पैसे तो हाजिर ही था। इस पर अध्यक्ष कटिन कुछ हुआ पर विजय (६७ वोट पक्ष में—६८ विपक्ष में) सरकार की हुई। श्री एस० एन० हाजी क 'सागर डैरिक्ट बिल' पर कभी लड़वाई हुई पर इसका निर्णय तब हुआ, जब स्वराजी अन्तर्महोली छोड़ चुके थे।

जनन का बिल

**भारत क हित** मैं 'जन रक्षा बिल' (P. bharat Bill) पर कांग्रेस दल का कुछ अग्रसर रहेगा। खास कर श्री पटेल न जिस अद्भुत साहस और ५० मोतीलाल न जिस प्रभावशालि प्रभाव का परिचय दिया था उस का स्मरण करके ही इदय भर आता है। इस बिल द्वारा सरकार चाहतो थी भारत में विदेशों द्वारा किया गया अचार रोका जाय। इस का स्पष्ट अर्थ यह था भारत में साम्यवाद का जो अचार हो रहा था उस का प्रतिबन्ध हो। सन् १९८५ में शिमला में यह बिल पेश हुआ। पश्चिमी न समापति स कलिंग (निर्णय) मागी कि व इस बिल को गैर-कानूनी करार कर दें, क्योंकि अन्तर्महोली को यह अधिकार नहीं है कि वह विदेश-सम्बन्धी विधान बनाय। समापति न निर्णय बाद में सुमान का निश्चय किया और बिल की पक्षिणी रीतिंग (६१ पक्ष ५० विपक्ष) पास हो गई। सन् १९८६ में तो विल्ली में बड़े भाई का मोर्चा हुआ। दीवान कमललाल न कहा कि, मुन्नी पेटेड़ी बर्गबद (कम्प्लिज) की अनुमति ली है। ५० मोतीलाल जी न भी विरोध करने हुए बकूा ही अन्तर्महोली माध्य दिया। उन्होंने कहा—

‘अब तक किसी भी धारा-समा न शासकों को इतनी जबरदस्त जकड़ इसलिये नहीं दी, क्योंकि

उनके पास मुकुन्दमा खलान को पर्याप्त पैसा नहीं थे। यह बिल कांग्रेस और भारतीय राष्ट्रीयता पर सीधा आक्रमण है। क्या आप हमारा राष्ट्रीय भावों को नष्ट कर सकते हैं। व समय बचे नय। बस्तुतः हम सब शक्तिमय मान्यकारी हैं।

पूज्य मालबोय जा ने भी बड़े भाई का भाषण दिया था। उन्होंने कहा था—

क्या हम भारतीय क मान न अग्रन युवकों को शिवाजी और गुगोनिन्द की स्वातन्त्र्य-भावना न सिखावें और भारत में स्वशासन स्थापित करन क लिय शिथिल न करें। यदि हम उन्हें ऐसी शिक्षा दें तो क्या गुगु—अग्रज लोग—हमारी इज्जत न करोगे। यदि हम प्रत्येक बालक के हृदय में यह विचार भर दें कि वर्तमान शासन हमारा हितों क लिय घातक है तो क्या आप हमारी प्रतिष्ठा न करन गें। ब्रिटन न सम्बन्ध-विच्छेद कर पूर्ण स्वतन्त्रता की भावना युवकों में बढ रही है। सरकार क बड़-बड़े अन्तर्गत और मनोय अर्थ ही कुछ लोगों को भार दें किन्तु युवकों में उठती हुई इस भावना का नष्ट करनी न पड़े।

परन्तु सरकार की विजय हुई। (पक्ष ६१ विपक्ष ५०) किन्तु पक्ष जी न दूसरी अग्रल १९८६ की निल पर बहस रोक दी। क्योंकि उसमें एक विचारार्थीन युवदन भी आलोचना होना अनिवार्य हो गया था। मठ-युद्धन चल रहा था। ४ ठारीक को तत्कालीन एड-सर्वय सर जेम्स केरान न समा-भवन में आकर बोधना की कि समा-पति फेल होगी क्योंकि पूर्ण था। दूसर दिन सर्वेधी नह आयरन तथा अन्यकर जेन विचकल विधानों न समापति क निर्णय का समर्थन किया। ५० को जम ही समा-पति फेल होगी कलिंग ५० खड़े हुए, दो 'बम' समा-भवन में आकर गिरा। और इन्फ्लेमब जिन्यावाद के ना में सम्भाषण गूज उठा। बम फेंकन वाले स्व० सरदार भगन-सिंह और श्री० बटुनेश्वर दत्त थे। ११ ठारीक की समापति न अग्रन निर्णय को फिर उधर गया, किन्तु दूसर दिन लार्ड इरविन न उस कलन कानून (Ordnance) बना दिया।

आपारी बिल पर भी खूब बहसचर रही। सारसम कमीशन

क बहिष्कार का प्रस्ताव भी इसी कर्मान में पेश हुआ। पञ्जाब पेश ला० लाजपतराय न प्रस्ताव पेश करते हुए अग्रन अन्तर्महोली माध्य दिया। बहिष्कार का प्रस्ताव (६८ पक्ष—६८ विपक्ष=१३०) पास हो गया। अन्तर्महोली में इसन अग्रिक वोटिंग कमी भी नहीं हुई। इसके अतिरिक्त दीवान बहादुर हरबिलास शास्ता का बाल-विवाह निषध निल सर हरिसिंह गांध का सहवास-सम्पति बिल भी पास हो गया।

स्वराज्य दल का उपमहान

दुलन विनों में देश की परिस्थिति उलट बहल गई थी। रावी क बिनार स्वाधीनता का शूल फूट दिया गया था और कापस न बोधना कर दी थी कि अब स्वाधीनता सपना फिर छिड़ीगा। फिर आजादी क व दीवान भारत क वे सुप्रसन्ना-भवन में कैसे उभरत? जनवरी १९३० में कापेस-दल न त्याग-पत्र दिया। और कुछ समय क लिय स्वराज्य-दल का अन्त हो गया। थोड़े ही दिनों पक्ष ५० मालवीयजी और श्री पटेल आदि भी त्यागपत्र कर निकल आये। यद्यपि सर्व भी सत्यम्बद-अन्तर्गत नाव दल सत्तामन फूटन पशुमुख सेठी सरल कुछ लोग बाहर नहीं आये, फिर भी स्वराज्य-दल का खलना हो गया। नवीन स्वराज्य-दल की सृष्टि बच्चे स्वराजियों न की पर वह लला नहीं। मध्यमता में और बगल में स्वराज्य-दल की विजय पूर्ण रही। अग्र-शासन का उन दोनों प्रान्तों में अन्त हो गया। पञ्जाब और बम्बई में स्वराजियों का उद्भव कमी नहीं रहा मद्रास और बिहार में अग्रज उन्हीं जोर भाव और कुछ कर भी दिखाया। सयुक्त प्रान्त में भी स्वराज्यदल का जोर रहा।

## बम्बई म्युचुअल लाइफ इन्श्योरेंस सोसाइटी लिमिटेड

भारतवर्ष की सद्य पुराना बीमा सोसाइटी स्थापित, १९३१

जिसके मालिक व प्रअग्रज एक मात पालिसी होल्डर्स हैं। शेयर होल्डर्स नहीं

स्था, अग्रमर्षता का लाभ

सब क अग्रिक बोनस

कम प्रीमियम

एजन्सी को अग्रिक स्थाई व वैधक कमीशन

एजन्सी के लिये व प्रोप्रेटरस के लिय निम्न पत पर लिखिये—

मेसर्स बनर्जी ब्रादर्स

मिस्टर वी० गुहा

वीए एजन्ट

वीए एजन्ट

छिली ईट, आगरा।

नई सड़क, देहली।

स्वराज्य दल का कार्यक्रम केवल विषयवस्तु ही नहीं था। यह कहना कि वे केवल विषयवस्तु चाहते थे, सत्य नहीं है।

स्वराज्य दल न सात वर्षों में एक भी अग्रसर ऐसा नहीं दिया जब यह कहा जा सक कि उसन देश-हित के विरुद्ध कार्य किया। स्वयं विश्ववध महात्मा न अग्रभी काशी में कहा था कि ५० मोतीलाल और उनन दल न ऐसा एक वाक्य भी नहीं कहा, जिसक लिय देश लजित हो। उनकी खुशी यह 'कि उनके न पदों का पुरस्कार या न क्षितियों का मोह। फिर भी मगन सुछेदा उनका सचान वैधानिक सामयिक दम न होता था और उनका सयम सराहनीय था। भारत क किसी अन्य दल की यह साधना प्राप्त नहीं हुआ। बिचलियों तक न उनके ससद और सयम की प्रशंसा की थी।

कुछ प्रमुख मन्दय

**स्वराज्य दल क कुछ प्रमुख व्य-** कियों का वर्णन करके अग्र इस लेख की समाप्त करना प्रमुखों क प्रमुख थे—५० मोतीलाल जी नहक। नहक जी सन्दर साधन थे। उनका प्रभाव पण्डित उनकी तीव्र बुद्धि, उनकी अद्भुत प्रतिभा उनका सना-बचालन-नैपुण्य उनका व्यक्तित्व उनका त्याग देश को सदा याद रहेगा। उनकी स्मृति दम की अग्रज और अग्रसर सम्पति है। बीरवर विरदलभाई पटेल न समापति बन कर दिखा दिया कि भारतीय निर निष्कमा ही नहीं हो सकते। बापसराय, समापति शुह-सर्वय सभी को उसन मीमा दिलाया। लोग कहत हैं कि जिस दिन अन्तर्महोली नार वे समापति क कर्मान पर बैठे व उस दिन वे अन्तर्गत रूप में गम्भीर थे और जब

उन्होंने कहा Gentlemen, the  
I e u a l i n e l e t e b e k  
सम्पत्ता सा झा गया और लोगों ने  
यह अनुभव किया कि जैसे अग्नि  
म्यूली मर गई। उनकी इस उक्ति में  
कितना व्यंग्य है, कितनी वेदना। 'I  
l y a r t p a n a a i  
p e t i i पटव महोदय 'पीयरजे  
और पेन्शन तो नहीं मगर एक  
राष्ट्र का कृतज्ञ हूँ आपकी सेवा  
यह करण। स्व० श्री० ए० रा-  
स्वामी भायगर ( हिन्दू-समाजक )  
श्री बड़े गम्भीर विद्वान और अर्थ-  
शास्त्र और शासन विद्याल सम्बन्धी  
मुखियों को सुलभान में एक ही  
थे। लाहौर के वीवान बमनलाल  
और कलकत्ते के श्री सुलकीचरख  
गोस्वामी श्री वापसी सदस्य थे।  
श्री श्रीनिवास भायगर धन राज-  
नीति स अलान को गय हैं, पर वे  
भी स्वराज्य दल के एक बल थे।  
प्रातों में सर्वश्री मनगुप्त सुभाष  
बसु, नलिनीकान्त सरकार, शरत  
बसु, ( बंगाल ) आरुणसिंह राय  
सुजकर्ण ( बिहार ) श्रीगोविंद  
बल्लभ पन्त गणेशशंकर विद्याया,  
सम्पूर्णानन्द ( युक्त प्रांत ) सुहृन्मन्  
भास्कर ( पंजाब ) नरीमान ( बम्बई )  
सत्यभूषि ( मद्रास ) आदि के नाम  
उल्लेखनीय हैं।

आज ग्यारह बजों के बाद  
इतिहास अपने को दुहरा रहा है।  
आधरवर्ष है कि स्वराज्य दल के जन्म  
के समय जिम डा० कम्सारी  
और श्री राजगोपालाचार्य ने उसका  
प्रबलतम विरोध किया था वे ही  
उसका पुनर्जन्म में सब से अधिक-  
प्रभावशाली हुए हैं। विस्वास है कि  
देश अपने इन बाके सिपाहियों को  
अपनायागा और य भी अपने पूर्व-  
गोरव की रक्षा करेंगे और देश के  
सम्मान का-स्वाधीनता का भस्म  
न सुकन देंगे।

— ० —

कलावक के धन एकत्र करने के  
मार्ग में स्वयं उसके समय के अति-  
रिक्त और कोई बाधक नहीं था।  
वह सोन और वादी के  
ढेरों में होकर चलता था। उन ढेरों  
के ऊपर हीरों और लाखों का ढेर  
लगा होता था। उसमें स वह अपनी  
हल्लातुलार लेने के लिय स्वतन्त्र  
था।

—मैकले

— — —

## फैडरल इण्डिया इन्श्योरेन्स कं०, लिमिटेड वर्न वेस्टन रोड, देहली

वेष्टमैन

श्री० भार्गवमानन्द जी एम० ए०, एम० एल० ए०

यह भारतवर्ष की प्रथम बीमा कम्पनी है जिनमें इस  
योगे समय में सरलता का रिक्छ स्थपित करने पब्लिक में  
प्रसिद्धि और विश्वास प्राप्त किया है और यही कारण है कि  
आज प्रत्येक मनुष्य इस कम्पनी में अपने जीवन के बीमा करान  
में अपना गौरव समझता है। कम्पनी के प्रीमियम का दर  
बहुत कम, व्यवहार हमदर्दीना और प्रकण्य अति उत्तम है।  
क्रेन्स तुरन्त धरा कर दिय जाते हैं और बीमारी व एक्सीडेंट  
की अवस्था में विशेष सुविधायें दी जाती हैं।

### एजेण्टों की आवश्यकता

प्रत्येक स्थान पर जहाँ कम्पनी के प्रतिनिधि नहीं हैं  
एजेण्टों व बीरगेनाजरो की आवश्यकता है। नियम उदार  
और आमदनी बहुत। अधिक जानकारी के लिये निम्न पत्र पर  
मिलिय या पत्र व्यवहार कीजिये।

मैनजर —

दी फैडरल इण्डिया इन्श्योरेन्स कं०, लि०  
वर्न वेस्टन रोड, देहली।

वाई एण्डएण्टमेण्ट ट्र एच० ई० लोर्ड विलिंगडन दि वाइसराय

## (रजिस्टर्ड) रामबाण चूर्ण (रजिस्टर्ड)

मेदे और अतड़ियों के दोषों को दूर कर स्वभाविक रूप से उन्हें बलवान बनाता है  
पाचनशक्ति को बढ़ाकर शुद्ध रक्त पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न करता है। सब प्रकार के पेट दर्द,  
अफारा, वायगाला, कुरकुरी दस्त, उल्टी, शुरू हैजा, जी मिचलाना, मुंह में पानी भर आना,  
बदहजमी, खट्टी डकार आना, छाती में जलन, भूख न लगना, नये पुराने सब प्रकार के कन्ज  
आदि रोगों की अनुपम और अपूर्व औषधि है इसके अतिरिक्त हर प्रकार के अचार, मुखा,  
चटनी, अर्क, शरबत, चूर्ण, खुशबूदार तैल इत्यादि का मृचीपत्र मुफ्त मंगाकर लाभ  
उठाइये।

## हरनारायण गोपीनाथ

ब्रांच वेयर्ड रोड, न्यू देहली।

गार का पता—  
“मुम्बई”

वाजारा खारी बावली, देहली।

टेलीफोन न० २०४४

टेलीफोन न० ६३१८

सचित्र

# अर्जुन

सप्ताहिक

नं १

पृष्ठ ४०

Monday 16th

सोमवार १६ सितम्बर सन १९३५

Monday 16th September 1935



श्री गोवन्दाभावाला



श्री बालाकाश्र प्रेरय



श्री ब० पी० लोय



श्री श्यामप्रसा देसाय

वार्षिक वृत्त्य ३१ ]

सम्पादक—कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

एक भाग का मूल्य १०

## विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ-संख्या
१ सप्ताह के प्रसिद्ध व्यक्ति		मुख्य पृष्ठ
२ सप्ताह की झलप		३
३ सप्ताह की हलचल		४
४ सप्ताहकीय		५
५ पाकिस्तान की योजना		७
६ कृषक की आह	(कविता) श्री भालाचन्द्र	८
७ हिन्दी	" श्री हरिबल्लभ	८
८ हे कलाकार !	" श्री बुजुन्दराय	८
९ उपारम्भ	श्री लक्ष्मीप्रसाद	८
१० हमारी विभावलि		९
११ बेण्डा गांव का मामला		१०
१२ सास और बहू	श्री बेजनाथ	११
१३ पतिरेव	(कविता) श्री रमभाता	११
१४ लक्ष्मिणी की दो समझौते	श्री बरगयासिंह	१२
१५ विजयाश्री की विजया	श्री बलीगाम	१२
१६ प्रायुक्तिक हिन्दी के तीन युग		१३
१७ कलिया की मञ्चरी	श्री राजेन्द्रप्रसाद	१४
१८ आका की प्राकृतिक बलिष्ठा	डा० रघुवीरशरण ब्रजवांस	१६
१९ अपराधी कीम !	(उपमाया)	१८
२० सरकार को भाम सुचार याचना		१९
२१ हो प्राण	(कहानी) श्री जयमेहन गुप्त	२१
२२ प० बुडरेव और सावर्धनिक समा का निर्वास और रामचन्द्र देहलवा		२३
२३ व्यापारिक-जगत		२४

## दांतों के रोगों को अपूर्व दवा हर रोज दांतों को साफ करने के लिये दन्त सुधा मंजन

के समान मंजन जब तक नहीं निकला। इसके ७ दिन के प्रयोग से दाँतों के सब रोग नष्ट हो जाते हैं।  
प्यायिया, मसुड़ा से खुन का निकलना, दाँतों का हिलना, कोढ़ से दाँत का करप हो जाना, मुख से दुर्गन्ध आना और हर प्रकार के दर्द को दूर करके स्वस्थ सुधा मंजन मनुष्य के दुःखमय जीवन को सुखी बना देता है।  
साध ही यह मंजन एक बार मलने से दाँत के पोलेपन का दूर करके मोती जैसी चमक ला देता है।



हस्ता होने पर भी मुख्य तो औस की शरीर का केवल (१०) इन्द्रज करीबने बर्तों को उचित क्षमोद्यम दिया जायगा। एकलौत नियम मंजले पर लेके जाते हैं। टैनेजर, विस्वसुधा कापालप, ('अनुन' कार्यालय के उपर), नया बाजार, देहली।

## स्त्रियों के लिए

### महान् उपयोगी पुस्तक

लेखक—प० कृष्णकान्त मातवीय

सुहागरीत—मूल्य ४)

और

मातृत्व—मूल्य ४)

नं० २८, खिचरनलास रोड, प्रयाग।

प्रस्तावना लेखक

पंजाब के परी स्वर्गीय लाला बालचन्द्रनाथ जी अपने ही मूल्य का मैं लिखने हैं—

“मैं प्रार्थना करता हूँ कि सब हिन्दू मिश्रित इष्ट में इसका पाठ करेंगे और इस विषय पर विचार करके समाज संशोधन के कार्य में तत्पर होंगे।”

अर्जुन के प्रादुर्भाव के लिए २ सुप्रसन्न

‘सुहागरीत’ और ‘मातृत्व’ नामक दोनों प्रणय को एक साथ खरीदने पर ‘अर्जुन’ के प्रादुर्भाव को उपयुक्त दोनों प्र० २ रु० केवच ६) रूप में ही मिलेंगे।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

## नवीन वर्ष की नवीन आयोजना

हिन्दी-जगत की एकमात्र साहित्यिक मासिक पत्रिका

### माधुरी

के रूप-रंग और गुण में विशेष परिवर्तन

- १—विश्व-साहित्य के प्रधान महाप्रयोगों के ज्ञान और कृतियों का साहित्यिक निरोध।
- २—विश्व निष्ठा साहित्यों के निष्ठा-निष्ठा युगों का समकालीन एवम् तुलनात्मक अध्ययन।
- ३—जगत् साहित्य पर प्रकृत-प्रमाण।
- ४—सिन्धु का शिखरमय स्वप्न।
- ५—प्रसिद्धि-मंथन की साहित्यिक दृष्टि।
- ६—नव टारप, नई छपाई, बिल्कुल नया गेट-अप।

संपादक—श्री० रुपनारायण पांडेय

और

श्री० बाकेचिहारी मटनागर एम्० ए०

“माधुरी” की नई माधुरा आप को मोह लेगी। “एक की रचनाओं” की ओष्ठता आप के हृदय में हर्ष और गर्व के भावों का संसार करेगी।

यह आपकी १४ वर्षों से सेवा करती आई है

इसका वार्षिक मूल्य ६॥, छमाही मूल्य ३॥ और एक प्रति का १०॥।

यदि आप अभी तक ग्राहक न हो तो कृपया दो न न जाएँ

माधुरी का नववर्षाई नई सज्जना के साथ एक सप्ताह में

प्रकाशित हो जायेगा। इसका मूल्य १॥ होगा, शीघ्र ही ग्राहक बनिए।

पत्र-व्यवहार का पता—नैनार ‘माधुरी’ नवजकिशोर-प्र० स खजुनद।

साप्ताहिक वार्ता

५ सितम्बर

—३१ अगस्त को समाप्त होने वाले सप्ताह में मध्यमवर्ग व बरार में २५६१ व्यक्तियों को ईलाहा बुधा, जिन में से १०२३ मर गये।

—मन्सफाह (बराची) में एक निराश्रय भेरी ने अपनी प्रेमिका व फल के पिता की इस करम हत्या करके अपनी कि पिता ने अपनी लकड़ी की गायी वस के साथ नहीं की।

—फ्लोरिडा के फुल के संबंध में सनराही तौर पर अब तक कुल २५६ व्यक्तियों के मरण व २५२ के मरण होने की खबर मिली है।

६ सितम्बर

—सोवियेत गांव (नेबोर) में एक नाई ने अपनी की के चरित्र पर खमई करके उससे से उस का मका काट दिया।

७ सितम्बर

—५० अवाहकाल नेबक के बरसी से दूरोर दखाना होते समय डा० ताराचण्ड काकानी ने उनका हाथ देकर कहा—

“आप की चर्मपत्ती इस प्रसिद्धीका से सुप्रसिद्ध निकल आयगी। आप हमारे राजा बने गे।”

८ सितम्बर

—बराही में कुलेक सुल्लिम गुरों ने शराब के मले में शहर में चक्कर लगाकर कई व्यक्तियों और पशुओं पर भांडे फालि से आक्रमण कर दिया। शहर में सनखी फैल गई है।

—पर्वतगंगा में एकमहलत मजदुरी करने वाली स्त्री के देहास होने पर उन के घर म ५०००० को मास निकाला है।

९ सितम्बर

—रंगून कारपोरेशन के वेल्डिंग ब्रादर-सप्लाय योजना के बिने १,५६,००,०० रुपये का कर्ज लेने का निर्णय किया है।

१० सितम्बर

—बरेली जेल में सेठ-अमलगाहा बखान ने जेल कन्सुलनरफरर का से सुझावत की कांन सावित्र बहुत कमजोर हो गये हैं।

—बेल्गम(बहालपुर) में ककसीका के कल्लुच पर लगाई गई पार्षदियों के कठने ब्राह्मि कार्य के लिए ७ अर्थसिधियों की एक कमेटी बना दी गई है।

६ सितम्बर

—अमीर अमजर नेदरी के मुकम्म मारक वर्ष में कांन सुकल कलकला से ३६६१ मील के फासले पर सुकम होना सुकल दिया गया।

—आमरावाण्ड नेदर ने राजव मर का म० १६०० तक का चकल मारक कर दिया तथा बहुत जमीन को बालकलोरे के काले में कल रही थी और जिन का सुकल में कलान देना पड़ रहा था, काले में कलज करन का सुकल दे दिया है।

—महाराजो अणुपर के बहायत से जाल पर कल्लुस निकालने के समय एक ली अण्णा दुल्ला सुमान के जिये उन की मोटर का क्राफ डेट गई।

—हादौर के सीनियर पुलिस सुपरवैडर ने महकमाना क्राब करक जिहा पुलिस के ४ अफसरों को बला करने व उधम मचाने के क्राब योग में सजा दी है।

१० सितम्बर

—नेडुणा (हको) क पास हो रेक मल्लुपों में भीषण टक्कर हो गई। जिस से ६ व्यक्ति मर गए और ४० के करीब चालक हो गए।

—आमरा में जोसब मिश्र के ४००० मजदूरों ने दो मास से नेतम व मिशन के कारख एकावक हदतलक कर दी। कलकर ने उन की कच कला सुन कर सुकल कर दी।

—बरा के मलसीम जिले में बाइ के बारक १७ गर्वों को हानि हुई है। हजारों घरक जाल के खत मट हो गये हैं।

—मोमयी हलाक (समदर) पर बिरोधी कमीले बाकों और सरकारी फीको में फिर मुकल्ल हो गई, जिसमें ३ सीक मारे गए व ५ घायल हुए।

—फाजीला प्राय (ब्रहमवाण) की पाठशाळा में हरिजन बालकों को को प्रवेश करने का अफकार डिस्क्रिट लोकल बोर्ड के अधिनस्थ रकल बोर्ड ने दे दिया है।

—भारत के मनोनीत वायसराय काई जिनिकियों के मांन “जोनसुल” ने ममोरक निवृत्ति मिली थी। उस में लिखा है कि काई जिनिकियों ने अभी मिलनकर कर लिया है कि वह भारतीय संघ शास्य का प्रथम प्रधान मंत्री कर वेकबहादुर सभ को बनवाये।

—पंजाब सरकार ने एक बिनिज शराब कलोगों को हकवार रखने की आज्ञा दी है।

११ सितम्बर

—फेरिफरको सेल के सम्मन्ध में जिन ६५ व्यक्तियों के विवेक मुकल्ला कल रहा था, उन में से २३ को प्राय डंड, १० को आजीवन कैद और १२ को १५-१६ साल कैद की सजा दी गई है। मेथ को बिये मर।

—आदौर की कबर, कि सरदार शर्तुलसिंह कमीश्वर ने कमिस बार्थ समित की सुव्यवस्था से हस्तीका दिया दे दिया है।

—बर्मा की कबर है कि मीरा बहिन पर फिल्ले वार जिनो ने तोष कर का प्रकोप है। महामा गांधी स्वयं उनकी सुधपा में जागे हुए हैं।

—कल्लम (पुल्लगाँव) का समाचार है कि बहाई एक वातक वधमक क सम्मन्ध में जिस का मेद करदार की सुकल गया है, एना के कुछ भाकि सर तथा तोपखान क बहुत म कर्मचारी मितपला कर जल गए।

—हैबराबाद (हसिण) में भीमली खगोली नामक के अस्वस्थ होने की कबर है। काय रिमला में होने वाली बांजिल वाल मटरीरो बोर्ड की मल्लवपुर् वेडक में कामिलत नहीं हो सकीं।

—फेनी (बंगाल) के कबीक भी० सलीहकमद वर्धन क चिदर बंगाल टेरिटरियल वषट के मातहत मुकल्ला मकल रहा है। काय कपनी पल्लु की सुचना मिता निय कपने सुपर्रिंर के घर में टहर गये थे।

—जिमला की कबर है कि एम० डी० राजा एम० एल० ए० क हरिजनों का सामाजिक बाधकदार सम्म० की मरन समर्पात ने पेश होने से रोक दिया है।

—बरेल्लवद कुमाय रेखे के होम बोर्ड ने एक पत्र मेला है कि काले से साम्प्रदायिक सम्बंधों के आचार की री लखे-स्टाफ में मटरी की जाय। तबजुसर हिन्दुओं को ४०, मुसलमानों का ५५ तथा अन्य सब को ३ प्रलदर के विलस से भीरवार मिलेगी।

—पारसी केडरल कौन्सिल ने बम्बई के गर्वन व बम्बई सरकार क होम मेम्बर को तार दिया है कि उस कालकाको फिल्म क प्रदर्शन का रोक जाय, जिस में कि दो पारसी युवतियों काम करती है।

—“गान सोमवार को कठपुतकी के हिन्दुओं न अलफुलमी का जल्लुस निकाला। मुस्लिमों” न लाडियो से हमला किया और मल्लक मला दी।”

—रियासत-मेवुर को भारत-सरकार न फिला है कि भारतीय रिपोलतो के प्रमोसीय को आपण्टिय बेकों को फिलहाल रिजर्व बैंक गांधी एडिवाण्ड पण्ड की मद में शामिल नहीं किया जायगा।

१२ सितम्बर

राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद न भारतीय निवासी है कि २४ सितम्बर से २ अक्टूबर तक समस्त भारत में गांधी जयन्ती अण्णाह मनाया जाय तथा उस अवसर पर देरी लगाकर खादी नहीं जाय।

—सुना है कि श्री० सी० बर्हो बितामण ने “बीडर” के अण्णाहक से त्यागपत्र दे दिया है।

—फेडटा शहर में सुवाधी को कार्य इन्टररुप्ट जरी है। मल्ले में से जो कांय बरामद होनी हैं उन्हें विनिषुक्क डिजाइन काया दिया जात है।

कल रात के यहाँ से सुरका पलटने कपरिहार सुखी ममाने के बिने नयाल बली गयी हैं।

—काज प्रातः कलमल में कभी सम्मनी फैल गयी जब कलमल के एक प्रसिद्ध व्यापारी आनन्द को बिबिटर रिपो स्ट्रुट में बम्बई घर में बेहोश पाया गया। उस के पास उरककी प्रेमिका वाली एक काल की लकी हुई पड़ी थी। दोनों के करीर पर कल्लुक की गोली के छाप थे। कहा जाता है

यह भाष्य के अनुसार ५ घड़ौदों के टिकट

- (१) बायसमय कल रवीप (दिल्ली) काकी ता० १५-१२ ३२ मूल प्रति टिकट२)
  - (२) कायसर की स्टेट डिप्लिटल स्वीप (आयरलैंड) ४-१०-३४ ॥ ॥ ॥ ॥
  - (३) रैडकल सो० (काजसमरी, फ्रांस) मूल आयात॥) पूरा ५॥
- न० २ के सच डिपट होकरों को डात हो कि इस स्वाप की तारीख अक्टूबर से इटकर विसम्बर १९३२ ०० हो गई है। अमन काल के टिकट मिला सकते हैं। बीमल वल्लेदों की निषेधतया उमरी भारत में आयावरता है। उचर व वल्लेदों के लिकों के लिए ५ के टिकट मेजें।
- एम० एल० बर्मा, शु गुल्ल विल्लिग रोशनभारा रोड, दिल्ली।



असम्बन्धी की सोमवार ६ सित० की बैठक में किमिलन-ला अमेंडेमेंट बिल पर और बहस हुई लेकिन इस विषय की बहस पूरी नहीं हो पाई ।

डा० मधुसूदन न शपथ मनाकर बस से इस विषय की सरकार की बुद्धिमान्ता थी । श्री आर० एल० यार्म, सर मुहम्मद याकूब और श्री मोटिलाल सरकार का विमोचन में रहे । सरदार जोगिन्द्रसिंह और आसफ़ अल्लाह न जोरदार विरोध किया ।

मंगलवार का भी असम्बन्धी में किमिलन-ला अमेंडेमेंट बिल पर बहस जारी रही लेकिन समाप्त नहीं हुई ।

इस दिन डा० दयाल और महा राजकुमार विजयानगरम ने सरकार का पक्ष पठत हुए बिल का समर्थन किया और श्री० बा० दास धनिल चन्द्र, फजलुल्लाह तथा प० गो विन्दवल्लभ पन्त न विरोध किया ।

आतकवाद का मूल कारण है, भीषण और स्वतन्त्रता का मूल । यह बहुत हुए भी अस्मितचन्द्रपन्त न कहा 'लोगों को भोजन और स्वतन्त्रता दो तो नातकवाद का देश में नातक भी न रहेगा । यह नहीं था न चुनना था की कि 'सरकार हमें स्वतन्त्र कर दे, फिर देको हम सब को भोजन की व्यवस्था कर दे' यह नहीं ।'

प० गोविन्दवल्लभ पन्त न बिल पर नीलक्ष प्रहार करने हुए होममन्टर के इस कथन की खोजपा उद्वाह कि इस का उद्देश्य देश का उत्तरवाणी शासन के लिए तैयार करना है । आप न कहा 'उम्मादे अन्धतक क कारनामों को दखते हुए हम अपने देस स्वतन्त्रों को तुम्हें कैसे छोड़ सकते हैं, जो कि हम अत्यन्त प्रिय हैं ?'

आ० बा० दास न बिल का उद्देश्य सरकार का लक्ष्यों की प्रकाश में आन न रोकना बताया और अन्धकारों के साथ पक्षपात करने की नीत को निन्दा की । श्री० फजलुल्लाह न बिल को बिल कुछ स्थिति और अनावश्यक बनाते हुए सरकार का अपना अत्यवस्था सुधारकों का दोस्ताना स्वाहा की ।

सुबहार सा० ११ सितम्बर को असम्बन्धी में किमिलन-ला अमेंडेमेंट बिल को बहस का पंचम दिन था, मगर इस दिन भी बहस समाप्त नहीं हुई ।

इस दिन की बहस में व्यवसाय सम्बन्ध सर अफ़्गनाजी और यू० ए० ए० नारायण नारायण न बहस में

## असम्बन्धी में सरकार की जबरदस्त हार

किमिलन ला अमेंडेमेंट बिल ठुकरा दिया गया

जन-पक्ष के सदस्यों की सरकार को फटकार

— :

“अपराधियों को पना नही लगा सकते तो निकल जाओ यहाँ से ।”

— गोविन्दवल्लभ पन्त

“हम लोगों को भोजन और स्वतन्त्रता दो तो नातकवाद का देश न नाम भी न रहेगा ।”

— अस्मितचन्द्र पन्त

“हम यादें पचासा कानून क्या न हो, हम तो अपना आन्दोलन चलायें ही जायेंगे ।”

— लालोभाई देसाई

सरकार का समर्थन किया और प० गोविन्दवल्लभ पन्त तथा श्री० अमृतलाल गोयरी न विरोध किया ।

बहस की विशेषता यह रही कि जहाँ विरोधी पक्ष वालों न युक्तियाँ और आक्षेपों का सारा लिया वहाँ सरकार समर्थकों न युक्तियों के अभाव में हाट-पटकार और अपमानों तक को अपनाया । जि० जेम्स न तो श्री मधुसूदन को लक्ष्य करके यहाँ तक कहा कि तुम मुझ क रथ में आओगे और वहाँ जान क लिए इससे मैं तुम बन भी हो ।

पूरी ६ दिन की गरमागरम बहस के बाद वृहत्सभावार सा० १२ सितम्बर क सांयकाल असम्बन्धी में ६१ के विच्छेद ७१ मता न किमिलन-ला अमेंडेमेंट बिल पर विचार करने न इस्कार कर दिया । यहाँ नहीं सर का प्रस्ताव पर चले जाने की विरोधी पक्ष क मजबूती न बिल को फाड़ कर फेंक दिया ।

इस दिन की बहस में मुहम्मद यामीनखाँ ता मन्जर सर जगन्नाथ सरकार और होम मन्टर सर हेनरी कन न जोरों क साथ बिल का समर्थन किया तथा श्री एल० एम० जोशी (मजबूरी क मामल प्रतिलिपि) श्री० गोकनमनी श्री माधव श्रीहरि अणा (काँपल-नेशनलिस्टों के नेता) और भूभाभाई त्साई (जमिंदार न विरोध किया ।

बहस में जहाँ हाउस के लीडर सर जगन्ने ने मगध बिन्दु अन्धकार से मुन्धमालों के विच्छेद उद्धार हाँट कर भीरी बगल क सम्मन्ध में म० गांधी को मंत्री गई श्री कृष्णाबाई की कविता बिच्छी के उद्धार सुना

कर सत्त्वों को साम्प्रदायिक भावों से भरित और भात कबाह से भयभीत करने की कोशिश की, वहाँ विरोधी पक्ष क नेता श्री भूभाभा त्साई ने बड़ी मजबूती और भावों मता क साथ बिल क पक्ष में पेश की गई युक्तियों का जवाब दिया और धाया का— यह या हम तब क पचासा कानून क्यों न हो, हम तो अपना आन्दोलन चलाय ही जायेंगे । यहाँ वहाँ अन्धकार भी स्पष्ट कह दिया कि साम्प्रदायिक सत्ति नय अन्धकार को जन्म को अन्धकार मन्त्र पक्ष तभी उने शुद्ध किया जा सकता है ।

मिल फिर प्रश्न होगा ? बिल पर सरकार की बुरी नरह हार हुई है, फिर भी वह इसे छोड़ती मान्य नही पड़ती । ऐसा क्याल किया जाता है कि शासक भी गवर्नर जनरल की सलाहपर क साथ वह फिर असम्बन्धी में विचारार्थ पेश हाँगा ।

## महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

सोमवार सा० १२ सितम्बर से वृहत्सभावार सा० २२ सितम्बर तक का प्रश्नोत्तर हुए, उन में से मुख्य मुख्य निम्न प्रकार हैं—

इस्करानागा श्री आसफ़ अल्लाह क प्रश्न पर इस्लाम नगलत ऐयरेज क साथ सरकार न वायुयान सम्बन्धी जो सम्बन्धीता किया है, वह उपलब्ध किया गया । इस में सरकार न पहले छः महीने १९००० रुपये मासिक उन इस लिए देना मन्जूर किया है कि सिविल विमानों क डायरेक्टर द्वारा परका हुआ आयरलैंड स्टार (शेड पृष्ठ २५ पर)

## अनीसीनिया का मामला अभी तक नहीं सुलझा

लड़ाई अवश्यभावी है ?

अनीसीनिया और इटली के मामले को सुलझाने के लिये राष्ट्र सच की कौंसिल की बैठक तो असफल रही हा, ६ सितम्बर से राष्ट्र की असम्बन्धी की भी बैठक हो रही थी उसकी सफलता का भी विशेष आशा नबर नहीं आती ।

अनीसीनिया पर इज्जाम कीन कौंसिल को बैठक में बैठको अनीसीनिया पर चार हथकौट लगाया—

(१) अनीसीनिया न नये स्तिर म सरहदबन्धों कानून से इस्कार कर दिया और इटालियन प्रशु पर गौर कानूनी कब्जा कर लिया, (२) इटली के राजकीय प्रतिनिधियों पर नियन्त्रित हसने होने रहते हैं । (३) अनीसीनिया में रहन बाँडे इटालियनों के आन माल पर लगातार बाधा बाधा जाता है, और (४) इटालियन साम्राज्यवाद में रहने वाले इटालियनों पर आ हवां तरह के हमले होने रहते हैं ।

सावदा अनीसीनिया पर इटली का विश्वास न रहन का योग्यल करने हुए राष्ट्र सच में अनीसीनिया को दबाई बराबरों का न रहन पर जोर दिया ।

कीन कौंसिल न साम्पोर मड रियाय (रोन) की आश्रयता में पिछे हटन, ७० लिवि, कनब ड क (पोलैण्ड) आर ताकिनिकलम इटली की एक उन्मिलन क सिमकने का रास्ता निकालन क विषय मता का और उसन इटली की आवासीयिषा को राष्ट्र-सच म हटान की मांग पर विचार करने के लिय आनी एक उपलब्धिता बनाई ।

कीन प्रसम्बली

६ सितम्बर से डा० नेवेस को आयुषता में राष्ट्र मन्त्री को अनेसम्बन्धी का अधिवेशन को शुद्ध हा गया है । इसमें किमिलन राष्ट्र सच के सन्धि पक्ष का समर्थन किया है । जिनमें जितन और कानून भी हैं । इटली की ओरने बैरन अन्धकारो न यह आशयल देने से इस्कार कर दिया कि जबतक समकौती का बातकीयल नबन उद्यो है वह शुद्ध नही करनी । मगर सर मधुसूदन और श्री० लेवड के रुष्टन कर ने (शेड पृष्ठ २६ पर)

# अजुन

सोमवार सा. १६ सितम्बर १९३१ ई.

महोदय प्रविष्टि से न दीर्घ न पलायन

## प्राचीन स्मृतियों की रक्षा कीजिये

उदयपुर-नरारा से निवेदन  
(ले.—श्री हनु विद्यावाचस्पति)

यह मास मुझे उदयपुर विद्यासत बाने का सोमवार प्राप्त हुआ। मैंने विचित्रोद्भव भी देखा और उदयपुर उ ग्रन्थ ऐतिहासिक स्थानों के भी दर्शन किये। जिस वीर-भूमि के एक-एक कण्ये में से सेकड़ों प्राण पीतों की प्रतिमति प्राप्त भी पायी हैं, उसे देखा कर जिस मारक-बासी का दृश्य रोमांचित न होगा। मेरे दिवने मे भी वहाँ एक वेदना की ओर स्फूर्ति को अनुभव किया। वेदना इस बात पर कि क्या ये, और क्या को गये। जिस के प्रथम-पुत्राओं की निर्वाह वीरता के कानन सिंह भी मात ये, उनकी कलना आन गीरद्वी की माया कोलती और गीरद्वी के तत्व ज्ञान पर अभिमान करती है। स्फूर्ति का कारण यह विचार था कि जो कुछ आज से ४ या ५ सदी पूर्व हुआ, वह आज भी होसकता है। उस का होना असम्भव नहीं है। इस प्रकार वेदना और स्फूर्ति की तरंगों में डुबकियाँ लेते हुए मैं उस तीर्थयात्रा को सम्भव किया। एक कमी रह गई। मौसम के अनुकूल न होने से मेतक और उस के क्षार के कारणों से क्षार हलीवाटी को न देस सका। वह फिर किसी वृक्ष के छाया पर देखूँगा। इस स्थिति को जो कुछ देखा है, उसी को अनुभव करने और उस पर विचार करने में मेरक कठिनाई अनुभव हो रही है। कुछ-कुछ के सिद्धांतों का मान बरते-बरते हम लोगों के पास

वह चित्रपट ही कहा रह गया है, जिस पर हमीर, कुम्भ, सांगी और मताप के चित्र को जे आ सकते। उस मालिक चित्रपट को तैयार करना बड़ी साधना का काम है। उस के लिये समय और तपस्या चाहिये।

अतः। यह तो हुई वसना-जगत की बातें। अब मैं इन स्मृतियों की वर्तमान स्थिति तथा पर जाता हूँ। उदयपुर सरकार की ओर से विचित्रोद्भव की रक्षा का योजन-बहुत प्रयत्न अवश्य किया गया है और उस के लिए वह वसनावाद के योग्य है, परन्तु मुझे यह कहते दुःख होता है कि एक जाति की स्मृतियों स्मृतियों की रक्षा जिस सावधानता से होनी चाहिये, उस में अभी बहुत कमी है। पहले विचित्रोद्भव को ही बीजिये। प्रथम द्वार में प्रवेश करते ही जिस वस्तु का प्रभाव अनुभव होता है, वह यह है कि न कोई मार्ग-चरक मिलता है और न उप-योगी साधिका। द्वार में प्रवेशते ही जेल के दृश न होते हैं। वहाँ एक सिपाही बसा रहता है, जो सीधे तुम्ह से बात भी नहीं करता। प्रथम आ कर वृक्ष या तो तंगी बलाने वाले की दया पर रह जाता है या किसी नगर-गार्ड के फले यह जाता है।

कदम-कदम पर ऐतिहासिक स्थान हैं, परन्तु न उनके रक्षा का कर्त्तव्य प्रबन्ध है और न उनके पास रक्षा की जानकारी के लिये ऐसे बोर्ड हैं, जिन पर थोड़ा शिक्षा हो। जयसल की कला की छतरियाँ तक बिना किसी निर्देश के पड़ी हैं। सब से बड़ी दुःख की बात यह है कि रक्षा के उपायों की तलाशी में बर्बादी की मटकता फिरता है, जहाँ पर हजारों वीर राजपूत रमयियों ने हलते-हलते धर्म पर प्राण दे दिये थे। जीहर के स्थानों का कोई निशान नहीं है, जो स्थान दिखाया जाता है, वह बिजुल गन्ना और कुत्ते से भरा पड़ा है। यह दृश्य अन्य ऐतिहासिक स्थानों की तुलना में, सरकार की निष्ठा नाम का एक नया महज

कमाया है, जिस में कोई लक्ष्य दया कर्त्तव्य कहा जाता या आता है। यदि वह दया गङ्गा की पुरानी इमारतों की रक्षा में कर्त्तव्य किया जाता, तो उचित होता।

यही दृश उदयपुर के ऐतिहासिक स्थानों की भी है। एक ही दृष्टान्त बीजिये। उदयपुर की पाक पर कोई स्थान था, जहाँ राजा-शानसिंह राणा प्रतापसिंह के मेह-मान बने थे। वह घटना इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है, परन्तु उदयपुर पर आज यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि वह स्थान कौनसा था? कोई निर्देश बोर्ड तो वहाँ अवश्य चाहिए।

यह सोमवार की रात है कि यह सब स्थान बचा राखत की समान के हाथों में हैं। यह और भी हर्ष की बात है कि वर्तमान महाराजा एक रोगन विराम और उदार हृदय शासक हैं। उनके समय में उदयपुर विद्यासत की कई तरह की उन्नति हुई है। क्या मैं उदयपुर-दर्शन से वह तज्ज प्रभाव कर सकता हूँ कि वह अपने अन्तर पूर्व पुत्राओं की स्थिति स्मृतियों की रक्षा की ओर विशेष ध्यान दे। यह पूर्वपुत्र के लक्ष्य सेवाद्व, हलीवाटी, अतिथि सारी हिन्दू-जाति के अनुभव धन थे। उन की स्मृतियों की रक्षा हिन्दू जाति के मान रहा है। मैंने प्रायः सभी जिन्हाबों से उदयपुर के वर्तमान शासक की उदारता और सोम्य की प्रशंसा सुनी है। क्या वह मेर इस निवेदन पर ध्यान दे कर विचित्रोद्भव, हलीवाटी तथा ऐसे ही अन्य ऐतिहासिक स्थानों की रक्षा की ओर विशेष ध्यान देंगे?

## दमन का लंगड़ा समर्थन

अधोमन्थी में दमन-सम्बन्धी आर्थिक स्थानों के समर्थन पर जो बहस हुई है, उसने दोनों ही पक्षों के कलावल को खूब स्पष्टता से प्रगट कर दिया है। दमन सम्बन्धी स्थानों के समर्थन में, सरकार की ओर से जो दृष्टिकोण हैं, वह

संगी और प्रत्यक्ष निर्वल हैं। अब कांग्रेस की ओर से कानून मंग जारी था, तब कहा जाता था कि कानून-मंग के प्रभाव को दूर करने के लिये आर्थिकों की आवश्यकता है। जब सरायप्रह बन्द होगया, तब उसमें पैदा हुई गड़बड़ को खत्म या कि कानून-मंग किया गया और अब उनमें से कुछ भी नहीं है। तो भी सरकार दमन-रक्ष को खूब तेज रखना चाहती है। उसके समर्थन में जो युक्तियों दी जा रही हैं, वह गलत हैं। कहा जाता है कि अपराध की दमन देन से उमे रोकना अच्छा है। दमन सम्बन्धी कानूनों के लिये न राजनीतिक अपराध तक रहते हैं। इस युक्ति को ठीक मानें तो सब न अच्छा यह होगा कि हरेक भारत-बासी का कंधरों में नजरबन्द कर दिया जाय, न वह बाहर जा सके, और न अपराध कर सक। वय—सबसे प्रासान उपाय तो यही है परन्तु एक बन्धा भी सरकार की दृष्टियों क बन्धन को समझ सकता है, जब मुझ किसी मनुष्य को कंधर में कैद कर देते हो, वह उसके हाथ पान बन्ध देते हो, तब वह न भला कह सकता है और न बुराई। वह एक जड़ पदार्थ बन जाता है। शासक का काम यह है कि मनुष्यकी काम करने की क्षमता ही, और साथ ही बलता दे कि यदि डरा करोगे तो तुम्हें दंड मिलेगा। कानून का यही काम है। निष्ठित सरकार के कानूनी शासन में बुराई की सजा देने वाले कानूनों की कमी नहीं। यदि कोई बच्चा या लेखक राजपूत का प्रचार करता है तो उसके लिए १२४ ए. विद्यमान है। यदि कोई पागल राजकर्मचारियों पर प्रहार करता है तो उसके लिए एक ही नहीं, सनकी धारायें विद्यमान हैं। ऐसी दृश में मेस ऐक्ट और आर्थिक स्थानों को पुनर्जावित करने की क्या आवश्यकता है? यदि सरकार का उद्देश्य केवल इतना ही है कि देश में राजविषय न हो, तब तो उसकी पूर्ति विमान कानून की हो सकती है, परन्तु यदि उद्देश्य इसमें कुछ अधिक हो, भारत के

मान्यविधायी बाह्यते ही कि देश में राष्ट्रीयता का बीज ही न रहे' तब सुखी बात है। तब तो बाहिरी नेल्स कानूनों का बगना प्रत्यन्त प्राचर्यक है। सरकार की ओर से दमन के पक्ष में जो जो युक्तियाँ दी गई हैं, उनका कोसलापन विद्वज्जगत् स्पष्ट है। समाचारपत्रों पर अनुचित सहायते जालन से देश की मानसिक उन्नति में कितनी अर्थात् बाधा पड़ चुकी है, इसका प्रदर्शन पं० गो बिन्दु गहम पन्त ने अपने ओरवार भाषण में किया है। प्रस ऐक्ट के फाट्टी दोषों को मि० सत्यमूर्ति ने बड़ी सुन्दरता न वर्ण दिया है। फिर भी सरकार पर कोई अक्षर हुआ हो, ऐसा नहीं कह सकन। उन विक्रम चर्चा पर पानी का क्वा प्रमाण होसकता है। उनकी सज्जन ता का तो यह दाव है कि जब देश के प्रतिनिधि दमन सम्मेलन का मुन्ना के गिराय में बोलन लगते हैं, तब होम मन्त्रालय तक भाराम लेने के लिय बजे जाते हैं। उन्हें तो दमन-समन्धी काट्टुय बनाना है। असेम्बली मान तो ओर न मान तो। तब उन्हे किसी की दृष्टिसे सुनन की क्या आवश्यकता है।

असेम्बली में जब तक जो विवाद हुआ है, उसमे सरकार के प्रस्तावों की निराधारता खूब स्पष्ट होगई है। विरोधी बकाओं न अभी प्रकार सिद्ध कर दिया है कि फिमिलल का कामडमेण्ट ऐक्ट सत्यता प्रमाणयुक्त है। परन्तु बहा युक्ति को सुनता कौन है? कह दिया कि दोगा, और दोगा बाहिय सीधी तरह न होगा, तो सर्टिफिकेशन न होजायगा। असेम्बली के भाषय तो केवल भावयुक्त स्वन है।

यह छुत न मान्य हुआ कि असेम्बली के सदस्यों ने भारा बहुमत से इस काले विम को प्रसीधाय कर दिया। इस कर्तव्यपराय के लिय कन्हे बर्खा है।

## साम्बेदिकसभा और पं० बुद्धदेव जी

(डे० श्री भूट विद्यालयसपति)

पं० बुद्धदेव जी के सम्मन्ध में पंजाब के कुछ स्वामी शीर्षों में जिस

मदे प्रकार से आन्दोलन उठाया है, उसकी जिलनी निम्ना की जाय कम है। पाठक इसे धक में सुनने स्थान पर पं० रामचन्द्र जी महोपदेशक का लेख पढ़ेंगे। उस लेख में पंडित जी ने बड़ी वक्तव्य से बताया है कि पं० बुद्धदेव जी का कार्य शायद ओझा-बार के विरुद्ध कहा जा सके, परन्तु उमे धर्मविरुद्ध नहीं कह सकते। अपने आत्मी की छोटी सी भूल को अपराध को अपराध को पाप को रूप देकर, अपने को पराया बना देना धर्म्य जाति को ही जाता है। इस कुमजुति ने ही जाति को यह हिरासत का दिन दियाया है। पं० बुद्धदेव जी को जरासी भ्यावहारिक भूल को पाप का नाम देकर अदूर दूरों लोगों ने धर्म्यसमाज के वातु मरल को खूब धुंथि किया है। बुद्ध को बात है कि सांघेयिक धर्म्य-प्रतिनिधि धर्म्य भी उन अदूरदर्शी लोगों का ओझार बन गई ओर भ्याव को ताक में रखकर पक्षपातपूर्ण व्यवस्था दे डाली। धर्म्यसमाज पर लेकडों आसते धर्म्य, जब तो सांघेयिक समाज सांघेय रही ओर धर्म्य अपने धर्म्यी पर कुं का फनवा सावर करने के लिय उसकी नाँव एक-दम लुप्त गई। धर्म्य समाज को जिनोसमी सभा की इस दुरवस्था को देखकर दुःख होता है। जरा फनवे के महत्त्व को तो सोचिय। धर्म्य के अपमान का दुर्ग उस दक पर लगाया जा रहा है, जिन धर्म्य के नाम पर पागल कहा जा सकता है, जिसने धर्म्यसमाज की पुन में तन-बलन को मुक्त रखा है, जो धर्म्य-समाज कोर दयामन्त्र के मोन के लिय जान देता निरता है। धर्म्य-समाज की दगा सत्ययुग ओबनोय है, कि वह अपने सत्ये सेवक कोर शुक्राभार में अंध नहीं कर सकता, परन्तु शुक्राभारी को सेवकों से ऊँचा स्थान देता है।

धर्म्यसमाज का दिन इसी में है कि इस मोमले को न्याय की दृष्टि से देखकर शान्त किया जाय, नकि इसमें कि निज को ताड़ का रूप देकर धर्म्य को पराया बनाने का यत्न किया जाय। सांघेयिकसभा को

पं० रामचन्द्र जी के लेखनुसार पक-पाठ-हीन दृष्टि से इन धर्म्य पर विचार करना बाहिरी, दमनकी का शिकार होना सत्य की शान के शायी नहीं।

सांघेयिकसभा के प्रधान का वक्तव्य भी इसी धक में अकारण हो रहा है। पं० रामचन्द्र जी के पत्र में उसका पूरा उत्तर आया है।

## सम्पादकीय विचार

उर उपदेश कुञ्ज बुट्टोरे

सर सेतुगल होर न राष्ट्रसत्य को असम्झी में एक बाल बहून सब कही है कि कर्ममान परिस्थितियों में किसी भी ऐसे देश को, जिस के पास साम्राज्य नहीं है, यह सही हो जाना स्वाभाविक है कि साम्राज्य वाली देश अपने उपनिवेशों में मिलने वाले कच्चे माल पर एकाधिकार कर लेगे और अन्य देश को उस से कोई फायदा नहीं उठा सकेंगे। लेकिन यह सत्य बचल 'पर उपदेश कुञ्ज बुट्टोरे, का आचार्य ने नर न बनने, की उक्ति का समर्थन करता है। मोटावा पैक द्वारा बिटेन न अपने साम्राज्यवादीय दौरो के विशेषकर भारत के स्वायत्त को कितनी लुति पड़ गई है, यह पाठकों से छिपा नहीं और यह पैक सब था, जबकि धार उपदेश देने वाले सहोदर औरत मन्त्री थे। क्या शासन विधान यह भारत को स्वायत्त देता है, तो ऐसा स्वायत्त कोर देश नहीं चाहेंगा।

## स्वास्थ्य-कामना

अमरीकी कमला नेहरू के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में फिर चिन्तालाक समाचार मिलने लगे हैं। इस से सार देश में भय व घातक ऐकता स्वाभाविक है। वे बीर, अजाहदराज की पत्नी हैं। भारत वर्ष कीमती कमला नेहरू को अपनी बीर मागिनी के रूप में मानता है। उन की स्वास्थ्य-कामना अर्थक भारतीय सत्ये हृदय में करता है। वे श्रीर ही स्वास्थ्य होकर भारत पहुँचे, वही सब की आशा है।

## पंजाब सरकार की चिन्तित

पंजाब सरकार कायद बहुत दिनों का पंजाब को साम्बेदिक स्थिति की गमगीरता को सम्झने लगी है। शहीदगंज-आन्दोलन के प्रारम्भ और उस से पहले मुक्त-मानों के साथ सरकार ने जो उपेक्षापूर्ण नीति करती थी, उसी का परिणाम आज प्रत्यक्ष हो रहा है। रावलपिंडी में अनेक मुस्लिम आंदोलनकारियों ने शहीदगंज के संवेन में कुछ निधाय किये थे। पंजाब सरकार न अनेक आंदोलनकारियों को मजबूर कर दिया और एक वक्तव्य प्रकाशित किया है, जिस में शहीदगंज आन्दोलन के अतिरिक्त हजारों मिले की सीमा पर किये गये आक्रमणों का भी उल्लेख किया है, जिसको उद्देश्य गैर-मुस्लिम लोगों को कल करना तथा उसको सम्पत्ति और धार्मिक हत्याओं को क्षीणन है। सरकार ने सब आन्दोलन कारियों को खुले धमकी दी है कि वह शान्ति-रक्षा के लिये सब उपाय करेगी। क्या मुस्लिम नला अथवा कश्मीर और गांधी मित्राकर लो-प्रभाविक विरोध को सब करने पर काम बर्बाद है।

## शान्ति में सन्देश

अमीनीया इस्वी का मामला जल्दी सुलझता नहीं दीकता। राष्ट्रसंघ न इस मामले पर विचार करेगा के लिय को कमेटी बनाई है। उसन समझौते की को इंगारा दी है। निरुद्ध के पराङ्ग खिंचे सर सेतुगल होर न यद्यपि यह कह दिया है कि सत्य पत्र को शहीद की अश्वेकना करके कुछ उताक होने चाहे राष्ट्र के प्रति राष्ट्रसंघ के अथवा सदस्य राष्ट्रों को कर्तव्य कक्षाया है कि वे मित्र कर कुछ दौरे कीर बुनिया में शान्ति कायम करें, तथा कि हमें एवं खरेह है कि राष्ट्रसंघ की इस धमकी का इस्वी पर कीर प्रभाव पड़ेगा। यदि वह देखेगा कि राष्ट्रसंघ उस के विरुद्ध सज रहा है, तो राष्ट्रसंघ की भी भयंकर निराना के निमय कर चुका है। ऐसी अवस्था में राष्ट्रसंघ कायि स्वाधिक कर सकेगा, इस में दूरा खरेह है।

# हिन्दुस्तान में मुसलमानों का अलग प्रदेश रहे

पाकिस्तान हिन्दुओं की श्रमि नहीं है

पाकिस्तान हिन्दुओं का श्रमि नहीं है। और न इसके निवासी ही हिन्दुस्तानी नागरिक हैं। इस का रुका से पुष्प ऐतिहासिक भौगोलिक, सामाजिक और राष्ट्रीय स्थिति रहा है। इतिहास के आधार पर ही से यह हमारे राष्ट्र का निवास स्थान रहा है और यहाँ तक कि प्राचीन काल में भी यह हमारी सभ्यता का केन्द्र था। मूलतः हमें यहाँ हमारा प्राचीन पोषक भूमा और धर्म्य में हमारी प्राणा भी इसी पर है। ईस हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तान को जन्म से आनुपूर्ति मानते हैं उन्हीं तरह हम पाकिस्तान को अपनी पितृभूमि मानते हैं जो पाकिस्तान में कुल जन संख्या का ३५ भाग होने के कारण यह हिन्दुस्तानी उस अपना मानते हैं तो पाकिस्तान भी हमारा है, क्योंकि इस में हमारी सख्या ४५ भाग है।

हम, पाकिस्तानी इस में असीत काल से अपना अनूठा जीवन बितात आये हैं और राष्ट्रीय समस्याओं का हल भी अपना ही हथ से करते आये हैं। अतः एकदम काल में पाकिस्तान न कल्पन कृतिक ही रहा, अपन कानूनों की रक्षा की और अपन ही धार्मिक सामाजिक और संस्कृतिक आधारों को पवित्रता के साथ कायम रखा, जो कि हिन्दुस्तान के आधार मूल आधारों से निकटतम मिश्र है।

यदि सामूहिक रूप में देखा जाय तो अब से हमारी कोई बात सुनी मिलती और न उन की ही कोई बात हल से मिलती है। जिस प्रकार सामूहिक रूप से वे हम से मिश्र हैं उन्हीं प्रकार हमारी व्यक्तिगत मामलों में उन से निकटतम नहीं मिलती, जिस प्रकार कि अन्य देशवासियों से नहीं मिलता।

सम्पत्ता और संस्कृति का भेद

हिन्दुत्व जिन आधारभूत सिद्धांतों पर निर्मित है वे उन आधारों से निकटतम मिश्र हैं, जिन के आधार पर कि हमारे राष्ट्रीय जीवन की तुल्य होती है। हमारा प्राचीन सामाजिक प्रथाओं और प्राचीन संस्कृति के हमें ऐसी सभ्यता, देखा वर्तन, ऐसी संस्कृति, ऐसी भाषा, ऐसी साहित्य और ऐसी कलाय भी है, जो कि हिन्दुओं की संस्कृति

## पाकिस्तान की योजना

‘पाकिस्तान नेशनल मूवमेंट’ के अध्यक्ष का वक्तव्य

पाकिस्तान का आन्दोलन लाखों के बलों में हमारे सामने आया है। एजाब, होमाग्रान, सिन्ध और बिकोचिकों को मिश्र कर पाकिस्तान कहा आ रहा है। मुसलमान चाहते हैं कि इन्हें पाकिस्तान के नाम से देखा राष्ट्र स्वीकार कर लिया जाय जिसकी जन वस्था में मुसलमानों की प्रधानता रहे और शासन में भी उन्हीं का मुख्य भाग हो। इस प्रकार भारत का हिन्दु भारत और मुसलमान भारत के रूप में वे विभक्त करवाना चाहते हैं। ‘पाकिस्तान नेशनल मूवमेंट’ के नाम से उन्होंने अपना आन्दोलन चला रखा है। यहाँ तक कि उसने प्रत्यक्ष की हैसियत से श्री रहमतउल्लाह नामक एक संज्ञान में पिछले कुछ दिनों में जबकि हिन्दुत्व विना पार्लामेंट के समक्ष उपस्थित था, एक वक्तव्य भी निकाला था। यह वक्तव्य विधायक के मुख्य मुख्य व्यक्तियों में वितरित किया गया था और इसमें बताया की चप्ता की गई थी कि मुसलमान पाकिस्तान को क्यों अलग देश बनाना चाहते हैं। उस वक्तव्य के मुख्य मुख्य अंग सवें साधारण की जानकारी के लिए हम यहाँ दे रहे हैं।

और सभ्यता से निकटतम मिश्र हैं। केवल यही नहीं, हमारा एक दूसरे के साथ काम-पान का व्यवहार नहीं विवाह सम्बन्ध नहीं और न हमारे रीति रिवाज, भोजन और वस्त्र ही एक दूसरे में मिलते हैं। इन सत्य बातों में विवाद के लिए स्थान नहीं है, जिस प्रकार कि भूतकाल में इन में परिवर्तन होने की कोई आशा नहीं की जा सकती। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान का यह भौतिक भेद एक ऐसा निरवहार्य है, जो कभी मिट नहीं सकता। हमारे विधान निर्माताओं को प्रकृति के इस नियमों को स्वीकार करना ही चाहिये।

जायद सिलेक्ट कमेटी का मर्मण

आइयट सिलेक्ट कमेटी न हमारे विचारों की पुष्टि निम्न शब्दों में की है—

भारत में इस प्रकार की कितनी ही आजायें रहती हैं, जो कि अतिन उन्नत आधारों और संस्कारों में एक दूसरे से इतनी मिश्र हैं, जितन कि यूरोप के राष्ट्र एक दूसरे में। भारत के दो निर्वाह निर्वाणी किसी न किसी रूप से हिन्दु धर्म की मानते हैं और उ करोड़ लाख न अधिक इस्लाम के अनुयायी हैं। इन दोनों में संकुचित रूप में केवल धर्म का ही भेद नहीं है, बल्कि यह कानून और संस्कृति में भी एक दूसरे से भिन्न हैं। कहा जा सकता है कि दोनों दो मुख्य समस्याओं के प्रति

निर्णय हैं। हिन्दुओं की सामाजिक और धार्मिक समस्याओं का मुख्य आधार वर्ण व्यवस्था है, जिन में कि प्रत्येकी प्रभाव पड़ने से बहुत थोड़ा ही परिवर्तन हुआ है परन्तु इस्लाम धर्म का मुख्य आधार अनुष्ठान मात्र की समता है।

प्रकृतिक प्रयुक्करण

कवल यही नहीं, भौगोलिक दृष्टि से भी पाकिस्तान एक प्रयुक्त प्रथम जान पड़ता है। प्रकृति न पाकिस्तान को हिन्दुस्तान न अनुमान की द्वारा प्रयुक्त कर दिया है और दोनों प्रदेशों के बीच में पर्वतीय का ऐतिहासिक और सभ्यता भेदा हो है।

पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच जो भेद है वे निकटतम स्वाभाविक है और इसी लिए जिन को स्थायी भी है। अतः काल से वे रहे हैं और सदैव रहेंगे। यह हमारी भावना और अतीत के प्रतिनिधि स्वरूप हैं और यह हमें अपना प्रयुक्त राष्ट्र बनाने का ऐसा अधिकार देते हैं, जिन से कोई हम्पार नहीं कर सकता। धर्म और विधुर्ध्व हमारी ऐकिक समष्टि है और इसकी रक्षा के लिये हम दृढ़ प्रतिनित हैं।

पाकिस्तान का आन्दोलन

पाकिस्तान का आन्दोलन इन निम्न लक्ष्यों के आधार पर चल रहा है और उसका उद्देश्य ब्रिटिश राष्ट्र प्रभुत्व में हिन्दुस्तान के अन्तर्गत बरा-

बरा का पद पाना है। हम पाकिस्तान का प्रयुक्त मर्म इस लिये चाहते हैं कि हिन्दुस्तान से मिलने पर हमारी राष्ट्रीय उन्नति ऐसी न हो सकती, जैसी कि करने का तत्वीय भारतीय शासन-सर्व में की गई है। हम प्रयुक्त राष्ट्र के साधारण अधिकार के लिये और दुष्ट की नहीं चाहते। कदापि नहीं, यह बात निरन्तर स्पष्ट है। हमारा यह भाषा केवल आत्म-रक्षा का ही लिये है। पाकिस्तानी न तो विघ्न के विरोधी हैं और न हिन्दुस्तान के समर्थक। हम ब्रिटिश साम्राज्य से सहयोग करने और हिन्दुस्तान से सम्मिलित करने के भी विरुद्ध नहीं। हमारा विरोध केवल भारतीय शासन सत्ता योजना में है जो जिसमें हमारे साथ घोर अत्याचार किया गया है।

हमारी हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता स्वीकार कर लेना और हिन्दुस्तान के साथ मित्र जाना कवल असम्भव ही नहीं बल्कि सामयिक दृष्टि से भी हमें अवश्यता होगा। इसलिए हम पाकिस्तान के सिद्धांतों और उस की विधायक के लिए दुष्ट हैं और और हम अपने को पाकिस्तानी कहने में ही सतुष्ट रहेंगे। भारतीय सत्ता योजना का सभी वैध उपायों के द्वारा विरोध करना हमारा नैतिक और कानूनी कर्तव्य है।

सामूहिक नहीं अन्तर्ध्वन्यता

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की समस्या सामूहिक समस्या नहीं है और सामूहिक आधार पर इसका हल नहीं हो सकता। यह तो एक अन्तर्ध्वन्य समस्या है। अतः, इस का हल भी उसी आधार पर होना चाहिये। शासन विधान चाहे किसी भी तरह का क्यों न हो जिसमें इस भेद की उपेक्षा का गौर हो, वह पाकिस्तानी के लिए न विघ्नकारी होगा भी, किन्तु साथ ही अग्रगण्य और हिन्दुओं के लिये भी लाभकारी नहीं हो सकता।

निश्चिन्त नहीं रह सकते

पाकिस्तान आन्दोलन का प्रवर्तक होने की हैसियत न यह बनाना मेरा कर्तव्य है कि हम पाकिस्तानियों के लिये सय योजना द्वारा पैदा को दृढ़ परिस्थिति की उपस्था करना स-

(शेष पृष्ठ २२ पर)

## कृषक की आह !

किने सुनाये' कह कहाभी,  
कोन हमारा है, जग में।  
भाहों को गाना सुनते हैं,  
कॉट सुनते हैं मग में ॥१॥

दिन के साथी सूर्य हमारे,  
तन-मन को लुल्लाचा जाते।  
सज्जा होती तारे फाले,  
सुधा सुधाकर बरसाते ॥२॥

आहुल प्राणों को दिन-भर की,  
कितायें घर रहतीं।  
सिसके बच्चों को ले बेटी,  
गुहणी कष्ट-कथा कहतीं ॥३॥

भाया था तिमिदार तुम्हारा,  
कहता तुम को हो 'बाभी'।  
कुहक क'का बैल तुम्हारे,  
अब के तुम न जो ना की ॥४॥

छली टूट गई देखो तो,  
पानी भीतर ही फाला।  
खोन का भी जगह नहीं है,  
सील गई पुरबी माता ॥५॥

एक पड़ा बस मिट्टी का है,  
कोर नहीं कुह मी घर में।  
सजिपात का उजर शिष्टु को है,  
बल नहीं कोर तन में ॥६॥

क्या होते हैं सुख तुनिया के,  
नहि कुह मी हम ने जाना।  
भारत के हैं कृषक सभी तो,  
धरे रहते दुःख माला ॥७॥

भर-पेट नहीं रोटी मिलती है,  
समय-समय पर कसो नहीं।  
रोत शिष्टु है, कोस हमें फिर,  
पटु भी रहते भोग नहीं ॥८॥

हाने हाने को रोना है,  
बिज्जा ने है यही लिखा।  
शान्ति सदन हैं प्राण नहीं अब,  
छाया रहता कोप यहाँ ॥९॥

अनाहुटि फल पृथि सदा हो  
दया हमी पर है करती।  
तिमिदारों की कोप पृथि यो  
सि पर हो नैन करतो ॥१०॥  
—भोलाचल ओतिबिंदू

## हिन्दी

मिथ बन्धु, कामता, खिसेरी द्वार रखक हैं,  
शुक्ल, हरिकोष है समेन और द्वारन।  
सुमद्रा, महादेवी जो रोई नोन गारती है,  
गुल, तनकर है बरख पखारन।  
शंख, बजियाल है अन्नू जी, बियोगी हरि,  
भञ्जा स बजाने और विरद उचारते।  
अंकर, निराला, पल हिन्दी-बिन्दु-मन्दिर में,  
मातृ-भाषा हिन्दी को है, भारती उचारते।

—हरिवल्लभ 'हरि'

## हे कलाकार ?

हे हरिवल्लभ ! हे भारतेन्दु,  
हे कलाकार ! हे कवि-उद्धार !  
हे निर्वन के धम है अन्नू,  
हिन्दी विभूति के भूति'कार ॥१॥

कन्हार से सुने मणिर में,  
तुम कुसमयमें आने वाले।  
जनको के पाँच करखों में,  
रोते रोते हंसने वाले ॥२॥

कुह ऐसी मय लेकर आने,  
आवे ऐसी मल्ली हाटे।  
रो-बार दू में बना बिये,  
दितने ही पागल मतवाले ॥३॥

बाँझों ने ओझल हो कर भी,  
घर-घर जादू करने वाले।  
तुनिया कवरज से देख रही,  
तुम भरकर भी ओनेवाले ॥४॥

बिजली बम कर बमके मग में,  
बरमे अफिरल शत चारों में।  
माता का हर भर-भर आया,  
गुंजी बछुआ जयकारों से ॥५॥

वे विषल तिमिजके पार छिपे,  
छिप गई कहीं वह छुपे प्यारी।  
अब बाब तुम्हारी शेष रही,  
वे शेष रही बाते छादी ॥६॥

नूतन चिधि से गुंथी माला,  
है फूल अनोखे रंग वाले।  
लेकर आये स्वीकार करो,  
को स्तुति में ही आन जाये ॥७॥

—भी द्विवेन्द्रनाथ मिश्र 'जिगु'ब'

## ज्योत्सना (कविता)

देवि, कौन तुम सुरभाला सी, उतर श्येन में जगतीतल पर।  
इत्ताली, बल छाती, प्रतिपल, मित्र-योवन-प्याहा छुबका कर ॥  
मधुर हास भर जग प्राणय में, कुसुम चनेली के बिजराता।  
नवजीवन का सुरमिलिये सी, मन्व-मर्त्य मुनकाती धाती ॥१॥

बाँझी सी सुखमा जपार ले, कूद पड़ीं तुम सरिता-जल पर।  
कौन राम गान्नी गरिमा सी, वन-देशी के वसुधल पर ॥  
मस्कना उडल बछुआ पर, मुकुलित बेने म बरसाती।  
जग-उपलब्ध की काली-काली में, मधु, परिमल, पराग लुल्लाती ॥२॥

पिरो सुख में टकि मोती, तुमने जिशि के मोटे पट पर।  
मिस्त्र तुम्हारी दिव्य प्रभा से, प्रमुलित दुःख बढ़ाता निम्न ॥  
नयन-बल-सा जग-उपलब्ध यह, प्याहा शान्त, अविक्ल, सुपुत्र है।  
इस मिणीय में स्वर्ग-परी सी, श्वेतम्बर त्रिजुलन है ॥३॥

सज्जिन, हृदय-नीचा मित्र है तुम, मसराम गाती खुदस्वर मर।  
काव्य लुला अलू रही हो, सरोजिनी को पकावियो पर ॥  
देवि, आन, बिजल, मित्र अचरों से, बरसाती अमृत को चारा।  
सदा छमरता देखी हो तुम, पिता सोमरज जगको क्षारा ॥४॥

अवय-पवन अब तुम्हें छेड़ कर, रंगरेख करता किरनो में।  
मार्तमा फूट निकलतो है तब, पकाकी कवि क वनो से ॥  
बच, सुख-बाँध किले भारत में, बरख पड़े तुम-पवन फालू वन।  
सुखद 'ज्योत्सना' से परिपूरित, होये अब जग-जन का जीवन ॥५॥

—अमर्षप्रसाद मिश्र 'कवि हृदय'

## इटली अक्सीसीनिया के संघर्ष से सम्बद्ध राजनीतिज्ञ

इटली का तानाशाह



सीम्योर सुबोचिनी

चीन अक्सीनिया के अध्यक्ष



डा० बे० ल

अक्सीसीनिया का सम्राट



शालनकारी

इटालियन प्रतिनिधि



बेरेन अन्नायसी

फ्राँस प्रतिनिधि



मो० लेवल

ब्रिटिश प्रतिनिधि



मि० ईडन

इटली का सेनापति



अमरक मेडियानी

ब्रिटिश पर-राष्ट्र मन्त्री



सर सेमुअल होर

अक्सीसीनिया का सेनापति



अमरक परिक विजिन

मेवडा गांव का मायला

## गोरों ने स्त्रियों को मंगा किया

### और उनका सतीत्व नष्ट

### करने की कोशिश की

गोद से बच्चा छीनने की कोशिश

पत्थरों, लकड़ियों व ठोकरों से गोरे

ग्रामीणों को मार रहे थे

अदालत में इकवालो गवाह, स्त्रियों तथा अन्य  
व्यक्तियों के बयान

हिस्तराजिमेट के १० गोर ले-  
निको व विच्छेद किया व दंग क  
प्रभियोग का मुकदमा जबलपुर में  
मि० १०० ए० स्नलसन आई० १००  
ए० १०० के अदालत में जारी है।

गांव वाले मांग रहे थे

४ सितम्बर को हस्तगान की  
और न जमीनसिद्ध ठगार की  
गवाही हुई। उस न कहा कि ११।  
भास क करीब हुआ, मैं एक रोज  
शाम को आ बने अपने घर पहुँचा,  
वहाँ कुछ ग्रामीणों ने मुझे बताया  
कि गोर गोरी प्रामोयी पर हमला  
कर रहे हैं और प्रामोयी गांव से  
भाग रहे हैं। मैंने एक प्रामोयी को  
अपनी साक्षिण दी और उससे  
कहा कि सामने का गिरेड पुलिस  
में कर दो। अपने घर में मैंने लग  
भग ५०-५० लकड़ों को गांव में  
ऊपर मचात हुए देखा। मैं घर के  
मार उन क पास नहीं गया। गांव  
वालों को, जिन में स्त्रियाँ व बच्च  
भी शामिल थे, मैंने गांव में भागत  
हुए देखा। वनक ५-६ ब्राह्मणों ने  
घर में आश्रय लिया हुआ था। मैंने जिन  
घावों को अपने घर में देखना था,  
उनमें ०-५ महिला भी रफ़्त।

मैं प्यारी (सुत ग्यल की  
घोखल लकड़ी) को जानता हूँ।  
गवाह न प्रामोयत में उस डमाल  
को पहचाना जो, घोखल लकड़ी क  
माथ पर बसा हुआ था।

गोपाल चमार न कहा कि मुझे  
इस मामले के बारे में कुछ नहीं  
मालूम, क्योंकि मैं गोरों को दल कर  
अपनी ओर पकड़ में चुन गया और  
जब वह गांव बाहेर न गय, मैंपरी  
न बाहर न निकला।

कोसला प्रमोय न बताया कि  
मैंने लगभग १०-१० गोरो को दंग

करते हुए देखा। मैं प्रामोयी को  
ठोकरों, लकड़ियों व पत्थरों से  
मार रहे थे। मेरे पीठ की १५-२०  
गोरे दौड़े। उनको मुझे पकड़  
कर खूब पीटा और मेरे सैनिकों  
तोड़ दिए।

मुलार नामक एक अन्य प्रामोयी  
ने अपनी गवाही में कहा कि मुझे  
गो गोरो न मारा पीटा।

इस क एक १२ वर्षीय  
लकड़े व एक चमार का गवाही  
हुई।

भाग लगाने व गोद से बच्चे छानने  
की कोशिश

४ सितम्बर को वाटर एडवर्ड  
पारसी नाम को दूसरे इकवालो गवाह  
की गवाही हुई। उस न कहा कि प्रा-  
वेट केनबी पर प्रामोयी द्वारा दल  
हमले का बदला लेन क लिय गत  
१० जुलाई को शाम को लगभग  
५०-५० गोरे मेवडा गांव पर चढ़  
गये। हम ५-५ व ६-६ ब्राह्मणों की  
दोस्तियों में गांव में शामिल हुए।  
१५ क बच्चे हमें दल कर भागन  
लगे। हमन एक ऊपर में काग  
लगान की कोशिश की मगर हम  
अपन प्रयत्न में असफल न हो सक।  
बाद को हम न प्रामोयी पर आक्रमण  
किये। जब हम गांव में बाहर  
निकले ता हमने प्रामोयी की उस  
पारटी को जिस में ३ गर्द व ३  
स्त्रियों व एक बच्चे शामिल थे,  
अपनी ओर डल हुए देखा। हमन  
उन पर मो हमला किया। हमारा  
एक साथी न एक प्रामोयी को गिरा  
लिया और उस लकड़ी पीटा। एक गर्द  
की गोद से एक बच्चे को छीनन की  
भी कोशिश की गई। वध्यात में  
कुछ अन्य साथियों के साथ मेरे को  
में बाँधल बसा गया।

४ सितम्बर को जल्लु करगोरल  
परिक मेमलिन ने कहा कि गत २०  
जुलाई को मैंने ६ ब्राह्मणों को गिर-  
फ्तार किया था।

कपड़ों पर बच्चे थे

दूसरे गवाह माहदेव चामल  
विजिणस (कपड़े धोने की 'बी'  
कम्पनी के इन्चार्ज) न अपने बयान  
में कहा कि १४ जुलाई को सुबह  
कुछ क समयिक मेरे पास आन और  
अधोने कुछ कपड़े जिन पर तरह तरह  
बच्चे बने हुए थे, उसकी धोने के  
लिये लिये। इस वक मुझे कुछ समझ  
हो गया। मैंने इस बात का सूचना  
साखवट चिरिफट को दी थी। वह  
मुझे उसे एक कपड़े के गया।

१४ वर्षीय लकड़ी की गवाही

मुसम्मल प्यारी (१४ वर्ष) न  
अदालत में गवाही देते हुए कहा  
कि १० जुलाई की शाम को जब मैं  
अपन पिता बिचाता व कुछ अन्य  
स्त्रियों क साथ घर बापिस आ रही  
थी, तो मैंने देखा कि कुछ सैनिकों  
को गांव पर आक्रमण करते हुए  
देखा। हमन में सैनिकों की एक  
पारटी न हम को घर लिया और  
बिना किसी मेमलिन के सब को  
पीटना शुरू कर दिया। मेरे सिर पर  
चोट लगी। मैं गिर पड़ी। सैनिकों  
न मेरी 'लार्डी' छोलन की कोशिश  
की, मगर व अपन प्रयत्न में सफल  
न हो सके। मेरे पिता न मुझे बचाने  
की कोशिश की, मगर सैनिकों न  
उन्हें हमला बाधन दिया कि वह मर  
गय। एक सैनिक न मेरे सिर पर  
एक कमाक बाँधा था, जो कि बाद  
को मैंने पुलिस को दे दिया था।

प्यारी की गवाही की पुष्टि

इस क बाद बुदा नामक एक  
१३ वर्षीय चमार लकड़े न मुसम्मल  
प्यारी क बयान की पुष्टि करते हुए  
कहा कि बिचाता ने जब अपनी  
लकड़ी प्यारी को सैनिकों के आक्रमणों  
में बचान की कोशिश की तो सैनिकों  
न लकड़ियों में उस पर हमला  
कर दिया। वह सल घायल हुआ  
और मर गया। सैनिकों की सख्या  
१०० के करीब थी, वे सब लकड़ियों  
लिय हुए थे। कुछ सैनिकों ने  
हमारी पारटी की ३ स्त्रियों को  
भी मंगा किया था।

अज्ञापन क बाद गरीब महिला  
चमार की गवाही हुई। उसने बुदा  
क बयान की पुष्टि की। गरीब  
महिला की स्त्री दसिया न अपनी  
गवाही में कहा कि मैंने पचासी  
सैनिकों को बिचाता पर हमला  
करते हुए देखा था। सैनिकों ने  
हमारी पारटी को घेर लिया और

मेरे कपड़े फाड़ डाले। मेरे स्त्रियों,  
कमर व मुटुओं पर चोट लगी।  
मुझे वह स्त्री मालूम कि प्यारी के  
साथ क्या हुआ। हमारी पारटी  
को अन्य स्त्रियों की भी १० प्रमोय  
मेवडजरी को गयी। मैं उस ब्राह्मण  
को नहीं पहचान सकता, जिसने  
मुझे पर आक्रमण किया था, बने कि  
उसी ब्राह्मणों की शपथ एकदली  
है।

सतीत्व नष्ट करने की कोशिश

मुसम्मल छारने ने तेरसिया  
की गवाही का समर्थन करते हुए  
कहा कि मेरी गोद में एक बच्चा था,  
मगर फिर भी सैनिकों ने मेरे कपड़े  
फाड़ डाले और मुझे नगा करके  
मेरे सतीत्व को नष्ट करने की  
कोशिश की।

नगा गोरा

मुसम्मल छारने न जिरह में  
बताया कि मेरी गोद में बच्चा होते  
हुए भी गोरो ने मुझे मारा व र्तन  
किया था।

मुसम्मल बुजिबा ने अन्य  
गवाहों के बयानों की पुष्टि करते  
हुए कहा कि मैंने एक मेरे सैनिक  
का मुसम्मल प्यारी की ओर मगा  
जाल हुए देखा था।

डा० की गवाही

डा० मेहता ने, जिसने बिचातन  
क गवाही की परीक्षा की थी, अपने  
बयान में कहा कि सुन व्यक्ति क  
जुरी तरह घायल किया गया जो  
और किसी की बहाद न हो सक के सुने  
हुई थी। मैंने कई अपन प्रामोयी क  
अपनी का भी निरोधन किया था।  
छुदावश पोरी (किंग रोजिमेट  
का एक पोरी) ने अदालत में उस  
कमाल का पहचान लिये को प्यारी  
क सिर पर क्या हुआ मिला था।  
मुकदमा प्रसी चल रहा है।

## तैयार

निल्य प्योहार की जेड वस्तुएं  
कपड़ा क पीठो, निकलुस मशीन,  
जुव मशीन, बड़े शकनल्लर, आली  
आदि के क अनेक दुकानें का  
सामान, सरपेस कपड़े, कपड़े  
मेमलिन, स्टन, जीन, जिन के काने  
बाद। मशीनों के पुर्जे, सिकल,  
सिलिडर, लकड़ी की मशीन के पुर्जे,  
कपड़े मेमलिन, पीठ कोक,  
रामायण, कलकत्ती, पञ्चांगसार  
आदि सब वस्तुओं से लस्ते और  
अच्छे। बिस्वत प्योरे के जिन मित्र  
निकलते पर से मालूम है—

रामनाथ मुल्ल  
करनाम डमाल  
होम कर्मा देवली





अगर वे अपने जन्मदाता माता-पिता कायदा इन्हीं के समान प्रज्जनीय सास कसुर की संतोष नदी दे सकत उनको प्राराम नहीं पहुँचा सकत, उनके साथ शक्तिपूर्वक नहीं रह सकने तो और दूसरों के साथ कैसे रह सकेंगे ? कुछ धर्म की सच में पड़ोसी पिशा है अपने को मूल आभी जहाँ सच्चा प्रेम है, वहाँ सहन-मोहता, मज्जा अकरी ही होती है । जहाँ प्रेम है वहाँ कष्ट सहन का पार हो नहीं । पर यह कष्ट सहन तो मनुष्य के लिये प्रामाण्य की वस्तु होता है । वहाँ मनुष्य बनिय का तरह यह गिर कर नहीं बता सकता कि जो, मैंने तुम्हारा लिय रह किया, यह दिया वह सदा । जिस मनुष्य की जमान पर यह आ गया तो समझना चाहिये कि उसने दुःखधर्म का इहस्प नहीं समझा ।

प्रत्येक घर में विचार स्वातन्त्र्य, तो होना ही चाहिये । सिद्धांतनिष्ठ का लिये भी इसी धर्मो घर में मत-बद्ध होता रहता है । और यह कष्टही बीज है । पर इसका कारण परिवार में कटुता माना का कोई कारण नहीं है । मैंने धर्मो तक ऐसा परिवार नहीं देखा जिसमें सास बड़े के बाव लीडन को लुप्त हो रहे हो । जिसमें सिद्धांत समझ की उसका मजबूती के साथ पावन करने की सुझि होती है, उस पर यह भी विवेक पैदा हो जायता है कि दूसरे के साथ सास कर अपने बड़े बूढ़ों के साथ जहाँ इन बातों का सम्बन्ध आता है वहाँ पर अपने आचार में किन्ना और कहाँ तक समझौता किता जा सकता है ।

मुनिनार्थ स्मरण रखते कि लड़-इया, कटुतायें सिद्धांत के कारण नहीं, छोटी-मोटी, खान-पान की, पहनने, पीने की, विषयक तुच्छ बातों पर और साँसकर बाणों के प्रसव से पैदा होता है । उनमें अग्रत वे चतुर्णा म, मज्जा म, सर-रलना म काम लेंना तो सदासिक्त मतभेद, नयेन और पुरानेन की खाली होन पर भी सास यह क थीय आभारों प्रेम पैदा हो सकता है । बहुतों यह देख कि अग्रत ५-५ 'सास के अभ्यास के कारण उनकी खियाँ, आचार-विचार मजबूत हो गय है तो अपने मुक्तने क सर-राल कई मुने अधिक मजबूत होत हैं । उनमें लिये तो अपने आचार-विचार में परिवर्तन करना, सविशुद्ध शिक्षा और भी कठिन है । इसी लिये अहिंसा को राजमार्ग बताया है । इस रास्ते पर चलन से सारी

## लड़कियों की दो समस्यायें

(ले०—भीयुत कल्याणसिंह वैद्य, इन्दौर)

### (१) क्या शिक्षा दी जाय ?

इस प्रश्न में कल्पने में एक उ वि-मायों को परधानी में ढाल रखा रहता है । लड़कों की, शिक्षा का दो तजर्वां रहे साहित्य द्वारा । प्रेजु-एट बन कर भी कुछ न बन, किसी काम के साबित न हुए और उसके गलत रह सिद्ध हुए । तब इसी शिक्षा 'वे कमाकाज लड़कियों' पर लखना कहाँ को बुझिमाना है ?

जोवन का मूलतत्त्व कार्य परिश्रम है । परन्तु वर्तमान काव का रिजिग युवक शारीरिक परिश्रम व पर क कामकाज से जी उतरता है, बले केरुण क लिखाक समझता है । यहाँ हाल सर्वमान काव की पड़ी-लिखी लड़कियों को है, व सिवाय उपयोगी पवन क और कोई काम करना नहीं चाहती । हर एक बालाव सिगा, उपयोग पदमा ओर प्राराम बल यहाँ काम है । अगर, इस काम म गृह-स्थापन या मनुष्य समस्या नहीं चल सकता । लड़कियों का क्षेत्र घर है । वहाँ का प्रयुक्त-म-प्रयुक्त प्राराम देव, बालिक स्वामी तुल्य सुखद बनाया वह उनका उद्देश्य होना चाहिये । उन्हें बच्चे पैदा करन है, उनका परवरण करनी है, उन्हें वाय्य बनाता है, यह काम कम जिम्मेदारी का नहीं है । अगर व बच्चों को राज्य बना सकें, तभी देश, जति और समाज का उदार होगा । एक भी वाय्य बच्चा देश के उदान के लिये भारी होता है, पुनः यदि सब बच्चे वाय्य नकलें ता उय और जति क उदान में स्पेष्ट हो गी नहीं हो सकता । ऐं प्रत्येक क विषयों की उचित शिक्षा न पाना और अनावश्यक उल्लङ्घन बात पढ़ते रहना वहाँ को बुझिमाना है ? जो लोग लड़कियाँ का उनक उचित ढेव म डाल कर, हय-उपर भरका रहे हैं, अग्रा समस्या में वे समाज की भारी हानिकार रहे हैं । पर कम विनमरनी बीज हगित नहीं है, जा लोग इस क निर कुट नग करना चाहत हैं पर हय-उपर उगना चाहत है—इसाल करन है ।

कठिनायाँ हल होजाती हैं । मज्जा, विवेक, अयोध प्रेम, नहिंयुना मनु-राल काव सिने म्हायन युव के अनक पहलू हैं । जिसने इस महाभाग के साथ लिया वह सबको अपने वय में कर लेता है ।

"हजारों काम नये के हैं, दान 'कर के लिखे । जो लोग कुछ नहीं करते, कमास करते हैं ।

अगर कुछ लुटे विभाग को लड़-किर्वा गृहस्थाधर्म में न आये और हान विधान सम्बन्धी या स्त्रियों की उन्नति या समाज की उचित संरक्षणी दूसरे उन्नत कार्य में लगे' ता कुछ हज' नहीं उनके लिये क्षेत्र खुला रहे वे कपर काम कर' यथपि मनुमहा-राज ता बहुत उच्च केति की शारी-रिक और विमारी शक्ति रहन वाले की-युक्तों का ही गृहस्थाधर्म में आने की सलाह रहे है—

'स सार्थः प्रवर्तन, सम्यक्सय मिच्छता । सुखं वे हेतुना लिये, वाङ्मार्गं बुद्धिमयिः । (२)

### विवाह

लिखी पड़ी लड़कियों के विवाह की समस्या विफट हो उठी है, ऐसी लड़कियाँ क अधिमावर्णों को बड़ा प्रशान उन्मता हैं । क्लिष्ट-पट लड़-के का रत बच्चा है, उनक माँ-बाव बहुत उगया नाम मगने को हैं, जिन घरानों और विचारदरिनों में पढ़ते बड़ेज पर बातचत करने का बार प्रश्न ही न था, उनमें भी ठहरीनी होने लगी है । बीमारी नष्ट होने की खयाल नवेनने लुभों में पुल रही है । पढ़ते कायस्थ, कनी-जिया माला, राजपूत, बगाली और बिहारी य ही लोग बरमान थे । अब देखने में कुछ स्थित समाज विवाह में लेन-देन उदारीने लागी है । धनो विवाह न लोगों का पवित्र कर दिया है, इस वक्त कमाने पैर की प्रमलकारी है, इस न और सब का पाठो छोड़ दिया है । हर एक मडे लुर काम में सब में भागो यही खड़ा विचारों देता है । यथपि ऐसे लिखे लड़के की वर्गमान काव को दृश पकड़ी नहीं है । कहीं नौकरी और रेजिमातर उनको नहीं मिल रहा, बकौल कष्टकर—

"कालिना म मदा आ रही, है पास पास की । और नौकरी से आ रही, है । दूर दूर की । परन्तु विवाह के बाजार में उन के करारे दाम उठ रहे हैं । इसलिये फीन न पाव्या उठार । परन्तु : ऐसे लिखी कबक ?

'वर क लिख' की जगह प्रसवी पाठ 'उरकत में' पैदा है ।

## विधवाओं की चिन्ता

(ले०—श्यामल सम्प्रदाया कला)

विदार के बाद-कोटा भूवाक प्रलय और पेशावर अमिकराह के संसार व्यात दुःख में खमस देख को बनेक चिन्ताओं से प्राकलन कर दिया है, जहाँ पर अस्वच्छन्द-वि-यो' के दुःख इतीकण, वायवा की निरकसा अंगविहारी और वृद्ध की सुश्रूषा और विपत्ति जग्न प्रभाव बच्चों के भरल पोषक और शिक्षा प्रादि मानवीजन प्रमेह विचार-वीय प्रमन जाति को किता सागर में डुबा रहे हैं वहाँ पर विधवाओं का भी एक बड़ा भारी विचारवीय प्रमन है । जो विचारकों क रक को बाव भोस कर पी रहा है । शरणीय दृष्ट अन्धान युवक प्रभाव बच निरमरह सदा से प्रमन बलन पान रहे हैं । पाते अरण । हिन्दू जाति में इनक लिये प्रोत्सावता है । मारो मयाँहा सम्प्रदाय है । इस में दूरे विवाहस है । अनक स्थानों में सहायक मंडल कर केन्द्र निरत है । यह हरे और गौरव का चिह्न है । परन्तु अब क की स यह मान्य नहीं उठी कि इस प्रसव निरपत्तिनों' दुःख विचारकों के जीवन को हिल रहा सुखदाव बनाया जाय । उने वीयिष निमोषक साथन के विचार जाय । जहाँ पर हिन्दू जाति अपनी साम-शास्त्राक क कारण प्रनाओं की रक्षा संवर्षा दाय्य बहाली रही है । वहाँ पर उन अपनी निजि की रक्षा को रवान भी प्रवरय होना चाहिये । इस नारी यन को जिसक अक्षर अनेक निचिह्न दिखत हैं यदि समय पर न समझा गया तो लुटेर उन लू ले जायें और हिन्दू माना विवाह को जायगा । जहाँ पर उन क रक को रक्षा जायदा पायव का सुवूर कोना होमी चाहिये वहाँ इस हिन्दू जाति का लाक्षमी विराभाव क प्रति कर पाया युगो की पापमयीक सनवरी दधि भायो याम लगी रहती है । उन्हें बगलत २५ और बरपन करन की अनक चरखरों को जानी हैं । हिन्दू जाति के विचारों की संकल्पना में पर क विचारों को पुराने बार निरालास जान कर अनक हालियां उठाई हैं । कर एक रलमयी सुवुरवी कोजातिपुल कर के विधवाओं की दुःख बरमान बनाने में सहायता दा है ।

हिन्दू जाति की उकलरें हुई अण्य-राज्यीयविभा विवाशाओं न प्रमने चमरे देश और समाज को अधिभूति को संवेद राखी है । पावर्षक और (शेष पृष्ठ ३० पर)

## आधुनिक हिन्दी के तीन युग

### हरिश्चन्द्र युग, द्विवेदी युग और दुम्हारे युग

वर्तमान हिन्दी के जन्म और वर्णन की कथा बताते हुए जी बलुरसेन शास्त्री ने एक विस्तृत लेख छपाने में लिखा है। इस लेख के कुछ अंश यहाँ देते हैं। बल्लुसेनशास्त्री और श्री विद्यालाल झाँसी की सेवाओं का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

इस समय भारतमें हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ। बाबुराज ही में उनके माता पिता का स्वर्गवास होजाने में १६ वर्ष की अवस्था ही में उनकी शिक्षा समाप्त होगई। इसके बाद उन्होंने सतुलुस जगदीश की यात्रा की। इस यात्रा में इनका परिचय श्रीमान् काविराम से हुआ। उस समय स्वर ही चुका था, और अरको राज्य अज कर बैठ गया था। अग रेडी शिक्षा का प्रयास तभी से बगल कर पड़ रहा था। इस समय वह बड़े प्रभावित हुए। इन्होंने बगला गीतकी को बाल्य में पढ़ा, और एक काल, 'विद्यालाल' का अनुवाद भी किया। वही इनकी प्रथम रचना थी। इसके बाद इन्होंने बीसवर्षा स्कूल स्थापित किया, और बीस की कालिका स्वस्थ स्थिति थी। यह शब्दारा सज्जनसिंह के निमंत्रण पर मेवाड़ की गये। इन्होंने कुल ३६ वर्ष की आयु में सित १८ वर्ष काविराम की स्था कर सके। इसी बीच में इन्होंने हिन्दी-भाषा को अपना कर लिया और उसमें एक नवीन युग का प्रारम्भ कर दिया। हिन्दी-भाषा में देश-काल के उपयुक्त भाष और विचार उत्पन्न किए। उन्होंने कुछ हिन्दी का पत्र लिखा और उसे एक पत्र में ढाला। यह एक उत्कृष्ट देश-पत्रि यो और उनकी रचनाओं में देश के मोत मोत हैं। १८९१ पद कर देश के साक्षी युवकों में देश प्रेम को भावना को प्रभावित। देश-पत्र के उनके रचना मोतमदी, भारत दुर्देश और अन्वरे नगरा में कुट-कुट कर पर हैं।

भाष, भाषा और शैली की दृष्टि से हरिश्चन्द्र की कविता आदर्श कही जा सकती है। नृगरा, देश-पत्रिक और देश, इनका वर्णन ऐसा नैसर्गिक, कल्पना और प्रसन्नपूर्ण हुआ है कि देखते ही बनता है। हास्य-रस का भी बड़ा प्रयोग था, कर्माक्ष कर दिया है।

हरिश्चन्द्र ने प्रथम हिन्दी गद्य की शैली में बहुत कृमिलता दी। कविता कविता, भाषाही और शैली में ही थी। कभी कभी शब्द दुर्लभ शैली की कही जाती थी। पर भाष

ने उन्हें विविध रास-रागनिर्माण में विमाजित कर दिया। कई पद उर्ध्व की बहरी में भी लिखे। उन्होंने कलकत्ता के प्रसूरीन की कविता नहीं लिखा। न्यायक विचारों का उसमें प्रकीर्णक किया। फिर भी इनकी कविता कलकत्ता से परिपुष्प ही रही।

यद्यपि इनकी कविता की भाषा प्रसन्नभाषा थी परन्तु इन्होंने भारत की अन्य प्रतीय भाषाओं का भी काफी उपयोग किया। इनकी रचनाओं में तैजा में पसद की जान लगी और इनका प्रचार बढ़ गया। इन्होंने प्रचलित शब्दों को कविता से निकाल दिया, और शब्दों को तोरना भी बढ़ कर दिया जैसा तत्कालीन कवि किया करते थे। इससे इनकी भाषा में नवीन जति उत्पन्न हो गई।

हरिश्चन्द्र ने कविता को पुराने सभी चरणों से युक्त किया और इनका प्रचार भी बढ़ा दिया। नाटकों की तो उन्होंने हिन्दी में प्रथम बार ही रचना की। इस प्रकार यह महासंस्कृत भाषा अन्य काल में ही हिन्दी की नवीन युग प्रवर्तन करके परकोकमत हुई।

भारतमें हरिश्चन्द्र की हिन्दी की आग बढ़ानेवाले में १० बद्रीनारायण जोषी, प्रभाव, १० कशबराम भट्ट १० राधाचरण गोस्वामी १० काविरामभाषा भाषा और १० मोहनलाल विष्णुलाल पट्टया मुख्य रहे। १० कशबरामजी ने विचार में हिन्दी को लुप्त प्रवर्धित किया। १० राधाचरणजी ने समाज सुधार की भी चेष्टा की। १० काविरामभाषा 'यौस संस्कृत के भाग पदित थे। यह वह अच्छे वक्ता भी थे। इन्होंने विहारी पर एक विस्तृत व्याख्या लिखी। कई नाटक भी लिखे। मोहनलाल विष्णुलाल पट्टया इतिहास के अच्छे जानकार थे। उन्होंने हिन्दी को लुप्त बढ़ाया।

१० भीमसेन शर्मा स्वामी द्वा-नन्द सरस्वती के मित्र थे। इन्होंने प्रसन्न भाषा में अनेक उत्कृष्ट लिखी। इनकी हिन्दी काविराम से अपना एक स्थान रखती थी। संस्कृत के आग प्रभावपूर्ण पदित थे।

इस प्रकार हरिश्चन्द्र के युग में इस मंडली ने हिन्दी को लुप्त प्रति प्रोत्सा दी भी प्रारम्भ कर दी।

धीरे-धीरे इनक लेखक उत्पन्न हुए, और यों का जन्म हुआ। बाबु कार्तिकप्रसाद कवी ने कलकत्ते से 'हिन्दी-दीप्ति' नामक एक पत्र निकाला। इसके बाद १० नुरा प्रसाद मिश्र, १० जोरालाल मिश्र, १० सदानन्द मिश्र, बाबु आभाय कवी ने भारतमित्र कमेटी बनाई और भारतमित्र-पत्र प्रकाशित करना शुरु कर दिया। उसका शीर्ष भी प्रथम यह। उन्होंने विमोहादी में मित्रमित्रास पत्र निकाला। कुछ प्राय भी पत्र पत्र काग निकली। अन्त में कालाकाक नरारा रायगोपाययय मिश्र के उद्योग से हिन्दुस्तान नामक पत्र अमेरिका हिन्दी में प्रकाशित हुआ जिस का सम्पादन १० प्रमनमोहन-मोक्षय १० प्रभावगोपाययय मिश्र बाबु बाबुसुन्दर-गुल्ट प्राडि स न-किया। इसी समय बाबु राम कृष्ण वर्मा ने काली न भारत जीवन पत्र निकाला।

अब आ नवीन लेखक समुदाय उत्पन्न हो गया था बसने बग भाषा से उपयोगशील की प्रसार करने शुरु कर दी। बाबु गदाधरसिंह १० राधाचरण बाबु राधाचरणदास प्राडि न अनेक उपयोगशील का अनुवाद किया। इन रचनाओं में कुछ वग-परिभाषाएं उर्ध्व की यों हिन्दी में आ गई। १० महावीरसिंह भट्ट न दो मौलिक उपयोगशील भी लिखे।

#### द्विवेदी युग

भारतमें हरिश्चन्द्र के साथ जिन लेखक मयलन की उत्पन्न हुआ उसन प्रयो के अलावा मिश्र मिश्र विषयों पर लिख-भी लिखे जिनम १० गांधी-नारायण मिश्र तथा १० प्राधप्रभास मिश्र मुख्य रहे। इस प्रकार भारतमें के बाद हिन्दी सा हिन्दी का उत्पन्न-काल तो चल निकला, पर उस को प्रगति प्रमी थीमी थी। प्रभावलो की भाषा उर्ध्व थी। अ प्रसी स्कूलों में अ प्रमी व उर्ध्व को तालीमी भी दी जाती थी। यद्यपि प्रभावगोपाययय मिश्र हिन्दी हिंदु हिन्दुस्तानी की तान लेखन भी रहते थे। फिर भी हिन्दी पुस्तक प्रकाशन बढ़ता न था, पाठक ये ही नहीं। मरकादी वृत्तरों में नागरी का प्रवेश नहीं था।

अन्त में बाबु श्यामसुन्दरदास १० राधाचरणजी के साथ और डाकुर शिवकुमारसिंह ने नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की। इनके सहायक हुए, रायचन्द्र १० लक्ष्मी

शकर मिश्र १०००, बा० रामदास सिंह 'काविरामसिंह' के स्वामी बा० रामकृष्ण वर्मा बा० गदाधरसिंह और बा० कानिकप्रसाद तथा प्राडि। इस सभा के दो उद्देश्य हुए—नागरी प्रचारों का प्रचार और हिन्दी सा हिन्दी की समृद्धि। इस सभा ने नागरी क लिपि बहुत उपयोग किया। कई बार उद्देश्य वाचसराय में मिखा। अन्त में कवहरिया प्रहिनी जारी हो गई। इस न इस सभा का बड़ा प्रणिष्ठा हुई। पाठ सभा ने प्रथम पराशी भी निकाला और फिर बहुत से प्रत्य भी। यह सभी हिन्दी को दूसरे युग में ल आई।

इस युग के कविताका प्रभाव महावीरसिंह की विवेकी है। इन्होंने दो महकाव्य किए एक यह कि प्रतिष्ठित विद्वानों का हिन्दी मया में तनय था दूसर हिन्दी का भाषा याक्षर्य श-योजना को सुसंगठित किया। हिन्दी भाषा को यह महान सम्पाद हिन्दी के सत्तार का जीवन मायाका की नृकर क शोभ्य बना न का।

यह वह समय था जब वर्माल-उपन्यासों में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों के प्रयोगों को जानकर लोग किचका। कल्या हिन्दी लिखन लोग थे। परन्तु केवल शब्दों ही में कोई भाषा नहीं बनती भाष में वाक्च-मिखा की सत्ता सुधारित था कारण क नियमों को पाबन्धिया प्राडि सत्ता बना का आवश्यकता है। १० महावीरसिंह हिन्दी न 'हृद' ग्राह्य को बहुत शुरु कर दिया। उ दाते पब सा लेखक की उनकी भाषा तथा याक्षर्य-बन्धनों गलतिश को सुधार सुधार कर ला-बनान किया। कई लेखक हिन्दी ना 'अड गय पर हिन्दी जी हन्' शान जीन न था। देखता 'अब' से सत्ता की भाषा मायो स्तान करके निकलने लगी और उस का उद्देश्य पर सब कई मोहित हो गय

या ही याक्षर्य की ओर द्विवेदी जान लोगो का धन का कविता कि 'यो ही सामयिक प्रा-य' याक्षर्य की बचाव कर निकला। लुप्त खडन मयलन का शोर मचा १० 'गे' नारायणजी ने विमर्श विचार लिखा जिसमें 'नहीं हिन्दी विमर्शित को शुरु विमर्शिता बना कर लोगो को उर्ध्व मिखा कर लिखन का खराद ही।

शाय ही भाषा का शैली क भी प्रवेश रूप हो गय। ऐम लुप्त उपयोग हो गय 'जिन की शैली अपनी क गय। वाच-विचार

भीरु विराम घट गये थे। पारश्वत्य भाषाओं के पश्चिमों में हिंदी में अधिस्थान प्रवासी का भ्रष्टा प्रसार किया। साहित्य का अर्थ-मार्गों की वृद्धि तथा।

यह भाषा के उपयोगों के धनु-क के बाद ही मौलिक उपयोग लिख गये। इसी समय एक भद्रानुप प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा हुए। यह थे बा. नरसीनन्दनजी, जिनके तिलस्मी उपयोग 'वद्रकारिता' और 'वद्रकारिता-संतति' की एक बार प्रथम मग गईं। इन उपयोगों में लक्ष्मी हिंदी-भाषा-भाषा का पढ़ा किया। इनके पढ़ने पर ऐसे ही उपयोग पढ़ने की लक्ष्मी की प्रवृत्ति बनी रही, तब अन्य लेखकों की भी वेम ही उपयोग लिख। इनमें बा. हरिकृष्ण जी जोहर सर्व प्रमुख थे।

बा. देशकानन्दन की भाषा साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं, परन्तु जिस पुस्तक में हिंदी के जा-को पाठक पैदा किए, वह सच्ची भाषा की पुस्तक कहला सकती है। उपयोगों का डेर लगाने वाले नूतन व्यक्ति पं० कशरीराला जी गो-रक्षणी थे। उन्होंने पं० के लगभग उपयोग लिखे। इन के उपयोगों को साहित्य की दृष्टि से भाषा जा सकना है, परन्तु उन में समाज की भाषाओं का उल्लेख एक देव पड़ता है। यद्यपि इनका प्रभाव नव-युवकों पर कदा नही पड़ा, फिर भी उन्होंने भाषा के साथ प्रयत्न किया। कुछ दिन उन्होंने उर्दू पर लिखने की चेष्टा की। उनके उपयोगों में बहुत स्थिति बहुत कम थी, क्यों-कि वे बहुधा काल्पनिक थे। बा. गोपालराम गहलरजी ने प्रथम बंगाली उपयोगों का अनुवाद किया, पीछे अपनी भाषा भाषा में मौलिक उपयोगों की दिए। उनकी भाषा में सुहा-रि बहुत ही जानकार थे। पं० कज्ज-राम नेहता और पं० अयोध्यासिंह जगध्याय ने भी कुछ उपयोग लिखे।

इस युग में निम्नलिखित लिख गये। इन निम्नियों में पं० महावीर-प्रसाद जी ने जान डाला था। जब उन्होंने सरस्वती का संपादन-कार किया, तो वह लिखने में जुट गये। उन्होंने सरस्वती-सम्पादन के क्रमा-ला छोटे-बड़े अनक लेख और कवि-तार्य भी लिखे। हिंदवी के लेखों में बात को बारम्बार समझाने की चेष्टा की गई है। एक एक बात हेर-हेर कर कई बार कही गयी है। हिंदवी के दो द्वांजिन हाथ स्वयं एक प्रतिभाशाली लेखक उपरुप हुए। वह पं० माधवप्रसाद मिश्र थे।

बा. बलमुकुन्द गुप्त भी तेजवान कवयित्री के पदों रहे। लेख है, वह बहुत ही कम भाषा में रचनेवालों हो गये। इन के बाद पं० जगन्नाथ-प्रसाद जी वसुदेव जी हास्य-रस के अच्छे लेखक हुए। बा. गुणाधरगय-यम, भी इस निम्न-लेखक रहे।

पं० महावीरप्रसाद जी हिंदवी न जो दूसरी नवीनता हिंदी-भाषा में पैदा की, वह समालोचना है। यह पहले गुप्त-शोध दर्शन के रूप में पैदा हुई। पुस्तकों की समालोचना सर्व-प्रथम उपाध्याय पं० बदनोमारायण चौधरी ने अपनी 'आनन्दकादंबरी' में शुरू की। उन्होंने लाभा धर्मिनास-दास के नाटक 'संगीता-स्यंवरण' की खूब विस्तृत और कड़ी समा-लोचना की। परन्तु पं० महावीर-प्रसाद जी ने सब में प्रथम कलि-दास की प्रलोचना में एक युत्तक की छाप डाली। इसमें शक्तिदास की रचनाओं की विस्तृत भवुवाद् के दोष, जो लक्ष्मी सोतामन-रुत थे, खूब स्पष्ट विलक्षण गये थे। इसके बाद उन्होंने संस्कृत भाषा की लरी समालोचना की। जब उनकी 'कलि-दास की निर्दोषता' छपी, तो खूब प्रशंसा मिली। हिन्दी की नवीन पुस्तकों की तो वह सदैव लरी समालोचना करते ही रहे। इन सब कार्यों में हिंदी भाषा बहुत सुधरी। यदि हिंदवी को सुन्दरी में काम न लेना, तो अत्यन्त प्रयत्न, अकारण-विकट, उर्दू-प्राय भाषा में अगमिमत किताबों का डेर लग जाता।

पं० पद्मसिंहजी शर्मा की बिहारी सवसई में प्रकाश में आने पर नूतन-प्राप्त समालोचना पीछे की ओर ब-तरह पड़ गयी।

कविता के क्षेत्र में भी हिंदवीजी न एक प्रणाली को जन्म दिया। गय पर उन्होंने जिस भाँति अपनी सिकाँ जमाया, उसी भाँति पय पर भी। भाषा में सफाई तो वह प्रथम ही ला चुके थे। उन्होंने प्रिया का बहुत की नवीन कवि बनाकर उनमें लक्ष्मी बोली की कविता कराई। उन कविताओं का वह बड़े प्रयत्न में सजोकर कर दिया करते थे। धीरे-२ सरस्वती की कविताओं में एक नूतन जागम दिखाई देना लगा। सिरै यही नहीं कि उन्होंने केवल भाषा का ही परिवर्तन किया, बरिक्त मराठी और संस्कृत-पर्यो कं दंग पर कविता भी की करे कराई। उन पर हमलेबह के प्रसिद्ध कवि बईसवय का भी कामी प्रभाव पड़ा। मोर, उन्होंने गय की भाँति ही पय की भी पद-विन्यास किया। अन्य लोगभाषा की भाषा हिंदी में कविता का प्रभाव वह बना। हिंदवी की स्पष्ट क तीन टिप्प-बहुत भारी कवि निकले-बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पं० रामचरित

उपाध्याय और पं० लोचन प्रसाद पंडित। बाबू मैथिलीशरण गुप्त एक शैली में खूब उभर दुर। पं० राम-चरित उपाध्याय संस्कृत के अच्छे पंडित हैं। उनकी भाषा में सफाई तो है ही, बान्धवगय भी है। इनके लिखा बहुत कवि उपरुप हुए। उनमें कुछ पैन भी हैं, जो हिंदवी की प्रभाव में उपरुप हैं। स्वर्गीय पं० मोराराम जी 'शंकर' शर्मा, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, गय देवी-प्रसाद जी 'दुर्वा', पं० गयप्रसाद जी शुक्ल 'सनेहो', पं० सत्यनारायण जो कविरत्न, लाभा अयनाशन जो, पं० रामचरित निवासी और बिरोना हरिकी सुप्रसिद्ध हैं।

हिंदवीजी ने २०-२५ वर्ष छो-परिश्रम किया, और हिंदी-नया-य का पुर्ण रूप में संगठित किया। परन्तु साहित्य और कला को प्र-यत्नों में उनकी कौशल की कृति, रखकी जा सकती है, यह प्रथम अग्रसर किया जाता है। इसका उत्तर है, उनकी कृति तो उनका भाषा संस्कार ही है। आधुनिक गय-पय यद्यपि और भी ऊँचा उड रहा है, फिर भी अने हिंदवीजी के प्रयास मार्ग ने बहुत भागे बढ़या है।

इस तत्काकीन नवयुवक यद्यपि विद्वान् नहीं, तो बहुदर्शी तथा विद्व-अग्रय होगये थे। कावेज की सहा-यता में उनके विचारों में प्रौढ़ता का गई थी, और उर्दू की उनकी रचनाओं को हिंदवीजी को भाषा का संस्कार प्राप्त हुआ, वे प्रकुलित हो उठीं।

सरस्वती विनय विषयक पत्रिका थी। उसमें सिरै हिंदवीजी की परि-कृत भाषा हो म थी, उनका सुभाष-भी था। वह स्पष्ट, स्पष्ट भाषा में लोक-रस को वस्तुपू देन लगी। उसमें हिंदवीजी का प्रबल सिद्धांत-बात ली गयी, उन्होंने अपने लेख-कृति लिखे थे। संस्कृत-साहित्य का परिचय, प्राचीन अनुसंधान, इति-हास, ओजस-चरित, यत्ना-विश्वर-ज, नवीन अनुपमा का परिचय और हिंदी-प्रचार, यह सब सरस्वती का भाग था। इसके सिवा प्रचलित साहित्य और साहित्यिक पुस्तकों पर सरस्वती में टिप्पणियाँ रहती थी। इन सब चीजों से सरस्वती प्रत्येक मास मोत-मोत होकर निकलती थी, और उसे पढ़ कर पाठकों को एक नवीन भाव और विविध वस्तुओं का परिचय मिलता था। उसके द्वारा दूसरी भाषा न जानने वाले भी बहु-दर्शी बनने जा रहे थे। इस प्रकार सरस्वती विद्व पाठकों के लिए बुद्धि-विवेचना और विस्तृत-बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पं० रामचरित

हिने हिंदवीजी को विविध भाषाओं का अर्थ करके उनका निरर्थक लेख और अमीय प्रयत्न करना पड़ता था।

इसमें संदेह नहीं कि सरस्वती विचार की उपेक्षा प्रभाव को पत्रिका थी, पर यथासंभव हिंदवीजी ने उसे अपने ध्येयन विचार को पत्रिका करने नहीं बनाया। इसके द्वारा प्रोचेंगेंड का नहीं किया, यद्यपि एक परिधि बना ला थी, जहाँ प्रि-हरी लेखकों को प्रवेश न था।

### दुसरे-युग

हिंदवी-युग में जो प्रौढ़ कला-कार हिंदी में अग्रय हुए, उनका स्थान साधारण नहीं। निम्न और विवेचनात्मक प्रौढ़ विचारों का प्रदर्शन करने में निमग्न, पुरातन में पं० दीनोशंकर दीनारंज्यो बोझा, काव्य-कला में शंकर जी, हरिक्री-ज, रत्नाकर जी, लाभा अयनाशन जी आदि समालोचकों में पं० पुराणसिंह जी शर्मा तथा प्रमथ-विचार में बाबू श्याम चंद्रशेखर, पं० रामचंद्र शुक्ल आदि हैं। एहीने प्रथम युवक स्वाम निर्मात किया है। इन महा-जनों को हिंदी-नेवा छासावर-तयों प्रतीत है। हिंदवी-युग को आप ता उन पर है, परन्तु उनका रचनाएं हिंदवीजी के प्रभाव में मुक्त स्वतंत्र एक अगमन प्रतिफल विधे हैं।

हिंदी-युग सब समानतः आ गया है। इस युग के जो उपराधिकारी पैदा हुए हैं, उनको विचार-बिहारी भागे बह गई है। हिंदी में एक नवीन लहर उपरुप हुई है। हिंदवीजी के उन लोगों के हान की वृद्धि के लिखे, जो हिन्दी के लिखा अन्य भाषाएँ नहीं जानते थे, हिन्दी में उन्हें अन्य भाषाओं के उपयोगी तथा प्रौढ़ विषय पढ़ने को दित थे। एक अग्रम न हिंदवी युग को अनुवाद का युग भी कह सकते हैं। यदि हिंदवी-युग के साहित्य को ध्यान से देखा जाए, तो वह विविध-व्यापक विषयों के अनुवादों का युग है। हिंदवीजी को सरस्वती को सम्पादकीय टिप्प-विधा तक में अन्य भाषाओं के अनु-वाद की छाप है। परन्तु सब जो मौलिकता को लहर उठी है, उसन हिंदी-संसार को सुख कर दिया है। इस समय हिन्दी का प्रभाव मुक्त चारोंपों में बह निकला है। उसके अनक मुख को गये हैं। उसमें वेम है, सफाई है और उजाला है। इस युग में उपयोग-लेख में अनेक श्रेष्ठ औपचारिक उल्लेख हैं। सरल, सुसंस्कृत और मोह-पुर्ण (सिप पृष्ठ २० पर)

## कस्तिनों की मजदूरी का प्रश्न

(७०—श्री राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद)

महात्मा गांधी जी ने जाड़ी खम्बड़ी काम करनेवालों के बीच खसकसी पैदा कर दी है। उसका कहना है कि हम जो जाड़ी खराबते हैं, वह हमने कम दाम पर लेते हैं कि सुत कालनवालों कस्तिन को बहुत कम मजदूरी मिलनी है। बिसाब लगाकर देखा गया है कि जो कस्तिन सात आठ घण्टे प्रति दिन सुत काँतली होती, उसको भी चार पांच पैस से अधिक नहीं मिलते होंगे—जो बहुत मोटा सुत कातनी होगी, उसको इसमें भी कम हो मिलना होगा। दूसरी ओर जाड़ी खरीदनेवाले यह कहते हैं कि इस पर भी जाड़ी देखी भयवा बिस्त्री मिल का बन कपड़े से महंगी बकनी है। बसालस का प्रयत्न यह रहा है कि जहाँ तक हो सके जाड़ी को भरती बना कर मिल का कपड़े में उसका मुखाका कराया जाए और मिष्ठाने बार-बार-बार बर्षों का फलबुजत परिधम और उद्योग का यह काम बुरा है कि जाड़ी बहुत सुन्दर टिकाऊ और कुछ सस्ती हो गई होगी है। जाड़ी की जाती थी कि इस प्रकार से कुछ दिनों बाद हम और भी सस्ते दाम पर बेचना सम्भव हो सकेगा। पर महात्मा जी की योग्यता के कारण सारे जाड़ी-समाज में वाद विवाद उठ खड़ा हो गया है।

जाड़ी प्रकार का उद्देश्य है देश को कपड़ के मामले में स्वावलम्बी बनाना। यह वह देश जो प्रकाश से सिद्ध है सफा है भारत निवासी प्रत्येक मनुष्य अपने जिय जाड़ी कपड़ों के जिये सुत खसक अपने हाथों कात ल और वह जिये स्वयं न बुन सक तो गाँव का जुड़ावे या रानी उस बुन हैं। हम बहुत कम सुत काँतली हो गये हैं, नहीं तो यह काम कुछ अवश्य नहीं है। एक पन्ने में बार ली गज सुत कात लेना असोस है। यदि हम प्रतिदिन एक घण्टा समय इस काम में निमित्त रूप से लगा दें, तो वर्ष में ५० गज कपड़े के जिये सुत बन जाय। भारत वर्ष में प्रायः प्रति मनुष्य १५ गज का कस्तिन काम। वर्ष भर में खर्च होता है, जिस में बर्षों का तोसिखाने के बक्क के बक्क भर बर और गरीबों की लोरीटिया, बर्षों की ५०-२० गज की पतंगियाँ और बच्चों को छुपान के जिये कपड़ों के कुछेक, सभी का बिसाब जो कर पीछल बिकाओं

गया है। विचार में तो काम सीधा और आसानी जान पड़ता है, क्योंकि एक पन्ना समय प्रतिदिन सभी लोग सुली में निकाल सकते हैं। पर यदि प्रायः की अवस्था पर विचार किया जाय तो इन-गिन एम लोग मिलग जिन्होंने इस जिये का पालन किया हो और वस्त्र के बार जो अपने हा स्वावलम्बी बना चुक हा। इसलिये यदि कहा जाय कि यह काम सहज है तो जो बहुत कहते हैं ना इस में कोई प्रयत्न नहीं होगी। जहाँ समय न रहे र्णानों पर इस का प्रयत्न किया है कि स्थान विशेष की सारा जनता इस प्रकार वस्त्र स्वावलम्बी हो जाय और इस में उस सफलता भी मिली है यद्यपि यह सफलता बहुत परिधम और समय का बाध मिता है और राजस्व अभी निर्धियाई नहीं कहा जा सकता। इसी सफलता के आधार पर जहाँ सब कुछ विनो से इस व्यव पर कहते हैं कि जो दन लगा है और महात्मा जी न भी इस प्रयत्न को और विस्तार करने का परामर्श दिया है। हम जाड़ी के सम्बन्ध में इसकी बाधा कम प्रतिक्रिया सुनते जायंग। कर्वाँकानों भी न भी समय लिया है कि इन प्रयत्नों में पूरी सफलता न मिलन का बहुत बड़ा कारण उन को म्यता है और प्रथम इस बात की कोशिश है कि प्रत्येक जाड़ी कार्य कहीं जहाँ बाने न लकर महीन में महीन सुत कातन तक के सभी मर्म कहल सिद्धांत रूप से ही नहीं प्रयत्न होंगे न काम करके सम्भव ठे और जनता को इस शोध का ज्ञान देने में पूरी योग्यता प्राप्त कर ल। जिस हद तक हम इस ज्ञान को पगलन बाधें सकेंगे, उन्हीं हद तक हमारी सफलता होगी और जहाँ जहाँ इस ज्ञान का साथ काम की गया है सफलता मिली भी है। यह कुछ जाड़ी-समाज का पहला और सर्वोत्तम प्रकार।

दूसरा प्रकार वह है जिसके द्वारा यह स्वयं जाड़ी नहीं बना सकते उनके जिये जाड़ी तैयार करा कर बाजार में मुँहिया करना और उस सस्ते में सस्ते दर्या में खरीदारी तक पहुँचाना, जिसमें वे उम ले सकें। बसालस प्राज्ञतक मनुष्य इसी पर और देता जाय है। यह आवश्यक भी है, क्योंकि यदि हम

प्रयत्न नहीं किया जाता और इनके विनो में अनुभव प्राप्त नहीं किया जाता, तो न तो जनता में जाड़ी के जिये वह भावना ही पैदा होगा जो प्रायः वर्तमान है और न सुन चर्चा का वह ज्ञान ही प्राप्त होगा जिसका वह पर स्वावलम्बी का पाठ पढ़ाने की हमें आवश्यकता होगी है। सस्ती जाड़ा बनान में हम इस हेतु प्रयत्न शीघ्र ये कि जो मिल का कपड़े से मुखाबिना कर उमर यो हम कुछ कह सक और जाड़ी को बाजार में बिकने योग्य बस्तु बना सकें। अभी तक हम इस प्रयत्न में पूरी तौर से सफल नहीं हुए हैं। पर इस ओर प्रगति बहुत दूर है और हमनी तो प्रत्यक्ष हम बता सकें हैं कि जहाँ द्वारा सुन्दर न सुन्दर, महीन से महान कपड़ हम बना सकत हैं। लागो न यह हो मान लिया है कि कपड़ा क-बूट्टा जान न करोडा गरीबी की जोबिका हाथ से निकल गयी है और इस पुनर्जातिल करके हमन बहुतों को अधिक नहीं तो एक डुकडा, रांटा पडुवान में सकलता पाया है। महात्माजी कहते हैं—एक दुसरा रोज काफो नहीं है। जिस तरह दूसरा काम करक लोग ये भर जाना काम सफन की आशा करते हैं उसी प्रकार जब जलाने वाला रूपा को मरयेड भोजन तो अवश्य मिल जाना चाहिये। और व तो यह चाहते हैं कि जो मजदूरी दूसर लोगो को मिलती है वननी इसमें भी मिलनी चाहिये। सात वर्ष इतना बड़ा म्य है कि इसमें मजदूरी भी सभी जगहों में एक ही नहीं मिलती और न हम यहाँ कह सकत है कि दूसरे सभी रोजगारों में मरयेड जान को मिल जाता है। कांस्तकारी न जो मजदूर काम करते हैं उनको मजदूरी इतनी कम है कि शायद एक आदमी अपना पेट पोना शायम किता प्रको भर लेता हो और साथ हा वह काम भी ऐसा नहीं जो जो वर्ष के प्रतिदिन उन मजदूरों को मिलता हो। इतन पर भी कांस्तकारी कुछ बहुत मुनाफ का काम नहीं है। यह तो मांस्तर का पाठ की पूरि स्थिति का एक फल है कि करोडा काम करने-वाला को पम्पर जाना जोतो शायम नहीं मिल सकना। सुन कातने वाली स्त्रियाँ अधिकार्जन ऐसी हैं जो वेत तो दूसरा काम करती हैं पर बचे हुये समय में सुन कांस्तकारी कुछ और पैसा कर लेती है पर जब पर गुजारा करने वाली स्त्रियों का सख्या अनुमाना कम हो जागी। ऐसी अवस्था में प्रथम प्रकार की

मजदूरी न सर्वे का मुनाफका हो मकना हम यह मा नह सकत कि यदि इस जाड़ी का जो और जब म्य १५ गज का जो मा चाल बनन है व न जायंग धार ना कुछ जाना प्रायः रनिन ना मिलन ना पायना न मिलना न न जायना इस म्यधि हमारा काशिंग यह धार होना चाहिय कि कस्तिनों का म्य प्रायः एक घण्टा हा सक मित्र पर हम का यह मानना का पड़ना कि उस का प्रति सांभन है और ज उस सामा का हम पार जायंगे त कस्तिनों का रोजगार फिर एक बार बन हा जायगा। बसालस क समय प्रायः वह जिन प्रयत्न महत्ता गी जा न उपस्थित कर दिया है जो उसके सभी कार्यकारी इस के इ करने में अपनी साराजुडि बोल के हा लगा रहे हैं। न विचार के अपने कुछ पुरान प्रयत्न से कह सकत हैं कि जहाँ सब क वस्त्र लका न, जि में उन सभी कार्यकारिना को वे मा शामिल है जो सुन खरीदने लकर कपडा बँवने तक, प्रोडर दिसा कितना रहन न कान है, कमी मु जायय कम है। इस समय जितन आदमी बिहार शाखा में का करन हैं उन में ५६ प्रतिशत २ या इस न कम मांस्तर का करन हैं और प्रायः २५ प्रतिश १० या इस न कम पात है। न नयी योजना में हम का बर्षी कार्यकर्ता लगावे पडेंगे, कनो उसका मुय्य धन वह होना प्रत्येक कस्तिनों के चला का दूध चाहिये और उनका व्यक्तित्व र खर रल कर प्रगति बढ़ाना चाहिये जिस में घण्ट में कम से कम ५००। ता प्रत्यक्ष व सुन कात सक। म कि त किये पूनी प्रकडा न चांदि और हसक जिये मुनाफ औरबा मो प्रकड और मुनाफ विधा ना प्रकडी होना चाहिये जका हमेशा डाक देना चाहिये उसका दखला बहुत रदना चाहिये जब कस्तिन इन जांको का धा त ह सोल जायेंगा सब इतनी राना नहीं रकनी पड़गी जो रम्य ये तो बहुत काम बहू पाय इसलिये खस कम होना प्रम्य है—हा सकना है कि वह नाय

इस सब विचार न स्पष्ट कि कस्तिनों की मजदूरी बढ़ान

# प्रांशों की प्राकृतिक

## चिकित्सा

### चर्म की निरुपयोगिता

(ड०—श्री डा० रघुवीरशरण ब्रजवासि)  
(२)

#### सूर्य प्रकाश से लाभ

सूर्य का प्रकाश आत्र जब सन्-मारवा की दृष्टि में उनकी आँखों को बिकारी बना देन वाला माला मान लिया है लोग अन्ध-धर कर्म में पड़ते हैं। हाथों से आँखों को ढक सकते हैं। झुला तो लगते की है पर आँख में कष्ट हुआ कि डाक्टर पास पहुँचते हैं। डाक्टर साहब नेत्रन चक्षमा लजवीन कर देते हैं पर जनका दर्द बढ़ता जाता है। वे 'ओ-ओ' सूर्य के प्रकाश से भागते, 'त्यों-त्यों' उनकी आँखें रागि होती जाती हैं। भारतवर्ष सुगहने काष्ठ का देश है। इस पर प्रयोगालाभन भारतकी जीवभण्ड रमियारी सि सिन बिकारी रहती है। व इस निष्ठाविनो को ललवाना यह पुरुष शक्तिशाली नभो वाला बनता रहती है। अत आर्यो 'आय शुच्य बरतन न भवो बोलन रहत'। लका क दृष्टि मल बनो। इति न मानुषी आँखों के सूर्य के क्षम को सहन करन क योग्य नाया है। ऐसक आदि का भवबहार प्राकृतिक है। प्रकृति के निकट

निवास फलकारी के क्षम में बढ़ता। इस क क्षिय हम को तैयार रहने' क्षिय क्यो कि यद्यपि यह तर्क क है कि चक्को उस समय में ही पोषा जाता है जो बर्बाद होना था तयापि उस समय में 'ओ उ उठाया जाता है उसके क्षिय कुछ ही रक्षम नो ब्रह्मर मिलना चाहिये। कलिनो को मानुष्य मा पर्वे कि पा रहा है। कलिन का काम सा लमका जाना चाहिय और ने जो सैल मिलन ह उन को खरात शीघ्र न क्षान कर काम का भन ने क रूप में समक। चाहिय। श्री बहन्म वाला को यह मांम लेता होग कि यदि लादा पक्षमन व है तो वह सुपतमें नहो मिल सक और उसक क्षिय मा कुछ पायका बखकना है। लारी क यकनाओ क्षम्य, उद्यम उ साह और बुद्धि नो पर वह निर्भर है कि व कही बलिय और पक्षन वाय दानो खुद रक सखी।

कदम उ ठाना पि नाथ की ओर जाना है और आत्र उसी ओर धावे के समान जलता रहती हुई जा रहती है। सूर्य किरण शक्ति सूर्य की किरणों में सह शक्ति है जो तुम्हें नवीन बन सम्यक आँख देगी। तुम्हारा प्रयत्न नभ बिकार का समूल नाश करगी और खपदा के क्षिय चर्म को क्षान्ता न तुम्हें मुक्ति प्रदान करे।

साधना 'हो आत्र'। आत्र तुम्हारा जावन का स्वय प्रदान ह।



डा० बेटव

यह प्रयोग १० मिनिट में ३० मिनिट तक करते रहे निर पोट सन को ओर करके या छुई में आ कर दोना इयलियो से नभो को ढक लो तनिक मी प्रकाश भन्द न आन दे। नभो को भन्द करक किसी क्षिय वस्तु का यान करो। इयकी



सूर्य चिकित्सा

चिकित्सा विधि को 'दिने दृष्टि पत्र पर' धार्य लो। प्रात काल का समय सर्वोत्तम है। अथ सूर्य को ओर मुख करके बैठ नभो व भन्द कर लो। अपनी गद्द मस्तक ओर खुड़े हुए नभो को बाएँ ओर दाहिनी ओर न बायाँ ओर ओर बायाँ ओर से मुख की स प्रकर कि साँप क्षपन कन को तुम्ह की ध्यात्र पर शिक्षा है। नभ चिन्त्र के साथ जुगता रहे और नेत्र या दृष्टि न घूमे और यदि घूम लो दृष्टि तरक।

इसके ये रको। आँखों पर कोई हवा न पड़े। पंच या सात मिनिट के बाद हाथ हटाओ।

लाभ आँखों को बन्द करि आपना दृष्टि काम में लाओ। अब यह वही हुई मानुस होगी और नभो में क्षम्व शक्तिशाली प्रदीन होगी। इन क्षम्वशक्त को प्रतिविम दोषार करना लाभदायक है। इस प नभ रात्रा दूर हागो। हट्टी तीव्र होगी। चक्षुर्वीय आत्रा प्रकाश को देखन पर आँखों में दर्द होना दूर होगा और नभ निर्मल होग।

सूर्य-किरणों से कम लाभ उठाओ जब सूर्य की ओर मुख किने बैठे होओ, तो सूर्य की ओर देखने की चेष्टा मत करो। जब कभी गर्मी हो वा तेज धूप हो तब मत बैठो। प्रातः काल को किरणें मज्बी होती हैं उन से रम काँसा नहीं बढ़ता। इस समय की किरणें चर्म में लुप्तहोती जा देती हैं और त्वचा निर्बिकार हो जाती है।

सूर्य की ओर देखन से मीला, पोका, काष्ठ आदि धनक रम बिचारों रहता है यह शिथिलीकरय प्रयोग से दूर किया जा सकता है। इन प्रयोगों की विस्तृत व्याख्या (Dr. Bates' Principle of perfect sight Withoat Glasses) नाम का प्रजी पुस्तक में की गयी है।

सूर्य चिकित्सा क बाद ५ से १५ मिनिट तक योग्य करना चाहिये। (वृको दृष्टि योग्य पृष्ठ) रंगों का चित्रण इसमें दूर होगा।

चक्षुषोपचार दूर करने का उपचार जिन्हे धूप में बहान पर बका पाँच छाती है वे बहुधा आँख ऊपर करक चबते हैं और पलक नहीं मारते। ललने समय कर्ण चाहिये कि नाच देखकर बने पलक मारते रहे और यह ध्यान करे कि चबने की सलक पीछ की ओर चलती है और व भागे जा रहे हैं।

#### लाभ

सूर्य चिकित्सा से नेत्रो के अनेक रोग क्षान्त हो जते हैं यथा पीला मोतिया मोनी बिन्द आँख का दुखना आँख ऊपर कुबो 'ह' आदि। आँखों की योग्य बढ़ान के क्षिय पायिम की उद्योगिता पर सैन पिछले लख में कुछ पकिया मिल थी। पायिम का अग्रयास गेम्न लिखित विधि में किया जा सकता है।

हृत्पियम को क्षात्रा में पवउ प्रकाश में नगाय। इस न वल फाग की दूरा पर एक कुना पर बैठ जाओ। हृत्पियम का ऊर्बाई उतना होनी चाहिय जितना कि तुम्हारी आँखें। अथ अग्रन हाथ ओर उग क्षियो गाय क कन को आङ्गनका बनानो और दाय हाव का दाहिनी आँख पर इस प्रकार हाथकेसे रखा कि हथेली का खड्डा आँख के ऊपर रहे और उगलिया कुछ तिरछी हो कर बायाँ मोह के ऊपर होकर बायें आँख को ढक लें। दूसरे हाथ की मी पैदा हो बनाकर बायाँ आँख के ऊपर रखा और बायी उगलियाँ को हाथें हाथ को उगलियाँ के ऊपर कुछ क्षम्वी ओर झुका हुआ रखा। इसी क्षम्वसे न भन्द आँख कोल कर

देखो कि भुक्तिमें आदिके किछों में से किसी में प्रकाश तो नहीं आता। यदि आता हो, तो उसे बन्द करो, और आँखें मूँद लो। इस ध्यान करो, जैसा कि ऊपर कह आये हैं। कलही फिरती और स्थिर वस्तुओं की सामयिक प्रतिमा देखो। यह प्रतिमाएँ काँपती हुई दिखाई देंगी। जो वस्तु हम रात दिन देखते हैं और जो हमारे मनको प्यारी लगती है, उस का ध्यान अच्छा होता है। हर एक का ध्यान अपना अपना भला होता है। केवल बात इतनी ही है कि घुमती चीजें, जैसे झुका, बहने, कूटने का घूमना, घुमना का खिलना आदि देखना चाहिये। ५ से १५ मिनिट तक इस प्रकार ध्यान करने पर अपनी एक बड़ेकी छटाओ। आदिपल से आँख लोमो और पलक मोर-मार कर दृष्टि पत्र के अक्षर पढ़ो। पढ़ते तो अक्षर बड़े साफ और घन काटे दीखेंगे। पर कुछ देर बाद फिर घुंघटे पढ़न मालूम होगा। उग्रां हो चुबटे अक्षर दीखन लगें, आँख को बन्द कर बड़ेकी म ड करके दूसरी आँख कोलो और उस म पलक मोर-मार कर पढ़ना आरम्भ करो, फिर पामिङ्ग करना शुरू करो और १०-१५ मिनिट बाँध घुमाओ भाति अक्षरों को पढ़ो। पामिङ्ग करते समय यदि दोनो हाथ थके जायें, तो उन को समय-देक दो या काहनी न बीचे लकिया लगा ले। कबे कब पामिङ्ग नहीं करना चाहिये। नोट हुए पामिङ्ग करना अच्छा है। साय दृष्टि वाले दो दिन में कम न-कम बार या पाँच बार पामिङ्ग करना हो चाहिये। उन चाहिये कि वह पामिङ्ग करते-करत खा जाय और प्रातः उठते ही पामिङ्ग करो। यदि दोनो नत्र एक समान कमजोर हो, ता होनों आँखें खोल कर अक्षर पढ़न का अभ्यास करो। बच्चों र पामिङ्ग क समय कोई मनोरंजन कदाही छुटाओ।

लाम

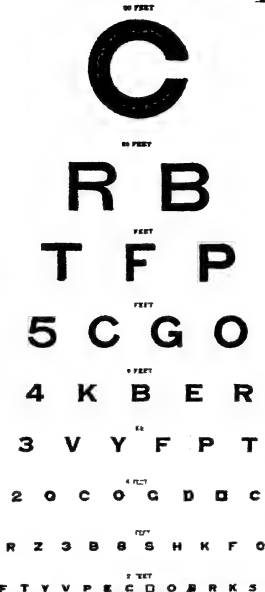
सिर धँद, कमजोर दृष्टि अणदो अच्छ हो जाते हैं। कई मराज जो अन्ध म अन्ध थे, अच्छ हो गये। एक बालक १२ वर्ष का, जो दो घंटे म अच्छ हो गया।

दृष्टि पट

दृष्टि पट का लेस में उल्लेख किया जा चुका है। स क देखन का विधि निम्न लिखित है—

दृष्टि-पट म १० फीट दूर खड़े हो जाओ। अग्रन एक हाथ का गेय क काट ऐसा बनाओ, नत्र इस हाथ से एक आँख को ढकने-से डको। आँख पर किसी प्रकार

का भी बचाव न हो।  
बन्ध दूसरी आँख, ओ खुली है, उसमें पलक मोर-मार कर सब लकीरों के अक्षर पढ़ जाओ। जिसके नेत्र कमजोर होंगे वे भी यदि नित्य नियमा-नुसार यह दृष्टि-पट पढ़ लिया करेंगे तो कुछ समय बाद उनकी दृष्टि तोष हो जा-यगी। बच्चों की दृष्टि अच्छी रखने और स्वस्थ रखन का यह उत्तम साधन है। इस प्रयोग को पाठशा-लाओं में प्रचलित करके परीक्षा लो गये हैं। इसका लाभ शत प्रशिक्षित छात्रा पाया गया है। प्रत्येक पाठशाळा क अध्या-पकों को इस सरल प्रयोग द्वारा बच्चों की आँखें स्वस्थ रखनी चाहिये।



इसी ऋतु में आमाशय के रोग फैलते हैं

हैजा

इनमें सब रे भयंकर है, अतः

अमृतधारा

का

ओ सर्वश्रेष्ठ प्रतिकरक और रोग निवारक औषधि है

निरन्तर सेवन करते रहें।

भाग २॥) प्रतिगोत्र ग्रन्थ शीशा १), मनुना ॥) आमाशय।

पत्र-पत्रधार व ता का पत्रा—अमृतधारा = लाहौर।

नवकाना के धाले से बचो।

देवली म एवेष्ट—विहारीलाल वासिराम, खारी बाबल स्ट्रीट।

आर्यविरट फार्मस्यूटिकल कम्पनी लिमिटेड लाहौर

जगत विख्यात

**कामचक्षु**

ग्लेक्लर फ़ार्मास्यूटिकल कम्पनी लिमिटेड लाहौर  
द्वितीय शक्ति देता होयक नार आप भी परीक्षा के  
ह्रिआर हर मोलम में लाया जा सकता है।  
ररजगह निरुत्तर है। पूरे स्वराक ४० नमूना १-

देवली के एवेष्ट—अननारास एव कम्पनी बाँवनी चौक देवली।

हमार

सेफ डिपाजिट बॉल्ट  
देखने के लिये

रायका

निमन्त्रण

जिस समय अपना सुविधा  
कुल चाहनावो० में चुनन इ  
सन्दर्भ व क न मर डिपॉजिट व न  
अवश्य दक्षिण, यह बास्ट ऐम इ  
जिन पर आप व पाना का अनम  
नहीं हो सकता आप अनम कामना  
जेवर जवाहीरन व हस्तारण  
इसम रचित आप आप पाना जारी  
व डाका आदि क मय म मुक्त इ  
आइव। इस लिय बैंक केवल २०  
वॉरिंक लेती है। मक ले लेन व  
भी आप २-३० म ई वज शाय तक  
किसी समय उसका काल म नर  
है।

बान्ट ठेन बाट का एक दिने  
चावो की जाती है जिसकी दूसर  
नहीं होती। सियाय बास्ट लेन वा  
क अन्य बाट उसका नहीं आ-  
सकता। इसी नर-नारियां अन-  
कीमत जेवर जवाहिरत इसमें र-  
कर चैन की ओ की जाती है। कि  
आप क्या एक क आधिकार  
लाम नहीं उठात और उनकी रक्षा  
लिय निमित्त रहते हैं।

मेन्टल बैंक आफ इन्डिया

लिमिटेड,

चावना चौक देहली।

गुरु मन्त्र

१००) इनाम

जिसका को आप लालों म  
सर्वे कर के भी नहीं कर सकते हैं,  
इस मन्त्र को लिख ४ बार अप कर  
हो कर सकते हैं, किसी कप या का  
यल क आवश्यकता महा, यह म-  
लिख कर गडा जाना है। आप नि  
चाह न, चाहे वह देता ही क  
हृदय अभिमोना क्यो न हो।  
अपन क साथ आपम मलि क नि  
लागायिन होना। इस मन्त्रम आप  
व्य होता है मोकरा जन्म मिलन  
दे, मोहरा बांटा हो नरहा। नत्र  
है, मामल मुकदम में जात होता इ  
लोदरा में जात होता इ वह म-  
वशाकता है। व्यापार न खान  
परीक्षा में पास करना है बगल  
सहित ऊन पर १००) इनाम। म  
का पत्रा पाठ।

पत्रा-लिख मन्त्र आधम,  
५० ६ यो ६०० कलसराय (१०)

( अंक २० से आगे )

हम बता आये हैं कि भस्वा कोर नाम में आपन चरित्र के लिय बहुत बदनाम आयेगी था । वह इस घर में मुला है, यह सुन कर उम्मेद पर मुला वजु गिरा एक ही दिन में यह घर उमे अपना सा लगने लगा था ।

मागो उसको कोई हूँ कोई वीरु पा गई हो । उस घर में भस्वा का सुलभा ऐसा प्रतीत हुआ जैसे लीच लगा कर कोई कोर घुस आया हो ।

श्यामा अपनी पोती क लड़ में बच बड़े मोट को खोल कर ले आई, और देखा के लिय उम्मेद के हाथ में दे दिया । मोट में कोई चिक्केपना नहीं थी, बस तो पो, जैसा बाजारों में बकला है, पर उम्मेद को वह कटिदास प्रतीत हुआ । उम हाथ में कोरेते हुए उम्मेद न कहा—

‘रूबना बहुत तुरा आयेगी है । वह खराब पीता है, और बचलन भी है । उसके हाथ में तो एक पैसा केमा भी इराम है । उसकी भाँक बहुत बड़े है । तुमन उसम यह मोट रयी के लिय और तुमन (श्यामा की ओर देख कर ) माँ को यह मोट केम में क्यों न रोका ?’

सुखदेवी न बचरा कर कहा ‘तो रेटा, वह तो कहन लगा कि यह कप्या भील बाकों ने मजा है, मैंन इसकी बात सबी समक कर ल लिया । तो क्या केमे मूठ भी कहा था ।’

‘हाँ खलन बिलकुल मूठ कहा था । कोरनन वाले ऐम मणकों में कसो की मयद नहीं करते । वह बड़े मलकी हैं । उनका काम होना चाहिये कर कोई मर या जिय । वह मोट तो रूबना न आपन ही पास म दिया है । ऐम तुम न लेली तो ब्रम्हा था ।’

‘तो अब भी कुछ नहीं बिगड़ा टा, वह जोर बायिक को जाने की मत कह गया है । मैं उस मोट प्रपिस हर दुगी ।

‘सर्क की बात सुन कर उम्मेद ० तब में बाग सी लग गई । एक तर उसन श्यामा की ओर देखा और दूसरी बा सुखदेई की ओर लुखोच कर चुलसा र ; गया वह तेला नहीं ।

उस सुन देख कर श्यामा बचरा है । वह बातचीत में री दिरमा न ऊपर के बात सुन रही थी परन्तु ह सुनक बोहने में माँ अधिक मर-भुण्यो थी । वह बातें सुन रही थी, और उम्मेद की ओर देखती जाती ।

मरुका क्यों आया ? और उस १ आना उम्मेद को क्या हुआलगा, इन बातों का रहस्य वह समझना चाहती थी, पर समझ न सारी तो १ उसके दिम में वह बातचैठ गई कि

भारवाही उन्मास

## अपराधी कौन ?

( अं०—भी देव )

मिल की एक मजदूर युवको की गुपती के आक्रमण में उम्मेद न रखा की । मिल की कमावी उमे जुरी दसि से देखना था और इस मौक पर मिल की सहायता के नाम पर उसे १०० दे गया ।

उम्मेद वह सुन कर बहुत क्रुड हुआ । उम्मेद का शरीर जीवन बहुत बढ़ा नहीं है । उसकी युव माता न ही उसे पाला था । वह कुछ सरकारी कर्मकी सगति के कारण भारगमि जुलने के नाममात्र अपराध पर तीन मास की जेल भी गुप्त आया था । उसको माँ मर चुको है और अब वह १ साल में मिल में काम कर रहा है । धाऊ कल वह जावर है ।

मरुका तुरा आयेगी है और उम्मेद ब्रम्हा ।

उम्मेद का जी तुरा सा हो गया । वह बोधी दर तक चुपचाप बठा रहा सुखदेई उसक मु ह की ओर देख रही थी, श्यामा पास हा नीचे को १० किस् कड़ी थी मरुका का दिया हुआ नाट उम्मेद के पाँव के पास पड़ा था और उम्मेद ब्रम्हमस्मक सा होकर दरखाने की ओर देख रहा था ।

( ६ )

आज रात कल के ही समय फिर धार लुखा, और माँ बेटी न बचरी हुईं धर्मिनी स भस्वा की प्रम्वर जाने देखा । मरुका की आली में और बेचर पर कल की अपेक्षा लाली अधिक थी, और उसक पाँव कड़कड़ा रहे थे । उम कदर प्राता देख कर सुखदेई बार-बार श्यामा न ऊपर कर बैठ गई और श्यामा ध्यान कठकों में और चिन्तन कर बन गई । मरुका न सुख ई के पास धाँक चुका—

‘बुढ़िया तुम्हारा क्या हाल है ? अब कल फिर सक्ती हो ?’

‘अब तो कलड़ी हो, बावूजी, तुम्हारी श्याम न चल फिर सक्ती ह पर कमजारी बहुत है ।’

‘तो बने । तुम अपनी बेटी को लेकर यहाँ से चलो । मैंन तुम लार्ना क लिय एक दूसरा मकान किराय पर ले लिया है । इस मने मकान में तुम्हारा कमजारी दूर नहीं हो सक्ती ।’

इस नए प्रस्ताव को सुनकर सुखदेई कुछ आश्चर्य में पड़ गई । उम याद आया कि वह तो १०० का मोट बाणिस देन का वायदा कर चुकी थी और वहाँ मकान किराय पर ले लिया । बोसी—

‘बावू जी, हम गरीबों पर आप इतनी दया क्यों कर रहे हैं ? हम मो इसी कोमे न घर में लग्य हैं । आप की क्या इतना दया कम है कि आप हाल-चाप पुक लेते हैं । नयं मजान में हम नहीं जाना चाहती । हाँ—और आप कल जो १०० का मोट १०० गय थे वह ल लीजिय, हमें उस की दरकार नहीं ।’

मरुका कुछ बचरा गया । कल तो बुढ़िया आसानी में हाथ में आ गई था और आज उकटी बान करती है, बात क्या है ? इस रिवाी न अकर बहकाया है ? मरुका की लीच धान लगा, परन्तु उस दवा कर वह सुखदेई की जाट के पा यतो बट गया और चिकनी-चुपकी बात बरक उमे कुललाने लगा ।

बात सुखदेई न कह रहा था और आँख श्यामा न, उम कपड़ों में सुकड़ी हुई, चिपसी की देख कर उप और ही अधिक बचराहट हो रहा थी ।

बहुत सी बात समझाई, पर बुढ़िया अपनी बात पर जमी रही । मरुका की आँख धाँज भयावकी थी उन्हे देख कर सुखदेई और भी बचरा गई और उस म पिह

‘लुधान का प्रत्यक कन में हड़ हो गई, जब १०० तक समझाने में भी सुख देई न मानी तो मरुका के कोप का पारा चढ़न लगा । उसने आँख लिय म भी कुछ अधिक मात्रा में खराब बहरी थी । जेय हाथ से निकल गया और श्रोतान अपने असली रूप में दिखाई देन लगा । वह आँखों से धारा और तु ह स आग बरसाता हुआ चिक्काने लगा—

‘तो तु मेरी बात नहीं मानना चाहती, बहुत ब्रम्हा । माँग कोर

कर सुन ले । मैं तेरी कोई पत्नी नहीं करता । मैं श्यामा को चाहता हूँ और उसी को लेजाना चाहता हूँ । श्यामा, बल उठ, तु मेरे साथ चल’

इस समय दरवाने पर किसी के चिकने की आवाह हुई, परन्तु मरुका आपि से बाहर होने के कारण उसे न पधचान सका ।

श्यामा कपड़ों में और भी अधिक सुकड़ी हुई कोर दसि से दरखाने की ओर देख रही थी ।

मरुका बारपाई पर से उठ कर श्यामा की ओर बढ़ा । सुखदेई ने हाथ जोर कर कहा—

‘बावू जी-बावू जी, क्या करत हो, उस बचारी का माफ करती । गरीब को इस तरह न सताओ ।’

पर मरुका आगे बढ़ता ही गया और श्यामा के पास जाकर मोहा ।

‘बलती है या नहीं, या तुम्हें जबरदस्ती पक कर लेजाना पड़े गा ।’

दरवाजा और अधिक जोर म चिला और जोर जोर से साल चलन की भी आवाज आई । सुख देई बचारी बारपाई पर म उठ कर बेटी की रक्षा के लिय आगे बढ़ना चाहती था, परन्तु तुम्हारा और निर-लता के कारण पड़क जाकर गिर पड़ा । गिरते हुए तु ह से कलक इतनी हो कल खसी—‘हाव बनी’

मरुका ने बुढ़िया के गिरन की गवाँ न करक श्यामा का हाथ जोर से पक लिया । श्यामा न हर कर चीख मारी । मरुका ने चीख को रोकन के लिय अपना दूसरा हाथ श्यामा क मु ह की ओर बढ़ाया दी था कि दरखाना चक्कन में खुल गया और इस म पड़ने कि रूबना समझना, उम्मेद के मजबूत हाथो न उस की पीठ में इस जोर से चुपका दिया कि वह श्यामा को छोड़ कर लड़खलाता हुआ सुखदेई की जाट न जा टकराया ।

( कथय )

( पिछले कुछ अकों में यह उप-न्यास प्रकाशित नहीं हुआ । अब भारवाही रूप से प्रकाशित हुआ करता है )

—स०—

जोआर गिर रहा है । परीक्षा कीजिय

प्रामीना

पुलखावर, सेक्टर, दोर आदि ऊर्जा सामान का । कैलाश मोटिंग फर्करी प्रमेता ( १० पी० )



# भारत सरकार की ग्राम-सुधार योजना

## विभिन्न प्रान्तों की सहायता

भारत सरकार ने ग्रामोद्धार की योजना के लिये एक करोड़ रुपये स्वीकृत किया था। इनके विभाजन और वितरण की रिपोर्ट सरकार ने प्रकाशित की है। इसी के कुछ अंश दिये जाते हैं।

मजदूर	१४ लाख ६०
बन्दर	७ "
बगल	१६ "
युक्तमाल	१६ "
पञ्चाय	८५ "
जमीन	५ "
विहार और उड़ीसा	१२५ "
अप्रत्यक्ष	५ "
उत्तर प्रविशम कीमा प्रांत	३ "
काशी	५ "
जिला	०५ "
अजमेर मेरवाड़ा	०५ "
कुल	०५ "

कुल जोड़ १२५

सरकार ने कुछ शोधक बतला कर जिनके अन्तर्गत सरकार की दृष्टि में ग्राम्य-जीवन की आवश्यक महत्वपूर्ण आवश्यकतायें आजाती हैं, स्थानीय सरकारों का नृत्य करन का निश्चय किया और इस प्रकार उनको सक्रिय होय पड़ गया। य की नीचे है:

(१) स्वास्थ्य रक्षक उपाय, ग्रामों (क) ग्रामों में नागरिक योजनायें (ख) ग्रामों में जल का प्रबंध जिसके अन्तर्गत नासोदर कुएँ भी हैं।

(ग) ग्रामों की सफाई जिसमें नाशियाँ फैलायी जाती हैं।

२ क्षेत्रों को छोड़ २ ग्रामों में विपन्न होन न बचना।

३ गांवों में सफाई बचाना।

४ जिला सरकारों की स्वेच्छा-नुसार स्थानीय छोटे-छोटे सुधार कार्यों की उन्नति सहायता के लिये रकम प्रस्तुत करना।

वर्गों

१ ग्राम सुधार योजनायें—	रुपये
उत्तरी विभाग	१,००,०००
मध्य विभाग	२,००,०००
दक्षिणी विभाग	१,५०,०००
सिंध	१,३०,०००
	६,००,०००

(२) तैली का सुधार और रुबि से व्यवस्था ५,२०,०००

(३) मुर्गा-मुर्गा रक्षक १,५०,०००

(४) बन्दरों के कोष

और किये में सहयोग	२०००
(क) बन्दर कायला और	
उसे सुविधित करना	५०,०००
(ख) तालाबों में	
मछली पकड़ना	१,००,०००
कुल जोड़	७,००,०००

सरकार का प्रयत्न सुधार योजना की महत्वपूर्ण बात यह है कि सच में पहले जान-जास गाँव का निवासियों की आवश्यकता का मार्ग को प्रति योजना और फिर इनकी की समीक्षा उन्नति की जाए प्दान दिया जाय। इस कार्य में सरकार स्थानीय अधिकारी गैरसरकारी सहायता और स्थानीय व्यक्ति के समिन्धित प्रयास की आवश्यकता है। योजना इसी धारणा पर निर्भर है कि जल तट स्थानों वाले सहयोग न करें, उपयोगी उन्नति साधन नहीं हो सकनी और इस सम्बन्ध में सचम पहला कार्य यह है कि उनमें अपनी आवश्यकता सुधार का इच्छा और इच्छा पैदा की जाय।

इन योजनायें के अनुसार ग्राम सुधार के समस्त कार्य डिस्ट्रिक्ट पब्लिकवर्क कमिटी द्वारा संचालित किये जायेंगे जिसके चेयरमन का स्थान कलेक्टर प्रदण करने और डिस्ट्रिक्ट लोक बोर्ड का प्रोवोडेंस बारस-चेयरमैन होगा। कमिटी के सदस्यों में साधारणतः सरकारी कर्मचारी होंगे जो सरकार का समाजिक विकास के प्रतिनिधि उद्भव हैं तथा स्थानीय सरपंचों के प्रतिनिधि जैसे लोक बोर्ड और उनी की प्रति अन्य स्थानों और समाज मन्त्रा, शिक्षा शास्त्र सरपंच आदि में सहयोग लिये।

डिस्ट्रिक्ट पब्लिकवर्क कमिटी की देखरेख में, तालुका कमिटी स्थापित करके ग्रामों और तालुका सुधार सच है वहाँ उनका हस्तों का तालुका में काम हो रहा है। स्वयं प्रार्थी में ग्राम पञ्चायत कानून के अनुसार पञ्चायतों ग्रामवासी स्थानीय अधिकारों का उपयोग किया जा रहा है। विविध उन्नति, समिन्धित कार्य करके कार्य करके निवासियों में जैने शिक्षा, कानूनी उन्नति आदि के सचम में भी विचार किया जा रहा है।

स्थानीय सरकार ने चिकित्सा की भी और भारत सरकार सचम एक मत हो गई कि सहायता की एकमात्र का अधिकार ग्राम बन्दरों प्रांत में, इसी योजना का, जिसके द्वारा उत्तम परिणाम हस्तोत्तर हुआ है। ग्रामों बन्दरों में कार्य किया जाय। ६०६,००० रुपयों में जो इस योजना को क्रियारमक रूप देने में व्यय होंगे, २,००,००० रुपये जिला सरकारों में बाँट दिये जायेंगे।

मुर्गा मुर्गा रक्षक सुधार की योजना दो भागों में विभक्त होगी। कुछ ग्रामों में ग्रामकी नसल के मुर्गों रखे जायेंगे और उन मुर्गों मुर्गा रक्षकों के प्रशिक्षण को भी कुछ मुर्गा का पालन करना स्वीकार करने जिनमें एक यह है कि इनके ग्रामों स्थानीय रूप में मुर्गों पालन के उद्देश्य में निश्चित मुद्द पर बचे जायेंगे, सीमित नकद में प्रीमियम पुरस्कार दिये जायेंगे।

## युक्त प्रान्त

(१) खास रकम	७,००,०००
(२) अन्य विषयक योजनायें	३५,००,०००
(३) पब्लिक हेल्थ और महीला शैलीक कार्य	३१,६०,०००
(४) औद्योगिक योजनायें	३,००,०००
(५) प्रचार और प्रकाशन की योजनायें	३६,००,०००
(६) इमारत जिला	५,००,०००

कुल जोड़ १५,००,०००

(१) उन्नति-जिला "खास रकम" स्थानीय सरकार की देवात सुधार योजना है जिसका उद्देश्य ग्रामों में स्वास्थ्य-समय प्रवृत्ति की वृद्धि करना है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये स्थानीय सरकार लगभग २ वर्ष के लिये एक स्टेज-रकम नियुक्त करने का विचार कर रही है, जिन में निम्न व्ययिन रहेगा—

(क) ४५ जिलों में, प्रत्येक में कम से कम ६ सत्रायन कर्ता (काम्य के तीन पहाड़ी जिलों के बाहर है), (ख) प्रत्येक जिले में एक-एक इस्पेक्टर द्वारा जो सत्रायन कर्ताओं के कार्यों को निरीक्षण और उनका पथप्रदर्शित करना। प्रत्येक सत्रायन कर्ता बहुत कुछ उसी दण्ड से काम करेगा, जिस दण्ड से विज्ञापन "इस" सहयोग-समिति आन्दोलन के सम्बन्ध में करत है। अनुमान किया जाता है कि यह १२ ग्रामों की देखरेख कर सकना, लक्षित सम्बन्ध है कि यह सचवा बाई में बड़ा हो जाये।

(२) विचार है कि १,००,००० रुपये सहायतायें हर ग्रामों में ५२ विहारी तक वितरित की गयीं नृत्य वन लगान के लिये खर्च किया जाय। जिन स्थानों में नहरें ग्रामवासी नृत्य वेज नहीं हैं वहाँ दो वर्ष से भा अधिक समय तक ३००० सेम नामा होर कुएँ बनाने जायेंगे। अलक्ष्य जलता का सामना करके कल १५००० रुपये का प्रतिरिक्त रकम गारहटा क तोर पर जाय दो गयी है।

७३,००० रुपये घाट बनाने में खर्च किये जायेंगे, जिस से जमान कट नहीं और नमी बना रहे जान कर पुराण जिला में। इन धानों के पानन के लिये एक प्रकृष्ट छेदीया आया, जिस से जमान और समय पर जल काव लोशन का काम किया जायगा। (५०) ग्रामवासी जलकुंड खोदने की प्रार्थना के जारी है और इस के लिये सरकार एक तिहाई कर्षण दी वही हर एक जलकुंड के लिये अधिक से अधिक ३००० रुपये दाला।

प्रति मं कला का खता सुधार के लिये खास रकम के अन्तर्गत ग्राम वाले प्रयोग का कल गेट और बीज दिये जायेंगे। हर एक जिले में एक-एक माली नियुक्त किया जायगा। इन उद्योगों के लिये कुल १,००,००० रुपये खर्च होंगे।

५०,००० रुपये कानूनी रूप रंगा न सत्रायन बीज सहायक की उस का जगह कृषि-विभाग के उद्देश्य बीज बटने तथा कृषि विभाग के बीज की वितरण प्रकाल में सुधार करने के लिये खर्च किये जायेंगे। इस में प्राइवेट रूप में चलन का बाज क रक्षक का भी साहाय्यक मित्रा और सच हो कार्ययन्त्र हान पर बाज बढान की प्रार्थना न हो सुधार किया जायगा।

(३०००) रुपये अजमेर प्रांत इलाहा में मुर्गा मुर्गा पालन के काम आलान में खर्च किये जायेंगे ५०,००० रुपये अजमेर का सुधार के लिये दिये जायेंगे जिसमें ५००० रुपये बाँटने जायेंगे ३००० पानना न समिन्धित हाना।

(३) स्थानीय सरकारों को स्वास्वयं वन्दर स्थान बनाना नृत्य नृत्य प्रत्येक वन्दर के अन्तर्गत लगभग १० गाँव होंगे जिन की जनसंख्या लगभग ३०,००० होगी और इन प सहायमान प्रति वर्ष १,००,००० रुपये खर्च होंगे। सरकार का यह नृत्य विचार है कि इन स्वास्वयं वन्दरों न सत्रायन विस्तार की योगन को न कियानमक रूप दिया जाय



जिस में अनुमानतः प्रत्येक केन्द्र पीछे प्रति वर्ष २५४० रुपये खर्च होने और एक यह योजना थी कि जिस स्कीम के अन्तर्गत घाने वाले गांवों के लिये दवाओं के सफ़ूट लिये जायें, जिस में ३६००० रुपये खर्च होने।

प्रारम्भिक दो वर्षों में कुल आनुमानिक खर्च ३१६००० रुपये होगा।

स्थानीय सरकार की धारणा है कि प्राम-उद्योग पन्थों का सहायता पुराने के लिये हाट ज्वर-रुग्णा का सुधार सब में अधिक प्रभावदाय कार्य होगा। इस सहयोग की दृष्टिगत रकमों कुल ८००० रुपये, सरकार के गवर्नमेंट एजेंसियों के आगम आर्टिस्ट रॉन्ड के लिये अलग कर दिये जायेंगे, जिसे सुविधायन मूल्यसूची, नवने प्राथि-प्राथि, तैयार करने और प्राम उद्योग पन्थों की बसुधों के कर्म-विषय में होन, बावनी संरक्षण इति की पुनिके लिये खर्च किया जायगा। यी पैसा करन वाले हाटावा, आगरा, मथुरा, अलीगढ़ और पुरा के जिलों में यी से हाट ज्वररुग्णा के लिये की शोधरहित प्रकल्प करन और की की विपुलता की परख करने के लिये हाटावा में जो संस्था स्थापित की गई है, उसी क हाट पर हावस कर आगा। की माहवत संस्थाओं की प्राथिक सहायता देन की की विचार किया गया है। यह भी विचार है कि इस शीर्षक के अन्तर्गत ४०००० रुपये और खर्च किया जायें, लेकिन इस के लिए अभी स्थानीय सरकार की अस्तित्व सिफारिश प्राप्त नहीं हुई।

(४) प्रामोदार कार्य के अन्तर्गत सुफल प्राप्त करन के लिये बाघ कर्म के अन्तर्गत प्रान्त वाले ३२४० गांवों की सभाओं में कम से कम एक बार निशुल्क समाचार पत्र प्रसारित और विभिन्न जिन में प्रामोदार सहायक रकम रहेगा और समाचार दिये जायें, इस क लिये प्रारम्भिक दो वर्षों में अनुमानतः ३०००० रुपये खर्च होगा।

(५०००) रुपये की लागत में प्रामोदारसहायक एक सौ सठ सुकनी रकमों भा तगार किए जायेंगे।

(६) "आस स्कीम" कुमायें डिपोजिट के पक्षी स्थान में लागू न होगी। फिर भी इन फायदा पड़ने वाले किस्म १०००० रुपये खर्च करन का विचार है और उद्योगों को योजनाओं पर विचार किया जा रहा है।

## पंजाब

- (१) सेतो को टुकड़-टुकड़ होने से बचना १०४०००
- (२) सुधारन जिले के प्रामों में स्वास्थ्य-सुधार ६०००
- (३) सुधारन जिले की संकर-गवतहास में १०,०००
- (४) जल प्रकल्प की योजनाओं २२१०००
- (५) टीके की सेवा के सुधार ३००००
- (६) रोहतक जिले में पशु चिकित्सालयों का सुविधायन १२०००
- (७) पशु चिकित्सालयों का निर्माण ६००००
- (८) जलकास्टिंग स्कीम ४००००
- (९) आस कमाने की योजना ५६०००
- (१०) फलों का उत्पादन ६२०००
- (११) मालीवार कुल ४००००
- (१२) सिनेमा फिल्म और लाइव स्वीकर ४६०००
- (१३) मवेशी का सुधार १६०००
- (१४) सिखा घरसो को स्वेच्छासुर जरा खर्च करन के लिये की जान वाली रकमें १००००

कुल जोड़ जोड़ २५०००००

(१) यह पुरी रूप में स्वीकार किया जा चुका है पंजाब के असीधरों के लिए इस में अधिक फायदे की और कार्य बात नहीं को सफ़रों कि उन के खेतों का टुकड़ टहन में बचाया जाय। इस समय ११ जिलों में प्रति वर्ष ६०००० पशु के हिलाप में सहायता कमिषियों के द्वारा यह काम को रहा है। ये सहायोग कमिषियों = इन्स्पेक्टर और १०४ सहायक-स्कीमों की जिन्हें सरकार ने प्रान्त खर्च में नियुक्त किया है, दखरेख और नजुब में काम कर रही है इन्स्पेक्टर और सहायक-स्कीमों को सहायता क लिये एक ३ प्रामोदार इन्स्पेक्टरों और २२ सहायक-स्कीमों का स्टाफ है और इन का खर्च उन व्यक्तियों के कर्म में पुरा किया जाता है जो खेतों को टुकड़ ट होने से बचना की दूरबहास देन है। इस कार्य को सीमाप्रायुक्त बलान के लिये एक स्वेच्छा रजिस्ट्रारिजेशन अफसर, = इन्स्पेक्टर और = सहायक-स्कीम नियुक्त करने का विचार है। फायदा उठान वाले असीधरों से जो कुछ भी रकम मिलेगी उसे अतिरिक्त स्टाफ खर्च में खर्च दिया जायगा।

(२) इन सुधारों के अन्तर्गत मने गांठे बनाये जायेंगे, उन

के किमारे-किमारे सुखी हुई असीधरों, हाट से बहने वाले पथ बलाने जायेंगे, असीधर कुलों की मरम्मत की जायगी और खर पर कुल बाली जायगी। इसी प्रकार के और भी काम होंगे। जिन्हा असीधरों की सहायक मने गांठों का सुधार कर लिया गया है। खर्च का खर्च तिहाई इस प्राप्त में किया जायगा, एक तिहाई प्रामों की रक्साही तरफ की कमिषियों से लिया जायगा।

(३) सुधारन जिले की संकरगवतहासी में बर्तवियों में पशुन वाले कीर्णों की बीमारी है। सहायक बलान का उद्देश्य यही है कि बीटापु नष्ट हो जायें और बीमारी न फैले। सहायता देन करने वाले कोजारी और बाघदान कर्मियों में खर्च किया जायगा। अतिरिक्त खर्च होने पर इसे जिन्हा कोई पूरा करेगा।

(४) जल प्रकल्प की योजनाओं द्वारा कानगा, राहपुर, मिर्जावाली, रेगामजीवा और शेखम जिले में पीने का पशु पानी पड़ना जायगा यी कि वहां इस की काल उदरगत है (५) उद्योगिक केन्द्रों में टीके की दवा रखने के लिये १०० सुधार बनाये जायेंगे जिस से कि उद्योगिकों की कोई बीमारी देने दो टीके तुलन लागत आ नकें। इस का प्रारम्भिक खर्च जिन्हा कोई बर्तवित करेगा।

(६) = १९३२ की बीड़ में रोहतक जिलेक पशु चिकित्सालय की इमारत को बहा तुकमान पशु का या और जिला बोर्ड उस की मरम्मत नहीं करना सकता।

अब प्रोड के खर्च से उस की मरम्मत की जायगी।

(७) पशु और इतियाजी को पशुप्रायन योजनाओं के अन्तर्गत प्रान्त वाले इन्जा में १० नवे पशु चिकित्सालय खोले जायेंगे यो कि जिन्हा बोर्डों के पास हर के लिये सुधार नहीं है। जिन्हा बोर्डों इन का आर्थिक खर्च बर्तवित करेगा।

(८) जिन्हा प्राइवेटिजेशन रेगुलर क अफयन निज्दर कोजिले हैं जिनके नाम रोहतक कनाल और सुधारन हैं, निवासियों की विष्टा और मनो-विमोह क लिये, ५० रिडियो रेड, दो वर्षों के लिये लगाये का विचार है। प्रारत सरकार के परामर्श से पदान सुधार कमिशनर के अधीनस्थ प्रामों में विष्टों में उद्योगों काय-काम प्रोवार्ड का प्रकल्प किया जायगा।

(९) बकरों की बातों के निवारण क लिये पंजाब भारत के प्रमुख केन्द्रों में परहे है। और मेह की बातों के निवारण भारपर पर दो इस का पक्काबिकार है। जो बसुध विदेशी को मेज आता है उस से से

केवल न कीसली बसुध पंजाब में लगाया जाता है। पंजाब की बातों की अस्थी होती है और कमाल के सहाते भी बातों से सफ़रों किए जाते हैं। दो मुख्यकास प्रवर्तन पाठियों के साथ-साथ अनुसंधान और प्रदर्शक के लिए एक केन्द्रीय टीम (बसुध कमाना) इन्स्पेक्टर जोजान का विचार है।

(१०) ४५००० रुपये विश्वस्त फलों के बातों में पीड़े पैदा करने और उन्हें बहुत बड़ी लायदा में खरने दोमों में निरवस्थ करने में खर्च किया जायेंगे और १५००० रुपये फलों को सुखित रखन की शरीर का प्रयोग और प्रवर्तन के लिए प्राथम्यवसायिक रूप में लगान में खर्च किया जायेंगे। पूर्वोक्त उद्देश्य को पूर्ण क लिये प्रामान बनीके बहा, जिसे जायगा और नवे वाले जायेंगे। दो साल बाद योजना (आवसीय) हो जायगी। रकम का सुधार दिखल जायकपु में जिन्हा का एक कारखाना खोलने में खर्च किया जायगा, यो कि पंजाब की फलों की खेती क लिए इस की आवश्यकता आवश्यकता है। बाता की जाती है कि पहले साल बाद स इस कारखाना का आर्थिक खर्च प्रामोयरी से पूरा हो जायगा।

(११) प्रान्त के अनुपम म्, सिख है कि नाकोदार कुलों में पानी ३०० फी-सदो बड़ जायगा। कुलों में छोड़ जान वाले नल और कुलों की कीमत क अक्षाया सरकार इस समय उद्दे करन क लिए, बाहे उन से पानी निकले वा नहीं, १२ प्रान लेती है, इस द्वा में सर्वसाधारण क प्रेफराइड और सहायता के लिए सरकार २ लाख तक १२ प्रान की फीड को माफ़ी देना किमार्त कर रही है। इस में अनुमानत ५०००० रुपये खर्च होंगे।

(१२) खिनमा क तमाके सुख रहे जाते हैं और पंजाब में वे आसुधक प्रतीत हुए हैं और अजला उन्हें दूधन क लिए पैदा भी खर्च करन का विचार है। स्थानीय सरकार क पास बाता दो प्रमुख फिलों का सामान है, तीन और एक-एक विधान क लिए बाहिर और एक सुखित रखा रहेगा। इस के अतिरिक्त उद्योग उद्देश्य के लिए अउ और अधिक फिलों की आवश्यकता होगी। प्रस्ताव है कि पैले फिलों पर ३६००० रुपये खर्च किया जाय और ४०००० रुपये विदेश क रिडियों के लिए खर्च किये जायें। दो सेंट आउरबन्धीके को भी प्रकल्प किया जायगा।



राजकुमार, तुम भूल रहे हो, कहीं तो बिजयगढ़ का मांथो भरेया और कहीं एक निर्धन राजपूत कन्या !"

"मही विभा, कुछ कैसी ! कुछ प्रेम का मांथो में न तो घन हो व्यक्तियों को पकता के लुप्त में बाँधने के लिए बंधन ही हो सकता है और न दोनों को अलग रखने के लिए कटक ही ।

"किंतु तुम्हें तो एक से एक कपवती राजकुमारों के मांथो हो सकती हैं ।"

"विभा ! मोक्षी विभा ! कुछ-प्रेम के लिए कोनवर्ष जैसी अस्थायी वस्तुओं को माँथो, मही दोस्तों ! इसमें इन्द्रियजय लुप्त की लासला मही दोस्तों ! उसका संबंध इतने ही होता है विभा, और आभा में । वह कम से कहीं भी आ सकते और रूप से बन्धी आ सकेन बाँधी वस्तु नहीं ।"

"राजकुमार ! तुम किस निहा में हो ! महाप्राण को यह कैसा स्वीकार हो सकता है कि बिजयगढ़ के भागी भरेया की सहचरी एक निर्धन राजपूत कन्या बन !"

"आप कोई मोक्षी बिजयगढ़ के मरु हो तब तो निरस्तह भ्रमचयन हो सकती हैं ।"

"कैसी चिन्तन बातें कर रहे हो राजकुमार ! क्या तुम एक निर्धन राजपूत कन्या के लिए राज्य-सुख का लात मारोगे ?"

"सुख ! राज्य-सुख ! तुम किसी मोक्षी हो विभा ! सुख तो हृदय को शांति का नाम है । वह राजविदासन का दास नहीं, और मुझे शांत है कि उस सुख के लिए जिसे तुम सुख कहती हो—तुमकी क्या सारा संसार ही सुख कहता है, कौता माँह अधिक इच्छुक है । मेरा राज-सिद्धांत तो तुम्हारा हृदय है विभा ! वह मुझे इस पर स्थान मिल गयो तो किसी और राज-सिद्धांत की लासला न रहेगी ।"

विभा न भयन चक्षुष तथा सुख ने नहीं से राजकुमार की ओर देखा । उस की दृष्टि में निरस्य था और स्नेह भी । राजकुमार ने भी अपने बड़े न नेत्र विभा की ओर निराव प्रकाश दृष्टि में सुख शक्ति थी और अटक निरास्य भी । और क्षय भर लक्ष्य ही दामों एक दूसरे के बाहुप्राण में बंधे पड़ ।

इस समय सूर्य अग्राज्य को लीन करि से अस्तमान की ओर पवाराय कर रहे थे, वह प्रम-कीर्ण देखने के

कहानी

## दो आंसू

(ले०—भी जममोहन गुप्त रामेश्वर स्ट्रीट, देहरादून)

लिए लक्ष्य पर की टिक गये । साथकोसीन मंद पवन पुरों को घुंघरू संगीत की बासी और फैला रहा था और उस रस्य वादिका के पंखे २ को कर रहा था वहीं धातुकी संयोग सुनान को प्रेरित ।

हसी समय किसी मधुर कंठ की भ्रमि सुनाई दी 'बोभी बाबिय बोभी !' और एक युवती, जिसकी प्राण्य लगभग बासी वर्ष की होगी, उस ओर से भाती हुई दिखाई दी । यद्यपि उसके पंख कटे हुए थे, मुर-भाय गुण्य जेमे चंदरे पर चिन्ता का बाह्य रूप दृष्टिगोचर होत थे, फिर भी देखने में जान पड़ता था कि वह भी कभी किसी रस्यवाटिका की कभी रही होगी । विभा न उस युवती और बोभी की बोभी । बोभी देखते ही राजकुमार और विभा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । संभवतः राजकुमार न भी भयन जीसम में पहिने कसी लनकी सुन्दर बोभी नहीं देखी थी । यह देखने के डोरो में बुनो हुई थी और उस पर लक्ष्य लितार और सचने मोतिरों का काम था । उसे देखने में बात दोहा था कि कम से कम किसी की तीन चार लासल का सेहतनत का फल है ।

विभा न उसका मृदु पड़ । बोभी बाबो न वो हजार करवा बताया । राजकुमार न उसी समय बोभी का मृदुय प्रमना दिया । जिस समय बोभी बाबो न बोला विभा को ही और वसक मृदु ने वीरस कपनी उस कीर्ण की चीनी के एक कोम में बाधा तो तसक राकने का लासल प्रयत्न करने पर भी उसक मुरमाय डुब कमल क समान नवो से निजल ही पड़े "दो आंसू ।"

विभा न लसला कहा—"अर तुम रो रही हो जितना मृदुय तुमन माना, तुम्हें दे दिया । फिर रोने का क्या कारण ?"

उसने बात टालन का लासल प्रयत्न किया, किन्तु विभा और राजकुमार के आश्रय पर उसे कपनी राम कहानी कहनी की पड़ी । उसने कहा—

"वसत से लगभग दस वर्ष पूर्व की बात है कि हमारा गाँव में भयंकर कोस का प्रयोग हुआ, उस समय

हमारे कुटुम्ब में केवल तीन प्राणी थे । मैं, मेरी माता और मेरे पिता । एक दिन प्राणाजी के अचानक सिटी निकल भाई । तीसरा दिन उनका स्वर्गवास हो गया, और मुर-लेग का आक्रमण हुआ पिताजी पर भी । मेरी प्राण्य उस समय बाह्य वर्ष की होगी । यद्यपि उस समय मुझे दोड़ चुप दवा दाक का ज्ञान न था और



भी जममोहन गुप्त

पर मैं कोई तीसरा प्राणी भी न था कि भी पिताजी के एक मित्र की कृपा से उनकी मवा शुश्रूषा में कुछ भी कमी न पड़े । वे हमारे घर के सम्राट हो रहते थे । उनके कुटुम्ब में केवल दो प्राणी थे । वे स्वयं और एक उमरा चोबह पन्नाह वर्ष का पुत्र । वे दोनों लान निवतक हमारा ही पहाई रहे । प्राण्य पिता जी क समीप बैठ रहत । तीन दिन तक सोन का मान भी न लिया । चौथे दिन पिता जी की तथियत अधिक अशोक हो गई । वे आपन मित्र से जो उनके समीप बैठे हुए थे बातचीत कर रहे थे । मैंने देखा कि उस समय दोनों की आँखाँ से आँसूओं की कभी लगी हुई थी । मैं भीतर बेटी उबकी बातें सुन रहा थी और रो भी रही थी, उबकी बाँधी का महत्व समझ कर नहीं बतकि उन दोनों को रोता हुआ देख कर । पिताजी कह रहे थे "मुझे भयन मरने की चिन्ता नहीं यह तो मसारा का नियम ही है, जो प्राणा ली जावगा अमर्य ।" तो दिन पहले

या रो विन बाव । मुझे तो चिन्ता बचची की है । अमर्य उसका विवाद हो लिया होता तो मैं कहीं गति न मरता । उसके अतिथि क सहाय नम ही हो मगोहर । उला उमरा मयान रहना ।" और कहने उनका कठ कंठ गया वे आगे कुछ न कह सक ।

"आप किसी प्रकार की उलास न करें आप को बचची को आप क पाउ किसी प्रकार का कट न होगा न उन भयभीत पुत्रो को तरह रक्खूा और कोई सुयोग्य वर दुदुकर उस का विवाह हो कर नुगा ।" मनाहरन उसा दिया ।

पिता जी न प्राणाज हा 'बचची' में उन क समीप गई उन्होंने मरा हाथ प्राण्य मित्र क हाथ में पकड़त हुए कहा "को बचची आज से नहीं को प्राणा पिता समझना और बचची की काना में रहना । ईश्वर तुम्हें सुखो र ।"

और इस के पश्चात् वहीं हुआ जो इस पुष्पी मंच पर आज के

माटक क वृषभार की हृदय भी । मर मिय पिता जममोहन मुझे नवो की तुमकी को तरह रक्खूा यो । मित्र क काय्य मुझे माना जी को ज्ञान का भी आधिक दुःख न हुआ ही मुझ न सदा क निव अमर्य को ग-इस के परप्राप्त में उन्हीं के यह रहने लगी वहाँ मुझे किसी प्रकार क कट न था ही माता जा नाना पित्त जो की स्मृति कना कमी बिस क अमर्य विवाहित करनी थी । जममोहर मर बाँझा मैं आँसूओं क कमल भी दख लेत तो मुझे क स्नेह से कपनी मोक्षी में किशन मर दुःख का कोरव पड़न, मुझे समझान और मर विख बहलान । लिय मुझे ईश्वर उधर की बा-सुनात हवी प्रकार उन को पिता ज क समान ही सुखद गांव में का बंधं प्योतत वो पर । किंतु विभाज को यह भी स्वीकार न था वह कि उन के लिय भी वहाँ से जह माता जी आ चुकी थीं—आ पिता प्रमना कर चुक थे वहाँ प न पद विन इस प्रसव अतः र श्याम कर प्रत्यक हो प्राणा ज जाना पड़ता है—निमग्गन प्राह गया कोष क्षय हो की प्राणा र गय । मैं और उनका पुत्र हय दोन क पारस्परिक प्रम न डुख ही दिन में उन की मृत्यु का उल्लेख न दिया ।

"एक दिन सायकाल की प्राणिम में बैठा तुम रो रही थी । बाहर से हड़बड़ात हुए थे और कहने लगे 'एक बहुत प्राण्य





# व्यापार-डायरेक्टरी

आवश्यक वस्तुयें निम्न पते से खरीदिये—

हेजा का अचूक  
इलाज

वैश्वसुधा

मूल्य १) प्रति  
शीशी

विश्वसुधा कार्यालय,  
नया बाजार, देहली।

विजयदशमी

का

उपहार

झालियां काटने

की मशीन

मूल्य ४०)

बाली कम्पनी

चांदनी चौक,  
देहली।

जापान की हजारी चीनों के लिए एजेंट कार्मिने, सब तरह की कपड़ों में बाने वाली वस्तुओं के भाव व पते इसमें सुझावे मवार किये हैं।

हस्ता १९३५ जापान देश व कि-संस्करण देशों में

डापरेक्टरी ब्याति प्राप्त मुख्य लिफ १) पोस्टेज डुरा, धात्र हो हने लिफिग :—

मैनेजर-लिफा बंड संघ, (५) लिफा चिस्विग, इंदौर सी० बार्ड०।

बाक लिफों के पुत्र होमा बॉक लिफा सब तरह के इलाज और इजारी, इपय करने पर भी निराश हो चुकी हैं यह हमारे अचूक दवा जो बाक लिफों को रामबाण क समाप्त है एक या दो साह क आने से अचूक गमनती होकर पुन कां सुख पावती। अधिक जलता चुपा है। परीक्षा कोजिब। एक माह की मुक्त की भीत ३:11) हाक कचे। हरिक मावर्स, कानून-मोगन स्टोर, बलीगढ़।

पिकवर प्रसेण्ट

हमारे यहां से हिन्दुस्तान में सब से कपे स्टोक से सिनेमा स्वर, चामिक, सीनरो, सुपरिर्वा इत्यादि के चिनों के मदने, निवम व प्रासविस्ट मुफ्त मंगायें। पिकवर प्रसेंटों के पते मेजने वाली को, पलों की बांध करके नयने का सेट मुफ्त विपा जावया। दि सेमूक पिकवर कम्पनी, (ग) बल्लेब चिस्विग, आसी ५० पी०

१)  
प्रतिवार

३) प्रतिवार

५) प्रति वार

दातां के सर्व रोगों के लिये  
दन्त सुधा मंजन

प्रयोग में लाइये  
विश्वसुधा कार्यालय नया बाजार, देहली।

भृगु संहिता

( योगमातर फलित कांड भाषा टीका )

संवत् १९२० से २००० तक संसार भर की जन्म कुण्डलियों का भूत, जन्मिष्य वर्तमान तीन जन्म का हाक बोल होगा। फल सुनकर लोग कहते हैं कलपिस्वादिनी सिद्ध है। बार मास के लिये रिपायसी मुह्य ३), पो० 11) फिर सो रुपये को भी न मिलेगी, पुस्तकें खोदी की हैं।

भृगु संहिता कुण्डलो लख

( भाषा टीका उदाहरण सहित )

सन्मत् १९०० से २००० तक का पृथ्वी भर क मनुष्यों की कुंडली मिलेगी। नव जन्मपथी बना लो कर रुपये की खरिदी हैं। मूल्य २) पो० 11) बार मास तक। फिर जो रुपये की मो न मिलेगी।

पता—

ज्योतिषरत्न, प० धर्मोभोमसाद मिश्र  
JHANSI आसी नं० २१

५)

प्रतिवार

## असम्ली में सरकार की हार

(पृष्ठ ४ का शेष)

बह देवकी में रक डे। डः महीने बाद सरकार कुछ नहीं देगी, फिर भी उस स्टार्क वगे का त्यो रचना करेगा।

हरिजनो के जिये पानी की व्यवस्था

मास-सुधार के लिए सरकारो चाहता का जो विवरण प्रकाशित हुआ है, उस में हरिजनों के शिष्य पानी को व्यवस्था करने की मदद खास तौर पर बिहार-उड़ीसा और आसाम के लिए हो रही गई है, क्या अन्य प्रांत भी सरकारों को भी ऐसा करने की हितायत की जायगी? मो० रत्नां का इस प्रश्न पर कार्य-समर्थन न कहा, मुझे सब बात में कोई सन्देह नहीं है कि जो सरकारें पानी को योजना कर रही हैं, उन्हें हरिजनों का भी पूरा ध्यान है।

फनेटा का पुनर्निर्माण

भी सत्यमनि न पड़ा कि फनेटा के पुनर्निर्माण के लिये क्या सरकार करेगी? कि विचार कर रही है? इस पर कार्य-समर्थन न कहा कि इसके लिए आवश्यक एकम में से जिनको के लिए हाउस की इजाजत देने की जरूरत होगी, उस पैसा किया जायगा। भी सत्यमनि न कहा कि यह निम्नवत् करने में पूर्व कि फनेटा को ही फिर से बसाया जाय या कोई और जगह चुनी जाय, क्या सरकार हाउस की राय लेगी? परन्तु कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया गया।

मेरठा-जुर्दगा पर ला-मम्बर के रिमार्क

येरडा (अजलपुर) में किन्नर-रजिस्ट्रार के गोरो द्वारा लिखा और गाँव वालों पर हाथ डाले जुम्लो पर विचार करने के लिए मंड मो विमर्शक द्वारा पेश किए जाने वाले स्थिति प्रस्ताव पर ला मम्बर ने यह कहा था कि अभी मामला बिचार योग्य है, सम्भव है यह सख्त हो जाय, उन्ही न यह मम आत्म-रक्षा के लिए किया था। इस पर भी सत्यमात्र-यसिंह न आपत्ति उठाई कि यह तो सामान्य रूप से सुझावा करने वाले अजिं को ऐसा गर्व करने की प्रेरणा देता हुआ। पर ला-मम्बर ने पूरा कथन उद्घुन करते हुए कहा कि मेरी यह मन्था नहीं थी।

अन्धमान के लिये गैरसरकारी निरोधक

होम मेम्बर सर शेरो क्रोड न-कहा कि कालेपानी (अन्धमान) के

लिये गैरसरकारी निरोधकों का एक बोर्ड नियुक्त करने के बारे में विचार हो रहा है। सर्विनों में बर्हा का बर्ग कविसर देवकी जाने बाधा है तब इस बारे में और विचार होगा।

पद और भारतीय

होम मेम्बरने एक कक्षय उप-स्थित किया जिस में बताया कि भारत-सरकार के वृत्तपर में ऊँचे मोहरी पर कितन हिन्दुस्तानी और कितन गैर हिन्दुस्तानी हैं। १९२३ में कुल १४ सफ्टरिओ, २ व्यायन्त मकेटरिओ, २० बिट्टी सेक्रेटरीया और १२ आइटर-मकेटरिओ में हिन्दु स्थापित की संख्या कमरा: २०,३ और ६ थी। अर्थात् कुल ४० मोहरी में सिर्फ ११ हिन्दुस्तानियों को मिले हुए थे। १९३० में व संख्या व कमरा: १७,४,२०,१२ और ३,१,४६ थी अर्थात् ४६ मोहरी में १२ हिन्दुस्तानी को मिले हुए थे। और १९३४ में इस का कम है १५,७५२,११ तथा ४२,६६ अर्थात् इस वर्ष भी कुल ४६ मोहरी में में सिर्फ २१ पर ही हिन्दुस्तानी हैं, शेष सब गैर हिन्दु-स्तानियों को मिले हुए हैं।

भारतीय सेना युद्ध के लिये तैयार

नही हो रही

घोर्नी मकेटरी मि० टीटनहम न कहा कि हिन्दुस्तानी फौज युद्ध के लिये तैयार हो रही है, यह सार गलत है।

भारतीय व्यापार

व्यवसाय समर्थन न बताया कि सब से हाल के प्र० के क मुताबिक (१) १९३४-३५ में भारत न वुनहलिड किंगडम (ईसैयह स्टारलायड और वेल्स) को ४७५१ करोड़ २० का मास गया, जब कि १९३३-३४ में ४७२१ करोड़ का गया था, अर्थात् ३० लाख का प्रगति गया। (२) वुनहलिड-किंगडम १९३३-३४ में ४३७३ करोड़ का मास भारत में प्राया, जब कि १९३२-३३ में ४७४३ करोड़ का प्राया था अर्थात् ३१ करोड़ का प्रगति प्राया। (३) ब्रिटिश साम्राज्य क प्रगति देशों को १९३३-३४ में भारत से २१३३ लाख का मास गया जब कि १९३३-३४ में २३ करोड़ का गया था, अर्थात् ५४१ करोड़ का कम गया। (४) साम्राज्य के अन्य देशों से १९३४-३५ में ११,६२ करोड़ का मास भारत में प्राया, जब कि १९३३-३४ में १०,११ करोड़ का प्राया था, अर्थात् १,५१ करोड़ का प्रगति प्राया। इस प्रकार साम्राज्यभरगत देशों से जाने वाले मास में ५२ करोड़ ४० की वृद्धि हुई।

व्यवसाय-समर्थन न इस बात को मंजूर किया कि हिन्दुस्तान से बाहर जो मास गया उस में जापान में ज्यादा गया। जर्मनी, फ्रांस, इटली और इन्हीं को जाने वाले मास में बहुत कमी हुई है, मगर कुछ मिता कर विदेशों को जाने वाले मास में वृद्धि हुई है।

भारतीयों का अपमान

महाया में मनाय जान वाले विदेशी सम्राट के रजन-जयन्ती सभा राह का जो बर्षेन पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ है उस में क कुछ ऐसे वाक्यों की प्रारम्भान विज्ञात हुए, जिन में भारतीयों का अपमान होता है, भी सत्यमनि न पड़ा कि क्या सरकार उस पुस्तक को जल करने या इस लिये कोई कार्यवाही करने को इरादा रखती है? इस पर सर गिरिजायकर बाबूजीयों न कहा—वर्हा रहन वाले भारतीयों न इस सम्बन्ध में उज्र उठाया या जिन पर बर्हा क गवर्नर न खर्च प्रकाश कर दिया है और अधिक में पुस्तक क उन प्रगति को निकाल दन का आश्वासन दिया है इसलिये अब और कोई कार्यवाही नहीं की जायगी।

जवान नहा दिहा जी मकता

डा० खानसाहब न पड़ा कि सामान्य में जवान की की-रुपा कानन में क्या सरकारी पोलिटिकल विभाग का हाथ नहीं है? और भी सत्यमनि न सरहदी कमीलों के प्रवेश के बारे में जानना चाह। पर मि० अन्वेल्सन ने पहले प्रश्न पर आपत्ति की और दूसरे के बारे में कहा—मेरे इस सम्बन्ध में व्याख्यान माला शुभ कर सकता है पर प्रश्न का जवाब नहीं दे सकता।

वेरडा (अजलपुर) में किन्नर रेजिमेंट के गोरी चीनीजों द्वारा मनाय गय उपाय क बारे में १०० सत्यमनि न पड़ा कि जिन लोगों पर उस से माग लेन का शुल्क था उस सब पर मुहरदना चलाया गया है और जमीनगत मना में अनुशासन का मास उरुस्त करने के लिये क्या करना चाहते हैं? परन्तु मना मन्त्री मि० टीटनहम ने जवाब देने से इन्कार कर दिया।

भारतीय सुधार के लिये विदेशी

कम्पनी

जो मासमर को जवाब देते हुए मि० सिविल न कहा कि मोलागिरी की जनम भूमि में से सुवर्ण निकालने की इजाजत गिनाहल्लेड डकलेमेंट कम्पनी लिमिटेड को दी हो रही है, जिस के शारेफरर प्रभुने और आउटलियन हैं। यह प्रश्न पर कि

## दिल्ली का व्यापार साप्ताहिक रिपोर्ट

बाँकी की सार-समाह फरियर

रही, कुछ न-कुछ परिवर्तन होन रहे। बाजार का नम वल स्थिर रहा। बाज्र बाँकी का भाव ६६।४५ ड, जब कि पिछले सप्ताह ६५।५५ थी।

कपड़े

स्थानीय मिलाँ को हालत कुछ अच्छा रही। प्राणामी क त्रिय आउटर लुभ मिले। स्थानीय कपड़ क बाजार की हालत भी पहले म अच्छा रही।

अनाज

प्रनाज के बाजार में स्थिरता रही। गहुँ का बाजार एक प्राना इयर उधर होता रहा। सरफन को लखौं ई फलन की हाबन अच्छा है। नहरी पानी विवा जा रहा है। भाव भिन्नलिखित है :—

गहुँ सरफनी	२४।।५।।
.. सरफ	२४।।
चावल	१६।
.. २	१७।
दालें उर्द	४।।
.. सुपर	४।।
.. मगर	७।

यम्बई की कपास की रिपोर्ट

कपस—(२६०१ प्रतिशत) बुधवार के रचना का अन्दाजा पहली अगस्त तक १४६०००० एकड़ था जो कि पिछले वर्ष की संख्या म ३० प्रतिशत अधिक है। इसका कारण यह बताया जाता है कि बुधवार के समय मौसम अच्छा रहा और पिछले वर्ष कपास का प्राय भी करारा बना रहा। फलन अच्छी जमी है और मौसम अनुकूल होन की वजह से अच्छी तरह बढ़ रहा है। पूर्वाय प्रति में कुछ प्रतिक्रिया वना होने का आवश्यकता प्रतीत हो रहा है। नहर क हालाँकि में फलन को कीर्ती से कुछ उत्साह पड़ता है जो कि जून मास के प्रगत को वर्षों म प्रायः सब सर सर गय हैं।

यहाँ कोई कम्पनी कपस नहीं बना हो गई या सरकार न कपस की, इस काम की कपस नहीं उठा लिया, प्रायने कहा कि यहाँ से निकलन वाले कच्चे सुवर्ण में सान का हिस्सा इतना काम होता है कि उस में मुनाफा नहीं हो सकता। फिर विदेशी कम्पनी न कपस यह काम उठाया? यह प्रश्न पर कहा,

—३०—

## श्री पं० बुद्धदेव जी और आर्य सार्वदेशिक सभा

(पृष्ठ २३ का शेष)

सम्बन्ध के भीचे बाने प्रमाण से यह सिद्ध हो जावेगा कि वह इस शास्त्र को भी पक मर्वादा में रखना चाहते थे—

‘जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाणयुगीन को पर्यन्त तोड़ने और भगान और घर बहान करके काशे में लगाने के लाने पीने को देना निर्बल करता।’

यानो भूषि दयाकर बजरिय राजा के बह ईदराज्या चाहते थे कि कोई कारोयर्ग मुनि न बनाये ताकि आदिश कोय कलाशास्त्र को लुप्त कर पूजा करने न लग जाये।

पाचवें कारय के सम्बन्ध में अभी नति जानते हैं कि ‘विरोध’ सिद्ध करने के लिए किसी लपन्ना का, जो विधि रूप हो, अंग करना सिद्ध होना चाहिये—जब नक पोसा न हो, तब तक कोई कर्म विरुद्ध कहा हो नहीं जा सकता। बहुत से काम येने होते हैं कि वेद में न उल्लेख किया है और न नियम येन कमी को शास्त्रिय परिभाषा में अग्रिष्टावलि-पिद्ध कहते हैं (neither enjoy nor prohibited) इस लिये यह निर्णय करने के लिए कि पं० बुद्धदेवजी ने कस्य कार्य धर्मोपदेश किया है अथवा धर्मोपदेश किया है या इन दोनों में अलग अलग, प्रति-पिद्ध की गयाना में आता है, अनु-शिक्षण समा क द्वारा ही होना चाहिये, ताकि नियम का अंत न हो।

इन कार्यों का बिना पर में विमर्शपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि एक ऐसी धर्मापसमा द्वारा, जिस में आर्य धर्मोपदेश पं० बुद्धदेव जी क लक्ष्मीय सिद्ध हुए हो और आर्य सार्वदेशिक सभा द्वारा नियम किए हुए हो—इस बात का निर्णय कार्य कि उन परिष्ठित जी का यह कार्य धर्म विरुद्ध था कि नहीं, नाना उपाय करके पास हुए प्रस्ताव में मैं ‘धर्म-विरुद्ध’ आरोप को निकाल दिया जाना भीति व शिष्टाचारविन्द के साथ मैं अग्रिष्टावलि के समझौता कर सकता हूँ, परन्तु धर्म विरुद्ध न होने का नवीन किया हुआ है।

मेरा अपना विचार पं० बुद्धदेवजी के सम्बन्ध में यह है कि—वह पाँच जूते बाकी उल्लेख शीघ्र तेन के अग्रयण शीघ्र है और उनका लम्बर तलसम्पत्त कार्य निष्पत्त नकनियतो ते किया हुआ, मीजुला कानून के

निकाल और असाधारणत्व की भीति और शिष्टाचार के अग्रिष्टावलि हैं हूँ। धर्म विरुद्ध मानने में मुझे संकोच है।

धर्म में निर्वहन है कि मैं ने यह लेख अपनी भाषा की भाषाज के मुताबिक लिखा है। जिस के विषय राग या श्रेय के कारण नहीं। इस लिये मैं आशा करता हूँ कि इन को ऐसा ही समझ जायेगा। है तो केवल इनका कि जो मेरा नाम है वही इनक पिता का नाम है।

## सार्वदेशिक सभा का निर्णय

प्रधान मंत्री का वक्तव्य

श्री पं० बुद्धदेव जी विचारसर के सम्बन्ध में जो आग्रहोदन ईदराज्य क शास्त्र के सम्बन्ध में उठ रहा है वह शीघ्रता के साथ काम हो जाये, इसलिये तथा इसलिय भी कि धनक स्थानी में पत्र का रहे थे कि ‘यह सभा अपनी समति शीघ्र देव’ इस सभा में १११५ क लिए अन्तराज सभा की बैठक हुआ। मीटिंग का माटिस यो २ अगस्त का जारी हुआ था और साधारणतया दूर न दूर रहने वाले को भी समा मिलने के लिए यह समय काफी न कविक था। १११५ की बैठक में पर्याप्त पं० बुद्धदेव जी उपस्थित नहीं थे परन्तु उन का वक्तव्य को साविकर्य आर्य शीर लाहौर में लगा बह नया आर्य प्रति निधि सभा पञ्जाब के प्रधान महीय का वक्तव्य भी अन्तराज सभा में सुनाय गय थे। उनक सुचने के बाद ही सभा ने अपना निर्णय दिया। पं० बुद्धदेव जी को इस निर्णय के

सम्बन्ध में दो विकल्प हैं—(१) यह निर्णय उनकी अनुपस्थिति में हुआ। (२) धर्म सम्बन्धी सम्बन्ध इस सभा को नहीं कर्णित धर्माग्र सभा को ऐसी वांछिनी थी।

दोहरी में जब पं० जी थे तब उनकी यह विचारयुक्त लक्ष्य पढ़ा जाई गई थी। मैंने पहली बात के सम्बन्ध में उसी समय पं० जी को पत्र लिख दिया था कि आर्य शीर पत्र में क्या हुआ उनके नाम में जो वक्तव्य है यदि वह उनका नहीं है भगवा उस में कोई ऐसी बात हुई गई है जो वह सार्वदेशिक सभा को लिखते तो वे उसे लिख कर मेरे दब उस पर अन्तराज सभा पुनः विचार कर लेगे परन्तु उनका जो उत्तर उहाँ तक मुझे आया है नहीं आया। २२२५ के अग्रह में कुछे उक्त क कर देखा न प्रयाद हुआ कि उसने आर्य शीर न कुछे वक्तव्य की भगवा कोई ऐसी भी बात जिस न उनका सफाई हो सकती हो, यही है परन्तु जिस भी यदि पं० बुद्धदेव जी जाते तो इस दूसर वक्तव्य में भी उहाँ ही कोई बात अपनी सफाई को लिख कर भेज समन है। सार्वदेशिक सभा का अग्रही अन्तराज सभा ता २६ सितम्बर को होने वाली है उसमें उस पर विचार कर लिया जायगा। यदि पं० जी जाते तो सत्य उपस्थित हाकर अपना बयान दे सकन है।

(२) धर्माग्र सभा में, केवल धर्म का नाम आशने मात्र न, कोई नियम, प्रवेक्षण नहीं हो सकन। धर्माग्र सभा का नियम यह है कि त्रिन सावदेशिकसभा मेरे उस पर वह विचार कर सकनी है। धर्मोप

सभा असाधारण शास्त्रीय नियमों पर विचार करने के लिये बनाई गई थी और ऐसा हो काम वह व्यर्थ तक करती रही है। वह नियम विरुद्ध साधारण और इस योग्य है कि सार्वदेशिक सभा की तो क्या ही क्या किन्तु कोई भी आर्यसमाज या प्रतिनिधि समाग्र इस पर विचार करके अपना निर्णय दे सकता है और वेद रही है। इस लिए इस शिकायत में कोई छतर नहीं है।

यदि पं० बुद्धदेव जी न कोई ऐसी बात अपनी सफाई की प्रयाद न की जो भरतक उनके वक्तव्य में नया चुकी हो। तो वे अपने ही ब्रह्म तब के वक्तव्यों के आधार पर मूल करने क अपराध में मुक्त नहीं हो सकते और ऐसी अवस्था में इस मूल के लिए पश्चात्ताप करना ही आध्यात्मिक व्यवहार हो सकता है।

मैं अन्त में समस्त आर्य पत्रकारों न प्रार्थना करता हूँ कि वे इस विषय में धर्म वाद विचार करन करें। यदि कोई मर्त बात हुई तो २६—२६ को अन्तराज सभा के बाद उसकी सूचना आर्य पत्रों को दे दी जायगी अथवा यह विषय समाप्त समझ जाये।

नारायण शशी

प्रमल

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, बलियाँ मन्थन, इंडिया।

(पृष्ठ ४ का शेष)

संक्षिप्त का समर्थन करने न इच्छा और भी बिना मान्य पड़ता है।

लड़ाई को तैयारियाँ

लड़ाई की तैयारियाँ जोरों से जारी हैं। इटालियन फौज अग्रोको-निया की सोमा तक पहुँच भी गई। मि-आवद जार्ज न तो कह ना दिया है कि ‘युगोस्लाविया अग्र किशो की अग्रोक्ष व बहाने नहीं सुनगे, इसलिये राष्ट्रसंघ को उसके विरुद्ध कड़ा कार्यवाही करना चाहिये। परन्तु भी लेबल अग्रो भी यह पत्र कर रहे हैं कि कां ऐस रास्ता निकल जाय कि इटली युद्ध में सक आये, इसके लिए उसे जो रिषायतें देनी पड़ें उस क लिये वह मिशन को तैयार करने का जो रास्ता रखते हैं। परन्तु युगोस्लाविया न ता मिशन को नीयत पर ही हमला कर दिया है, अर्थात् एक पत्र प्रतिनिधि सभा में कहा कि मिशन अग्रोस्लाविया को स्वयं हड़पना चाहता है इसलिये हजार हाथ में उसका आला से उलख नहीं है।

## १०००) नकद इनाम

सही सीलकन्द उत्तर जाली बैंक में रखा है।

		३
१		
		२

२००) पहिला इनाम सही उत्तर पर। २५०) दूसरा इनाम सही उत्तर पर। २५०) रुपये उन ५ आवधिक को जिनके उत्तर सय न पड़िते आये। २००), १०-१० रुपये के क्रमशः २० इनाम सही उत्तर पर।

नोट—इस पत्र के जाली खानों को इस प्रकार भरो कि जिनर से जोड़ें उत्तर से १५ हो।

नोट—उत्तर जाहे जिनने भी हो सय स्वीकार देवे, परन्तु प्रत्येक उत्तर के साथ १) मनिशार्डन द्वारा बनाया आदेशक है, अथवा बिना आपका उत्तर स्वीकार नहीं होगा। जो मनिशार्डन न मेल सकें वे १) को टिकट भेजें। उत्तर ३० अक्टूबर तक भेजे जा सकते हैं। मनीज ३ नवम्बर के अग्रह में प्रकाशित होगा। मैनेजर को निर्णय सर्वप्रथम होगा, समय को नूना जारी सूच होगी है। शीघ्रता कीजिये। नोट—मनिशार्डन तथा उत्तर इस पत्र से भेजो।

मैनेजर—मोतीकटवा कम्प्रीटेशन रिपार्टमेंट, आगरा।

## आधुनिक हिन्दी के तीन यग

( पृष्ठ १४ का शेष )

आवा प्रवाह दिखलाई पकृना हे ।  
कहानीका त्तर बहुत विस्तृत हो  
गया है । बीता कहानी लेखक पया  
होगय हैं । सैकड़ो सुन्दर कहा  
निर्या लिखी जा चुकी हैं ।

कविता-उपवन लक्ष्मी प्रकार के  
सुन्दर सुमन में सुखित हो उठो  
हैं । भाव्य का निर्माण हो तजो  
होइ है और तो रहा है । प्राथम्य  
साधन विषयो पर स्तनत्रि निगध  
होइ है जो प्राक प्रकाश होय है ।  
इतिहास विज्ञान अर्थशास्त्र, दृष्टान्त  
पर विधि विद्या कलाशा कलाता  
पर होइ है । द्वितीया का  
लेखक समुद्र परनिभता, कुमारलाल  
का प्राणविज्ञ है । स्वयं स्वयं लग  
भय २० मुख दिदा कलाशा का  
प्रभविजु कुमारलाल है । वह उनका र  
मध्य लक्ष्मी लोप है । उनका प्राणा  
का रक्षक कान है, उनक विचार  
का साधन इत है, उनका विचार  
तो, लोप और पुनर्गर्भ को शुद्ध  
करते हैं । इन समक उपर है कि  
व्यासाधन प्राणमयिक हो प्रेत हैं ।

दुःखार पुत्र म प्रथम कक्षचित्  
ही किंदी लेखक को पुरस्कार  
मिलाता को 'ग्रौर विलता को था,  
तो बहुत कम । दुःखारल लो  
न कथय, गंगा पुस्तकनाला माधुरी, ग्रौर  
पुत्रा निकाल कर पुरस्कार को राति  
सेवा । स्वयं सहका लेखको को  
निःशङ्क दुःखा । लेखन कथा स्वयंसाय  
का उप धारय कथन लगी, ग्रौर  
विमुख साहित्यकार पत्र प्रनक व्यक्त  
विचार पढ़न लग । मास्विक पत्र के  
संपादक को २०० तक वतन मिला,  
ग्रौर लखको को २-० स्वयं प्रति  
प्रष्ठ तक ।

मौलिक रचनाओं का दुष्प्रचार  
 लालन न डेर लाया दिया । इनमें मैं  
 बहुत सी साधारण हैं, उनमें से लेखक  
 प्रभावित, प्रकटित हुए, परन्तु दुष्प्रचार  
 लाला अपने युग के लाल समस्त सा-  
 वित्र-विचारधाराओं का लेखक बनाते  
 आते रहे हैं । गत कुछ वर्षों में  
 उन्होंने हिन्दी में दुष्प्रचार अधिक  
 मौलिक पुस्तकें प्रकाशित कीं सबम  
 अधिक कथना लेशकों का दिया ।  
 प्राचीन युग का मर्यादाहीन  
 प्रारम्भ दुष्प्रचार है, किन्तु प्रायः तब  
 दुष्प्रचारालोक के लालन सब अधिक  
 क्या हिन्दी ब्रह्मचारी का पारिवर्त्य-  
 मूल स्वप्न बाँट चुका है । इनमें  
 वर्तमान काल के श्रेष्ठ साहित्यिक भा-  
 गों, और कवच के पक्ष मौलिकविद्युत भी,  
 जिन्हें स्वयं पुष्करभार मिलाता  
 उसे हर क्षण की हलचल को जो

खूपाँ, धार जो बिन्दो-बिन्दो से  
 लिराई होकर बहानो हो गय होत है  
 उतराई भाग्य-संस्कार की धपनी  
 भग्य गौरी बनाई है, जो खान की  
 कक की होट्ट में बबुल सुविचा  
 जगत को मजदबूत है । दुआ-लाला  
 ब्राह्म से प्राप्त पुरिः सभा भयो  
 मैं एक भाषा, बह रौनी एक सा  
 पर्व-विधान, श्रेणी का पर्व-सा  
 कवि लिखे । बह उन का चोरो  
 भाव्यमय है । बह एक विपरीत  
 परिवर्तित हो । दुहा दुमा नयुक्क  
 कवि है जिस की भाषा बहुत ऊँ  
 है, जिस में परिधम चरन को प्रसा  
 दायता कवि है जो हिन्दि कविउ  
 सयरा को बरिस्ताँ करन कबह  
 उबना हो, जो प्रसाप साधन की  
 कवरना कर रहा है जो प्राना  
 सिद्ध-विधान में सगुन नही ।

गया पुनः कामला, मुझे कोरुया  
 द्वारा, जो जला, यम का ज्ञान  
 जाज है उड़ीयामा मालक लेखक।  
 न साहय्य साधना का प्रवेश न  
 हा नहीं, बाजी चला भा पाँ।  
 इस क बाजी तो फिर हिस्ती भाजीप्रो  
 की बाइ बाइ ली। मायुका क  
 प्रकाशन क एक वष बाइ स्वस्वनी  
 प्रपना गाइ निद्रा न जोरुा हुई।  
 उस ने प्रपना कवरा प्रवत्त हाला।  
 जो द्रष्ट प्रकाश प्रवत्त हुइ,  
 लसी मायुका लुधा क झाड़ें ॥  
 प्रत्यक्ष में प्रिस्तुष्टा के भाव ॥ प्रश  
 ही नय, कोर व मया तक ही ॥

तुलसीदास ने रक्षा बाबा का क्या  
कीर पग को मीलक लम्बक हा पदा  
नहीं किया, कोई सा हय का पाद हा  
नहीं छड़ा दिया प्रयुन उन्हेन  
दितो में एक कोरी भी महय प्रयु  
बात की। कड़ी कोरी के नवीन  
यग में प्राचीन वृजनापा का काय  
सुख बह ररे थी। प्राचीन कर्षण  
शोर लेबक को लोग मुन ला रहे  
थे। एक कि कोविदा न लुन हा  
पुष्पों लिलवाहार बह हरि उन्हे  
दिखी ससार क समुल्लसित हा  
कृतिवत् कलाकार में प्रेमवती राधा  
सरस्वती गोस्वामी लालादासादास,  
रत्नाकर जी पण्डितो लाल जी  
गोस्वामी की शिष्य मुष्य हैं।  
तुलसीदास ने वृजनापा की सुरक्षा  
रक्षे लल को फिर रस विवित किया।  
उनकी रचना में मौलिकता तो थी  
ही, ऊन्हेन अत्यन्त धारणा अग्रसित  
कल्पितवत्त कर दिया-रस सार  
की चमत्कृत कर दिया। उन्हेन  
शिष्यो की शैली पर सर्वप्रथम  
कोरी का एक अनोखा संवाद प्रका-  
शित करवाया। इस दोहावामी ने  
वृजनापा का सर्वप्रथम रस पुरस्कार  
दिया। किन्तु जोी उन्हेनका हा

## विधवाओं की चिन्ता

( प्रश्न १२ का शेष )

कल्याणो मे पठ कर किन्ती ही हिन्दु विषयाओ मे विधर्मिया मे सत्ताना प्राप्त कर उठे हिन्दु कल्पता माता का पद्मचक्र पर कुट्टा त करके के निय शक्ति दिया है। एक एक विषय न अधिक मे प्राथमिक सत्ता पैदा कर विपल जायियो की धर्मवृद्धि और हिन्दु जाति की अक्षययोग्य सृति की है। हिन्दु कुल मे विवाहो की सुगमता पूर्वक जायन्तया प्राप्त रखा, क साधन उनकी बढ़ती हुई मानसिक एम्पिक प्रसन्नताओं को ठाक उपचरता सलम न हो कर कराय त अन्यद्वारा गतिनी हाक मष्ट हाता जातो है।

निक जातिरु कविषो म सत्राष्ट  
 सितु बुध । यह एक ऐसी अस्तुति  
 घटना था कि हिन्दु-सत्कार में कोम  
 मच गया । बुद्ध कलियुग दुहर्ष लां  
 न उहें इस सम्मान से वाचन करन  
 क लिय आनन्दन उठाया, परन्तु  
 प्रायः समस्त हिन्दु सत्कार न इस  
 काय-धर्म की मुन कउ से प्रगला  
 की, और पुरस्कार क साहसी प्र  
 मर्ज निभाया न इस पञ्चित  
 और असामित आनन्दन की  
 आर धर्म न देकर दुःखारत्नाल  
 आर पश्यन समागत म परस्मन किया ।

दुनियाँ का यह सारा  
 कुर्र कबितल-मकिल, मानूम होता है,  
 पायक ही ज़ाबत कुर्र है। तुलाने  
 दोहाबान में महाहि बिहारी का  
 शीला बख्शर है, पर उव प्रभावना  
 नवीन ओर मर्मिक है। उस में  
 न गार हो मिर्ह, तस्वाना, प्रस्तिना  
 राजानि मिश्र शरीन, समजि निरी-  
 लण ओर अन्ना न आ। प्रश्लो  
 लना नहा हैं यह इतनी परिपुष्ट  
 बल फेरिक धार सायल है कि  
 निस्सन्देह प्राधुनिक युग में सर्वा-  
 निक अर्पे है।

परन्तु जिस प्रकार मौलिक साहित्य-युग  
सूत्रन श्रौर प्रसार की दृष्टि से दुनिया-  
व्यापि हो रहा है, उसी प्रकार यह भी  
हाल से तो दुस्तालाल का बाप का वा-  
दी है। प्रमाणिक जा प्रतीति उनकी की-  
तुवावयव में प्रकटित हुई है।  
यह वाक्य कि प्रसार पराङ्गित है।  
होगी कि हिन्दी-बाह्यर उमर के लक्षण-  
शलाक्यो, तब प्रमाणित रहेगा यह तो  
सम्भवी है कि विच्छेद ५० वर्षों-  
हजारों भाषा (क्या बोली) प्र-  
भाषा से बहुत मित्र होगी है। उसका  
सुधारणों को संस्कार में प्रवृत्त  
ग्य है। विद्यार्थी के लाल में यह  
की है। भाषा थी। सुह खड़ी हुई

1. **ਦੇਸ਼ ਸਰਕਾਰ ੨੮ ਜੂਨ**

[illegible]

प्रधान नर कोर बाग-शाना  
कस्या मी ही हा जिनके के धमर  
माहाद शूरवर, जिन्सायार  
रामाभा रामानंद मारवणा के पूज  
यल प प्रकशाना सुधर का बाग  
नख पदु क सहा है वही शक्ति  
का लिय सुन्दर वादना आधम  
विधान पुतावाहा तक क बाक  
गुर नोयन उपासक हैं विदावाय  
धनप न मनीषिणिक कार्या म  
कर मोवाव न म व २०२ का यश्व  
का मुना कर जानने क हित वन  
ल्ला है। राना न उन विषयावा  
ल्लि है का जो न म आया मे हउ  
धमिशहा क पना फरिया के आतक  
शिशवादानना का कुनिय यमिना  
म असप तुलु भोगाना है। वहा  
म विषयावा क ज ज न गोर तुलु  
मय होरा है। सब समन न विज  
वाय, मात्र हद म धनप बचन क  
सहायिता, भावना नमद सुधर  
नमद ज्ञानिया का सुख राम राजन  
दखतो है। उन समय उनके हदय  
उनके बस मे नम रहत। य जात्र  
का मारवत सनम कर प मांग म  
जुड जाता है। त्रिम मांग निलय प  
व पद रत्नल नखाने हैं वहा म  
हिन्दु कुल क लिय बाक बचन  
है। इतलिय प्रत्येक दश विधान  
गढवाल सहज जिले क होनहाय  
नमिनाल्लो का जिनके हदय म धनप  
जानि क लिय कुल मा तपु है। उ  
वाहिय कर जेओवन सजाम म एवा  
ल्लि पयो कर जेओवन क समन  
विधुर कोर आशिवाहिन नोअन  
विषयावो के पालापवहा का रवा  
कार करक उड विर सुखिनी बन  
क कलिय पुताय प्राप्त कर। य  
क विधु न कस्त हउ वत प  
पावन धनप सहन म तुव जिन  
तो देय और विषया दोनो का मग  
कस्याय को सकनो है।





सचित्र

# आज

सप्ताहिक

नं० १

पृष्ठ ४३

Illustrated AJOON

सोमवार २३ सितम्बर सन् १९३५ (० : Monday 23rd September 1935



वार्षिक मूल्य ३॥) ]

स्वादक—कृष्णचन्द्र विद्याहंकार

एक पृष्ठ का मूल्य -)

## विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ-संख्या
१ वधा घोर हुता		मुख पृष्ठ
२ सत्ताह की हाथरा		३
३ सत्ताह की हलचल		४
४ सत्पादकीय		५
५ अमेरिका का हिन्दू		७
६ अमुमति	(विगत) श्री छिन्नन्दाय	८
७ चिक रिक्कन रानो	श्री जगन्नाथ	९
मारा क प्रति	श्री रामस्वरूप	१०
८ जगवें	श्री ल-मायसाद	११
१० हमारी चित्रावलि		१२
११ महासमर के प्रयोग	श्री मरुपण यास	१३
१२ महिला जगत		१४
विवाहिन जीवन सुखो रत्न क उपाय		१५
कन्या न स्वयं पति चुना		१६
सेवा बलम वाचना	श्री शास्त्रिकरूप गौड	१७
१३ पांडिता बन्धु स्वात्मन	श्री बागोनाथ विवदा	१८
१४ आयुष्ट दे ६ विकि सा वशानिक ह	श्री पावनीप्रसाद	१९
१५ रा वास्तविक शक्ति प्रती	श्री कालीप्रसाद	२०
१६ ७०० कला	श्री वादराम	२१
१७ प्रमा क पत्र	(कहानी) श्री जगदाश्वर	२२
१८ साहित्य समालोचन		२३
१९ अपराधा कान ?	(उप-गाल)	२४
२० सिन्हा का जिनगी		२५
२१ बालकपुत्र परिपद		२६
२२ गणारिक पत्र		२७

## दांतों के रोगों को अपूर्व दवा हर रोज दांतों को साफ करने के लिये

### दन्त सुधा मंजन

के समान मजन भव तक मही निकला। इसके ३ न क प्रयोग से दांतों के सब रोग मण्डा जाते हैं। पाठारया सुद्धा स मूत का निकलना दांतों के हिलने के ड से दांत का रोग हो जाना मुख से दुगन्ध आना और हर प्रकार के मूत को दूर करके दन्त सुधा मंजन मनुष्य के मुखमय जीवन को मन्दा नाना होता है। गंध ही यह मजन एक बार मजने शत के पोषण का दूर करक मजन जैसी चमक ला देता है।



मे पर भी मुख्य ने आंस की शाखा का कवल १-२ इन्च ३-४ इन्च तक को उचित कमीशन दिया जायगा। पजेन्सी नियम न न जेजे जाते हैं। मेनेजर, विश्वसुधा कार्यालय, प्रहृन् न कार्यालय के ऊपर, नया बाजार, ३३३।

## स्त्रियों के लिए

### महान् उपयोगी पुस्तक

लेखक—पं० कृष्णकान्त पात्राचार्य

मुद्रागरीत—मूल्य ४)

और

मातुल—मूल्य ४)

नं० २८, शिवचललाल रोड, प्रयाग।

प्रस्तावनी लेखक

पञ्जाब कठरी स्वर्गीय लाला बाजपतनराय जी अपनी मृतिका लिखने हैं—

‘मैं आशा करता हूँ कि सब हिन्दू निश्चित हृदय में एकता पद करेंगे और इस विषय पर विचार करके समाज सशोधन के कार्य में तत्पर होंगे।

अनुन के प्राहकों के लिए सुषपत्र

‘सुहागरात और ‘मातुल’ नामक दोनों ग्रन्थों को एक साथ खरादन पर अनुन के प्राहकों को उपयुक्त दोनों ग्रन्थ २८ नवत ६) रुपय में ही मिलेंगे।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

## नवीन वर्ष की नवीन आयोजना

हिन्दी-जगत की एकमात्र साहित्यिक मासिक पत्रिका

### माधुरी

के रूप-रंग और गुण में विशेष परिवर्तन

१—विश्व साहित्य क प्रधान महारविर्षा का जावन और कविर्षा को साहित्यिक निरीक्षण।

२—विभिन्न साहित्यी के भिन्न भिन्न गुणों का समकालीन एवम् तुलनात्मक अध्ययन।

३—जगन् साहित्य पर प्रकति प्रभाव।

४—सिन्हा का गितात्मक स्वभाव।

५—महिला मसाल का साहित्यिक शक्ति।

—नव ग्राहक नई उपार्थ बिलकुल नया गठ रूप।

मपादन—पं० रूपनारायण पांडेय

और

गो० राकेश्वरी भटनगर एम्० एम्०

माधुरी का नव माधुरी आपका माह लगा। इसकी स्वभावो का श्रुता आपके हृदय में हृष और गव क भावा का सवार करी।

यह आपका १४ वषा स संधी करता आई है

इसका वाचिक मुख्य १॥) डमहो मुख्य ३॥) और एक प्रतीत का ॥२॥ है।

यदि आप अभी तक ग्राहक न हो तो शीघ्र हो बन जाइए

माधुरी का नववर्षीय बड़ी सज्जबत्र के साथ एक कलहाह में प्रकाशित हो जायगा। इसका मूल्य १॥) होगा, शाय हो ग्राहक कल्पित।

पत्र व्यवहार का पता—मैनेजर ‘माधुरी’ नवकिशोर प्रेम लखनऊ।

## साप्ताहिक दायरी

### १४ सितम्बर

—रुप में पुलिस ने एक दुकान पर कब्जा मारकर २४ सड़ते दवाओं को निरपराध कर दिया।

—बर्लिन की एक खबर से ज्ञात हुआ है कि बीमारी कमजोर नेहरू की कोठी में अधिक एसीला निकलने के कारण रक्षा की गति ठीक हो जान से मन की तबियत बढिठे की अपेक्षा कमजोर हो गई है। आप की तबियत कमजोर हो गया है तथा आप अधिक आराम लेने में समर्थ हो गई है।

—अन्तर्गत के प्रमाण मंत्री श्री ०. ए. ने वे पत्र की कार्यकाल विपदा पर प्रकाश डालते हुए कोटा से अपने दृष्टिकोण स्पष्ट में कहा कि 'कर्मियों की स्वयं अतिशय बुराई कायम होते हुए भी अपरोक्ष है।' अन्तर्गत अधिक डर से उन पर देख करान बाधित। ई.ओ. रा.प. और मंत्री की सेवा में से लगनी बाधित।

### १५ सितम्बर

—कोलम्बो में मि० विधायक लाला नामक एक प्रयात मिलपार की मोटर पर अन्य मोटरकार से टकरा गई। जिस से मि० लाला की मृत्यु हो गई।

—करीबी की खबर है कि महा-राजा करमीर बाक के बाबुगान द्वारा प्रकाश करण से बाधित भारत का गण।

### १६ सितम्बर

—रंगून के एक बाजार में भीषण कलह जग जान से २२ मकान जलकर धरा हो गए। उक्तलाल का अन्तर्गत ने कलह करने का कारण बताया जाता है।

—दिल्ली म्युनिसिपल कमिटी के १०० में म्युनिसिपल कमिटी के १०० की जासूसी के राजने के अन्य महाधिकार पर अधिक बाधितों लाला का प्रस्ताव रखा है।

—आमरी व निमनहक को हम से बढ़ाने तथा राजनीति व अन्य के नेतृत्वों का लाला करण के लिये एक भीषण बहुरूप की तैयारी हुई थी। इस का निरस्त रहस्य बन चुका है। इस सम्बन्ध में २४ अधिकारों पर कलह है।

—अमरी में एक प्रकाश कानून का प्रकाश गया है कि कोई भी व्यक्ति १० वर्षों की आयु की लड़की को मोहर नहीं रख सकता। इस से

१००० कर्मियों-निध कर्मियों और निधियों के लिये को कार्यगी।

—सिन्धुनगर गाँव (परापुर) में एक कोत पर दो दवाओं में हंग हो गया। जिस से एक व्यक्ति मरा और ४ घायल हो गए।

—बेन्टों में मास की सुधारों का काम जारी है। अभी तक ७५ लाख रुपये का मास प्रकृत तथा कृत रक्षाओं से निकाल कर उनके मासिकों का सेवा आ चुका है।

### १७ सितम्बर

—आजमा कौलिस ने १९३५ के सालाना निमित्त का परेहर्षित निमित्त की पारसी पर विचार करके उसे स्वीकार कर दिया।

—अधमवाणी की खबर से ज्ञात हुआ है कि बम्बई सरकार ने बा.रा.सी मास का, जिसे सरकार ने प्रस्तावित आलोचना के दिनों में अपने कर्मों में कर लिया था, कमिष को वापिस देने का फैसला कर लिया है।

### १८ सितम्बर

—कोलिका आर स्टेट में सर एम० चोक्ली का प्रस्ताव फीरोज सेवना के संशोधनकार में १६ के विवाद २४ वनों से स्वीकृत हो गया। प्रस्ताव में सरकार ने अनुसूचित किया गया है कि वह रही तथा नकली कोषियों की वित्तीय के लिये प्रमाणवाणी कानून बनाया।

—बम्बई पुलिस ने इस से आर हुए कमिस्टि हाथियों को जो २० से अधिक मजदूर नेताओं जिने में सेरत पब्लिक केस के मू००० कमिजुल भी० निम्नकर भी० ओगले कर भी शामिल हैं, के सक्तों की तलाशी की। पुलिस बहुत से आपत्तिजनक कागजात अपने साथ ले गई।

—आमरी में पुलिस कप्तान की गई काकानुसार २० सितम्बर ने पुलिस पन्त की दवा ३० फिर ४५ आयगी। इसके अनुसार कोई भी पुलिस कप्तान ने आपत्तिजनक विना जलन नहीं निकाल सकते।

## सूचना

—\*

‘साप्ताहिक कर्तुन’ का आगामी ४४वाँ प्रश्न पाठकों के समुच्च महिना-भूत के रूप में आया। ३० सितम्बर के प्रश्न की ‘कर्मण’ शुरू होगा। उम्मीदवार को साधारण प्रश्न पाठकों की सेवा में न पड़ने के महिना-भूत प्रश्न होगा। पाठक तथा पत्रक मोत करते।

—राजीवगंज आन्दोलन के सम्बन्धमें सरकार ने राबकविद्यो में दो पुलिस नेताओं का निरपराध कर दिया।

—कुशाकोर में एक आदमी ने, जो पुलिस की हिरासत में नहीं ले जाया आ रहा था, मांगने की कोशिश में असफल होकर, पुलिस छात्रों पर हमला कर दिया। पुलिस वालों ने आतंकवाद के लिये गोली चलाई जिस से एक व्यक्ति मर गया।

—सिलकी द्वीप के पास से रात में एक सारी बम्बर कटा और विदेशी आइस की ओर आकर हुआ। इस से विदेश में आतंक का गया। शहरो में तारों और वृक्षों में सड़कें पट गईं। जहाज भी मुसीबत में हैं। एक जहाज तो डूब भी गया है।

—मिमका की खबर है कि भी० सलमनरायसिंह दम० पन्त० ५० का कमेडा आरम्भी पब्लिकर प्रकाशित करने के विषय में आसन्नक प्रकाश करवा दी गया। उन्होंने पुनर्विचार के लिये प्रार्थना की है।

—बम्बई के बाजारवास करं गवर्ने में जोर का सूक्ष्म हुआ। ४४ सेक्सिड तक अमीन हिलती रही।

—मद्रास के प्रमाणिक सेने में हात हुआ है कि कोचीन बम्बर-गा के शक्ति संघर्ष के प्रमाण पर सरकार तथा कोचीन व दूककोर के दरबारों में सम्मेलन हो गया। बम्बरगा का मित्रिय कोचीन दरबार के हाथ में रहेगा।

—कोलम्बो की खबर है कि गत ४ महीनों से बम्बर नेता में पाती नहीं करवा है जिस से वहाँ सूख के आसार भी आ रहे हैं।

—आमरोहा (१० पी०) में ३ दिन की भीषण वर्षा में नदी माफों में बाढ़ का गढ़ है। बार स्थल पानी में भर पड़े हैं। सबको डूट गई हैं। लवरी भी मरने की गई है।

—बम्बई में शेपर माफों की अति-विश्व काज के लिये कर्म कर दिया गया है। बारवा, सड़ते वाले स्टार्क का मुख्य गिरा रहे थे और एक बड़ी जबरदस्त समस्या पैदा हो गई थी।

—बम्बई प्रांतीय कामिष कमिटी के इस निर्णय के कि कोशिश स्वीकार करने के सम्बन्ध में विचार करने के लिये, कोई कामफरोस न को जाय, उक्तकर कमिष आर्य-बाधियों ने कामफरोस करने जो प्रयत्न किया है उसके ११ प्रांतीय कमिष कमिटी वन विवाद अनुशासन सम्बन्धी कार्य-बाधों करेगी।

—उपरी आरिस्ट्रा के लिये नामक स्थान पर एक ऐसे बहुरूप का पता चला है, जिसने १० प्रमुख राजनीतिकों को बल करने की कोशिश की गयी थी।

—रक्षादायक को बम्बई के सरदार शर्मासिंह कबीर कमिष-कार्यसमिति की सदस्यता से स्वीकृत स्वीकार कर लिया गया है।

—लखनऊ फिलस कमिटी के सदस्यों में मतभेद बढ़ता ही आ रहा है। बाबर में सीडर श्रीमती निम्न तथा अन्य कुछ के मेम्बरों ने बार कमिष कमिटी से स्वीकृत दे दिया है।

—म्यु-गायना को जान वाले सीन मिडिज बाबुगानों में से दो यहाँ पड़ने गये हैं। तीसरा बाबुगान आपा बलहाया जाता है।

—आमरी लहलीक(पेटर) के प्रमुख अमीर लालसितनारायसिंह अपने दो मित्रों के साथ हटाया पुलिस स्टेशन का घर छोड़ रहे थे। मार्ग में कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने उन्हें लूट लिया और गोलात से मार दिया।

### २० सितम्बर

—दिल्ली के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट व डिप्टी कमिशनर ने एक विधिवे निकाल कर ता० २२ सितम्बर से एक मास के लिये दफा १४४ लागू कर दी है।

—मोरीहारी से खबर मिली है कि गारह नदी में बरतना घाट १५ फीस पर देरी नाव के उलट ३० व्यक्तियों में बह गया। एक जल हरकारी भी था ५ ऊनी किताँ की क्षय मिल चुकी, केन्द्री

असेम्बली

## बायसराय की सिफारिश ठुकरा दी गई काला कानून फिर रद्द गुरु से आखिर तक बोला ही बोला

इन सप्ताह असेम्बली के अधिवेशन में पहले दिन को ब्राइड कर को विरोध इन्हें चला नहीं रही। पहले दिन बायसराय का आग्रह हुआ, उसमें आप न विविध विषयों को नहीं करत हुए कहा—

मिलाने व सांजन का सिम्बल नदी पर का इलाका कायरी-राय से भारत सरकार न अपने अधिकार में ले लिया है। उसका स्वाभिमानी को आपनी कसमों का ही होगा, पर नियंत्रण और व्यवस्था समुदाय रूप सरकार का होगी।

अभिनव या बीनी तुर्किस्तान का सिन्धिया आभा तक अभिनवित और बाकी का प्रतिकारक का कल्याणकर कराकाम-के राजन चौक और भारत में पुराने जमाने में ना ज्वापर होना आ रहा था, वह कह गया है।

भारत का विदेशिक व्यापार के बारे में आपने न कहा कि सभार को परिचित न था ता तफ बाह्य छुआर नहीं हुआ है, उलट दस्तावेज में बाहर न आन बाह्य मात्र पर उदाहरण लगा है, फिर भी

मन्त्र भारत में सम्मिलित है, इस रूप के प्रथम बार महीने में गत वर्ष (१९३३) के बार बार महानों में था करोड़ों को माल व्याप्त गया है। असेम्बली आपने न इस साल गत वर्ष से ३० करोड़ का यह कम खर्चा है।

नय शासन-विधान का उल्लंघन करत हुए आपने इस बात पर गौरवात्मक किया कि समस्त भारत की एकजुट में बन्द करने का जो प्रयत्न अशुभिक के वचन में होता था और था पर पुरा नहीं हुआ था वह आपका बायसरायल्लो में यह कानून बनने के रूप में हुआ है।

“यह उपायों की छोड़ देने या खाली विध्वंस की भावना से विधान पर क्रमल करने को कोई लाभ न ग”। यह कहत हुए आपने दो गे से बय विधान को अपनात गाह दी—(१) इसमें भारत में आहूत होता है और ज्वाभ्यन्तरेत उपनिवेश जिस

राजनीतिक सत्ता का उपयोग कर रहे हैं उसको पूर्णरूप में मान्य करने की यह आवश्यकता और सर्वात्म्य भूमिका है। ये उपायों का छोड़ देने से तो, आपने कहा, “न हों पहले ही कुछ हाथ आया है और न अधिकार में ही कभी कोई मंत्री जाहलियत हो सकता है।”

कल्प में सामुदायिक योजनावरण की विभाषिका उपस्थित कर ‘ट्रिस्ट’ भारत की शांति, सुरक्षा व प्रशासक का नाम पर किमना ला क्रमिडेटेड बिम को स्वाकार कर नेत का प्रपील करत हुए आपने अपना भाषण समाप्त किया।

शाम का प्रमस्त्रो में बिल फिर पेश हुआ।

शिरोआ-बल के नेता आदुश भाई उदास न विरोध करत हुए कहा—

हम लोगों में पोटा-बहुत भी वैधानिक भावना है ना अपने युवक के निश्चय को अपना करत हम इस के पेश नहीं होत दंग। मत लेने पर २७ व बिकट ६७ मार्ग से बिल के पार करने का प्रस्ताव रह हो गया।

निमिनल ली अर्मेडमेंट एक्ट को रद्द कर

जिमिलल ला क्रमिडेटेड एक्ट (१९०५) के रद्द करने का अनुपन-प्रस्ताव क किया पर, साद पवि महीने व बाद, मंगलवार के फिर बहस शुरू हुई।

विधुला शर ला-मेनर सर मृण्मन्दाय सकार का भावल पुरा नहीं हो पाया था, अनः उन्होंने उस पुरा किया। उन्होंने यह स्वीकार किया कि भानकवान न ता वमन से मिट सकता है और न शासकों को त्याग के अधिकार सौंप देने से। लेकिन आवश्यकता से विवश होकर दमकारा कानून बनाने ही पड़त है।

मर्यादा और विरोध ला० शामलाल ने, जो पेशे मामलों में सफाई के वकील रह चुके हैं, जुरीपिलल रिवाजों के कुछ (शेष २६ पर) ३

## उपसमिति की रिपोर्ट ठुकराई जायगी इटली लड़ने के लिये तैयार

लड़ाई की हलफ

—पु—

इटली को सीरिया को वहाँ अभी तक कठिन ही होती आ रही है। पॉल राण्टों की जो उपसमिति बनो थी, उस को रिपोर्ट तैयार हो गई है।

रिपोर्ट में क्या

कहा जाता है कि कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में निम्न सिफारिशों की हैं—

(१) असीरियानों के शासन प्रणव को विभिन्न शाखाओं के लिये समाहकार नियुक्त किए जाय। उक्त समाहकार किस किस देश के होंगे, यह रिपोर्ट में बतलाया गया है।

(२) इटालियनों तथा अन्य विदेशियों की रक्षा को बेअसता रकी जाय और इटालियन सीमाओं की रक्षा का विस्वाव विलाया जाय।

(३) ज़िन्डिय पक्ष सामलो-लैंड के कुछ हिस्से छोड़े जाय।

गोरा देशों की सरकारें हव पर विचार कर रही हैं। ‘डिसेम्बर’ के रोम स्थित सम्मेलन से इतली के तानाशाह वीलवरण युसेलिना ने ५ राण्टों की कमेटी के प्रस्तावों के बारे में निम्न प्रकार कहा है—

राष्ट्रसभ की योजना केवल असीरियानों की नहीं बल्कि उपास-जनक भी है। ××× कमेटी ने यह समझा है कि इतली असीरियानों के रेगिस्तान का समझकर है।

रोम में यह आकाशवाणी परक रही है कि इतली का मन्त्री मंडल राष्ट्रसंघ को कमेटी द्वारा पेश की गयी समझौते की योजना को ठुकरा देगा और बात को समझौते की कैद मानचौत नहीं शुरू करेगा।

यह भी बहर है कि इतली युद्ध शुरू करने के लिये कोई नियमित योजना नहीं करेगा, बल्कि किसी ज़ेडो की यष्टन का लेकर संजाम करेगा।

५ राण्टों की कमेटी को योजनायें असीरियानों के सप्रद के पास पहुँच गई हैं। कहा जाता है कि सप्रद उक्त योजनाओं को स्वीकार कर लेगा। इस बारे में विचार करने के लिये सप्रद ने अपने मन्त्री मण्डल को एक विशेष बैठक बुलाई है।

(शेष पृष्ठ २५ पर)

## मंगांधी फिर लौटेंगे?

‘विश्वस्तान टाइम्स’ का मतलब हुआ है कि मंगांधी बहुत समयतः राजनीति में पुनः प्रवेश करेंगे।

गान्धीजी के पुनः राजनीतिक क्षेत्र में आने की सम्भावना इसलिये है कि जिन कार्यों के लिये वह युष्मक हुये थे सब अब जल जले हैं।

ग्राम-उद्योग-संघ बनने में भी वर सहा हो गया है, उसके लिये ऐसे कार्यकर्ता और चावच जुट गये हैं कि महात्मा गान्धी को अनुपस्थिति में भी काम चलता रह सकता है। हरिजन-कार्य निर्वहन रूप में हो रहा है और लाखों कार्यकर्म में भी सलोचन-जनक प्रगति हो रही है।

यह भी याद रखने की बात है कि मंगांधी हमेशा के लिए

नोलि में नहीं हटे हैं, तभी प्रलय होने समय उन्हीं यद्वा जो कि अब मैं वह समझूंगा देश को आजादी की लड़ाई में उभारी हो सकता है तभी पुनः कालिदास में आऊंगा।

लेकिन यह सब अभी है किर्क कदमका, यह सही होगी या नहीं, यह तो तभी पता चलेगा जब कि इस साल के अन्त में मंगांधी वहाँ लौटेंगे।

## पं० रामचन्द्र का अनशन

### पञ्च-बलि का विरोध

पं० रामचन्द्र शर्मा ने कलकत्ते के काली-मन्दिर में पञ्च-बलि होने के विरोध में गत ५ सितम्बर में आ-मरण धनशन शुरू कर दिया है। उन की प्रतिज्ञा है कि जकतक उस मन्दिर में पञ्च-बलि बन्द नहीं होगी, तबतक मेरा धनशन जारी रहेगा। पञ्च-बलि हिन्दू मन्त्र के विपरीत है। मंगांधी तथा रामेन्द्र बाबू के सम्मेलन का विरोध किया। लेकिन उन्होंने नहीं माना। कलकत्ते और विशेषकर मारवाड़ियों में हम की बड़ी सक्ती है। नूट समायें हो रही हैं, परन्तु नगराणियों पर अभी सत्ता बहुत कम प्रभाव पड़ा है।

श्री रामचन्द्र शर्मा का इरासा बहुत बुरा हो गया है। मुँह में से खून निकलने लगा है, १०० तक उब रहने लगा है और जो तक-बीरक हो रही है। यदि अगलन कुछ अधिक समय तक चला तो कुछ-न-कुछ अभाव प्रत्यक्ष पड़ेगा। कुछ मारवाड़ी-युवक मन्दिर पर रिफेरेन्स लगाने की भी सोच रहे हैं। इस लिये मजिस्ट्रेट ने १५४ चारा लगा दी है।

# अर्जुन

छोमबाद ता० २३ सितम्बर १९३५ ई०

अर्हन्स्य प्रतिष्ठा द्वे न दैव्यं न पलायनम्

### विशेष अधिकारों का दुरुपयोग

(ले०-इन्द्र विद्यावाचस्पति)

भारत सरकार दमन-कांजून  
(कमिश्नर का अभ्युपदेशन विभाग) को  
आपने २२ से स्वीकार करना बाहरी  
वी। अर्ध-० को बहुसंख्यक से  
हसे अस्वीकार कर दिया। चायखाना  
ने इसे फिर आपसी अर्द्धतः सिफा  
द्वारा के साथ प्रसंगिक के पास  
भेजा। अभ्युपदेशन ने फिर बहुसंख्यक  
से मिल गया। पहली बार बिरोधी  
मतों में १० को अस्वीकार १२, दूसरी  
बार वह बहु १२ को गरी। इस  
प्रकार देश के प्रतिनिधियों ने दो  
बार अपना मत स्पष्ट-रूप में प्रकट  
कर दिया।

यह तो सर्वसम्मत बात है कि वर्तमान अस्त-मौली तरह देश के प्रतिनिधियों का समीक्षा नहीं है, इसे हम प्रतिनिधियों की सभा का एक सत्र मानें, यदि इस के समी सत्रस्य सुन रूप होते। परन्तु इस समय तो समाचारों का एक बहुत बड़ा हिस्सा सरकार का नीकर है, और एक दूसरा बड़ा हिस्सा सरकार द्वारा मनोनीत होन के कारण सरकारों द्वारा है, देखी अस्त-मौली ने जो बार प्रस्तावित समन-कानून की स्वीकार करन से इकार कर दिया। जिसका कमिशन सर्वथा स्पष्ट है कि देश समन-कानून की नहीं चाहता।

किसी भी सभ्य देश में प्रत्यक्षपक्षी के दोबार विच्छेद मत प्रकाशन का यह परिणाम होता कि वह प्रस्ताव मूल की बड़ी गहराई में दफन किया जाता, परन्तु भारतीय समरकालों की मूल में, यहाँ परस्पर विच्छेद प्रगल्भीता बतों विन रात सम्भव होती विचारों जैसे । प्रत्यक्षपक्षी द्वारा दोबार उन्नतों हुए विच्छेद

भयभीत सहीसे प्रकाशित करके बायस  
नये है बस प्रस्ताव को स्वीकृति का  
सिफारिश के साथ कॉन्सिडर माव  
स्टेट में भेज दिया है। कॉन्सिडर माव  
स्टेट सरकार का नक़्क़ समझा जाता  
है, इस कारण समस्याएँ, वहाँ दमन  
कानून पाँच होजाय, वरन् उससे  
बढ़ लख न होगा कि देश उस काले  
कानून को स्वीकार करता है। कॉन्सिडर  
माव स्टेट की तो उपयोगिता ही  
यह है कि सरकार को सर्वसाधारण  
क मोहकन के बिन्दु सहारा मिलता  
रहें, उसका मत प्रजा का मत नहीं  
है वह जो कुछ घनी गोमों का मत  
है। प्राणा तो यह की जाना है कि  
ऐसी कॉन्सिडर माव स्टेट भी शायद  
दमन कानून को अस्वीकार करे।

फिर क्या होगा ?

फिर वायसराय प्रहोदय उस कानून को अपने विशेष अधिकार से रद्दीकार करके कानून का पुनर्गठन ही स्वीकार्य होगा जो सारा है कि देश के सामन ऐसी क्या विषय परिस्थिति सामने है कि सामन का सर्वथा तिरस्कार करके वायसराय अपने विशेष अधिकारों का उपयोग ले लाये, और तमन कानून का रद्दीकार कर <sup>अ</sup> न ग्य क सम्मर कोई गम्बहिर है, और न बाहिर से ही सामन्य हो रहा है। इसा प्रकार परिस्थिति तो दो ही तरह स पैदा हो सकती है। सम्मर स या बाहिर न। देश का सामनिक जीवन बिल्कुल नारक्षरगति म चलता प्रतीत होता है, और भारत की सामानों को कोई खतरा नहीं, फिर वायसराय को अपने विशेष अधिकार का प्रयोग की आवश्यकता क्यों प्रतीत है ?

नय शासन विधान में भी वायु सहाय को दो विशेष अधिकार दिए गये हैं, यह धारा सभा द्वारा स्वीकार किए गये प्रस्ताव को रद्द (Veto) कर सकता है और धारा सभा द्वारा अर्थात्कार किए गये प्रस्ताव को स्वीकार (Certify) कर सकता है। यह दोनों विशेष अधिकार हम नये विधान में भी प्राप्त रहेंगे। इन विशेष अधिकारों पर प्रारम्भ से भारत-वासियों को

धीरे से आलोक किया गया है। कहा  
 गया है कि इन विषय प्रतिकारों  
 से तो राजा क मन का सर्वथा वि-  
 शांत होना है, उसका कोई भ्रम्य ह  
 नहीं रहता। इस आलोक का बनर  
 सरकार की ओर से यही विश्वास  
 जाता है और मन विद्याओं में शिक्षा  
 भी प्राप्त है कि यह विशेष अधिकार  
 बहुत कम, विशेष अवस्थाओं में  
 ही यथाकार में लाय जायेंगे, परन्तु  
 हम देखते हैं कि इन अवस्थाओं की  
 विशेषता का निर्णय सर्वथा  
 अधिकारियों की मर्जी पर है और  
 उनका सर्वथा भ्रम नहीं है। हम  
 भी इस विशेष प्रस्थिति नहीं हैं,  
 कोसम दमन-कायुध का सर्वथा  
 विरुद्ध है, फिर भी आश्चर्य है कि  
 सायसाय वरम श्रपनी मुद्गर डोरा  
 आगे करके बरमा आवाशक समझत

ट्रिडिग फर्मेमेंट वाहती है कि भारत का भी उसकी भाग पर विचार्यमा गर-भारत दुबुहल है कि भारत-वा सिधो का नय शासन विधान का प्रारम्भ विश्वास कीर सन्धोग की विवसाय न करना चाहिये । परन्तु विश्वास कीर सहयोग ऐस बात बरग में कैसे पदा हो सकन ह । शीघ्र हो भारत पर नय शासन-विधान का परीक्षण होये-गाम-है । उस के लिय शान्ति कीर परवरर विश्वास क वायुमन्त्र की भावस्यकता है, परन्तु यही उन का कोरै जिन्ह हो मनी है, और न काइ इच्छा ही प्रवीन होती है । यदि भारत के राजनीतिक वायुमन्त्र की अग्रगण्य कोर अग्रिवांस पूर्ण करेग का कोइ सर्वोच्छेष्ट साधन हो सकता या, तो वह दमन-काट्टी का असेमबोली से हो बार कभीच्छिन्न होन पर ही वायवरग्य द्वारा स्वा-दृत करना या, तांहे बिलिगइन न भारत कोछुने मे पूर्ण बड ही कर दिया । भारत आप क अग्रिवांस कास को विरक्त कर न भुलाया ।

— ३० —

## सम्पादकीय विचार

## जयपुर के अधिकागियो से

भी जमनालालजी आज ने सीकर

योग जयपुर के ग्रांट आदालत के सम्बन्ध में एक विज्ञप्ति प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने लिखा है—

अब तक उन कथो का दूर नहीं किया जाता तब तक उनको मान लिये जाता नहीं मिला सख्तो, जो कि धार्मिक उदात्त का चिह्न है। समुद्र किनारा हा किसी राज्य का प्रत्यक्ष नामन है। मीकर के वर्तमान शासन के सम्बन्ध में यह लिखा जाी है कि यहाँ क शासक न जो इस बात को महसूस कर लिया है और उसे छोड़ा है कि व यथाशक्ति उन कथो का दूर करने का यत्न करे ग यहाँ ज अपर के महाराजा जो विलायत के लीट बना है दलखिय बादा का ज सक्ता है कि वह इस विषय में पूर्ण विश्वसनीय गत तबो अन्यथा ही होना पड़े। व जपूतों ने यह अनुभव कर लिया प्रान्त होना है कि जाँटी को कृष्ण मर्ग का नाम सम उचित है और उन्हे क मिला नहीं कहा जा सकता कोरे। बहुत सता यह मानते है कि जाँटी को भी नागरिका के व दलखिय मिलन वादियों के कि उनको मिळे हुए है।

क्या हम आशा कर कि धीरुत  
बजाज की यह अवाल बहू कानैपर  
नहीं पड़ेगी और राज्य के अधिकारी  
क्रियात्मक रूप से इसका उत्तर  
देंगे ।

स्त्रिया पर से पानन्दो उठी

कॉलिन क्रॉफ़्टस्टन महिलाओं को  
पर से समाधिधार की पाषाण  
उठा कर बहुत एक उचित  
किया है । दवायु दूसके लिए काफी  
होया है । हाँ, यह प्रत्यक्ष महिला के  
लिए अपने अपने विचार की नीति  
है परन्तु स्त्री होने के कारण हम  
पर का प्रतिगम अत्यन्त अवांछित  
नीय है । इस प्रतिगम का प्रत्यक्ष  
अर्थ यह है कि हम स्त्री का पुरुष  
की अपेक्षा कम मान्य दन है और  
उसे अयोग्य मानते हैं । इस प्र  
को पास का कॉलिन क्रॉफ़्ट उन्  
उचित हो किया है । फील्डर

### अनवरत जागरूकता !

यसराय न अमरभक्त का भाषण में 'जबोबार प्रवासी भारतीयों के प्रश्न पर विचार करते हुए अमेरिका के सदस्यों का यह विस्वास दिलाया है कि मेरी सरकार इस मामल में अनवरत जागरूकता और उद्दिगमता के साथ काम ले रही है।

जबोबार कोरि बहुत बड़ा मुल्क नहीं है। यह ब्रिटिश सरकार का उपनिवेश है। इस लिये वहाँ भारतीयों के रूप का यदि ब्रिटिश सरकार चाहत तो एकदम रोक सकती है। जजोबार के भारतीयों का झगड़ो इतिहास भी पल-जा क शब्दों में कुछ और अपमान की कहानी है। जबोबार के लॉग-सूचना विधानों तो निरिच्छ रूप से जानीय पक्षगत न पूर्ण है। यह मामला हाल में मजल रहा है। ब्रिटिश कौन्सिलिजि सचिव भी कह रहे हैं लॉग अब तक समस्या हल नहीं हुई। यदि किसी देश में ब्रिटन को गोरी प्रजा के लिये ऐम हो नियम बना दिये जायें तो क्या ब्रिटिश सरकार भी ऐसा ही अनवरत जागरूकता दिखायेंगे जमा कि अब भारत सरकार दिखा रहा है और जिससे एक क्षुब्ध तक भी समस्या का हल नहीं हुआ। हमें निश्चय है कि यदि अब प्रजा के लिये कहीं गम अपमानजनक कानून बन जायें तो ब्रिटिश सरकार भारतक कुछ न उठा रहेगी और उस में बढ़ना ठन का भी निश्चय सुर-जर लगी। लॉग भारत सरकार का अनवरत जागरूकता किन्ना भी अन-र स्वतन्त्र राष्ट्र को अनवरत जागरूकता में भिन होनी चाहिये।

गधा-नयनो कैसे मनाय ?

राष्ट्रपति राज-उपसाधन सख्तपूर्ण रूप में अपाण की है। वह लाम्हा सनाह नमोगेह में राष्ट्रपति सन्नद्ध २० गांधी की जयन्ता और गत मलाह प्रधिक से 'गप कली और हाथ बुनी। म० गांधी स्मिदभाष

यह के सन्ध उपासक हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन हरिद्वी की मंवा में बीता है। इसलिये यदि हम मंगाधी को जयन्ती सन्ध हृदय से मनाता उन अधिकधिक मात्रा में खरीदने क सिखा और कहीं कहीं उपाय नहीं है। खर का कचिकाश माग किसानों और बुनकरों को ही मिलता है। इसलिये म० गांधी के जयन्ती सनाह को मनाते समय यदि हम अधिकधिक खरीदेंगे, तो म० गांधी के कार्य में भी पूर्ण कहा-यता द सकेंगे।

### अन्त में पशु हा

मनुष्य अन-में पशु हो रहा और निजय उसी की होमी जिस का पार्श्विक बल अधिक होता। इसी और अशोकोनिया की जर्वा के प्रमय में अत्यन्त के जो वेल्स न राष्ट्रपति में उक्त शब्द बहे थे। आज की वस्तुस्थिति की हलसे अन्धी आलाचना हो नहीं सकती। यूरोप की सम्पूर्ण राजनीति पर, फिर वह चाहे इसका अशोकोनिया सम्बन्धी हा या किसी अन्य साम्राज्यवादी देश क सम्बन्ध में हो ये शब्द पूर्णन चरितार्थ होते हैं। आज जिसकी लाठी उसको मेल की हा उक्ति सर्वत्र चलिता है। इंग्लिश बहुत म राग परन्तु हैं और यहुन से साधारणवाही। क्रोड सचिदा के वाद मा मनुष्य की सस्कृति का विकास पृथक् त हा जा सता है। इसमें बड़ कर मानव जाति के लक्ष्मण और अपमान की बात होगी। क्या उपाय के राजनातिड कुछ अनुभव करेंगे ?

### पंजाब में जहर

पंजाब में साम्राज्यिकता का विप बढता जा रहा है। शहीदज प्राम्दालन क अथम विप्रेतदर पारजमात अला शाह ने हिन्दु उद्दिगार का नया आन्दोलन शुरू किया है। उन्होंने एक सभा में सब धार्माओं त हाथ उठा कर प्रतिज्ञा कराई है कि वे न तो खुद किसी हिन्दू को उक्ताम न लोहा खरीदेंगे और न अपनी कियों का हिन्दुओं का/ काय पर मेजेने।

यह आन्दोलन अत्यन्त निन्दार्थ और खराब से मरा है। इस मुसलमान नेताओं के यह समझ लेना चाहिये कि वे हिन्दुओं के सहयोग क बिना जी नडा सकेंगे। यदि यह बीमारी कही हिन्दुओं में फैल जाय, तो मुसलमानों की भागन का उपाय हमें यह विचार है कि यह आन्दोलन सफल न होगा। मुसलमान जनता अपनी भीली नहीं है कि इस सामग्रो विक नेताओं के बहकाव में जा कर वह अपना साम्राज्य न सोच सके। जिन से पीड़ितों न उस का लेनेम हो रहा है वह कुछ नहीं सकतों। हाँ इसका अर्थव्यय है कि इस प्रकार क आन्दोलन परस्पर विप फेला देते हैं, जो अन्त में कभी न कभी दुस्परिक्ताम ही उत्पन्न करेंगे। क्या कभी इन साम्राज्यिक नेताओं में समझ आवगी और क्या मुसलमानों के राष्ट्रीय नेता हम मठ करन क लिय प्रयत्न शीघ्र होने का कर्तव्य सम्मर्ग ?

यात्रियों से दुर्घटना

इस्टर्नमिडल रेलवे न भी मृणाल कान्ति घोष से क्या माग ली, क्यों कि रेलवे अधिकारियों ने उन के साथ दुर्घटना किया था।

रत्न कश्मिकरियों का यात्रियों और बांस कर तोसर दौरे क यात्रियों के साथ दुर्घटना होने नवी बीज नह है। इस की आम जनता को बहुत शिक्कावत है। भी मृणालकाति घोष समर्थ और शक्ति सम्पन्न हैं। वे अपने अधिकारों को समझते हैं। उन्होंने रेलवे पर शास हाथ कर दिया और रेलवे में माफी मांग ला। लेकिन लाम्हा अग्रिमिल असमर्थ यात्रा तो अपने अधिकारों को पह चानते नही और जा पहचानते भी ह वे हलसे समर्थ नहीं हैं कि रत्न पर मुकदमा चला सके। लेकिन रत्न-अधिकारियों को इसो वशहवा से यह शिक्का लेनी चाहिये कि रत्न-अधिकार जा हलने उन्मिचितों से अपमानजनक व्यवहार करते हैं, तो सर्वसाधारण में तो न जाने किस बुरी तरह परा आते होंगे। रत्न-अधिकारियों का कर्तव्य है कि वे यात्रियों को कुछ पड़ जाने वाले कर्मचारियों पर विशेष निगरानी करें और जो भी कोई इस का अपराधी पाया जाय, उसे पर्याप्त हथिय दिया जाय।

### खास में भी कम

कमिश्नर कमेटी न यह निश्चय किया था कि कमिश्नर के १० लाख सदस्य बन जान चाहिये। लेकिन अभी तक ५ लाख भी सदस्य नहीं बने, यह हमारे लिय अत्यन्त खेद का विषय है। कमिश्नर के नये शासन विधान के अनुसार २००० से कम सदस्य अपना एक भी प्रतिनिधि नहीं चुन सकत। एक दो मात पेने भी हैं, जिनके सदस्यों की संख्या २००० से कम है। इस कानून के अनुसार उन पार्ती का एक भी प्रतिनिधि कलकल कमिश्नर नहीं जा सकेंगे। यह अप-स्था अर्थव्यय शोचनीय है। कांग्रेस हमारे राष्ट्र की सर्वोच्च नीतिक सत्य है। उसके १० लाख सदस्य मा नहीं बह हुआ। कांग्रेस और पारस्परिक विद्वेष्ट का स्पष्ट परिणाम है। सदी स्थिति पर कमिश्नर नता में व्यक्तिगत सचय न कमिश्नर की स्थिति को काय कर दिया है। लोगों का कमिश्नर के लिए प्रेम है, यह हमारे विश्वास है यदि वे सदस्य नहीं बने तो इसका कोरष केवल यह है कि अपने नेमाणा के वसत्रापूर्ण भागों से वह ऊब गई है। क्या कांसी कार्यकर्ता और पाल होंगे ?

निधोय म कमी

जनवरी १९३५ म जून तक ई महीना के व्यापारिक आंकड़ों आ-टावा पैकट के बाव जितने से भारत का व्यापार के बाव जितने से भारत अच्छी तरह प्रभाव डालने हैं। उनही दखन में प्रदान होता है कि जितने की भारतीय कव्व माल की खरीद में उत्तरोत्तर कमी हा हो रही है। कपाल का खरीद में १९३४ की अपेक्षा बहुत कम हुई है। इसी प्रकार अन्य मालों में भी कमी हुई है। उदाहरण क लिए ऊन ६००० पौं जूट २००० टन, आलसी ४००० टन कच्चा तम्बाकू २००००० पॉड, जूट के कपड़े ३२०००० गज, बिना कान्ना चमड़ा २०००० टन, कच्चा लोहा ( इस पर बुगो भी नहीं लगता ) १०००० टन विपुले वर्ष की अपेक्षा कम खरीदा गया है। ये सबभार्य प्रमाण कहानी स्वय को कह रही हैं। क्या अब भी सरकार यह कहन का दावा करती है कि कोटावा पैकट से भारत को दानि नहीं हुई।

मनुष्य राष्ट्र, अमेरिका के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, सैनेटर लोग को किसी भी गैरकोशिश्वारी की ओर आकर्षित करने प्रयत्न करने पर भी उन को खुलु हो गई। श्री लोग बड़े असाधारण हठ के राजनीतिज्ञ थे। संयुक्त राष्ट्र में लोक तन्त्र की स्थापना बड़ी प्रयत्नशील है, जब से यह एक स्वतन्त्र राष्ट्र बना है तब से वहाँ लोकतन्त्र स्थापन-प्रयाशी हो रही है, परन्तु श्री लोग को मुनेस्त्रिमी और हिटलर जैसी तानाशाही में अधिक विश्वास था। आप लुईसियाना प्रान्त के रहने वाले थे और कम से कम उस प्रान्त में तो आप की तानाशाही स्थापित हो ही चुकी थी। अभी अन्य विषय पहले आप ने यह घोषणा की थी कि राष्ट्रपति कुवरेट का कार्यकाल समाप्त होना पर आप माफी राष्ट्रपति का निर्वाचन होगा तो आप इस पद के लिये उम्मीदवार बनेंगे। इस समय को देख के काफी समझी फौजी भी क्या कि होगा। यह श्रमाला था कि आप यह राष्ट्रपति हो गये ता कुवरेट मुनेस्त्रिमी या हिटलर ही प्रभावित होग और संयुक्त राष्ट्र में लोकतन्त्र का खाली हो जायेगा। परन्तु इस धारणा का इस विन भी न भीत थाप्यो कि किसी विचाराने उन्हें अपनी गलती का मिशाला बमाल कुवरेट लोक में पहुँचा दिया।

सैनेटर लोग का जन्म अगस्त सन् १८३२ में हुआ था और इस प्रकार संयुक्त के समय उनका उम्र बस ७ वर्ष का था थी। इन का जन्म एक गरीब घर में हुआ था और लघुकाल में उन्होंने अलबार्ता या पेटेंट व्यापक बचन का भी काम किया था। उन का विद्याभ्यसन भी अधूरा ही रह गया था। यह विश्वविद्यालय तक पहुँच तीव्र परन्तु बी० ए पास न कर सके। और उन्होंने स्कालन की परीक्षा पास कर की बड़ी प्रशंसा करने लगे।

सन् १९२७ में श्री लोग लुईसियाना प्रान्त की गवर्नर के लिए लखे हुए, परन्तु निर्वाचित नहीं हुए। १९२८ में वह दूसरी बार फिर लखे हुए और इस बार की बार निर्वाचित भी हो गए। गवर्नरी का कार्यकाल समाप्त होने में थोड़े समय की दर थी कि वह संयुक्त राष्ट्र की सैनेटर (पार्टीमेंट की बड़ी सम्रा) की सम्पत्ति के लिए कुछ हुए और निर्वाचित भी हो गए। इस पर उन के नाथ गवर्नर श्री पेटरर न कहा कि सैनेटर हो जाने के कारण भी लोग की गवर्नरी का प्रत्यक्ष आत्मता हो गया, और इस लिए सब में गवर्नर हू। लेकिन श्री लोग इस तरह के कानून काटने के लिये पावत्य न थे। उन्होंने

## अमेरिका के हिटलर की हत्या

श्री ह्यू० पी० लोग के जीवन पर कुछ प्रकाश

न कोल कुम्भ निकाल दिया कि अगर श्री पेटरर पार्टमेंट में आ कर अपने को गवर्नर बने तो पुलिस उनके निरन्तर कर दे। और इस बगल में कि कहीं पार्टी की प्रशंसा का पालन करने में पक्षोपेक्ष न करे, उन्होंने न कोल को भी बुला लिया।

आपनी पेसी ही हरकतों के कारण श्री लोग तानाशाही के समर्थक समझे जाते थे। एक बार उन्होंने लुईसियाना के किसानों के नाम भ्रामा निकाल दी थी कि इस वर्ष को कपास की खेती न करे ता कि खेती भीतल न हो जाय। इसी तरह एक बार उन्होंने लुईसियाना की पल्लेन में यह कानून पास करा दिया था कि यदि कुवरेट को राज कुवरेट में कोई निश्चय हो तो १०३३ साल की मोहकत अवश्य दे दी जाय। इस में लोगों में इतनी माराजगी फैली कि दुकानदारों ने यह इरादा कर लिया कि इस उधार बचता ही बन्द कर देंगे। उन्होंने अपनी मनीय पार्टीमेंट से यह अधिकार भी प्राप्त कर लिया था कि वह गैस पाना निश्चयी आदि की उद्देशन निश्चित कर सकेंगे, और फिर उन्होंने कम्युनिज्म के नाम यह फाला निकाल दिया था कि यह तो कीरन अपनी बीजों की बीमल खूब घटाओ, नहीं ता हम जबरदस्ती पंग देंगे।

आ लोग फिर दूसरा बार तो लुईसियाना की गवर्नरी के लिये लखे नहीं हुए, परन्तु उन्होंने अपने एक पिटरर को गवर्नर निवाचन करा दिया था और उस द्वारा स्वयं गवर्नर न रहने पर भी वास्तव में शासन बड़ी करत थे। लुईसियाना की पार्टीमेंट में थोड़े उन के यात्र करी सक्कर भरे हुए थे और म्युनिस्त्रिमी को भाँति में भा उन्होंने अपने पिटरर को भ्रमाल कर दी थी।

उन के इतन अधिक प्रभावशाली होने का कारण यह था कि उन्होंने कई बार्ते पेसी की थी जिन में साधारण लोग जनता में व बड़े लोकप्रिय हो गये थे। वदाहरणन उन्होंने एक स्थली में पक्षेक्ष लखका था किनाये सक्कर से मुक्त मिलेंगी। कुछ समय से उन्होंने 'समिति प्रिया जन' का आन्दोलन चला रक्खा था

जिस का मुख्य सिद्धान्त यह था कि थना लोगों के पास अधिक उपयोग न रहने दिया जाय ताकि गरीबों को अधिक उपयोग मिल सक। इस का उपयोग यह वह बनाने थे कि 'व्यय बाँट आत्मिया' पर खूब मारी हरकतें देख सगाया जाय जब किसी थनी व्यक्ति की मृत्यु हो तो उस के उत्तराधिकारी न सरकार भारी रकम वसूल कर और यह नियम बना दिया जाय कि अगर किसी की वारिक प्राय इतने में अधिक होगी या किसी कल की कुल सम्पत्ति मृत्यु



श्री १००० लोग से अधिक होगी तो बाकी रकम सरकार का हो जायेगा। इस धानालन में उन सम्रा को भी सख्या ११ करोड बताई जाती है और सारे देश भर से उन के सम्पत्ति के सम्पत्ति विभाजन कल्य कायम हो गये थे। इस प्रकार के आन्दोलन के समर्थकों को सख्या काका होना बाई बाईवर्ष की बात ता हो नहीं सकना।

श्री लोग सागरा और मगर लोग में यह धानालन उत्पन्न करने के लिय कि वह उन की प्रेमी को हैं इतने उत्तुल्ल करने थे कि उन के मनुष्य भाषण करने समय जान वृक कर गलत और गलत भाषा का व्यवहार कर लेते। उन्होंने अपने खाल लाल अनुयायियों का एक संगठित दल बना दिया था और उन अपने प्रावेष्ट रक्का कहते थे। अक्सर यह प्रश्न पौच पौच हजार समिति का साथ लेकर फुल मंच देखने जाया करने या

श्री लोग कुत्तल के बड़े मोकीनी थे। एक बार उन्होंने एक कुत्तल के खिलाड़ी को लुईसियाना की पार्टीमेंट

का सम्बर बना दिया। विचारियों की एक पत्रिका न उन क इस बाय की प्रतिकूल प्रभावना कर दी। इस पर उन्होंने उस पत्रिका की बन्द करा दिया और कहा कि 'लुईसियाना का विश्वविद्यालय मरा विश्वविद्यालय है, मैं यह सहन नहीं कर सकना कि कोई विचार्य मेरी धानालन कर अपना धानालन रोक के लिये प्रयास मुझ एक सहज विचार्यो को भी विश्वविद्यालय में निकाल 'न पट' तो मुझे उसमें भी सकन्य न होगा।

यदि ऐसा भवित संयुक्त राष्ट्र का राष्ट्रपति हो जाता ता उस के दूसरा हिस्सा बन जाय किमे से डर हो सकता है।

हमार

मेफ डिपोजिट वॉल्ट  
दम्बने के लिये

आपकी

जिमन्त्रण

किना समय अपना विचार

दल चरित्रकी में मेन्टल बरक के फ्रिजिड वाल अवसर न लिये यह बा न येन है, जित पर प्राण व पातो का अक्षर नहा हो सकना। प्राण धन्य कालो जतर जराहरण व दस्तावेज हमर रचित और प्राण पाना बारा व डक बा क्रि के भय म तुन हो जाये। इस लिय वर केवल यहाँ न लिखे गना है। सप न लन पर भा प्राण २२० म व वत्र शाम तक किसी समय उसका कोन सकने हैं।

वाल्न न न वाक एक विशेष गना हो जाता है जिसकी दूसरी गना होता। सिम्य व टल न वाक के कय यल्ल उसका नहा लाल सकता। हजारो मर-नारिशी धनन भीमल जवर जवरहात इसमें रख कर चन का नाव सामोने है फिर प्राण कय वक क अधिकार न लाभ नह उगन और उनका रक्षा के लिय विनियन रहते हैं।

मेन्टल वेक आफ इन्डिया  
चिन्मिड

चरित्रा च न नृवा

बाजार गिर रहा है। परोक्ष कीजिये  
पगमोना

पुलकोवर रस्तर होज बाकि ऊनी सभन का। कैलाश नीरिस फेदरी अन्धालो (५० यी०)



## अनुभूति

इस मत दूखो ! निर्दय कौन होता है, पहिचान चुका,  
कैसे हस कर उठकरा देत है, यह तो मैं जान चुका,  
प्रचित न हो कौला होता है दयाहीन पायाव दिया,  
भिःसिद्धी धाँधो का कीतुक अब तो मन देख लिया ।

देखा है मैं नारीब के,  
रोन पर हँस-हस गाता ।  
कोई तबड़े इधर-उधर,  
झपने जुझो पर इतराना ।  
जब तन जाये मायवीन के,  
दुःखो का ताना बाना ।  
तब प्रमुदित बाना, प्रमुदित हो-  
उन भाँहो पर मुलकाना ।

क थ कठ से 'मूल' है क्या ? सुन शिरिक का बड़ जाना,  
झोर किसी क कांमल उर का पल भर में सुरक्षा जाना ।  
गला जले प्यास प्राणी को सूक प्यास न झकुलाना,  
धूर्ण पात्र लेकर हाथो में एक बूँद को तरसाना ।

टुक-टुक हो जाय कलेजा,  
कर निरागा आबितान ।  
रो-रो कर सोये प्रायो को,  
रुकी जाती हो चढकन ।  
कोई उन का झर छोड़ कर,  
सुये मग में आ जाये ।  
उपल-उपल हो हूँ, कहाँ फिर-  
'शानि शानि' यह सुन पाये ।

४ तब देखा है:-

मध्यर गति न घाट-भीर आ जाना,  
जादू वालो उन झल्लिम 'प्यार कक गो' कह जाना ।

—भी जिजेन्द्रनाथ मिश्र 'मिथुन'

## बिक रिखत रानी

( तर्ज आरता )

बिक रिखत रानी, बिक रिखत रानी  
आ कैह बन उपासक, सहे परशानी  
बिक रिखत रानी ॥

पद झपड़ हो जाय, साथ अभिमान  
यमा बन अधर्म, रानी ब्रह्मना  
बिक रिखत रानी ॥

ब्या कुच कर जाय, नूर बन दानी  
सहाचारा दुष्कर्मी, फिसल जाय भयान  
बिक रिखत रानी ॥

धोर चारता ठाँ, ब्याई निरारो  
साह चार बन जाये, धोर बरमानी  
बिक रिखत रानी ॥

नाच, रग मन भाँ, कर नश पानी  
उर्वा-नार मचाये, समति सहजानी  
बिक रिखत रानी ॥

ज्वाँ झार त्याँ जाय, व्यय झाँ छानी  
सर चुन-चुन पड़ताय निरुक्त जिन्दगानी  
बिक रिखत रानी ॥

तरी झामद आसन, जिस न ला जानी  
पक्क चल गहि पाव, अरत हूल-धानी  
बिक रिखत रानी ॥

काट हूर किसान, तुम न महारानी  
'जानन' प्रभू का निश दिन रहे महारानी  
—भी जगन्नाथ उपाध्याय ।

## —: नारी के प्रति :—

( १ )

प्रेममय है नारी तुम्हारा,  
जीवन, सख, सुन्दर वेप !  
मातृ-मुह मे छाई तुम जग को,  
देने प्रेम का चरु सखेय ॥

( २ )

पवित्र हृदय, कोमल मुख से,  
बुझा-बुझा करते सखर !  
वात स्वल्प में खप को देवी,  
यह विश्व-मम संवेक्ष मकर ॥

( ३ )

इस पर भी ये तर करते हैं,  
तुम पर प्रगणित शब्द प्रहार !  
धन्य मारि-जाति सब सहकर भी,  
करती तुम उन का उपकार ॥

( ४ )

मूर स्वार्थ-रत विश्व-मध्य तुम,  
कैलाश हो मुझ विशाल !  
अमर सखता का, सेवा का-  
देन अमय क्षण सब काळ ॥

( ५ )

बड़ा प्रत्यय पुनर्कित रहता,  
करन को सेवा प्रतिष्ठ !  
खमम सकने है सहृदय ही,  
उस क क्षण य भाव गहन ॥

( ६ )

द्वार्य-भोम, उत्सुक समझे क्या,  
तुम अमल का मीरव गान !  
सेवा-योगिन ! प्रेम मुक्ति-  
तुम्हारे सब कृत्यों का ज्ञान !  
—भी रामस्वरूप कर्मा, देहरादून ।

## जगावे

हे कल्पेश, सुना बिनती हम थोड़ तुम्हें कर जेड़ सुनोयें ।  
देख दुःखी यह काज बड़ा, इसका भव प्राप न धोर दवायें ॥  
फूट मिट धर की धर न, सब आपस में प्रति नह बढायें ।  
कर्म करे जग में रह क, हम होनक के हतमाय 'जगावे' ॥१॥

ज्ञान प्रमा चमके उर में, मद, मोह निशा तम दूर भयायें ।  
दीन, किसान, झुलत, दुखी, इन के दुःख में हम हाथ बढायें ॥  
वैभवहीन—करे उन के, नित जो आन जीवन का सङ्कायें ।  
वीर बनें हम भारत में, फिर ल नवजावन-उगीति जगायें ॥२॥  
—भी लक्ष्मीप्रसाद मिश्र "कवि हृदय" ।

## हिन्दुस्थान कोआपरेटिव इन्शोरेन्स सोसायटी लिमिटेड

१९३३-३४ का न्यवसाय वर्षे कर्पा से न्यादा

बोनस पन्धेमेन्ट पाक्षिसिर्वा पर २३)

सर्वे जीवन पाक्षिसिर्वा पर २४)

इस में जाय है यदि आप अपना बीमा अन्वरीत काक्षिक  
भारतीय सोसायटी में कर्पाय ।

शार्द फिलिमन



आपने फिलिमन का कामकाज देख  
चिन्त को बसेवसी के दो बार गिरने  
पर भी छिटकाई कर दिया।

श्री सत्यवर्ति



आपने बापसराय की आलोचना  
करत हुए कहा है कि सरकार की  
है पनाति असफल हुई है।

श्री दयानाथ



आपने सरकार को दिया गये  
कि-मुवाचिकारी के उपबन्धन की  
असेन बलीने बहुत कदाचित् सुनाई।

श्री शास्त्रीजी



आपने बगल क बाद पीकितता  
की सुहायता क बिच एक बहुत ही  
मार्मिक कपीत की है।

श्री हरि निरकर



आपने एक महत्वपूर्ण घोषणा  
जोरा यहलियो को फिर से कुचलन  
की घमकी की है।

श्री बलरामदास बिबला



आप अभी इ लोच से कई मास  
के प्रवास के बाद भारत लौट रहे  
और सोच बना गये हैं।

श्री एच० जी० वेल्स



आप मुझ पर छोड़ी गिरने क  
कारण मायका हो गये हैं।

सर शशीकांत



आप कएहन से सहाय्य सुचार  
क बिचे भारत पहुँचे हैं और बहुत  
सम्पत्त लापस नहीं आयेगे।

मिस्टर आर्क वेल्स



आप भी अस्वस्थ हैं और बी-  
यना में चिकित्सा करा रह हैं।



**महिला जगत**

## विवाहित जीवन सुखी रखने के १५ उपाय

**पत्नी का कठव्य**  
 पहला बुझा—पत्नी को पति  
 के नाप धर में प्रवेश करने के दिन में  
 ही अपने कर्तव्यों का वास्तव आरम्भ  
 कर देना चाहिये वहाँ तक कि उस  
 घर में प्रथम ही दिन मोर होते ही  
 अपने पति के स्त्रिय बाय बना कर  
 दिखी चाहिये ।

आपे स बाहर न हो  
दुखरा—दुख को शक्ति बनाये  
बनान के जिस कोषाया न तुलना हो  
है कि—ये ही क्षय—स उस क्षय और  
पत्नी दोनों ही आपे स बाहर न हो  
जायें। अग्रेही दोहो आपे स बाहर  
हो जाते हैं स्पे ही मृग में भारी ह  
शक्ति भङ्गक उठती है। जब आग  
भङ्गक उठ, तब ज्वलना शक्ति  
शक्ति उठ रहा हो, उसे बलश्रेय-कम उस  
समय लुप्त रह जाया पाविए।

धन का भेद न हुआओ  
तीसरा—पति और पत्नी के बीच धन सम्बन्धा कोई भेद कभी न रहना चाहिये। अर्थात्, पत्नी के पास घर का काम सलून के लिए काफी पैस होना चाहिये, परन्तु उसे सदा यह पता होना चाहिये कि घर में कितनी रकम है।

पति सर्वापरि रक्षे  
 चौथा—घर की खूबी में बचपन  
 को कभी प्रथम स्थान न दिया जाना  
 चाहिये। कारम्म में जिस तरह पति  
 को सभ्य अजिक महत्व का व्यक्ति  
 समझा जाता है वैसा ही उस  
 खदेव समझते रहना चाहिये।

पति का स्वागत करने को  
पाँचवाँ—भ्रमर पति प्रति दिन  
सबेर काम पर जाता है और रात में  
श्रुत्य एक निश्चित समय पर वहाँ से  
लौटा करता है, तो पत्नी को वाहिय  
कि उस समय उसका स्वागत कर  
क ज़िप घर में रहे।

पति को बुद्धिमत्ता  
 खड़ा—बुद्धिमान पति वह है जो  
 पत्नी क वही बिना ही वह समझ जाय  
 कि वह यकी हुई है । उसी समय  
 वह पत्नी को धारामकुर्सी पर धाई  
 स्ते न करके अपनी कमीज की बाईं  
 मोड़ कर उन कामों को करने में लग  
 जाता है, जो उस रात करने हैं ।

पति के मन की तरंग  
सातवा—किसी पति के मनकी  
तरंग ऐसी न होनी चाहिये कि उसी

क पीछे उसका सारा समय व्यतीत हो। उसके मन की तरफ किसी खास ओर हो तो कोई हर्ज नहीं है, परन्तु उसी में उसका सारा समय न लगना चाहिए।

सम्बन्धों के मजबूती में जाना व्यर्थ  
आठवाँ—सम्बन्धों के प्रभु पर  
प्रतीक होने का सुझाव यह है कि  
सम्बन्धों के मजबूती में न पड़ा जाये  
पति और पत्नी को अपने सम्बन्धों  
की बातचीत गभीरता के साथ कभी  
न करनी चाहिए।

**भाजन का नियम**  
 नर्वा—घर में भोजन परोसन में  
 सी खूबी होनी चाहिये । अधिकतर  
 भोज्य पदार्थों का सुन्दर गन्ध होना  
 आवश्यक है उनमें मिश्रता मा होनी  
 चाहिए और कुछ भी नका ठीक  
 समय पर होना आवश्यक है ।  
 जो आत्मी भोजन क समय घर नहीं  
 आता, वह आकत बुलाता है ।

**विशाद से बचना**  
 दशरथ—विवाहित जनो को  
 विवाहप्रसन्नता से दूर हो रहना  
 चाहिए। अगर पति और पत्नी में  
 धर्म, राजनीति और कलाओं के  
 सम्बन्ध में मतभेद न हो तो उन्हें  
 इस सम्बन्ध में मतभेद में बुरा बह्दपि  
 न मालूम होना चाहिए। खास  
 कर पुरुषों का यह व्यवस्था ध्यान  
 रखना चाहिए कि स्त्रियों का मो  
 पुरयो से सम्बन्ध होना प्राच्यकार हैं,  
 जिसके काम में लाने का य हृत्सव्य  
 रसते हैं।

विवाह की चरनी ।  
 स्यादहर्ष—प्रसादा करना विवाह  
 की चरनी है । जो ली बराबर अपन  
 पति की प्रसादा कर रही है, उन यह  
 शेष कभी नहीं दिया जा सकता कि  
 वह उसका मूल्य नहीं समझती है ।  
 इसी तरह वह आत्मी प्रायक सुखी  
 रहती जो यह कहता है कि, मेरी  
 ली विश्वास-पान है । जो आत्मी  
 यह कहता है कि मेरी ली आत्मी  
 है, लेकिन सभी विचारों का  
 नेहना होती है, वह उतनी सुखी  
 कदापि नहीं रह सकता ।

घर को अभिमान ।  
बारहवाँ—अगर पत्नी को घर  
घर का अभिमान है, तो उस साथ  
ही अपना अभिमान भी होना  
चाहिये। घर को असुख की तुकान  
की मति बना देना ठाक नहीं है।

विवाह में धन को सर्वोपरि स्थान प्राप्त होता है, यह तो सच है, लेकिन इसके सम्बन्ध में यदि साधनाली में काम लिया जाय, तो ब्राम्हणी के भीतर ही सर्व करने में कोई कठिनाई नहीं उपस्थित हो सकती।

बाहर भी एक दूसरे का ध्यान गूँ  
तेरहवाँ—पति और पत्नी जब  
मित्रों के साथ बाहर जाय, तब भी  
एक दूसरे का पूरा ध्यान रखना  
जकरी है । एक दूसर की उपेक्षा  
करन से बचे अनर्थ हो जाया करन  
हैं और वैवाहिक जीवन दुःखमय  
हो जाता है ।

उद्दामा ठीक नही ।  
चौदहवाँ— विवाहित पुरुषों  
को पत्नी के लिए और पत्नी को  
अपन पति के लिये ही अपना सारा  
उदास स्वभाव न बना रखना चाहिये ।

नम्रता को आवश्यकता ।  
पद्महर्षा — वैवाहिक जीवन  
के। सुखमय बनाने का सबसे स  
बड़ियाँ नुस्खा नम्रता है। ज्यों ही  
पति अपनी पत्नी की और पत्नी  
अपनी पति की उपस्थिति में नम्र  
होना बन्द कर, त्यों ही सुख की  
समाप्ति का आरम्भ समझना चाहिये ।

ऊंचा एडो के जूते  
यूरापियन महिलाओं में फैशन  
नहीं रहा

शुद्धिमान महात्माओं के फलमें मैं  
 प्रभुओं का ऐसा परिचित हुआ  
 है, जिस का साथ आया स्वागत  
 कि 'आ' हूँ। जो स्वतन्त्र जन्म  
 कि 'हिन्दी' यही का जन्म सब मैं  
 आद्य का भावमय है और स्वास्थमय  
 होता है, पारस्परिक करण के भाव हैं  
 सब, यतों की येवला करती गयी।  
 आ किने भावमय में जो एषा का  
 जन्म है फलमें ओरीस बला था  
 कि ये ही सब भावों यही का जन्म  
 था फलमें बल यही है कि कहा जाता है  
 कि मोची यही के जन्म का मित्र  
 प्रभु जन्तु हतम सब यही है कि  
 श्रितम के जन्तु भवान् पाल है कार-  
 श्रितम है जो भी शुचित के श्रित  
 प्रभु दिन काम करने में लग हुए  
 हैं।

अब इतनी नीची पड़ा कि जून का पैरम चला है कि जून वापस क समान ही समतल बनन लगे है। कुछ लोगों को इस में बड़ा खतरा दिखाई दे रहा है। उनका कहना है कि ओ महिलायें इतन विना म ऊ जा पड़ी के जूते पहिनती धारे हैं, उनके लिए पकपक नीची पड़ी के जूते पहिनना बहुत हा कष्टकर होगा।

कन्या ने अपना  
पति चना  
पिता का अमन्तोष

नगरवार जिले के शहर में कुछ मीथान में एक युवती की विवाह रूप में खो दो रहा है। कदाचित् मीथान का प्रभाव है कि उस को प्रकाश में लाता कुछ शराब का सा प्रतीत होना है। मोरना के एक मीथान सज्जन की चार कन्यायें हैं। प्रथम कन्या का विवाह हुआ चुका है। मीथान कन्या का विवाह गत परम्परा में किया जाना वाला था। भारता की प्रायः गृह गृह, दुर्जन सह साथ एक प्रतापना हो गई जिस में एक कन्या की कन्या कदाचित् लेगा कि सामने था गया। सुना है कि जिस समय विवाह की चर्चा हो रही थी उसी समय लवङ्ग ने प्रथम माता विना सह कद विवाह था। प्रथम कन्या इन्हीं में प्रथम पति पुन लिया है और वह उसी समय विवाह हुआ। कन्या का पुत्र हुआ का कन्या का पुत्रा का पुत्रक पुत्रक पाया। का प्रपञ्चक सुप्रासक सज्जन का सज्जना उनको कन्याओं का सा पृथगत विवाह लवङ्ग की सब त सम्पत्तियां। उसक पत्न्य की का गरीब न हान वाला की सा खूब चर्चा की जा पर इसका का प्रलर फिर भी लवङ्ग का प्रलर उसका विवाह एक

सुखी कला से एक तथ्य है—  
 लुपति में महाराजों गणेशविग्रह को  
 सभा में एक एक लिख, जिस क  
 परिणाम बचकर पाठ—१५५५ (१५५५)  
 का ३ वक्र सार ६५ ह-संस्करण  
 कुल विद्या दर्शन ३। नकर कला क  
 यष्ट पदुषु विद्या दर्शन ५ पुत्री के बधान  
 लिखा कि पुत्री में सुमति है, स्पष्ट  
 लिखा कि शाही उद्योग मा-  
 के शाही का ग-र है पवित्र वह शाही  
 करमा तो अपन पसंद किष्ट वृष्ट वर  
 क साथ ४५५५। इस पर पुलिख  
 ने पितृ पुत्र का ह्यमापन में न्यान  
 को बात कहा। किन्तु प्रभार पितृ न  
 पुलिख से लुपत का सम्मान हा  
 सत्य मीमांसा हो इस अभ्यासन में  
 बदन के 'नय पुत्र' में कहा कि  
 कला विद्या उत्सव ३५५५-३५५५ का ३५५५  
 न है। अपन घनन को मा  
 प्रशान्ति तथा माना पिता का  
 प्रशान्ति, पुत्री न पुलिख को  
 लिख विद्या किष्ट शाही क लिप  
 तथ्या है। पुलिख के जन ज्ञान के  
 (अथ पर १५५५)

समय का प्रत्येक पल एक अनो-  
सी की विविधता के साथ आगे  
बढ़ना है कभी वह प्रभा बन किसी  
वस्तुता में जा फलता है और कभी  
उस भाग्यशाली स्थान में जा पहुँचता  
है, जहाँ योद्धा में परिधम से हा सुख  
की प्रत्यक्ष-राशि प्राप्त हो जाती है।  
मनुष्य का सुख दुःख की समय के  
भाग्यशाली पर्व भाग्यदान होने पर  
ही निर्भर है। समय के सुख में ही  
मनुष्य का सुख है और उस के  
दुःख में ही मनुष्य का दुःख। इस का  
प्रमुख मनुष्य पणपण पर करता  
जाना था रहा है। एक वह समय  
था, जब मान में घन धातु की  
प्रत्युत्ता थी, जीवन का सुख था  
और भगवान की भक्ति के साथ  
कर्म साधारिक सुख की बहुलता थी,  
परन्तु प्रायः दिनों दुःख रहे हैं कि हम  
में से एक भी नहीं। समय के फूटे  
भाग्य के साथ सब कुछ गीया।  
म घन धातु की रहा, न जीवन का  
सुख ही और न भगवान की भक्ति  
रहा। मनुष्य के जीवन का हास  
रहा है, जो समय के फूटे भाग्य  
की चेतक है।

दुर्भाग्य के साथ साथ  
भाग्य इनका हाथ हो  
गया है। गैंगेदे खड़े  
ने हैं, शरीर में म प्रायः से  
ताते हैं। वे निरन्तर सुख  
पमय भाग्यशाली था और  
ग। वह समय श्रुतिधो  
ल का है। उन स्वर्णय  
प्रमुख सत्यवादी थे,  
ता थी। प्रेम का  
ना की अवहेलना  
र टुल्लि था, भगवान की  
भक्ति थी। प्रायः मनुष्य के जीवन  
का लक्ष होता था, जिस तक पहुँचने  
के लिय उस को सप्तसामग्री प्रण  
मा में मिलती थी स्त्री-पुत्र  
गर्लौ घम-प्रवक अपनी पूर्ण-आयु  
समाप्त कर उस अवस्था के बन्धन  
का छोड़कर इस लोक में उस लोक  
का चले जाने थे। परन्तु अब वह  
भाग्यशाली समय नहीं। अब वह  
अभागा समय दानना का सेवक बना  
हुआ है। जिस के फलस्वरूप भारत  
म भराजकता, अ-उ, अविचार,  
नामिकता और अन्ध प्रचार के  
दुष्का का प्रल साग्राय है। युव  
समझती है पाप में हा जायन का  
सुख है। स्वर्णय विचरता है कि  
दोलका में पादक तबल पर चोद  
करना हा अर्थस्वर है। गृहस्थिर्वा  
न बन कर अदात्मना हाकिम बनना  
के अधिक उपकु है।

निर्गुल धारणा

कुल काल बीता, स्त्री शिला के

## सेवा बनाम वासना

### पश्चिमी शिक्षा में त्रुटि

(जे०—ओ शान्तिस्वरूप गोड)

पुनर्जावित होते देख कर भारतवर्ष  
को अत्यन्त खलि इन कुमारियों की  
भोर लगी थी। देश का हथ से  
बढ़ी बढ़ी आशाएँ थीं। पुरुषों का  
एक बहुत बड़ा समुदाय समझना था  
कि भारत में अब फिर उसी भाग्य  
सुख के दर्शन होंगे, लेकिन यह देख  
रहे हैं, हमारा वह धारणा निरुल  
थी। पश्चिमी दान म हा जान वाचो  
है दुचित शिक्षा न समाज का रूप  
और विकास एवं युवाश्रय कर  
दिया। अमेरीके के केन्द्रों में ऊँचा  
शिक्षा का आयोजन करने वालों  
आर्य कुमरियों न अपने रीति  
रिवाज, धर्म में भक्ति सब ही कुछ  
नुभा जिय। जिस न कारयवश  
वापस, जीवन सुखी होने के विप-  
रीत और दुःख-मय होगा। दिन  
प्रति-निधन वरी म दकने है कि सात  
भोर बड़ों का भाग्य में बन्ती हो नही।  
वैदिक धर्म में किसी अशुभ तम जान  
करना लानी मलस धारणा चक  
बड़, को अपने भाविधर्म में होकर बना  
दल समझती है ता इस क विपरीत  
नगान वायु प्रपञ्चम न, नय दग से  
छिप्रा प्राप्त करने वाला बड़ उसका  
यह शिष्टाचार समक अपने साथ  
का युवा की दृष्टि में दलना है, अपनी  
स्वतन्त्रता में साथ का बाधक समक  
कर बह उस म कटु प्रचल वाला बोल  
कर उस का सर्वदा निन्दक करती  
रहती है। माँ वत से गहक उदक  
एव विचारधारा समाधि के निशान  
करती है। तो बड़ पनि से सात  
की बलकूक भाविधर्म से सर्वभ-  
चित कर म अतिविचारणी सिद्ध  
करना का भयसक प्रचल करना है।  
नवारा निर्धो पुत्र एक दिन बहुत  
तम प्रकार भ्रामहया करक अपने  
जीवन का भय कर दना ही उपयुक्त  
समझता है और मायः पेशा ही होना  
है। मा का कलमत पुत्र की दृष्टा का  
यह कदम निशानों में अशु-  
ल दान की प्रण साग्राय रखता है।  
माँ रो रो कर जीवन धरान कर  
पती है।

जहाँ भारतवर्ष के लिय यह बड़े  
गोच की बात है कि प्रायः दिनों  
स्त्री समाज स्थित होता जा रहा  
है, वहाँ यह बड़े दुःख की माँ बाप  
है कि स्वर्णय शिष्टि मोकर भी वैदिक

संस्कृति को न धन्यकर पश्चिमी  
सभ्यता की धार को छोड़ो जा रहा  
है वे नहीं चाहती हैं कि वे ऊँची-  
ऊँची शिक्षा प्राप्त करके घर तथा  
शु के लिये लाभ ही सिद्ध हो,  
बल्कि इस के विपरीत पक्ष शिक्षा कर  
वे गृहस्थ से छुटकारा पाकर पुरुषों  
क समान नोर्त्तयों करना ही पसन्  
करती हैं। उन की यह नीति प्रकृति  
के विरुद्ध अन्विचार के पक्षा के अति-  
रिक्त और कुछ भी नहीं है। अपने  
शरीर को रचनातुसार निर्वाण गृह-  
दशों के प्रतिरिक्त कर कुछ नहीं हो  
सकता। जिस से उन का सब से  
पछिला धर्म अपने घर के लिये लाभ-  
कारी हो बनना है। घर हो उन का  
५० ह। घर को सुचारु रूप से  
जलान से दो स्त्री दश की मन्त्रा  
कर सकती हैं, अन्धया नहीं। घर में  
भोजन बनाना, बच्चा का पालन  
पापय करना, सात-स्वसुर की सेवा  
करना और पति को ही सर्वत्र सम-  
भना स्त्री की सबसे बड़ी घर और  
दश के लिय सदा है। स्त्री के लिय  
बड़ा गारव की बात है। उसका सबन  
बहा त्याग हमो में लिया हुआ है।  
इस की पुष्टि के लिय ही प्रेमचन्द  
जी कहत हैं — 'सावित्र, जिस देवी  
की भाप पूजा करत हैं, वह सिंहा-  
सन में उतर कर आप के साथ  
सपद २ ज्ञान लगे तो आप की  
भक्ति बनी रहेगी। पृथिवी अपने  
त्याग, सेवा और प्रेम से घर पर  
बहुमन करती है। स्त्री अपनी  
निस्वार्थ सेवाओं से ही घर का  
सब से जरूरी अंग बन जाती है।  
परन्तु अब पृथिवी का पद छोड़ कर  
वे विलासिना बननी जा रही हैं और  
उन अमीर-जातियों की नकल कर  
रही हैं, जो ससार को लूट कर  
अपना घर भर चुकी हैं।' स्वर्णय घर  
की दशों हैं। देवों की अर्पना उच्च-  
स्थान त्याग कर विलासमय मोक्ष-  
स्थान में पहुँचनी गयी नहीं देता।  
वैदिक-सभ्यता द्वारा शिक्षा हुआ  
गौरव छोड़ कर अमीरों सभ्यता  
द्वारा केवल उमायय और विलास  
का बस्तु बन कर अपनी दिव्यता  
को नष्ट करना कोई बन्धन की बात  
नहीं।

उपयुक्त कदम में मेरा यह धारणा  
कहाँ माँ नहीं है कि स्वर्णय की बहनी

हूँ शिक्षा में सहायक पेशा कर की  
जाय था उन को शिक्षा से निकल  
पछित ही कर दिया जाय, बल्कि  
में ता वैदिक-धर्म के अनुसार स्वर्णय  
की शिक्षा भी बतनी आवश्यक सम-  
झना है, जिसकी कि पुरुषों की। वैदिक  
कर्मों को सब से पहिले जानी-  
पसानी की और ही संकेत करते हैं,  
लेकिन उनका संकेत इस लिय नहीं  
कि वे घर से बाहर पुरुषों की सति  
जीविता-उपायन करे, बल्कि इस  
लिय जिस से उनके द्वारा का अन्ध-  
नाम्यकार दूर हो जाय एवं वे गृह-  
स्थी का मार सभानन के लिय उप-  
युक्त सिद्ध हो सकें। वे विद्याम  
नन कर संसार सागर में अपने जो-  
बन नौका का सफलता-पूर्वक उस  
पार लेजा सकें। अपनी स्वतन्त्र  
को प्रद्वेन, भाष, अ न, और गोभारा  
क समान बन सकें। परन्तु आज-  
कल की बहनी हूँ यह नई सभ्यता  
स्वर्णय को प्रेम और सेवा के वायु-  
मयज्ञ से निकल कर वासना और  
निर्गमता की ओर लेजा रही है।  
स्वर्णय गृह के स्वतन्त्र-कार्य की दृष्ट  
कर पुरुषों के साथ परतन्त्र-कार्य  
में हाथ-पैर पीटना ही उचित सम-  
झती चली जा रही है। ऐसी  
शिक्षा में भारत-प्राय की कोई  
लाभ नहीं। यह उनकी शिक्षा में  
लोहो ही नहीं, भक्ति महादोष है,  
जिस से उनका शिक्षा निकल जा रहा  
रही है।

(पृष्ठ ११ को शेष)

बाद विना न पुत्री को शायो के  
लिय निर द्वाया, प वह किसी  
प्रकार राजा न हूँ। पिता का सकट  
तथा बहिन को वेदना का देख कर  
तोसरी कर्मों न कहा कि पिताजी  
बरान न छोटावो। मेरे शायो को  
कौनिए। उधर बतानी था विना  
शरीर किर लोडन की अरेषा इस  
प्रसन्न पर राजा को गोपय और आये  
हुये लक्षके के साथ उक्त सज्जन की  
तासरी कर्म का शायो होगए।  
तब मे, कहने हैं यह दूसरो कर्मा  
अनक कर्मा का शिकार हो रहा है।  
मार उसन हट संस्कार कर लिय  
है वह अपनी प्रतिकार पर डडो डूरे  
है। पिता अन्तः सुचारक विचार कर  
है, उदार हो है, न मातुल सब एक  
वे ऐसा सकारुणा म किस तरह फिर  
गए हैं। यदि वे बाहे तो उक्त युवक  
की भी अन्धको स्थिति कर सकत  
है।

इन घटना की ओर पितो सहृदयता  
का साथ देते। उनकी सहायिनी शिक्षा  
का क्या यद्यो परिणाम होना कि  
उनकी कर्मों साथ देवनामी की  
शिक्षा बन रही ?



पूजा

भक्तियों पूजा का स्वीकार एवं में उद्भव बार नहीं दो बार मोक्षर इमार उज्ज्व, उपवन और द्वे संवहरी में श्रुति का वही पवित्र सदाय सुना जाता है कि यदि टुस अपनी तथा अपने राष्ट्र की शक्तियों में रक्षा करना चाहते हो और संसार में विजयी बनना चाहते हो तो इसी शक्ति की उपासना करो जिस की तुम मन्त्रि द्वारा देवों से प्राप्त करने के लिए देवताओं से की थी। इसी तुम्हारा मैत्रा पर विश्वास रखो जिस ने राजा सुवर्ण की विजय वैजम्भी माता पहनाई थी। किन्तु हमें हमारा सुच बड़ा जो हम श्रुति के वचनों का सुनने और समझने का कष्ट करें। आप की हमारी तुम्हारा पूजा वास्तविक तुम्हारा पूजा नहीं, बल्कि यदि मैं सत्य कहूँ तो मुझे कहना चाहिये कि आप, सत्य वास्तव में शक्ति पूजा के नाम पर अपनी शक्ति और समय का उपयोग कर रहे हैं। कौरी जय उपकार का कोई भय नहीं है और न भोयी भद्रा का को मृत्यु। आज हम प्रत्यक्ष एवं जिस प्रकार बकर जैसे काट कर तुम्हारा का पवित्र स्वीकार मृष्ट करने हैं यह हमारी प्रतिष्ठा को कलङ्कित करने का उपयोग है। न कि शक्ति की उपासना उस शक्ति की उपासना जो विरहित प्रथमों की रक्षा करना है और कि 'ने' का दमन।' यदि हम अपने सत्त्व और भारतीय होने का अभिमान करते हैं तो हमें अपनी भारतीयता की रक्षा करने के लिए कौन कोम ऐसा नहीं करना चाहिये जो हमारे देश की प्रतिष्ठा को गिराने में बाधा प्रथमा हमारे पूर्वजों की बुद्धि पर अधिष्ठापन करने के लिये करता है। प्रथमा न हमें भारतीय कहने का ही अधिकार है और न अपने को 'आर्यभूमि' कहलाकर देश काट का हक!

मैं अपने निकट लेज में जिस से जेम्स गेवेल जी के स्वर्ण के संक्षेप

## हमारी वास्तविक शक्ति पूजा

(ले०—श्री कालीप्रसाद 'चिह्नी') )

मैं, इस निवेदन करने का आग्रह किया था, यह लिख चुका हूँ कि हमारी अधिकांश वैरागिक कथार, उत्पन्न हुई और प्रतिशुद्धि प्रत्येक प्रमाण कविताएं हैं। और उन कविताओं की तरह मैं ऐसे २ ज्ञानमय प्रत्यक्ष रत्न छिपे हुए हैं जिन के समस्त विश्व को धारण कर लिया जाता है। और जिन्हें हम न दुर्वाच्य वा ता कांकड़ समझ कर उपास करती हैं प्रथमा अग्रज्या से उन्हें पूजा मात्र की वस्तु समझ कर मस्तक मुका दिया है। और सब तो यह है कि यमन अपने पूर्वजों की आशिरा मानन करने, नहीं उन्हें पूजना ही अपना कर्तव्य समझ लिया है, जो आज हमारा इस वर्तमान पतन के कारणों में न एक प्रमाण कारण है!

यदि हम तुम्हारा सत्यता नामक मन्त्र से-जिस की आज हम क्या सुनकर ही शक्ति प्रसन्न होन की उत्पन्न कर लेते हैं—उम्मेदा और प्रतिशुद्धि प्रत्येक प्रमाण हटा दें और संक्षेप में कहें तो क्या इस प्रकार रह जायेंगे कि 'जब देवता तुम मन्त्र प्रमाण ही देवता से अपनी रक्षा न कर सकते तो उन्हें न परकृत होकर शक्ति की उपासना को जिस न एक शक्ति का अवतार हुआ—जिस न तुम मन्त्र प्रमाण देवता का सहाय किया' यह है वह मूल क्या जिस पर 'तुम्हारा सत्यता' जैसे महाकाव्य की रचना हुई है और कथावाचक पत्रिका की 'रक्षा' हो रही है। और यदि हम 'रक्षा' में ही अधिक स्पष्ट शब्दों में श्रुति का सत्यप्रदेश प्रत्यक्ष करना चाहें तो हमें इस प्रकार कहना चाहिये कि 'देवताओं के परकृत होकर प्रार्थना करने पर 'सत्य शक्ति' न अवतार लेकर तुम मन्त्र प्रमाण देवता का नाश किया'। और आज जिसे मानने में शक्ति का गुणगान ही नहीं हमने किया 'सत्यता' में उस शक्ति का निवास है जिस के समस्त विश्व की बर्बाद से बड़ी शक्ति का भी सिर मुका देना पड़ता है। किन्तु नवारे माकट्टेव श्रुति को क्या खबर था कि उनकी प्राची सनातन उनकी 'कविता पर भाष्य पुण्य चक्रा कर उन निजोक्त प्रतीमा की प्रतिष्ठा पूज कर उसका अभिमान करेगी।

हमना ही नहीं, भारतीय चतुर चित्रकारी ने माकट्टेव श्रुति के कथा के आधार पर तुम्हारा जो

चित्र विभाजित किया है, उसने श्रुति के वाचन उद्देश्य के साथ मिलाकर 'स्वर्ण में सुगन्ध' का काम किया है, आदि आज उस पर भी विचार कर लें।

तुम्हारे के वैसे तो अनेक कथन के चित्र बनाये जाते हैं किन्तु, सब में एक ही भाव निहित है—सब का जन्म एक ही उद्देश्य के लिए हुआ है। सब एक ही भय की विविध करने के लिए प्रकटित किए गये हैं। आप तुम्हारे के अधिकांश शक्ति में देखेंगे कि उनके चरित्रों 'तले' 'गंठ' हैं जो वैराग्य को प्रतीमा है। तुम्हारे के एक हाथ में तलवार है और दूसरे में गर मुष्ट तोस' हाथ में रक्त का कपूर, और चौथे हाथ में 'अमृत' का संकेत है। तुम्हारे के इस भावपूर्ण चित्र से जो उपदेश हमें मिलता है वह यह है कि यदि हम संसार में विजयी बनना चाहते हैं यदि हम प्रिय में अतिवृत्त बनना चाहते हैं तो हमें वैराग्य की आकांक्षा को कुछ हट-पेटों 'तले' रींच कर, कुछ को जाना चाहिये। हमारे एक हाथ में अपने तथा अपने राष्ट्र के शत्रुओं के समान मर्द करने की, काट डालने का शक्ति होनी चाहिये, और साथ ही दूसरे हाथ में अपना मस्तक भी, दोनों वाह्य प्रकृत प्रत्यक्ष और की दूसरी पर विजय पान से पहले अपना मस्तक हथेली पर समझना चाहिये। और ही स्पष्ट शब्दों में उस आत्मसन्निधान करने के लिए सदा उद्यत रहना चाहिये। और जहाँ यह बातों शक्ति का ही नहीं अपना शक्ति और प्रयत्न निरिह प्रथियों को प्रथम कर देने की सामर्थ्य भी चाहिये आज के समय के तुम मन्त्र प्रमाण की लुप्त की नाश नहीं सोच दें, आप के अधिकांश पर अपना कक्षा किस बैठें हैं आप के परकृत होते ही, आप के 'सत्य-शक्ति' को जन्म देते ही अपने आप मृष्ट हो जायेंगे। उन बर्बादों में तो रक्त बीज की शक्ति भी नहीं, मैं समझता हूँ 'तभी होगी हमारी वास्तविक शक्तिपूजा'। उसी दिन हम अपने को शक्ति का उपासक कहने के अधिकांशों होंगे, प्रथमा मुझे यह कहने कीजिये आप बर्तमान मेल काट कर, किताबें से देवी की पूजा कर, मांस, मद्यिका का भोग ज्ञानवर और स्वर्णमयी की क्या तुम



कालीप्रसाद 'चिह्नी'

कर कभी भी अपने गम्भीर का दमन नहीं कर सकते। वरन् उल्टा अपने सिर निरिह प्रथियों को 'धर्म' के नाम पर काट कर देवी की प्रसन्न करने के बगैरे अपनी शक्ति को खर कर रहे हैं। यदि शक्ति की पूजा के लिए-उस की प्रसन्नता के लिए-आप की आवश्यकता है आत्मसन्निधान कीजिये, न कि राय प्रथियों का। श्रुति अधिष्ठान का अपना है।

(पृष्ठ १३ का शेष)

तात्कालिक कल ता यः पर की बर्बाद न ताव कर दिया है, और सब खल्वं की ओर धाक है। स्वयं सिद्ध जी में आकर प्रथना सः कर पर की श्रियों का विचार है। शी बहने तो अब चुनने भी लग्य हैं। आजकल इन पर तीन खल्वं चलते हैं। कब तक १५ नवम्बर का तीस सर लुप्त शब्दों जुलाहो को चुनने के लिए दिया है।

इन तीन परिवारी की इस साधना के अनिरुद्ध बर्बाद के खाली-काय की प्रगत का सार यह है कि प्रति मास प्रायः मन तक सुप्त शब्दों में खरीदा जाने लगा है। गत प्रथम सप्त महीने में ११। मन से कुछ अधिक सुप्त खरीदा गया। कई सौ हस्तन सुप्त की कोमल पंथः॥॥ द गार्दे है। १५) वयस्य प्रति मन व हिलास पर कई का काम काट कर पंथः॥॥ कतिना को उनकी कला के रूप में मिले हैं। कई भोग जाति की हैं, जो निवात से बना है। कई का बाजार भाव प लपया २। स २ सर तक है।

संक्षेप में यहाँ के कार्य यही विवरण है।

मनुष्य का शारीरिक बल एक दामनुष्यो पर उम्मा पड़ जाता है। बाक् शक्ति पाँच की हमारा भी तालम्यार् पर समाप्त होजाता है। परन्तु तालम्य शक्ति सोमा-रहित है और सर्वत्र एकता प्रभाव रखन बाकी है। यह धारणी लेखनी से मनुष्य को हानी, पागल, बलवान, और चपल प्रभाव सुस्त धमिद खब बना सकता है। यह वेगार का तार हमारा सन्देश वाहक और हमारा मित्र है। इसकी धार तल वार म तीव्र और वार प्रापय मोर्छो से अधिक आक्रमणकारी है।

क्या यह कभी हमन सोचा है किमिसे लेखनी में इतने शुभ हैं, उसके धारख करने वाला कौन मनुष्य होना चाहिये। हमन शाल बना दिए कवच बना दिए। लेकिन आज उसके धारख करने वाले सैनिक नहीं आए। जिसके जो में धारो, बड़ी १५ बर मेडा यही हम अपन १ गडा भूत बड और लेखन शक्ति १ घोर होवारा है। एक भी समय है। यह स्टैंड पर ल

प्रविर्भाव लेखनों की का मारख है। अधिकतर मनुष्य हीन हैं और नीलख लेखक को पदवी धारण न-काली को परनाम कर न सच के सदर्या स कि जहाँ उनको पान स्पेट और उपन्यास १ इन्डे लखन कला अपना ध्यान दना चाहिये। इस सम्बन्ध में जितना पुस्तक ध्यात तक पुगो है वह उन को सुवा प्रकाशित करये। एक कदो बना कर एक कोल सुफिर कर और साथ हा साथ पराला का भी प्रक-व कर यह काम सल है और यदि अधिक सहजता प्राप्त न हो सके तो दा वार निगुण सम्य-एक भिन्न कर इस कोय का मही प्रति चालू कर मकत हैं।

आज ही कदो पत्र निकल रहे हैं, जिनमें हजारो अरतनिक रूप में हिन्दी जगत की सेवा कर रहे हैं। लेकिन अफ-नोस है कि उनमें पत्र नवालाक उनके तथा अपन काय को खमल बनने के लिए गाइ de भी बना कर नहीं देते। अत मने इस सम्बन्ध में अपन अनुभव द्वारा थोडा बहुत जो ज्ञान प्राप्त किया है उसे पत्रोंकी का मार्या उक्त सामन रखने का साहस करता हू। बुद्धिवा दक्षता प्रविर्भाव है। सहयोगिया में तर्पनी है वह भी स्वयं इस पर न डाले।

## लेखन-कला

(ले०—श्री वाक्पाम रामा बुक्कनगर)

लेखक कौन हो वपल विचारों को इदय कति स उक्त-पुण्य होना है। वह अपन मन को छाप मूरर इदय पर होनन को प्रयत्न करता है, उस का बड़ी प्रवास उसे लेखन कला का मय प्रवृत्ति कराता है। जैन मनुष्य जलवा और जोर में अपना काम जिलाय बेटाता है, वैम ही लेखक की जलदी और जोर का उपाख उसक लिए एक घातक वस्तु प्रमाणित होती है। लेखक को इदय लिखने समय साधन, उदार और उसाह बर्ष कालो काय है। कडु विचार-द्वारा और असमय के वाक्प विपत्ति और उच्च को आवाहन करन वाले होते हैं और माय जेलखान का निमन्त्रण देने हैं। लेखक का बल वेधे जो साहस है और लगन पागल जैवो होती हैं। अत, लेखक को साहसी, समीर, पवनीन, एत, उदार और शुची होना चाहिये। सत्तर एक तरफ हो और उसकी

पुन दूसरी तरफ। पुस्तके उसके मित्र, लक्ष्मी उस की तलवार और साहित्य उस की सगपति होती चाहिये। लोभी और नीक लेखक जल-कला को बर्नोम करने वाले होते हैं।

लेखः—लेखक का लेख उसका सम्पत्ति है। यही उस का मान और प्रतिष्ठा है। अत, जब उस लेख लिखना हो, मन को पकागु और शांत कर ले। विषय का खूब मध्यन कर। उस के धारि और कल्प पर विचार करक उस से उत्पन्न होन वाले ज्ञान या हानि पर होट्ट डाले और लोक यवहार का ध्यान रख कर फिर अपनी राय कायम करना चाहिये। लघु और मिश्रा कमान मिल। मन को जितने दुःख में बाँट सको, उसे बाँट दो और फिर उस के विभाजन अनुसार ठाक २ विचार करक एक एक हिंङि के ऊपर पानियां बढ़ा कर लिखत जाओ।

प्रकाशरो दुनिया कस्य विषयों पर लिखे प्रयो से विविध होती है, वृत्ति उस का सम्बन्ध राज नीति से होता है, इस विषय यह सच में अधिक मयावनी है। तमिक-की मुदि अथवा भूत जेल का धा बर्नान करती है। राजनीति का सार है, जब मनुष्यो को अपनी मोर करना हो अपन लेख में उन्हें प्रमा वित करना हो तो यर्ष का सहारा लिया जाता है। धम कायर और भीरु मनुष्य को भी बलवान बना देता है। जब किसी सख्या में मुदि देला तो लिखने में पर्व उस के सदर्या स हो सक तो विचार विनिर्माण कर लो और एक एक बात को खूब ठोक पीठ कर लिखो। द्रव्य है। लेखक बनन से पर्व किसी पत्र का सम्पादना बन जाय, बडा खबरो का ठीकठाक जुडाना और जोर है हिंङि रेशा और लिखना सीख ले। अनुभवहीन होने पर अपने पत्र प्रकाशनी से परावर्ष करें और यह मालूम कर कि कानि कोर से आरिस धमिकारी बर्ष खबर देन पर बाजित है और सम्पादना का भयकत-य है। शुची मीरपन और लक्ष्मण सम्पाद दाता कलिय उ खरापी है। इस सन्दर्भ में मुझे जो ज्ञान है, उस पाठको क सामर्थ्य नीचे 'ता हू।

क्या २ बाँते सम्पादनाता लिख सकते है

अपनी अर्ख देखी बात, दूसरी की बताई या सुनो बान पुष्टि होने पर, कोई सचवा प्रथमा इत्याखर मान होने पर विवादेमुक्त विषय सरकारी तथा धर्म-सरकारी रिपोज निष्पल समाचार नवा कर्मचा रिवा की रिगायत पुष्टि होन पर, क्या क्या बान न लिखनी चाहिये

कोटे में चाहु सुकदम 'तीन बात' जिस पर सुकदम पर प्रभाव पड़े, होच राग फलाने वाली बात, बिना खबुत की बातें सुकदमे में पब्लि मॉन्स्ट्रट की जाँव सुकदम में किसी पार्टी की तरकदारी की बातें किसी ऐम वर्णिक का कोटो जिस की सुकदम में शमास होनी हो किसी की इजत पर बडा लगान बाकी बाते।

अपने बचाव की बातें लिखन से पूर्व अपन वित में उत्तर प्राप्त करक लिखे ? क्या इस बात से किसी की इजत पर बट्टा लगता है ? अगर बट्टा लगता है तो क्या सुकदमा जलने पर वह बात साहित्य हो सकती है ?

आर्मेनिक फार्ममपूटिकन कम्पनी लिमिटेड लाहौर का

# जगत विख्यात कामचक्षु

REGD

पोस्मन ब्रह्मा और टिल व टिग्रा की प्रतिदीप शक्ति देता होपवार आप भी प्री प्री प्री हरप्रकार हर मोक्ष में लयापाक करता है। हर जगह विकता है। प्री स्वार्क ४ नमूना १)

नेहली के एजेन्ट—जयमाराधन एड इत्यादि वारिनी चोक देहली।

मकल न बचे ! मकल न बचे

## वाल काला करने का तेल काला तेल (रजिस्टर्ड)

इस्तेमाल करने में आपके सफेद बाल कालो रात की तरह रयाह हो जायगे जिज्ञाब बलमा और मंदी में हमारा के लिए लुडकारा मिल जायगा। तल की तरह हाथों में लगाया जाता है। दाग या घन्मा नहीं देता। कामत एक शीशा २) १०। डाक मइखल बलम। ३ शीशी) पुरी कोर्स ३) २०। डाक मुइखल माफ। मिलने का पता—

यमरू—क० एल० कपूर एडर कम्पनी लाहौर।

एजेन्ट श्रीसी—जो पी० मारीय एडर ब्रज, जनरल वेंकटेश मानिक चोक। यमरू—जनरल मारीकल स्टोर्स सिविल लाहौर। देहली—बलुगु एडर बलुगु, कंसिस्टन्स बालिनी चोक। आगरा—किंगड ब्रज कंसिस्टन्स, मकल मंदी।

**मुजफ्फरपुर जिले के बदौलत**  
 इसमें जो डाक बाला खी-  
 सेपुर के करीब है, पात बर्ष परबरी  
 में मुख्य पीढ़ियों की सहायता के  
 लिए बिहार की केन्द्रीय रिपोर्ट  
 १९३४ केन्दी के प्रयास से एक कार्ना  
 केन्द्र बनाया गया था। नीचे इस  
 केन्द्र के व्यवस्थापक जो का मेजा  
 कुछ गत वर्ष से पात तक के कार्य का  
 निष्पत्ति दिया जाता है। इस केन्द्र  
 के कार्यक्रम का नाम धरणी आधार  
 है। नीचे के विवरण में पाठकों को  
 इस आधार की स्थिति और हम के  
 कार्य की प्रगति का कुछ पता चल  
 सकगा, और बिहार क इस भाग की  
 कल्याणमक परिस्थिति का एक दृश्य  
 प्रत्यक्ष रूपसे भी देखन को मिलेगा।  
 आगे-आगे बदौलत क व्यव  
 स्थापक लिखते हैं—

"बिहार के उस पलकानी भूकम्प  
 के बाद १२ फरवरी १९३४ को मैं  
 बदौलत आया मैं धोधा। सर धान  
 से पहले कलकत्ता सहायक कम्पनी  
 की ओर से ओर सपदेव जी विद्या-  
 लकार यहाँ मुख्य पीढ़ियों की सहा-  
 यता कर रहे थे। उनकी विद्वता और  
 कीर्त्या से प्रोत्साहित हो कर मैं भी  
 यहाँ जम गया और उन की देख  
 रखा में काम करने लगा। तब से  
 अब तक मैं यहाँ हू।

इस स्थान का इतिहास यह है  
 कि पिछले ७-८ वर्षों से यहाँ लगा  
 तार बाढ़ आती हैं। सम्राचार पत्रों के  
 पाठकों ने यहाँ क भरपूर धारा और का  
 नाम क्रांतित सुना होगा। यह वह  
 स्थान है जो १० मील की लम्बाई  
 चौड़ाई में बाढ़ों महीनों पानी से  
 सिरा रहता है। बारिश में यहाँ पानी  
 बढ़ कर भाव पास ५० मील के  
 क्षेत्र में फैल जाता है। लगातार  
 बाढ़ पर बाढ़ धान में यहाँ की बहुतेरी  
 उपजाऊ जमीन प्रति वर्ष कट-कट  
 कर पानी के साथ बह जाती है। सरपुधा  
 और का भाव पास जितने  
 गाँव हैं उन सब गाँवों क किसान  
 प्रत्यक्ष अपनी भौत क विल गिरा करते  
 हैं। जिन क भाव ही धोधा जमीन  
 है, उन के क्षेत्रों में भी खान भर को  
 कुछ पैसा नहीं रखा है। इन  
 किसानों क भाव बाढ़ खत और पैदा  
 तो प्रायः सब क सब सुख गये हैं।  
 बहुतेरे गाँव ऐसे हैं कि जिन में वृत्त  
 तक लिये सफाई नहीं मिल रही है।  
 इस की क कारण यहाँ के इस उप-  
 जाऊ प्रदेश की जो बरबादी हो रही  
 है, यह बहुत ही दृश्य-विदारक है।

\* \* \*  
 यहाँ-सब का केन्द्र खुलन से  
 पहले यहाँ यहाँ का गमोनिधान  
 तक नहीं था अब इस विस्तार में

## पीढ़ियों का वस्त्र स्वावलम्बन

(डे०—अरीमाध विवेरी)

जिन लोगों ने चले को अपनाया है,  
 वे अधिकतर ऐसे लोग हैं जो सफ़्त  
 में गरीब हैं जो सफ़्त हैं।  
 इन गरीबों में से भी चले का अपनाये  
 वालों में अधिकतर परिवार सुख,  
 मनों के हैं, इन लोगों की छप-  
 कोई जमीन नहीं है। पुरुष बाहर  
 मजदूरी करते हैं। और स्त्रियाँ घरों  
 में चले चलाती हैं। चले में सभी  
 तक इन गरीबों की वह मदद मिली  
 है। कि वह इन की रीति पर नमक  
 दे देता है। यहाँ के किसानों के पास  
 जो थोड़ी बहुत ऊँची जमीन बची  
 है उस में प्रायः शहरकन्द की खेती  
 करते हैं। यह जमीन कार्तिक से  
 लेकर ज्येष्ठ तक खेती रहती है। इहाँ  
 महीनों में सोय यहाँ इस को खता  
 करते हैं। यह कन्द यहाँ एक बाँसे में  
 कम में कम दारें ली में लेकर तीन  
 सो मन तक पैदा होता है। फसल  
 के दिनों में इस का भाव की कपया  
 तीन से चार मन तक रहता है। यदि  
 किसानों ने इस फसल को न  
 अपनाया होता तो आज यह स्थान  
 उजड़ कर एक निर्जन बमसा हो चुका  
 होता। गरीबों का तो एक मात्र  
 आश्रय यह कन्द ही है। चले  
 खाना वाले गरीबों की सूत की  
 कलाई से जो बार-पैस मिल जात है,  
 उन पैसों में य सस्ते शहरकन्द-खरीद  
 कर उन में किसी तरह य अपने पत्न  
 की भाग बुझाते हैं।

जमीन यहाँ की बहुत उपजाऊ  
 है। धान और चले की फसल काफी  
 उपजती है, पर पानी में खारा जमीन  
 ज्येष्ठ आने के कारण किसानों का  
 कोई बच नहीं बचता। बारिश पहले  
 हर साल किसान कर्जें निकालते और  
 बड़े भाड़ा से धान का फसल बीत  
 हैं। धान ज्येष्ठ, पीप पनपत हैं  
 क्षेत्रों में कुछ हुए इन हरे भग्न लह  
 राते पोषों को देख कर किसान की  
 हृत्ती दुःखी हो जाती है। उसकी  
 प्रसन्नता का पार नहीं रहता। पर  
 इन में एकाएक सुलसवार पानी  
 बरस पड़ता जो जोरी की बाढ़ भा  
 जाती है। यह बाढ़ इन हर भर क्षेत्रों  
 के साथ किसानों की भाशा और  
 सम्पदा की भी बहाली जाती है।  
 किसान विचार मन मसोस कर रह  
 जाते हैं।

इस साल करीब २ आधे अगस्त  
 तक वर्षा बहुत कम हुई थी। किसानों  
 ने धान की फसल को बड़े उदाहार  
 से आबाद किया था। लोगों का

पैसा अनुमान था कि इस साल बाढ़  
 नहीं आयेगी और वे धान की फसल  
 ले सकेंगे। मरपुत्रा और का पानी भी  
 और साँको की झरोखा इस साल  
 बहुत सूख गया था। पर अगस्त के  
 जाने जाते तो इनका जोरों बाढ़ आई  
 कि किसानों की सारी भाशा धूल  
 में मिल गई। इस समय यहाँ का  
 दृश्य देख कर कठिना सुन को आना  
 है। पचाने मील में सड़ती को तरह  
 पानी हो पायो वह रहा है। गाँव-गाँव  
 और घर-घर में पानी घुलन हुआ है।

\*  
 यह तो हुई यहाँ की परिस्थिति।  
 अब पिछले दिनों वरख का जो काम  
 यहाँ हुआ है ना भी सुन लीजिये।



काशीनाथ विवेरी

चले से सब-सब रखन वाला  
 जितना सामान है वह सब  
 इनमें यहाँ के कारीगर न बनवाया  
 है। जो चले बनवाया गया है, उनका  
 दायरा १६ में १८ इंच तक है। इस  
 तरह का बना बनाया चले यहाँ के  
 बड़े ही। बाढ़ धान में बचने हैं।  
 बचने यहाँ के बजार बनाते हैं  
 और फी पैसा एक आँच क हिसाब  
 से बेचते हैं। गाँव का सहरा खरब  
 बना देता है और फी तड़ुआ तीन  
 पैसे लेता है। चले के एक बकरर  
 में तड़ुआ ८४ मनीस लिखा है।  
 हमारे चले पर यहाँ क नगे तड़ुआ  
 में एक घंटे में ३०० गज तक कासा  
 ना म कत जाता है। सूत आसलन  
 १२ में १६ नम्बर का कपता है।  
 धीपचा गरीबी के कारण यहाँ की  
 अधिकतर कस्बें अपना सूत बच  
 देती हैं। इस विस्तार में सभी ता  
 केवल तीन परिवार ऐसे तैयार हुए  
 हैं जो अपने सूत की खादी खुद  
 बना लेते हैं। ये तीनों परिवार  
 स्वावलम्बन के पथ पर हैं, और

अधिकतर खादी ही पहनने को हैं।  
 इनमें एक परिवार ऐसा भी है, कि  
 जिसने अपने कत सूत को बेच कर  
 अपनी जीविका भी चलाई है, और  
 बचे हुये सूत की धड़लू की १६ गज  
 खादी भी बनवाई है। इस परिवार  
 क मुखिया का नाम भुरन रात है।  
 ये खुद खादी बनाते हैं। इनकी  
 एक कुंजी लकड़ी है जो घर का  
 बहुत कुछ काम और भाजन आदि  
 बना लेती है। इनके पास धरणी  
 कुछ जमीन भी है और दो तीन  
 गाव पैस भी हैं। प्रमोनी खतो और  
 पड़्यों की सार-समाल करते हुए  
 बाकी समय में वे काफी सुन कल  
 करते हैं। बाप और बनी, दोनों खुद  
 खादी-खादी हैं।

दुसरे व्यक्ति ह श्री० महन्त  
 मिश्र य घर क सुजा आदमी हैं।  
 इनक पास प्रमना काफी जमीन है।  
 जिसमें खान भर का धान है।  
 तरह पैदा होजाता है। घर  
 खुदया भा है जिनके  
 समय सूत मानने में ३०  
 रोज का करीब २५ ताल  
 लता है। इनक सूत का  
 से कुछ उपर ही होता है।  
 ये अपने कत सूत का १०  
 इची दा और साँघिया बु  
 है और इतन ही आँच की  
 साँघिया और सुन दन  
 लुआदे की द सुजा है।  
 ८ मिश्र का २००  
 विवाहित न-पुत्रक  
 चले में इनका कपार -

खुलन का इनका दग भात ही आँच-  
 पक होता है। जब य खुलने उठते हैं,  
 तो रच्छा हाता है कि दुलने रहें,  
 इनक पड़ोसिया क यहाँ कुछ घाट  
 चले और वलन है। इन काठ  
 चले क लिए आवश्यक सारी रई  
 मिश्रजी हा खुन कर देते हैं। लिय  
 चीस तोझा कर धरान क बाढ़ ही  
 किसी दुसर काम को हाथ लगाते  
 हैं। धनार बारकोला के दड़ की  
 मयघा पीँअन से करन हैं।

तासक-यक था 'वचन्द्र मिश्र'  
 है। १३ मीन बहुत की सारांहा करणें  
 किया है। ये काफी समयस और  
 धमीरें धामी हैं। इनक घर की  
 लियों का सिवा तास खेलेने क और  
 कोई काम नहीं रहता था। रसोह  
 बनान और घर सुदृश्यो क रसूर  
 काम करने के लिए नीकर रखन  
 गए हैं। था 'वचन्द्र मिश्र' न खादी  
 और चले क मयघ से सम्पन्न है।  
 यह अपने परिवार का लियों की  
 बेकारी मिगन का सिर तोड परिधम  
 कर रहे हैं। इनक सब परिधम  
 शेष पृष्ठ १५ पर



युक्त प्रतीय मेरीकल विद्यालय क इन्स्पेक्टर लेक्चररनेट मि० बहलने होना ही में अपा एक भाषण में कहा है कि आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली अवेज्ञानिक है। मातृसु नहीं कनेल सोहब जेम विचार शील विद्वान की यह धारणा बने हो गयी। क्या कर्मक महापुरुष ने आयुर्वेद शास्त्र का भली भाँति अध्ययन किया है या प्रमाणित हो यह निश्चय कर लिया? कनेल साहब न यह आयुर्वेद का अध्ययन नहीं किया था तो यूरोप के उच्च विचारशाला डाक्टरों के गवेषणात्मक विचारों का अध्ययन करत जिस में उन्होंने आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली को पूर्ण अवेज्ञानिक बताया है।

जिस विद्वान को लेकर कनेल महोदय आयुर्वेद को अवेज्ञानिक बता रहे हैं, वह विद्वान की भूमि

उदाहरण के पाठकों ने यह पढ़ा है कि ब्योलेपैचिक क अन्तः का अन्तः जन्म जब हुआ तब में आयुर्वेद की चर्चा की थी। आयुर्वेद की गहरी चर्चा विद्यालय के प्रिन्सिपल और उस समय उनका कान बालों नसार में टी न थी। कनेल महो १ परिचित हो।

### ५ चिकित्सा

आयुर्वेदिक चिकित्सा सिद्धान्त वाद पर निर्भर है। उसका प्रत्येक आधार सार गर्भित है। आयुर्वेदिक साहित्य में प्रत्येक बात को सुख-दुःख में वर्णित किया गया है। जनको बातें जा भाज आविष्कार सम्मर्पि जा रही हैं, व आयुर्वेद के प्रयोग में हजारों वर्ष पूर्व का वर्णन है। आयुर्वेद वैज्ञानिक जिन बातों का समीक्षा पता नहीं लगा सके हैं, वे भी आयुर्वेद में विद्यमान हैं।

तुलसा रोपण की प्रथा हमारा यही विरासत से चली आ रही है। वैज्ञानिकों को अब पता चला है कि इस में जनक रोगा का हानन की शक्ति है। प्रातःकाल में उठना हमारा यही बहुत समय से प्रचलित है। वैज्ञानिकों की पता चला है कि कपड़ों वायाँ लेज किरणों का नेत्रों पर बहुत प्रच्छा प्रभाव पड़ता है।

मातृसु जन्म के बाद ही वैज्ञानिकों की पता चला कि बच्ची को सूख कण्ठा पीना उचित नहीं। आयुर्वेद इस बात को हजारों वर्ष पहले गये है कि बच्ची को पानी पीना चाहिये। बच्चों

## आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली-पूर्ण वैज्ञानिक है

(ले०—भी प्रेमचन्द पाणिप्रसाद तर्मा, वैद्यराज आयुर्वेदाचार्य)

के गले में ताबा डालना बहुत समय से प्रचलित है। अमेरी में एक बार हैजा फैला और लाखों की खान पर काम करने वालों पर उसका आक्रमण नहीं हुआ, तब उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि लाख में हीजे के कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति है। लाख के पात्र में पानी पीना हमारा यही आयुर्वेदों का न बतलाया है। अब वैज्ञानिक भी कहते हैं कि लाखो जन्तुनाशक (Antiseptic) है।

प्राच्य सिद्धान्त जो हजारों वर्ष पूर्व में पहले आयुर्वेदों की आयुर्वेदों की सिद्ध हो रहे हैं। परन्तु प्राच्य विज्ञान में एक शताब्दी में ही बहुत तेर तेर हात बढ़न है। प्राच्य आयुर्वेदिक शास्त्र के सिद्धान्त बार बार बदलते रहते हैं। सिद्धे सिद्धान्तों को आयुर्वेदिक चिकित्सक दानिकारक बताया रहे हैं। आयुर्वेद में जिस औषधि में जो गुण १००० वर्ष पूर्व या बड़ी मात्रा में, आयुर्वेद की प्रयोग को औषधि उच्च नहीं गुण मिलेगा। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि भारत के श्रद्धा सुमियों ने पूर्ण आयुर्वेद के बाद ही उम लिखा। परन्तु परिचय का बचन इससे अधिक प्रतीत होता है। सुप्रसिद्ध डाक्टर जेम्स ने वैद्यक के टीके का आविष्कार किया था इस पर उन पिटिस पॉलि-मिनेट से ३०००० पॉड पारितोषिक मिला इसी का प्रचार जेम ससार के राष्ट्रों में बरता गया ऐसे २ वैद्यक की वृद्धि होती रही। यहाँ तक कि सन् १८६३ में जब इंग्लैण्ड में वैद्यक का टीका प्रथमयुद्ध हुआ तब योषे सत्य में ही पहली बार योगीय बह गयी। लिस्टन नगर में तो ज. टीका प्रारम्भ हुआ, तभी सत्य संस्था बढ़ने लगी।

जिन बड़े बड़े रोगियों ने आयुर्वेद को अच्छी तरह समझा है उनमें म कुड्ड वे हे—सरसविधियम हटर, कर्नेल वम० ए क्लार्क, लार्ड रम्या पिण्ड, डाक्टर फर्नेस कलकत्ता हॉस्पिटल के भूतपूर्व चीफ जस्टिस मिली-रॉय, डाक्टर ए. पी. खड्गेकर को उल्लेख (सी० आई० पी० एडव० ऑफ०) पर चलते। पारसिक (पर्सन) जन्मक गवर्नमेंट आफ इन्डिया,

मि० एबीकिन्स्टन, सर चार्ल्स हेबकोक (मिलन गवर्नमेंट कालेज बकला), भारत के भूतपूर्व वायसराय लार्ड हार्डिंग आदि। इनमें से कुछ को हम हिन्दी में अनुवित करके पाठकों की जानकारी के लिए नीचे दिये देते हैं।

सर विलियम हंटर कहते हैं कि हिन्दुओं के निबन्ध शास्त्र में बहुत सी औषधियाँ नमस्त्रियों और प्राणिकारियों से संकलित थीं, उनमें से बहुतों को यूरोपियन चिकित्सकों ने अब ग्रहण किया है। एक अग्रह फिर लिखते हैं कि हमने नाक, कान, मुँह बनाया वैद्यक में जोड़ा है। यह इलाज आयुर्वेद में प्रति प्राचीन है।

डाक्टर कर्नेल हिन्दुओं सत्र न-जन्मक न कहा था कि हिन्दुओं की चिकित्सा पद्धति ससार में सबसे बड़ कर है।

सर चार्ल्स पार्थेनिकल कहते हैं। जितने हो अधिक समय तक मैं भारत में निवास करता हूँ, उतनी ही मेरे हृदय में प्राचीन चिकित्सकों की श्रद्धा का प्रति श्रद्धा अधिक हो जाती है और मैं यह उलन हो अधिक दूर से महसूस करता हूँ कि परचाराय देशों का इस प्राच्य दूर से बहुत-कुछ सीखना है।

मि० एबीकिन्स्टन कहते हैं कि भारतीय रक्षायुक्त बहुत चमत्कारिक और अनुमान से बहुत बढ़ी-बढ़ी है।

भारत के भूतपूर्व—वायसराय लार्ड हार्डिंग कहते हैं कि जब मुझे याद आता है कि जो लोग बड़े-से-बड़े डाक्टरों को बुलाते के योग्य बनी-मानी हैं, वे प्राज-कल भी भारतीय चिकित्सा-कर्म से इलाज करती प्रच्छा समझते हैं, तब मैं इस परिणाम पर गर्व जताऊँ कि इस चिकित्सा शास्त्र को उच्चत और सख्त करने वाली योजना की निरुसाहित कर्क तो मेरी बड़ी मूर्ख होगी। देश के ४० फी-सदी प्रवाजन आयुर्वेदिक ज्ञानों चिकित्सा में भारीगणता प्राप्त करने हैं, अतः उनकी उपयोगिता को माने जिना में नहीं रह सकता।

वे उदाहरण लिखें २-४ के ही किये गये हैं। यदि हमें के ब्रह्मसिंह जयं तो एक पुस्तक कम सकती है। क्या कनेल साहब अपने देश के गवेषणात्मक चिकित्सकों के बावजूद पर विचार करते हैं। यदि कनेल साहब आयुर्वेद का अध्ययन करते या आयुर्वेद के विद्वानों से इस विषय पर बातें करते तो हमें आशा है, कनेल साहब की यह सम्प्रति न होगी। हाँ, यह हो सकता है कि कनेल साहब न योग-हकानों तथा अचार्यों को बातें सुन कर ही ऐसी धारण कर ली हो। इस के लिये कनेल साहब को यह चाहिये कि अचार्यों को बन्ध कर, न कि आयुर्वेद के अवेज्ञानिक बताया हो। आयुर्वेद चिकित्सा-प्रणाली स्वाभाव है। यह अन्तर है कि सरकार इस मोर ध्यान नहीं देती।

सरकार जिनका व्यवहार करने में करती है, यदि उस से चींहाई भी व्यव आयुर्वेद में करती तो मात्र आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली उसको नहीं होती, जैसी कि वास्तव्य और प्रयोग आदि शास्त्रों के समय में थी, परन्तु आज भी राजकीय सहायता न होने पर भी भारत की अग्रिम प्रजा वैद्यों को जो आचार्य पदों हैं, इस बात का लाह-हार्डिंग महोदय कह चुके हैं। डाक्टरों के जितने भी कारण हैं, वे अभी हीन हीन किसानों की ओर पड़ियाँ तक नहीं पहुँचे हैं, वहाँ पर आयुर्वेद के डोट-डोट सुट्टे ही कम प्राति हैं। आयुर्वेद एक उच्च केन्द्र का चिकित्सा-विज्ञान है, यह अवेज्ञानिक और गुरुद्वारा के नील नहीं। आशा है कि कनेल साहब अभिव्य में ऐसा सम्मति न देंगे।

## तैयार

निल्य ग्योहार की घरेलू वस्तुएँ कृष्ण कभीही, दवायुग मशीन, लूच मशीन, बट, हाथमल्ला, जालों आदि ठेके का प्रत्येक ठहल्ले का सामान, सफेद कपडा, आभूषण, लोहा, स्तन, जीना, जिब के पारे आदि। मशीनों की पुर्त, सिलन, लिकनर, चक्की की मशीन के पुर्त, कागि मेल आदि। मोड़ की चूल्हा, राजाघाटी, कलकत्ती, पबलेश्वर आदि सब स्थानों में ये सब चीजें अच्छे। निम्न ग्योरे के लिये निम्न लिखित पते से सहाय्य करें—

रामधन आर्य  
कारखाना बरहल  
बीकानेर देहली।

ने हुए व अन्ता का धोर  
है। कुभा थो उस  
मन्ता कि से कलता कि  
मन्ता ही रर कर सुची  
पय जवम ररता का प्यवरा  
सकट मन्ता कि न तो  
हमको थी, न उसमें  
क सुवर । या जिलते में  
गुपय मो द्रवप को धय  
वह साधव पड़ो जाय तो  
का उ नम हो मन जिल  
न हैं। द्यम कीला रखा  
प होय। सब गुणों को  
पके बहो जब मर निम  
मोरोप को की मी न  
काक त हो तो मैं हसत  
सल रर। सुन्दर हा किय  
हूँ म फाति कम जो प्रकरीर  
हो । पीपी) क हसी की बात  
थो परन्तु नगकथ्य में यह भाष अ  
शय या कि मरा जो कमला जेभा  
सोची-सोची न हो । यद्यपि मैं यह  
नहीं बाधता था कि मेरा जो मेम  
साधियों की तरह मिलो को रमकी  
पर स्वच्छन्दता-पूर्वक-विहार कर  
मरी बाला की तुल्यमत्तुला अथ  
हेलना कर। परन्तु मैं यह भी नहीं  
बाधता था वह घर का चहारिघारो  
के भीतर बन्द रह और जो दुःख में  
कह उम प्रोव मुद्र कर मान ले ।  
कमला का नम गाव में हुआ  
था। वह एक साधारण परिवार में  
पयी थी। उसक पिता वहाँ सुखा  
रको ने गिन जात थ और इलीजिय  
उन्हीन प्रपनो कन्या का गति क  
रकुल की अन्तिम परीक्षा (मिथिल)  
पास करा दी थी। यद्यपि उनके  
विचार बहुत उदार थ परन्तु बीसवीं  
सदी में दुर्गम जित तज रफतार से  
दीख रही है उसक अन्त हुए  
बहुल पड़ो हुए थ। दिल्ली जेस  
नगर में रहन बाटे क थियो तो वह  
एक प्रकार स गवोर दी थ। अन्हीन  
कमला का मुकम सबध करके  
अपन को पय मना। अन्हीने न  
मरी स्थाई सम्पत्ति क विषय में  
पुछ-चाछ की न कभा यह पड़ो कि मुझे  
आश्चर्य क्या चलन मिलता है ।  
कन्ये ह उन्हीने गुन रीति से इन  
बार्ता की जाव पकताल को हो ।  
परन्तु उनकी इस सञ्जतता न मेरे  
इश्य को बाँव लियो था । मैं उनके  
साथने कुछ बोल न सका। मेरा  
खिलार था कि मैं कन्या को लेल  
जिना विवाह न करूँगा परन्तु गाँव  
में अमीरय प्रचलन करने के बाद मी  
वह समझ न था। बड़ी मुश्किल से  
मुझे अपनी मायी पत्नी को फोटी  
मिली। अन्हीने मेरे इन्हीने सन्तोष  
किना। ईश्वर के नाम पर मैंने भी

कहानी

## मेमी के पत्र

(ले०-धी प्रो० जयदीशचन्द्र शास्त्री कायस्थीर्य)

अपनी अन्तिम स्वीकृति दे दा । एक  
मुम दिन मुम पको मैं कमला और  
मैं पति पत्नी बन गय ।  
विवाह म पूर्य मैंने निवाहक पक्ष  
ओर विपक्ष में बहुतो सुनियां उन  
को थी । मेरे पिता में दोना प्रकार  
के उदाहरण मिलत थे । सब की  
बुरा दस कर मैंने यही परिणाम  
मिनाया था कि यह दिल्ली का लखड़  
है हमको बाता है वह भी पकताता है  
जो मरी बाता यह भी पकताता है  
इसलिय मैंने इस लखड़ का स्वाद  
चखने का ही निश्चय किया । हम  
प्राप्त कश्चि या ईश्वर का कृपा कि  
कमला जेभा अमेरसी पाकर मरा  
यह विचार मन सिद्ध हुआ कि  
विल्ली का लखड़ जान वाळा भी  
पकताता है। मुझे कमला क रूप में  
हवर्ग की देवा मिली और सुस्थ मर  
लिय बन्नी हो गयो। कमला वस पाँच  
दिन में ही मर सदाय को समझ गई  
और गाँव की वह गयारिन लखड़ी  
विल्ली म आकर दिल्ली वाली बन  
गय। सबमुच पिणों में यह अद्भुत  
गुण है कि वह निम - परिचितयि  
में अपने आपको बड़ी आस मी न  
दात लेती है ।

( < )

विवाह क पहर दिन मस्की क  
होता है। क वषु इस मन जावन का  
मजा बच मजे से ले करत लत हैं ।  
कुछ विनो क लिय तो वे भूच जात  
है कि ससार में हम दोनों का छोड़  
कर किसी ओर का भा अस्तित्व  
या नहीं ही लिय इस छुट्टि म  
जीवन को निदान क लिए लाग बर्षों  
न मेयारी करते हैं । इन्ही आलाक  
जीवन पर बड़े कलमरी न सोहा  
रात को बहोला को सोल जन्म  
पुस्त को भी रचना की है। प्रायः  
य देशों में इसी का नाम इनाम  
है इसका आनन्द लना जीवन का  
चरम लक्ष समझ जता है ।

कमला क साथ मेरे दिन मो  
लुभ मने से बटे। मने तो विवाह  
सन्धी, बहुत सा साहित्य पढ़ा था  
परन्तु वह मेरा ही इस प्रकार किताबी  
ज्ञान से दृष्ट्य थी। फिर भी वह  
किसी हाल में मुझ म पीठ न थी।  
शायद स्थियों को इन बार्ता को  
सीखने के लिए किसी पुस्तक को  
पढने की आश्चर्यकता नहीं पड़ी थी।

इसी प्रकार हमारे जीवन क इस मर  
आथाय को प्रारम्भ हुए ई प्रायः स्य-  
नीत होगय। एक दिनकी बात है। कमला  
कहीं गई हुई थी। मैं अपनी बड़ी हु द रहा  
था हु दत २ में कमला के बिस्तरा  
पर पहुचा। अन्हीने मैंने उसका त किया  
उठाया उनके नीच मुम एक लिफाका  
मिला। उस पर कमला का पता  
लिखा हुआ था। लिखत रूपन मैं इस  
का विरोधी हु कि को किसी का  
पत्र पड़। परन्तु जब मैंने एक सुन्दर  
लिफाक पर किसी पुरुष का हस्त लेख  
मना तो मैं उसके पढ़न की उत्सुक  
ता को न बचा सका। मैंने चार की



धी जगदीशचन्द्र शास्त्री

तग्ड डरते - उस लिफाक को उठाया।  
उसके आभार सुगम्य मिलत रही थो।  
मेरा इश्य ओर - म चकन लगो।  
मैन कट्ट उस लिफाक को कोला  
ओर पढने लग

लाहोर

ता० १० ११ ३३

प्यारी कमला,  
तुम सबमुच बड़ी कमेर हो  
लोग पुरयो की त तावझो का मन्दा  
करते हैं। परन्तु क्या तुम्हें कल्ला  
लगना याद न लिखा का तोना  
चरमो का मन्दी क। मेरा दिल  
बाहता है तुम पर कांथ कफ  
पर तुम्हारा प्यान प्रात हा कांथ  
कोरु ड जाता है। मुझे तुम्हारे का  
माय से र्थी हावे है परन्तु न नहीं  
बाहता तुम इस मरु जीवने में मर  
हुट स्मरण को रखा हो। लिखता  
तो नहीं-परन्ते रसलिय निम रही  
हु, तुम पर मैं कुछ अपना यथकार  
अभ्यक्ता हु और तुम्हारी स तुम्हने

भी उस कश्चि र को स्वीकार किया  
है। मैं तुम्हारा आन व मे बाधा नहीं  
दाखता परन्तु न चाहना हु तुमन मन  
क जिस दुःख का दान मुझ जने  
अलग का दिया हु उमे खान मत  
तो तुम जाननी हा मरा मर्यस्व  
दिन गया है। अब तुम भी नहीं ह  
जा मुझे डाख न जा सका र  
कभा - एर दो निम मुझ आभागे  
क लिए भा रजन शोर इश्य क  
किसी कान में मुझ भा पड़ रहन  
न्या। करणा का वयन में क्या लिख  
तुम्हें मुझ से अधिक मान्य होना।  
अच्छो तुम्हारा अधिक समय नहीं  
लगा। ईश्वर तुम्हारे सीमाय को  
अचल रख।

तुम्हारा-

मनका-

मैं एक साँस में पत्र का पड़  
गया। दरबार दो बार नहीं कर  
बार मैन इस पत्र को पड़ा। मेरा  
इश्य बार बार यदा कह रहा  
नि निश्चय इस पत्र को  
थोला कोई उस का प्रमा  
जितम में इस मन्स्या  
करता था, उठना हु  
बढ़ता जा रहा था। मेरे  
यह पठला अथवर था,  
हमना बका हुआ। प्र  
म निम डाक कटन  
लिखा करिय में बका  
हैं। इस लिखतिर में  
बादा का बात याद  
एक दिन मुझ ले  
तुम न क्या - पल  
रहा को समझान  
न लगान की इच्छा स म्मिन कहा-

बाधी मने बड़ी योगे मोटी पोथा  
करते हैं। यह कह कर मने उसे  
अपना लिखमरी दिखला दी।  
बदा तुमन निरिया करिय भी  
पढ़ा है? उसने फिर पूछा।

मैन कहा- नहीं।

तो तुम्हें कुछ नहीं पड़ा है।

उसने मेरा निररकार क साथ कहा  
उस दिन के बाद ही मैं गझार  
म निरिया करिय करिय क लाया  
और उसे आधीपोतन पड गया।

तब से प्राय तक मैं उस लिफा  
का उपयोग नहीं कर सका था।  
विवाह क बाद उसक उपयोग  
करने का अवसर आया, परन्तु  
मैं कमला के चकम म भा गया  
देहान को एक व गार लखकी मुने  
जसे देहना बाळ को डा गह।  
कुछ कर तो न ओरो भी पायव  
होता जा रहा था। मन मन ही मन  
मैं कहा- "अच्छा, मैं भी बध्ना  
लेकर छोड़ूँगा।



सोमवार २६ अगस्त सन् १९३५ ई० : Monday 26th August 1935



श्री चिछी राव



श्री हि वेवरा



श्री एच० पी० मोदी



श्री वी० वी० सिंह

## विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ-संख्या
१ सन्ताह के प्रसिद्ध व्यक्ति		मुकुन्द
२ सन्ताह की इयरी		३
३ सन्ताह की हलचल		४
४ सम्पादकाय		५
५ गंगा मेधा	श्री वृन्दाय बालकृष्ण कोलेजकर	७
६ आरुण्य	(कविता) श्री राधरमण गर्ग	८
७ जग यात्रा	" श्री लक्ष्मीप्रसाद मिश्र	८
८ तुलसीदास	" श्री रहमान सागरी	८
९ धन से	" श्री राजकुमार झा	८
१० अन्नहार नवन वाला की पुकार	" श्री लज्जेश	८
११ हमारी विन्नायली (१)		९
१२ कम और जर्मनी		१०
१३ महिला जगत		११
आधुनिक शिक्षा प्रणाली में हमारा हाथ	श्री आलकुमार अन्नर	११
सौन्दर्य के दूध शत्रु		१२
स्त्री शिक्षा की जरूरत		१२
१४ एक प्रस्तावार्थ जगोजनता	श्री महेश्वरभाई दसाई	१३
१५ क्या कर्जदार अब जल नहीं जाया करेंगे ?		१४
१६ अरमोहा में ऊना लावरी	श्री मयुरावत तिवरी	१६
१७ हमारी विन्नायली (२)		१७
१८ श्याम कृष्ण और गोरो राजा	श्री जगदीशरायसह माधुर	१८
१९ भारत में यात्रापिन जनों का मित्रिक क्या ठाक है ?		१९
२० सिनमा स्टूडियो या वर्यालय		२०
२१ डाको स्टार (कवि)	श्री पुनरोत्तम महारि	२१
२२ मन्नाह का रागिनी	श्री लक्ष्मण व्यास	२२
२३ व्यापारिक सत्ता		२५

— \* —

नकल म दत्त !

नकल म दत्त !

## वाल काला करने का तेल काला तेल (रजिस्टर्ड)

इस्तेमाल करने में आपक सफेद बाल काली रात की तरह दयाह हो जायगी  
जिजाब बसमा आपक मेहदा में हमेशा के लिए कुछकारा मिल जायगा।  
तेल की तरह हाजी म लगाया जाता है। दाग या धब्बा नहीं दता।  
कीमत एक शीशा २०। डाक महसूल अलग। ३ शीशो पूरा कोर्स  
६। डाक मुहम्मन मार। मिलन का पत्र।  
मम्मे—४० पल० कपूर एवाड कमनी लाहौर।

पखेट भंडारी—जे० पी० आर्यय दह प्रजें अन्नरल मल्लेण्डल मानिक चोक,  
अन्नर—अन्नरल मल्लेण्डल स्टार्ज लिखित लाहौर।  
१. उल्लो—अनुभू ज एण्ड प्रोवर्से, कैम्ब्रिजर्स चर्चिमी चौक।  
२. आगरा—किशन ब्रज कैम्ब्रिजर्स सक्को मन्नी।

# स्त्रियों के लिए

## महान् उपयोगी पुस्तक

लेखक—प० कृष्णकांत मालवीय

सुहागरांत—मूल्य ४)

और

मातृत्व—मूल्य ४)

नं० २८, चिक्चरनलाल रोड, प्रयाग।

प्रस्तावना लेखक

पञ्जाब के श्री स्वर्गों लाला ज्ञानप्रदाय जी अपनी स्त्रियों में लिखते हैं—

“मैं प्रार्थना करता हूँ कि सब हिन्दू लिखित दूर से एकत्र पाठ करेंगे और इस विषय पर विचार करके समाज सुधार के कार्य में लगे रहेंगे।”

अर्जुन के प्राहको के लि २ सुधमसर

‘सुहागरांत’ और ‘मातृत्व’ नामक दोनों ग्रन्थों की एक साथ खरीदने पर ‘अर्जुन’ के प्राहको को उपजुक्त दोनों ग्रन्थ ररन केवल ६) रुपये में ही मिलेंगे।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

## नवीन वर्ष की नवीन आयोजना

हिन्दी-जगत् की एकमात्र साहित्यिक मासिक पत्रिका

## माधुरी

के रूप-रंग और गुण में विशेष परिवर्तन

१—विश्व-साहित्य के प्रधान महाविद्या की जीवन और कृतियों की साहित्यिक निरीक्षण।

२—विश्व-साहित्य के विश्व-विश्व गुणों का समकालीन पद्य-तुलनात्मक अध्ययन।

३—जगत् साहित्य पर प्रकृत-प्रभाव।

४—सिनमा का शिक्षात्मक स्वरूप।

५—महिला सत्ता की साहित्यिक शक्ति।

६—नव टाइप, नई कृपाई, विश्वकुल नया गेट अप।

संपादक—श्री० रूपनागपण्डे पांडेय

और

श्री० बांकेधारी मदनगण एम्० ए०

“माधुरी” की नई माधुरा आपका मोह लेगी। इसकी रचनाओं की अद्विता आपके हृदय में हृदय और गर्व के भावों का संचार करगी।

यदि आपकी १४ वर्षों से सेवा करती आई है

इसका वार्षिक मूल्य ६॥, जुलाई मूल्य ३॥ और एक प्रति का ॥० है

यदि आप अपनी तक प्राहक न हों तो शीघ्र ही बन जाएँ

माधुरी का नववर्षाहू बढ़ो नववर्ष के साथ एक सन्तान में प्रकाशित हो जायगा। इसका मूल्य १॥ होता, शीघ्र हो प्राहक बनिये।

पत्र-व्यवहार का पत्र—पैरेड “माधुरी” नर बंकेधारी म लज्जु।

## साप्ताहिक डायरी

१५ अगस्त

शिमले का सम्राट् डे कि छा० कबीरचन्द की छाती कीट के लिए ४०० रुपये का बॉन्ड-पट्टा, मूल्य ५००० पण० ५० भी उम्मीदवार है।  
—ब्रिटिश सरकार ने गेय जेम्स को बीबी डाकुमों न वायलन्ट (बीन) के पास लेखियों से छेद कर आर हाजा।

१६ अगस्त

—बनौ प्रान्तीय हिन्दू-महासभा ने मिल्बुधना को एक मान-पत्र दिया है।

—फोरोजाबाद गंग के पारियों को १० हजार रुपये बतौर पुआलिया देना (जहा अधिकांशों ने स्वीकार किया है।

१७ अगस्त

—शेखपुरा जिले में राबी मही की बाढ़ के कारण एक गाँव तो पानी में डूब गया और दूसरे गाँव क डूब जान का खतरा है।

—जीधपुर का समाचार है कि वहाँ एक मन्त्री कान के नीचे ने बन्धा-कान के सुपरिस्ट के विरुद्ध अवा-करी में एक बजा' पैरा की है कि केरी की को रामसिंह सुपरिस्ट न आपनो इंग्लिश इच्छाओं की पुष्टि के लिये बहुर्यक अपने घर में राकी किया है।

—बनसारी ग्राम के पास एक भीत न रा खलियों के भार दिया तथा कर्मा के भायल कर दिया है।

—साहोब हाईवाटन दुधारी एक सरकसुकर लिफाफ कर बसो, मजि-स्ट्रेट को जजो के ता० ६ अक्टू-बर से बसोत्त लखन पर काले काट पक्ष कर दो धान की ब्राका की है।

१८ अगस्त

—साहोब में एक लुहार की भठो में अचानक दो बम पड़े गये, जिसमें एक व्यक्ति मर गया और दो सख्त चोट खाए।

अजगमिया बलवान-राष्ट्र में अमर-ख गिलाटी की हत्ये के परिणाम-स्वरूप भारी विद्रोह हो गया है।

—मुगलबाद की खबर है कि कल बीमार स्त्री के शवके में खतरा बढ़ते हुए गया पैरा होकर सफ-क मर मर और दुस्त मर गया।

१९ अगस्त

सं० भा० के इस्पतालों के इन्स्पेक्टर जनरल लेफ्टिनेंट जनरल एच सी. बल्ले ने कनारस में कहा है कि प्रादुर्भाविक विपत्ति का अवैधानिक है।

—कलकत्ता हाईकोर्ट के जजों ने भी मरुमनाय देव चौधर (सिंहट) को बकायत करन का सर्टीफिकेट रद्द कर दिया। 'गत भद्रभाषा आ-मोक्षन में सजा युक्तन के कारण जजों न वनर कोर्टपर को छापी का जुर्म लगाया है।

—बाँसड़ी के महाराज ने युव-राज के सरल आदेशान के बाद स्वास्थ लाभ करने के उपलक्ष में १ लाख रुपये की छूट दी है।

—साहोब क एक मजिस्ट्रेट ने १० सिक्को का बदलात उठन तक लेव सथा १)-४) जुमान को सजा एक के अधिक कृपाय रखने के जुर्म में दी है।

—जीधपुर में स्पेल डिम्बलन ने जहा सिक्के कोर मोट बनान क दो मामलों में परजुर्म लगा दो है। मिस्ट्री क दोडुर मोमलिर पर १५०६ की फर्मे जुर्म लगा दी गयी है।

—जांघर की खबर है कि पंजाब कमिशनर जेम्स हर्मेन एफ्ट के मातहत मजबूत मार' दमोधा-सिंह अपन गाँव से घायल हो गये हैं।

—बिल्लो म्युनिसिपल कमेटी न अपने स्थान में सुलक्षणों का ४ प्रतिशत स्थान आँक देने का फैसला किया है। अब हिन्दुओं का ४८ प्रतिशत तथा मुसलमानों का ४२ प्रतिशत स्थान मिलना करेगा।

२० अगस्त

हैराबाद की मित्राभ खरकार ने ३१) को जीसीटी ब्याज पर १ करोड़ रुपया कर्ज' लेन की घोषणा की है।

—आगरा सेटुल जेल में उर-सुडिंग केस के भी रमेधक गुप्त तथा कोरेली वडगुम केस के धो० मरुमनाय गुप्त ६ अगस्त में मूल-दस्तावेज कर रहे हैं। अधिकांशिया न उनके प्रांत तक के सिजन की इजा-जत नहीं दी।

—मुगलबाद जिले में घेत पर्व के कांख नदियों में बाढ़ आ जाने से किसानों पर के बहुत से गाँव जल-मग्न हो गये हैं।

—दोलाजपुर पुलिस ने वहाँ एक मकल की लकड़ी लेकर कई

शख बरामद किए। एक लंगड़े युवक और मकल मासिक के गिरफ्तार कर लिया गया।

—पवेडों में शाम के ४ बजे करीब फिर भूस्पर्ष का घबका आया। २१ अगस्त

पना जेल से भाग हुए पंडाज कैदी भी ललाय में २०० लियाईया न पार्लो मंदिर के आस-पास जबर-दस्त लानेन की। मगर कुछ पना नहीं बना।

—दवाहाबाद हाईकोर्ट न पो० बी० जोन नामक एक ईसाई ला-ल-पुन' से आपनी स्त्री के भार जामने क अभियान में भाजामन कारावास की सजा दी है।

—हा० करे बागामो अमरमलों में यह प्रस्ताव पेश क ग कि भारत-म की मिटिश पार्लमेंट में न बने।

—रंजन में आचकारी महकने बाला' न दो मोटरों द्वारा एक आ-दर का पोडा कर ३१२० तोले गाजा बरामद किया।

—भीनमर की कोप चर्मशाला सत्यमो विपक्ष-हिन्दू कान' न मो-पण रुन चोरख कर लिया। १७ ता० की १०० सिक्को में प्रताप भवन में रिजुमो' पर हमला कर दिया, जिस म १२ हिन्दू और २ मुसल-मान घायल हुए हैं।

—बाँरा (गायपुर) जिले में दो व्यक्तियों को फांसी कोर ३ का आ-जोन काला पानी की सजा नरबिल क जुर्म में दी गई है। वहाँ एक बूझ लुध की बिन फसल लुधार के खिन्न दी गई थी।

२२ अगस्त

—इपीज (सिलहट) में धनक प्रकाशों की पुलिस ने लकड़ी की। कुछ कारतुल मिले भी हैं।

—जमशेद में दो धर्मकर दुर्घट-माल हो सल्लाह हुई। एक रेडियो-प्रदर्शनो को अथक अभिनर्क और दूसर भारी लुध दुर्घटना। सुरंग गिरन से बहुत से धातमी दूब गये।

—राजस्थान क प्रयात राजवेत धी रामन्यालजी का ७९-७६ साल की उम्र में देहांत होया।

२३ अगस्त

—बिल्लो में ६ बज कर २ मिनट पर भूस्पर्ष का घबका आया जो २-३ सेकंड तक रहा।

—बजिस सोसिस्टि पार्टी न बागामो १ सितंबर को भारत में 'बनीसीमिया' विपक्ष मनाने का मिश्रण किया है।

—शिरोमणि अजलो दल की कार्यकारिणी की बैठक २६ सितम्बर ३१ शहीदगाँव पर विचार करन के लिय बैठी।

—नामादर आन प्रजय नदिया फिर बढ रहा है।

सरकार ने प्राणा' सखबाग को भारत में आन उना निगिड कर दिया है।

—अगल कलिल में दोम मरवर न बगल पब्लिक सक्वोरिटो (पब्लिक-टेंडिंग) पिल काभल न गग कर दिया है।

## चित्र-परिचय

बिलीपारट—आप अमरिका के प्रसिद्ध उड्डाक य और अमरिका म कम तक का हवाई याता क महान पराक्रम करन हुए हमारी दुर्घटना क कारण मर गये।

डो.लरा—आप न व यहाँ की है कि आप राष्ट्र-सर्व में उपस्थित हो कर प्रभावशालि क पक्ष का समर्थन कर न।

मा० तारसिंह—आप एक बलन्तम विज्ञान क पञ्जर के हिन्दु-आ व सिक्का को धान बनाये गमो परिरक्षित से सावधान होने की सूचना दी है।

सर एच० पी० मोदी—आप न नय शासन विधान को बलाने के लिये एक मनी गारडो लड़ा करण चाहते हैं।

## जापान का मिटने को इन्कार

जल-सेना की वातवीत में भाग नहा लेगा

विश्वरूप म डात कुत्रा' है कि जल मनो सम्पन्धी वातवात को पुनः जारी करन के विषय में जिन न जापान का रवेया जानन का परन किया था। जापान के मन्त्री-मराइक न अपन क्राइम-स्वित राष्ट्रूत को हिरावरत दी है कि वह जिनो को यह जलशो दे कि जब तक जापान का सममिता का सारा मजूर नहीं कर लिया जायगा तब तक वह किसी प्रकार की भी वातवीत में शामिल होने के लिये तैयार नहीं।

सप्ताह का हलचल

## भारत स ब्रिटीसीनिया को

### फौज रवाना

#### पेरिस कान्फरेन्स भंग

#### इटली को सामरिक तैयारियाँ

अक्टूबर में युद्ध शुरू होगा ?

इटली अयोधालिया १ स्थिति विषम होना आ रही है। पेरिस में इटली मूल और जर्मन का जो कान्फरेन्स नडा रही था वह किसी नियम पर न पड़ू च सकन क कारण भंग हो गई। इटली में अपनी मांग में कमो नहीं की। वह जर्मन के इस प्रस्ताव में सहमत नहीं हुआ कि इटली ब्रिटीसीनिया पर केवल प्रार्थिक प्रयुक्त करने। वह तो अयोधालिया पर अपनी साधनों सेना कायम करना चाहता है। सि० इतन तो उस कान्फरेन्स के गम होन में निराश हो गये हैं लेकिन फ्रान्स के प्रधान-मंत्री सि० लेवन् को अब भी धमियाँ हैं कि ६ अगस्त को जेनवा में होन वाली कान्फरेन्स में कोई राह। लेकिन धमियाँ। रोम में खयाल किया जा रहा है कि सम्झौता नहीं होगा।

इटली की तैयारियाँ बढ़तूर जारी हैं। उस न अपनी वायु-सेना में १६,००० सेनिका की वृद्धि और करन उनको कुछ समय ४००५३२ कर ली है। ब्लैकशर्ट टिबीशन के १००० सैनिक ११ अगस्त को नपेस में फ्यूडर क लिये और रवाना हुए हैं। पागल्ट पागन के प्रमुख अतिरिक्त न युद्ध क लिये अपनी सेनायें समायित की हैं, जिन्हें उषुक अथसर पर स्वीकार करन को मुसालाना न इच्छा भी प्रकट कर हो है।

इटली क प्रतिनिधि पेरिस अयोधाली न एक वक्त-में कहां है कि अयोधालिया का मना भजन न इटली का मुख्य उद्देश्य अयोधालीन अयोधाली न अयन का रक्षण रचना ही है और इसक लिये अयोधाली न को निशङ्क करना पठगा। इटली राष्ट्र-सैन्य को नहीं लुभनो चाहता, पर आवश्यकता पडन पर वह उम कोष भी दगा।

#### जिरेन में चिन्ता

पेरिस कान्फरेन्स भंग होन के बाद न जिरेन में अत्यन्त गहरी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है। जिरेन की नीति क्या हो, इस पर गयीला

न विचार किया जा रहा है। ता० २२ अगस्त को जिरेन सम्मेलन की बैठक हुई। पहलत है कि— निचोरा-पहलत मर्नि-महल इस विचार पर पड़ू था कि राष्ट्र सय का बैठक तक फ्रान्स क राष्ट्र मिलतुल कर समझौन का रास्ता निकालन का ही प्रयत्न जारी रखा जाय और इस बात को मद्नजर रखने हुए शरावस्त्र के निषेध पर लागू हुए मतिक-य बन्दतूर कायम रहे। राष्ट्र सय और उस क सन्धि पत्र के सम्बन्ध में जिस नीति की घोषणा पब्लिक करे बार की जा चुकी है, उन्ही पर कायम रहन का भी निश्चय हुआ।

#### भारत से फौज रवाना

ब्रिटिश सरकार को अयोधाली निषा में अपनी हितों का रक्षा के लिए चिन्ता हो रही है। वहाँ रहन वाले ब्रिटिश और भारतीयों को रक्षा के नाम पर वहाँ भारत में प्रारुध वा पञ्जाब रजिमेंट गत ११ अगस्त को रवाना कर भी दी गई। यह उस भारतीय मना की सहायता करनी का अवाम अयोधाली क ब्रिटिश टना काम में नियत है।

#### स्वेज नहर को रास्ता बन्द होगा ?

यह भी साबा जा रहा है कि इटली पर दबाव डालन क लिये स्वेज नहर के रास्ते इ-जियन जहाजों का आना आना रोक दिया जाय और उसकी जल शक्ति क जमान जरूर दस्त जल शक्ति का प्रदत्त दिया जाय परन्तु इसक लिये राष्ट्र सय न पहले जल शक्ति वाट अपनी हितायनी राह अग्रान्ति मुनन और फाल का प्रार्थन करना पठगा। कहन हैं इस सम्बन्ध में जर्मन जो भी करगा अकेला नहीं करेगा।

हर रात में ऐसा अनुमान है, एक पल क अन्तर २ लक्षों और राष्ट्र सय के भाग का फैलावा हो जायगा।

## लोहाहू की भीषण परिस्थिति

### गांवों पर पुलिस का घेरा

जगमो में बन्दे पैदा हुए

लोहाहू के किसानों के सम्बन्ध में अब तक सनसलीलेख जारी आ रही हैं। सिन्धी गांव के अतिरिक्त अन्य गांवों में भी पुलिस के अयोधाली बह रहे हैं। लोहाहू रियासत से जो लोग भागकर आये हैं वहाँ की परिस्थिति के गम में भयकर वर्णन कर रहे हैं। कहा जाता है कि लोहाहू और मोठवा गांव पुलिस क घेरे में हैं और वहाँ लूटमार हो रही है। लोग जगमो में भागकर आन बसा रहे हैं। जगमो में घुप और बर्षा में पड़ी हुई कुछ गम्बनी स्थियों के बन्दे होन की भी खबर आई है।

मिवाली अयोधाली में पड़े बावरे में अभी कुछ भी हालत उठावा सरा है।

#### बायलों में बर्बनी

मालूम हुआ है कि लूटमार क ताज सभाबरी न थावलों में बड़ी बर्बनी है। उन्होंने पञ्जाब की रियासतों के ५० ग० ज० को रक्षा के लिये तार दिया है।

मिवाली में कल लोहाहू पण्डित-सहायक सभा की बैठक हिसार क चौपरा लालपुराया साहब की अध्यक्षता में हुई। निचोरा हुआ कि लोहाहू की स्थिति क सम्बन्ध में परफुलेट वृत्त अतिरिक्त तथा सर्व-साधारण के पास भेजे जायें। एक अबरदस्त उद्देगन भी वायसराय तथा ५० ग० ज० के पास भेजने की तजवीज है।

५० नजीराम शर्मा न एक उत्कृष्ट के सिलसिले में लिखा है—

पोचिन तथा अन्य लोग न लोहाहू क विषय में मैं जिनना जान पाया हू उसक कल पर मुझे विश्वास हो गया है कि अभी वहाँ की स्थिति विनकुल ठाक नहीं हो सकी है, प्रत्युत म तो यह भी कहा सकता हू कि लूटपार स्थितियों का दबा तुर्बन बार निर्देन लाडा प्रहार कर निष्कुरता पूर्वक गोली बरसाने की जो बातें कही जाना हैं वे सत्य और सच्चा हैं।

“युके मालूम हुआ है कि अब भी गांव लूटे जा रहे हैं और गांवों वाले निरद्वे और निष्पराध किये जा रहे हैं तथा हर हुवे काग जगमो में शरखे रहे हैं जहा गम्बनी स्थियों के बन्दे तक होन की खबर है। यही

## सीमा प्रांत में उपद्रव गांजावारी शुरू

परेदोता पर बाधन

गम १६ अगस्त को सोमनाथीवाल सरकार न सरहद की गड़बड़ के बारे में निम्न विधि प्रकाशित की है—

लोअर मोहम्मद हाके में अथर मोहम्मदों के हमलों से लोअर मोहम्मदों को रक्षा के लिये १९३३ में शापशाह से युद्ध खर्च तक एक सड़क बनायी गयी थी। अतिरिक्त के फौरन १०० सहायकों की मजूर से उस सड़क को तोड़ने की कोशिश की। इस पर हमीय आरु लश्कर के काग कफोर में लड़न का तैयार हो गया। गत जुलाई मास में हावह और कापकाडी के बीच में सड़क की कुछ मरम्मत की जा रही थी। रैलाखो लश्कर के नाजमान कपोले बावरीन सड़क को मरम्मत के विषय प्रथम किया। २८ जुलाई को सुबह २०० कबीले बावरी न अजलक गोशियाँ बलानी शुरू कर रहीं। सरहद की सिपाहियों न उनका मुकाबला किया और पीछे हटन दिया। दोनो ओर से मिल भर गोशियाँ बलीती रहीं। फौजे भी घटनास्थल पर पहुच गयीं। मगर उन्होंने लश्करी में कोई सन्न नहीं किया। २ अगस्त तक सड़क की मरम्मत पूरा होगी। बार कापी अयोधाली में से किसी क मोठ नहीं आई, परन्तु ३ अगस्त इतकत हुए।

३ अगस्त को मुल्ला हाजी गुर गजरी का वडा वायहायुध लोअर मोहम्मद हाके में उतर आया। उसक पास एक मशीनगन थी। गुरहायनन इलाखे बावरी न बरहायुध न बाविल चले जान को कहा, मगर वह बाविल नहीं गया। ७ अगस्त को गुरहायनन कफारी न ४० गज तक देवाहन क तार फाट दिए और सरहद पुलिस वाले पर हिमाला कर दिया।

१५ अगस्त को वायहायुध को पाटी न सड़क को नाइना शुरू कर दिया। शिरोहा चिमनारी भी युध के साथ थी। मुल्ला का इन हरकतों को उल्ल क सरकारी फौज घटनास्थल पर मज गयी।

कारण मालूम होता है कि राजवा-विचारों जिम्मावार व्यक्तियों को राज्य में नहीं चुनने देते और वहाँ की स्थिति दृक्न न बहाते देते तथा निष्पक्ष जाँच को बाधयकता को अयोधाली करते हैं।”

## हजार सेफ डिपॉजिट वाल्ट देखने के लिये

आपका

### निमन्त्रणा

किसी समय अपना सुविधा-  
पूर्ण बचत-बैंक में घूमते हुए  
मनोरंजन के सफ डिपॉजिट वाल्ट  
आपके देखिये। यह वाल्ट देख है,  
जिन पर आप व पानी का अक्षर  
बढ़ा हो सकता। आप अपने कामकी  
जब, जवाबदायिता व वस्तुनिष्ठ  
इसमें रखिये और आप, पानी  
बारी व डाक आदि क भय से  
मुक्त हो जायें। इसके लिये बैंक  
केवल २५ पैसे की छेदी है। सेफ  
दे लेने पर भी आप १-३० में ६ बजे  
समय तक किसी समय, उसका लोका  
करते हैं।

वाल्ट लेने वाले का एक विशेष  
पासो हो जाती है जिसको दूसरी  
बढ़ा होती। सिवाय वाल्ट लेने वाले  
क अन्य व्यक्ति उसकी नहीं कोल  
सकता। हजारों घर-घरों पर अपने  
कोमली देखने जवाबदायिता इसमें रख  
कर वन की नई कोली हैं। फिर  
आप कभी तक के इस आविष्कार से  
आनन्द नहीं उठाते और उनकी रक्षा  
के लिये निमित्त रहते हैं।

### सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया

लिमिटेड,

चंदीनी चौक, देहली।

—:—

बोझार गिर रहा है। परीक्षा कीजिये  
पशुमीना  
पुष्पकोश, हंटर, होज आदि ऊनी  
सामान का। केंद्राध्यक्ष नोटिंग पेंसरी  
असोसिएट ( ५० पी० )।

### आवश्यकता है

अर्जुन की पेशकशी के लिये  
सहितपुर (जिला काली) में एक  
मातृशाला और महन्ती एलेक्ट्रिक  
आवश्यकता है। नियमावली के लिये  
श्रीम पत्र व्यवहार करें।

मेजर—एलेक्सी मिनाग, अर्जुन  
कार्यालय दिल्ली।

# अर्जुन

सोमवार ता० २६ अगस्त १९३९ ई०

अर्जुनस्य प्रतिष्ठा के न वैयक्त न पञ्चायत

## विश्वविद्यालय और बेकारी

भारतीय विश्वविद्यालय की वर्त-  
मान उच्च शिक्षा के सवालय में अस्-  
तोष श्रुति श्रुति उच्च रूप धारण  
करता जा रहा है। प्रायः सभी प्राप्ति  
के अधिकांश विचारक और शिक्षा-  
शास्त्री वर्तमान प्रमेयों शिक्षा क  
तुष्टिप्राप्तियों के अधिकाधिक  
अनुभव करते जा रहे हैं। केवल  
विचारक और शिक्षाशास्त्री ही नहीं  
वृत्तिवर्तितियों के सवालय सरकारी  
अधिकांश भी वर्तमान शिक्षा के कम  
में शोध देखने लगे हैं। यही कारण  
है कि आजकल किसी विश्वविद्या-  
लय का शोधक अभिमानवादी हो,  
वर्तमान उच्च शिक्षा की वृद्धि पर  
अत्यन्त प्रकाश डाला जाता है और  
शिक्षा-कर्म में परिवर्तन पर  
जोर दिया जाता है। वस्तुतः आज  
की उच्च शिक्षा विधार्थी का जीवन-  
यात्रा के निर्वाह के साथ नहीं बल्कि  
१५ साल तक एक विधार्थी अपने  
माता पिता का प्रतिभ धन, अपनी  
शक्ति और सब से बढ़ कर अपनी  
स्वास्थ्य गढ़ कर मेजबूत करता है।

उसके हृदय में बड़ी उमंग होती  
है, वह समझता है कि ससार में  
उसका बड़े प्रेम में स्वागत होगा  
और उसकी जीवन-यात्रा बड़े आनन्द  
से अतीत होगी। लेकिन ससार-  
भूम में प्रवेश करने के बाद वह  
देखता है कि उसकी सब आशाएँ,  
सब स्वप्न, मिठी में मिल गयी।  
ससार में सभी स्थानों पर उसका  
निस्तरफ होता है। उम्र अपनी  
शिक्षा पर किया गया व्यय भी पुरा  
करना मुश्किल हो रहा है। वह एक  
स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है  
यही अत्यन्त-प्रेमपूर्ण और अनन्त  
—अपना आत्मसम्मान खोकर

२५-३०) की नौकरी के लिये प्रार्थ-  
ना करता है, लेकिन हर जगह बने  
‘ना कैंडी का वाहक सा जवाब  
मिलता है। तब वह सोचन करता  
है कि इतनी भारी शिक्षा क्या निक  
पयोगी हो हुई है। आज बढती हुई  
शिक्षित वर्गों की समस्या न मीयह  
रूप धारण कर एक बार सभी  
विचारकों और शिक्षा शास्त्रियों का  
स्थान समझनी अपनी आरंभ की  
लिया है। बम्बई विश्वविद्यालय में  
दीर्घांत भाषण में हुए बम्बई गव-  
र्नर लार्ड प्रबोर्ने ने भी स्वभावतः ही  
इस आवश्यक विषय पर प्रकाश डाला  
है। शिक्षित वर्गों का उच्छेद  
करत हुए व कहते हैं—‘‘इं इन सब  
का उच्छेद इन वर्गों की उपति  
पर किए गए व्यर्थ व्यय के विज्ञान  
क लिये कर रहा है। माता पिता,  
जो अपने गाँव पसीन की कमाई में न  
जा कुछ बचाते हैं वह सब अपने  
पुत्र की शिक्षा पर व्यय कर देते हैं,  
अपने धन का दुरुपयोग हो करते  
हैं। विश्वविद्यालय भी उन्हीं शिक्षित  
करन में शक्ति और अपने साधन  
का तथा सरकार अपनी सहायता  
का दुरुपयोग करती है।’’ वस्तुतः  
उस धन और शक्ति का व्यय दुरुप-  
योग ही कहा जायगा जिसका  
कार्य अशुद्ध परिणाम न निकलता  
हो।

इस स्थिति का कारण क्या है ?  
क्यों शिक्षित युवक बेकार रहते हैं ?  
इसको विवेचन करते हुए बम्बई  
गवर्नर ने बहुत ठीक कहा है—‘‘जैसा  
कि आप जानते हैं, यूनिवर्सिटी से  
शिक्षावाला युवक साधारणतया  
पक्षी के सिवा और कोई काम  
करना ही नहीं चाहता। हावत इतना  
संसार है कि छुट्टि पड़े हुए भी १०  
भी खती का हाथ का काम करना  
नहीं चाहते।’’ विश्वविद्यालयों की  
शिक्षा विधार्थी को निस्त्र और  
निरसाहित कर देती है उसमें किसी  
कार्य को करने का, का उठान का  
साहस नहीं रहता, उसका मन और  
आत्मा दोनों निर्बल हो जाते हैं।  
यही वर्तमान उच्च शिक्षा का सब से  
बड़ा दोष है। यदि वह उच्च शिक्षा में

धन का दुरुपयोग न कर वह धन  
किसी गिन्य का मोक्षन में या घर  
पर प्रारम्भ करने में लगाता, न  
अधिक अन्वेषण होता। कानून क  
साग को शिक्षा पर आसतन  
(१००) — (१००) ५० माता पिता  
व्यय कर न ही और सरकारी सहा-  
यता, दान आदि क रूप में जो धन  
एक विधार्थी पर व्यय होता है, वह  
इसके प्रयत्न है। भाग में कोलिया  
विश्वविद्यालय और सैकड़ों काठन  
हैं। इन सब में पढ़ने वाल विद्यार्थी  
क व्यय को एक बार कल्पना तो  
कीजिए। किन्तु भाग और वि-  
शाल धन गति आज पथ जो रही  
है। यदि वह रूपका व्यापार व व्यय  
साथ में लगाया जाय, तो देश की  
बकारी समस्या भी दूर हो और देश  
की समृद्धि हो बड़े।

एक बड़ा भारी अम इन लोगों में  
बढ़ पैल रहा है कि साधारणतः  
प्रत्येक व्यक्ति के लिए उच्च शिक्षा  
प्राप्त करना—बी० ए०, एम० ए०  
बनाया आवश्यकता है। मानवजीवन  
का व्यव परीक्षा प्राप्त करना नहीं  
है। परीक्षा और उच्च शिक्षा तो  
मानसिक विकास का साधन है।  
कोलेजों में तो उन्हीं शिक्षार्थी का  
जाना चाहिये जो प्रारम्भिक शिक्षा को  
जिनकी उच्च बौद्धिक विकास की  
ओर हो। ऐसे विद्यार्थियों को, जिन  
की उच्च व्यापार, व्यवसाय और  
शिक्ष्य को भार हो, कोलेजों में उच्च  
शिक्षा प्राप्त करने की क्या आव-  
श्यकता है। व क्यों वह उच्च शिक्षा  
प्राप्त करने में अपने समय और धन  
का दुरुपयोग करें, जो उनके लिये  
लाभदायक न हो। क्यों न व अपना  
समय और धन उस कार्य में व्यय  
करें, जिन साक्षर वे ससार क  
समर्थन वातावरण में अपनी जी-  
वन यात्रा निर्विघ्न गुजार सक।  
इस अम क दूर होने पर ही हमारी  
बकारी को समस्या हल हो सकती  
है।

### सम्पादकीय विचार

जनता का हृदय और राष्ट्र भाषा

‘‘भारत क नृप यक्ष। न प्रारम्भ  
में राष्ट्र-भाषा का महत्व नहीं आ-



का था। वे अंग्रेजों में बोलना गौरव समझते थे। किन्तु अब लोग का यह दृष्टि धारणा ही गई है कि भारत की विप्लव जन-संस्था के दृष्ट्य में यह जन के लिए इस की महान् प्राप्ति-वश्यकता है। फलस्वरूप हिन्दी न, जो सर्वसाधारण की भाषा है, राष्ट्र-भाषा का पद पथ गौरव प्राप्त किया है। फलश्रुति युनिवर्सिटी के प्रोफेसर विद्यालोक के प्रोफेसर डाक्टर सुनीलकुमार शर्मा ने लखन में एक भाषण देते हुए उक्त शब्द कहे। इन शब्दों की व्याख्या स्पष्ट है। जनता के दृष्ट्य त-ए पद देने के लिए राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता होती है और सम्भव-मति यह गौरव हमारी हिन्दी को मिल चुका है। परन्तु यह अफसोस की बात है कि आज भी अधिकांश कविश्री नष्ट अंग्रेजी में ही बहक कर लिख रहे हैं। स्थिति इतनी अचर्य है कि कनिष्ठ कविश्री दश्री भाषा के अभाववादी को भी अंग्रेजी में व्यवहार मजबूत है, क्या राष्ट्र भाषा के अंग्रेजी इन की धारा प्रवाह न हो।

### भाषा की भार

स्काउटिंग या बालचर्य आज़-कल बहिरी दिशा में खलाया जाय, तो कति-निर्माय का प्रयास लायन है। अल्प दशों में अचर काशी भयल दिया जाता है। भारत में भी बालचर्य और महासमिति प्रयाग की ओर न वा बालचर संस्थापक रहो हैं, लेकिन इन दोनों का कार्य अधिकतर शहरी में डा है, गाँवों में नहीं या बहुत थोड़ा। लेकिन भारत की १८ कांस्टा जमता गाँवों में निवास करती है। इसलिए यदि प्रामाण्य का मन्त्र करनी हो, तो बालचर-आन्दोलन न नवागों की गाँवों को अपना मुष्य कार्य-लोक बनाना होगा। हर की बात है की वीक फिमर भी दृष्ट्यगोप्य कुञ्जक न इस की ओर भगन दिया है। उन्होंने एक कांस्टारम्ल में भाषण देने हुए कहा कि—आवश्यकता इस वान की है कि स्काउटिंग गाँवों को दशातों में और भी अधिक फैल जाय, क्योंकि

बहा शिक्षा का अभाव है। देशांतों में तो स्काउट मास्टर ही बचो तथा प्रामोषी के पथ प्रदर्शक होते हैं। देशांतों में बालचर-आन्दोलन फैलने के अनेक लाभ होंगे। देशांतियों में आनन्द, सेवा और विपत्ति में उत्साह प्राप्ति की भावनाएँ पैदा होंगी। पर आम-मवार के लिये स्काउट मास्टरों में यदि निस्स्वार्थ सेवा भाव न होगा, तो कोई लाभ न होगा। देशांत है कि बालचर-आन्दोलन के कार्यकर्ताओं को कुञ्जक के परामर्श पर विचार करेंगे।

### भाषा के पीछे बल

कलकत्ते में भी चिन्तामणि के समापनित्व में अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए हैं। प्रेस इमर्जेंसी पारस एक्ट, देशों राज्य-गला कानून और बंगाल किमिनल एमेन्डमेंट एक्ट तथा अन्य दमनकारी साधनों का तीव्र प्रतिवाद करते हुए पब्लिक सम्मेलन न सरकार में प्रेषण अवरोध किया है कि इन्हें एक दम रद्द कर दिया जाय। वस्तुतः य कानून अलभारी पर नगो तलवार का काम करत हैं। प्रत्येक पत्रकार पत्रकार में बैठ कर अपने सामन लटकती हुई नगी तलवार न कांपता है। और कभी वस्तुस्थिति का सच्चा वर्णन नहीं कर सकता। पत्रों की स्वतन्त्रता और विकास के लिए इन कानूनों का रद्द होना अनिवार्य है। सम्मेलन न अन्य भी अनेक उपयोगी प्रस्ताव पास किए हैं। लेकिन यदि इन प्रस्तावों को पीठ काई शक्ति न हो, तो इन प्रस्तावों का कोई अर्थ नहीं रहता। क्या हम पत्रकार सम्मेलन के समापन की चिन्तामणि न यह आशा रखें कि वे इन प्रस्तावों को कार्यान्वित कराने के लिए एक प्रबल आन्दोलन खड़ा करेंगे। उन्हें अनेक के अनुभव न यह मान्य हो गया होगा कि जिस भाषा के पाठ कोई बल नहीं है, वह भाषा बहुर कानों की पड़गी।

### अर्थों से

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने अभी एक वक्तव्य देत हुए कनिष्ठ

कमेडियो का प्यान एक बहुत महत्वपूर्ण मामले की ओर कीया है। नये शासन विभाग में कनिष्ठ की नित्य क्या होगी, यह तो अभी निश्चित नहीं हुआ है, परन्तु फिर भी यदि अमेरिका, कौन्सिलों पर कब्जा करने का निश्चय हो, तो उस के लिए तैयारी अभी से शुरू कर देनी चाहिए। अनेक प्रान्तों में मतदाताओं की सूची तैयार हो रही है। यह सूची जितनी पूर्ण होगी, उतनी का उत्तमी ही ठीक प्रतिनिधित्व डा सकेगा। इसलिये 'भारतीय कमेडियो को जलता में वोटों की सूची में अपना नाम दर्ज कराने का सम्बन्ध में प्रचार अवश्य करना चाहिए।' जितन अचिक राष्ट्रपति विचार के लोग मतदाताओं में अपना नाम लिखा सकेंगे, उनन ही अधिक, यदि चुनाव में कनिष्ठ खड़ी हुई, कनिष्ठी उम्मीदवार सफल हो सकेंगे। भाषा शासन विभाग में कनिष्ठ की बिजय कितनी आवश्यक है, वह सभी जानते हैं। यदि चुनाव में कनिष्ठ खड़ी न हो, तो मतदाता उदासीन रह सकते हैं। लेकिन यदि कनिष्ठ चुनाव में खड़ी हो गई, तो भाषा की उदासीनता हमारे लिए घातक सिद्ध होगी। इस लिए सभी कनिष्ठों का कर्तव्य है कि वे इस ओर उदासीनता न दिखाएँ और अधिकाधिक संस्था में मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखावें।

### अंग्रेजी अनिवार्य नहीं है !

अंग्रेजी राज-भाषा है और उसके द्वारा अनेक विज्ञान अध्ययन किया जा सकते हैं, यह मानते हुए भी हम यह मानने को तैयार नहीं कि इमारती या मिडिल विद्यालयों के लिये भी अंग्रेजी को अनिवार्य कर दिया जाय। अंग्रेजी शिक्षा भोक्ती बालों या ऊँची शिक्षा प्राप्त करने वालों के लिये तो आवश्यक है, इसमें कोई संदेह नहीं। परन्तु सर्वसाधारण के लिये, जिन्होंने प्रामा में खेतीबाड़ी दुकानदारी या अपन शिल्प पर कसर करना है, अंग्रेजी का बोझ को अनिवार्य नहीं उठानी डा सकता। हिंदी या प्रांतीय भाषाएँ हमनी उन्नत हो चुकी हैं कि सर्वसाधारण जगता

को प्रत्येक विषय का साधारण भाषा उन भाषाओं द्वारा हो सकता है। इस अवस्था में अंग्रेजी को अनिवार्य कर के विचारों का अर्थ, समग्र और अर्थ भर करना बुद्धिमत्ता नहीं है। अमो वांछित के मिडिल स्कूलों में अंग्रेजी को अनिवार्य कर दिया गया है, इससे उन प्रामोष विचारों को बहुत अशुद्धि का गई है, जो अपने २ गाँवों से ४ या ६ सेवियों पास कर पाते हैं। पहले वे मिडिल स्कूल में ५ वीं या ७ वीं प्रेयो में परता हो जाते थे, लेकिन अब उन्हें अंग्रेजी पढ़ने के लिए फिर तीसरी कक्षा में भरती होना पड़ता है इससे उनके ४ साल खराब हो जाते हैं। कोई भी विदेशी भाषा अनिवार्य नहीं है, इस सत्य को समझ लेना चाहिए। भाषा है वांछित का शिक्षा विभाग इन निष्कर्ष पर भग्न दता।

### लोहा-रुपेड़ा पर पानन्दो

भारत परमानन्द गोलोकाई पीकित जॉर्ज की स्थिति का अध्ययन करने के लिये लोकाई जा रहे थे। वे हिंदू महासमिति का अध्यक्ष हैं उनका बहती की स्थिति स्थिति की सभी कारण अन्वेषक था। लेकिन लोहा-रुपेड़ा के अधिकारियों न रोक दिया। उन्हें जो तार मिला है, वह अत्यन्त अशुद्ध है। उसमें लिखा है कि 'सभी लोग और उसम पैदा होन बाटे उपद्रव से बचते हैं।' क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि अधिकारियों की सम्मति में भार परमानन्द गोलोकाई और उपद्रवी हैं। अन्य भी अनेक सर्व-जनिक कार्यकर्ताओं को वहाँ जान न रोक दिया गया है। इस रुकावट के कारण वहाँ की सभी स्थिति के सम्बन्ध में अर्थ होना कठिन ही होगा, अवश्यव है। इस अर्थ के अभाव से यदि लोग अन्वेषक और गोलोकाई को उन रोमाञ्चकारी कथनों पर विश्वास करते, जो अलभारी में प्रकाशित हुई हैं, तो आवश्यक होना। यदि नवाग साहब सम्मुख यह साहज है कि वे अपनी प्रजा का विश्वास सम्पादक करें, तो उनका कर्तव्य है कि वे आगमनिक कार्यकर्ताओं का सहयोग प्राप्त करें।

**गंगा कुल** न करती, केवल देव-पुत्र मीथ्य की जन्म देती, तो भी वह आज कार्य जाति की माता के रूप में प्रख्यात होती । पितामह मीथ्य की देह, मीथ्य की निष्पत्तिका, मीथ्य का कल्याण और मीथ्य का सर्वकाल कार्य जाति के लिये सदा उत्पन्न पाप धर्म बन चुका है । येमे महापुरुष की माता के रूप में ह लोग गंगा को जानते हैं ।

मदी को यदि कोई उपमा सजती है तो वह माता की ही । मदी तीर पर रहें तो इका का मय हो रहा ही नहीं । मय राजा घोषा देदे तब मदीमाता हमारी फलस को परिपक्व करती है । मदी को तीर छूकर भी सीतल हवा का घाम है । मदी के किनारे किनार क्रमशः करने जाय तो कुहरत के मलयवातस्य के अलङ्कार प्रवाह का दर्शन होता है । मदी बड़ी ही लया इसका प्रवाह और गंभीर हो तब तो सचने तीर पर बसने वाले लोगों की सन्मुख उस मदी पर ही अकल्पित होती है । वस्तुतः मदी अन्त-समाप्त की माता है । मदी-तीर पर बसे हुए मगर भी मदी गद्दी हम घूम रहे हैं और किसी पक्ष काफे कोने से मदी का दर्शन हो जाय तब हमको चित्तमा आनन्द होता है । वहाँ रुहर का मस्तिष्क बातावरण और वहाँ मदी का प्रत्यक्ष दर्शन । तुलस की योगी वा मेघ मालूम होजाता है मदी रेखर मदी है, पर रेखर व. वस्त्रक करना वाली देवती है । यदि तुलस को मान्य करना योग्य है तो मदी को भी बंदन करना उचित है ।

यह तो हुई सामान्य मदी की बात । गंगा देवी तो कार्य जाति की माता है । कार्दों के बहु २ स प्रायः एक के किनार पर ही स्थापित हुए हैं । दुर्गापूजाल देश का इन्द्रगन्धर्व देवी के आकाश गंगा में ही स्वीकृत किया है । आज भी भारतवर्ष की कामाग्नी गंगा के किनार पर ही कार्दिक से आधिक है ।

अब हम राजा का दर्शन करते हैं जब प्रत्यक्ष से सहस्रावत लेख की हमारे ध्यान में नहीं आते, माल से कहे हुए उदाहरण की हमारे ध्यान में नहीं आते पर, साथ ही भीष्म और वात्सल्य के कारण, तुलस और महावीर क विहार, भोगाक, कसुमपुर, और हृषी तुल्य सजाती के परलम्ब तथा तुलसीदास और कबीर सरीखे सन्तजने के अग्रज—इन सबका स्मरण होता है । गंगा का तो दीव्यपावनाय का प्रत्यक्ष दर्शन है ।

पर गंगा का दर्शन एक प्रकार का ही नहीं है । गंगोत्तरे के क्षमीय विभोष्कावित प्रदेशों में इसका स्वीकृ-

## गंगा—मैया

( ले०—भी रत्नायें बाँकटुया कालेकर, बर्षा )

पूर्व कम्पा कर है । उकर काटी की और भीड़ देश्वर के काय मय अरे, में इसका सुख्या स्वरूप है । देवप्रयाग के पहाड़ी और सकरे प्रदेश में चमकीली कलकनैदा के साथ इसकी मीठा, कल्पय फुले की करलद्वारा में से छुटने के बाद इन्द्राज के पास उसका अनेक घाराओं में स्वरूप्य उडकर, कानपुर को विषय कर जाता हुआ इसका इतिहास प्रसिद्ध प्रवाह, प्रयाग के विशाल पाट में इसका काँस्पी के साथ मिलेवी लगम प्रत्यक्ष की गोश कुलु खुरी खुदी की है । एक हृष्य देखने में दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती । प्रत्येक का कौर्व्य खुदी, प्रत्यक्ष का मान खुदा, प्रत्यक्ष का वातावरण खुदा और प्रत्यक्ष का माहात्म्य खुदा है ।

प्रयाग से गंगा खुदा की स्वरूप धारक करती है । गंगोत्री से लेकर प्रयाग तक गंगा अर्धचन्द्राण होती हुई भी स्वरूप धारी जा सकती है । परन्तु प्रयाग के पास इसको यमुना मिलती है । यमुना का काँडा (तीर) तो बहिल से ही खुदा है । यह लेखनी, दुर्दशी है परन्तु चित्ताग्री की प्रतीति होती । गंगा शकुन्तला उँकी तपस्वी कन्या सीतली है और काँडा यमुना उँकी सीतली मालिनी राजकन्या प्रतीति होती है । शशिदा और देवशर्मा की कथा सुनते है उस क्रमय भी प्रयाग के समीप गंगा और यमुना का बड़ी कटिप्रता से मिलता हुआ शुष्क-कृष्ण प्रवाह याद आता है । भारतभूमि में अस्तंय निर्वर्षा है, अतः अनेक समय भी आगवित है । भारत पूर्वकी न इन सब संगमों में गंगा यमुना का यह संयोग सत्य कालिक पक्षद किया है और इसीलिए उसका प्रयाग राज उँका गौरव अना मगर प्रयाग । भारतवर्ष में सुख-मानों के आने के बाद जिस प्रकार भारत के इतिहास का रूप बदल

गया है, उकी प्रकार चित्ताग्री आगरी और अग्रणी-मुन्दावन के समीप में आते यमुना क प्रवाह के कारण गंगा का स्वरूप भी सर्वथा बदल गया है ।

प्रयाग क बाद गंगा कुलवृक्ष की भाँति गंभीर और लोभाभ्यवृत्ती दिखाई देती है । इसका प्रचोत्त हल को बड़ी २ नदियाँ मिलती जाना है ।



यमुना का जल अग्रणी मुन्दावन में श्रीकृष्ण के स्वस्मया अर्पित करता है । अग्रोण्या में आने वाली सरयू आग्रो राजा रामचन्द्रजी के प्रतापी परन्तु करण जीवण की स्तुतिवि जाती है । दक्षिण की ओर से आने वाली चणल मदी रतिदेव के पक्ष योग की बात करती है, उचर महान कीलाहल करना हुआ शोक अद्भुत गज प्राद के हागम युद्ध की सक्ति करता है । इस प्रकार पुत्र बनी हुई गंगा पाटलिपुत्र के समीप प्रयाग साम्राज्य के समान विस्तीर्ण होजाती है । तो भी गङ्गी की कपना कमुल्य कर-भार लाने में हिवकनी नहीं । जनक और अशोक तथा बुद्ध और महावीर की भारतभूमि में निवृत्त कर भाग । इसी हुई गंगा भागे विचार में एक जाती है कि अन्त बर्षा जाना चाहिए । इतनी प्रचण्ड वारिशामि अग्रन अग्रोय

वेग से पूर्व की ओर बड़ रही हो तो उमे दक्षिण की ओर मेक देना क्या सरल बात है ? तथानि 'वह हल मोर खुद गई है । तो सप्रत अपवा हो जगदगुरु जिस प्रकार एकांक एक दूसरे को नहीं मिलते हैं, उकी प्रकार गंगा और अग्रनुना का हाल है । अग्रनुना हिमालय क दूसरी ओर का समस्त पानी लेकर आसाम में होकर पश्चिम की ओर जाती है और गंगा इस ओर से पूर्व की तरफ जाती है । इसका मिश्रण आमने सामने किस प्रकार हो सकता है ? कौन किसको प्रत्यक्ष के अग्रथा कौन किसको मार्ग देवे ? कल्प में दोनों न निश्चय किया कि दोनों को शांतिपूर्ण—वास्तुय—का विचार करके शरिरस्थि—कर्म—के दर्शन के लिए जाना चाहिये और अभिन्नर होकर उत-जात, उडाँसी हो सके लहो, मार्ग में एक दूसरे को मिल लेना चाहिए !

इस प्रकार जब गंगोत्तरे के समीप गंगा और अग्रनुना की विचारण जल-वाशि वजन होती है तब शंका उपलब्ध होती है कि क्या सागर इससे मिले जाता होगा ? विजय प्राप्त करने के पश्चात् जिस प्रकार कभी हुई नमी भी प्रत्यक्षवास्तुय हो जाती और विजयो वीर उडाँ बाढ़े वहाँ पुनर्गते हैं, उसीप्रकार इन महान निर्वर्षा की भी, इसका बाद यही अवस्था होती है । य जाकर अन्त कभी आरा सागर का मिलती हैं । गंगा और अग्रनुना एक होकर पद्मा का नाम धारण करती हैं । यही भागे जाकर मध्याम नम पुकोरी जाती है ।

यह अन्तकमुष्मी गङ्गा कहाँ जाती है ? सुन्दरबन के बँने के सुपुड उगाने क लिए या सरग-पुष्पी की वासना लुप्त करके उनका उद्धार करने के लिये ? आज आकर देखें तो कौन काल की कौरें बात नहीं रही है । जहाँ देला बर्षा लग की कार्याय वगाने वाली मित्र—पुनः-लोचर—तथा इसी प्रकार अन्य अग्रुप कारणक कहें हैं । जहाँ से भारतीय करीगरी की अस्तस्य यन्त्रयें भारतीय अहर्जने में लगा तथा आशो दीप तक जाती थीं, वहाँ से अन्ध विलोचनो और जापानो कान्वाउ पररशी कार्पोरान में बना हुआ कूहे ककर जैसा माल हिन्दुस्थान क बाजारों में भर देन उ लिर बायी हुई दिखई देनी है । गङ्गा देवी तो पुरिल की तरह हा हमका समुद्रि करित करती है, परन्तु हमारा निश्च हाथ उसका संगमल नहीं सकन । गंगा मेना, यह हृष्य देखना तेर भाग्य में कब तक बना रहेगा ?

अनुवाह कतां—शरदरेव विपालाकर

विना लकलीक बास उडने का

# बादशही

वाल्सफा साधन

रत्नगहपर मिलता है

सी.सी. महानुन एड कुं.

सुतलगा.क.क.क.क.

## आकर्षण

कितना प्रिय आकर्षण !

विहग-किङ्कित वसुधा सद की,

सुभग शिखा के वल्लभ्यस्य पर ।

सुदु खसिकाओं से परिवेष्टित,

मंडु निकुंज पुंज के भीतर ।

प्रेम-धूर्ति का वर्ण !

कितना है आकर्षण !

मन्यन भवि शुद्धि प्रीत्य मे,

बाल छण्य को अविरल मन्त्रन ;

स्तब्धमयी जन्मी के उर को,

कल्प-जलित मधुर आल्लाहन !

अनुपम कल्प-निकेतन !

कितना प्रिय आकर्षण !

—राखन न कं

—(ॐ)—

## जग-यात्रा

जग-यात्रा करने का मैं भी निकल पड़ा दीवाना ।  
बयट-कम्य हागा कितना सग, नहीं जरा अनुमाना ॥ १ ॥  
पता नहीं कब अवधिपूर्ण हो ? किस मंजित तक पहुँचूँ ?  
कीन जानता बुत सा कब तक, खड़ी खड़ी यों सोचूँ ? ॥ २ ॥  
इस अमन्यमपवित्र-कृत्य की, कदो कीन परिभाषा ?  
सत्त्व मोच मैं हार गया पर, यकी न पागड़ी भाषा ॥ ३ ॥  
जगत मार्ग है बीहड़ अतिशय, यहाँ मोह-लस, माया ।  
लोभ, स्वार्थ, मद, मान, क्रोध के, कांटों न पथ छाया ॥ ४ ॥  
इस अवीम की कदो भला कब ? कितने सीमा बची ?  
इस अमन्य पथ में कितनी को, उड़ा के गई ऊँची ॥ ५ ॥  
मार्ग के सिर पर भारी चक्र, डल्लाता जाता है ।  
उदधि तरंगांसा जन जन का, जीवन मिट, बनता है ॥ ६ ॥  
देख यहाँ का विषम चिचलन, कदा कीन टिक पाता ?  
कितने पता है न्युगोद मैं, कीन कहाँ सा जाता ? ॥ ७ ॥  
जग-संसारक काल-चक्र जो, प्रति पल चलता जाता ।  
दैव यही वा 'असल' यही, कुछ नहीं समझ मैं आता ॥ ८ ॥  
बढ़ा रहे रो रा स्मरितायें, जीवन दुःखमय सब के ।  
शयन, जीवन, और बुझाये नील गये कितने के ॥ ९ ॥  
'जग-यात्रा' में सुख पागल वे, समय-मवाह बढ़ाता ।  
सबके साथ साथ मैं लघु कय, अविकल उकता जाता ॥ १० ॥

—जयजीमपाद विम

—(ॐ)—

## तुलसीदास

—(ॐ)—

प्रेम की मय से है पुर मयबाना तुलसीदास का ।

अकिंचन से है मरा पैमाना तुलसीदास का ॥

देखते हैं वह हर हक से मैं डखो के नूर के ।

क्या अनोखा रंग है मदनाना तुलसीदास का ॥

हरक यो तो राम से और प्रेम या तो राम से ।

राम वे गर रामा, दिक परवाना तुलसीदास का ॥

दिक के हसीनाम को बातिर त्रिधर मो जा बने ।

बन गया राम-भाषन का रामा तुलसीदास का ॥

लनकी रामायण वै क्यों हय दिवियों को हो न नाज ।

मोतरिक है जिसका हर बेगाना तुलसीदास का ॥

क्यों न देने ब्रिक से 'हृदयान' है दिक को छुकर ।

क्या सबक आगेज है अरुनाता तुलसीदास का ॥

—'रामान' धमरी ।

—(ॐ)—

## घन से—

—(ॐ)—

घन गरज न दिय तरला !

र पागल ! निद्रित जग में फिर कोलाहल न मचा !

सोने दे बिकरी-सी कागल !

सोने दे असफल अभिलाषा !

सुरकोन दे मिडुर निराशा !

गुण गुण की सोई स्मृति दीवान फिर न जगा !

कना न फिर पागल मतवाला !

पिम्हा न करमानों की माँहा !

मन्द सुलगन दे यह उवाला !

अरे बाकले दो कय जल से भोर न अगिन बड़ा !

र घन गरज न दिय तरला !

—राखन न कं 'दीन'

—(ॐ)—

## अखबार बेचने वालों की पुकार

—(ॐ)—

होओ अखबार मेरो आनन्द बढ़ाये तेरो,

हाल वर्तमान लोको पत्र माँहि देखो है ।

अबते निहारा मन मेरु खसि धारो प्रति,

अतिष्ठ अनोखा सभाचार सब बोखो है ॥

हाकले नवीन बहु अति देश देशन की,

बेति पढ़ि लेवो प्रह माँहि यदि देखो है ।

कहाँ लो बखाने 'लज्जेय' गुण पाके ब्राज,

अर्जुन अल्लाह बावू देखो अनोखो है ॥

—'अनोख'

—(ॐ)—

पं० जवाहरलाल नेहरू



आप लखनऊ कांग्रेस को स्वागत करिणी क सम्भावित चुन गये हैं।

श्री विमललाल

श्री राजेन्द्रप्रसाद



आपन काप्रसिया श्री सामा निधिरिणी समितिया म असहयोग का आदेश दिया है।

श्री सुभाषचन्द्र बोस

श्री भीमबास शास्त्री



आपन कामस का पद-ग्रहण को भाति स्वाकार करने का परामर्श दिया है।



आपन मध्य एशिया को यात्रा करने वाले किसी भारतीय पत्रकार को ४००० रु० देने का वचन दिया है।

भाई परमानन्द



आपन बंगाल प्रान्ति कमीटी की अध्यक्षता स्वीकार करने की एक यह भा गते रखी है कि उन कमीटी सामाधिक निरूप्य का आस्था व्यक्त करे।

श्री लालमो



आप ४ साल बाद आपन प्रान्ति करमा पडु व हैं और वही हिन्दू व बीज में एकता स्थापित करने का यत्न कर रहे हैं।



आपको लाहाक रियासत में प्रवेश करने म राक दिया गया है।

श्री जमनालाल बजान



आप स्वीकर आदिलन के सिल सिले में बैठ स्तोनियर आफसर से मिले।

श्री ह. यनाथ हुजक



आपन स्काउटिंग अ-मोशन को मार्ग के लिए अधिक उपयोगी बनाने पर जोर दिया है।

अभी पिछले दिनों फ्रांस में विश्वविख्यात जयकर में रोल्स सोवियट युनियन में भ्रमचार्य गये थे। अपनी यात्रा के बाद इन्होंने स्टालिन को जो पत्र लिखा है, वह अप्रकट होखे से महत्वपूर्ण है।

पत्र लिखते हैं कि—  
प्यार कामरेड स्टालिन,

मार्स्को स भ्रमण प्रस्थान के समय में आपका हार्दिक स्वागत देता हूँ। सोवियट सोशियलिस्ट प्रजातन्त्र में कतिपय दिनों में हो में उस महान् आति क सम्पर्क में आया हूँ जो हमारी किन्ना बाधाओं को हटो कर भी क सोवियट पाग क नज़्द में बढो खीरता और नियन्त्रण पत्र के साथ

## रूस और जर्मनी रोमां गेलां और डा० शास्त्र के पत्र

विक उच्चत सोवियट सोशियलिस्ट प्रजातन्त्र के भाग्य के साथ व्यक्तिगत रूप में बंधी हुई है—यह कि सत्तार क अमरीकियों के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का प्रवर्धित अहो सोवियट सोशियलिस्ट प्रजातन्त्र संपूर्ण सत्तार की बन जायगा, और यह कि सत्तार के सम्पूर्ण देशवासी को का यह कर्तव्य है कि वह इस प्रजातन्त्र के

आँकी निम्न आ क बता सकते हैं:—  
एक उद्योग = १।)

सहायता प्राप्त  
सज्जदों पर २१ ०००,०००  
अस्थायी बीमारों व  
गर्भवियों स्थलों पर १०,०००,०००  
कारखानों में आकस्मिक  
कार्यों में भागदोस्ती पर १०,०००,०००  
बिकि साहसार्थ को  
सहायता १५ ००० ०००

क्या कोई पुँजीपति सामान्य-वादी देश सामाजिक उन्नति पेश में उभरूँ के आ को मुक्तिका कर सकता है? हमारा विश्वास है कि नहीं।

जर्मनी  
आर्थिक उन्नति की किसी देश की सर्वतोमूर्त उन्नति का निर्वर्णक यन्त्र है। ऊपर हम रूस के विषय में कुछ आ क दे आये हैं। अब डा० शास्त्र के शब्दों में हो भाजी जर्मनी के बारे में सुन लीजिये।

‘अपने कार्य को पूर्ण करने की समस्या पर—जिस में पुनः शस्त्रीकरण भी सम्मिलित है, बिनागर मरा भाषा कटा जाता है। विद्यमान

जेनवा की कोल

मृ कक्षापद योगिबाई



(विशेष परिचय के लिए पृष्ठ १३ देखिए)



जेनवा आजकल अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हो चुका है। परन्तु यह केवल राजनैतिक दृष्टि में ही नहीं, आर्थिक दृष्टि की दृष्टि में भी बहुत महत्वपूर्ण है। जेनवा को चीन बन्दूक लक्ष्मी बोधो है। इसका परि क्रमा में पुरा एक दिन लाना जाता है। इसा क किनार शहर बना हुआ है।

एक नवीन सत्तार को रचना कर रहे हैं। मैं इस आनि का स्वम्भ शक्ति, उसके जीवनानन्द को हमना आभास और भूषण क मुकौबल जो दिन प्रति दिन कम हो रहे हैं उनका ज्ञान दख कर प्रसन्न हूँ, जिसमें उनका महान् अर्थ का मूल्य और अर्थिक बढ़ जाना है।

मैं अपनी यात्रा में पण्डित का कल्याण और भावनाओं को पूर्ण पुष्टि और उन में विश्वास के साथ लौट रहा हूँ। इसमार की वास्तव-

शब्दों में जो इसका उन्नति में बाधक नहीं रहता करें।

प्यार कामरेड! आप जानते हैं कि मैं अपने इस कर्तव्य में कभी विमुख नहीं हुआ और नाहीं जान तक तन में प्राण हैं मैं इसमें चूकू-गा।”

सोवियट सरकार अपने मृदु वासियों पर स्वाद-वस्त्रा पर हो कितने दयलु कर्त्त करती है। इसकी एक

बागिबाई एक बार जेन में निकल आया था उम गिरफ्तार कर फिर यहाँ विष में प्रकाशित करने के साथ जर्जोर में बांध दिया गया। वह इसी क्रम क चारों ओर खाने में घुसना रहा। इत्यादि ऐसी क मोक्ष प-पर भी विस लये आज़ भी पथ प्रदर्शक इन पर मरी को दि वकर बागिबाई के दुःख को करमना करते हैं।

सामाजिक कामा वाढे  
‘वक्तियों क वक्तों की  
सहायता ४८५ ६००,०००  
विश्वविद्यालय, स्वास्त्र  
गृह इत्यादि पर ४०३ ५५०,०००  
स्वास्थ्य शिक्षा  
प्रचारार्थ १५४,५५०,०००  
नागरिक निवास  
सुधार १,१४०,५६०,०००  
सामाजिक बीमा  
१९२७ में ३००,००० ०००  
१९३१ में ७,०७८,०००,०००

‘व्यवधान। और प्रचार द्वारा पुनः समझना शुरू करना ही नहीं, अस्मिन् बड़ा खतरनाक है। संपूर्ण सत्ता मकट और कष्ट में है। ऐसी हाल में यदि हम अपने देश को अपवाद समझें तो उपहासास्पद ही है।

इस के विपरीत हमारा कर्तव्य अत्यन्त कठिन है। हमारा नता को नोनि तमो सकल हो सकती है, कतव्य को विर्ण सस्ते सु आचार (श्रेष्ठ पृष्ठ २३ पर)

सौम्यवश आज भारतवर्ष में की शिक्षा का प्रकार अत्यन्त जोर पकड़ रहा है। किन्तु हमें यह देहना है कि शिक्षा का अर्थ क्या है। भारतवाच्य सौम्यवश शक्तियों के सुचारुतया विकास द्वारा लोकिक व्यवहार विधि युक्त निर्विकल्पक प्रगति की शिक्षा का अर्थार्थ है। वैदिक शिक्षा अत्युच्च तथा निःसंशय वर्णों जीवन व्ययों की साधक है। वैदिक शिक्षा के द्वारा ही सत्यव्य जीवन मितान सुखमय एवं शान्तिकारक होता है। भर या नारी का प्रत्येक वं साथ जो उसम कल्प्य होता है, उसको यथावत् शिक्षण वैदिक शिक्षा से मिल जाता है। धर्म, जाति और देश के प्रति जो कल्प्य होता बाह्यर उससे उक्त शिक्षाप्रदाय नारी की (वसुधा नारी को सके)। वैदिक शिक्षाप्रदायी पुत्रों के ही शिक्षा नहीं, प्रत्युत नारी वर्ग के लिये भी सर्वथा निर्विकल्पक एवं पूर्ण उत्ति और उत्तसाहक है। वैदिक शिक्षा का व्यव सांसारिक उत्तुख स्वाध्याय नहीं, विश्वासमय जीवन बनाने के लिये यह शिक्षा कामा नहीं देती। लक्षितव्य विद्युत्तय प्रदायी में रम कर धारा-परमप्राप्त प्रगति के रहस्य से प्रत्युक्त होकर जीवन को मज्ज करन में कभी लक्ष्यक नहीं हो सकती। सुचारुतया अत्युच्च सिद्ध करते हुए निःसंशय या मानव-जीवन में उच्च व्यवसाय निर्विकल्पक प्रगति करता है। इस बात का पूर्ण परिचय तो वैदिक-शिक्षा से ही मिल सकता है। उक्त शिक्षा से शिक्षित अधवा प्रगतिशील प्राचीन आय वैदिक या जीवन आश्रयण था, शान्ति क अन्तर स्वाध्याय भंडार था, अपन उत्तुख चरित्र म बड़े २ प्रकटि विज्ञान और अनोख धीरो को जन्म देती थी। इसी कारण हमको 'शक्ति' का रूप माना जाता था और 'देवि', इस विषय नाम म विनिर्गुण किया जाता था। अतःक उत्तम गुरु शिक्षा और शिक्षाप्रदायी से ही प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु आज वैदिक समय नहीं है। वैदिक शिक्षा का दौर-दौरा ना नहीं। वैदिक शिक्षा प्रदायी का तो सर्वथा खोप ही हुआ समझना बाह्यर। आज हमारे इस स्वर्णमय भारत में पाश्चात्य कठुरी शिक्षा का कीर उसकी गुरुतया प्रगतिशील का प्रकार और प्रसार है। प्रायः प्रत्येक शिक्षाप्रदाय में मुख्यतया इच्छित भाषा द्वारा भारतीय बाह्यर बाह्यर शिक्षा की शिक्षण दिया जाता है। किसी भी देश या जाति की भाषा डुरी नहीं। शिक्षा और शिक्षाप्रदायी शोधकारक हो सकते हैं इन दोनों में भी उन्नति या अन्तर्गतिकारक प्रगतिमय शिक्षा

पठित-जगत्

## आधुनिक शिक्षा-प्रणाली से हमारा ह्रास

(ले—श्री हामकुमारी अंबर लुजा)

प्रवासी ही होती है। जिस प्रकार की शिक्षा प्रवासी होती उसी प्रकार का प्रभाव पाठक या पाठिकाओं पर पड़ता है। आज कल भारत वर्ष में विदेशी सरकार द्वारा परिष्कारित भारतीय बाह्यर बाह्यर शिक्षा प्रणाली द्वारा शिक्षा के समान शोध के लिये पाठक पंडित हो चुके हैं। ऐसे पाठक बाह्यर शिक्षा के लिये ता कर्तव्य हासिकारक सिद्ध हो रही है।

इस शिक्षा से शिक्षित बाह्यर अध्यापक स्वाध्याय एवं सदाचार सदा क लिये को देती हैं। बाई न कोई राग राहस्य का भाति पीछ पड़ा ही रहता है। इसका परिष्कार यह होता है कि आज कल हर गुरुस्थ में प्रवेश होता ही डाक्टर और वैद्यों के आन के लिये घर वैद्य बन जाता है। स्वाध्याय विद्याधर हर रोग मान लेना डाक्टर और वैद्यों के द्वारा निरन्तर सुख की अपेक्षा स्वयं दुःखी रह कर सब परिचार बाह्यर को सदा चितित रखना यही उत्तुख होता है। कालिज और कुले में पढ़न बाह्यर बहनों की अप्रतिम प्रेम-पुण्य मना गुण और बुरा हासता म कीम परिचित नहीं है। गुरुस्थमधी या गार्हस्थ्य जीवनपर्यायी उसम कार्य में पढ़न बाह्यर बहने हाथ लगायें, यह उनही शान के विरुद्ध है। पावी के एक काल के लिये ही किसी व्यक्ति से कलना की पड़ना, यदि किसी घरवाले ने कार्य करने की ओर सत्य को किया तो उससे केप मात्रन होता ही पड़ेगा।

जहाँ उसम शिक्षाप्रदायी स वृत्तियों में सान्वितता और जीवन में साधरी और सुन्दर चरित्रमय द्वारा सामाजिक सुख शान्ति प्रप्त होनी बाह्यर थी रहा आज जीवन मितान विश्वासमय ही गया है। विचार नया प्राणीय बाह्यर विदेशी व्युत्पन्न या देश के पुतलिय मज्ज पायी है। स्वाध्याय क लिये हासिकारक तरह २ क कुत्रिम तन, कीम, रम, पाउडर आदि म सौन्दर्य सम्पादन के लिये भारी कोशिश में लग्नोत्तम होती हैं। पीयर सोप के बिना स्नान हो ना तो कठिन हो है। सारांश यह है कि विदेशी चीजों के लिये लाभाति रह कर अपन शरीर को विदेशी वस्त्रों द्वारा कलकल करन में अपना आहो-माय्य समझती हैं। पूर्य बाह्य की अधवा दश का अन्य कोई नता अपनी कान्ठ्यकताओं को बम करने के लिये चितना भी कहे प्रयत्न कितना भी कामद काहीधारय करन को बहें, वे सुरुप्रगत तो एक कल से खुने दूसरे से निकालें। जहाँ वैदिक-शिक्षा-प्रणाली में भारतीय बहनों में धर्मपरायणता की भाव उद्वमय होता था वहि आज यह विषयम बातावरय में दूर बहुत दूर उड़ाया जाता है। जामिमवा की भावना आज भारतीय बहनों के हृद्यों में नहीं रहती। जाति में अन्तक डुरीयों ने अज्ञा मज्ज कम्पा है। कठिवाड़ जाति को खुन की तरह कोलाहल कर रहा है। दुर्गति सति स्वाध्याय करके बाह्यर बहनों की संख्या बढ़नी हो जा रही है। किन्तु

इसकी बिना किसको है ? हो या क्या ? वर्तमान शिक्षा-प्रणाली न तो काया ही पलट रही है। इसके कारण प्रवृत्तियों गुणों की तरफ म हाकर प्रवृत्तियों की तरफ मुक रही है। आज हमारा गुरु चरित्रमय में शान्ति और गुणमय है। विदेशियों से पब-वृत्ति मारत वसुधारा को मज्ज-मुक्त करना सर्वप्रथम हम भारतीय बहनों का कर्तव्य था। इसके लिये पुत्रों का हमारे द्वारा उत्साह मिलना बाह्यर था, स्वयंसेवा की लड़ाई में सर्वप्रथम हमें कुदृग बाह्यर था। किन्तु चारों धार म नेत्र वर्ग द्वारा पुत्रार जान पर भी देश की लड़ाई म मुदुरी भर बहनों न ही साथ दिया। स्वयं भी शोध हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली का है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली भारतीय बहनों को उन्नति की तरफ नहीं ले जा रही है, भारी अधमति या हास की ओर ले जा कर संकट के गर्त में डालना बाह्यर है। मरा तो यह हृद विश्वास है कि जब त भारत में विदेशियों का स्वयं-पुण शासन रहेगा, जब तक विदेशियों द्वारा परिष्कारित यह दृष्टित शिक्षा-प्रणाली हास की ओर चले तब भारतवर्ष में गुलामी क अर्थ कालिज बाह्यर शिक्षा संस्थाएँ रहेंगी, पाश्चात्य सम्पत्ता को संकलित की जहाँ उन्नाह कर कार समुद्र में नहीं फेंक दी जायेगी, तब तक भारतीय और विषयतया भारतीय बहनों का उन्नाह कठिन ही नहीं प्रत्युत असमय ही है। इस लिये मैं वर्तमान भारत के पुत्र नताओं और अधिमेशियाँ म साराह प्रार्थना करूँगी कि यदि वे भारतीय प्रगति-मंडल का उन्नाह बाह्यर हैं तो उनका परम कर्तव्य है कि वर्तमान की-शिक्षा-प्रणाली जड़ से ही बदलन को सुचारु की कोशिश करें। तभी इस मंडल के द्वारा स्वयं कलरय संपादित होना संभव है। अथवा "धम पड़ताय क्या होवत है, जब चिदियन खुल लगे खन" वाली लोकिक चरितार्थ होगी।

## हैजा के वास्ते अमृतधारा से बढ़कर कोई औषधि नहीं

(६६ प्रति शत आराम)

हैजा के विना में जरा भी तबियत खराब हो, पेट को कोई खराबी हो, खाने पीने में कोई असावधानी हो कर कोई कष्ट हो, पीन हैजे की शंका होजाती है। जोनकल येमे ही दित है अमृतधारा पीन इन कष्ट दूर भरके देती है। यदि सवायतय हैजा को शुद्ध हो जाय, तो भी अमृतधारा पीन शुद्ध कर २ तमाम कष्ट रक्तसे २ दूर हो जायेगी।

पत्र तथा तार का पता "अमृतधारा" ८ लाहौर।

विज्ञापक मैनेजर अमृतधारा मयन, अमृतधारा औषधालय, अमृतधारा पोस्ट आफिम अमृतधारा रोड लाहौर।  
देहली में पता—विद्यारिणा धासीराम भारी बाबकी स्टो।

सौन्दर्य के दस शत्रु  
इनसे बचिये

दो-तीस खिया का एक स्वाभा  
 निकुन हाने भीर प्रयत्न लीं क  
 विक्रम बानो को स्वाभावाक इन्नु  
 पोता है। माय तन साय हो म  
 सोसा खा सुनो पारं हो। जिन सुन्दर  
 बाने जिहो। आशुजिन सवाय  
 न सो दुःख को मनक साय उपलब्ध  
 कइ है। होय पाया व गों मे  
 ता म न सायनो की सरप आरि  
 इन न ह न जाल य होय  
 शन पुन न ह। सोय  
 बरो अ य प पठउ य भा  
 कि नाइय क जयन। ना ना  
 जिया जय को अजय न रहा  
 जाये सोनूपा ले नाम क  
 जिया पोरनूपाअन। कबना  
 है कि सोनूपा ले मन यव है भीर  
 प्रयत्न ग को यह नर्तन है कि बह  
 हस्यो का पण न दूर रख।

साध्य को हानि पहुँचा वाला सब जन्मस्थ वस्तु का नाम है। यन्त्र-आपक जीवन में स्वचालन मात्रा अधिक है और फर्ला तथा हथौड़ा आदि का काम है तो उसमें आपक स्वास्थ्य और सोनियर चीजों का ही हानि पहुँचोगी।

कम मन भी सौंदर्य के लक्ष्य  
करत है। हिन्दुस्तान जैसे देश में  
सौन्दर्य टाकरेन के लिये दून रात  
में छठ अवश्य कोना चाहिए।  
यदि गर्मियाँ हैं आपको नौद कम  
चाहते हैं ना आप लापरवाही न  
काजिए और हिंसो न क्लेश उपाय  
न आपनो नौद अवश्य पूरा कीजिए।  
नहीं ता आपका सौन्दर्य नष्ट होजा  
यगा।

इसी प्रकार प्रति न कम न करना भी अपन साधन्य क साथ श्रमना करना है प्रदि दिन शातल ज्ञाया में कुकु देर गहन न आपका साधन्य बढ़ गा ओर आपका स्वास्थ मा सुधरगा।

मौन्दर्य क अन्य शत्र

इसके बाद सुन्दर तथा भद्रा आ  
कृति को प्रश्न माना है । यह सब  
आदित्य पवन की बात है । इसन  
समय त्रिलो उपर चढ़ा लन की  
आदित्य बहुत ही खराब है और इस  
से बेहतर का सोच्य नष्ट होजाता  
है । इसी प्रकार भद्रा तान दन से  
प्रोथ पर सिकुड़न पड़ जाती है और  
वह भी सीमेट्टे की धक्का पड़ता को  
है । तीसरी बुरी आदित्य भद्रा का  
आर बार मलना है । इसम पल्लके

मोटी पड़ जाती हैं और चितवन बिगड़ जाती है।

बर्खास्त पर अधिक भार पड़ने से उनकी बहुत हानि पहुँचती है। परिणाम यह होता है कि ऐसी स्त्री अपनी आयु भी अधिक बूढ़ी जान पड़ने लगती है। कम अवस्था अत्यंत अधिक प्रकाश में काम करने तथा पढ़ने से बर्खास्त पर अनावश्यक ज़र पड़ती है।

शरीर की ठीक तरह में पड़ना  
भी एक कला है। आज कल जमान  
में प्रत्येक सुन्दरी खाने में पूर्व अपने  
कपड़ तथा शरीर का अवश्य हा।  
सावधानता से पड़ना है वन्तु हम।  
म अधिक श को वह कसा मालूम  
नहीं है। लापरवाही न राख कर  
शरीर पढ़ना का परिणाम ठीक नहीं  
होता। हमें चमक पर भ्रमिया यह  
जाता है। क्षमियां कियों अपने  
चहरे को लुरलुर तोलिय न रग  
डालना है। उन्हा चाँदिय कि व  
मुताबिक कपड म आता त्ता मे  
उ सुखाना।

इसके बाद अन्य लोगों  
बार्ना पर ध्यान देने का सवाल उठता  
है जिसको प्रोथर्बान मिश्रण मुना देता  
है। यदि हमारा पाउडर प्रयोग एक  
बाली के अथवा दो इसी प्रकार का  
अन्य वस्तुओं में जरा भी खर बो आ  
गई है या वह हमारा आवश्यक्ता के  
अनुसूच मही है तो हम वाइथ कि  
हम उन्हें तरल हो बदलेंगे।

सौंदर्य का नर्तक शत्रु उसके साधन का कमी होना है। साधन का अच्छा न होना अथवा घटिया पाउडर लगाना और मागे कचा का इस्तमाल सौंदर्य का अवश्य बिगाड़ देगा।

सांध्य का दर्शन शत्रुता सब  
मजबूत है हम लगे डाकड़ों  
म उचित सलाह लिए बिना ही श  
न्याय से सांध्य को बदल कर लिए  
अनक दवाइया का इस्तेमाल करने  
लगत है। यद्यपि नरक हो जानाकर  
होता है शत्रुता नरक से निश्चित  
क्रिये बिना मोटोई कम करने की  
गालियाँ जोना या रसा प्रहार का  
किसी और दवाइ का प्रयोग सांध्य  
को गुबारन कर बनने उम निगाह  
दता है।

क्या आप बेकार हैं ?

क्यों नहीं घर बैठ डाक्टर बनत  
भाज ही -) का गिफ्ट भेज कर  
नियम मगाहये। पता—प्रतिपक्ष मेंबर  
होम्योपैथिक इन्स्टीट्यूट बिशनु लेन,  
लाहौर।

**स्त्री-शिक्षा की  
जरूरत  
रानी लक्ष्मीकुमारी का  
भाषण**

आर्यसमाज कन्या पाठशाला के  
वार्षिकोत्सव पर रानी लक्ष्मीकुमारो  
धर्मपत्नी स्व० अक्षयशर्मा जी  
( कालाकार ) ने निम्नलिखित  
आशुय का भाषण रत्नावनम के  
दिन दिया था —

पहले भारतवर्ष में सियाँ का स्थान उच्च था लेकिन बाद में भारतवर्ष में यह काल ह्रास भ्रमिण्डु हुआ है कि स्त्री जाति का पतन हुआ रहा है। मध्य सियाँ का कोई स्थान हा भी नहीं है। स्थान की बात ना दरिन्दगार, अथवा कोई भ्रष्टता हो तो भी समाज में सियाँ का एन निष्ठा नका है जो न युवक मरणो, खलक कारण बनक है। परन्तु किसी को दाय न कह न हो कोई हकीमी को रहन दुस्वस्था को कारण प्रशिक्षित कहन जाता है। इन प्रशिक्षित का कुछ शान हो नहीं। शान हा भी नहीं म क्याकि वह लोग प्रशिक्षित रहन जाता है। प्रशिक्षित रहने क कारण किसी जात का दया भ्रमन शोचनीय है। लोग लक्ष्मीवादी प्रिया नम पसन्द हो नहीं करते। प्रशिक्षित रह कर सियाँ प्रागे के जीवन में नाना प्रकार का हित उत्पन्न है। उन का हमनी हा स्थित नहीं ते कि वह प्रथमा हिलाय, निरुद्धा प्राय गृह कार्य भी उत्पन्न कर कर कहत है।

हम सब का धर्म है कि मिल  
कर बलिदानों में शिक्षा का प्रचार  
करें। योंनी शिक्षा का प्रचार  
स्वियर्षा में आरम्भ हो। हा गया  
है वह नगरों में स्त्रियाँ छोटा-का-  
लियाँ सब कुछ काठेज में पकने  
लगो है परन्तु शिक्षित स्त्रियाँ  
अभी उसको पर गिनी जा सकती  
हैं। स्त्रीशिक्षा को गति बहुत जोर  
है। शिक्षा को गति देना करना क  
हैं बहुत जोर लोगों जाहिय, क्या  
आप उस दिन देखना को आया नहीं  
करी मो कि आपका का प्रयत्न  
श्री और बालिका बुद्ध समाज क  
साथ - सुशिक्षित हो कर अपना हो  
नहीं कि कुछ अन्तर्गत समाज  
का कल्याण कर।

में बच्चों के लिखन पढ़न को हो  
शिक्षा नहीं सम्भवतो । मरा शिक्षा से  
धर्म, धार्मिक, मानसिक और शारी  
रिक विकास है ऐसी शिक्षा हो जिस

से हम अपना भला बुरा तथा देश और सत्ता को ओर कर्तव्य पहिचान लें। हमें शिक्षा से यह ज्ञान हो कि हमारे क्या अधिकार हैं, क्या कर्तव्य हैं ?

मुझे बड़ा हर्ष होता है जब कान्वा-  
ओं और बालिकाओं का पाठशालाओं  
में पढ़न आती देखती हूँ। मैं सदैव  
भगवान से प्रार्थना किया करती हूँ  
कि हे भगवन् ! इस भारतीय स्त्रियों  
का बुद्धि ज्ञान और बल प्रदान करें  
कि जलसे हमारा माँदूस देश का  
स्त्रियों की तरह समाज में मान हो।

[illegible]

प्यारी बहिन ! क्या आप भी इसी प्रकार शिक्षा पाकर भारतीय समाज को सम्मानित बनायेंगी ?

### “गर्भ निवारक”

जिन स्त्रियाँ का स्वास्थ्य अधिक सन्तान हानि के कारण बिगड़ गया हो जो अब सन्तान न चाहता हों वह स्त्रियाँ ७ दिन गर्भनिवारक' का सेवन कर सप्ताश के बिये इस सकट से बचें, (मूल्य २॥) डा० ५०। १२) पत्रा—५० रामकिशोर वेदशास्त्रो, जैगज स्ट्रीट, भल्लोगढ ।

आश्यकता है

अनुन की एज-सा क बिय  
कलिनपुर ( जिना सावो ) में एक  
मातबर और महनी एज-न को  
आशयकना है । निमादि के बिब  
शोष एव व्यवहार करे ।

मैनेजर—एन्ट्रन्सो विभाग अर्जुन  
कार्यालय विष्ठी ।

कोरल हुयेर एक असाधारण व्यक्ति है। इस हमारे यहाँ (कभी) साथ भी योग्य ही विषय हुए हैं (कभी) साथ ३२ साल की है। पर बात कुछ ऐसी अनुभवजनित आत्मभवा के साथ करता है, जैन कोई ६० वर्ष का अनुभवो वृद्ध हो। सभी विषयों में प्रवेश है। और फिर बहुत-प्रेश नहीं, किन्तु विचार अथवा गहरा संस्कार के परिणामस्वरूप परिपक्व ज्ञान स्वयं दिखाई देता है। यह युवक केप्लेस्टोविकिया का है। वह अपना परिचय खगोलवेत्ता के नाम से देता है और खगोलवेत्ता है। दुनिया में यह सब धूम है। खगोलविद्या का अध्ययन करने के लिए वह एक वर्ष पश्चिम में, दो वर्ष फ्रांस में और पार्श्व वर्ष अमेरिका में रहा है, क्राय की सभी भाषायें जानता है। केवल स्वयं-शक्ति ताराओं से व्यक्तित्व नवीनमन्त्र को देखकर वह स्तब्ध मान-बाता जाय नहीं, उस ता इस नयेमन्त्र की अनुसन्धीय व्यवस्था, अपार शक्ति और अद्भुत सजीव हमारी इस पृथिवी पर उत्पत्ता है। इसकी कम कम में वह अहिंसा का पुजारी है। टास्टरायों को मुक्तपद मानता है। खगोल विद्या में फ्रांस के महान् खगोलवेत्ता फ्लेमिन्ग का वह अपना युव मानता है। और अहिंसा के पुजारी गाँधीजी के साथ कुछ दिन रहने के लिए वह यहाँ आया है। जिसने ये वह गाँधीजीत मिला था। पर उसकी वृत्त-पर्यामिति की बातचीत का गाँधीजी पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने वर्धा आन क स्त्रिय कहा। वह भारत में छु-न्नात महीन से है। भारतवर्ष के प्राचीन खगोल विज्ञान का अध्ययन करके अब वह अपने देश को वापस जा रहा है। क्या अहिंसा जैन और भी खगोलवेत्ता आन क्राय म है, जीव्य ता है ही, पर कलामिर्वा का काल हुयेर अपना युव क्या बनाया ? इसका कारण यह है कि फ्रांस का यह खगोलशास्त्री एक सत था। उसका विज्ञान यह था कि सत्य खगोलवेत्ता का जीवन मूल्य होना ही नहीं चाहिए। कलामिर्वा ने कभी शत्रुता या सैन्य नष्टा पो, और इसी तथ्य "हमारे राष्ट्रपति मन्त्रिक का जानना" कह कर वह तुरत अपने देश की स्तुति करने लगता है। उसकी देशभक्ति उसके राम राम में दिखाई देती है। "हमारे देश को यूरोप का एक सच्चा प्रगतिशालक देश है। हमारे ८६ वर्ष के प्रेसिडेंट मन्त्रिक भी महान में ही सीधर-गांधी, हिटलरगांधी, या तुलेसीभी

## एक असाधारण खगोलवेत्ता

### अध्यात्मिक जीवन से प्रेम

(ले०—भीमहारेचमार्ग दसार)

शायी नहीं है। उसे एक भी बात बिना प्रजा की राय क करना अनुद्घाती लगती है। श्राव्य म उसे कभी ही चुग है। उसकी चेतने तो वह श्राव्य का बहिष्कार सारे राज्य म करा दे। उसका शासन-सूय इतना छत्रर चल रहा है कि १७ बरस स हमारा वही प्रेसिडेंट बना हुआ है। दूसरा प्रेसिडेंट चुनने का हमारा मन ही नहीं होता हमारा। प्रेसीडेंट टास्टराय का प्रक है। टास्टराय से मिलने वह रुक गया था। गाँधीजी

नेपाल के प्रधान मन्त्री श्री जुदरामशर राणा जगबहादुर



आपका नाम हिन्दू महासमा के आगामो प्रविश्वन क सम्पादितपद क लिए लिखे जा रहा है।

को भी वह जानता है, और उनका जूय प्रशंसा करता है।

स्वदेश की बात करते हुए तो कोरल हुयेर कभी धरता हो गयो। "हम स्लाव लोगों और आप भारतियों के बीच परापूर्व का सन्ध है। हम लोगान एक ही सस्कृति का पुत्र पिया है। हमारी भाषा को हो देखिय। जेक और स्लोवाक प्रजा कहने को देा हैं, पर दोनों का भाषा कबीर करीब एक ही है। आपकी भाषा और हमारी भाषा में दो देखने में भारी अन्तर मालूम पड़ता है। पर हमारी भाषाको का

मूल तो एक ही है। हमारी भाषा का शब्द 'जे' से लीगिए। स्लोवाक लोग उसका 'जे' उच्चारण करते हैं, जेक लोग 'जे' कहते हैं। 'जे' और सस्कृत 'हार' में क्या अन्तर है ? जेजे और पारसी 'वरपात्र' में क्या कोई बन्ध है ? 'दुस' शब्द का अर्थ हमारी भाषा में घर होता है। 'दुस' और 'घाम' शब्द में अन्तर ही कितना है ? आपका आश्चर्य होगा कि हमारे पदोस की भाषा सिधुपमियन से सस्कृत का 'शुक्' शब्द जो का ल्यो ले लिया है। पर यह वो भाषा की बात है, मैं

तो आप म यह कहता हू कि इन लोगों की धमनियाँ में एक ही प्रकार का शक्त रक्त प्रवाहित हो रहा है। आप लोग अहिंसा क उपासक हैं, और यूरोप में स्लाव लोग अहिंसा के सच्चे उपासक हैं।"

"पर कल में भी स्लाव लोग ही हैं ना ?" मैंने पूछा।

"हाँ वहाँ भी स्लाव ही हैं, पर उन स्लावों का विमल आन क वक्त्र ला गया है। ठिकान आयागा। स्वयं यह विप्लव का बीज पूँच विप्लव म आया है। ता भी स्लावों का उन्मा प्रतिनिधि तो टास्टराय हो था। कल का यह हिंसा ता एक उपरार् बीज है। कल धर्म की नदी, किन्तु मौजूदा धर्म सन्धों की निंदा करता है। क्योंकि धर्म न महा, बल्कि धम सत्या धान स्वर्ग न वह सब सत्यानाश किया है। स्वर्ग न हमारा हो धर्मियों की लुगाम्ब की है, और गरीबों का वृत्तन म बन्द दा है। यो ता मैं भी किसी बन्द का नहीं मानता। जन्म मेरा रामन कैथोलिक घराने में हुआ था पर रामन कैथोलिक चर्च छाँह तो मुझे कई साल हो चुके हैं। आज ता मैं 'हिंसा बनने का विपन्न प्रयत्न कर रहा हू।

"पर हमारा यहाँ भी इस जगते की हवा बह रही हो। हमारे शहरों में आप वर-वर रहिया लग देखते हैं। हम जो यह मानने हैं कि रहियो स हमारी जान बूझि जाती है, वह हमारा श्रम है। अर, यह सब धनियो क चर्चले हैं। इस रहिया क द्वारी हो लड़ाइया और लून-खराबिया की अथकचरी खर गाँव-गाँव म फैलाई जाती हैं।

"और यह क्या भी किसी जमान में हमारे घरी में मूझनी थी। हमारी घरी में चर्च और कर्ष पर धनक गीत मिलते हैं। पर आज तो हम लोग भी इस 'उद्योगवाद' क शिकार हैं म फसे हुये हैं। अब हमारे यहाँ चर्च और कर्ष का कहानी ही कहने को रहे गये हैं।

पर अब महान् प्रतिभावाय काल हुयेर क खगोल ज्ञान की योगी की बागानी मे दू। वह य मानता है कि खगोल विज्ञान का आध्यात्मिक स्वरूप प्रहल क लिए खगोल शास्त्री होना की आवश्यकता नहीं। इस लोग सोचरकतया अन्ध सूक्ष्म कर और कल बन्द कर जल हैं, हलिये विश्व म जा लीयेने की चीज है वह हम नहीं लीख सकते। कोरल हुयेर को आया धान देखा कर गांधी जो न जयनालल जी



से कहा कि इसका यहाँ भाष्य करना चाहिए। अपने भाष्य में हमारे उस युवक महामान न सको भीत मुग्ध कर दिया। उसकी मातृ-भाषा प्रमेयो नहीं है। साधारण भाषाओं में अमलर वानुश्रुत की प्रयोग-कृता है और भाषा भी उस दृष्टि-कृता हो जाती है। पर जब वह भाष्य देन के लिए कड़ो हुआ और जीवन लगा, तब ऐसा लगा कि जैन के ईश्वर बाल रहा है। यह बोलता तो अमीन पर था, पर उभृतो आसमान में। उसकी अलाधार्य तन्मयता दसकर आश्चर्य होता था। बहिक वह तन्मयता ही उसके जीवन की कुंजी है। इसके भाष्य को मैं शायद: दूँ ना पाठक उस ठीक ठीक समझें नहीं और जो क्षणिकी और अर्थ-वर्णन के शक्ति वह उगलता चला जा रहा था, वह सब मैं नहीं दूँ, तो पाठक बचता जायें। इसलिए मैं तो उसका भाष्य का केवल सारांश ही दूँगी।

#### विशाल विषय

प्रमादित प्रमत्त बान का भान हमें सब में पहिले बगल विधो न कराश। और हमारा जीवन इस अनादि को में एक बिन्दु मात्र है। इस बात का हमें अपने इस श्रुति को नसनी से विभूत बसायें न सलता है। यह सोमन रिखाई उन वाला शीतल चन्द्रमा हम से दूतमा दूर है कि अगर हम वहाँ जाना चाहें, तो एक पक्षसप्त गांधी में बैठ कर १५५ दिन में हम चन्द्र-लोक में पहुँच सकेंगे। और सूर्य तक पहुँचने में? सूर्य का बान इस स भी निराखी है। हम अपनी इस पृथ्वी की हो विराजता में विश्रित रह रहे हैं। हम सूर्य ता ६५५ वर्ष म १३ लाख गुना बड़ी है। सूर्य तक पहुँचने हो, ता ५५ मील की रगड़ वाली पक्षसप्त टन से १५५ वर्ष म हम वहाँ पहुँचेंगे। और फिर नभो-मन्त्र में यह एक हो सूर्य नहीं है। ऐत अग्रित सूर्य आकाश-मन्त्र में है। यह क्षणिक विषय-वस्तु अनादि बान में चला आ रहा है और अग्रित तक चलेगा। इनका कभी माश होन का नहीं, यद्यपि हमें परिवर्तन ता प्रमत्तता होता हो रहता है। यह सूर्य भी कई लाख वर्ष के बाद नष्ट हो जायगा, किन्तु लाखों सूर्यों की असम संख्या अग्रित नय सूर्य प्रमत्त हो रहेगें। प्रमत्त मिथ्या नहीं जाता। इस जीवन में नहीं तो अनेक जीवनों के अग्रतर वह अग्र-श्य सकल होगा, इस जीवन के नाग में से अनेक उज्ज्वल जीवन प्रमत्त ग। लेखक नाम का एक साधु

चरित्त भगोल-शास्त्री सोगी जिव्मो अनेक्य करते करते मर गया, अपनी शोध का फल उस ने तो नहीं उसके बाद के लोगों ने देखा। उसने तो सामग्री इकट्ठी की और उंगली से दिखाकर वह बतला गया कि, 'पैला, कर्जा जगद नया पद 'लूटेर' होमा चाहिए।' सन् १९१४ में वह गुजर गया, और १९३० में उसके बताय ग्रह का दर्शन हुआ। अनेक्य के बाद अनेक्य का दर्शन हुआ। पर क्या उसे कम सकलता मिली? उसन तो इस अग्रत अघार विश्व के एक अग्र्य अग के रूप में अग्रता पुरुषार्थ अगत को अग्रित कर दिया, और अपने जीवन का सारकर यह मित्राल संसार के आग रख गया कि, 'अभोमदल के तत्व तो उग्रक अकी' के ही लिय हैं। और फिर ये अक कैने? इस दुनिया के वातावरण से अपने बिस की पगटुल करके जगत् में निमुच होकर हृदय की गुहा में प्रवेश करक सपुर्ण आत्म-शुद्धि कर चुकन बाद ही मनुष्य सच्चा अक बन सकता है। जिस आत्मशुद्धि की साधना हमारे पुत्र के श्रुति मुनिवो की भी, नभो आत्मशुद्धि हमारी अलि की सच्चा दृष्टि देगी, हमार कान की सच्ची अश्व-शक्ति नेगी। तभी हम मष्ट ईल सकेंगे, अग्रत चुन सकेंगे।

यह सारा विषय अग्रित घुम रहा है। एक ग्रह का आसपास अग्रक चन्द्रमा घुम रहे हैं। कुज तो एक दूसर का आसपास घुमन वाटे दुगुन, तिगुन और चौगुने आकार वाटे मनुष्य है य सब अपनी इतनी नियमित गति से घूमते हैं कि उसमें लग्न या एक हजारवें आग का जितना भी फर्क नहीं पड़ता। ईश्वरीय नियम स य सब मनुष्य अपनी अपनी कला में घूमते हैं, इश्वर य आसपास में कभी टकराते नहीं। इन्हीं अग्र विषय में विचार नहीं, किन्तु सदायः कोना-हम नहीं, बहिक स्वर्णा सगता है। इस सगोत हो सुनकर भी हम अग्र

अथ क्या आसपास का कहन नहीं भूलेगे? हमारा जीवन क्या है। अग्रो की इस विशाल कपी के लटकन की डिक् डिक् की अग्रो हमारा जीवन किसता घणिक है। इसलिए हम गस्स किस बात का करें? किस मुमान में रहे? लेकिन फिर भी आग हम आँखें होते हुए भी अग्र होकर घुम रहे हैं, कान होते हुए भी बहरे बने फिर रहे हैं। जहाँ एक मृक्य पत्रक भारत हमारी के प्राप्ती को लेता है, वहाँ बच्चे-बच्चे युद्ध करोड़ों का सहार कर देते हैं। हमारे जीवन कलह का नोच स्वागों का भी कोई पार नहीं। अमेरिका में ऐसे ऐसे कारागार पड़े हुए हैं, जिन्हें यह भी पता नहीं कि ये अग्रन ऐसे का किस प्रकार उपयोग करें, और उनको कालों के आगो हो लावा बंकार आदमी भूको मरत रहते हैं। जहाँ एक १३०० फुट ऊँची अमार ५५ लिफ्ट लगी है जो लोगों को ११५ मी मिल तक पहुँचाते हैं, वहाँ क्लिन हो ऐसे मनुष्य हैं, जिन्हें रहन को होपवी तक नहीं। कलसाल के परामन में सर डेकन-डेकन लोखी उन गह नष्ट कर दिया गया, और टेकसास क परामन में लोखी उन कई

## तैयार

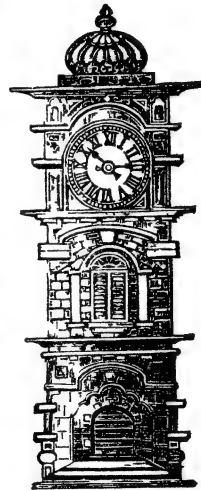
निय व्योहार को घरेलु वस्तुएं कृपा अंगोते, विलकुश मशीन, लूस मशीन, बट, हावन-वस्तु, जालो आदि ठेके का अनेक दणों का सामान, सरफेस बक्क, आयर्न मशीन, स्तून, जोना, जिच के पाये आदि। मशीनों के पुर्जे, पिस्सन, स्लिकन्डर, चक्की की अशीन के पुर्जे, कार्पिंग प्रेल आका। मीज कोरुड, राजाशाली, कलकरी, पञ्चवारदार आदि सब स्थानों से सस्ते और अच्छे। विस्तरन थ्योरे के बिधे निय लिखित पते से सामग्य करें—

रामनाथ गुप्ता

कारबाजा दलार्, हाँजकाजी, देहली।

को गठि में आग लगा दी गई— इसलिए कि जहाँ और गेहूँ का भाव कहीं गिर न जाय, और पनाहल जाग कहीं कम घनमान हो जाय? जब कि उसी धोरिका में हमारी उन्नो बिघटा लपटे घुम रहे थे, अब धोरिका में ही नहीं, बहिक हिंदुस्तान और चीन में लोखी नो और भूले मनुष्य बिबिलिते फिरते थे। यह सपथता है या जंगलीपना? अब भा हम बेत जायें, तो बिबिलियनों के नियम पर टिके हुए इस क्षिय नभो-मन्त्र का दर्शन करके अपना यह सलिन हृदय गुदक कर लें, और मनुष्य-मनुष्य और राष्ट्र-राष्ट्र के नोच का यह नाशकार कलह दूर करक पृथ्वी पर स्वर्ग को उतार ल।

( 'हरिजन मंचक' से )



## घन्टाघर यानी टावर क्लॉक

हम बहुत सस्ती कीमत से देते हैं। स्कूल, फ़ैक्ट्री, स्टोरेज आदि की बिल्डिंगों पर भी यही फिट करते हैं। विशेष क्षिति के लिये लिबियेना। सुख संचारक कम्पनी, मथुरा।

आन्टिक् फार्म-म्युटिकल-कम्पनी लिमिटेड लंदन का

# जगत निष्ठात कामचक्षु

REGD.

पौष्टिक वस्तुओं पर टिप्पणी के अतिरिक्त शक्ति देता होकर का आग्रह भी पुरातन के हस्त-आग्रह भी मूल्य में लाया जा सकत है। हर जगह विकला है। पुरी शक्ति ५० मनुष्य १००

देहली के एजेन्स—जमनादास एण्ड कम्पनी लोकर देहली।

# क्या कर्जदार अब से जेल नहीं जाया करेंगे ?

कुछ समय में विभिन्न प्रान्तों में कर्ज-कानून जारी हो रहे हैं। प्रायः सब प्रान्तों के कानूनों का एक ही अभिप्राय है और वह यह कि भ्रष्ट-प्रभु किसानों और अन्य व्यक्तियों को सहायता दी जाय, उन्हें महाजनों या अर्मा-स्तोत्रों के भ्रष्टाचारों से बचाया जाय। इन बिलों में सब को उच्च-तम दर नियत करने, बिलों में महाजनों करने और सम्प्रभोता बोर्ड कायम करने आदि का विधान है। यंत्राण के बिल में एक बार चारों भी जोड़ी गयी थी कि कर्जदार को कर्ज भरा न कर सकने का हालत में गिरफ्तार भी न किया जा सके। इसका अन्तर्भाव में बहुत विरोध हुआ और वह धारा पास न हो सकी।

अब भारत-सरकार के शुद्ध-स्वस्थ सर देशों के न सिविल प्रोसीजर एक्ट ५१ धारा में एक संशोधन पेश किया है, जिस का अन्तर्भाव कर्जदार व्यक्तियों को जेल न भेजा जा सकेगा। यह बिल लोकमत के लिये प्रचारित किया गया था। भारत-सरकार के पास इस बिल पर सरकार, गैर-सरकारी, हार्डवेयरों के जमाने, बार-पसोसिखतों और व्यापारिक-सवों तथा अन्य व्यक्तियों के मत आये हैं। इन सम्मेलियों में सीधु मतभेद है। कुछ इस धारा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं और कुछ इसे लेन-देन के कारोबार के लिये अत्यन्त हानिकारक।

## पक्ष में

कर्जदार को जेल भेजने की धारा को उठाने के पक्ष में जितनी युक्तियाँ आई हैं, उन में न कुछ नीचे दी जाती हैं।

१. कैद और जेल बहुत आतंककारी है। अपनों विराटों का भ्रष्टाचार और जेल की तस्वियों में बचने के लिए उस का विराटों वाली को अपना छुटकारा पत्र जाता है।

२. जेल में बचने के लिये प्रायः कर्जदार को बहुत भारी सबूत पर किसी और महाजन से कज लेने के लिये बाध्य होता पड़ता है। इस ओर प्रायः पक्ष यह होता है कि वह और भी कर्ज के समुद्र में डूब जाया है।

३. अपने पापों बखल करने के

## भारत सरकार का नया बिल

छः प्रांतीय सरकारों बिल के पक्ष में पक्ष और विपक्ष में युक्तियाँ

(१००)

लिये उत्तमर्ण (लेनदार) जिस सम्पत्ति को कानून के द्वारा लेन का अधिकारी नहीं भी है, वह भी जेल के दर विला कर वह पसल कर लेता है।

४. कर्ज न दे सकने के कारण प्रतिष्ठित व्यक्तियों को कौजदारी मुजरिमों के साथ रखा जाता है, जो अत्यन्त अशुचित है।

## विपक्ष में

वर्तमान कानून में कोई भी परिवर्तन करने के विपक्ष में निम्नलिखित युक्तियाँ दी जाती हैं -

१. अब अधमर्ण (कर्जदार) कर्ज चुकाने की क्षमता रखता भी है, तब भी वह संयुक्त परिवार को प्रयोग की प्राप्ति में या जहाँ और बहाना बना कर कर्ज देने में हथकार कर देता है। यदि कैद की सजा का इन् न रहे, तो इस प्रकार के बहाने बहुत बढ़ जायेंगे।

२. उस मनुष्य की साक्ष बिल-कुल न रहेगी, जिस का पास जाय शान न हो या थोड़ी हो।

३. जहाँ अधमर्ण की बहुत तुरी हालत होती है और कज चुकाने में असमर्थ होता है, यदि साधारणतः उत्तमर्ण उसे जेल भजना ही नहीं, क्योंकि उसको भीजाना ही व्यय प्रयोग करना पड़ जाता है।

४. वैध भी बहुत कम हालतों में अधमर्ण जेल जाते हैं। इस लिये योके स लोगों के लिये नया कानून बनाने की जरूरत नहीं रहती।

५. प्रायः का कानून भी ईमानदार कर्जदार को जेल में बचाने की पोषण सुविधाएँ देता है।

कुछ लोगों ने यह भी सलाह दी है कि कानून में सब के लिए बर्तन नियत व्यवस्था न हो, लेकिन हर एक के मामले में अलग-अलग प्रमाण विचार करे। जो आधमर्ण दे सकता हो और देता न हो, उन जेल भेजा जाये, लेकिन जो दे ही न सकता हो, उसे गिरफ्तार न किया जाय।

## दिल्ली के श्राविक

यह समझा जाता है कि दहली के बीच कमिश्नर अधमर्णों को जेल भजने का हक नहीं है। उनका कहना है कि यह अधिकार केवल सरकार को होना चाहिये कि वह समाज के हित की दृष्टि में किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता छीन सके। यह अधिकार महाजनों को तो कभी भी नहीं सोचना चाहिये। किसी भी हालत में अदालत को बिना जज के किसी कर्जदार को जेल में नहीं भेजना चाहिये। वे लिये संशोधन का बहुत अधिक पसंद करते हैं।

लेकिन दिल्ली के सबजज दीवान श्रीराम पुरी इस बिल का बहुत उग्र समझते हैं। उनका खयाल है कि इस में उत्तमर्ण का अधिकार छिन जायगा। इसमें पञ्जाब और बिहार में तो कर्जदारों को कर्ज न चुकाने का साक्ष हो जायगा, क्योंकि वहाँ ना किसानों को जमाने भी जमाने नहीं की जा सकती।

मध्यप्रदेश की सरकार न बिल का पूर्ण समर्थन किया है। नोमोड के जिला और मेरठस जज न यह सलाह दी है कि यह बिल केवल गरीब कर्जदारों के लिये ही रखा जाय।

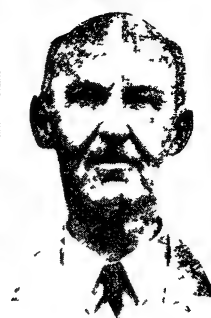
भारत में यह अनुभव किया जा रहा है कि इस बिल के बनाने की कोई खास जरूरत नहीं है। इस यदि प्रांतीय कौंसिलों पर छोड़ दिया जाय, तो अधिक अच्छा हो।

अजमेर मेरठोडू का अडिशनल जिला जज जहाँ इस बिल से सहमत है, वहाँ इस बिल को १०० तक वेटन मोगियों के लिये रखने की आवश्यकता नहीं समझते। वे कहते हैं कि आधमर्ण कोही या बड़े हो, इसका खयाल नहीं करना चाहिये। सभी के लिये यह बिल लागू होना चाहिये।

अजमेर के सब जज स्माल कोज की सम्मति है कि बिल लाभ की अपेक्षा हानि अधिक करेगा।

बिहार व उड़ीसा की सरकार, मध्य प्रदेश, है, इस बिल

सर हेनरी क्रॉक



के सिद्धान्त के विरुद्ध है। उसकी सम्मति में यह संशोधन अनावश्यक है और यह बिल पोने-बासी को बहाने और उत्तमर्ण पर अशुचित भार बढ़ावेगा।

बम्बई सरकार ने इस बिल का पूर्ण समर्थन किया है। लेकिन बम्बई हाईकोर्ट न जमाने न वर्तमान कानून में संशोधन का विराय किया है। उनकी सम्मति है कि यदि कर्जदार दीक्षा के कानून की शरय नहीं देता, तो यह सम्झा जा सकता है कि वह अपने जायशुद्ध को बचाना चाहता है।

संयुक्तप्रदेश की सरकार बिल के हक में है।

बंगाल सरकार इस बिल का बहुत लाभप्रद समझती है।

मुजिबम जैमर कामर्स कलकत्ता इस बिल के पक्ष में है। ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन कलकत्ता की सम्मति है कि इस बिल में उत्तमर्ण के अधिकारों का नाश हो जायगा।

पञ्जाब सरकार इस बिल का समर्थन करने हुए इसे अपने कानून से कम पर्याप्त समझती है।

अब यह बिल असेम्बली के शिमला अधिवेशन में पेश होगा। उसका चाहिये कि भारतीय जनता के प्रतिनिधि अधमर्णों का पक्ष लेने हे या उत्तमर्णों का और उत्तम कर्जदार जेल जान से बच सकते हैं या नहीं?



## चिलों का किला-तीन दृश्य

जेतेवा की गुल्जर लाल क चकरी नगर चित्रों का छुट्टर प्रसिद्ध किला है। किसी समय यह समय दुग माना जाता था। इस किले में स्वयम्भवा के किलन मक्त साकार की कोषाधि के पाप होकर अपनी उग्र गुमार के हैं। माना है। लोरो में मंगल क रुरुक न अनवा के स्वयम्भवा मानेलेन क नती बोमिवाड का इसी किल में होकर रखा था। बोमिवाड वस्तुन, वस्तुन का हो कतिवारी था, लखिल वस्तुन क अनवा क चिन्मोचिनी पर का याकार का लखर हो वह स्वयम्भवा मानेलेन में स्तिमिति होया। कि ठ में नरुडाने में उन पर का मन भावण का वा चार होते थे योग स्वयम्भवा भवत में नष्टक प्रामादु वसाद ने मन्त्र रहती। मानिब ड कु बप लक करुण। ११ ललावड बोमिवाड का विम कायड लखय।



जिनवा की भील से किल का दृश्य



चिलों का किला जहाँ बोमिवाड कर था



किल को सरदार भवन

हिन्दी का प्रत्येक पाठक जानता है कि यदि किसी को भी कृष्ण का गो-सद्व्यस वचना हो, मोर-मुकुट, वन-माला, रत्न-चिह्न का सुन्दर लुट्टा हो, गोपियों की निरहर्षि में जलना हो, तो वह बड़े माया के समीप कृष्ण-साधन का, हिन्दी की अन्य-कृष्ण भक्ति अनु-रजित काव्य-माधुरी का परिशीलन कर जाय। शन-रात कवियाँ न लीला बिहारी, रास मञ्जु-नैकुल के आभार और तनुपरान्त गो-गोरी राज, कृष्ण को भक्ति क प्रबल प्रवाह में आत्म-विस्तृत हो, ऐसा ले दे भङ्गभङ्गा है कि क्या कहा जाय ? भक्तों ने जिस दुःखानी आ केम म भगवान को आहूँ हाथों लिखा है, उसे आप प्रहरी और सुन्दर लगे-वन की भूमि माला-राग तक तो पहुँचा हुआ हो समझिए। हम वहाँ अपनी इस भूमि-का-कल को कष्टी-फला एक अनुद उदरय म करक अपन मुक्त-विषय पर आ-या कि कवियों ने अपन भगवान को निरन्तर रंग की जुगल-जोरी को भी कवित्वा का कला अनुद विषय बना लिया है।

इस लिखने की हृद है। उद्-हृत देखिय पाठक ! एक भक्त शिरोधार्य कहाँ तक उल्लास है, अपन भगवान के कि कृष्ण महाराज को नहीं तक मिला दिलाते नहीं करते ? कहाँ हैं, भिन्न वे पद-कर्म में अवतार ले कर कब तुम न गो-पिय नवार्थ, मत्स्य अवतार ले किस के वीर हर, कञ्जुप रूप में कब बाँटुरी बजाई, किस की क्षुधियाँ झुँईं ? यह तो राधा-शोभा ही ऐसी प्रगट हुई कि जिन्हों में तुम न काम-कला का पाठ पढ़ा है। नहीं तो, शायद, इस म भी कोर रह जाते। कयो कवि जो महाराज, यही मन्त्र रहा होगा न आप का, जब कि आप न गारा था:—

सूकर है कब रास रच्यो, शय बनाने है कब गोपिन नवाँ ? मान है कौन क चर हर, लिय कलकुर है कब लुटु बजाई ? होय नुँसह कही इनि जू !, तुम कौन की क्षुधिन रख नगाई ? लव-मातुपुत्रा प्रगटी जब त, तब त तुम किन जना निधि पाई ?

हना हा नह' सम्भवतः यह पल्ला भाऊ कर अपन भगवान के पीठ पड़े मौजी कवि 'रसलला' ये, जो और आगे बढ़ कर 'अहिर की क्षुधियाँ को क्षुधिया भार क्षुध पर मानन बाजे और फिर मा आग्रय (१) प्रभु की पोख पोखत हैं—

## श्याम कृष्ण और गौरी राधा

कवियों की अनूठी कल्पनावे

( ले०—भो जगदीशमहादेव माधुर 'दीपक', रात्रस्थान-पत्रकार )

नारद है सुक व्यास रटें पविहार, तऊ पुनि पार नवावे । ताहि अहिर की क्षुधियाँ क्षुधिया, भर लुङि पै नाव नवावे । बाह, बाह ! क्या लुटु ! क्षुधियों के, लुटुटु भर लुङिपर योगीराजका नाव !

आइय पाठक, देखें—यह विश्व-विशोभन गीत 'लौचन' क्यों है ? कवियों क कल्पना की उड़ान में इस का कारण दुःख हो तो नाग रीदास जी सहज हाँ ग सुक है ना, सहज कजराही झली वाली गोपिया की झालों में समाया गोन भला काला क्यों कर न हा:— कजरा हा अक्षिगति में, बह्यो रहे विन रात । प्रीतम प्यास है सखी या त' साँवत गीत ।

कुंवारे-पन ही में कुमारियों के नैन में तुम र कर कात तो था हुआ । भव कृष्ण प्रपयना, नव वि-बाधिता दुखदिन आरं । कवि प्रीतम कल्पन म उनकी आवाँ का भो क्षान्त का झट्टा साधन अपनी कल्पना का उड़ान में ले आता है प्रीत कृष्ण-प्रसीता अपनी नविका न केसो नन्मय की श्याम लिखाना है यह कहला कर—

साँवर श्याम के साँवरा रूप में, नैनन क कजरा करि राख्या ।

'श्याम कृष्ण और गोरी राध' का आकाश-पद, कवियों की कल्पना उड़ान के निय होना क उन रसाले लिखया नायक नयिकाओं पर रंग किकवान हो, चातुरी-भरा बात कहलान का कारण भूत हान से, न बच सका । वहाँ तो कवि-चातुरी न प्रथम माधुर की ऐसी रा राखि है कि बस, सुनत ही बनते हैं— विहरित सह राधिक्रम रमी । मनु-मुकुटन्यायन राधा लहरिरिह बर तरंगी ॥

अर्थात्—विलासोत्कलकता यहाँ-मल जोरुण, वल्लभगमन पर, कुञ्जों विटों में, भो भो राधा मे कौन कर रहे हैं ।

विकरित यन्त्रित मय वैरिग राधा कु कुमकम् । दृष्टिाम् यमपि लिलात सुमद रस रागिभिर विराम् ॥ अर्थात्—राधाजी भीकृष्ण पर कु कुम आइय आन-न्यायक वयं पक रही हैं और इनके प्रतिरोध स्वरूप आक्षेप कस्टरी मिश्रित-वारि की पिकवारी अपनी प्रयत्नी की देह पर मार रहे हैं ।

यहाँ श्याम मोर गोरी की रग-रसातुभूति का मनोजक बोध करान के लिय सम्भवतः स्पष्ट विरहेष्य की आचरणकता रह गई है। सुनिव— राधाभो क वल्ल-साम्य म पीला कु कुम आक्षेप को मिय होजाना स्वाभाविक ही है । दीक हवा प्रकार, भो कृष्ण का वल्ल-साम्य हेतु कस्टरी भी भो राधाजी को सहज मिय हो ही जाना है ।

हना ही नहीं, श्याम और मोर क इस रग-खल में इसरा काय सार्वभौम नकाति न यह कल्पनिलि किया है कि:—

आक्षेप के श्याम अंगों में, पाने (हर रंग के जवाहिर यो मखि विशेष) क साथ रसग की भक्ति कुकुमगानिन करवाकर और राधा के गौरांग में, वाँ क कलक की भक्ति, गहरी कस्टरी शोभायक रग संजित करन की कल्पना कर, इनक प्रेमाधिक्य क सहज विषय के साथ सुगम भर हो है ।

श्याम-कृष्ण को पने की आह म मिवाकर, उन पर पड़ कु कुम के छोटे की स्वर्णमूला सोमयमम बतान हुए, एक और महाकवि की उक्त पद हलमिल करने निकली पड़ने है । गौर वदनी राधा और श्याम वल्ल कृष्ण क एकात्मक माव की कथा सुन्दर उपमा बाँधी है । सुनिव—

'राय खोन की धंशूरी, श्याम मौलम नमो हा ।'

को यह तो दुर्ग श्याम और गोरी की जवानी की बात । अज्ञात शीतल निर्वाह राधा के बाह्यक की और भी हृदय कृष्ण की महाकवि देव न कण्ठो किरिकी दरकार है ।

एक दिन काह कृष्ण को बीच में सुभाकर, उसके पास हो बाह राध को एक छोटा सुलाय, 'घाव' लोन्नी ही बाहरी भी कि हठीली गोरी-राध काह कृष्ण के संसर्ग से श्याम रंग वह जोन का मव बाकर बहूँक उठी । खतुर चोप न माला भी सुभावा तो दिशो किन्तु उस में भी स्वर्ण राधिका के सामन बेचारे श्याम को कलौटी की उपमा सहनी पड़ो है । कवि ही के दर्शों में—

'राधिका माधवे एक ही मेज वै, चाय ले कोर सुमाय सजोने । पार 'महा'रवि' काह की मय्य में, राखे कला । 'यह बात न हीन । लंबरो होडो गो लारव संग में । 'गरव तोहि लिखारें ले कीने । खोन को रंग कलौटी कने, पे कलौटी को रंग लने मखि खोन ॥'

बचपन की वशी, माव के दृश्ये सं, ऐलो भोता बाना, जवानी में श्याम रग के विरद गोती न बजाती है । यहाँ कवियों न मलून स्वात्म-कता की कथा को लूँ रखा को है । यौवन को मात्कता ही तो वह कथा है, जता नारो का एपे प्रीतम-समर्पण सहज मिलता है और उसक हृदय पर न क एकाधिक्य । अथ वह राधे समको:—श्याम से उज्जमला मिलनी है ।

'काटि मानु जो ऊँचवे, तऊ उचार न खोय । तनिक श्याम की श्यामना, जो हल लमी न होय ॥'

राधा क हल मानस-परिवर्तन का निरन्तर विकास बिहारी की शब्द-जादुगरी न देखिय—

या अटुरांग विन का, गति सख्यै नहि खोय ।

उयो उयो वूहे श्याम रंग, यो रयो उखल होय ॥

अन ही मन यह पराजय अनुभव करन दुर भा, कृष्ण क—'तेरो तुलू लोको कि मरा राव पदरी ?' ऐसा हलुन पर कथा ही मुँहवाँट उतर दिया है—

'हम का कई तुमहीं यो' न देखो, मे मारा तुम श्यामबिहारी । हमर बह्व उम' बंरा की उवमारी, तुमहरी बह्व उम रोन बंधमारी । तुमहरे साल पर मुकुट बिबाये, इसमें लील पर तुम मिरिबाये । 'बल्ल सखी' भनु नाह कृष्ण कवि, शोड मोर प्रीति बधा किये मारी ॥

हथी दुखद स्वभाव की बा तो स्त्री का 'मन हो मन हाँकि कई न बैसन ही नहिवाँ' कह कर कविरों न सहते गमो है ।

# भारत में योरोपियन जजों की नियुक्ति क्या ठीक है ?

## जजों को सर लालगोपाल

### मुकर्जी के परामर्श

#### साम्प्रदायिकता से बचो

#### वेतन से ही संतुष्ट रहो

ठीक समय पर बदलते हैं होकर हो

प्रत्येक लोक कोर्ट के न्यायाधीशों को सर एम० मर्कस के सम्मान के उपलक्ष्य में नियुक्त गये मुक्त प्रांतीय जुडिसियल आफिसर एसोसिएशन के दशम सम्मेलन में उस के सम्प्रापित सर लालगोपाल मुकर्जी ने निम्नलिखित आशय का भाषण दिया—

#### यूरोपियन जजों की नियुक्ति

मुझे यह एक बड़ी श्रेष्ठतम बात जान पड़ती है कि इस देश के न्याय विभाग का संयुक्त शासन देशवासियों के हाथ में नहीं है, देशवासियों का ही मुकदमे लड़ने वाली का भारी दौलत-रिवाज आदि स परिकल्पना है और इसीलिए वे उनके मामलों पर अधिकार पकड़ती तरह स विचार कर सकते हैं। आप लोग सब यह जानते हैं कि जिन दायित्विक मामलों में यूरोपियनों का सम्बन्ध रहता है उन पर सभी जज विचार नहीं करन पाते। इसका कारण यह दिया जाता है कि भारतीयवासियों का यूरोपियनों के नियमों और रीति-रिवाजों का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं है। यदि यह सिद्धांत ठीक है—ता यह इस देश के मामलों पर इसी देश के विचार-प्रवर्तियों द्वारा विचार करने की आवश्यकता पर भी लागू होती है। कहा जाता है कि कुछ यूरोपियन जज इस में भी बहुत सरलता प्राप्त करते हैं परन्तु उनको यह सफ़लता कितना अनुभव प्राप्त करने के बाद आरम्भ होती है और इस बीच में उन के अनुभव प्राप्त करने तक कितने निर्दोष व्यक्तियों को हानि उठाना पड़ती है, यह कौन कह सकता है।

हार्डकेट में नियुक्तियों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ईंग्लैण्ड की प्रशासनिकों का अनुभव प्राप्त किये हुए लोगों के यहाँ प्राप्त से हार्डकेटों का बड़ा लाभ होगा। परन्तु आप इन कालखंडों के सम्बन्ध में क्या कहते हैं जो कि फाल्से से सिद्धा प्राप्त करके

ताने दो धाते हैं और उन्हें अपने ही अनुभव विभाग का भी धक्का तरह बल नहीं रहना। इस प्रकार के युक्तियों के हाथ में न्याय विभाग में जिम्मेवारी पूर्ण पर देने का कोई भी नीतिव्यव नहीं बतलाया जा सकता।

आर्य० सी० एम० वाले

शासन विभाग में कुछ थोड़ा सा ही अनुभव प्राप्त करने के बाद सिविल सर्विस वाले युक्तियों को इरिस्ट्रट जजों के पद देन में भी कहाँ तक न्याय है। वे उन स्वाधिन जजों और मुक्तियों की धारणा सुनते हैं, जो कि उनमें कहीं फाल्से पकड़ रह चुके होते हैं और जिन्हें उनकी अपेक्षा कहीं कमजोर अनुभव होता है मुक्तियों का बड़ी कष्टा परीक्षा पास करनी पड़ती है और उन्हें १५ लाख का अनुभव प्राप्त किये बिना स्वाधिन जज के पद पर नियुक्त किया भी नहीं जाता। आर्य० सी० एम० पास युक्त जिन लोगों तथा कई लाख के अनुभव प्राप्त स्वाधिन जजों का प्रतीत सुनता है। इस प्रवर्णी में जजों के स्वाधिन को भी रत्ना नहीं होगी और मुकदमा लड़ने वाली के धारणा में इन उठाने पड़ती है। इस के सिवाय यदि आर्य० सी० एम० वाला सज्जन अगर जज हुआ तो उन देश की रीति-रिवाज भाषाओं और प्रवर्णों का भी कुछ अनुभव नहीं रहता। यदि आर्य० सी० एम० हिन्दु-स्तानी हुआ तब उस कास्नी जान और अनुभव की आवश्यकता रहती है। पहले आर्य० सी० एम० वाले को मुक्तियों का पत्र मिलना चाहिए और तब कहीं तज्जको करते करते उन्हें इरिस्ट्रट जज के पद पर पहुँचना चाहिए।

साम्प्रदायिकता का विषय

सज्जनों! साम्प्रदायिकता का विषय हमारे भारतीय समाज में बुरी तरह घुसा हुआ है। मैं सर्वत्र दृष्ट स

विश्वास करता हूँ कि इस प्रांत की जुडिसियल सर्विस वाले इस विषय में झगड़ते हैं। आप लोग विचारयति हैं और न्याय के पवित्र सिंहासन पर भासीन होते हैं। परमात्मा ही कानून है और आप उसके प्रतिनिधि हैं जब कि आप न्याय के शासन पर बैठते हैं। परमात्मा मनुष्य मनुष्य में भेद नहीं करता और सभी समान रूप में उसके पुत्र हैं। इस सम्बन्ध में महात्मन श्रीकृष्ण के शब्दों का उल्लेख करना—'ममोहम् सर्वं मृत्यु'—आपों में सभी भावियों के लिये समान रूप में है। मुझे विश्वास है कि इस प्रकार के कथन सब धर्मों में होंगे, जिन्हें मैं यहाँ सुना नहीं सकता। यदि ईश्वर सभी के लिए समान रूप में हो तो वह मनुष्य कि जा उसका प्रतिनिधि है जिनके व्यक्तियों के लिये विविध प्रकार का भेद हो सकता है। जिन लोगों का ईश्वर में विश्वास नहीं है उन पर साम्प्रदायिकता का तो कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा पर वे जातीय विद्वत् की भावना के शिकार हो सकते हैं। उन के लिए मैं बहुत ही क्षमाय में कोई राजनितिक प्रभाव नहीं पड़ सकता। मुझे आशा है कि इस प्रकार के लोगों में बहुत ही कि मनुष्यत्व के नियम के आगे उन्हें भी अपनी सर कुकाना पकेंगे। बहुत दिन हुए भारतीय कबीर न जिन्हें हिन्दू हिन्दू मानने थे और मुसलमान मुसलमान—गाथा था,

पौधो पड़ि पड़ि जग मुद्रा,  
परिछन भया न कोय।  
दोरं अस्वर प्रेम का,  
पडे में पड़ित द्वय ॥

मेम की मद्दतगरी से आप सबके और बुद्धिमान जज बन सकेंगे।

सज्जनों! आप जानते हैं कि प्रांतीय जुडिसियल सर्विस के नये उम्मेदवारों का वेतन कम कर दिया गया है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि नये साइड ईमानदारी के

रास्ते में किंचितमात्र भी हटें। वास्तव में मनुष्य में सभी भाव-वृत्तोंपर बहुत कम दानी है। बात यह है कि मनुष्य क व्यवसायविक जीवन के ही कारण उसको ऊपर याते भी पहुँचती है। प्रत्येक भारतीय चाहे वह किन्हीं भी जाति का क्यों न हो, इस बात को भली भाँति जानता है। शारीरिक वास्तवों के पाँडे फिरन में अपना कमी तुष्ट नहीं मिल सकती। यदि ऐसा न होता तो धनी व्यक्ति ससार में सब में अधिक संतुष्ट होता। परन्तु क्या परिस्थिति वास्तव में यही है? इसलिए मैं आप में आग्रह करता हूँ कि जो कुछ भी वेतन आपकी मिलता हो उसी से संतुष्ट रहिये।

मन्मो मलाह

अब मैं अपने लक्ष्य भाषण को सर्विस से नये ध्यान वाली को सभी बलाह से हर सम्मान करना। आप लोग सब बड़ी धन्यवर्णी और प्रियो किंसल के फेलोशों को पण्डित तद्विषे पैला सार में आपों के आग्रह करता हूँ कि जो मुकर्जी का पैलाता जल्दी करना लगें और इस तरह से आपके समय की भी काशी बचत होना लगें। जो मामला आपके सामने हो उस पर नियुक्ति देन न कभी जरूरतका न करिये। अन्तिम बात समझ को यादना है। अज्ञान में ध्यान के सम्बन्ध में हानि नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, यदि सम्मन को पावर्णी करिया ता आपकी काशी कुरसन मिटेगा। जिनमें आप कसरत मनोरंजन आदि करके धनमा स्वास्थ बना सकेंगे।

अन्त में मैं आप को काफ़रेंस की सफलता की कामना करता हूँ, और आपने कष्टपूर्व बनाय जान के लिये आप सब को कि धन्यवाद देता हूँ।

## हिन्दुस्थान की आपरेंटव इन्शारेन्स

### सोसायटी लिमिटेड

१९३२-३४ का व्यवसाय बॉर्डर कोइ से ज्यादा

बोनस एन्डोमेन्ट पॉलिसियों पर २३)

सर्वे जीवक पॉलिसियों पर २४)

इस में शामिल है यदि आप अपना बीमा उन्नतरील कालिस भारतीय सोसायटी में कराय।

# सिनेमा स्टूडियो या वेश्यालय : एक अभिनेत्री की आत्मकथा

मैं सब कहती हूँ कि वास्तव में मुझे अपनी जीवन-कथा लिखते हुए लगता थाती है और मेरे कहना-ना सबी सों जातो है। कारण ? मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब सिनेमा प्रेम में मेरी जीवन-कथा में परिचित हो जायेंगे, तो व मुझ पर क्या कालों तो इतनेदार बहिक उठे मुझे पुणा की छवि में देखन लगेंगे। सबकुछ में अपनी जीवन-कथा न लिखना और अपने विचारों को न प्रकट करती, कारण मेरा हृदय इस बात की गवाही न देता, परन्तु वह कि सिनेमा स्टूडियो में मुझे जोर दिया है कि मैं अपनी जीवन-कथा स्पष्ट रूप से लिखूँ, ताकि जो लोग इस क्षेत्र में हैं तथा जो पढ़न चाहें हैं उनके लिये हितोपदेशी मान-सिद्ध हो। इस लिये मैं इतन स्पष्ट शब्दों में आज अपनी जीवन-कथा लिख रही हूँ।

बहुत दिनों की बात है कीक तो नहीं बना सकती, परन्तु लगभग १५ वर्षों में कम न हुए हग कि मैं १० वर्ष की एक सुन्दर कन्या थी। मेरे पिता स्वर्गीय मानीलाल जा एक स्कूल में शिक्षक थे और सारा शहर में उनका बड़ा मान था। वह एक अच्छे तथा ऊँचे कुल के स्वतन्त्र युवक थे और किन्नर विश्वविद्यालय के प्रमुख थे। परन्तु मुझे शोक सहित कहना पड़ता है कि जिस माता से मैं जन्मी थी वह ऊँचे कुल का न थी, बल्कि एक नीचे पातावरण में जन्मा न जन्म लियी थी। जब मैंने दोहा सम्माला उस समय थी उसी केवल ७ वर्ष की थी और उसी अवस्था में मेरे पिता न मुझे एक प्रसिद्ध स्कूल में पढ़न के लिये भेजा। इस स्कूल में मैं एक साल तक पढ़ा। इस के बाद मेरे पिता का 'हृदय' हो गया।

वास्तव में मैं अपने अवस्था ही से बड़ी सुन्दर थी। इतना सुन्दर थी कि जब मैं स्कूल में पढ़न के लिये जाता तो बहुत न मुझसे मेरी ओर घूर-कर दायन। मुझे यह देख कर बड़ा उदास न लड़ होता था, पर उस समय हर बच्चा सहकती थी। मुझे यह भी याद है कि इसी अवस्था में वृद्धा अन्ध-अन्धकी प्रेम का पुनर्कृत्यो उप-न्यास पढ़ा करता था। यही मेरी बहिक लुप्त सिनेमा में दखल करती थी और मैं सब कहती हूँ कि इसी हो जाती (उपन्यास का पढ़ना तथा

## क्या कुलीन देवियों को फिल्मी दुनिया में जाना चाहिये ?

(२०—श्री गणेशकुमारी)

सिनेमा देखना) न मेरे हृदय में कुछ कूट कर प्रेम भर दिया था और मेरा हृदय प्रेम में इतना प्रवृत्त हो गया था कि मेरी यही प्रवृत्त हड़का होती कि कोई मुझ में प्रेम करे। पर पाठक इस बात का ध्यान रखें कि मेरा प्रवृत्त प्रेम उस प्रेम का नहीं था जो बाजार में सस्ते दामों बिकता है और जिसे हर घर खरीद सकता है। कारण मैंने यह पहले ही में लिखे हुए लिखा था कि मैं अपने पिता का नाम को बलकित न कहूँगी। परन्तु शोक मेरी यह सच बाधाएँ खक में मिल गई और मैं प्रति शोध अपनी प्रतिभा को मूल गयी।

आज का बात है कि मैं स्कूल में कबल साल भर ही पढ़ पाई थी कि मेरे पिता का स्वर्गवास हो गया। मेरे पिता की मृत्यु के बाद मेरे घर में तबाही छा गई। अब मेरी माता का पूरी ध्यान मिल गई। वह कालो वास्तविकता यह थी कि और मुझ को भर कर अपनी अन्ध-अन्धता में भर देने लगीं। ईश्वर जाने उन के हृदय में किस प्रकार का प्रेम था, किस प्रकार का अग्नि उनके अन्तर प्रकट थी। वह होकर सत्य एक न एक युवक को अपने पास रक्खना पसन्द करती थीं। यही नहीं, बल्कि उन्हें न यह भी चाहो कि मैं भी स्कूल जाता कन्व कर दू और उन्हें की भक्ति जीवन का उन्मा कुमारी की ओर दान दू। परन्तु मन ऐसा नहीं होता। अन्त में जब उन्को न मुझ पर उठान दिया तो मैंने स्कूल जाना बन्द कर दिया और इस बात का स्वाकार कर लिया कि मैं गाना सीख लूँगी और आज का गाना सुनाया रक्खनी। आज दिना के बाद मैंने एक अच्छे गान सीख लिया। इस प्रकार मैं उन लोगों को जो मेरी माँ के पास आन करने गाने सुनाता। परन्तु इस प्रकार कि किसी अन्य बात में शामिल न होती। सुनिश्चय ऐसा हुआ कि मेरे गान सुन कर सबकी मुक चाहल लगे। उस समय मैं यह सोचती थी कि ए परमात्मा मैं भला किस प्रकार इतने युवकों को प्रसन्न कर सकूँगी, परन्तु कुछ

दिनों के बाद सब कुछ होन लगे और मैंने अनुभव किया कि मैं सब कुछ कर सकती हूँ।

इस के बाद सिनेमा की ओर मेरा गान दोहा और मेरी यह हड़का हुई कि मैं किसी प्रकार सिनेमा ऐका स बनूँ। सन १९२० ई० में मैंने सब से प्रेम सिनेमा क्षेत्र में पदार्पण किया। चूँकि मैं कम उमर में रहने ही में बड़ी निष्ठा थी इस लिये शोध ही मैंने इस क्षेत्र में सम्माला प्राप्त कर ली। बच कुछ हो दिनों में मैं एक मसिख ऐक्ट्रेस हो गई और सब सिनेमा प्रेमों मुझ चाहत लगे।

इस प्रकार सिनेमा सारा लक्ष में काम करत न लगता १२ वर्ष हो गये हैं। इन्हीं १२ वर्षों में मुझे इस क्षेत्र का बड़ा अनुभव हो गया है। मैं माना यह अनुभव है कि सिनेमा-कर्मियों को मालिक, सिनेमा एक्स्ट्रा को तत्काल नैन के लिये नहीं बल्कि अपना समाजसेवा की पुरी करने के लिये कर्मनिष्ठा जोलत है। कारण जहाँ का उन्पर कामनेनी इनक हाथ पाई अट इन्कोन अपनी कामना पूरी की। पाठकों के यह शोध आवश्यकत मान्य होगा परन्तु मेरा तो यही अनुभव है। कम-कम मुझ को यह सुनिश्चित भोगनी पड़ी दिन-भर तो मैं केमरा के सामने काम करती और रात को अपने मालिकों, धारोन्धर तथा ऐक्टरो की 'नाइट ड्यूटी' करता। मैं हा नहीं बहिक मेरा तो यह अनुभव है कि निम्नानी ऐक्ट्रेस में प्रेम रहिक तथा मन-ले मालिकों धारोन्धर और ऐक्टरो का मालिक वतन सीमात्रित प्रवृत्त कर लनी हैं। कारण एम ऐक्टर व धारोन्धर तो कुछ भी कमान हैं उठ सब इन्हीं ऐक्ट्रेसों को दत्त हो। मुझ नहीं। यह हाल है सिनेमा जगत का। बस, मैं आपना कहता मैं प्रायना कहना कि यह कभी भी सब क्षेत्र में पदार्पण करन की चेष्टा न कर और कभी भी रिस्क ऐक्ट्रेस बनन का विचार न कर। कारण यह देख लेना कर की तो उन्हें भी 'नाइट ड्यूटी' (Night duty) करनी पड़ेगी। मैं कहती

हूँ कि सिनेमा-क्षेत्र में कोई भी ऐक्टर या ऐक्ट्रेस पाकसामन हो कर नहीं रह सकती ऐसा करना बड़ा कठिन है। और यदि कोई ऐक्ट्रेस ऐसा है जो सिकुल पाक व सार है (मुझे तो कम न कम विश्वास नहीं) ना वास्तव में वह ऐक्ट्रेस तारीक के कालिक है। यही नहीं बल्कि हम लोग उनकी इज्जत करें।

वास्तव में मुझे यह सब लिखते लगता आनी है परन्तु फिर भी ऐसा कर रही हूँ क्योंकि मैं सम्मालो हूँ कि सिनेमा में मेरी बहुत ही शरीक बहनों का पायदा पड़ बैगा। सिनेमा क्षेत्र में पदार्पण करने से पूर्व ही मेरे बहुत से चाहन लगे थे, परन्तु जब मैं रिनेमा में काम करने लगी तो मेरे चाहन लगे और भी बढ़ गये और अब तो मुझे बड़े-बड़े शराक लोग भी चाहन लगे हैं। परन्तु मैं अनुभव-शून्य थी और मैंने यह नहीं सोचा कि बड़े-बड़े प्रेम करने वाले अपना मतवाब निश्चय जान के बाद भी से ऐम निरुद्ध हो जयों आनी मुझ जानन हो न प्य परन्तु मैं उन का हर ही क्या सकती थी। भाग्य-वश कुछ मेरे भा व किर्तित्वे वाचन वत लम सारा लिये बड़ा मुहंभत करत रहे, परन्तु व स मेरा सुन्दरता कम हो लगी, निरुद्ध हो प्य और प्रेम करना वो दर किनार कि दुवाय सुख की न रिखा। इस व स करना कोई आमान काम नहीं। सच्चा प्रमी इस नसार न मुश्किल में मिकता है। मुझे शूब यह है कि मेरे जीवन में मुझे प्रेम का बाला कवल एक हा ऐसा युवक मिला था। वास्तव में मुझ में प्रेम करता था। परन्तु शोक' अत्यन्त शोक' मैं उसकी नद न कर की उसक प्रेम न प्य चाहन सका यह न जान सकी कि उनका प्रेम सच्चा है। मेरी वह विचारों (मेरा सच्चा प्रेम) मेरी निरुद्धा नैव कर जहर साकर भर गया। आज दिन जब मुझे उस प्रेमी का याद आती है तो मेरा हृदय तपप उठता है और कलजा मुह को बा जाता है। परन्तु अब वह कहीं मिले जे मेरे जावन की नाव को पार लगाया। बस यह है मेरे प्रेम की कहानी और यह है मेरी जीवन-कहानी।

(रघुसिने)



रेणु के खिर पर  
टाफी-स्टार कम्पनी  
की पुष्प खवार है।  
यू तो किसी  
विचित्रपट में  
गाई करने का  
निश्चय वह पहले

कई बार कर चुका था, पर जब की  
कुदियतों में उसका यह मर्ज अपनी  
आँखों की छिपी पर पड़ चुका गया। गाँव  
को लेवक बना रहने के बजाय पर-  
देख में लौटकर बनना ठीक समझ  
कर उसने कम्पनी का रिफ्ट कटवाया  
और वहाँ पहुँचते ही दरवाज़ा पर हो-  
उस में आ उठरा।

होटल के कमरे में बैठो हुआ  
बस 'सिनमा-संसार' में छुपी हुई  
किसी 'मिस' की तस्वीर पर दृष्टि  
झपाये कुछ सोच रहा था कि एक  
नौकर ने आ कर कहा 'प्रेम, दृष्टि-  
वश पिछले के मैनजर देवोकीन से  
कह रहे हैं कि आप एक बच्चे डाह-  
रेक्टर से कम्पनी में मिला सकते  
हैं।'

"ठीक है, लार्ड बाइड तो बड़ा  
ही बुद्धि हैं लेकिन... कम्पनी जी, दावर  
कहाँ है?"

"दावर! क्या आप ने होटल में  
आते वक़्त दावर नहीं देखा? अम्मा  
कमिथी में बतलाइए" पास ही तो  
है।"

नरेन्द्र उठ बैठा हुआ और नौकर  
के साथ हो लिया। दो-बार कमर  
पार कर नौकर ने रुक कर कहा,  
"बहाई है दावर।"

"कहाँ है?"

"यह क्या है फिर? आप देखते  
कहाँ ये लोग चले उतर जा रहे  
हैं।"

"भोफ! वो कहीं गुप्त लोग  
बहाई जीन का दावर कहते हो।"  
"हाँ मैं पढ़ रहा हूँ, जहाँ फिलम  
कम्पनियाँ हैं, वह दावर कहा है?"

"अम्मा, क्या मैं समझा 'दावर'  
परेख के पास है।"

"भोर परख।"

"परेख दावर के पास है।"

"कच्चे अजीब अस्मों हो! ये  
सोमों कहाँ हैं?"

"कोन सोमों?"

"परेख और दावर।"

"कहिये, चिचपोककी का अग-  
का स्टेयन परेख, परेख से अम्मा  
स्टेयन दावर और दावर से घग।"

"बस करो, रहने दो गुप्त" देवो-  
कीन से एक टेफ्फी बुझाया दो।"

+

+

+

"गुप्त मॉरिस डाहरेक्टर।"

"गुप्त मॉरिस मिस्टर?"

कहानी

## टाफी स्टार

(ले. — श्री पुण्योत्तम महादेव वैद्य सिनेमेटोग्राफर, इंदौर)

"बेल्लार आप आटम" "इंडीवेट मियम" "टाफी स्टार"  
हवाई सचिव साप्ताहिक "अजुम" में प्रकाशित होने वाली  
मेरी किसी कहानियों का अनुवाद या कृपास्वर, उपन्यास मादक  
सिनेमा-ग्रामा में इनका उपयोग और इन्हीं गुप्त प्रकाशित करने का  
अधिकार मैंने अपने स्वाधीन रखा है। — लेखक

"नरेन्द्र।"

"मिस्टर नरेन्द्र, आइये-आइये,  
कहिये मैं आप क लिय क्या कर  
सकता हूँ?"

"आप मुझे टाफी-स्टार बना  
सकते हैं?"

"कभी खुशी तो। मेरे ब्यापक से  
आप बंगाली हैं?"

"जी हाँ, मैं कलकत्ते रहता हूँ,  
वहाँ मैं वा रहा हूँ।"

"भोहा, मैं समझता हूँ कल-  
कत्ते में तो आप के लिय सिनेमो-  
टोग्राफी का कामों "स्कोप" था।"

"मरक कीजिये डाहरेक्टर, लेकिन  
मैंने सुना है, आप होलीवुड इ-  
टर्निंग लेक आरत आया हैं।"

"जी हाँ।"

"फिर वहाँ तो आप के खिर  
काली ने भी क्या-क्या थो?"

"भो, हो, वहाँ सी आप की  
ऊँचाई क्या है?"

"जनाब, मैं हूँ इटलर मे  
सिरी आका हूँ नादा हूँ।"

"ठीक है, आप बाक्सिग  
जानते हैं?"

"बम्बूजी हमारा कालेज का मैं  
फेवरिटेट और मॉन लाइटवेट वॉरि-  
यम हूँ।"

"कभी अम्माजी बात है, तैरना तो  
आप ने याद ही होता?"

"गुप्त मे आप तैरन की कौ-  
यल पकड़ते हैं डाहरेक्टर। तो फिर  
आप ने अम्माजी में मेरी नाम नहीं  
देखा?"

"जी नहीं और हम लोगो के  
हलमी जुलैस कहाँ है?"

"अफसोस। अजी साहब गंगा  
की कभी बार में तैरते हुए कलकत्ते  
में मुकफरपुर पहुँचने का मेरा  
बाल गिनया रहक है।"

"भोह! सो लोह दू मोट वू  
मिस्टर?"

"नरेन्द्र।"

"मिस्टर नरेन्द्र माफ कीजिये,

मैं हर वक आप का नाम भूलता  
हूँ।"

"क्या इज है, आज तो पहली  
रात आर मान पहला ही दिन है,  
देखिये रसाई होत-होत शगसाई भी  
हो जायगी।"

"हरफसल अजी आप हमारे  
फोन्स में आइये ता! बड़ी जैन से  
मुझसेभी, समझे मिस्टर...?"

"नरेन्द्र।"

"मिस्टर नरेन्द्र, माफ कीजिये,  
फिर भूल गया लेकिन देखिये हम  
सोशियल और डिस्करल समी  
फिलम बनाते हैं। क्या मैं आपम और  
भी कुछ सवाल कर सकता हूँ।"

"अजी आप मुझे फोस और  
रीकाल कर सकते हैं।"

"आप का तलवार के हाथ याद  
हैं?"

"अजर याद हैं।"

"और पोके की सवारी?"

"बाह! यह बात लुप्त पड़ी  
आप ने जात का घर बोर पोके  
पर न चढ़े। अजी इतरत, मेरे पापा  
के इजेंजी वाके कलकत्ता 'टर्न' में  
हीकते हैं, कई पोके तो मैं लुप्त  
हुन किय हैं और दो मरतबा रेल में  
शीड़ा कर करते आया हूँ मैं।"

"कहिये और?"

"ओ नहीं और कुछ नहीं, हम  
बड़ी खुशी से आप के आस दंगे  
लेकिन हाँ एक बात रह गई।"

"सो कीमती?"

"क्या आप गाना जानते हैं?"

"जी नहीं, मैं गद्य-काव्य का  
पुरस्कार हूँ।"

"हमारी नजर में यह बड़ी कम-  
जोरी है?"

"हमने कमजोरी की क्या बात  
है। हम मुश्किल को आप सहज में  
आसल कर सकते हैं। देखिये, अब  
गाने की जरूरत होती, मैं सिर्फ  
अपना मुँह दिखाया करूँगा और  
कोई दूसरा जानकार गाना करेगा,  
वह हथकंडा तो आपके मुँहावे

का।"

इतन में एक नौकर ने कहा "डाह-  
रेक्टर साहब, कोई मयी येन्ने का आर  
है, क्यूंभाई आपकी बुला रहे हैं।"

"मैं जाता हूँ कहीं दाह, बापा  
आप?"

"अभी नहीं पाप।" कहकर वह  
बला गया।

"नरेन्द्र न पड़ो, 'य बापा कीन  
हैं?"

"मालिक कम्पनी है।"

"अम्मा! तो आप मालिक को  
बापा कहते हैं?"

"ओ हाँ, यहाँ यही रिवाज है,  
सिनेमा कम्पनी के मालिक आकर  
बापा, काका, या दादा के नाम म की  
पुकार जाते हैं। अम्मा, आप  
तयारीक देखिये, मे अजी डाहिर  
हुआ।"

+

+

+

डाहरेक्टर के चले जाने के बाद  
नरेन्द्र उपासी देर खुर म बैठ सका।  
कुतुब के सीनार सा एक अगह दर  
रहना उसके मित्राज क खिलात था।

वह कुर्सी पर म उठा और पतन  
की बेचों में अपने लोमों। हाथ डाले  
हुए म लौटो बजाता हुआ कमर में  
रखो चोचों को पुन फिर कर देखन

लगा, रीवालो पर खुन की तस्वीरें  
लटक रही थीं, किसी तस्वीर में  
मिस मैना अपने जहरीली काली से  
उभान काते पर कुरिय चला रही थीं

ता किसी ने मिस मैना अपने हाँवों  
की मसीहार्द पर इतरा रही थीं।

देखते देखते नरेन्द्र की नजर एक  
देवाल पर पड़ी, उस पर भूपा का  
सामान और एक बड़ा आदमी सजा

हुआ था। समी सामान एक अगह  
देवल पर उमे भी 'मैक कल' पर  
अम्मा हूँ। उसन तुरन्त अपना चे-  
हरा बड़ी कुशलता म रंगा, भो-  
साफ की ओर पोडर लगाकर आद

खान, बाँध पोडे, "कल-देवर" फाट  
खीट कर उसन अपने सन्याकट पोर्ट  
क ऊपर बड़ी दयावत्ता मीड बिपका

ली और हाँवों पर रा मच लिया,  
पास ही खूदी पर उगी एक पारसी  
पगड़ी लिर पर रख अपना चपरा

माफ पर चड़ा लिया, बड़ी शान म  
लेव म सिगरेट निकालकर सुखगार

और आकड़कर इतर उधर दहलन  
लगा।

"क्या मैं अम्बर का सकनी हूँ  
जनाब?" कमर के बाहर म आर हूँ

बड़ी मोठी आवाज उसक कानों पर  
पड़ी। देखा, दरवाजे में एक जवान

बड़ी कभी उसकी तरफ आशा मरी  
काली से देख रही है।



“आपका लक्ष्य ही है, मैं तो बड़ा आपका कर्मचारी हूँ। कहिये, क्या कुछ बड़ा काम है? लेकिन पहले आप यह बताइये, आपका मैं किस नाम से पुकारूँ?”

श्वेत वस्त्रा सुन्दरी ने कमर में आकर बन्दी धारा धारण में कहा—  
“सरकार, मेरा नाम महाता है  
क्यों? आपने अपनी आँखें क्यों  
बंद कर ली हैं?”

“अज्ञा, महाता का रोयनी मैं  
क्यों बंद कर ली हूँ? मैं तो बड़ा  
आपका कर्मचारी हूँ। फिर मैं तो एक  
माँ की आँखें बंद कर ली हूँ।

इससे बड़े दिलकश आत्म्य होते  
हैं बड़ी किस लायक है?

“आप मेरी विभी-सततत की  
मनका बनन लायक हैं लेकिन  
आप इसी पर लक्ष्य तो रखिये  
क्यों? क्या आपको हैं वेदों में  
मेरे वर उतारो हैं वेदिय आप  
सिंहार का शोक तो जरूर करती  
होगी?”

भी मुझे आपत तो नहीं है  
कभी कभी।

“अज्ञा रदन भी हो यह बात  
तो ताजमहल बनवाने वाले शाहजहाँ  
को भी मबरसर न थी। देखिये  
आप तरल आपा हमारे  
हाथ पर प्रगल्भ को।

बयस भी फौज हमें  
यह नियामत सिखारते को।

उसकी इस आत्मा में जो तो  
हमें उल्लेखनीय वाणिज्य-श्रीजिये।

“जो बड़ी सुखी से अज्ञा में  
खुद सुखना लगी आप क्यों तक  
लाफ करते हैं? अज्ञा सरकार देखो  
बाते कर मुझे यहाँ मैं न बालिय  
जी हाँ वेगक सिगरेट दरभलत  
किया माफा है लेकिन सुस्ताला  
माफ को मैंने सुना है पारसिया के  
मजहब में ना तमाचू पीना कर्ना  
मना है।

छोटी भी अज्ञा को। आप  
क्यों महाश्री दलदल में पल रही  
हो? मेरे ललाट से आप भी आप  
ऊँटा क सभा का रवाना जेको  
हैं, अज्ञा बाबू ता महाता की जगा  
बिजली न हटिया का है और  
बा सिद्ध को टोकावन न खरब जियो  
हैं तिम पर मैं सिगरेट पी रहा  
हूँ यह बात इस घड़ी लियो  
आपक कसरा कौन जानता है?

“सुदा ता हाजिर नाजिर है।  
वाह क्या फिलमफा है? अज्ञा  
सुखी के ता हम सभी वडा क्यों है  
न? फिर आप आप की सेवा की  
हुई चीज हम सब शोक में बरत  
करते हैं।”

“अगर आपके उत्सव ऐसे ही हैं  
तो मैं खुश हूँ और, अब मैं सर  
कार में कुछ आपकी ही हाल बयान  
करूँ?”

“अज्ञा, आप इतनी परीक्षा में  
क्यों पकती हैं, क्या हम तो हैं?  
महाता ने आपकी कुली नरेश्वर  
के बिलकुल पाँच सरका लो और  
कहा, “खुश न कर, हम तो हो,  
देखिये मैं बमारस की रहने वाली हूँ,  
मान बजाने का मेरा पेशा है मैं डेर  
दार हूँ।

“अज्ञा! तो आपने अपना हरो  
किस मेदान में कहा किया है? हम  
बरसत के दिनों में।

“जो आप समझे नहीं, बड़ी  
का कसूर बाप हो, इतरा मे, लाल  
है बालदान में मैं लानदाभी तथा  
यह हूँ।”

“यह! माऊ कीजिये मुझे अब  
मैं समझा लेकिन यह तो बलताघो  
यह सब मुझ में किन मतलब से कह  
रही हो?

महाता न नरेश्वर क हाथ पर  
अपना मुलायम हाथ बड़े प्रेम में रख  
कर मसुता में कहा “अज्ञा साहब,  
बगैर महाता के तो ममकी भी पुत्र  
पर नहीं बैठती। वहाँ को बज्ज है,  
सरकार मुझ पर करम कर और  
पकड़े मुझे मैं मुझे मोहर कर ले।  
“यह बात तो आपका डोहरकर  
म कहना चाहिए।

“जो, उमन तो मैं अज्ञा मिलकर  
हो का रही हूँ, उन्हीं लुद मुझे  
आपकी क्षिप्रत में अज्ञा है।

क्या?  
“आप मालिक कम्पनी जा हैं,  
सिवा आपक कुछ मेरी दर मुझ

आप मलती कर रही हैं, मैं  
मालिक कम्पनी नहीं हूँ मैं तो खुद  
यहाँ नौकरों की मलाज में घोया हूँ।

“अज्ञा आप मुझे क्या वनाते हो,  
मना लात क हूँ मैं कुन्ना को दरी  
तो मुझ तकनी है।” एवा। हव  
बड़ी को आपने कर्मों में जगह दू-  
निया। कहते कहते महाता न उस-  
गल में अपना सुखी बाई हाथ थीं  
और उसक सोने पर अपना फिर  
देक दिया। नरेश्वर उनकी इस हरत  
से पका-पक सिहर उठा और दूर  
डटान को काँपसा करता हुआ बालों  
“छोको। छुआ मैं मुझे तुम।” दला  
मुझा बापों में लग तब मैं मेरा  
कमाज खपन हो रही है।

“बलाह! क्या कहने हैं, अज्ञा  
इससे सब फिर आपने चीन से  
लगाये को उन्मील में से रुई मडिया  
पर कुछ की बाक खाने फिरते हैं।

और आपको अपने कमील की पड़ी  
है? और वायदा किये आप  
अब नहीं कुछ सकते हैं आपकी  
हरमिज नहीं कोहन की

“क्यों नहीं छोड़ने की। यह  
कम्पनी का वचन है या तुम्हारी  
स्वाभाव? एक बूझा सो भाँटियो  
कमर में आपकी तुरत विगडा।

महाता उठकर नरेश्वर ने दूर  
जा अड़ी हुई और उस बूँद को सलाम  
कर बोली “अज्ञा तो बाँधोआन आप  
इतने नोरोज क्यों हो रहे हैं?”

“बाँधोआन किये कसरी हो जी।  
जरा भर तब नही रहती।

“अज्ञा तो बलाह! बलाह! बलाह!  
औरत जात हो नहीं तो बलाह! बलाह!  
नरेश्वर बीच बीच में जोल उठा  
“क्या बतलाते आप? अपने  
मुँह में लगे बलाह! बलाह! बलाह! बलाह!

बाधा जान कह दिया तो  
तयक उठे। क्यों आपकी  
सफेदी पर वडा हुआ सिखाज चुक  
गया।

देखा जो मुँह सझाह कर  
बाँधो बरना

अज्ञा आप इतने पात्रों में  
मे को मीन खेतो मे बाहर  
क्यों हो रहे हैं? देखिये, आपकी  
सलस फुल रही है बैठ जाय जरा  
कुर्सी पर वही कीजिये महाता  
खंडो देखनी क्या हो जरा आगे बढ  
कर अपने हाथ में हवा ऊँको मैं  
पर बैठिये मेठ जी मैं आपकी  
पोट मल हूँ।

“चुप रहो। तुम जानने नहीं  
मैं कौन हूँ।”

“मैं जानना हूँ आप हसलान हैं  
मगर गैलन के फर में पड कर हम  
पर नाहक बिगार रहे हैं।”

महाता बाँध कर बाली  
और नहीं तो कश जरासी  
बात पर इनको नाराजी आप जेमे  
खुशियों को आपको नही मान्य देतो।  
मला आपने कुछ देख भी लिया ता  
उस पर परदा डालना या आप  
क बोले बच्चे भी ता घर में कुछ  
करते हाँ दोग।

चुप रहो अज्ञा। कुछल की बह  
बास में नही चाहता, मैं प्रकृता हूँ  
उस बात का जवाब दो।

“आप मुझ में अवाध लकब करने  
का क्या हक रखते हैं?”

मैं हस कम्पनी का मालिक  
हूँ। समझें।

नरेश्वर धबरा कर बाँल उठा “तब  
तो बडा गोलमाल हो गया। आप  
अगर कम्पनी के मालिक हैं ता मुझे  
यहाँ से खड़ी-सलामत निकल आयेने  
की बात सोचनी पड़ेगी।”

(शेष पृष्ठ २७ पर)

## अलमोड़ा में जनी खादी

(पृष्ठ १६ का शेष)

आप: २५ हजार रुपया खादी-कार्य  
के लिये अंशदायक दिया गया था।  
महात्मा जी ने यह वचन दिया था  
कि इस धन को महाता के खादी  
कार्य को प्रोत्साहन देने के लिए खर्च किया  
जावेगा। इसी महात्मा जी से  
निवेदन है कि वह देखे कि खादी-सम  
कुभाऊ के हिस्से के धन को कहाँ  
और कैसे खर्च रहा है। वहाँ सध  
म खादी सहायता अस्सीकोड़ि  
कोड़ के नाम आनी चाहिए। युक्त  
प्रत्यक्ष में किन्हीं अस्सीकोड़ि कोड़ों  
ही ऐसा बोझ है जो कि खादी का  
काम करता है और पिछले वर्षों  
२५ हजार रुपया कर्ताई दुर्गति के  
प्रचार-कार्य पर खर्च कर चुका है।  
समयत, किं० बोझ (अस्सीकोड़ि) क  
अंशदायी १० मीरिक्लम पत जी  
का महात्मा जी का साथ विस्तृत पत्र  
अवधार हुआ है।

अस्सीकोड़ि डिफिन्ड कोड़ों  
को अब खादी का काम  
हल दिये पर सहायता चाहिए  
कि जिस से उम ऊनी-खादी के काम  
से कुछ प्राप्ति हो। कम न कम उले  
हल काम न घाटा न उठाना पड़े।  
किं० बोझ उम करीर। वसको किंकि  
कर। या उम किन्को करने प्रायश्च  
सन्ध्याधि क हाथ छोप देवे। कार  
पचरों खुल्लु न उम पतने के बरके  
तैयार कारकर या डा० जीतसिंह को  
आधिक सहायता दकर उम कसन  
क चरखा न प्रचार बढ़ाने। स्वतन्त्र  
सन्ध्याधी को अमानत पर रुपया  
ऊना खादी का काम करने के लिए उधार  
दे। बागवत न दूसर स्थानों में  
ऊनी मास की प्रशिक्षी अपने कच पर  
ऊनी वस्तुओं के लिए बाहर  
बाजार को दें। सरकारी मीरिक्ल  
खुद के साथ सहायता कर वहाँ के  
प्रचारकों को नवो २ डिग्रीस  
तैयार करने क गिना देने के लिए  
देहोत डिग्रीजिये।

चू कि इस समय बंकारी को  
वचन तथा प्राम उद्योग धर्मों को  
उपजाना न की और सरकार न  
महात्मा गांधी जी का ध्यान है,  
इसलिए हमें आशा करने चाहिए कि  
किसा न किसी दिना से कुमाऊ में  
खादी के काम को सहायता मिलेगी।  
सहायता पड़ जाने का जितना डि०  
को० अस्सीकोड़ि है।

## सप्ताह का फल

### राशि-क्रम से

(ले०—श्री सूर्यमन्त्र ध्याते)

ता० २६ अगस्त से १ सितम्बर तक

मेष

ममः स्थिति खराब रहेगी, शत्रुओं से बचते रहना चाहिये। राजकारणों में यश मिलेगा। भागीदारों में व्यवसाय करना चाहिये। वाहन बन्धों और स्त्री तकलीफ भोगें, आर्थिक स्थिति खस्तापसन्द न रहेगी। एकाग्र कार्य द्वारा से विवाह जाना समय है, जय में परबालाएँ रहेंगी।

वृष

आर्थिक परिस्थिति सं असन्तोष रहेगी। कर्जदार सलायेंगे। प्रायः कारागार होगी सखी में अथ रक्कत, कोरलान्तारों का अपन मो-करो से सतर्क रहना चाहिये। घरके लोगों के द्वारा सकल के सामने करने पड़ेंगे। भागीदारों में व्यवसाय करने में कुछ बचत हो सकेगी।

मिथुन

मौकरी की तलाश में प्रयत्न करेंगे। भौतर की तरफ से चिन्ता बहुत सलायेंगी। बहुत अम का अप्रयोजन मिलेगा। साथी रक्त एवं बलाय में पैसा फनामा होक नही। मन में अस्थिरता रहेगी। देव विदेश घूमने में शारीरिक स्थिति बिगड़ रहेगी। लफड़ा-कायले के स्वापारी बाटे में रहेंगे।

कर्क

आय साधारण होगी रहगी। साथी को सहायता रहेगी। राजकारणों में यश की उम्मीद रहेगी। नवीन लोगों से परिचय बढ़ेगा। छोड़े हुए के सामान में विशेष खर्च होगा। छलक हर्ज के व्यवसाय में आर्थिक मन जायगा। मौकरी की तलाश में रहने वाले कुछ स्थान पा जायेंगे। बीच २ में शीत विकार का अभ्यास रहेगा।

सिंह

देव विदेश घूमने में व्यय विशेष होगा। सब प्रकार में सुख रहते हुए भी मन में सन्तोष रहना सम्भव नहीं। भायस के लोगों से कहल के फलप्राप्त बढ़ेंगे ऊँचे से मिलने को वेत का सन्देह है। बहुत दिनों की बर्षा आशा पर पानी फिर जायगा। छा की तरफ से चिन्ता बढ़ेगी। राज

कारणों में सकलता मिलेगी। भार २ में कहल हो सकती है।

कन्या

आय अच्छी होगी परन्तु जब के शस्त्रे की खजोरी खुले रहेंगे व्यापार में लाभ समय है किन्तु रिश्तदार उस क्षण देंगे। शारीरिक अम बहुत उठाना पड़ेगा। मौकरी की तलाश में रहना आशय्य है। कर्जदारों के लिए सन्तोष कराय है। बकायत पेसो पाल और घटवारी नम के लिए सन्तोष नेष्ट है, शारीरिक अम बहुत उठाना पड़ेगा। मौकरी की तलाश में कुछ आशा बच सगी।

तुला

गल्ले के नौपारी सुखी रह सकते हैं आय के नवीन रास्त वने दुसरी की बलावा में खुद जेन उड़ावेंगे, घरों का बीमारों का और सुख की (पावरिया) बीमारी बाते को सतर्क रहना चाहिये, छा की तरफ से चिन्ता के कारण उपस्थित होगी। दूसर का आशय से चर्चे जानन की उम्मीद रहना चाहिये छा की तरफ से चिन्ता के कारण उपस्थित होगा। परन्तु लुभावम बहुत उठोवी पड़ेगी। मौकरी की तलाश में रहना बेकार है।

मृश्चिक

आय की घोसत से लुर्च की स्थिति बड़ी दुर्घ रहेगी, आपनन की शिकायत कमी रहेगी। राजकारणों में सकलता मिलेगा व्यापार में भी लब्धी प्राप्ति में आशा रहनी चाहिये घर के प्रसले आश्रन हर दम चिन्ता म्द रहेगी। मौकरी की खुन में रहना होक है।

धन

व्यापार व्यवसाय में लाभ होगा। सहायता मिले की रहेगी, शारीरिक स्थिति भी अच्छा रहेगी परन्तु मान लिख कामोरेरिया अत्राय बढेगी। राजकारणों में सकलता को आशा रहेगी। भागीदार पर विश्वास रहना होक नही। बात के रागी कुछ तकलीफ उठा सकते हैं।

मकर

शारीरिक परिस्थिति एक हम खराब रहेगी, दुसरी की सहायता से प्रयत्न कार्य होंगे। आर्थिक स्थिति अच्छी रहेगी कुछ फसा हुआ मान निकलवान में राजकारणों को अमर सहाय पड़ेगा। राजकारणों में सक्तता की आशा कम रहेगी। सन्तोष मयम है।

कुम्भ

आर्थिक परिस्थिति एकदम में अच्छी रहेगी, बीच २ में सुकसा

लगने का आसार बनें परन्तु बर्ष की सहायता में आपति का छुट कारा होनायका घर के लोगों की बीमारी परशाम करगी, अम बहुत उठाना पड़ेगा। राजकारणों में भी असकलता प्रचल रहेगी।

मीन

मन में चकलता विशेषकर होगी काम काज में मन कम हतेगी कोरीगर और सुचारु स्थिती वर्ग के लोग बढ उठावेंगे गुर्दे के बीमार और घरों तथा निमागिया की बीमारी के उपचार चिन्ता में करना चाहिये राजकारणों में सकलता को आशा रहेगी भागीदारी में व्यापार रहना होक है, सन्तोष मयम है।

बाँधी का भाव कुछ मरम होकर ऊपर चढ़ेगा, गल्ले का आश्रम कष्ट रह सकगा। दुडी और होशायान तथा जूट पाठ का भाव में साधारण तजी रहेगी बायदे का भाव कुछ तेज होना समय है।

(गुप्त १० का योग)

जब कि समुद्रों राह की उसका मदद हो और हम म्द म्दवर्षी हो वह कार्यादि राह से हम सपन नहीं होते ना उ मोन अवधि रह होगा, ना प्रायवयन में चलन है।

मान चलन हो शायत कहन

हैं कि—

मैं नम तक अपने प्रयत्नों में कील नहीं करूँगा जब तक कि नम मान विरोधी श्रम प्रत्यक्ष नहीं सुझाव जात।

गन्तव्य पर न। मजदूरों का काम पर नियुक्त करने को स्कामो पर लगाने प्रभाव उन रागिणी का रहस्य मयुक्त प्राधिक नीति के क-ओकराय न है। य सब धनराशि या—जो नार्मल-स्वयं के मुकाबल से क वन्य बलाय है, जिसे भावा नित्य में अर्जन अनन्य की बचत तथा उम के धम से हो सुझाव जायगा।

‘मैं ऐसे समय वेतवनी देना चाहता हूँ और जना देना चाहता हूँ कि प्रयत्न लगाने को व्यर्थ नहीं को जायगा वह हमारे की हालत को खराब ही करेगा।’

विलकुल एकान्त में बैठकर देखने योग्य

खुफिया **कोकशास्त्र** बातस्त्री

इसमें श्री गुरु की चौरासा आसन की जांचदार कोट श्लाक की रगान खसरे परियत कोका के एन-ग्रेन गुप्त राज कि लिपिका लिखना जिलात तद्दोष है, वृज है। २५० सके सर बर्क रगान। मूल्य २५) प्रति पुस्तक। डाक व्यव साक।

पता—

अमरीकन स्टोर, मुजफ्फरनगर, यू.पी।

न्यू पंजाब प्रोविडेण्ट फण्ड

लिमिटेड

हेड आफिस—लाहौर

अपनी प्यारा मतान की श्रादी की चिन्ता आपका सता रही हा तो हमारी स्कीम देखिये—

आप ५, १ या ११ प्रतिमास कम से कम दो साल तक वीजय। हम दो साल या उसपर अधिक काय तक विय घन को दुगुना अवश्य लोग में उवाहरण के तौर पर—आपने ५ प्रतिमास को सर्वत दिय ना ११ वान वाद श्रादी के लिय ५)  $\times १२ \times ५ = ६० \times ५ = ३००$  इस आप को अशा कर केंगे इसक अलावा कम्पनी की सोलामा तकसाय के द्वारा बाज हावान में उसका १० गुना तक भी मिल सकता है।

सम्राई मुयुधन के जिय भी एना हा स्काम है। अवश्य जाम उठाईये। एवेष्टा की हर जगह जरूरत है।

प्रोसेक्यूस मयवाने वा प ५ व्यवहार के लिय निम्न पने पर लिख। ५०० पस० सहगल—व्यावसाय पदाधारज चिन्ता।

# व्यापार-डायरेक्टरी

आवश्यक वस्तुयें निम्न पते से खरीदिये—

<p>हैजा का अचूक इलाज</p> <p><b>विश्वसुधा</b></p> <p>है</p> <p>मूल्य १) प्रति शोशा</p> <p>विश्वसुधा कार्यालय, नया बाजार, देहली।</p>	<p>आग बुझाने का पम्प</p> <p>—</p> <p>यह पम्प तुरन्त की लगी हुई आग को तुरन्त ही बुझा देता है</p> <p>मूल्य ४०)</p> <p><b>बाली कम्पनी</b></p> <p>चांदन चौक, देहली।</p>	<p>जापान की हजारों बीजे की लिए पजेंट पारिषद, सब तरह की काम में धाने वाली वस्तुओं के भाग्य व पत्र इसमें खुलासेवार मिले हैं।</p> <p>इसका १६३५ संस्करण <b>जापान</b> देश व विदेशों में बयालि प्राप्य</p> <p>मूल्य लिफ्ट १) पोस्टेज जुदा, धातु हो देने लिखिय :—</p> <p>मैनजर-सिन्हा एंड संस, (५) सिन्हा बिचिंग, इंदौर सी० आई०।</p>	<p>२।)</p> <p>प्रतिवार</p>
<p>५।) प्रति वार</p> <p>दांतां के सर्व रोगों के लिये दन्त सुधा मंजन</p> <p>प्रयोग में लाइये</p> <p>विश्वसुधा कार्यालय नया बाजार, देहली।</p>		<p><b>भृगु संहिता</b></p> <p>( योगसागर कलिन बंड भाषा टीका )</p> <p>संवत् १९२० म २००० तक संसार भर की जन्म कुम्हलियों की मूल, मविष्य वर्तमान तीन जन्म का हाल हाल होगा। कल सुनकर कोय कहने हैं कर्षपिसाचिनी सिद्ध है। बार मास के लिए रियायती मूल्य ३), पो० ॥) फिर सो रुपय को भी न मिलेगी, पुस्तकें पोरी ही हैं।</p> <p>भृगु संहिता कुन्डली खगड ( भाषा टीका उदाहरण सहित )</p> <p>संवत् १९०० से २००० तक की पृथ्वी सर २० मनुष्यों की कुंडली मिलेगी। यह जन्मपत्र बनाओ करे उपयगी सारिणी हैं। मूल्य २) पो० ॥) बार मास तक। फिर सो रुपय को भी न मिलेगी।</p> <p>पता—</p> <p>ज्योतिषरत्न ए० प्रयोषाप्रसाद मिश्र JHANSI काली नं० २१</p>	<p>३।) प्रतिवार</p> <p>५।)</p> <p>प्रतिवार</p>

## व्यापार-मन्त्र

दिल्ली का व्यापार  
साप्ताहिक रिपोर्ट

(इंस्टीट्यूट ऑफ़ स्टडीज़ द्वारा)

२३ अगस्त

मेल का बाज़ार स्थिर रहा और सोने का भाव ३६॥॥ पर ही स्थिर रहा स्थानीय बाज़ार में व्यापार साधारण रहा। गन्त सप्ताह ३६॥॥ दाम थे, व्याज ३६॥॥ है। इसी तरह मेलों का दाम २२॥॥ में २२॥॥ हो गये हैं।

चाँदी का बाज़ार भी स्थिर रहा। भाव ६५॥॥ से ६५॥॥ तक बढ़त देखी गई। पिछले सप्ताह ६६॥॥ दाम थे, व्याज ६५॥॥ है। धात्री तक भी वक मीचे होने का है।

कपड़े—पेशी कपड़े का बाज़ार बहुत मंद रहा, क्योंकि माँग बहुत कम हुई है, इस सप्ताह विदेशी का 'मिश्रित' का बाज़ार में कोई उन्नति नज़र न आई।

अनाज—इस सप्ताह अनाज का बाज़ार रुक सा रहा। धान के भाव बढ़े हैं—

गहुँ (सुरभी)	२॥॥-)
सफ़ेद	२॥॥
चावल (१)	१६)
(२)	१३)
शाली गहुँ	४॥)
खँग	३॥॥
अदरक	६॥)

हिन्दुस्तान में बहुत गेहूँ  
जमा हो गया हैठिकाने पर पहुँचाने का प्रयत्न  
हा रहा है

भाल मेज़न के सम्बन्ध में दया-शील जहाज़ों व हलकों में जब करिये पर लान हुआ है कि प्रति दिन १३,००० बैगों गेहूँ कार्गो में प्रान्तों है और इस समय गोवर्धनी में ११ लाख बैगों जमा हो चुकी हैं। अंग्लो-रियल प्रायोजन में प्रयत्न कर रहे हैं कि इस साल का ठिकान पर पड़ जाये। 'माई सरवाय' जहाज़ को १५ दिन पहिले कलकत्ता का लिए रवाना हुआ था, वहाँ पहुँच चुका है और उसका अधिकांश 'बरेलिय कार्गो' जहाज़ से पक-अवधार कर रहे हैं ताकि उस जहाज़ द्वारा एकत्रित भाल यथास्थान पहुँचाया जा सके।

सर्चेंटलस काल्कत्तल में भाल मेज़ने की दर ४ से ४) ४० कर दो

## विदेशों में गेहूँ की हाउस

(लिज सम्पादना द्वारा)

अमेरिका के संयुक्त देश में विशेष रूप से जो सामान्य मिले हैं उन में बता होता है कि सन् १९३५ को गेहूँ की निर्यात तथा रकम का अन्त्याज कमजो ६०-० लाख बुलम तथा ५२२६६ हजार एफ़डी है। जब कि पिछले वर्ष की मक्यों कमजो ५६६० लाख बुलम और ५२२३५ थी।

कनडा में गेहूँ की बुझार के रक-म का अन्त्याज इस वर्ष २०११६ एफ़डी है और पैदावार का अन्त्याज प्रोत्तल से २६ प्रतिशत है। आस्ट्रेलियन गेहूँ की पैदावार का अन्त्याज १५५३० बुलम (३६००००) टन है जो कि पिछले वर्ष में २५ प्रतिशत कम है।

अमेरिका में पैदावार का अन्त्याज ६३२००० टनों का है जब कि पिछले वर्ष ७६६००० टन था। १९३५ ३६ को कलकत्ता का दाम वर्षों में हानि की वजह से बढ़ता पड़ा है और अगले साल का रकम इस साल में भी कम रहेगा।

हटलों की पैदावार का अन्त्याज इस वर्ष का ७६१४००० टन का है। जब कि पिछले वर्ष की संख्या ७५६१३०० टन थी।

यूरोपीय देशों में गेहूँ का रकम हज़ारों में

फ्रांस	१३३३५	१३२०२
स्पेन	१०६६३	११०३६
कमालिया	७७५८	६८०५
यूगोस्लेविया	५३५४	५००१
जर्मनी	५३२६	५४३१
पोलैंड	५५०१	५३२३
बल्गेरिया	३०३७	३०४७
ग्रोस	२०२०	१८८३

१९३४-३५ में गेहूँ की  
पैदावार

अन्तिम भविष्यवाणी

सन् १९३४-३५ में भारतीय गेहूँ की पैदावार के बारे में अन्तिम फोर-कस्ट निम्न प्रकार है—

सं प्रा० में गेहूँ का दामा बहुत पतला पड़ जाने से पैदा बहुत कम हुई थी। पैदावार की औसत इस वर्ष ६३२ पीड की एफ़डी और पिछले साल ५८६ पीड थी। उपरोक्त रिपोर्ट २६ प्रतिशत रकम की ही है

है इस प्रकार कलकत्ता का बाज़ारों में बराबर हो गई है।

इसके अलावा जो रकम बाया जाता है वहाँ की पैदावार का। अन्त्याज कमजो ५४६००० एफ़डी और १५४००० टन है। कलकत्ता में पैदावार और रकम इस प्रकार है—

प्राप्त	पैदावार	एफ़डी रकम
१००० टनों में	१००० में	
पञ्जाब	३७५८	
सं प्रा०	२४५४	१०४८३
मध्यप्रान्त		
ब बरार	७८१	३७१३
बम्बई	७७६	३३५४
बिहार उड़ीसा	१००	११६७
उत्तरप्र		
पश्चिमप्रान्त	२३१	६६५
बंगाल	१५५	१५५
हैदराबाद	१२	३४
अजमेर		३०
मध्यप्रान्त	५४६	२३१६
राजस्थान	३२३	१५२०
मालिवर	३६५	१६६५
हैदराबाद	१५६	१२५६
बम्बई	५	७८
मेसूर	१	२

इस वर्ष कुल रकम बुझार का ३७५४००० एफ़डी था, जबकि पिछले वर्ष ३८६१४०० एफ़डी था। पैदावार का अन्त्याज जो कि कट चुकी है, ६७२५००० टन है पिछले वर्ष ६७१३००० टन थी। एफ़डी में ४५ सदी की कमी और पैदावार में ३ फीसदी की बढ़ोतरी हुई है। सूचवार सूची उसमें से पता चलता है कि लगभग तमाम वर्षों में जहाँ कि गहुँ बाया जाता है पैदावार बढ़ा।

## चांदी के बाज़ार में ख़बरू

अमेरिका ने ख़ाद्वद काँ

कुछ समय पहिले अमेरिका ने चाँदी को खरीदी थी, जिसके कारण चाँदी के दाम एक दम बढ़ गये थे। और अमेरिका के जो बड़े २ व्यापारिणी न शरी माया २ चाँदी खरीद रही थी। जब अमेरिका के खरीद अधिकारों की बन्द करने में चाँदी के दाम पकार कर गये। इसमें बम्बई के चाँदी के व्यापारियों में बड़ा ख़बरदा फैल गई है। अमेरिका कम्पनियाँ जोक लेमडेन न कर सकीं। चाँदी के बाज़ार में कालि प्रान्त लगे, इस लिये जो लोग दिन क लिये वह बाज़ार की बन्द कर दिया गया है। ३। अमेरिका को लिखपिटो के दाम भी कम हो गये हैं।

युद्ध की संभावना और  
बाज़ार

अयोसीनिया-इटली की लड़ाई

अयो युद्ध नहीं हुई परन्तु उसका सम्भावना ने बाज़ार पर घमर फाला शुरू कर दिया है अथवा क हटाक एकलेशज में उद्योगों जो गरी और प्रायः समा मरह ४ सपेरी के भाव गिरन लग हैं, इनके विरुद्ध गहुँ, चने, मक्का आदि अनाज और जिन धातुओं में लिफ़क बनन हैं, उनका दाम बहुत कम हैं। मित्रा विनिमय में सरकारी तोर पर लोग की दर कायम रखने का हट्टा न म पल किया जा रहा है, पर साथ बहुत कम गैरसरकारी तोर पर उसका दाम कम फल कर ही हुआ है। बँकर और माल मेज़न वाले व्यापारी इटली के साथ कोई पैसा नवा कोई करना भी नहीं चाहते, जिससे उनका ख़याल बड़ा फलता है। 'युद्ध कालिफ़' के अनुसार लखनऊ क पाँच बड़ बँसों में म एक न तो इटली में लगे हुए अपनी लख पूँजी को वहाँ स मरवाया है।

यह भी खबर है कि बम्बई में इटली और अयोसीनिया का सर कारों के लिये अनाज तथा आभूषक कालिफ़ की ख़ाद्वद काँ जा रहा है। कलकत्ता में जूट का योरिया का भादंड अचिक प्रान का संभावना की जा रही है।

निजाम हैदराबाद  
और आर्यसमाजस्थानोय प्रतिनिधि सभा ने  
अवज्ञा शुरू कर दी

सब धार्यसमाजें तैयार रहे

धार्य सावदमिक समा न मंत्री खलित करन है कि निजाम हैदराबाद म धार्यसमाज के प्रचार पर जो पाबन्दी लगाई गई है, उसको बिहद धार्यसमाजि सभा निजाम के प्रचार शुरू कर दिया है केश क अधिकांश म सब धार्यसमाजें बकार गईं। सावदमिक समा ने भी सहायता को धार्यसमाज दिया है और गुडकुच का रक्षा के स्नानक प्रमिज धार्य मिशनरी पं० केवदन धार्मिक को हैदराबाद मजा है। समा का धार्य म सब धार्यसमाजों न प्रपल है कि वे महान म महान बलिदान क लिये तैयार रहें।

## सियों और मुसल- मानों में फिर तनातनी मिस्रों पर दो मुकद्दमे

शहीदगज की गुंज

लाहौर की रिपब्लिक अधिकाधिक विषम हाली जा रही है। शहीदगज को अतिशय एक बार समान हो कर फिर जारी होन क आसार नजर आ रहे हैं।

मुसलमानों ने शहीदगज मुख-  
हार क सङ्ग-ध में एक नई शिकायत  
पेश की है कि सिख लोग उन की  
एक कबर को, जो कि मुखार के आ-  
गम में विधायन है। उखाड़ रहे हैं। यह समाचार  
मिस्र की सीनियर पुलिस सुपरइण्डे-  
न्टि० रमल, मजिस्ट्रेट तथा प्रमुख  
अधिकारियों के साथ तुरन्त घटना  
स्पष्ट कर चुके हैं। वहाँ काई कबर  
नहीं दिखाई पड़ी। एक परिश्रमपूर्वक  
इंजीनियर का इस बात के लिए  
नियुक्त कर दिया गया है कि वह  
जोच करके बताय कि कोई कबर वहाँ  
कोई गह है या नहीं। इंजीनियर  
की रिपोर्ट के आधार पर पुलिस ने  
मिस्रों को, जिन में एक मोरत भी  
है, तालोरोन हिंदू को वना २५  
और २५ के मातहत गिरफ्तार कर  
लिया। मोरत बाद में १००० की  
अमानत पर रिहा कर दी गई।

गत शनिवार की रात को एक  
श्रीधर ने मुखार शीशगज का सामा  
में घुसना का भी प्रयत्न किया परन्तु  
पुलिस ने उन्हें बखूबक तितर-बितर  
कर दिया।

मकनरों को खोज

शनिवार को सार दिन मिस्रार  
की गई मजिस्ट्रेट क सलब में एक  
मजिस्ट्रेट व सिख मुसलमान नेताओं  
का सामा मकनर को खोज है ता रही  
है, वहाँ खोज के बाद कुछ दिनों की  
मिलाई दी, जिन पर सामान्य लागी  
हुई थी। मुसलिमान ने उसा का मक  
बरा बतलाया।

मिस्रों ने उन पेशाब के बर्तनों  
क दुष्टी बताया। इसी असह्युति  
में मिस्रों पर एक मुकद्दमा दायर भी  
किया है। लाजारएमामियशन क  
मन्त्री ने दूसरा मुकद्दमा कर क  
मिस्रों के अप्रियोग में दायर किया  
है। इसमें मि० ललीक खलीफ मोना  
एस० एल० ए० मुसलमानों की  
शोर में बकालात कर रहे हैं।

शहीदगज मुखार। और गीर-

कन्होराह के मकनर के सम्बन्ध में  
विचार करन के लिए मुसलमान  
नताओं और वकीलों की एक बैठक  
‘रियासत’ पत्र के इतर में गत २१  
अगस्त को शेषहर को २ बजे हुई।  
यह फैसला किया गया कि—

कन्होराह की वज्र पर अधिकांश  
के लिए ही गई इमारत के सम्बन्ध  
में मुसलमान पुलिस के साथ वहाँ  
बात चीत नहीं करेंगे और न कोई  
वक्तव्य देंगे, वे ऐसा करन को बाधित  
भी नहीं हैं। यह पुलिस का काम है  
कि वह उचित जर्जियन-पडताल के बाद  
मुकद्दमा को चालान पेश कर।

## का० स्वागत समिति का चुनाव बैठकों द्वारा होगा

डा० मुरारीलाल को कार्यवाह  
मिपुर्द

गत २० ता० को नवानन्द में का०  
स्वागत समिति क पञ्चाधिकारियों का  
चुनाव भी श्रीकाश की  
अध्यक्षता में हुआ। चुनाव में दोनों  
पार्टियों के लोग पुर बल के साथ  
उपस्थित थे।

स्वागत समिति के अध्यक्षपद  
के लिये श्री ए० जवाहरलाल नेहरू  
का नाम पेश हुआ और सर्वसम्मति  
में स्वीकृत हो गया। इसके बाद मनो  
पद के लिये भी चन्द्रमातु गुप्त और  
श्री मोहनलाल सक्जना के नाम पेश  
हुए। बैठक हालते समय मधुब  
बहुत बढ़ गई। इसलिए सभापति ने  
समो मग कर दी। इसके बाद सयु  
क प्रतीय कपिल कमेटी की विशेष  
बैठक हुई, जिसमें यह निश्चय हुआ  
कि स्वागत समिति का सम्पूर्ण कार्य-  
भार लखनऊ टाउन कौंसिल कमेटी में  
लेकर कामचूर क डा० मुरारीलाल  
की सौंप दिया गया ताकि प्रविष्टि  
कपिल दर्ले क भण्ड। मे समिति  
क काम को ठस न पहुँच सके।

यह भी निश्चय किया गया कि  
स्वागत समिति क सदस्य की भरनी  
१५ अक्टूबर तक जारी रखी जायगी  
और पञ्चाधिकारियों के चुनाव क  
लिए नेलट पेपर सप्ते सदस्यों के  
पास ही भजे जायेंगे, जो कि २०  
नवम्बर तक वापिस करन पड़ेंगे।  
बाद के प्रतीय कपिल कमेटी पञ्चा-  
धिकारियों क चुनाव का मतोजा  
कोत्तित कर देगी।

पञ्चाधिकारियों का चुनाव करने  
के लिए अब स्वागत-समिति की कोई

बैठक नहीं होगी, क्योंकि इस प्रकार  
की दो बैठकों के साथ साबित हो चुकी  
है।

## कवेता म सफाई

बहुनीसु दुकानें सावुत निकवी

क० म सफाई का काम और  
गोर से जारी है। गवास-रोड,  
आ-की रोड मुखदसिंह रोड और  
शाहमोहम्मद रोड भी साफ की जा  
चुकी हैं। आगल गिन सफाई की  
सफाई को जारी है वे मकने से  
पट्टी पड़ी हैं।

ई०० युक्मप पीरित

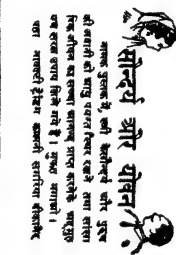
अब यहाँ क कौनों में युक्मप  
पीरितों की सवाय ६०० स भा कम  
रह गया है।

युक्मप में गिर मकानों की  
सफाई भी कुछ कुछ शुरू होगी है  
और जो मालमनो उन में न निकल  
रहा है वह मकान मालिकों को पचा  
समयों के अन्तर्गत हकद्वारा  
की दिया जा रहा है। बहुत सी  
दुकानें अन्दर सहा सलामत निकल  
रही हैं।

समयों के हकद्वारा को ठहरान  
के लिए टीन की ओपरियाय बनाई  
जा रहा है।

देहानों में सफाई कार्य

बन्धुविस्तारन के वहालों में भी  
श्रीधर ही सफाई का काम शुरू किया  
जायगा। इस काम में १ लाख के  
लगभग खपवा जर्ज होगा। यह भी  
खबर है कि युक्मप पीरित मालीनों  
को नय मकान बनान के लिये सर-  
कार की ओर से खपव की सहायता  
दी जायगी।



## उत्तर भारत क एकमात्र हिन्दी साप्ताहिक

## ‘विश्व-बन्धु’

को अप्रनाइये।

क्यों ?—

विश्वबन्धु स्वतंत्र और निर्यात विचारों का धन्यपूत है।  
‘विश्वबन्धु’ त्याग तपस्या और कठगों की पूर्णिया को प्रावीत्र है।  
‘विश्वबन्धु’ प्रत्येक क्षेत्र में बल, कार्य और बलिदान का हामी है।  
जीवन को जवानों का समर्थक।

विश्व बन्धु पंजाब, मोमार्वात जेमे विखंड प्रतीति में राष्ट्रोपता का  
प्रचारक है, राष्ट्र-भाषा की भवत्वत्वा उभान साक्षा  
सिपाही है।

विश्व-बन्धु लम्बो चरणों को गुनाह समझता है, खुदायद को पाप।  
हम ईश्वर आप विश्व बन्धु के प्राहक बलिघ और विचारों  
पूर्ण लेखों, खुदकोपी कविताओं, सरस कहानियों,  
मनोहर खुदकियाँ के अनितिक देश विदेशों के समाचारों  
में लाभ उठाइये।

विश्व बन्धु हर राखिष को प्रासः ही प्रकाशित होता है। साप्ताहिक  
हाथरी के प्रतिरित शनिवार के ताजा समाचारों को  
देना इसकी अपनी विशेषता है।

वार्षिक वृत्त कलन। दृक प्रति— नयना सुप्त।  
विष्णुपनवातो के द्विये प्रचर्ये भवहर है। पर उचित है।

मेनेजर—‘विश्व-बन्धु’, लाहौर, (पंजाब)।

## कहानी

( पृष्ठ २२ का शेष )

मेलाप न हाथ नहीं कर रहा, चिल्ले तो। आप कम्पनी के मालिक हैं, आप की तलवीर गजट में छाया करने लायक है जगना।

इतने में डाइरेक्टर ने कमरे में घेर रखा, उन्हें देखते ही उसने प्रश्न "क्या डाइरेक्टर साहब आप न बनारस से मुझे इस लिए बुलाया है कि मैं इस बूढ़े

"छुप रही मेहताब। मालिक कम्पनी से मदद करो"

"क्या यह पाछे में हमारे मालिक हैं? तो फिर कभी लाख लाख मुहब्बत है। मरा खता माफ हो। हुजूर" कह कर मेहताब मालिक की बगल में जा खड़ी हुई और बोली "अप्लाई न लैर का हुजूर जो आपने धीके पर धाकर मुझे बचा लिया, वरना यह शकल तो मुझे उठा ने जान की फिर मैं था।"

डाइरेक्टर न झल्ले फाड़ कर मरने से प्रस्ताव "क्यों जी आप कौन हैं? यहाँ कैसे आना हुआ आप का?"

## शहूर नागपुरी मंत्रि के भांड

रिफायल माथ से मिलन का ठिकाना हमार बगीच में उग्रम बलि म मरद (मैथवी, चकाना नीबू) की कलमें तैयार हैं। भांड उमरे दरस और फल चिकना बहीवार है।

माथ नीचे खिले मुताबिक है। १ छमपकर स्टेशन जिला धाय० पी० पोहाचता मिला। माल बी० पी० ने मजा जायगा। इस क अलावा पैकिंग, इमाओ, रज्व वाजें, तार काबे बी० पी० काबे अलहदा प्रयोग, प्राइर के साथ चौथी० रकम मरद

माल ऊ चाहे कुट सेकडा रक्म सखा

१	१२
२	५०
५५ से ३	२५
३ से ३५	२७
७	३०
७	२०
२	३०
२५ से ३	४०
५ कोजा	५ से ३
५०	५०
निबू	२ से ३
१२	१२

पता-पय० जी० (विजयवीर) मलीरी गाईन उवालो तर्गे० टी० जी० आपरे (कामदार) पो० रज्व स्टेशन फेमेडवर, जिला नागपुर (सी० पी०) आडेर मेहनत में अपना पला साफ किया, पता ठीक न रहने से माल न मजा जायगा।

"जी मैं आप के बापा के सेठ का "बैंट कलक्टर" है कम्पनी पर चढ़ा हुआ नपया वसूल करने आया है।"

मालिक कम्पनी बड़ी नरमार्ह ने बोल "मुझे माफ कीजिये, अगर मैं कुछ ज्यादा बस बोझ गया है देखिये, मेठ जा से मेरी जय श्री कृष्ण कह देना और मेरी तरफ से धर्ज कर देना कि हमारी नयी पिक्चर परदे पर आत ही हम हिसाब कर देंगे।"

"कितन दिन और लगग आप की पिक्चर के?"

"आमा तो 'आउट डाइर शूटिंग' हो रहा है करीब दो महीने तो और लग हो जायंगे।

हम बहुत उधर चुक, मेठ साहब, अब हमारी लाचारी है कल आपक पास हमारे वकील का नागिस आजायगा इतना कह कर मरद बर्हा में जान लगा।

उधरिय, जरा धाय, कहते हुये सेठजी न आपन मनोबैग से लो-लो के पाच मोट निकाले और

मरद की तरफ अपना हाथ बढ़ाते हुये कहा आप न महीन और निमा लोजिय मुक पर बह अहसान होय आपके, मैं आपका नुतुना नही यह लाजिय आपक लिये।

आपही रखिय इन्हे, कह कर मरद कमर के बाहर चला और नर बाते म कुतुब दर फक कर बनी। जरा जब भी भोगा मानुस हागा आपको अपना और य मइताव इन पाँचसा रुपया क लिय पांच महीन आपक आग पाउ नाच कर गा।

# ट्राली बसों, ट्रामकारों तथा बसों से याता कीजिये

## यह अत्यन्त सुखद तथा साफ गाड़ियां हैं

## डी० ई०एस० और टी० कम्पनी लि०

## ट्राली बसो से—

बिरला मिल म पहाड़गञ्ज को स०जीमयडी पुल मिठाई और कुतुबराड हावा डुर।

दो पेरे फो मील की दर रें।

## ट्रामकारो से—

सर्वबाजार, जामा मस्जिद और स०जीमयडी जामा मस्जिद।

ग्रीष्म-ऋतु के सस्ते भाड़े पर

## बसो से—

(१) मरी दि०को और कायसीरी दरवाजा क बाव में। अशरई जवाई हेमि०न रोड, कान०न रोड कर्न० बागम रोड, (लाहौरी दरवाजा) गालवारा अजमेरा दरवाजा (मन० रोड, कनाट प्लेस) नैडा हाईवे रोड और मील मार्केट बोली हुई, मरी दि०को पास्ट फाक्स तक।

(२) फलबारे और लोमारपुर क मध्य में। काडिया पुल कर्लीवरोड लोजियन रोड कलवारा दरवाजा बलापुर रोड, और माल जकहन बोली हुई विमारापुर तक।

(३) बाबा हिन्दूरोड (सर्वटरमिनस) से कर्लीवारा तक। इस प्रकार नय निवासस्थान प्राचान नगर म मिल जाते हैं।

समय तथा किराये की तालिकायें कम्पनी के कार्यालय रें मंगाने पर मिल सकती हैं।

निजी यात्राओं के लिये खाम बत्ते खास तौर पर दी जाती हैं।

सर्व प्रकार की धून् इत्यादि से आप बचे रहेंगे।

(दस्तखत) एच० जे० डाङ्गिन  
जनरल मैनेजर।

मत चूके !

ठहरो !

## ४०००) इनाम लो

	६	

२०००) इनाम पहिला—सही उत्तर पर ।

६००) इनाम दुसरा— " "

४००) इनाम तीसरा— " "

१००) स्पेशल इनाम—सब से पहले १० सही उत्तर वाली को ।

१००) २५ सही उत्तर वालों में बराबर बराबर बाँट दिया जायेगा ।

नियम—इन वाली जगहों को इस तरह में भरा कि जिसमें जोड़ उत्तर में १८ हो बन ।

नोट:- एक साप्ताहिक जितने चाहे उत्तर भेज सकता है, प्रत्येक उत्तर के साथ १) अपनी साइन द्वारा अपना आवश्यक है, जिसके बिना आपका उत्तर स्वीकार न होगा । एक से अधिक उत्तर भेजने पर इनाम की रकम सही उत्तर वाले को बाँट दी जायेगी । मैनेजर का निर्णय अन्तिम तथा स्वचालित होगा । उत्तर ३० अक्टूबर तक स्वीकार होगा, मसौदा १० दिन बाद प्रकाशित किया जायेगा । मनीने के जिव -) काटिकट मजिब । जी प्रता की जिव और साथ में इनाम कीजिये । मैनेजर तथा अपने मित्रों में कहिये कि वे इस सुन्दर अवसर से लाभ प्राप्त कर ।

पता—दो मैनेजर, मीठीकट्टा कम्युनिशन् डिपार्टमेंट, आगरा ।

विज्ञापन के लिए खाली है ।





resumed command of the British army in the Peninsula, achieved great things during 1809. He captured *Oporto* (May), and drove Soult out of Portugal. Then, turning south, he marched into Spain, to co-operate with the Spanish armies, and won a brilliant victory at *Talavera* (July). But new French armies were coming up, and the Spaniards were impracticable and untrustworthy. He had to fall back upon Portugal, and to look on while the French—reinforced after the defeat of Austria—crushed the Spanish resistance in Andalusia, the only province where organised Spanish armies held out.

**Torres Vedras**—In 1810 Napoleon hoped to bring this dragging war—so unlike his usual thunderbolt triumphs—to an end by destroying the British Army, which was the backbone of the resistance. For this purpose he entrusted a fine army of 130,000 men to his best general, Masséna, while other armies, numbering in all some 300,000, held down the provinces of Spain. Wellesley (now Lord Wellington), who had only 30,000 British troops and an equal number of untried Portuguese, prepared for the storm by fortifying the lines of *Torres Vedras*,\* across the peninsula between the Tagus and the sea. He cleared the country along the French line of advance of all foodstuffs, and removed the population, partly behind his fortifications, where they could be fed from the sea. He inflicted a sharp check upon Masséna's advancing army at *Busaco*; and then fell back upon *Torres Vedras*. Masséna found himself, in a foodless country, faced by impregnable fortifications. He could do nothing but retreat; and in the retreat he lost 25,000 men. No French force ever again entered Portugal.

**Apparent Deadlock.**—This was the real turning-point of the war, but at home there was impatience, because no progress seemed to be made. The impatience grew when the whole year 1811 was spent in fighting round the fortresses which guarded the main roads into Spain—*Ciudad Rodrigo* in the north, *Badajoz* in the south. Neither was captured, though two bloody battles were fought—*Puentes d'Onoro* near *Ciudad Rodrigo*, and *Albuera* near *Badajoz*. Meanwhile, in Spain, no Spanish army dared to measure swords with the French; but in every part of the country during guerilla bands made the French occupation insecure. In fact, during these years, Wellington was holding the fort, and inflicting upon the French an incessant and intolerable strain.† Napoleon spoke of the war in the Peninsula as a "running sore"; and his failure to heal it was a constant encouragement to the underground movements which were elsewhere at work, especially in Germany.

#### 6. THE PENINSULAR WAR (SECOND PHASE) AND THE DOWNFALL OF NAPOLEON (1812—1814)

**The Russian Campaign.**—In 1812 the tide at last turned. Irritation with the Continental System brought a breach between Napoleon and his most valued ally, Alexander of Russia. In 1810

\* For the Lines of *Torres Vedras*, see School Atlas, Introduction, p. 20, fig. 20.

† Lever's *Charles O' Malley* is a rollicking tale of the Peninsular War.

and 1811 Alexander had gradually relaxed the restrictions upon British trade. The Continental System was failing. Unless Russia could be forced to come into line again, other countries would follow suit: Sweden was already beginning to do so. Napoleon resolved to teach Alexander a lesson. From France and from her subject allies he collected a vast army for the invasion of Russia. In point of numbers it was the greatest army that Europe had yet seen; but it consisted largely of raw and unwilling conscripts. The Russian campaign held Europe spell-bound during the summer of 1812. Napoleon defeated the Russians at *Borodino*, and occupied Moscow. But he could not hold the city, a large part of which was burnt by patriotic Russians. He had to retreat. Winter caught him. The snows, aided by Russian attacks, destroyed the great army, and the spell of the invincible Emperor was broken. In the meanwhile, the Russian campaign had drawn off troops from Spain, and given Wellington his chance.

**Advance into Spain.**—In the campaign of 1812, Ciudad Rodrigo and Badajoz were stormed, and Wellington, advancing far into Spain, inflicted a crushing defeat on the French under Marmont at *Salamanca*. For a moment Madrid was occupied, and King Joseph had to flee. And although it was regained by a concentration of French forces, this involved the evacuation of southern Spain. The clearing of Spain had begun. And, for the next and decisive campaign, Wellington was given the supreme command of all the Spanish forces as well as of the British and Portuguese.

**Leipzig** —In 1813 Napoleon, back from Russia, was fighting desperately with improvised armies to maintain his hold over Central Europe. Prussia, which had been secretly preparing for vengeance ever since 1806, had been encouraged to revolt by the Russian disaster; and presently Austria and Sweden joined. At first Napoleon held his own; but in the later part of the summer of 1813, the ring of foes closed round him at *Leipzig*:\* he had to admit defeat, and his power over all Europe east of the Rhine crumbled away.

**The Clearing of Spain.**—To meet this terrible ordeal, large forces had to be withdrawn from Spain, though, even so, the French armies in Spain still outnumbered those of Wellington. Wellington's task was made easier; but, on the other hand, if he had not exercised steady pressure—still more if he had been cleared out of the way in 1809 or 1810—Napoleon would almost certainly have been victorious in Central Europe. The defeat of Napoleon was achieved as much in Spain as on the field of Leipzig. Wellington's campaign of 1813 was perhaps the most masterly of the series. He manoeuvred the French steadily backwards until they were against the Pyrenees. Then he inflicted upon them a crushing defeat at *Vittoria* (June): it was the news of Vittoria that encouraged the European allies to their final attack at Leipzig. By the end of the campaign Wellington had crossed the frontier of France, forcing two successive lines of defence, on the *Nive* and the *Nivelle*. His was the first hostile army to encamp on French soil since 1793.

---

\* For the battles of Leipzig, see School Atlas, Introduction, p. 15, fig. 13

**The Downfall of Napoleon.**—In 1814 Napoleon was forced back into France, and was fighting desperately against a ring of enemies, striking fiercely this way and that, but steadily borne down until, on April 11th, he was forced to abdicate at Fontainebleau. Even in this last stage, he might have held his own if he had been able to use the army with which Marshal Soult was striving to withstand Wellington's continued attacks. Soult had to submit to defeats at *Orthez* (February) and at *Toulouse* (April); this final battle of the Peninsular War was actually fought after Napoleon had abdicated, though before the news could reach the combatants.

**The Whale becomes Amphibious.**—The last long phase of the war, from 1806 to 1814, had been essentially a duel between land-power and sea-power. Land-power had struck its blow, and it had returned like a boomerang. The Continental System was the cause of Napoleon's downfall; but his fall was quickened by the fact that, in the Spanish Peninsula, sea-power had found an ideal field for the operation of armics supported from the sea.

## 7. THE AMERICAN WAR OF 1812

During the last three years of the Peninsular War an unhappy conflict had been raging between Britain and the United States of America. This was one of the most unfortunate consequences of the Continental System.

**America and the Revolution.**—Bad feeling already existed between Britain and the States before the French Revolution came to embitter it still further. The States had refused to carry out the terms of the Treaty of 1783 in regard to the compensation of the Loyalists, and Britain had consequently refused to hand over certain fortresses on the American side of the Great Lakes. When the Revolution began in France, American opinion was strongly in sympathy with it; and when the war between France and Britain began, American feeling was so bitter against Britain that the States nearly came into the war on the French side. A new cause of quarrel arose when British warships began to stop American trading vessels to search for deserters from the navy. Washington (now President) succeeded in preserving neutrality, and even negotiated, in 1794, the *Jay Treaty*, whereby a joint commission was set up to settle the boundary between Canada and the United States—perhaps the earliest example of arbitration on such a matter. But Washington belonged to the more conservative "Federalist Party" in American politics. The rival party of "Republicans," led by Thomas Jefferson, was violently anti-British. Nevertheless, the force of circumstances almost drove the States on to the English side. From 1798 to 1801 there was almost open war between America and France, because the French Government seized and confiscated American ships for taking British goods into French harbours.

**The Louisiana Purchase.**—In 1801 the situation changed, because Napoleon was trying to make friends with the neutrals. Meanwhile, however (1800), he had bought Louisiana from Spain, with the idea of creating a new colonial empire—which would have

been an unpleasant neighbour for the United States. But the outbreak of war with Britain made it impracticable to develop this idea ; and in 1803 he sold Louisiana and its 60,000 inhabitants to the United States for something over £5,000,000.

**America and the Blockade.**—During the first years of the Napoleonic war, the Americans enjoyed immense prosperity, trading as neutrals freely with both sides. But when the struggle over the Continental System began (1806), the position was changed. Both side were making things impossible for neutrals ; but while Napoleon's restrictions were the more unjust, Britain's were the more effective, because they were enforced by the power of the navy, and it was against Britain that American anger was chiefly turned. Jefferson, now President, tried to force the hands of the combatants by forbidding American exports (1807) ; but this would merely have ruined American trade, and the embargo was withdrawn in 1809. In 1810 President Madison adopted a new device. He threw American trade open, but announced that if one of the belligerents should withdraw its restrictions, he would impose an embargo on trade with the other.

**British-American War.**—Napoleon saw in this a chance of enlisting the States on his side. He announced that he would withdraw his decrees, so far as concerned America, if before a fixed date Britain cancelled her Orders in Council. That is to say, British trade was still to be excluded from Europe, but free access was to be given to American ships to import the needed goods. Naturally Britain would not agree to this one-sided arrangement. President Madison, after three months' notice, laid an embargo on British trade ; and in June 1812, he declared war against Britain. By a stroke of irony, the declaration of war took place in the very month in which Napoleon started his march to Moscow. The Continental System had broken down ; and—five days after the opening of the American war—Britain withdrew the Orders in Council, because they had served their purpose. Yet the war went on, largely because the States hoped to be able to conquer Canada while Britain was engaged in the death-grapple with Napoleon.

**The War in Canada.**—The war thus needlessly begun lasted for three years. In 1812 and 1813 its main feature was an attack by the Americans upon Canada, in which large forces were employed : some 500,000 troops were raised by the States during the war. But the Canadians defended themselves with great staunchness. The chief battle-ground was the Niagara peninsula, where the hard-fought but indecisive battle of *Lundy's Lane*\* was fought in 1814. The American armies failed to make any advance into Canada. They were held at bay ; and the struggle did much to strengthen Canadian patriotism.

**Naval War.**—Meanwhile there were a good many single-ship actions at sea, in which the Americans had many successes. And a swarm of American privateers crossed the Atlantic to prey upon

---

\* See the larger Atlas, Plate 79*d*.

British trade, using French ports as their bases. This went on throughout the three years when Europe was desperately struggling to throw off Napoleon's yoke. About 1,700 British ships were thus captured.

**Invasion of the States.**—In 1814, the Peninsular War being over, Britain was at last able to send troops to America. An army was taken by sea up the Potomac, it defeated the American army defending Washington, and the Capitol and the President's house were burned: an indefensible act of vandalism. At the beginning of 1815 a similar attack was directed against New Orleans: it was driven off with heavy loss. Before this battle was fought, negotiators sitting at Ghent, in Belgium, had concluded a treaty of peace, which made no change whatsoever.

This was the most futile and wasteful of wars. Its only result was to embitter the relations between the two main groups of English-speaking peoples. To most Englishmen at the time it seemed to be a stab in the back, delivered when Britain was fighting for her life and for the freedom of the world. To most Americans it appeared to be a war in defence of the freedom of traffic on the seas, against the naval tyranny of Britain.

## 8. THE HUNDRED DAYS

**The Year of Peace.**—When Napoleon had abdicated, and been sent to the little Mediterranean isle of Elba, all Europe believed that the nightmare of twenty years' war was at an end. Troops were disbanded; ships returned from their endless vigil; and (November 1814) the diplomats gathered at Vienna to re-settle the affairs of Europe and the world after the upheaval. Eleven months passed: the diplomats had reached the point of quarrelling over the spoils, and were beginning to range themselves in hostile groups, when startling news made them patch up their differences. Napoleon had returned.

**Napoleon's Return.**—He landed on the shore of France on March 4th, 1815. As he advanced towards Paris the nation gave him a hero's welcome and his veterans flocked to join him. The restored Bourbon king fled. On March 20th Napoleon was again master of Paris. But the Allies had made a new league for his overthrow. Before their armies were upon him he must achieve some great stroke. He took less than three months for preparation; then (June 12th) started for Belgium, where the nearest enemy forces were. In the west of Belgium was an army under Wellington—half British, half Belgian, Dutch and German; when all its reinforcements had come in it numbered 67,000. In the east of Belgium and the Rhine provinces was Blücher, with a Prussian army of over 100,000. Napoleon could dispose of 125,000. His plan was to strike at these two armies in turn, and prevent their joining. They had moved towards the frontier as he advanced, and were close together—Wellington's van at *Quatre Bras*, Blücher at *Ligny*. But their bases lay in different directions—Wellington's to the north-west, Blücher's to the north-east.

**Waterloo Campaign.**—Napoleon first struck hard at Blücher, and beat him back, while Marshal Ney held the British at Quatre Bras (June 16th). But Ney was too hard pressed to be able to detach troops to complete the victory over the Prussians, who made good their retreat. Wellington fell back in sympathy, and took up his position across the Brussels road, on low rising ground at *Waterloo*. Half of his army being untrustworthy, he would not have ventured to fight a pitched battle against Napoleon's superior force of veterans, but that Blücher had promised to be with him by midday on the 18th.

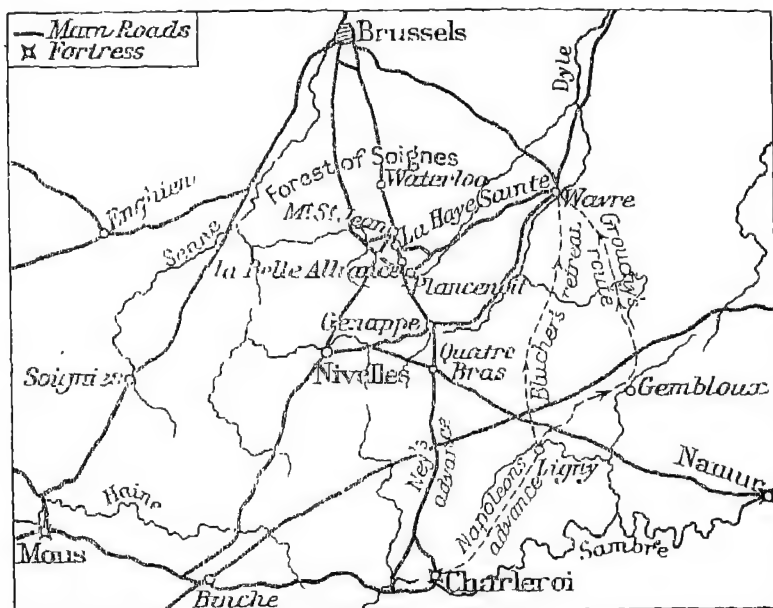


Fig. 35.—The Waterloo Campaign.

**The Crowning Victory.**—On the morning of the 18th, soon after eleven o'clock, Napoleon deployed his troops for his last battle.\* He hurled charge after charge at the British lines along the slope. For five hours these hammer-blows went on, and still Blücher had not come. It was four o'clock before the Prussians were on the field, and half-past six before they made contact with the British left. But they came in the nick of time. The British troops were almost exhausted. All the reserves were in the line. Blücher's arrival made it possible to withdraw troops from the left to meet the final desperate attack of the Old Guard. It was repulsed, and then routed by a charge of the long-enduring infantry: "Up, Guards, and at 'em!" British and Prussian troops reached the headquarters of the

\* For the campaign of Waterloo, see School Atlas, Plate 22b; for the battle, School Atlas, Introduction, p. 15, fig. 14. There is a moving impression of the battle in Thackeray's *Vanity Fair*.

French army almost at the same moment : the victory was complete.

**Napoleon's Surrender.**—Napoleon fled to Paris, and talked wildly of a levy *en masse* for further resistance. Even his marshals knew that further resistance was impossible. He fled from Paris, a fugitive. Blucher had announced a reward for his capture, and promised that he should be shot. He betook himself to Rochefort. There, out at sea, was a squadron of the British navy, still on guard. He surrendered to the navy which had from the beginning been the unconquerable obstacle to his ambitions ; and Captain Maitland of the *Bellerophon* received his sword. Then he was sent as a captive to St. Helena, amid the limitless seas which had always baffled him. Thus ended, at the age of forty-six, the most dazzling career in human History.

## CHAPTER XXXIX

### AFTER THE WAR

#### 1. THE SETTLEMENT OF EUROPE

THE vast upheaval of the French Revolution and the long wars which followed it deeply affected the life of every people in Europe, and made, as it were, a fresh starting-point in history. It is necessary to understand the nature of the changes which this upheaval brought, because the future history both of the British peoples and of the world depended upon them.

**An Unrestful Century.**—Ancient landmarks which had seemed to be almost part of the order of Nature, such as the Holy Roman Empire and the Republic of Venice, had been swept away ; long-established boundaries had been changed ; time-honoured institutions and systems of government had been scrapped and remodelled. The habit of taking for granted, which had kept people content with the old ways during long centuries, had been disturbed, and the result was that the next century, the nineteenth, was to be a period of greater and more rapid changes than any previous century.

**Liberalism and Nationalism.**—Great new ideas were fermenting in men's minds. One was the idea that men had a right to be consulted about the way in which they were governed : the theory of the Divine Right of Kings, which had held sway since the sixteenth century, was dead, and the theory of the Divine Right of Peoples was taking its place ; it was gradually to conquer Europe during the nineteenth century. Another was the idea that the limits of States ought not to be fixed by the accidents of conquest or dynastic inheritance, but by the natural affinities and desires of the population : this was the idea of Nationality, and the aspirations of divided nations to be united and of subject nations to be free were to be among the moulding forces of the next era. National aspirations had long been vaguely at work in Europe, but the teachings of the French Revolution, and still more the fight of peoples for freedom from the sway of Napoleon, had given to them a new force. And

there was also a third idea, to which the Revolution had given fresh potency · the idea that it was wrong that a small class should enjoy all the material goods of life without labour, while the mass of men and women toiled for little reward; from this were to spring Socialism, and many other movements of social reform. Finally, there had already begun in Britain the profound change in the methods of wealth-making which is known as the Industrial Revolution : with the coming of peace it was soon to spread to other countries, and to bring about immense changes in the structure of society.

**The Temper of Vienna.**—When the long wars ceased, therefore, the world was only at the beginning, not at the end, of a period of great change. But the statesmen who gathered at Vienna in the Autumn of 1814, and resumed their sessions after Napoleon had been disposed of at Waterloo, had no appreciation of these great forces that were at work. They thought they had beaten down the revolutionary movement, and could get back to the old ways. They could not do so completely, but they did their best, and then endeavoured to make sure that there should never be any more change or disturbance. The result was that all their arrangements were overturned during the next hundred years. The history of the nineteenth century is largely the history of the destruction of the Vienna settlement.

**The Big Three.**—The Congress of Vienna was a scramble of competing interests. But three personalities dominated it. One was Alexander I of Russia, who, though he was a despot and very jealous of his power, had a shallow, sentimental sympathy with liberal ideas. The second was the Chancellor of Austria, Prince Metternich, who was the supreme representative of hidebound reactionism. As the Austrian Empire was a medley of discordant nationalities, only held together by a despotic government, both the national movement and the demand for self-government seemed to be hostile to its interests. Metternich, therefore, did everything in his power to check and discourage these movements, especially in Germany and Italy, in which Austria was interested. The third leading figure was the British Foreign Secretary, Lord Castlereagh \* He was essentially a man of moderation. He shared the dislike of his class and his party for all revolutionary movements ; but, being an Englishman, he had some sympathy with national feeling, and hated despotism. The influence of Britain in these discussions was naturally very great, seeing that she alone had carried on the struggle from the beginning to the end ; moreover, she was the most disinterested of the Great Powers, because she wanted nothing in Europe.

**Treatment of France.**—In the settlement with France, the Powers showed a wise moderation, for which the credit was mainly due to Castlereagh. The contrast between the treatment of France in 1815 and the treatment of Germany in 1919 is very marked. France was allowed to keep (roughly) the boundary which had

---

\* There is a short Life of Castlereagh by J. A. R. Marriott, and a good essay on him by Lord Salisbury.



existed when the revolution broke out. Britain restored to her most of her conquered colonies. An indemnity was imposed upon her, and an army of occupation was planted on her territory until it should be paid ; but the indemnity was so moderate that France was able to pay it off in three years. Though the Bourbon line was restored, there was no attempt to restore the old feudal order, or the legal system, which the Revolution had destroyed ; and a parliamentary system, modelled on that of Britain, was established under a charter granted by the restored King Louis XVIII.

**The Netherlands and the Rhine.**—To guard against future danger from France, the Austrian Netherlands (Belgium) were united with Holland, which became a kingdom.\* This arrangement, which was made without consulting the Belgian people, lasted only fifteen years before it was destroyed by a revolt of the Belgians (1830). The lands in West Germany which Napoleon had turned into vassal States were, for the same reason, given to Prussia,† instead of being restored to their original owners : thus Prussia became the watchdog against France instead of Austria, and in the long run this was to give Prussia the chance of seizing the leadership of Germany.

**British Acquisitions**—With the exception of Britain, the Great Powers all rewarded themselves for their efforts by large acquisitions of territory in Europe, and the claims of "legitimacy" went by the board when they came in conflict with their ambitions. Britain kept the islands which she had taken as naval or smuggling bases during the war—Heligoland, Malta, and the Ionian Islands. Hanover also was enlarged and turned into a kingdom ; it was linked with the British Crown until 1837. But the main gains made by Britain were those she had made by her own efforts beyond the seas.

**Russian Gains.**—Russia kept Finland, which she had taken from Sweden in 1808 ; but as Sweden had fought against Napoleon, she had to be compensated, and Norway (separated from Denmark without any consultation with the people) was added to Sweden. This arrangement lasted until 1905, when the union of Sweden and Norway was peacefully dissolved. The Tsar also showed his devotion to the idea of nationality by insisting that Poland—dismembered by the three partitions of the eighteenth century‡—should be re-established as a separate State. Accordingly, Napoleon's Grand Duchy of Warsaw was turned into a Kingdom of Poland, with a constitution. But the Crown was united with that of Russia, and the constitution was not long allowed to survive. Poland did not become independent State until 1919.

**Prussian Gains.**—Prussia had to be compensated for the Polish lands she had given up. She got, besides wide and rich territories in western Germany, a great part of Saxony, which had foolishly been loyal to Napoleon. This made her much the greatest of the

\* For Europe after the Congress of Vienna, see School Atlas, Plate 19.

† For the re-settlement of Prussia after the Congress of Vienna, see School Atlas, Plate 19b.

‡ School Atlas, Plate 29b.

German States, the destined leader of Germany, and the inevitable rival of Austria.

**Austria and Italy**—Austria rewarded herself for giving up the Netherlands by taking Dalmatia and the richest part of northern Italy\*—Venetia and Lombardy; while the lesser States of Italy, all restored as they had been in 1789, were all under Austrian influence. But the Italian people had begun to conceive the idea of Italian unity. They could not forget that Napoleon had created a Kingdom of Italy. These arrangements made Austria the inevitable foe of Italian nationalism, and exposed her to the wars by which Italian unity was created.

**Germany.**—In Germany the national idea was even more strongly at work than in Italy. But the Vienna arrangements seemed to deny it any chance of satisfaction. Though it was impossible to undo the simplification which Napoleon had carried out, there were still twenty-six separate States. In place of the old Holy Roman Empire they were linked together in a Germanic Confederation,† under Austrian presidency, the main purpose of which was to prevent any change. This arrangement lasted for half a century.

**The Eastern Question.**—No attempt was made to deal with the Turkish Empire, where national aspirations were already fermenting among the Christian peoples of the Balkan Peninsula—Greeks, Serbs, Bulgarians, Rumanians. This was to be the source of frequent disturbance during the nineteenth century, and the direct cause of the next general European war—that of 1914.

**The Holy Alliance**—Thus the opportunity of reorganising the European system which was open in 1815 was used by the Great Powers partly to aggrandise themselves, and partly to erect futile barriers against inevitable changes. The architects of this system had a sincere desire to secure permanent peace. They hoped to do so partly by making the Vienna settlement unalterable, and pledging all nations to regard it as sacred; partly by holding frequent conferences of representatives of the Great Powers to deal with each dangerous question as it arose. This was the origin of the "Concert of Europe," which played an important part in the affairs of Europe throughout the nineteenth century, and often averted war. But the Concert was limited to the Great Powers, who thus asserted a right of dictating to the world; and as, during the next thirty years, a majority among them were hostile to all liberal movements, their union was not lasting, and came to be regarded as the enemy of progress. In the emotion of the moment, Alexander of Russia asked his fellow-monarchs to join in a Holy Alliance, in which they pledged themselves to be guided in all their work by "the sacred principles of the Christian religion." The name of the Holy Alliance—which was pure sentimentalism and had no practical effect—was popularly attached to the Concert of the Powers, and became a synonym for tyranny.

\* For the Austrians gains see School Atlas, Plates 19*a* and 25*d*.

† See School Atlas, Plate 28*d*.

**The Organisation of Peace.** Yet it ought not to be forgotten that these arrangements were inspired by a desire to make peace lasting and safe. They were a sort of crude anticipation of the League of Nations, a recognition that Europe needed some common authority if her civilisation was not to be ruined by war. In 1818 the Powers were so confident that their scheme would work that they announced, in the protocol of the Conference of Aix-la-Chapelle, that "the era of permanent peace had arrived." In fact, their arrangements made many wars inevitable; and it was not an era of fixed and settled order, but of rapid change, largely brought about by wars and revolutions, which was now beginning.

## 2. THE BRITISH EMPIRE IN 1815

The years of war had brought great changes not only in Europe, but in the non-European world.\* The colonising and trade activities of the Continental States had perforce been brought to an end; and Britain had become the one supreme colonising and trading nation.

**Disappearance of Colonial Empires.**—During the war Britain had conquered all the colonial possessions of France, save San Domingo (Hayti), which had become an independent negro republic: Martinique, Guadeloupe, and St. Lucia in the West Indies; Bourbon, Mauritius, Rodriguez, and the Seychelles in the Indian Ocean; Pondicherry and Chandernagore in India. All these were restored at the peace except St. Lucia, Mauritius, and the Seychelles; but, in fact, the French colonial empire was now negligible. Britain had conquered Ceylon and Cape Colony from the Dutch in the first period of the war, and although Cape Colony was restored at the Peace of Amiens, it was reoccupied in 1806 and retained in 1815. In the second period of the war she had taken from the Dutch part of Dutch Guiana (which was retained), and the rich island of Java—the centre of the Dutch East Indian Empire—which was restored. Henceforward Dutch activity was limited to the Malay archipelago, and even here Britain was soon (1819) to acquire, in Singapore, the most valuable trade centre. At one moment Britain had even begun to conquer the Spanish American Empire, which lay at her mercy: an unsuccessful attack was made upon the Argentine in 1806, and an attack on Chile was designed. But these plans, if they were ever seriously conceived, were stopped by the outbreak of the Peninsular War, when Spain became the ally instead of the enemy of Britain.

**Revolt of Spanish America.**—During this period, however, the Spanish American colonies, having refused to recognise Joseph Bonaparte as their sovereign, became in practice independent.† They threw open their trade to Britain, and British merchants rapidly obtained almost a complete monopoly of South American trade. When the Bourbon monarchy was restored in Spain in 1815, it tried in vain to impose its authority upon the colonists. After some years:

\* For the changes in the non-European world, see School Atlas, Plate 45a

† For South America, see School Atlas, Plate 52c.

of trouble, they established their independence ; and nothing remained of the Spanish colonial empire save Cuba and Porto Rico in the West Indies, and the Philippines in the far east. It was already pretty clear, in 1815, that this was going to happen.

**British Monopoly.**—Thus all the historic colonial empires of the European Powers had shrunk to the smallest dimensions. Everywhere the belief was current that colonies were not worth acquiring, because sooner or later they must be lost. For more than sixty years to come, the European nations, engrossed by their own problems, disregarded the non-European world almost completely, and left a practical monopoly of oversea trade and empire in the hands of Britain.

**The New British Empire.**—In 1815, thanks very largely to the war, the British Empire had already become the most amazing series of possessions that had ever been brought under a single government in the history of the world ; and this was less than a generation after the loss of the first British Empire by the revolt of the American colonies. The emergence of this gigantic structure was perhaps the most remarkable outcome of the revolutionary and Napoleonic wars. But each part of it presented problems of great and varied difficulty—problems far more difficult than those which had caused the revolt of the United States—and it remained to be seen whether any means of holding all these territories together could be devised.

(1) **Canada.**—The six self-governing colonies of Canada had just repelled the attacks of the United States, and were full of loyalty. But they were economically stagnant ; their progress could not compare with that of the United States. Moreover, bad feeling was growing up between the French and the English settlers ; and there was already a good deal of friction between the nominated governors and their elected assemblies.

(2) **The West Indies.**—The West Indian group of colonies—Jamaica, the Bahamas, the Leeward and Windward Islands, Barbados, British Guiana, and British Honduras—had enjoyed a period of very great prosperity during the war. But they depended upon slave-labour, and the movement against slavery was very strong in Britain, where the stoppage of the slave trade in 1807 was promptly followed by an agitation of the emancipation of all slaves within the Empire. British feeling against slavery was now so strong that Lord Castlereagh had to make it one of his chief aims, both in 1815 and later, to persuade all the powers to prohibit the slave trade. If the dominant power insisted upon abolition, there was bound to be trouble in the West Indies.

(3) **Australia.**—The distant settlements in Australia were as yet little more than convict-stations, though sheep-breeding had been introduced during the war, and had shown how immense were the possibilities of that vast, empty land. But a whole continent could not be left unpeopled, or reserved for convicts, and the journey was so long and costly that the problem of peopling it seemed to be almost insoluble.

(4) **South Africa.**—In South Africa Britain had recently acquired a very rich and fertile land, suitable for white settlers. But the existing white population consisted of Dutch Boers, who not only resented foreign domination, but held views about the treatment of the natives widely different from those to which the humanitarian movement had given birth in England. Moreover, hordes of warlike Kaffirs, the advance-guard of the great Bantu race, were pressing down upon the colony. Thus a double racial problem, of great acuteness, had to be solved.

(5) **India.**—In India Britain had recently and suddenly become the paramount power over a thickly populated country as big as Europe, leaving out Russia. This empire presented a problem of government to which there has been no parallel in human history; and not the least difficult part of it was the question whether it was not necessary to complete the subjugation of the still unconquered princes (notably the Marathas) before settled peace and justice could be made secure in India.

**Links of Empire.**—Besides these five main blocks of territory, each of which constituted a gigantic empire, and which were distributed over every continent, the British Empire also already included a large number of islands and trading-posts, scattered over all the seas of the world: Helgoland, Gibraltar, Malta, and the Ionian Islands in Europe, St. Helena, Ascension and Tristan d'Acunha in the Atlantic, the Falkland Islands off the coast of South America, Mauritius and the Seychelles in the Indian Ocean. These were the links of an empire that rested on sea-power.

This mighty fabric had mainly been built up during the lifetime of men who were alive in 1815. Its existence placed Britain in a unique position among the nations of the world, and made her the greatest of them all. But was there in the British people a sufficient stock of wisdom and character to find the means of keeping together and ruling efficiently this amazing empire? Nine out of ten observers abroad, if not at home, reflecting upon what had already happened to all the other colonial empires, would in 1815 have answered this question in the negative.

### 3. THE STATE OF BRITAIN IN 1815

**British Wealth**—On a superficial view, the position of Britain was as splendid as the oversea empire she had acquired. She was the unchallengeable mistress of the seas. Her trading vessels were to be seen in every port of the world. She had a monopoly of the new processes of manufacture, and they were yielding her immense wealth. She, alone among the nations, could command a supply of capital sufficient for the greatest undertakings. She had become the world's workshop and market. Her nobles and merchants were as rich as princes. Nowhere in the world was such luxury to be seen as in London: "What a city to loot!" said Blucher, when he visited it after the peace.

**British Poverty.**—But beneath the surface a very different

state of things was revealed. A great proportion of the British people were sunk in a squalid poverty such as their fathers had not known in modern times. The towns in which her wealth was created, the new manufacturing towns of the north and midlands, were incredibly mean, ugly, and unhealthy. Her population was increasing by leaps and bounds—it had grown 35 per cent. since the war began, while the population of France had increased only 11 per cent. But most of this growing population were living in conditions which promised to turn them into a stunted and unhealthy race. They were working incredibly long hours for incredibly low wages—so low that some 10 per cent. of the population had to receive allowances from the Poor Law in supplement of their wages if they were to keep body and soul together. Even their children, infants of eight years old, were in many cases working fourteen hours a day to earn a pittance of a few pence. Yet there were tens of thousands who could get no work at all. The vast wealth which Britain had learnt how to make was not bringing well-being to the mass of her people. It was going into the pockets of a small rich class. And there was a horrible gulf fixed between the prosperous classes and the labouring mass. The widely diffused comfort which had been a feature of “Merry England” had vanished. Cobbett,\* that vivid journalist, complained that the well-fed peasantry he had known in his youth had been replaced by a population of starvelings, living in hovels and feeding on slops and tea.

**Causes of Distress.**—This had been the result of the agrarian and industrial revolutions, complicated by Napoleon's Continental System. The agrarian revolution had increased the supply of food grown from English soil, but not sufficiently to balance the rapid increase of population ; and it had at the same time reduced the peasantry to the level of a wage-earning proletariat living on subsistence wages, which were kept down by the influence of the poor-law system. Meanwhile the Continental blockade had increased the difficulty of importing foodstuffs, and prices had soared up. The Industrial Revolution had immensely increased the amount of goods that could be produced by a given amount of labour. During the blockade the power-loom had come into wide use alongside of the spinning-jenny and the mule, while the use of the steam-engine and the development of improved methods of iron working had made giant strides. These changes alone had enabled British traders to face the risks and cost of running the blockade, and still to undersell all competitors. They had made it possible for the volume of British exports to be kept fairly level in spite of the blockade. But when the machines were enabling one man to do the work of two, it was not enough to keep sales at a steady level. They must grow. The blockade prevented them from growing. It consequently created a large surplus of unemployed labour, whose pitiful competition for jobs kept wages very low. And as the State would not endeavour to protect the workers itself, and prohibited them by the

---

\* There is a good *Life of Cobbett* by E. I. Carli. *Cobbett's Advice to Young Men* is a racy little book well worth reading, and largely autobiographical.

Combination Acts from trying to protect themselves by forming trade unions, there seemed to be no remedy.

**Menace of Revolution.**—In this wealthy and victorious nation, which held sway over so large a part of the world, mere misery was driving many of the working-class into a sort of blind revolt. During the years of the Continental blockade there were risings to destroy the machinery which seemed to be ruining the workers—the Luddite riots of 1811 and 1812. In fact, the condition of a great number of the British people in 1815 was probably worse than the condition of the French peasantry before the Revolution. And at any time during the quarter of a century after 1815 a violent revolution seemed not only possible but probable in Britain. It would have come if the British people had not been incredibly steady, patient, and enduring.

**The Landowning Oligarchy**—Over this mass of wealth and misery ruled a self-complacent oligarchy of landowners who had been immensely enriched by the rising price of food, and by the squalid towns which had grown up on their land. Every cry of discontent seemed to them an expression of that “revolutionary spirit” against which they had fought with such admirable tenacity. Because the nation was ceasing to be mainly agricultural, and because the mass of even the agricultural population had been severed from all rights in the land, the landowners were no longer the natural leaders of the nation, as they had been until the middle of the eighteenth century. They no longer represented its main interests, or understood its new and great problems. Yet their power seemed to be solidly entrenched. They ruled through a Parliament whose hereditary house was entirely composed of great landowners, and whose nominally representative house was not in any true sense representative at all, a large proportion of its constituencies being “pocket” boroughs or “rotten” boroughs. This system ought to have been reformed long before. It would have been reformed but for the coming of the French Revolution. Now all talk of the necessity for reform was regarded as evidence of a “revolutionary spirit,” to be sternly repressed. Yet the only hope of reform without revolution was that this unrepresentative Parliament should consent to reform itself. It is no wonder that many thought revolution inevitable.

**Radical Movements.**—The demand for reform had been silenced during the first period of the war. But during the Napoleonic struggle it had come alive again. There was an active “Radical” movement afoot. It even had one or two members in the House of Commons, notably Sir Francis Burdett. All over the country the indefatigable “Orator Hunt” and other speakers were demanding radical reform and the introduction of democracy; and innumerable “Hampden Clubs” to forward this end were being formed. In 1802 the eccentric William Cobbett, most trenchant of writers, had turned Radical, and in his vigorous *Weekly Political Register*, which from 1816 was published at twopence, was denouncing the evils of the existing system and the crimes of the borough-mongers. Throughout the country his influence was immense: more than any other

man, he stimulated and expressed the angry discontents of the time. Meanwhile, the philosopher Bentham and a group of disciples were working out elaborate plans of reform : they had no great popular audience, but they did more than any other group to indicate practical methods of redress. A powerful school of economic thinkers were also at work, demanding great changes in the fiscal system of the country, and especially the substitution of free trade for the elaborate protectionist system which, in their view, was preventing the expansion of British trade. And soon a more sweeping demand for change was to become prominent. Thomas Spence, a Newcastle workman, had long been preaching land nationalisation as a cure for the nation's ills, and there were many Spencean Societies up and down the country. In 1815 Robert Owen, a Lanarkshire manufacturer who had done his best to create improved conditions of his own workpeople, began to preach the necessity for social revolution as the only means of ensuring that the wealth created by the industry of the whole nation should be diffused over the whole nation. He was the father of "Socialism," though the word had not yet been coined.

**The Need for Reform.**—Thus a formidable ferment was already at work among the British people when the war came to an end. It was not only the sufferings of the working-class, the wretched conditions of the industrial towns, the grossly unrepresentative character of the system of government, that needed amendment. Every part of the legal and social system of the country needed to be overhauled : not least the hideous penal code, which (inspired by the fear of revolution) imposed the penalty of death for innumerable petty offences such as stealing linen from a bleaching-ground or being seen at night with one's face blacked ; or the game laws, which had been made more and more ferocious as the landowners spent more of their growing wealth upon game preservation, and the starving peasantry netted the game for food ; or the exclusive privileges of the Established Church, with its richly endowed episcopate and its impoverished lower clergy ; or the monstrous imperfections of the police system, which allowed crime to breed unchecked in the festering alleys of the towns. Almost every aspect of the nation's life demanded reconstruction.

The defeat of Napoleon, therefore, did not mean the end of the revolutionary movement in Britain any more than in Europe. On the contrary, a revolution had to come. The only question was, whether it would come peacefully or by violence. And that depended upon whether the ruling class would open its eyes, or would display the same unyielding tenacity in resisting change at home that it had displayed in resisting the might of Napoleon.

**The End of the Old Regime.**—In truth, the close of the Napoleonic War may be said to mark, in England as in Europe, the end of the old regime of hereditary class ascendancy. The governing class in England had been less exclusive, more public-spirited, and more liberal in its outlook than the ruling classes in other countries ; and for that reason its power, exercised through Parliament, had been more willingly accepted than in any other country. Indeed, the power of the landowning aristocracy had



never been more complete nor its pride greater than in these last days of its supremacy, when it led the nation's resistance to the menace of foreign conquest. But it had already been seriously undermined, by the ideas of the French Revolution, by the teaching of many schools of reformers in England, and, above all, by the great social changes which the Industrial Revolution was bringing about. It was bound to come to an end. The gradual transition from aristocracy to democracy is the main interest of the nineteenth century, and gives to it its distinctive character.

#### SUPPLEMENTARY READING ON BOOK VII

The ground covered by this Book is dealt with, much more fully, in the *Short History of the British Commonwealth*, Vol. II, pp. 147 to 324. See also Grant Robertson, *England under the Hanoverians*. For Indian affairs, V.A. Smith, *Oxford History of India*, and Muir, *Making of British India*. The best general account of the Industrial Revolution is by a Frenchman, P. Mantoux (English trans.) *On the changes in agriculture*, Lord Ernle's *English Farming, Past and Present*. There are good summaries of European history during the period in Morse Stephen's *Revolutionary Europe*, and Holland Rose's *Revolutionary and Napoleonic Epoch*. Holland Rose's *Life of Napoleon* (2 vols.), and his two volumes on Pitt are full and useful. A stimulating book on the period is Fortescue's *British Statesmen of the Great War*. J. L. and B. Hammond's *Village Labourer* and *Town Labourer* are full of vivid detail on social conditions. The best general account of the French Revolution in one volume is by Madelin (English translation).

•



•

BOOK VIII

NATIONAL AND IMPERIAL  
RECONSTRUCTION

(1815—1880)

•

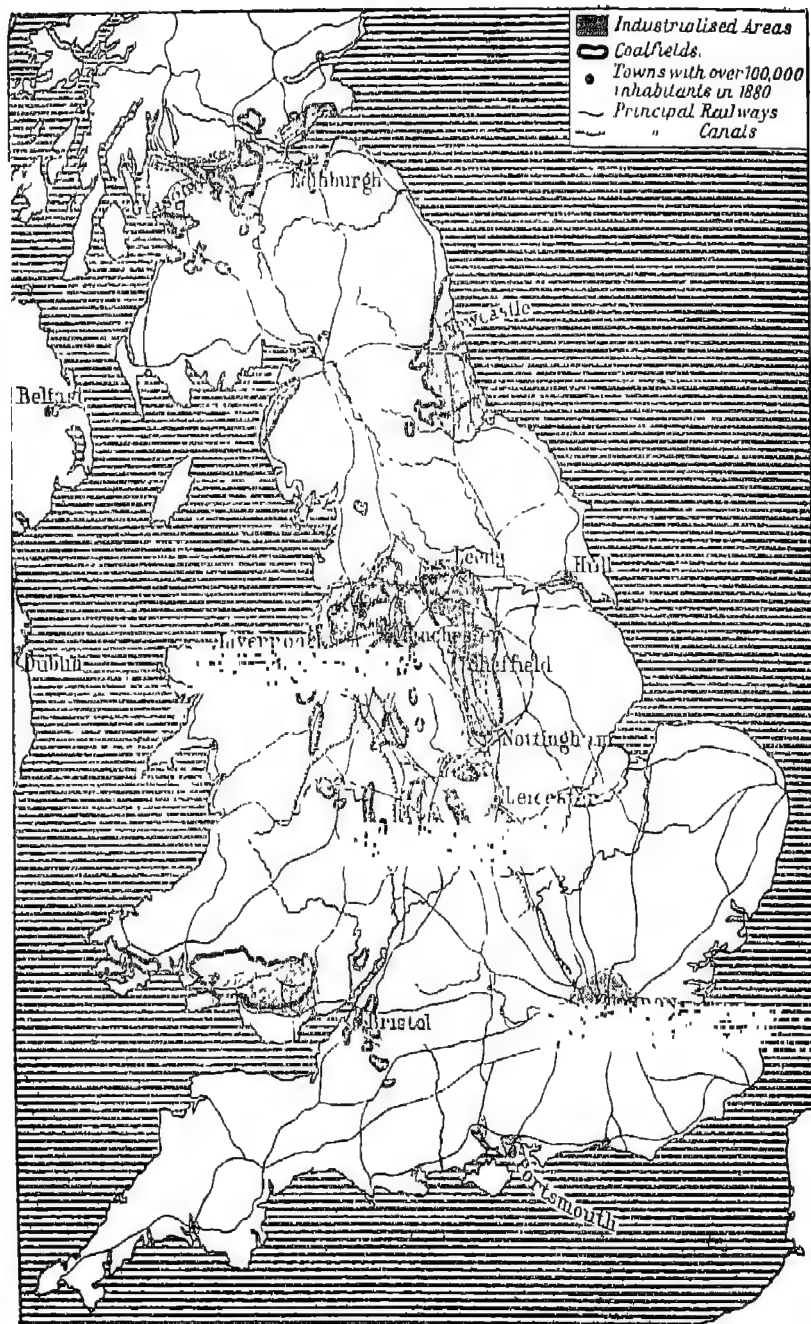


Fig. 36.—The Industrial Revolution.

## BOOK VIII

### NATIONAL AND IMPERIAL RECONSTRUCTION (1815—1880)

BRITAIN and the British Empire as we know them to-day have been mainly shaped by the changes of the nineteenth century. During that century the British people ceased to be a nation chiefly composed of country-dwellers, ruled by a landowning oligarchy, and became a nation chiefly composed of town-dwellers, ruled by the system of democracy. During the same period the British Empire ceased to be empire in the old sense of the term, and became a loosely linked fellowship of free peoples, marked by an infinite diversity of type ; at the same time its area was greatly extended, and there was an immense increase of the English-speaking population in the vast areas which it included.

These momentous changes were due in the first instance to the rapid development of the Industrial Revolution, and to the unprecedented increase of population and wealth which it brought. But the form which the group of British nations assumed was determined by a deliberate process of reconstruction, which effected every aspect of their social and political life. The fact that this revolution was peacefully and gradually achieved has largely obscured its greatness ; but it is impossible to form any just view of the history of the British peoples without some understanding of the significance of these changes.

The two generations during which this immense change was being effected may be divided into three sections : first, a period of challenge and unrest from 1815 to 1830 ; next, a period of reconstruction, from 1830 to about 1850 ; finally, a period of self-complacency and of growing prosperity, from about 1850 to about 1880.

While the British peoples were undergoing these great changes, and were enjoying a supremacy of wealth and influence which gave to them the first place in the world, the peoples of Europe, and even of the United States of America, were passing through cruel ordeals of war and revolution. Britain became the envy and the model of the old world ; and in almost every civilised country her institutions and her social system were more or less closely imitated. But towards the close of the period the European peoples, having overcome, for the moment, their own troubles, awoke to the fact that the destinies of the world outside Europe were largely passing under the control of the English-speaking peoples. This realisation opened a new period both of British and of world history, and began a fierce rivalry for imperial power which led up to the Great War.

## CHAPTER XL

## OLD TORYISM AND YOUNG TORYISM (1815—1830)

## 1. THE YEARS OF BLIND REACTION (1815—1822)

It was universally expected that the return of peace in 1815 would bring with it prosperity and plenty. The reverse happened; and the years which immediately followed the great triumph of Waterloo were perhaps the most unhappy in the modern history of the British peoples. The distress of the war years, instead of being alleviated, was intensified. The defects of the unreformed system of government became so apparent that it completely lost the confidence of the nation, and a revolution by violence seemed all but inevitable.

**The Distress of 1815.**—All sections of the nation shared in the miseries of the time. Expecting a great increase of foreign sales after the peace, manufacturers had heaped up stocks of goods; but the Continent was too much impoverished to buy. There were numerous bankruptcies; factories closed down; and the numbers of the unemployed went up by leaps and bounds. Many trades were hard hit by the sudden cessation of war orders. The disbandment of the army increased the volume of unemployment. Even the farmers, who had enjoyed immense prosperity during the war, and had brought a great deal of poor land into cultivation, were panic-struck at the prospect of an inrush of cheap foreign corn.

**The Royal Family.**—The Government which had to deal with this difficult situation was wholly unfitted for the task. The old king had been insane since 1810, and was also blind and deaf.\* His eldest son, the Regent, was a contemptible and dissolute fop, whose relations with his errant wife were a matter of public scandal; and his younger brothers were not much better. Princess Charlotte, the Regent's daughter and the heir to the throne, was regarded as the hope of the nation; but she died in 1817. Then there was a rush among the younger princes to get married. But until Princess Victoria, daughter of the Duke of Kent, was born in 1819, it seemed likely that the royal line would become extinct, and many anticipated that the monarchy also would disappear.†

**The Government.**—As for the administration, its head, Lord Liverpool, was a colourless figure; and it was dominated by three men who came to be hated with an extraordinary intensity—Castlereagh, Eldon, and Sidmouth. Lord Castlereagh,‡ the Foreign Secretary, was a much misunderstood man, but he was unquestionably a reactionary in home politics. Lord Eldon, the Lord Chancellor, was a great (though a very dilatory) lawyer; but his creed was that which was once pithily expressed by the Duke of York—"any change, at any time, for any purpose, is much to be deprecated." Lord

\* Thackeray draws a touching picture of him in *The Four Georges*.

† See Genealogical Table C, at the end of the volume.

‡ There is a short Life of Castlereagh by J. A. R. Marriott, and a good essay on him by Lord Salisbury.

Sidmouth (who, as Addington, had been Prime Minister in 1801—1803) was a second-rate and unimaginative man; and unfortunately he was, as Home Secretary, responsible for public order. Ridden by the nightmare of revolution, he believed in the existence of an underground conspiracy to overthrow the Government, and took every cry of distress for a tocsin of revolution. He worked largely through paid spies and informers, who fabricated evidence when it was not otherwise forthcoming, and kept the Government in a profitable state of alarm.

**The Corn Law.**—With one exception, the Government had no remedy to propose for the distresses of the time, save stern repression. The exception was the distress among farmers, which affected the landlords' rents. To meet this, a new *Corn Law* was carried through Parliament in 1815. It prohibited the importation of corn until the price in England reached eighty shillings a quarter. Thus, at a time of acute distress, low wages and widespread unemployment, the price of bread was artificially kept high, and the people were deprived of the one immediate consequence of peace which might have alleviated their sufferings—cheap food.

**The Disturbances of 1815—1820.**—During the years 1815 to 1820 there was a series of disturbances. None of them was formidable. Some of them were deliberately fomented by informers. All of them were easily suppressed. But ministers spoke as if revolution was brewing, and *Habeas Corpus* was suspended. In 1816 there was a riot after a Radical meeting at Spa Fields, and the spies swore that the rioters meant to seize the Tower of London; a handful of constables broke up the crowd. In 1817 a few hundred starving workmen set out to walk from Lancashire to London to present a petition to the Regent, carrying their blankets to sleep in. The "Blanketeers," as they were called, were turned back by a few troops, and some of them were imprisoned for months without trial. In the same year a more serious rising of a few hundred men in Derbyshire was easily stopped by eighteen hussars; it was proved to have been instigated by the infamous spy Oliver. In 1819 a big Radical demonstration in favour of parliamentary reform, held at St. Peter's Fields, Manchester, was actually charged by the yeomanry, and several lives were lost. This was known as the *Massacre of Peterloo*;\* and when Sidmouth congratulated the magistrates on their vigour, moderate opinion was outraged. To deal with these troubles, the Government introduced a group of measures known as the *Six Acts* (1819), which forbade all public meetings unless summoned by those in authority. Finally, in 1820, a murderous conspiracy (known as the *Cato Street Conspiracy*) was formed to kill the whole Cabinet. This was the only serious outrage of these years; and it was provoked by foolish repression.

**George IV and his Queen.**—Meanwhile (January 1820) old George III had died, having long been dead to the world; and was

---

\* These events are vividly described in Sam Bamford's *Passages in the Life of a Radical*—an honest book, well worth reading.

succeeded by his worthless son, George IV. The new king's first act was to refuse royal rights to his queen, and to get the ministry to introduce a Bill of Pains and Penalties in the House of Lords to divorce her. Popular sympathy was so violently on the side of the queen that the Bill had to be withdrawn; and the unsavoury episode completed the discredit of the whole system of government. It was in this year that Shelley wrote *The Mosque of Anarchy*, in which he scarified the rulers of Britain, and called upon the "men of England" to "rise like lions out of slumber, in unvanquishable number: cast your chains to earth, like dew; ye are many, they are few."

**The End of Reaction**—The Government of reaction sank under the weight of obloquy. Sidmouth resigned in 1822; Castle-reagh, a victim of morbid depression, committed suicide in the same year; and although Lord Liverpool continued to be Prime Minister, the men who now took the lead in his Cabinet changed its character, and began the era of reform. They were the abler Tories of the younger school, notably Canning,\* his friend Huskisson, and Sir Robert Peel.† Already, indeed, improvement had begun when, in 1819, on the advice of a Committee over which Peel presided, cash payments were resumed, and the inconvertible paper currency established in 1797 came to an end. This meant that money became more valuable, prices fell, and wages went a little farther.

## 2. TORY REFORMERS (1822-1828)

The years from 1822 to 1828 brought a very marked change in the spirit of British politics, both at home and abroad.

**Canning's Foreign Policy.**—At the Foreign Office, Canning was responsible for a definite breach with the reactionary powers of Europe, popularly known as the "Holy Alliance." In 1820 and 1821 there had been a series of futile revolutions in Spain and Italy. Metternich, Chancellor of Austria, and the Powers were for sending armies to stamp out these movements, and actually did so. Castle-reagh had privately resisted in vain, urging a policy of non-intervention; but he had been loth to break with the alliance of the Powers. Canning publicly protested, broke with the Alliance, and won the gratitude of Liberals throughout Europe. When the Powers proposed to send forces to reduce the revolting South American republics to obedience, Canning formally recognised the republics as independent States, and let it be known that the British navy would not permit any expedition against them. In a grandiose phrase, he claimed to have "called a new world into existence to redress the balance of the old." He also urged the United States of America to take similar action; and in a message to Congress President Monroe announced that the United States would resist any intervention in South America by European Powers. This was the first promulgation of the famous "*Monroe Doctrine*."

---

\* There is a short Life of Canning by H. V. Temperley.

† There is a short Life of Peel by J. R. Thursfield, (Twelve English Statesmen).



**Greek Independence.**—Even more striking was Canning's action on the Greek question. In 1821 the Greeks had revolted against Turkey. Many English and French volunteers had gone out to help them, the most famous among them being Lord Byron, the poet, who lost his life in the Greek cause at Mesolonghi (1824). In 1825, however, the Greeks were very hard pressed: a fleet and an army from Egypt threatened not only to defeat them but to exterminate them. Thereupon (1826) Canning made an agreement with France and Russia to compel the Sultan to grant autonomy to the Greeks. A joint fleet, under the British Admiral Codrington was sent to enforce these demands. At *Navarino*, (1827) it destroyed the Egyptian fleet, and in the next year a combined French and British force cleared the Morca. In 1829 Greece was recognised as independent, under the protection of Britain, France, and Russia.\* This was the first triumph of the cause of nationalism. Both in South America and in Greece, Britain had appeared as the friend of the movement of emancipation abroad. She could not remain committed to reaction at home.

**Law and Trade Reforms.**—Meanwhile, Peel, as Home Secretary, had swept away Sidmouth's wretched spy system. He also did very valuable work in revising the iniquitous Penal Code. No less than one hundred capital offences were abolished, and the British legal system was redeemed from the savagery which had disgraced it. Huskisson, at the Board of Trade, took in hand the tariff, revised and greatly reduced the customs duties, sweeping away the taxes on raw materials; and made a substantial step in the direction of free trade. Huskisson also abandoned the prohibition of the export of machinery, which had been forbidden with the idea that foreigners ought not to be helped to use British machines. The trade in machinery soon became one of the greatest of British trades.

**The Freeing of Trade Unions.**—The most remarkable advance of those years was not due to the Government, but to the work of Francis Place,† a London tailor and a disciple of the Radical philosopher, Bentham. Working in conjunction with Joseph Hume, a Radical member of Parliament, he managed to obtain an inquiry into the working of Pitt's Combination Acts, which prohibited the formation of Trade Unions. The evidence was so skilfully presented that even a Tory committee reported in favour of the repeal of the Acts. They were repealed in 1824; and although, after an outbreak of strikes, the Act was modified in 1825, nevertheless the establishment of Trade Unions had become legally possible. This was an event of the highest importance for the future development of the British social system.

**The Canningite Split.**—In 1827 Lord Liverpool died, and Canning became Prime Minister in his place. But this led to a split in the Tory party, because, while Canning favoured Catholic Emancipation, the majority of the Tories, including Peel, opposed

---

\* See School Atlas, Plates 19 and 26c.

† There is a very interesting Life of Place by Graham Wallas.

it; and Canning was only able to form his Government with the help of the Whigs. In a few months, Canning died; an attempt to carry on his ministry under his friend Lord Goderich was a failure; and in 1828 the Duke of Wellington\* became Prime Minister, with Peel as his right-hand man. Some of Canning's followers (including Lord Palmerston and William Lamb, afterwards Lord Melbourne, both of whom later became Liberal Prime Ministers) were at first included in the ministry. But the breach was too deep: in three months they had resigned and thrown in their lot with the Whigs. The Tory ascendancy was beginning to crumble.

**Police Reform.**—Even under the Wellington government, reform still went on. On the motion of Lord John Russell,† a future Liberal leader who now first obtained political prominence, the *Test and Corporation Acts*, which had survived from the intolerance of the seventeenth century, were repealed, and the disabilities of the Dissenters were at last removed. And Peel carried out a piece of work which deserved to rank with the reform of the Penal Code, when he organised the Metropolitan Police, and the old incompetent bodies of watchmen who had failed to keep crime in check disappeared. Other towns imitated London; and the admirable new police forces, in honour of Sir Robert Peel, came to be known as "bobbies" or "peelers."

The more reactionary Tories were beginning to be restive under this reforming activity. But perhaps Peel would have achieved more good work, to demonstrate that the old unreformed system of government was still capable of good things, if his policy, and the existence of the Wellington ministry, had not been interrupted by a series of events which before very long broke down the Tory ascendancy altogether, and opened the way for more far-reaching constructive work.

### 3. CATHOLIC EMANCIPATION AND IRISH PROBLEM

**The Condition of Ireland.**—The cause of disturbance came from Ireland. Since the Act of Union little attention had been paid to the needs of Ireland, the Irish representatives in the united Parliament being all members of the Protestant minority. But there were very great evils in the condition of Ireland, which demanded attention. The population was too great for the means of subsistence; it had reached 7,000,000 in 1821; and the great majority of these, the disinherited Irish peasantry, were in a state of abject and grinding poverty, worse than that of any peasantry in Europe. The competition for land was so fierce that rack-rents were paid which left no sufficient margin for livelihood, and the people lived mainly on potatoes, the cheapest form of human food. They were always on the verge of starvation, and a very severe famine, which caused serious

---

\* There is an essay on the Duke of Wellington as a statesman, by Sir Charles Oman, in Hearnshaw's *Prime Ministers of the Nineteenth Century*.

† There is an essay on Russell, by W.F. Reddaway, in Hearnshaw's *Prime Ministers of the Nineteenth Century*.

loss of life, happened in 1822. Again, it was a bitter grievance that one-tenth of all the produce of these wretched little farms was exacted as tithe for the maintenance of the Anglican Church, to which scarcely any of the peasantry belonged. Finally, though since 1793 Irish Catholics (unlike those of England) had the right to vote for members of Parliament, they could not be elected, nor could they hold any public office. They therefore could not do anything to improve the lot of their fellows.

**O'Connell.**—Ever since the Act of Union there had been acute division in English politics between the majority of the Tories, who were opposed to Catholic Emancipation (*i.e.* the conferment upon Catholics of the right to hold public offices and to sit in Parliament), and the Whigs and Canningite Tories, who were in favour of such a measure: this was, in truth, the main line of cleavage in English politics. Meanwhile, in Ireland, a Catholic Board kept the question alive by petitions and in other ways. In 1805 the leadership of this movement was assumed by Daniel O'Connell, a very successful lawyer and an orator of great power.\* He contrived to give new force and vigour to the movement. In 1823, moved by the famine of the previous year, he founded a Catholic Association, supported by a regular weekly levy called the Catholic Rent. Thousands of Catholic peasants joined, and excitement steadily increased. In the north of Ireland Orange Lodges were organised on the other side, and feeling ran so high that the authorities feared an outbreak of civil war, with all the horrors that have always accompanied civil war in Ireland. They tried to prohibit the organisations on both sides (1825); but this was of no avail. O'Connell dissolved his Association, but formed a new one within the letter of the law.

**The Clare Election.**—In 1828 a bye-election was necessitated in County Clare. The outgoing member was a popular Protestant landlord, who had always been able to count upon the votes of his Catholic tenants. O'Connell resolved to try a great experiment. He became a candidate himself, although, as a Catholic, he was legally disqualified; and he was triumphantly elected. What had happened at Clare was likely to happen, at the next election, in eight out of ten Irish constituencies. Either O'Connell must be admitted to Parliament, which meant that Catholic Emancipation must be granted; or the Government must be prepared to face the disfranchisement of four-fifths of Ireland, and the rise of an intense excitement which would almost certainly lead to civil war.

**Catholic Emancipation.**—Wellington and Peel, the heads of the Government, were both opposed to Emancipation. But Wellington was a soldier, who knew when a position was untenable; and Peel had an honest mind which would not refuse to face facts. Both agreed that emancipation must be granted. Peel wanted to resign, to save his personal honour. Wellington insisted that as their influence alone could force the Tories to accept the hated Act, the

---

\* There is an excellent Life of O'Connell in Lecky's *Leaders of Irish Public Opinion*. There is also a Life by Judge O'Connor Morris in the *Heroes of the Nations Series*.

national need must come first. Accordingly the statesmen who had refused to support Canning because he advocated the Catholic cause, now introduced a Bill to secure the triumph of that cause. It was carried with the aid of Whig and Canningite votes ; and Catholics became eligible for Parliament and for all but three public offices.

**Fall of the Tories.**—The passage of the Catholic Emancipation Act, coming on the top of other reform measures, rent the Tory party in twain, and destroyed its faith in its leaders. In the next year, 1830, George IV died ; and the accession of his brother, William IV, made a general election necessary. That election was one of the turning-points in British history. It returned a Whig majority ; and the Whigs were committed to parliamentary reform, which, in the eyes of Tories, meant political revolution. Moreover, in the same year, revolutions broke out in France, Belgium, Italy, and Poland. Revolution was in the air. Could the necessary changes be peacefully achieved ?

#### 4. COLONIAL POLICY (1815–1830)

**Large-scale Emigration.**—The development of the new British Empire was deeply influenced by the course of events in Britain. Unemployment and distress led to emigration on a very large scale—the first movement of mass-emigration yet seen in the modern era. It was after the famine of 1822 that large-scale emigration from Ireland began. A very large proportion of these emigrants went to the United States ; and the rapid growth of the States in this period, when the Mississippi valley was being very quickly settled, was mainly due to conditions in Britain. But there was also a strong movement towards Canada—as many as 20,000 a year ; and for the first time a steady though small stream of free emigrants flowed to Australia, where in 1828 a new settlement was made on the west coast, at Swan River.\* In 1819 organised and assisted emigration began, when, as a means of relieving unemployment, Government supplied £50,000 to defray the cost of a British settlement in South Africa. The area chosen was Eastern Cape Colony, round Grahamstown : † this region is still the most English district in South Africa, and its new inhabitants formed the first solid block of English-speaking settlers among the Dutch Boers.

**Racial Problems.**—This new stream of emigration produced its own problems in all the colonies. Racial feeling was stirred not only in South Africa but in Canada, where the French of Quebec began to fear that the English would soon outnumber them. In Australia the coming of substantial numbers of free settlers made it necessary to modify the form of government appropriate for a convict station. In 1824, therefore, a nominated legislative council was set up in New South Wales, and next year Tasmania was organised as a separate colony.

**Movement against Slavery.**—Not only in the lands suited

\* See School Atlas, Plate 55b.

† See School Atlas, Plate 56b.

for white settlement, but in the old and new tropical possessions, changes were beginning. The chief agents of the change were the missionaries, of whom hundreds were now scattered over the face of the globe. Their reports, sent home to the Churches whose subscriptions supported them, stirred public interests in the backward or primitive peoples, and in the slaves of the slave-owning colonies. After the abolition of the slave trade, an agitation had begun for the abolition of slavery. It reached an important stage in 1823, when T.F. Buxton moved a resolution in the House of Commons condemning slavery, and Canning, on behalf of the Government, undertook to impose upon the various colonies regulations for the protection of the slaves. The planters were indignant at this threatened interference with their "property," and Jamaica even threatened to secede from the Empire. Most of the planters were inclined to lay the blame on the missionaries. In Demerara there was a rising among the slaves when they heard that something was to be done for them. It was cruelly suppressed; and the Rev. John Smith, a Nonconformist missionary, was tried and condemned to death for inciting the slaves to mutiny, though he had done nothing to justify such a charge. He died of the hardships inflicted upon him in prison. Every church and chapel in Britain rang with the story of his martyrdom; and this episode, more than anything else, brought the British people to the conviction that slavery must be abolished.

Evidently difficult questions were brewing both in the white men's colonies and in the tropical colonies. By 1830 reconstruction had become as inevitable in the colonies as at home.

## 5. INDIA : THE OVERTHROW OF THE MARATHAS

Finally, in India, great events were taking place during the years following Waterloo. It is scarcely too much to say that in this period the British conquest of India was completed.

**Marathas and Pindaris.**—When Wellesley was recalled in 1805 (p. 396) he had not completed the subjugation of the Maratha princes, who still controlled nearly half, though mostly the wildest and least civilised half, of India; and the home authorities gave strict injunctions to his successors that there was to be no interference with the Marathas. For eight years this prohibition was observed. During that time the Marathas gave protection within their territories to bands of wild and savage marauders, known as Pindaris, who frequently raided and plundered territories for whose protection the East India Company had made itself responsible. The neglect to deal with this evil was highly discreditable to the British power. At the same time Bengal suffered a good deal from raids by the warlike Gurkhas, who inhabited the kingdom of Nepal on the southern slopes of the Himalayas. "Non-intervention" in Indian politics was in fact an impossible policy for the power that was now paramount in India.

**Lord Hastings and the Gurkhas.**—In 1813 there came out to India a new Governor-General, Lord Moira, afterwards Marquess

Hastings,\* who deserves to rank, after Clive, Warren Hastings, and Wellesley, as the fourth of the great builders of the Indian Empire. He refused to observe the policy of non-intervention, and dealt very vigorously with the forces of disorder in India. First he attacked the Gurkhas, defeated them in difficult mountain campaigns, drove them back into their hill-country, and made with them a treaty (1816) which has lasted to this day. Ever since then Gurkha troops, recruited from the independent State of Nepal, have been among the most valued elements in the Indian army.

**Overthrow of the Marathas.**—The Gurkha war was no sooner completed than a Pindari raid of the most outrageous character was perpetrated in the peaceful British province of Madras. Hastings resolved that these raiders must be finally brought to book. But there was obviously a danger that an attack on the Pindaris would involve trouble with the Marathas, who sheltered them. Hastings therefore organised the largest armies that had yet been put in the field by the East India Company.† His foresight was shown to be needed; for three of the great Maratha princes seized the opportunity to attack the British power, and a fourth, Sindhia, would have done so if he had not been overawed by large forces. The Peshwa, head of the Maratha confederacy, though formally in alliance with the Company, made a treacherous attack upon the British Resident at his capital, Poona. He was defeated at *Kirki* (1817), and finally overthrown at *Ashti* (1818). Bhonsla, the raja of Nagpur, made a similar attack upon the Resident at that city, and was soundly beaten at *Sitabadi* (1817); while the armies of Holkar, raja of Indore, were thoroughly defeated in the biggest battle of the war, at *Mahidpur* (1818). Meanwhile the strongholds of the Pindaris had been cleared out, and India was freed from a pest. This was the third and the most decisive of the Maratha wars. It finally disposed of the ambitions of the Marathas to be masters in India, and it was followed by a very important series of treaties, which definitely established British supremacy over the whole of India up to the line of the Indus.

**Resettlement of India.**—The Peshwa was dethroned and pensioned off. His lands went to make the modern Presidency of Bombay, and they were admirably organised by a great administrator, Mountstuart Elphinstone. The Peshwa retired to a palace near Cawnpore; and there, forty years later, his adopted son, Nana Sahib, was to play a terrible part in the Indian Mutiny. The other Maratha princes were made to accept strict treaties of subsidiary alliance, and to make some cessions of territory; and henceforth they took rank among the other dependent native princes. All the numerous Rajput princes of the wide province of Rajputana, who had long been vassals of the Marathas, and had suffered much at their hands, were bound to the Company by subsidiary treaties. This series of treaties, added

---

\* There is a short Life of Hastings, by Major Ross, in the *Rulers of India Series*.

† See School Atlas, Plate 54.

to those which Wellesley had made (1818), still form the foundation of the British power over the Indian Native States.

**First Burmese War.**—From the Indus to Cape Comorin the East India Company was now supreme, and peace reigned over that vast and populous area, as never before in its long history. But the series of Indian wars and conquests was by no means at an end. In 1823 Lord Hastings' successor, Lord Amherst, was drawn into conflict with Burma, a land quite distinct from India in character and civilisation. The Burmese had been aggressive for some forty years. They had conquered Assam, next neighbour of Bengal on the north; they had conquered the coastal region of Arakan, next to Bengal on the south. Embassies to establish friendly relations with them were received with studied insolence. They announced that they were going to conquer Bengal next, and in 1823 they attacked that province. The war thus begun lasted for three years. But in the end the king of Burma had to admit defeat, and to cede not only the provinces of Assam and Arakan, but the long coastal region of Tenasserim, which runs down the east coast of the Bay of Bengal to the Malay peninsula (1826). By these acquisitions the East India Company obtained control of all the shores of the Bay of Bengal.\*

**The Straits Settlements.**—Meanwhile the British Government (not the East India Company) had been establishing British power still farther east.† There had long been a British trading-station at *Penang*, on the Malay Straits (1786). In 1819, as a sort of compensation for the loss of Java, which had been restored to the Dutch in 1816, Sir Stamford Raffles, who had ruled Java during the British occupation, obtained the island of *Singapore* by treaty with the Sultan of Johore. Here was founded a port of call for traders on the way to the Far East which has since developed into one of the great ports of the world. In 1824 a new arrangement was made with the Dutch, whereby, in return for the abandonment of a British trading-station in Sumatra, they gave up *Malacca* in the Straits; and in 1826 the Straits Settlements were organised as a separate Presidency under the Governor-General of India.

Thus, while the oversea empires of the other European Powers had shrunk to nothing, the British power was still growing steadily in all directions, even during these years of distress and disturbance at home; and the problem of the organisation and government of the Empire was becoming every year more difficult and more important.

## 6. THE MOVEMENT OF IDEAS

It is clear that, amid all the distresses of the time, there was a stir of life among the British peoples, and that powerful forces making for change were at work. This is still more evident if we consider the intellectual life of the people.

---

\* See School Atlas, Plate 54.

† See School Atlas, Plate 55a.

**Literature.**—The years which followed Waterloo were one of the greatest ages in English literature ; indeed, if the great name of Shakespeare could be disregarded, it surpassed even the Elizabethan age in the richness and variety of its achievements. It was the age of the Romantic Revival, when men were seeing with a fresh vision the wonder and beauty of nature, and the mystery of human life, because their minds had been deeply stirred by great events and profound problems. Wordsworth and Coleridge had been at the height of their powers during the struggle with Napoleon, when Wordsworth's noble patriotic sonnets did much to inspire the best part of the nation. Coleridge had gone into retreat at Highgate in 1816, but his teachings were exercising a very deep influence on many disciples ; Wordsworth, in his simple home among the mountains ; still wore his singing-robcs. The great glory of the period, however, was the work of three young poets, all of whom died young, and whose best work falls entirely within the fifteen years from 1815 to 1830—'the splendid and romantic Byron, first of English poets to win the ear of Europe ; the ethereal Shelley ; and, greatest poet of them all, the unhappy Keats. Many lesser poets, such as Scott, Landor, Campbell, Moore, and Rogers, combined to make England once more "a nest of singing birds." In imaginative prose the age was not less distinguished. The marvellous series of the Waverley novels had begun in 1812 and was being poured out in all its rich variety during the years of storm and stress. The exquisitely finished work of Jane Austen also belongs to the years of war and peace. And, in another kind, the genius of Charles Lamb, of Hazlitt, and of de Quincey all illuminated these cruel times.

**Science and Economics.**—There was also beginning in these years the great movement of scientific investigation which was to transform the character of civilisation. In 1804 Dalton had expounded the atomic theory ; Faraday and Humphry Davy were carrying on their chemical investigations ; and the first of the great geologists were disclosing the secrets of the rocks. Science had not yet become a controlling factor in the life of man, nor had it yet been taken fully into the service of industry, but the greatest of all the revolutions of the nineteenth century was beginning. Again, in the field of social study important advances were being made. Starting from the work of Adam Smith, a group of great economists, among whom the chief was David Ricardo, were working out the principles of political economy. Others, especially under the inspiration of Jeremy Bentham, were investigating the principles of law and government, and preparing the way for the great reforms of the next era, which were to be chiefly due to the ideas and proposals of the Benthamites, or "Philosophic Radicals." A very different body of thought was also being developed by another group of writers. The theory of Socialism was worked out during the 'twenties by Robert Owen and others ; and it has been asserted that all the ideas of Karl Marx were anticipated by the British Socialist writers of this period.

**Education.**—Organised knowledge could not play its part in the life of the nation until there were facilities for making it available. The educational machinery of England, though not of Scotland, was



as yet of the most rudimentary kind, Oxford and Cambridge clung to the old ways, gave no recognition to the new knowledge, and rigidly excluded Dissenters; and there were no other centres of organised learning. In 1825 a group of liberal thinkers proposed the foundation of a university in London. In 1828 an institution called "the University of London" was opened, but it was on a modest scale, and the opposition of Oxford and Cambridge prevented it from getting a charter. Moreover, because it imposed no theological tests, it was distrusted by orthodox Anglicans, who in 1829 founded King's College as a rival institution. Such were the modest beginnings of the modern university movement. Meanwhile the provision of schools for the poor, which had begun with the Sunday school movement in 1780, had made some progress. It was wholly supported by the Churches, and there were consequently two rival sets of schools, organised by the (Church) National Society and by the (Dissenting) British and Foreign Society. But they were all poorly equipped; they had no adequate staff of teachers; and the work of teaching had to be carried on largely by the senior pupils under what was known as the "pupil-teacher" system. Britain was very poorly equipped with the means for training her people when she entered upon the era of reconstruction. But at least she was beginning to realise her need.

## CHAPTER XLI

### NATIONAL RECONSTRUCTION IN BRITAIN (1830—1841)

#### 1. THE REFORM ACT OF 1832

**Revolution in the Air**—The general election of November, 1830, took place in an atmosphere of revolution. In July the Paris mob had, in a few days, overthrown the reactionary monarchy of Charles X, and set up a new constitutional monarchy under Louis Philippe. In August the Belgians had risen in revolt and asserted their independence of Holland. In September the revolutionary movement had spread to several of the German States, and it was about to flare out also in Poland and in Italy. These Continental agitations stimulated the excited Radicals in Britain, who had long been demanding parliamentary reform, and had now almost made up their minds that it could only be got by force. There were nightly meetings in London, and it was thought unsafe to let the new king drive through the streets. A great Political Union, with thousands of members, had been organised in Birmingham. There was an epidemic of strikes in the North, and some talk of a march on London. In the southern counties, from Kent to Wiltshire, a sort of peasants' revolt was afoot during the summer; landowners were receiving threatening letters signed by "Captain Swing," and hundreds of ricks were burnt. Britain was on the verge of revolution. All depended upon whether the unreformed Parliament could be got to reform itself.

**Grey's Government.**—The election gave an uncertain result, though the strength of the Whigs was greatly increased. The Duke of Wellington was defeated; but before his defeat he made a declared speech against parliamentary reform, in which he asserted the perfection of the existing system. Earl Grey was called upon to form a ministry—the first Whig ministry for twenty-five years. Grey himself was no Radical; but he had been a consistent advocate of parliamentary reform since 1792, and he was a brave and upright man. His Cabinet consisted, however, entirely of aristocrats, drawn from the very class whose power the Radicals hoped to see overthrown, and it included the leading followers of Canning, who had always opposed reform. No great hopes were entertained from such a Government. But it included also some thorough-going reformers, such as Lord Durham (known as Radical Jack) and Lord John Russell. To them Grey entrusted the framing of a Reform Bill.

**The Reform Bill.**—When the Bill was produced (March 1831) it startled Parliament and delighted the public by its thoroughness. All pocket-boroughs were to be swept away. The 160 seats thus obtained were to be distributed among big towns and counties. There was to be a uniform franchise, and in the towns every tenant of premises worth £10 a year—4s. a week—was to have the right of voting. This was not a democratic franchise. But at least the old anomalies, which had given power into the hands of a small class, were to disappear. This was what captivated the country; and the whole strength of the popular agitation was diverted from revolutionary aims into enthusiastic support of "the Bill, the whole Bill, and nothing but the Bill."

**The Fight for the Bill.**—The second reading was carried by only one vote. Then Parliament was dissolved in order that the country might pass judgment on the proposals. So great was the enthusiasm that even the unreformed electoral system yielded a large majority to the Whigs. The Bill went through the Commons; but the Lords rejected it (September 1831). There was a tornado of popular indignation; vast meetings and processions; and serious riots in several towns. The Government stood firm, passed the Bill again through the Commons, and once more submitted it to the Lords (1832). They gave it a second reading by nine votes; and then proceeded to eviscerate it in committee. Lord Grey resigned. Wellington tried in vain to form a Government. The public excitement became unbounded, and there was real danger of violence. Grey returned to office, on condition that the king would undertake to create as many peers as might be necessary to carry the Bill. This settled the issue. Many peers abstained. The Bill was carried, and on June 7, 1832, received the royal assent.

**Effects of Reform.**—Popular opinion was right in recognising this measure, moderate as its terms were, as a real revolution, quite as important as that of 1688. It destroyed the entrenched power of the landowning oligarchy which had governed Britain since the fall of the Stewart monarchy; and it gave to a large electorate the opportunity of recasting the political and social system. The section

of the nation to which controlling power now passed was in the main the middle class, together with the more prosperous artisans. The middle class (which loves a lord) did not dream of dethroning the aristocracy. Cabinets continued to be manned by statesmen of the old class. But it was influence, not domination, which the aristocracy now enjoyed ; and to maintain their leadership they had to study and accept the opinions of the electorate.

## 2. THE REFORMS OF 1832—1834

**The "Liberals."**—A fresh general election had to take place under the new Act. The Parliament which it chose (1832) showed an overwhelming majority for the Whig Government. But it was not a purely Whig majority. It included reformers of many schools and types, eager to get to work upon the tasks of reconstruction ; and although the direction of affairs remained in the hands of the aristocratic Whigs, who monopolised cabinet office, the real drive towards reform came from these new elements, and the character of the work that was done was largely due to them. The old name "Whig" was no longer suitable for this mixed army of reformers. The name "Liberal" came into use in its place. It was first employed about 1834, and was gradually adopted as the only name that covered all the sections of reformers. It was, in fact, a "Liberal" policy that was pursued by this Government, both at home and abroad, though the Government itself was essentially "Whig."

**Palmerston and Belgium.**—In foreign affairs the Government had to decide upon its attitude towards the results of the various revolutionary movements which had broken out in Europe in 1830. Lord Palmerston,\* a disciple of Canning, became Foreign Secretary, and under his direction Britain adopted a definitely friendly attitude towards the Liberal movements on the Continent. Palmerston made friends with the new Government in France ; and this *entente* ranged the Liberal powers of the west against the despotic empires of Eastern Europe. The most important consequence of this alliance was that the Belgian revolt, which the reactionary Powers would have liked to suppress, won success, thanks to the protection of Britain and France ; and in 1832 the independence and neutrality of Belgium were formally recognised. This was the first definite breach in the provisions of the Treaty of Vienna. Palmerston had the reputation of being restless and meddlesome, and the diplomats of the old school regarded him as pestilent fellow. But he identified Britain with the cause of Liberalism in Europe, and brought to an end the period of reaction.

At home, meanwhile, the work of reconstruction was very actively taken in hand. The new Parliament was to last for only two years, but few Parliaments, long or short, have done a larger amount of useful work : in many different fields the work of reconstruction was set on foot.

---

\* There is a brilliant Life of Palmerston by Philip Guedalla.

**The Irish Question.**—As in almost every other Parliament of the nineteenth century, more time was given to Ireland than to any other subject. For O'Connell, now at the head of a solid body of followers, was insistent that Irish grievances should be attended to. Yet little was done, because the House of Lords stood in the way. The Government reorganised the finances of the (Anglican) Church of Ireland, and proposed to transfer some of its surplus revenues, which were drawn from the Irish people, to education and other public objects; but the House of Lords would not permit this sacrilege. Much time was spent on an attempt to deal with the grievance of tithe, by making it a rent-charge, payable by the landlord instead of the tenant; but the proposal could not be got through; it was not passed until 1839; and in 1834 it led to a serious secession from the Government, which considerably weakened it.

**Abolition of Slavery**—Meanwhile, however, a series of very important measures were successfully carried. The first, and one of the most remarkable, was the abolition of slavery throughout the British Empire, £20,000,000 being voted to purchase the freedom of every slave. This noble and generous Act was the sign of a new spirit in imperial affairs, and a new attitude towards backward peoples, who had hitherto been pitilessly exploited throughout the history of European colonisation. But, as we shall see, it led to serious difficulties in more than one part of the Empire, and notably in South Africa.

**The Factory Act.**—Equally important in the new outlook which it expressed was the Factory Act of 1833, which was the real beginning of State intervention for the protection of the mass of working people. There had been Factory Acts in 1802 and 1819, but they were useless, because their enforcement was left to the justices of the peace. The new Act was first proposed by Michael Sadler, a Tory member, in 1831; when he failed to be elected in 1832, it was taken up by the great philanthropist, Lord Ashley, who was to be more famous as Lord Shaftesbury. But the Government took it over, and carried it by the weight of its great majority. What is more important, it inserted the provision which made the Act effective—the appointment of inspectors to go round the factories and see that it was carried out. The actual provisions of the Act were far from sweeping. It was limited to the labour of children in cotton factories; it prohibited the employment of children under nine, and limited the hours that might be worked by older children to nine a day. This in itself was a real advance, and it also carried with it a reduction of the hours of work of adults who worked on the same machines as the children. But the important thing was the appointment of the inspectors; for their reports, presented year by year, drew the attention of the nation to the need of reform, and thus led to the long series of Factory Acts which gradually swept away the ugliest features of the industrial system.

**Law Reform.**—Law reform constituted another side of this Parliament's work. It established the *Judicial Committee of the Privy Council*, which has become the central court of appeal of the

whole empire ; it started the reform of the land laws ; and, if the House of Lords would have permitted, it would have set up a cheap system of local courts, like the later County Courts, to bring justice within the reach of ordinary citizens.

**The India Act.**—Another field of activity was represented by the India Act of 1833, which was based upon a very searching inquiry into the working of the whole system of Indian government. Now that Britain had become the paramount power in India, it was necessary that the principles of her government should be clearly defined. This Act put a stop to the trading activities of the East India Company, and thus ended the vicious combination of administration with profit-making. It swept away the rigid restrictions which had hitherto been imposed upon the entry of Western missionaries, teachers or traders into India, and thus allowed Western ideas to play freely upon the mind of India, with momentous results. And it laid down two new principles of vital importance. The first was that "the interests of the native subjects are to be preferred to those of Europeans wherever the two come in conflict." The second was that no native of India should be debarred by race, colour or religion from holding any office : in other words, the restriction upon the employment of Indians in responsible positions, which had been imposed ever since the time of Cornwallis, was cancelled. The Indian Empire was henceforth to be governed in the interests of the Indian peoples.

**Poor Law Reform.**—The most difficult, controversial and unpopular measure of this Parliament was the Poor Law Reform Act of 1834. Ever since 1795, on a growing scale, the poor law authorities had been making grants in supplement of wages. This practice had pauperised large numbers of the working class ; it had prevented a natural rise of wages ; and it had imposed crippling burdens upon the ratepayers. The Act provided that in future no "out-door relief" should be given to any but aged and infirm persons. "Able-bodied" persons, if they needed relief, must go into a workhouse and earn it ; and the conditions in the workhouses were to be less attractive than the worst-paid work, in order to discourage resort to them. These were harsh provisions, especially at a time when many thousands depended upon the rates for subsistence. In the long run the harshness might be beneficial, if it forced employers to pay a living wage and made workers more eager to be self-supporting. But there ought to have been an allowance of time to let wages adjust themselves. In any case, the system was hard on the man who was out of work through no fault of his own. For these reasons the Act was intensely unpopular throughout the working classes, and made them feel that the reformed Parliament had betrayed them. Yet harsh as it was, the Act did lead to a great improvement ; and it immediately reduced the burden of rates. To administer the new system, it was provided that parishes should be grouped into Unions under partly elected Boards of Guardians. This was the first use of popular election for local authorities. A Poor Law Commission was also set up, to supervise the Guardians. The Commission was

the ancestor of the modern Ministry of Health ; and it represented the first attempt on the part of the national Government to regulate the work of the local authorities, which had been left to themselves ever since the breakdown of the Tudor system of Privy Council control.

**The Dissolution of 1834.**—This was a wonderful record of work for two years ; but it was now to be interrupted. In 1834 Lord Grey resigned. The ministry was reconstituted under Lord Melbourne. But, although it still had a large majority, the king saw fit to object to some of the ministers, called for Melbourne's resignation, and Commissioned the Duke of Wellington to form a ministry. This was the last occasion upon which a British sovereign interfered with the control of Parliament over the Government. Wellington and Peel tried to form a ministry. Knowing that they would be defeated by the existing Parliament, they asked for a dissolution, and the Parliament of the Reform Act came to a premature end.

### 3. THE MELBOURNE MINISTRY (1834—1841)

**The Tamworth Manifesto.**—The election of 1834 was mainly important because Peel issued a manifesto in which he announced that he accepted the decision of 1832 and would play his part in carrying out needful reforms. In other words, Old Toryism, the mere negation of change, was dead ; and to express the new character of the Tory party, the word "Conservative" came into use. Peel had, in fact, played the part of a Conservative reformer throughout the last two years, his influence had prevented his party from attempting to resist all reforms ; he was by far the ablest parliamentarian on either side of the House ; and for these reasons public opinion had been steadily swinging in his favour. Partly for this reason, and partly because of the unpopularity of the Poor Law Reform Act, the Liberal majority was greatly reduced, and the two parties were not unevenly balanced. This remained the normal state of things until after the next Reform Act, in 1867. Indeed, there was now no very sharp difference between the main bodies of the two parties, and men passed easily from one to the other. But the narrowness of the majority put an end to the active legislation of the previous period.

**Municipal Reform**—The only important achievement of the Melbourne Ministry was the Municipal Reform Act of 1835. It was one of the most valuable of the series. Until 1835 English towns were divided into two classes, those which possessed ancient charters, and those which had grown up in modern times. The former had nearly all passed under the control of "close corporations," who represented only the interests of a small privileged class, and seldom made any attempt to carry out schemes of improvement for the borough as a whole. The latter had no organised system of government at all, save the machinery of a mediæval manor-court. Essential functions, such as street-cleaning, drainage, and lighting, were either not performed at all, or were undertaken by special

bodies set up by special local Acts of Parliament. The result of this system, or lack of system, was that the towns were mostly in a wretched condition, especially the rapidly growing industrial towns of the north and midlands. There was no attempt to ensure that houses were healthy, no adequate water-supply, no sufficient police, no proper system of drainage, no supervision of public health. The new generation of Englishmen were being bred in conditions which were often destructive of health and morals. The Municipal Reform Act set up elected municipalities in every town of a certain size, with substantial powers, including the power to raise rates. Public-spirited men found in these bodies a great chance of rendering public service. There was no part of the work of reorganisation that was carried out in Britain during the nineteenth century which produced greater results upon the well-being of the community than the work of these bodies, which was all the more important because the British people were now becoming a town-dwelling people.

**Education.**—One almost unnoticed change made during these years deserves notice. In 1833 Government had made small grants to the societies which were maintaining elementary schools. In 1839 the grants were increased, and a Committee of the Privy Council was set up to administer them, with a staff of inspectors. This was the beginning of national attention to education. The reports of the inspectors led to a gradual increase of Government action, and ultimately (in 1870) to the establishment of a national system of education.

**Irish Affairs**—Even more than in the previous years the main attention of Parliament was perforce given to Ireland, for whose problems no sort of solution had yet been found; with the result that the Irish were beginning to lose patience, and to clamour for the repeal of the Union, and the establishment of an Irish Parliament to deal with Irish problems. Agrarian outrages, due to poverty, rack-rents, tithes, and general misery, were frequent. They had to be met by Coercion Acts, because they could not be met by ameliorative measures. A Municipal Reform Bill, on the lines of the English one, was introduced for Ireland; the House of Lords threw it out. The eternal discussion on Irish tithes still dragged on: the House of Lords would not accept any proposal which decreased the revenues drawn from the Irish peasantry by the Church of Ireland, and it was only on this condition that, in 1839, a Tithe Commutation Act was at last passed. But nothing had yet been done to deal with the causes of the appalling misery in which the mass of the Irish people were sunk.

**Accession of Queen Victoria.**—Meanwhile, in 1837, William IV had died. He was succeeded by the young Princess Victoria,\* eighteen years old. In the election which followed her accession, the strength of the Liberals was still further reduced; and the ministry's existence was so precarious that it attempted to do nothing serious. The most valuable work of Melbourne was that of

---

\* *Queen Victoria*, by Lytton Strachey, is a brilliant and penetrating biography.

teaching the young queen, who was devoted to him, the duties of a constitutional sovereign. This he did admirably : throughout her long reign of sixty-four years, Queen Victoria was the model of a constitutional monarch, and under her the conventions of the constitution were firmly established.

**The Bedchamber Question.**—In 1839, indeed, Melbourne's majority became so narrow that he resigned ; but Peel, when called upon to form a ministry, offended the queen by insisting that the Whig Ladies of the Bedchamber, whom she knew, should be replaced by Tory ladies. On this paltry issue, Melbourne resumed office, and held it for two more years : long enough to see the happy marriage of his beloved young mistress (1840) to Prince Albert of Saxe-Coburg—an upright and dutiful man who helped to give to the British court a reputation for purity and simplicity which wiped out the memory of the Regency, and won the loyalty of the middle class.

**Palmerston's Foreign Policy.**—During the years of Melbourne's Government (1834—1841) the chief interest lay in the sphere of foreign politics, over which Palmerston exercised an almost unchecked sway. Two questions, both of great importance for the future, excited a great deal of attention. The first was the emergence of the Eastern Question, and of a growing fear of the designs of Russia on Constantinople. The second was the outbreak of trouble with China, and the forcing open of that ancient and exclusive empire.

**Mehemet Ali.**—After the successful revolt of the Greeks, the Turkish Empire seemed to be on the verge of dissolution. The Sultan had not even been able to fight the Greeks alone ; he had had to call upon his powerful vassal, Mehemet Ali of Egypt, to supply him with a fleet and an army. Mehemet, who was a very vigorous despot, and had conquered the Sudan and attracted the attention of Europe, conceived the idea of enlarging his power at the expense of his suzerain. He had overrun Syria and threatened Constantinople. Thereupon Tsar Nicholas I of Russia had offered his protection to Turkey, and for a moment the Sultan, in desperation, had submitted (Treaty of Unkiar-Skelessi, 1833). Palmerston hated and feared Russia, both because the Tsar was the mainstay of reaction in Europe, and also because he was rapidly conquering Central Asia, and seemed to be threatening India ; this fear of a Russian attack led to a foolish British adventure in Afghanistan, of which more will be said elsewhere. But it also led Palmerston to believe that it was necessary to strengthen Turkey as a barrier against Russia ; and this idea governed British policy for a long time to come. He therefore did everything in his power to checkmate Russia, with a large degree of success. In 1833 Nicholas had to be content to see a common guardianship of Turkey by all the Powers substituted for the protectorate which he had hoped to establish. And in 1838, when a new war broke out between Turkey and Mehemet, who once more got the better of the struggle, Palmerston again succeeded in persuading the Powers to come to the aid of Turkey, and to order



Mehemet back into Egypt. This was, in its way, a great diplomatic success; and from that date British influence was dominant at Constantinople, and all sorts of schemes for reforming Turkish government were pressed forward. But Palmerston's success had one unfortunate result. It broke the friendship between Britain and France; for Mehemet Ali was a special protégé of France, and her disappointment at the way in which he was treated was so acute that for a time her relations with Britain were strained almost to breaking-point (1840). One incidental result of these events was that Britain annexed *Aden*, as a check to Mehemet, who had been making conquests in Arabia.

**The "Opium War" in China.**—The trouble in China was the direct consequence of the abolition of the East India Company's trading functions. China rigidly excluded the despised foreigner, but a limited trade was allowed under severe restrictions at Canton, where European traders bought tea, silks and porcelain in exchange for opium and other goods. The East India Company had obtained control of this trade: its agents did not mind submitting to the humiliations which the Mandarins exacted. But after the Act of 1833 a government agent took the place of the Company's agent. Representing the Crown, he could not submit to these humiliations, and he had no proper control over the private traders who now carried on the traffic. In 1796 the Chinese Government had prohibited the importation of opium, but the Mandarins themselves had defied the prohibition. Suddenly a vigorous Mandarin was sent down, who arrested all the British traders, and demanded that the stocks of opium should be handed over for destruction. They were handed over. But smuggling by private traders continued. Negotiations were impossible, because the Mandarins would not treat on equal terms. Finally, a wretched war broke out, not on the question of admitting opium, but on the question of respectful treatment for the king's representative. In reality it was a war against the exclusive policy of the Chinese. After two years of aimless fighting, it ended (1842) with a Treaty by which China agreed to open five "treaty-ports"\* to European traders, and ceded the island of *Hong-Kong* to Britain. It was a sordid business, but it began the penetration of China by Western influences. All the European Powers hastened to take advantage of the treaty.

#### 4. THE CHARTIST MOVEMENT: FIRST PHASE

The slow and practical process of Liberal reform was not enough for the more ardent spirits who expressed the discontents of the working class, and during all the years from 1830 to 1840 a series of agitations, which sometimes appeared to be dangerous, disturbed the nation.

**Robert Owen and Socialism.**—In the 'twenties the doctrine of Socialism had been developed by a series of writers and speakers, among whom the chief was Robert Owen; and it had obtained a

---

\* See School Atlas, Plate 55a.

strong hold in many districts. For a time it was diverted by the agitation for the Reform Bill. But the provisions of the Bill did not go far enough, and the popular agitation soon revived. Since political action was too slow, Robert Owen conceived the idea of a universal national strike as a certain method of bringing down the existing order. In 1834 he started an organisation known as the Grand National Consolidated Trades Union, whose aim was to enrol the whole body of workers. Millions joined it; but it collapsed very quickly by its own inherent weakness. The Government made no attempt to prohibit it. But they prosecuted six Dorsetshire labourers, who had formed a lodge in the village of Tolpuddle, on a charge of sedition under an Act of 1797. The six labourers were sentenced to seven years' transportation, and were actually sent to Australia. They were pardoned two years later, but this monstrous deed completed the alienation of the working class from the Whig Government. When the Poor Law Reform Act of the same year came into effect, and its harsh results were felt, the conviction grew that the people had been betrayed by the "base, bloody and brutal Whigs," and that a much more drastic change than the Reform Act of 1832 was needed.

**The People's Character**—In 1836 and 1837 this conviction took shape in a demand for the immediate introduction of complete democracy. A *People's Charter* was drafted, in the first instance, by William Lovett, of the London Working Men's Association, which had been started in 1836; and it was taken up with enthusiasm in other parts of the country, notably in Birmingham, where the Birmingham Political Union was active, and in Leeds, where a fiery writer and orator, Feargus O'Connor, published a newspaper, *The Northern Star*, which became the organ of the Chartist movement. The Charter demanded universal suffrage, annual parliaments, secret ballot, equal electoral districts, the abolition of property qualifications, and the payment of members of Parliament. This was a purely political programme, every item of which (except annual Parliaments) has since become law without bringing about the millennium. But the Chartists were not aiming merely at political democracy, which they regarded as only a means to social reconstruction. The real character of the ideal which aroused for the Charter an intense and passionate enthusiasm\* was, according to one of its advocates, "the right of every man to have his home, his hearth, and his happiness. Every working man in the land has a right to a good coat, a good hat, a good dinner, no more work than will keep him in health, and as much wages as will keep him in plenty"—an excellent aim, but, as we now know, universal suffrage does not automatically realise it.

**The Chartist Movement.**—From the first there was a sharp division between the majority who wanted to confine themselves to constitutional action, and a vigorous "Physical Force" minority, led by Feargus O'Connor, who insisted that nothing could be done

---

\* Mrs. Gaskell's novel, *Mary Barton*, deals with these events.

save by a rising in force. The majority had their way. All through 1838 an extraordinarily active agitation was carried on throughout the country. The Government made no attempt to prevent it. "The people have a right to meet", said Lord John Russell. "If they had no grievances, common sense would put an end to their meetings." The result was that the discussion took place openly and above ground, instead of in secret conspiracies. Apart from some rioting at Birmingham in 1839, there was no disturbance of order. Troops were drafted to the danger-spots, but they were carefully kept in reserve. At length, in July 1839, a monster petition was presented to Parliament. It was discussed, and rejected.

**Collapse of the Movement.**—What were the Chartists to do now? There was an attempt to call a general strike, but it had no success. At Newport, in South Wales, some 3,000 armed Chartists attempted to release one of their leading orators who had been imprisoned, but they were easily dispersed, and, for a time, the agitation died down. It might have become very formidable if the methods of Sidmouth had been employed.

## 5. INDUSTRIAL DEVELOPMENT OF THE 'THIRTIES

The worst of the distresses from which Chartism sprang were to be alleviated, in part, by the working of the new laws we have described, but these could only operate gradually. Meanwhile, the development of the Industrial Revolution, which was going on more rapidly than ever, was bringing about an increase of wealth, which would make better conditions possible; although, in the meantime, it was inflicting real sufferings upon certain sections of the community.

**The Textile Trades.**—In the textile trades, in which the Industrial Revolution began, the main feature of the period—apart from the perpetual improvement of spinning machinery, and the general adoption of steam instead of water power to drive it—was the conquest of the weaving branch of the industry by machinery. Owing to the necessity of a great variety of patterns, the power-loom had at first been applied only to the simpler stuffs, and the hand-loom weavers still held their own in all other branches. A series of inventions enabled the power-loom, during this period, to be used for the most complicated patterns. The result was that the hand-loom weavers were crushed out of existence. They put up a long struggle, and suffered acutely; but in the end they had to yield, and become, like the spinners, operatives in great factories. There was loss in this process, but there were also gains. Not only were prices reduced and output expanded, but the workers themselves, if they lost independence, gained in improved conditions of work, especially when the Factory acts were extended; moreover, it was now easier for them to combine, and their Trade Unions, now legal, were able by negotiation with the employers to obtain better conditions.

**The Metal Trades.**—In the metal trades the new methods of large-scale production were becoming increasingly dominant. In particular, the engineering trade, which made all the machines,

was growing with extraordinary rapidity, especially since the withdrawal of the prohibition to export machines in 1825. Engineering was rapidly becoming the key-industry of the modern world. And because of its demands, the iron and steel industry was also growing rapidly; and coal-mining, upon which all the rest depended, was increasing the number of its employees very quickly.

**Improving Conditions.**—In all these trades the supremacy of Britain over the rest of the world was still overwhelming. It was only in the 'forties that the Industrial Revolution began to take root in other countries—first in Belgium, then in France and Germany. Consequently the volume of available employment was growing very swiftly. It was beginning to outpace the growth of population, though that was very swift, rising from 10,000,000 (for England and Wales) in 1811 to 18,000,000 in 1851. And as employment increased, the level of wages rose. It was rising steadily (apart from occasional set-back) all through these years, in spite of the weakness of the Trade Unions, which still included only a small fraction of the working population.

**The Railways.**—But the great revolution of these years, and the chief cause of improving conditions, was the application of machinery to transport—the coming of the steamboat and the railway. The steamboat began first (in 1812), but developed the more slowly, because of the difficulty of carrying enough coal; yet by 1840 the first "liners" were plying across the Atlantic. But the development of the railways was extraordinarily swift. In 1825 a railway between Stockton and Darlington was opened, and in 1830 one between Liverpool and Manchester. During the next few years progress went on at a furious rate: engines were rapidly improved, and lines were laid in every part of the country. By 1837 the main features of railway system were already blocked out; by 1851 6,500 miles of railway track had been laid, and the railway had already become the principal means of communication. The vast labours of construction, which employed about 200,000 men, greatly diminished unemployment; the manufacture of rails, engines, and a thousand other necessities, employed many thousands more; and the wages of all these workers, spent on food and clothing stimulated all the other industries. It was the great effort of railway, construction which lifted Britain out of the bog of unemployment. And its results were a great increase of the nation's wealth, and an immense reduction in the cost of transport, and therefore of all commodities.

These were the main causes of the marked contrast between the miseries of 1821 or 1831, and the self-complacent prosperity of 1851, when the Great Exhibition was opened, and when all the turmoils of the previous period had died away.

## CHAPTER XLII

## RECONSTRUCTION IN THE EMPIRE

## 1. NEW IDEAS ON IMPERIAL POLICY

IF the British people were recasting their institutions, and making a fresh start, at home, this is even more true of the British Empire, in which the changes that took place during the years from 1830 to 1840 were so great that they may fairly be described as a revolution in the character and organisation of the Empire.

**The Radical Imperialists.**—These changes were mainly due to the ideas that were now dominant in the mother-country. But they were especially influenced by two groups of men. In the wide lands under British control which were suited for white settlement, the new policy was mainly due to a group of colonial reformers, who may be called the Radical Imperialists, and who were able to influence the policy of government. The chief inspirer of this group was Edward Gibbon Wakefield, with whom were closely associated Lord Durham (the "Radical Jack" of the Reform Bill), Sir William Molesworth, who later became a Liberal Cabinet minister, and a number of others: they founded a Colonisation Society in 1830, and were extremely active in the 'thirties and 'forties. Their main ideas were two. In the first place, they strongly believed in colonial self-government, which most Conservatives were inclined to resist as tending towards the disruption of the Empire. In the second place, they advocated "systematic colonisation," as a means both of peopling empty lands and of relieving distress at home; and they worked out a scheme for forwarding it by using the money derived from the sale of colonial lands to defray the cost of assisted emigration by carefully selected emigrants. The peopling of Australia and New Zealand, and the growth of self-governing institutions in the "white" colonies were largely due to their influence.

**The Missionaries.**—The second influential group consisted of the friends of missionary and philanthropic work. They had a dominant influence at the Colonial Office, where both the Colonial Secretary, Lord Glenelg, and the Permanent Under-Secretary, Sir James Stephen, were convinced adherents of this school. Their chief concern was for the protection of backward peoples. For that reason they were opposed to the extension of self-government in those countries where the backward peoples were very numerous, because this would involve the ascendancy of their white masters. They were mainly responsible for the adoption of the view that it should be the primary duty of the Home Government to protect the native races. Their influence was to be seen in the emancipation of the slaves, in the India Act of 1833, and in the policy adopted by the British Government in South Africa.

Between them, these two bodies of opinion exercised a profound influence upon imperial policy, and transformed in a very short time the character of the British Empire.

## 2. CANADA : THE DURHAM REPORT

**Friction in Canada.**—The most remarkable development of this period was in Canada, the senior group of British colonies, and the most populous.\* The system established by Pitt's Canada Act of 1791 was not working well. There was sharp friction between the French and the English settlers in Quebec, and racial feeling had reached a high pitch of bitterness. But there was also dangerous friction in all the colonies, British as well as French, between the Governors with their nominated Councils who controlled the executive Government, and the representative assemblies which controlled legislation and taxation. This state of friction was gravely impeding the development of Canada. As in the American colonies before the American Revolution, it was making efficient government very difficult: the assemblies were refusing the money needed by the administration, because they had no control over it; and a second colonial revolt seemed probable.

**The Rebellion of 1837.**—Indeed, it actually broke out in 1837. There was a revolt of the French Canadians, under Louis Papineau; another revolt of the discontented English settlers in Ontario, who at one moment brought in help from the United States; and though there was no actual rising, the position was almost equally strained in the maritime colonies, especially Nova Scotia. The old British colonial system, of a nominated executive and an elected assembly, was in fact breaking down.

**The Durham Report.**—The revolts were crushed without difficulty, but the situation was so serious that Melbourne government decided to send out Lord Durham to report on it (1838). Durham took out with him his friends of the Colonisation Society, Wakefield and Charles Buller. Durham acted high-handedly in banishing the leaders of the late revolt to the Bermuda Islands, and for this he was recalled in disgrace. But after his recall he presented a Report on Canada (1839) which was in itself an act of the highest statesmanship. It placed the problems of colonial government in a new light, and laid down the principles which were henceforward to govern British colonial policy in all the "white men's" colonies. It made a very searching examination of the situation in Canada, and urged that the only solution lay in making the colonists, French and English alike, feel that they were responsible for the destiny of their country by giving them full responsibility for its government. Durham was bitterly criticised at the time on the ground that his policy involved colonial independence and the dismemberment of the Empire. But he was an enthusiastic believer in the Empire; he believed that it was only in freedom that it could hold together; and subsequent history has shown that he was right.

**The Canada Act.**—The result of Durham's report was the Canada Act, passed by the Melbourne government in its last year of precarious office (1840), which united Upper and Lower Canada in a single colony, and endowed it with a two-chamber legislature. But the decisive step of making the executive responsible to the

---

\* School Atlas, Plate 51.

legislature was not yet taken. The Duke of Wellington, whose party came into power in the next year, declared that "local responsible government and the sovereignty of Great Britain are completely incompatible"; and it was not until another Liberal Government returned to power in 1846 that full responsible government was established. Nevertheless, the principle had been definitely laid down in Durham's great Report, which is one of the classics of colonial government.

### 3. AUSTRALIA AND NEW ZEALAND: SYSTEMATIC COLONISATION

**Systematic Colonisation.**—In two ways the decade 1830-1840 marked a fresh start in the development of Australia. In the first place a great part of the interior was revealed by the journeys of a number of intrepid explorers.\* In the second place systematic colonisation began on a large scale, largely on the Wakefield system. The number of free immigrants, which had been usually less than 1,000 a year in the 'twenties, rose to 14,000 in 1838 and 32,000 in 1841. This could not have happened—in view of the length and cost of the journey—unless there had been a scheme of assisted emigration. In 1831 the Colonial Office adopted Wakefield's plan and ordered that land should be sold instead of being given away, and that the money should be used to bring out emigrants and settle them. Under this system *Victoria*, to which convicts were never admitted, received a large inrush of immigrants: it was organised as a separate colony in 1835. *South Australia*, which also received no convicts, was started as a colony in 1836, on Wakefield's plan; and although it was badly managed at first, a great administrator, Sir George Grey,† who was sent out in 1841, soon pulled it round.

**Transportation Abolished.**—The contrast between the growing prosperity of these new free colonies and the relative stagnation of the older convict settlements of New South Wales and Tasmania made it clear that the presence of the convicts was an obstacle to progress. Accordingly, in 1837, a parliamentary committee under Sir William Molesworth (another of the colonial reformers) recommended that transportation should be abolished. It was abolished in New South Wales in 1840, with the result of an immediate increase of the better type of immigrants. Thus Australia, after a very unpromising beginning, had made a fair start on the way to prosperity.

**New Zealand.**—Meanwhile, a beginning had been made with the colonisation of New Zealand.‡ Since Captain Cook's discovery of the islands in 1769, they had been left to themselves. But a drift of traders, escaped convicts and runaway sailors had found their way to the North Island, where they lived among the Maoris. Then,

---

\* For the exploration of Australia, see School Atlas Plate 55b.

† Sir George Grey played a very important part not only in Australia but in New Zealand and South Africa. There is a good Life of him by G.C. Henderson.

‡ See School Atlas, Plate 55c.

from 1814 onwards, the ever-active missionaries had planted stations in New Zealand, and had won great influence among the Maoris. Their view was that the Maoris should be left to themselves, under missionary influence. But it was unreasonable that these fertile and beautiful lands should be left almost empty, for there were only about 100,000 Maoris.

**First Settlement and Annexation.**—Wakefield had fixed his eye upon New Zealand, as an eminently favourable field for colonisation. In 1839 he started a New Zealand Company, to carry out his plans; and the first party of 1,300 settlers, carefully selected were promptly sent out. But they got themselves into difficulties with the missionaries and the Maoris. In order to ensure that justice was done, Captain Hobson was sent out in 1840 by the British Government to annex the islands and to act as lieutenant-governor. He promptly concluded a treaty with the Maori chiefs, whereby, in return for the recognition of British sovereignty, they were guaranteed full possession of their lands. Thus began the history of the youngest of this British dominions. Here the two influences in colonial policy—the systematic colonisers and the missionaries—met, and to some extent clashed; and from this troubles were to arise in the next period.

#### 4. SOUTH AFRICA: THE GREAT TREK

**Boers and Britons.**—In the history of South Africa the decade 1830—1840 was a period of momentous importance; it saw the beginning of that unhappy clash between Boer and Briton which was to embitter its history for three-quarters of a century. The main cause was a difference of view as to how the natives should be treated. The Boers had always employed the natives as slaves, and still held the same ideas on that head which every Englishman had held in the seventeenth century. The English came to this new land full of the new ideas of humanitarianism, bringing with them missionaries whose work lay among the natives, and who took up the cause of their flocks with a sometimes excessive zeal.

**The Kaffir Wars.**—Not only had the Boers always employed natives as slaves, but those of them who had gone farthest afield lived in dread of the warlike and aggressive Kaffirs, the advance-guard of the formidable Bantu race, who had long been pressing southwards from Central Africa. There had already been four Kaffir wars before the British occupation of South Africa,\* and there were two dangerous Kaffir raids in 1812 and 1819. The Boers, therefore, were in no mood for sentimentalism about the natives. On the other hand, the missionaries sent home exaggerated pictures of the way in which the natives were treated by the Boers.

**Growing Friction.**—Trouble on this question had begun as early as 1815, when a farmer at Schlachter's Nek refused to attend a court on a summons obtained by a Hottentot, and there was a little

---

\* See School Atlas, 56b



rising in his support. But two events of 1834 strained the relations between the Boers and the British Governments to the breaking-point. The first was the emancipation of the slaves, and the fact that the compensation paid in South Africa was less than half of the estimated value of the slaves. The second was a very serious Kaffir raid, which inflicted a vast amount of damage. The able governor, D'Urban, beat back the raiders, and annexed part of their territory (1835); but he was overridden and recalled by the Colonial Secretary, who attributed the invasion to the "systematic injustice" from which he believed that the Kaffirs suffered. This ended the patience of the Boers; and the more enterprising among them resolved to go into the wilderness rather than remain subject to a Government so unsympathetic.

**The Great Trek.**—The "Great Trek," which began in 1836, and affected perhaps 16,000 of the Boer farmers, was one of the most romantic events in modern history. Crossing the Orange River in their tented wagons, the trekking moved into the north of what is now the Orange Free State. There they routed the terrible host of the Matabili king, Mosilikatze (1837), and started a little republic of their own. Some of them pressed on into the Transvaal,



Fig. 37.—South Africa and the Great Trek.

which they occupied. In 1838 a party of them came down through the Drakensberg mountains into the empty land of Natal, which had been devastated by the fierce warrior tribe of the Zulus. Here, at Weenen, some of them were massacred; whereupon they attacked

the formidable Zulu empire, broke its army at *Blood River* (1838), and enthroned a new Zulu king. In three years these farmers had carved out for themselves an empire.

**A Difficult Problem.**—This was the first result of the emancipation of the slaves, and of the adoption of the policy of protecting the rights of native races. The British Government watched these events with perplexity. Could the Boers safely be left to stir up the natives in this dangerous way, and to "oppress" them? On the other hand, was it wise or just to force them back under an authority which they repudiated? These were questions for the future.

In its first stages, the new colonial policy was thus raising difficulties as well as solving them. But whether in Canada, Australia, New Zealand or South Africa, it is clear that the years which followed the Reform Act in Britain were a period of new beginnings.

## 5. REORGANISATION IN INDIA

**An Era of Peace and Reform.**—From the end of the First Burmese War in 1826 to the outbreak of the First Afghan War in 1841 there was an interval of unbroken peace in India and on its borders—probably the longest period of unbroken peace that India had ever enjoyed. The India Act of 1833 (p. 443) came in the middle of it. The first Governor-General under the Act\* was Lord William Cavendish-Bentinck, who had already held office since 1828. His reign is pre-eminently known as a period of reform, and much of this reform was due to the requirements of the Act.

**The Indian Code.**—Hitherto the three Presidencies of Calcutta, Bombay, and Madras had, under the general supervision of the Governor-General, maintained their own systems of law. The Act laid it down that a single uniform code of law for all British India should be drawn up, "due regard being had to the peculiar usages of the people"; and a Legal Member of the Governor-General's Council was appointed for this purpose. The first Legal Member was Macaulay, † the historian, and to him fell the immense work of supervising the preparation of the code.

**Macaulay's Minute**—Macaulay also played the leading part in another change of even greater importance. Since 1813 the Government had devoted funds to the encouragement of education; but these had been mainly given to the Oriental schools of learning, whose teaching was conducted in the ancient classical tongues, Sanskrit and Arabic. More recently, however, several schools of Western learning had been opened, by the missionaries and others, and many held that the Government funds should be devoted to them. A long controversy had raged on the subject, Macaulay, as Chair-

---

\* He was indeed the first Governor-General of India; for until the title was altered by this Act, it had been "Governor-General of Fort William in Bengal." There is a short *Life of Bentinck* in the *Rulers of India Series*.

† Sir George Trevelyan's *Life of Macaulay* is one of the best biographies in the language.

man of the Committee on Education, drew up a famous Minute, which fixed the future policy of government, and in which he urged that the great need of India was the extension of Western knowledge, and that teaching should be given in English rather than in Sanskrit and Arabic : teaching in the spoken languages being impossible, partly because there were 147 of them, partly because they were not sufficiently developed to express the ideas of Western science.

**Western Education.**—The development of Western education was further encouraged by the freedom of entry to India which the Act gave to Europeans : they had hitherto been kept out lest they should disturb or exploit the Indians. Now many missionaries came in. They devoted themselves largely to teaching, founding schools and colleges ; and their work was supplemented by the establishment of a number of Government schools and colleges. All this involved a change of momentous importance. Hitherto the British power had been content to give peace and order to India, and had scrupulously avoided any attempt to modify her ancient ways of life. Now the influence of Western ideas was being introduced and fostered. This has done more than anything else to determine the modern development of India, whose educated classes have been trained in English and impregnated with Western ideas.

**Social Reforms.**—Bentmck also attacked certain Indian usages, repugnant to Western ideas, with which previous governors had never dared to meddle for fear of outraging Indian susceptibilities. The most important of these was the practice of *Sati* or *Suttee*—the burning of widows on the funeral pyres of their husbands. *Sati* was made illegal. A systematic campaign was also organised against the *Thugs*, who practised organised murder and robbery on the pretext of making sacrifice to the Goddess of Destruction. Again, Bentmck took over the government of two Indian States, Coorg and Mysore, on the ground that they were being misgoverned, a step for which there was no precedent ; and the supervision over native States was made much closer. The British Government was assuming responsibility for the maintenance not only of peace but of good government throughout India.

In short, in India, as in the colonies, a new outlook and new conceptions of government came into being in these years. They were a direct result of the change that was taking place in Britain.

At the end of the period (1839) the government of India was involved in an unfortunate adventure in Afghanistan. But as this did not mature until later, and as it was the beginning of a new period of conquest, it had best be left until a later chapter (p. 469).

## CHAPTER XLIII

## THE SECOND STAGE OF RECONSTRUCTION (1841—1852)

## 1. SIR ROBERT PEEL AND FREE TRADE (1841—1846)

**Sir Robert Peel.**—In 1841 Sir Robert Peel\* came to power with a solid Conservative majority. Peel was in some respects the most typical statesman of the early nineteenth century, for his career reflected the change that was passing over the country. The son of a Lancashire cotton manufacturer, he had been educated at Harrow and Oxford. He thus linked, in his own person, the old tradition with the new. All his manhood had been spent in politics, and most of it in office. In many spheres he had shown himself a man of great practical capacity, and he had no rival as a parliamentarian. He was not a theorist, and he never looked far ahead; but he was honest, upright, loyal to facts, and not ashamed to change his mind. His action on Catholic Emancipation, which had shattered the old Tory party, had shown both his weakness and his strength—he had failed to foresee the inevitable, but he had frankly accepted it when it came. In the same way, he had opposed parliamentary reform as long as possible; but when it was carried he had seen that it must be followed by other changes. He was never in advance of public opinion; but he could learn from events. He had educated his party out of Toryism and into Conservatism, and made it take a share in the work of reform. Soon he was to shatter it once more, as a result of the last and greatest of his conversions. He came into office as an avowed Protectionist, and he established Free Trade.

**Peel as Prime Minister.**—Peel's practical capacity was shown in the skill with which he managed his Cabinet. It has been said that under him the cabinet system reached its perfection. His Cabinet was a team, whose captain was fully in touch with the work of every department, whereas most Prime Ministers have been predominantly interested in one aspect of public affairs. He was a great administrator rather than a great reformer. Most of his measures dealt with practical and immediate issues raised by public agitations which forced the Government to take action. He came to power at a moment when great agitations were afoot, and they determined the lines of his policy.

**O'Connell and Repeal.**—In Ireland trouble was clearly brewing. The younger generation, tired of O'Connell's strictly constitutional policy, which had produced so little result, were preparing for more drastic action. They called themselves Young Ireland, and were in touch with the revolutionary movements on the Continent which were to bring about an epidemic of revolution in 1848. O'Connell, eager to regain his leadership, had started a vigorous agitation for the repeal of the Union. In 1840 he had

---

\* There is a short Life of Peel by J. R. Thursfield (*Twelve English Statesmen*), and an essay by Sir Richard Lodge in Hearnshaw's *Prime Ministers of the Nineteenth Century*.

founded a Repeal Association, and was raising from the peasantry a "repeal rent" like the earlier "Catholic rent" (p. 433). He was addressing great meetings, and promised that 1843 should be the "year of repeal." When 1843 came, a gigantic meeting was to be held at Clontarf. Peel prohibited the meeting, and sent troops to prevent it. Always eager to avoid violence, O'Connell declared the meeting cancelled. In spite of this, he was tried and sentenced for sedition. The House of Lords quashed the sentence. But this failure killed O'Connell's influence. "Young Ireland" resolved henceforward to abandon the constitutional methods to which O'Connell had clung.

**Irish Reforms.**—Peel's Irish policy was not, however, merely one of repression. He appointed a Commission (the Devon Commission) to inquire into the causes of Irish unrest. Its report for the first time pointed to the evils of the land system as the principal cause; but when Peel made a very modest attempt to carry out some of its recommendations, his proposals were rejected by the House of Lords. He tried to placate the Catholic priests by making a grant to the Catholic seminary of Maynooth. And, as the only Irish University was confined to Anglicans, he found public money to start modest colleges at Belfast, Cork and Galway. These were the first exchequer grants for university education. But they did little good in Ireland, because few Irish Catholics were willing to go to what were called "godless colleges." In any case these measures did nothing to remedy the worst evils of Ireland—the rack-renting of the land, and the grinding penury of the peasantry. These were cruelly shown when, in 1845 and 1846, the potato crop failed. A terrible famine followed. Thousands died of starvation. The result of the famine, and of the wholesale emigration which was its sequel, was that the population of Ireland fell from 8,300,000 in 1845 to 6,600,000 in 1851. This was a grim comment on the failure to find any remedy for the economic distress of Ireland.

**The Chartists Again.**—Meanwhile, in England the agitation for the People's Charter had recommenced. After the failure of 1839 (p. 449) a National Charter Association had been founded. The old enthusiasm was reawakened, and in 1842 a second petition, with over 3,000,000 signatures, was presented to Parliament. Again it was rejected. Thereupon a general strike was called, and there was some talk of rebellion. But there was little response to the strike call, and no rebellion. Unlike the Melbourne government in 1839, Peel took strong measures of repression: some 1,500 arrests were made, 500 men were sent to prison, and 79 were transported. These sentences were probably unnecessary.

**Cobden and the Anti-Corn Law League.**—Far more important and far more successful than the Chartist movement was an agitation for the repeal of the Corn Laws, which had been started at Manchester in 1839. The Anti-Corn Law League was supported by large funds, subscribed mainly by the manufacturers of Lancashire and Yorkshire; and it carried on, for eight years, by meetings and pamphlets, the most systematic campaign that had yet been seen in

Britain or any other country. Its leaders were two very remarkable men : Richard Cobden, a Manchester cotton printer, who has never been surpassed in the power of cogent argument ; and John Bright a Rochdale manufacturer, who was to prove himself the noblest English orator of the century. Although their attack was primarily directed against the Corn Laws, they denounced all protective duties, and demanded the establishment of complete freedom of trade as the surest means of curing economic ills. They argued that if taxes on imports were withdrawn, not only would the cost of living be reduced, but the manufacturers would be able to produce their goods more cheaply, since they would get all their requirements at the lowest price. They argued that, since all imports must be paid for by exports, the exclusion of imports must be bad for export trade. If foreign corn were allowed to come in free of duty, British manufactures would have to be sent out to pay for it ; and thus the cost of living of the worker would be reduced, and the amount of work available for him would be increased, at the same time.

**Peel's Budgets.**—The Free Trade agitation produced so great an effect that it alarmed the landowning class. They looked to Peel to protect their interests. Peel was indeed pledged to maintain the Corn Laws. But he saw that they were working badly. Various modifications had been tried, notably a sliding-scale of duties, introduced in 1828 ; but they had all had unexpected and unfortunate results. Peel tried a reduced scale of duties, but this satisfied neither the landlords nor the Free Traders. On the general free-trade case, however, Peel was gradually converted by the Manchester apostles. In the Budget of 1842, although he was faced by a deficit, he boldly abolished the duties on about four hundred articles, and greatly reduced them on as many more, imposing an income tax to make up the deficiency. Three years' experience showed that the lower duties actually gave a better yield, because lower prices led to bigger sales. In the Budget of 1845, therefore, he made still larger reductions.

**Disraeli and "Young England."**—Peel's progress towards free trade aroused many misgivings among his followers. There was a group of romantic young Tories who called themselves "Young England," and drew their inspiration from a brilliant Jew, Benjamin Disraeli. They were alive to the miseries of industrial England, which their leader vividly portrayed in his novel *Sybil* ; they believed that these miseries were due to the hard materialism of the manufacturers, whom they despised ; and they dreamed of restoring the leadership of the aristocracy by taking up the cause of the suffering factory workers, and stimulating the nationalist spirit of England. To them the doctrine of free trade seemed to be conceived solely in the interests of the manufacturers. They thought it a bagman's creed. They feared that Peel was about to betray them by going over to the manufacturers.

**Repeal of the Corn Laws.**—Soon their fears were justified. The failure of the Irish potato crop in 1845 completed Peel's conversion. It seemed monstrous to tax foreign corn when thousands were on the verge of starvation. Peel told his Cabinet that the Corn

Laws would have to go, and that if they went they would never be restored. This broke up the Cabinet, and split the Conservative party. Peel resigned. But as Lord John Russell could not form a government, he had to resume office (January 1846) with a reconstituted Cabinet. He carried the repeal of the Corn Laws with Liberal support, against the angry denunciations of his followers, led by Lord George Bentinck and Benjamin Disraeli.

**Fall of Peel.**—A month later he was turned out of office by the votes of his angry followers, and the Conservative party, so recently reconstituted, was shattered once more. The establishment of Free Trade completed the series of great changes which had been made since 1830. It led to a very rapid increase of British trade, and to a decrease of unemployment and distress; because British manufacturing supremacy was so overwhelming that the removal of trade barriers was bound to increase it. Hence the adoption of the new fiscal system, combined with the social reforms already carried out, brought to an end the thirty years of acute distress and readiness for revolution which had followed Waterloo.

**Bank Act and Railways Act.**—This was, beyond question, the most important achievement of Peel's ministry. But it did not stand alone. In 1844 Peel had carried a *Bank Act*, which defined the principles of British banking, and by so doing contributed to the country's prosperity. In the same year a *Railways Act* defined the relations of the State to the great railway monopolies. The responsibility for this Act fell to Peel's favourite disciple, William Ewart Gladstone,\* a young man of immense earnestness and ability, who had been engrossed in religious questions until Peel, guessing at his capacity to handle economic problems, sent him to the Board of Trade. Gladstone was anxious to bring the railways under direct State control. Peel was not willing to go so far; but the Act which he accepted imposed upon the railways a very high degree of State regulation, and assumed for the State the power of fixing their rates and fares.

**Mines and Factories.**—Meanwhile, the great philanthropist, Lord Ashley (Shaftesbury), had stimulated still further interferences with the business-man's control over his own business. In 1840 Ashley had obtained the appointment of commission of inquiry into the conditions of work in the mines. Their report, published in 1842, revealed a hideous condition of things, which awakened the public conscience. Women and children were working underground, like beasts of burden, for thirteen or fourteen hours a day, often half naked. The *Mines Act* of 1842 forbade the employment underground of women or of boys under ten years old. In 1844 a new *Factory Act*, introduced by the Government, forbade the employment of children under nine in factories, limited the hours of older children, and required employers to take precautions against

---

\* There is an abridgment, by G. F. G. Masterman, of Morley's great *Life of Gladstone*; and there is an essay on Gladstone by Ramsay Muir in *Hearnshaw's Prime Ministers of the 19th Century*.

accidents. This did not satisfy Ashley and the reformers. Supported by the Young England Tories and by many Liberals, he almost defeated the Government, though it was backed by Liberals of the Manchester school. On the question of State interference with the conditions of labour, both of the great political parties were deeply divided. But experience showed that the enforcement of decent conditions was not bad for trade, and did not lead to a reduction of wages, as critics had feared; it rather led to greater efficiency.

**American Boundary Question.**—In external affairs two questions of importance arose during Peel's tenure of power. One was the beginning of a new period of war and conquest in India, which will be discussed later (p. 468). The other was the settlement of two longstanding boundary disputes with the United States. The boundary of *Maine* had been disputed ever since 1783. In 1831 the United States had agreed to submit the question to arbitration but had refused to accept the award. In 1842 this vexed question, was settled by the Ashburton Treaty,\* though Canada was anything but satisfied with the decision. Again, there had long been a dispute as to the boundary between Canada and the United States in the far west. In 1818 it had been agreed that the boundary should follow the forty-ninth parallel of latitude from the great Lakes to the Rocky Mountains. Beyond the Rocky Mountains, in the region which now includes British Columbia and the States of Washington and Oregon, there were both British and American settlers. The United States claimed the whole Pacific coast; the British Government claimed that the River Columbia should be the boundary. Feeling ran high on this subject, and in 1840 the Americans were threatening war unless their claims were conceded in full. A rational settlement was reached in the Oregon Treaty of 1846, which took the forty-ninth parallel as the boundary as far as the Pacific Ocean.† Thus was fixed a boundary line 3,000 miles long—the only frontier in the world which is not guarded on either side by troops or by forts. Much of the credit for these peaceful adjustments belonged to Peel's cool and moderate Foreign Secretary, Lord Aberdeen, who prided himself upon avoiding the irritating and dictatorial methods of his predecessor Palmerston.

## 2. THE RUSSELL GOVERNMENT (1846—1852)

**Russell's Government.**—Peel's Government was succeeded by a Liberal Government under Lord John Russell, which lasted for six years. But the Liberals had not a majority. They depended upon the support of Peel's followers, between whom and the protectionist section of the Conservative party there was now a bitter cleavage. For that reason Russell was not able to undertake much controversial legislation; and the chief interest of his Government lay in the realms of colonial and foreign policy. In domestic affairs its main achievements were the repeal of the Navigation Acts (1849),

\* See the larger Atlas, Plate 69e.

† See School Atlas, Plate 51.



which was a logical consequence of the adoption of free trade ; a further extension of the Factory and Mines Acts, notably by the adoption of a Ten-hours' Act for textile factories in 1847 ; and the beginning of systematic attention to Public Health under the terms of the Public Health Act (1848).

**Famine and Evictions in Ireland.**—Ireland, however, continued to be a great source of difficulty. The worst phase of the potato famine came in 1846, after Peel's resignation. Relief funds were raised, and other measures were taken, to save the population from starvation, but the suffering was intense, many thousands died, and many thousands more passed out of the country to crowd the poorer quarters of English cities, or to seek new homes in America. They carried with them an unquenchable bitterness against Britain. When the famine was over, new horrors followed. The wretched cottiers were unable to pay their rents. They were evicted by thousands from their tiny holdings, which in many cases they had cleared and fenced by their own toil. These evictions brought about an ugly war between landlords and tenants. Agrarian outrages were incessant. The Government had to pass a Coercion Act for the maintenance of order ; but when they tried to obtain powers to control evictions and to secure compensation to the outgoing tenant for the improvements he had made, their proposals were thrown out. Nothing was done to tackle the evils from which all these troubles flowed.

**The Rebellion of 1848.**—The consequence was that the Young Ireland party turned to violence. They cannot be blamed : no country has ever passed through worse miseries than those of Ireland from 1845 to 1848. In 1848 the revolutionary spirit was abroad in Europe. Monarchies and powers were toppling in all directions ; and the Young Ireland leaders hoped to get help from the revolutionary leaders in France. They got none. But they organised a hopeless little rebellion with their own resources. It was crushed without difficulty ; its leaders were captured and transported. Thus, while the worst distresses of Britain were being gradually healed, no remedy had yet been found, or even seriously sought, for the yet deeper distresses of Ireland, which were the outcome of three centuries of mistaken policy.

**End of the Chartist Movement**—The revolutionary spirit which was abroad in 1848 also stimulated a last attempt to reinvigorate the Chartist movement. Once more a huge petition was prepared, and arrangements were made for a monster meeting to accompany it in procession to Westminster. Government did not interfere with the meeting ; but it refused to allow the procession, and enrolled an army of special constables to guard against possible disorder. But no disorder occurred. The swollen petition was taken in three cabs to Westminster. The signatures were said to number 6,000,000. But it was discovered that a large proportion of them were frauds, and the ridicule aroused by this discovery snuffed out the guttering flame of Chartism. To the credit of the Government there were no prosecutions or imprisonments. Chartism was dead,

and needed no persecution : it had been killed by reviving trade and by social reforms.

**Revolution in Europe.**—The contrast between these ineffectual movements in Britain and Ireland and the tremendous upheavals which disturbed almost every part of Europe between 1848 and 1850 seemed to be a tribute to the work of reconstruction which had been carried out during the last eighteen years, and made Europe envious of the solidly founded liberty of Britain. The British people looked on with a sort of self-complacent sympathy at the revolutionary movements in France, Germany, Italy, and the Austrian Empire, Palmerston, once more in control at the Foreign Office, made himself detested by the governments of Europe by his restless attempts to help the Continental Liberals—especially when the tide turned against them in 1850 ; but he made himself very popular in Britain, and his popularity was the chief asset of an otherwise weak Government.

**Grey's Colonial Policy.**—The most important work of the Russell Government lay in the realm of colonial policy. Here alone it made an important contribution to the work of reconstruction ; it is not too much to say that Earl Grey, the Colonial Secretary of this Government, fixed the lines of British colonial policy. All the Dominions look back to his period of office as marking an important epoch in their development. Grey was apt to be stiff, dogmatic and unsympathetic, and he earned unpopularity by trying to force convicts upon some of the colonies. But he had clear ideas about colonial policy, and he carried them out.

**Responsible Government in Canada.**—One of his first acts was to instruct the governors of the Canadian colonies that their ministries must in future be drawn, as in Britain, from the party that had a majority in the legislature. This implied the full establishment of responsible government. The new system was put to a severe test in 1849, when the Canadian Government proposed to pay compensation to the rebels of 1837. The "Loyalists" were furious, and demanded that the Governor should veto the Bill. The Governor was Lord Elgin, a son-in-law of Lord Durham. In spite of riots he refused to interfere, on the ground that the Government must accept the responsibility for its own acts. This decision made responsible government in Canada a reality.

**Self-government in Australia**—In Australia Lord Grey strove to bring about a federation of the group of colonies ; but they were not yet ready for this step. In 1850, however, a remarkable step was taken. The four colonies of New South Wales, Tasmania, South Australia and Victoria were endowed with single-chamber legislatures, and they were empowered to draft their own constitutions, subject to the approval of the Privy Council. The constitution drawn up under this Act were in all cases modelled on that of Britain, and they were confirmed by a British Act of 1855. Thus democratic and responsible self-government was established in Australia as in Canada.

**Progress of New Zealand**—The infant settlements of New Zealand had made great progress since the annexation of the islands

in 1840. There were now six distinct settlements, three in the North Island and three in the South Island.\* They had been nurtured by Wakefield's New Zealand Company, which had organised admirably selected bands of emigrants. One of these (sent to Otago) consisted of Scottish settlers chosen by the Free Church of Scotland; another (sent to Canterbury) consisted of English settlers chosen by the Society for the Propagation of the Gospel. Under the wise guidance of Sir George Grey, who went out as Governor in 1845, difficulties with the Maoris about land had been overcome. By 1852, only twelve years after the first settlement, 30,000 settlers had been planted in New Zealand. The time had come for the New Zealand Company to wind up its work; and Lord Grey devised a federal democratic constitution for the six settlements, reserving to the Crown the control of relations with the Maoris, so as to protect them against unfair treatment.

**Expansion in South Africa.**—In South Africa the policy of the Government was more uncertain and wavering. It could not make up its mind what to do about the Boer "trekkers": it did not wish to extend its responsibilities, or to force its rule upon unwilling subjects; but, on the other hands, the Boers were causing trouble among the natives. It could not make up its mind what to do about the natives, whether to leave them alone or to bring them under control. In 1843, as the Boers in Natal were causing unrest among the Kaffirs, Sir Robert Peel's Government authorised the annexation of *Natal*, which was later to become the most English part of South Africa.† And at the same time treaties of protection were made with a series of native States on the north of Cape Colony, between the colony and the Boers. But this system of protected states did not work. In 1846, when Grey's administration began, a formidable Kaffir war broke out, while there was constant friction between the protected native States (which were badly governed) and the Boers of the Orange Free State. Grey sent out Sir Harry Smith, a vigorous veteran of the Peninsular War, to deal with the situation (1847). Smith decided that the only way to ensure peace was to bring the whole region under control. He therefore annexed British Kaffraria (between Cape Colony and Natal), extended the boundary of Cape Colony northwards to the Orange River (1847), and finally annexed the whole of the territory as far as the Vaal River, that is, the native protectorates and the Orange Free State. Some of the Boers resisted: they were beaten at *Boonplaats* (1848), and withdrew to the Transvaal. But the majority remained, quite content with British authority so long as the Government was dealing firmly (as Smith was doing) with the natives.

**Change of Policy.**—In 1850, however, a new Kaffir war broke out. It was the most formidable of the series. Grey came to the conclusion that Smith's policy did not bring peace, but involved a constant extension of territory. He was satisfied also that the

---

\* See School Atlas, Plate 55c.

† See School Atlas, Plate 56b.

Boers wanted to be independent, and that they would be most likely to settle down quietly if they were left alone. He therefore decided to reverse Smith's policy, to be content with Cape Colony and Natal, and within these limits to establish the regular system of self-government. In 1852, therefore, Smith was recalled; the independence of the Boers beyond the Vaal (Transvaal) was recognised by the Sand River Convention; and two years later, after Grey had ceased to be Colonial Secretary, his policy was completed by the recognition of the independence of the Orange Free State (Bloemfontein Convention, 1854) and by the establishment in Cape Colony of representative institutions.

The result of this government's work was, therefore, that the Canadian and Australian colonies had been endowed with responsible government, while both New Zealand and South Africa were well on the way to the same system.

**Palmerston and Don Pacifico**—The most powerful and popular member of the Russell Government was its high-spirited Foreign Secretary, Lord Palmerston. Though he was anything but a Radical, he had a genuine sympathy with Liberal movements everywhere, and under his direction the influence of Britain was everywhere used on that side. He kept foreign affairs very much in his own hands, and both the queen and the Prime Minister often complained that he made important decisions without consulting them. Sober and conservative politicians such as his predecessor, Lord Aberdeen, and earnest pacifists like Cobden, deeply distrusted his often meddlesome and high-handed treatment of foreign affairs. In 1851 a concerted attack upon him was made by the Peelites, the Conservatives and the Cobdenite Radicals, on the ground of the way in which he had treated the Greek Government in what was known as the Don Pacifico case. The Greek Government had in Palmerston's view treated unfairly certain British subjects, including Don Pacifico, a Levantine Jew, and Palmerston, demanding immediate redress had threatened a blockade of the Greek coast. Against a formidable combination of all the ablest speakers in the House of Commons, Palmerston defended himself with such courage that he carried with him the majority of the House. He had become the most popular figure in British politics. But his autocratic conduct of foreign affairs became intolerable to his colleagues. In 1850 the queen had demanded that he should not send out dispatches until they were approved, or alter them after they were approved, as he sometimes did. In 1851, when Prince Napoleon, who had been elected President of the French Republic, carried a *coup d'état* which turned him into the all but irresponsible head of the State, Palmerston expressed his approval to the French ambassador, though he had been instructed by the Cabinet to preserve strict neutrality. Upon this his resignation was demanded, and he went out of office. He soon had his revenge, defeating the Government on a militia Bill, and forcing it to resign.

**Political Confusion.**—This episode not only ended Russell's Liberal Government, it produced a state of confusion in English

politics ; for now the Liberals as well as the Conservatives were split, and nobody could form a government which could command a majority in the House of Commons. The Conservatives under Lord Derby and Disraeli tried their hand. This ministry lasted for only a few months (February—December, 1852). But it lasted long enough to make it plain that even the Protectionist Conservatives dared not now interfere with the system of Free Trade under which the country was thriving. The deadlock was at length ended by the formation of a Peelite and Liberal coalition, under Lord Aberdeen, which was ultimately to lead to fusion of the two groups.

### 3. RELIGIOUS MOVEMENTS

Nineteenth-century Britain was deeply concerned about religious questions. The evangelical movement, which had been dominant in the early part of the century, had not only influenced the life of the people, it had profoundly affected both national and imperial policy. But after 1830 a new movement began within the English Church, which challenged not only some of the fundamental ideas of the evangelicals, but also the whole relation of Church and State as it had hitherto been conceived in England.

**The Oxford Movement.**—The founders of this movement were a group of earnest and scholarly young clergymen at Oxford—J.H. Newman, R.H. Froude, E.B. Pusey, John Keble, and others. They were shocked by the way in which reformers were laying sacrilegious hands upon the Church, in the first instance, their protest was against the whole Liberal movement, and the power over the life of the Church which it claimed for Parliament. They exalted the authority and tradition of the Church as against the authority of private interpretation of the Bible, and State-imposed formularies. They refused to think of the English Church as having had its beginning in the Reformation, and claimed that it had a continuous descent from the Church of the Fathers ; in short, their attitude was very like that of the Anglo-Catholics of the seventeenth century. They expounded their views in a series of "Tracts," whence they were often called "Tractarians." In the last of these, *Tract Ninety*, Newman strove to show that there was no essential incompatibility between the doctrines of the Church of England and those of the Church of Rome ; that they were two branches of one Catholic Church with a common tradition and inspiration.

**Its Influence**—The Tractarians had a profound influence, first in Oxford where many of the ablest of the rising men, like Gladstone, imbibed their ideas ; and gradually throughout the English Church. Their influence was greatest among the clergy, especially perhaps because their teaching exalted the priestly office. In many ways it led to increased fervour and earnestness ; it led also to an added interest in the rites and ceremonies. A conflict, often bitter, raged between the new school and the old. As the movement progressed, many of its members found it impossible to reconcile their opinions with continued membership of the State-controlled Church of England. Newman; the greatest leader of the movement,

went over to Rome in 1845, and many others followed him. Another secession followed a few years later, when in 1850 the Judicial Committee of the Privy Council undertook to decide whether the opinions of a clergyman named Gorham were or were not in accordance with the tenets of the Church of England. This evidence of lay control drove Manning and others along the road which Newman had followed.

**The Roman Catholics.**—In this way, and for other reasons also, the Roman Catholic Church was steadily increasing its numbers and influence in England. In 1850 the Pope recognised this growth by appointing a series of bishops for England, with territorial titles. This aroused an outburst of the old anti-Roman sentiment, and in 1850 Lord John Russell tried to prohibit the Pope's plan by means of an Ecclesiastical Titles Act. There was a storm of controversy for a year. The Roman Church disregarded it, and the Act became a dead letter.

**The Free Church of Scotland.**—A controversy in some ways akin to that which was raised by the Oxford Tractarians also arose in Scotland. Like the Tractarians, ardent Presbyterians refused to submit to outside interference with the organisation of the Church. The General Assembly of the Scottish Church asserted the right of congregations to reject ministers appointed by lay patrons. The law-courts and the House of Lords, regarding the right of presentation as a form of property, upheld the right of the patrons. Thereupon the General Assembly repudiated the right of law-courts, or of any lay power, even Parliament itself, to meddle in spiritual matters. Rather than submit, half the clergy of Scotland left their parishes, manse and glebes. Within a year five hundred new churches had been built for them, and the Free Church of Scotland was at work in full vigour. The disruption of the Church of Scotland (1843) was a heroic act, which showed how sincere and strong was the religious life of the period.

#### 4. THE CONQUEST OF NORTH—WESTERN INDIA

The interval of peace which India had enjoyed between 1826 and 1839 was followed by a new period of war and conquest, extending almost without a break to 1856.\*

**The North-West Frontier.**—Since 1818 the frontier of the British Indian empire had followed the line of the River Indus. Beyond this line lay three unsubdued powers. The region of Sind, on the Lower Indus, was occupied by a group of Mohammedan emirs. The wide and fertile plain of the Punjab—the country of the Upper Indus and its great tributaries—was ruled by the military power of the Sikhs, a religious sect who had extended their control over the Mohammedan and Hindu population. The great organiser of the Sikh empire, Ranjit Singh, who had employed European adventurers to train his army, was one of the ablest of Indian statesmen. Until his death in 1839 he was careful to maintain friendly

---

\* See School Atlas, Plate 54.

relations with the British *raj*; but it was doubtful whether his successors would be able to hold in check the formidable force he had built up. Beyond the Sikhs lay the wild Afghan tribes in their mountains, nearly always on bad terms with their neighbours in the plains.

**The First Afghan War.**—Russia had since 1815 been steadily engaged in the conquest of Central Asia.\* In the time of Napoleon she had projected an advance upon India, and Palmerston believed that she still entertained this idea. When it was learnt that Russian agents had visited Kabul, the Afghan capital, and had been well received, these suspicions deepened. The Governor-General, Lord Auckland†—a friend of Palmerston—resolved that a friendly prince must be placed upon the throne of Afghanistan. He took up the cause of an exiled claimant, Shah Shuja, who had been excluded by a more vigorous prince, Dost Mohammed. The Sikhs and the Amirs of Sind were persuaded to give free passage for an army; and

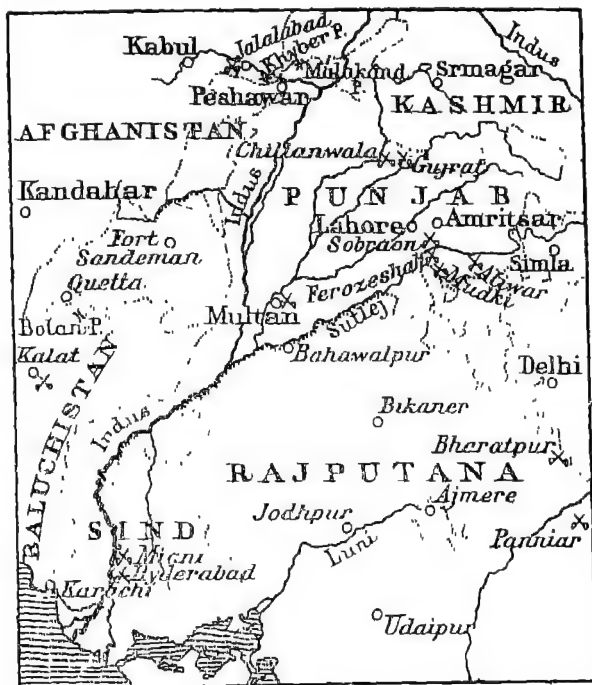


Fig. 38.—The North-West Frontier of India.

in 1839 Shah Shuja was enthroned at Kabul under the protection of a British army and a British resident. For a time the Afghans remained sullenly quiet. Then the army of occupation found that

\* See School Atlas, Plate 55a.

† There is a short Life of Auckland by L. J. Trotter (Rulers of India).

it was isolated. The Resident, trying to negotiate for a retreat, was murdered (1841). The army had to attempt to fight its way back through very difficult country in the dead of winter. Before it could reach Jalalabad, where a British garrison held the mouth of the Khyber Pass, it was annihilated: the worst disaster that had ever befallen British arms in India.

**Withdrawal.**—Half the strength of the British in India rested upon the prestige of victory. This disaster had to be redeemed. Lord Ellenborough was sent out to perform this task. Two armies marched against Kabul, the one by Kandahar, the other by the Khyber Pass (1842). Kabul was occupied, only to be evacuated as soon as the prisoners had been surrendered; and Dost Mohammed was left to himself, as he ought to have been from the beginning.

**Conquest of Sind.**—But these events broke the tradition of British invincibility, and caused unrest throughout the north-west. In 1843 the unruly levies at Sind attacked the British residency at Hyderabad. This was used as an excuse for the annexation of Sind, after the Sindis had been defeated by Sir Charles Napier at *Miani*. The annexation was unnecessary. It was in part provoked by the desire to restore British prestige, and there was a double truth in the famous punning despatch whereby Napier announced his conquest—"Peccavi" (I have Sind). The new province was added to the Presidency of Bombay.

**First Sikh War.**—More serious was the effect upon the Sikh army, which had got out of hand since Ranjit Singh's death. It began to raid the British territory beyond the Sutlej; and in December, 1845, it crossed the Sutlej in force, bent upon conquest and plunder. Sir Henry Hardinge,\* an old soldier who had succeeded Ellenborough as Governor-General (1844), was ready for them. But the Indian army, under Sir Hugh Gough, had harder fighting against the warlike Sikhs than they had yet had to face from any Indian State. Four fierce battles, at *Mudki*, at *Ferozshah*, at *Aliwal*, and finally, the fiercest of all, at *Sobraon*, had to be fought (1846) ere the Sikhs would acknowledge themselves defeated. Their lands in the Punjab were not annexed, nor was their army disbanded. For a time the Punjab became a sort of protectorate, with Sir Henry Lawrence as British representative.

## 5. DALHOUSIE IN INDIA

**Second Sikh War.**—In 1848 Lord Dalhousie,† one of Peel's young men, came out to India as Hardinge's successor. He was one of the ablest and one of the most devoted in the long line of British rulers in India, deserving to rank with Warren Hastings and Wellesley. Before he had been in the country three months (April 1848), the Sikhs were once more up in arms. The rising started at *Multan*, where two British officers were murdered, and for some

---

\* There is a short Life of Hardinge by his son (*Rulers of India*).

† There is a short Life of Dalhousie by Sir W. W. Hunter (*Rulers of India*).



months the skill and daring of a young officer, Herbert Edwardes, confined the trouble to that region. But by September the rising had spread over the whole of the Punjab. At the desperate battle of *Chillianwalla* (January 1849) the British army suffered heavier losses than in any previous Indian battle. But in the next month the Sikhs were completely defeated at *Gujerat*, which ended the war. No other Indian province had ever offered such fierce resistance.

**The Punjab Annexed.**—After this second war, annexation was inevitable. The annexation of the rich and fertile land of the Punjab brought British India to its natural frontiers, the great mountain ranges of the north-west. Dalhousie set himself to make the province a model of good government; he drained the other provinces of their best men; and under the firm and able rule of John Lawrence\* the province enjoyed so much prosperity that the Sikhs became reconciled to British supremacy. Their loyalty in the Mutiny, only eight years after their defeat, saved the situation.

**Second Burmese War.**—The Punjab was not Dalhousie's only conquest. In 1852, after many provocations, he was involved in the Second Burmese War. A brilliant campaign, planned beforehand in every detail, ended in the defeat of the Burmese, and the annexation of *Pegu* or Lower Burma—the delta of the Irrawaddy—with the great trading city of Rangoon.

**The Doctrine of "Lapse."**—Dalhousie was very able and honest man, devoured by a sense of responsibility, and of the magnitude of the task which Britain had undertaken in India. He was deeply impressed by the defects of the system of "subsidiary alliances" whereby the Company's power over the native princes had been secured, for, while these treaties guaranteed the princes' security, they left them free to misgovern their subjects. Impatient of injustice and inefficiency, he took the view that the native States ought to be brought under direct British rule as rapidly as their treaty rights permitted. In order to hasten the process, he consistently refused to allow the princes to adopt heirs when they had no sons; and laid down the doctrine that, in the absence of a natural heir, a dependent State must "lapse" to the suzerain power. Under the doctrine of lapse he annexed no less than eight States, covering an area of 150,000 square miles. The most important of these was the great Maratha State of Nagpore, which to-day forms the main part of the Central Provinces.

**Annexation of Oudh.**—Dalhousie's intolerance of misgovernment led him also, in 1854, to annex the State of Oudh, the Company's oldest ally. Unquestionably Oudh had been shockingly misgoverned. But its annexation, coming on the head of so many others, created a deep feeling of insecurity among the Indian princes, and was one of the causes of the Mutiny, which broke out the year after Dalhousie left India.

---

\* There is a short Life of John Lawrence by Sir Charles Aitchison (*Rulers of India*).

**Dalhousie's Reforming Work.**—In the service of India Dalhousie spent himself and wore himself out. Not only did he labour incessantly to improve the administration in the old provinces as well as the new, he made it his aim to introduce the benefits of Western civilisation as rapidly as possible. He planned the railway system, and saw the first line opened; he constructed the first telegraph lines; he laid down great trunk roads, and constructed great irrigation canals; he systematically explored the trade-resources of India, and developed new lines of trade; he reconstructed old ports and harbours and opened new ones. During his period of office the exports and imports of the country were doubled. But the unchanging East was made to feel that it was being hurried and hustled into new ways of life; and this also had its share in making the Mutiny possible.

**Completion of the Conquest of India.**—Substantially the structure of the Indian empire was completed by Dalhousie, just a hundred years after the battle of Plassey, and just fifty years after Wellesley's recall. For the first time in all its long history the whole of India was now united under a single rule. Within its limits war had been wholly banished, and an equal justice was administered under known and published laws. At the same time the new wine of Western civilisation was being poured into the ancient wine-skins of Indian society. The completion of the conquest ends the first stage in the history of British India. The second stage—the permeation of Indian life by the ideas and methods of the West—was just beginning. Even the beginning was causing unrest.

## CHAPTER XLIV

### THE ERA OF PALMERSTON (1852—1865)

#### 1. PROSPERITY AND QUIESCENCE

**An Era of Complacency.**—In 1851 a great exhibition, held in a crystal palace erected in Hyde Park, celebrated the triumphs of British industry, and displayed to the world its unchallenged supremacy. Not only in Britain but in Europe, the revolutionary troubles of the first half of the century were now over, and there was a general hope that the Great Exhibition would mark the establishment of settled peace. This hope was disappointed; ere long there was to begin the first of a series of European wars which kept Europe in a state of disturbance until 1880. But in all these wars (after the first) Britain had no part. Except in the outlying parts of her empire, she enjoyed, from 1858 to 1880, unbroken peace and growing prosperity. Her internal troubles seemed to have come to an end. Wages were steadily rising, while the cost of living decreased; and her working people seemed to be content. Her institutions were admired and imitated everywhere in the world. This was, therefore, a period of self-complacency, in which, for a time, reforming activity almost ceased.

**Social ills.**—Not that there were not, in Britain, many evils that needed to be amended. The industrial towns were still ugly and unhealthy places, though the new municipalities were gradually improving them ; in all of them there were revolting slums unfit for human habitation. The mass of the population was still sunk in ignorance, for the schools provided by the religious denominations could not accommodate half of the children. The hours of work were still far too long, and the conditions of labour were often cruelly hard. The great mass of working people had no prospect save a life of endless toil, and they had no protection against the distress due to sickness or unemployment save the harsh assistance of the Poor Law. But in all these respects a steady improvement was taking place—the working of the Factory Acts, the growth of collective bargaining through Trade Unions (though these were still small and weak), the steady rise in the level of wages, the steady fall in prices, all meant improvement ; and in these conditions the violent protests of the previous period died down.

**Self-help** —This generation, indeed, was ready to believe that—since the old entrenched power of privileged classes had been overthrown—the natural working of economic forces would of itself bring about justice and happiness ; and the steady rise of wages and fall of prices seemed to justify this view. It was not, men held, the business of the State to create the conditions of well-being, but only to remove the obstacles which stood in the way of each man's pursuit of his own advantage. "Self-help" was the gospel of the time ; and the working people accepted this view equally with their employers

**Co-operation.**—Various working-class organisations were being created which were inspired by this idea. In 1844 the great co-operative movement had been started by a little group of workmen in Rochdale, who opened a modest store to supply their own needs, and arranged that the profits which would otherwise have gone to shopkeepers should be distributed amongst them, partly in dividends and bonus, partly in the provision of recreation and education. This movement was spreading rapidly in the manufacturing districts, and it gave to many working folk the chance of showing their powers of organisation and of working for a common cause. Numerous friendly societies were serving a similar function, and encouraging thrift.

**National Trade Unionism.**—Most important of all, the trade union movement was taking a new start. It was abandoning the revolutionary aims by which it had largely been governed down to the collapse of the Chartist movement in 1848. Hitherto trade unions had been little local clubs. In 1851 the first great national union—the Amalgamated Society of Engineers—was created by the combination of a large number of local clubs, and other trades followed suit. These powerful bodies were able to maintain a whole-time staff of skilled negotiators, who could deal with the employers on more equal terms, they were able also, out of their large funds, to pay substantial benefits to their members when they were ill or out

of work. Not wishing to waste their funds in disputes, they ceased to consider that their main job was to fight the employers, and aimed rather at getting improved conditions by steady negotiation, and by forcing the worse employers to keep up to the level of the best. In this way the trade union movement was making steady progress; but it was mainly among the skilled workers that this new type of highly organised national unions throve; the mass of unskilled workers were still unprotected.

**The Christian Socialists : Mill . Marx.**—There were still groups of reformers who urged the need for great changes in the social order. One of these was the group who called themselves Christian Socialists—F. D Maurice, Charles, Kingsley, and others. In their view, to work for a reorganisation of society was an essential part of Christianity. Kingsley wrote, in *Yeast* and *Alton Locke*, bitter indictments of the existing order. The Christian Socialists strove to set on foot co-operative industrial enterprises, in which groups of workmen should be their own employers; and in one or two trades they had a modest degree of success. Again, Disraeli and the Young England group were still preaching the ideas that Disraeli had put forth in his novel *Sybil*, in which he had drawn a picture of the division of England into the “two nations” of the rich and the poor, and suggested that the old nobility should take the lead in an attempt to fight the ugliness of industrialism; but no very definite results followed from this. Even the economist, John Stuart Mill, was deeply unhappy about the social condition of the country, and in his *Political Economy*, published in 1848, propounded ideas which departed widely from the ruling ideas of the time. And, since 1849, there had been living obscurely in London a man whose teachings were to exercise a profound influence in the future—an exiled German Jew named Karl Marx. His theory was that under the system which he called ‘Capitalism’ the rich must become fewer and richer and the poor more numerous and poorer. The theory was contradicted by the facts. But on it he based the doctrine that there must inevitably be a war between rich and poor, and that the ‘proletariat’ or wage-earning mass must establish their supremacy by revolutionary means.

**Contentment.**—None of these teachings, however, had much influence as yet either upon public opinion or upon Parliament and its work, except in so far as they helped to create a more humane feeling, and a great willingness to extend Factory Acts and other legislation of the same kind. Upon the whole, all classes in Britain were content, and believed that things were getting steadily better, that the British system was nearly perfect, and that no further sweeping changes were needed.

**Literature**—The early Victorian period was not only a time of great material prosperity, it was a time of great intellectual distinction. A very remarkable group of great writers had arisen since 1830; in poetry, Tennyson and Browning; in prose, Carlyle and Newman and Ruskin and Macaulay and John Stuart Mill; in fiction, Dickens and Thackeray and the Brontes and Disraeli and Trollope,

were all at the height of their powers. All of these great writers had been born during the Napoleonic wars ; all had lived through the distresses of the following period and their work is deeply marked by its influence. Nearly all of them were dissatisfied with one or another aspect of their country's life ; and Dickens, who was perhaps the greatest of them, did a great deal to arouse the anger of his generation against injustices and cruelties of many kinds. But nearly all of them were satisfied that Britain was making progress, and that her amended social and political system put into the people's hands the means of improving their own condition. Thus the Mid-Victorian age was, on the whole, an era of contentment, and this was reflected in a period of political quiescence that separated the reforming activity of the 'thirties and 'forties from the later era of change which followed.

## 2. THE COALITION AND THE CRIMEAN WAR (1852—1856)

**Gladstone's Finance.**—In Lord Aberdeen's coalition ministry of Peelites and Liberals, which, took office in 1852, there were two outstanding personalities. The one was the brisk and high-spirited Lord Palmerston, who (though he now held the office of Home Secretary) was chiefly interested in pursuing a vigorous foreign policy of opposition to European despotism and especially to Russia. The other was Peel's great disciple, W. E. Gladstone, who became Chancellor of the Exchequer, and hoped for a period of peace and retrenchment, in which the beneficent effects of trade expansion might be enjoyed to the full. In the Budget of 1853 Gladstone for the first time displayed his financial genius, sweeping away many duties and making another long step towards complete freedom of trade.

**Russia and Turkey**—But the interval of peace was not to last long ; for Britain found herself drawn into a futile and unnecessary war with Russia. Russia had long wanted to extend her power over the European part of the Turkish Empire. She regarded herself as the protector of the Christian subjects of the Turk, and in that capacity had helped in the emancipation of the Greeks in 1829. She also wanted to get access to open water in the Mediterranean. At one time (1833) she had tried to establish a sort of protectorate over Turkey, but had been defeated by Palmerston's opposition (p. 446). In 1844, and again in 1853, she had urged upon British statesmen that Turkey was not only a reactionary but a decaying power, and had suggested that the best way of avoiding trouble was to arrange quietly for a partition of the Turkish Empire. These advances had been rejected. The generally accepted view in Britain (which was strongly held by Palmerston) was that Turkey must be upheld as bulwark against Russia ; and that Turkey could be made to reform her methods of government.

**Outbreak of War.**—Meanwhile, a quarrel had arisen over the right to appoint priests to take charge of the Holy Places at Jerusalem. The Tsar claimed that Greek priests should be appointed. On the other hand, Napoleon III, who had just made himself

Emperor of the French by a *coup d'état*, and was anxious to win prestige, took up the cause of the Latin priests; and the Sultan,

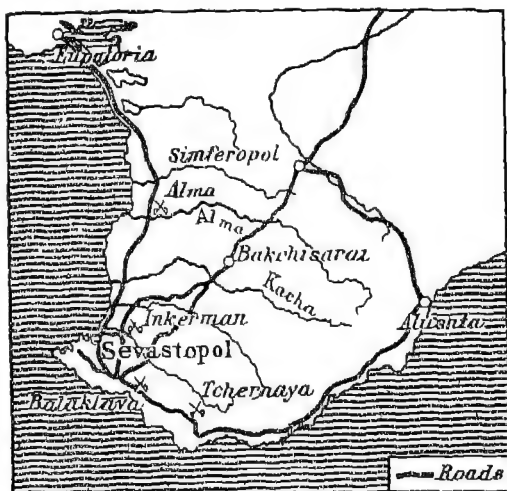


Fig. 39.—The Crimea.

anxious to win protectors against Russia, had rejected the Tsar's claim. Thereupon the Tsar put forward a claim to be recognised as the protector of all the Greek Christians in the Turkish Empire, and when the claim was rejected, sent armies to occupy "the Danubian provinces," *i.e.* Moldavia and Wallachia, the modern kingdom of Rumania. Upon this both France and Britain came to the protection of Turkey. In March 1854, war was declared against Russia, and a joint army was sent to Varna (on the Black Sea coast of Bulgaria) to aid the Turks in repelling the Russian aggression. The Tsar, who had failed to make any successful advance even against the Turks alone, withdrew his troops.

**Invasion of Crimea.**—Peace might now have been made. But the allies resolved to pursue the attack against Russia. A naval expedition was sent into the Baltic; it bombarded the fortress of Cronstadt without producing any effect. And a combined French and British force was sent to the Crimean peninsula,\* where the Tsar was building a naval base at Sevastopol. If the attack had been promptly made, Sevastopol might have been seized before its fortifications could be completed. But there were long delays before the allied army was landed on the coast of the Crimea at Eupatoria (September 1854). It defeated a Russian army which attempted to resist its advance, in the battle of the *Alma*, in which the brunt was borne by the British troops. Then, instead of making a dash for Sevastopol (which was not prepared for defence), the allies settled down to besiege the fortress. They had to repel several attacks by Russian armies which were thrown into the peninsula.

\* For the Crimean War, see the large Atlas, Plate 68a and b.

One of these was an attack on *Balaklava* (October), the British base : it was repelled after hard fighting, in which the daring but misdirected charge of the Light Brigade was the most famous episode. Another attempt to relieve the fortress was beaten back in the hard-fought "soldiers' battle" of *Inkerman* (November).

**Fall of Aberdeen.**—Then the besiegers had to settle down for the winter. The earlier events of the campaign had shown that, though British soldiers could fight as well as ever, the organisation of the army needed to be reconstructed ; and this was perhaps the most useful lesson of the war. The cruelties of the Russian winter showed that no adequate provision had been made for medical service or even for commissariat. By January 1855, more than half of the army was in hospital, under the most cruel conditions. This was the first war in which newspaper correspondents accompanied an army in the field ; and their revelations aroused such a storm of indignation at home that the Government was forced to resign. Lord Aberdeen and all the Peelites withdrew, and Lord Palmerston was called to power by the almost unanimous demand of the nation.

**Florence Nightingale.**—Palmerston undoubtedly put greater energy and vigour into the conduct of the war. But the amendment of the real evil had already been begun by Sidney Herbert, the Secretary for War, who had happily come into contact with a woman of genius, Florence Nightingale,\* to whom he gave ample powers. Miss Nightingale became famous throughout Britain as "the Lady with the Lamp" tending the wounded soldiers. But she was far from being merely a gentle ministering angel. She had a genius for organisation ; and, backed by intense public feeling, she was able to begin the reorganisation of the whole medical service of the British Army, and especially the provision of skilled nursing. Later, taking advantage of the immense popularity she had won, she took in hand the system of nursing at home. Her life, which did not end until 1910, was mainly given to this work ; to this masterful lady, more than to any other single person, we owe the development of an efficient system of nursing in hospitals and in private homes.

**End of the War.**—Another long campaign had to be fought in 1855 before the fortress of Sevastopol was captured by assault in September of that year : and a final Russian attempt to relieve the siege had to be beaten off in the battle of the *Tchernaya* (August), in which the main part was played by the French, aided by a small force of Italians who had been sent by the King of Sardinia as a means of winning the friendship of France and Britain. Meanwhile, in the Caucasus, a Russian army had been besieging the Turkish fortress of *Kars*, whose long resistance was mainly due to three British officers ; Kars was straved into surrender in November 1855.

**Results of the War.**—This was the end of the war. After so many months, and so lavish an expenditure of lives and money, one Russian town was captured and one Turkish town was lost.

---

\* There is a brilliant essay on Florence Nightingale by Lytton Strachey in *Eminent Victorians*.

Peace was concluded at Paris in 1856, when both towns were restored. The treaty decided that no naval vessels of any Power except Turkey should pass through the Bosphorus, and thus locked Russia into the Black Sea, which was declared to be neutral; it was decided also that Sevastopol should be dismantled, and that Russia should keep no warships in the Black Sea. Fourteen years later, Russia repudiated these obligations. Russia's claim to a protectorate over the Christian subjects of Turkey was also formally denied; but twenty years later they were reasserted. The Sultan promised great reforms, which he never carried out. Thus the Crimean War found no solution for the Eastern Question. The Powers seized the occasion of the Paris Conference to lay down new principles in regard to the conduct of war at sea, whereby Britain gave up a right which she had always asserted. The practice of privateering was prohibited; and it was laid down that cargoes carried by neutral vessels, other than contraband, should be immune from seizure. These provisions, which had nothing to do with the Russian quarrel, were the only lasting results of the war, upon which so many lives and so much treasure had been squandered.

### 3. THE ASCENDANCY OF PALMERSTON (1856—1865)

**Palmerston's Government.**—The Crimean War left Palmerston at the height of his prestige, as the minister of victory. His popularity was immense. When, in 1857, his high-handed dealings with China (below, p. 490) were challenged in Parliament, and he was defeated, he appealed to the country, and returned with a greatly increased majority. With one brief interval in 1858—1859, he remained at the head of the British Government until his death in 1865. The gay, high-spirited old man truly represented the temper of the British middle-class in this era of self-confident prosperity. So long as he lived, domestic questions fell into the background, and the maintenance of British prestige abroad became the chief interest of politics. It was a period of prosperity and political stagnation at home, and of stirring events abroad.

**Conspiracy to Murder**—Palmerston's foreign policy was always the object of strong criticism. The old Tories disliked his friendliness to Liberal movements abroad; the Peelites and the Manchester Radicals disliked his meddlesomeness and his readiness to involve the country in risky situations. In 1858 they found a question upon which they could unite against him. A bomb outrage against Napoleon III was known to have been planned by Italian refugees in London, who were angry because Napoleon did not aid the Italian nationalist movement. Great indignation was expressed in France against Britain for harbouring the assassins. Palmerston, anxious to maintain friendly relations with France, introduced a Conspiracy to Murder Bill which was generally regarded as being dictated by France. Palmerston's majority deserted him, and he was defeated. Lord Derby, the leader of the Conservatives, took office, with Disraeli as Chancellor of the Exchequer and Leader in the Commons.



**Derby's Ministry.**—The Conservative ministry of 1858 was almost as short-lived as its predecessor of 1852. But it lasted long enough to make it clear that the Conservatives had definitely abandoned Protection. It was responsible for the organisation of the volunteer movement as a supplement to the Army, and as an expression of the public distrust of the ambitions of Napoleon III. It fell on the defeat of an elaborate Reform Bill introduced by Disraeli, who looked to an extension of the franchise to restore the power of the Conservatives. But neither Parliament nor the country was yet ready for a further step towards democracy; two previous Whig Bills, introduced by Lord John Russell, had both been rejected, and it was evident that the country was quite satisfied with things as they were.

**Palmerston and Gladstone.**—In 1859, therefore, the Conservative ministry fell, and Palmerston again became Prime Minister. The ministry thus established lasted until 1865. It included the leading Peelites, notably Gladstone; henceforth after twelve years of precarious existence as a third party, they were incorporated in the Liberal party, to which they brought new elements of strength. Throughout these six years there was constant strain between Palmerston and Gladstone, who was becoming more Radical as he grew older. One thing alone held them together—their common sympathy for nationalist movements in Europe, and especially in Italy.

**The Paper Duties.**—But the astute old Prime Minister held his own. So long as he lived, no great issues could be raised in domestic politics. Gladstone had to content himself with the sphere of finance, in which he introduced a succession of brilliant budgets that completed the Free Trade system. One of these budgets gave rise to the only important domestic controversy of the period. In 1860 Gladstone proposed the abolition of the Paper Duties, in order to encourage the cheap Press. The House of Lords threw out his proposal. Thereupon Gladstone embodied the proposal in his Budget, which the Lords could not touch. This was attacked as an unconstitutional act; it implied a definite victory for the House of Commons over the House of Lords. But it was a very placid period in which so small a matter could be subject of acute controversy.

**Foreign Troubles.**—These placid years were, however, full of excitements abroad. They began immediately after the Crimean War, and they lasted until after Palmerston's death. First came little wars with Persia and China, then the tragedy of the Indian Mutiny; then the establishment of Italian freedom and unity; then the great Civil War in the United States; and finally the rise of Prussia to supremacy in Germany, by means of the Danish War of 1864 and the Austrian War of 1866. All these events were of immense importance to the British peoples.

**Persian War.**—Persia, at the instigation of Russia, had invaded Afghanistan at the end of the Crimean War. Although Britain had no responsibility for Afghanistan, Palmerston could not overlook this evidence of Russian designs. A British expedition was sent to the

Persian Gulf, and the Shah of Persia was forced to withdraw from Herat, which he had occupied.\*

**Second Chinese War.**—The Second war with China, which also broke out in 1857, was more serious, and marked an important change in the relations between Europe and the Far East. The Chinese authorities at Canton seized a little Chinese vessel called the *Arrow*, which had some British officers and flew the British flag. The British agent at Hong-Kong demanded the release of the crew, which was granted; but he also made other demands, which were rejected. Thereupon Canton was bombarded, and open war began. It was on this high-handed action that the House of Commons overthrew Palmerston, and the electors supported him. The war went on, and France co-operated with Britain; but there was some delay, owing to the outbreak of the Indian Mutiny, which made it necessary to divert to India the troops needed for China. In 1858 Canton was occupied and pillaged, and the Taku forts, which guarded the river-route to Peking, were destroyed. This led the Chinese Government to accept the allied demands (June 1858). A year later, when the time came for ratification, the Chinese Government refused to admit the Western envoys, and beat off their fleets from Taku. In 1860 the Taku forts were finally captured. But the Chinese were so reluctant to submit to dictation from the barbarians that they arrested and tortured the envoys sent to deal with them. Thereupon the Emperor's summer palace was looted and burnt to the ground: and the Chinese Government submitted. It was forced to pay a heavy indemnity, and to agree to receive residents at Peking, and foreign consuls at the Treaty Ports. Sordid as it was, this war had momentous consequences, because it definitely forced open the gates of China to Western influences, and compelled the Chinese Government to recognise the superior strength of the Western powers. It is therefore a landmark in the relations between the East and West.

#### 4. THE INDIAN MUTINY (1857—1858)

In May 1857 the British Empire in India was suddenly exposed to the most terrible menace in its history. At some of the most important centres in the country the Sepoy Army, by whose means the British power had in the main been established and was maintained, broke into revolt, and for several months the very existence of the Empire seemed to be threatened.

**Unrest in India** —A good deal of unrest had been caused in India by the rapidity with which innovations had recently been made, especially under Dalhousie. The displacement of a number of native dynasties had created a sense of insecurity, and some of the dethroned families were very ready to make trouble. In Oudh, more particularly, which had only been annexed in 1856, there was a great deal of unrest, and the *talukdars* or native landholders were convinced that they had been unjustly treated. There was a widespread

---

\* For Asia, see School Atlas, Plate 55a.

suspicion that the British Government meant to attack the time-honoured religious and social usages of India ; and secret influences were at work fomenting these fears. But all this would have meant nothing if it had not predisposed the sepoys to revolt : when the revolt came, it was not a popular rising anywhere except in Oudh ; it was almost exclusively a military rebellion. Even so, it did not affect the greater part the country. The Presidencies of Madras and Bombay were practically undisturbed ; in Bengal proper there was only momentary trouble, which was quickly suppressed ; and even the recently conquered province of the Punjab remained loyal, and supplied many of the troops necessary for the reduction of the Mutiny. The disturbances were, in fact, limited to the Upper Ganges valley, from Delhi to Allahabad, though it later spread to the native States of Central India.\*

**Sepoy Grievances**—The sepoy had grievances of their own, upon which the fomenters of discontent could work. Their area of service had been extended as the Empire grew. It was a grievance that they had had to cross the "black water" to fight in Burma. Their pay and allowances were felt to be inadequate. They knew that they had mainly won the Empire. They saw that they outnumbered the British forces in India by eight to one. The British prestige of invincibility had been impaired by the Afghan disaster of 1842, and by the Crimean War. On the head of all this came the introduction of a new rifle, whose greased cartridges had to be bitten. Rumour asserted that the grease was made from the fat of swine and cows ; and the Mohammedan is defiled by touching swine's flesh, while the cow is sacred to the Hindu. This seemed to bear out the view that the British had a malignant design to destroy the faith of their subjects. The British officers were so convinced of the loyalty of their men that they paid little attention to the evidences of this unrest, and no precautions were taken.

**Seizure of Delhi.**—On May 10th, 1857, three native regiments at the military station of Meerut murdered their officers and marched to Delhi, where they were joined by the garrison.† A handful of British soldiers blew up the powder-magazine, and died in its ruins ; a telegraph operator had time, before he was killed, to flash the news along the new wires to the Punjab ; and these two heroic deeds perhaps saved the situation. But the mutineers controlled Delhi, the historic capital of India. They dragged out the old Mogul, who still lived in the faded splendour of Shah Jehan's palace, and proclaimed him Emperor.

**The Revolt Spreads : Cawnpore**—Then there was a pause of three weeks, during which John Lawrence, in the Punjab, disarmed the sepoy regiments, assured himself of the loyalty of the Sikhs, and made ready to attack the mutineers at Delhi. In June, however, the revolt spread over the greater part of the Ganges valley. Many

---

\* For the area of the Indian Mutiny, see the larger Atlas, Introduction, p. 57, fig. 41.

† Two good novels dealing with the Indian Mutiny are Mrs. F.A. Steel's *On the Face of the Waters*, and R.E. Forrest's *Eight Days*.

isolated British officers were slaughtered with their families, others were saved by the loyalty of their Indian servants. At Cawnpore\*

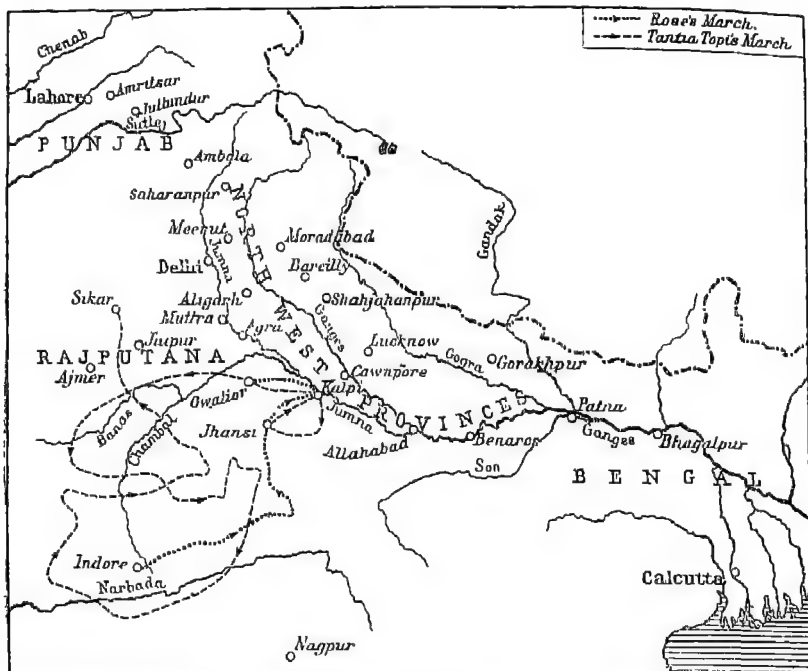


Fig. 40.—The Area of the Indian Mutiny.

a small British force, with many women and children, endeavoured to defend themselves against tremendous odds. They accepted with gratitude the offer of a safe retreat given to them by the Nana Sahib, whom many of them had known as a friend ; but they left their entrenchments only to be mercilessly slaughtered (June 27th). The women and children were imprisoned ; a fortnight later they were massacred in cold blood, and their bodies were thrust down a well. Meanwhile, the mutiny had spread to the great city of Lucknow, the capital of Oudh ; where less than 2,000 men—one-third of them loyal sepoys—and over 1,000, non-combatants were besieged by swarming crowds of enemies within the houses and gardens of the Residency.

**The Recapture of Delhi.**—Delhi and Lucknow were the main centres of the mutiny ; but all the country between them had passed out of control, and the two main centres had to be attacked from opposite directions—Delhi from the Punjab, Lucknow from Bengal. Fortunately the mutineers, being without leadership, made no attempt to use their overwhelming superiority of numbers, but waited to be attacked. All through June and July a small army of 4,000 men, British and Sikh, hung on to the Ridge, a line of rocky heights just outside Delhi : they were rather besieged than besieging.

\* Read Sir George Trevelyan's *Cawnpore*.

In August reinforcements came from the Punjab under the hero John Nicholson.\* On September 14th the Kashmir Gate of the city was blown in, and the small attacking force stormed through the gap. Nicholson was killed at their head ; but after six days of street fighting, Delhi was captured.

**The Relief of Lucknow.**—Meanwhile, at the other end of the line, still fiercer fighting was going on Havelock,† starting from Allahabad with 2,000 men, marched under the blazing sun of an Indian July against Cawnpore. After fighting four pitched battles, he reached that city of horror the day after the women and children had been massacred : his men took vows of vengeance over the tragic well. Havelock had to be reinforced by Outram before he could cut his way through to Lucknow, fighting three more battles on the way. He saved the garrison of the Residency (September 25th), but had himself to endure a further siege. Thus, before the arrival of the troops who were being hurried out from Britain, the back of the Mutiny had been broken.

**The End of the Mutiny.**—But there was still long and hard fighting ere peace was fully restored. Sir Colin Campbell had to reconquer Oudh and the north-west provinces in detail, and his task was not completed until the summer of 1858. Meanwhile the revolt had spread to Central India, where the army of the loyal prince Sindhia joined the mutineers, and proclaimed Nana Sahib Peshwa, or head of the Marathas. Sir Hugh Rose had to fight a long and arduous campaign before the Maratha general, Tantia Topi, was subdued. By the autumn of 1858 the Mutiny had been finally crushed.

**Clemency Canning.**—It was not unnatural that the story of the mutiny, and especially the horrors of Cawnpore, should have given rise to a fierce lust for vengeance both among the British in India and at home. The gallantry of the loyal sepoys, the steadfastness of thousands of Indians, were too readily forgotten. During the suppression of the rising there were many instances of ferocity. But happily there was no orgy of revenge when it was over. Lord Canning, the Governor-General who had borne the responsibility of Government throughout the troubles, kept his head. He earned the nickname of "Clemency Canning."‡ It was given in derision ; but the wise moderation which earned it perhaps saved the Indian Empire from later disasters.

**End of the E.I.C.**—After the Mutiny a reconstruction of the system of government in India became inevitable. By the *India Act* of 1858 (which was drafted by Palmerston's Government, but actually carried by Derby's) the East India Company was abolished, and the Indian Empire was brought under the direct control of the British Crown, acting through a new Secretary of State, with whom

\* There is a short Life of Nicholson by L. J. Trotter.

† There is a short Life of Havelock by Archibald Forbes (*English Men of Action*).

‡ There is a short Life of Canning by Sir Henry Cunningham (*Rulers of India*).

was associated a Council of India. A proclamation was also issued in the name of the queen, promising to respect the rights of native princes, to give equal protection to all religions, and to admit the subjects of the Crown, without regard to race and creed, to all offices. Although the Act and the Proclamation did not in practice make very much difference, the direct assumption by the British Crown of responsibility for the well-being of 300,000,000 Indians represented the culmination of a long process of development. It seems incredible that this should have happened only one hundred years after the skirmish of Plassey.

## 5. EUROPEAN WARS AND THE AMERICAN CIVIL WAR (1859—1865)

The Mutiny was no sooner over than great events abroad engrossed the attention of the British people, and presented difficult problems to British diplomacy.

**Unification of Italy.**—First came the unification of Italy, towards which Italian patriots, inspired by the exile Mazzini from his home in London, had so long striven in vain.\* In 1859 Napoleon III of France, in agreement with Cavour, the great minister of the king of Sardinia, declared war against Austria, and tore from her the province of Lombardy, which was added to Sardinia. In 1860 the petty duchies of Northern Italy cast out their dukes, and voted for incorporation with the kingdom; Garibaldi with his gallant Thousand landed in Sicily and was the means of bringing the Bourbon kingdom of Naples and Sicily into the new national State; while the greater part of the Papal States, north of the Apennines, were also absorbed. The first stage of this development was due to the military intervention of France. But the later stages would most probably have been resisted or impeded by the European Powers if Palmerson and Russell, with the warm support of Gladstone, had not thrown all the weight of British influence upon the side of the Italians. Thus a new nation had entered the European family, and a great breach was made in the settlement of Vienna. The unification of Italy was completed when Venetia was added after the Austro-Prussian war of 1866, and Rome during the Franco-German war of 1870.

**The American Civil War.**—Next came, in 1860—1865, the terrible civil war in the United States of America.† This so directly concerned the British peoples, and so seriously affected the relations of the two main branches of the English-speaking race, that more than a passing mention of it is necessary.

**Growth of the United States.**—Since 1815 the population of the United States had been increasing with unprecedented rapidity. Immigrants had poured in by hundreds of thousands, at first mainly from Britain, then from Ireland (especially after the famines of 1822 and 1846), and finally, after the abortive revolutions of 1848, from

---

\* For the Unification of Italy, see School Atlas, Plate 25*d*.

† For the campaigns of the American Civil War, see the larger Atlas Plate 51.

the countries of western Europe, particularly Germany. Thirteen new States were added to the Union between 1815 and 1860.\* The population was rapidly spreading across the American Continent. In 1846 a war with Mexico tore from that country a vast area stretching to the Pacific; and in 1848 the discovery of gold in a part of the conquered area—California—brought the tide of settlement to the shores of the Pacific.

**Free States and Slave States.**—As the population grew, the cleavage became more marked between the northern States, in which slavery had ceased to exist, and the southern States whose whole economic life depended upon slavery. Most of the immigrants went to the northern States: the southern States began to fear that they would be swamped, and strove to maintain the slave-system over as wide an area as that in which slavery was prohibited. This conflict was the central fact in American politics throughout the period 1815 to 1860. It was in part the cause of the Mexican War. Mexico had abolished slavery, but slavery was introduced in the States which were made out of the territory conquered from her. In 1820, by what was known as the Missouri Compromise, it was agreed that all States south of  $36^{\circ} 30'$  should be organised as slave States.† But this compromise broke down; in 1848 California, which was south of the line, refused to accept slavery. In 1850 a new compromise was made, which gave slave owners the right to claim fugitive slaves who had taken refuge in the northern States. But this only intensified the abolitionist sentiment of the north. Elaborate methods were organised to assist slaves to escape to Canada, where (because it was British territory) they automatically became free.

**Danger of Disruption.**—The question threatened to tear the Union asunder. It was impossible to make slavery illegal, as the British Parliament had done, because the Constitution reserved full power in this matter to the individual States. Yet it was clear that two groups of States could not long continue in fellowship while their whole organisation was based upon such different ideas. Abraham Lincoln,‡ an Illinois lawyer who was a candidate for the presidency in 1860, declared that "this Government cannot endure permanently half slave and half free." Yet there was no means, under the constitution, by which this cleavage could be bridged; not even Lincoln ever suggested that the constitutional rights of the States should be overridden.

**The Civil War.**—In 1860 Lincoln was elected President by a minority vote. His election so alarmed the southern States that they resolved to secede from the Union, which they claimed the right to do. The North denied the right of any State to secede, and on this issue, not on the direct issue of slavery, civil war broke out. The war lasted for five years, 1861 to 1865. Though the Confederates (as the Seceders called themselves) were hopelessly outnumbered as immeasurably poorer than their rivals, they held out

---

\* School Atlas, Plate 51.

† See the larger Atlas, Plate 72d.

‡ There is a good Life of Lincoln by Lord Charnwood.

with great valour under their noble leader, Lee ; and there was terrible slaughter ere their resistance was beaten down. Then, by an amendment of the Constitution forced upon the southern States, slavery was declared illegal. The war cost more than a million lives, and an outlay of money which would have sufficed to purchase the freedom of every slave in the Union many times over, if the Constitution had permitted any such solution.

**Britain and the Civil War.**—This bitter and prolonged struggle was of the first importance to Britain. In the first place, her greatest industry depended upon the supply of raw cotton from the southern States. When the North declared a blockade of the southern States, a cotton famine followed in Lancashire, which caused terrible suffering. The export of British goods also suffered seriously ; but a huge smuggling trade grew up through the West Indies. For these reasons the war put a serious strain upon the relations between Britain and the federal government. In general, British feeling was strongly on the side of the Union, because the hatred of slavery had become very deep in the British people. But the sentiment of the governing class—including Gladstone—was on the side of the Seceders ; and it was these views which were mostly transmitted to America. The Federal government—forgetting how it had fought for the rights of neutrals in the war of 1812—was very severe on neutral trade with the southern States ; British ships bound for the West Indies were seized at sea on the ground that their “ultimate destination” was a southern port ; and although this was doubtless true, it represented a great extension of interference with neutral trade. A Federal ship even seized two southern envoys on their way to Britain in a British ship, and this episode nearly led to a breach. Finally, the Confederates, finding it difficult to send out privateers from their own ports, imitated Napoleon, who had had many privateers built in America, and gave commissions for the construction of commerce-raiders to British shipyards. The British Government stopped most of these. But four of them escaped, and among these was the notorious *Alabama*, which escaped, from Liverpool just before the order for its arrest came down, and did an immense amount of damage to the commerce of the northern States.

**The *Alabama*.**—All these things put a severe strain upon the relations between Britain and the United States. When the war was over, the United States claimed compensation for all the damage done by the *Alabama*. There was no precedent for such a claim. But after long discussion, it was agreed to refer the matter to arbitration. The arbitration went against Britain (1871). Although the American claims were enormously cut down, the balance was so large that the American treasury never succeeded in spending it all.

**The Danish War.**—Before the American Civil War had come to an end, a new trouble had broken out in Europe, over the right of the Danish crown to the duchies of Schleswig and Holstein. The question is too complex to be discussed here. It concerns us only as an illustration of Palmerston’s diplomacy. Palmerston’s sympathies



were strongly on the side of the Danes, and he and his Foreign Secretary, Lord Russell, expressed them so frankly that the Danes were encouraged by the expectation of British support to resist the combined attack of Prussia and Austria. In this instance, however, Palmerston had to deal with a new Power with whom words and threats counted for little. Bismarck, the chief minister of Prussia, had designed the Danish war as a first step towards the unification of Germany under Prussian control. He believed in "blood and iron"; and nothing that Palmerston could have said or done would have influenced his plans. The Danes had to be left to suffer; \* and the prestige of Britain, which Palmerston valued so highly, suffered also.

**Death of Palmerston.**—This was the last important event in the brilliant career of the man who had played so great a part in European affairs for thirty-five years; and it was a proof that the era in which his methods were effective was coming to an end. He died in 1865, and his death was the end of an era in European as well as in British politics. In the following year, 1866, came yet another event in which his spirited and dictatorial methods would have been quite unavailing: Prussia turned upon Austria, and broke her power at Sadowa; and by doing so secured for herself the mastery of Germany.

## CHAPTER XLV

### DISRAELI AND GLADSTONE (1865—1880)

#### 1. A POLITICAL AWAKENING (1865—1868)

THE period of quiescence in British politics came to an end with the death of Palmerston. In Parliament the strife of parties revived, and the powerful and sharply contrasted personalities of Gladstone and Disraeli filled the public eye. But, besides this, difficult problems presented themselves, which would in any case have brought a new interest into public affairs.

**The Fenians in Ireland.**—The eternal Irish question demanded attention in a new form. No attempt had yet been made to grapple with the causes of Irish misery. The population of Ireland was steadily dwindling, and the condition of the peasantry was still wretched. The innumerable emigrants who had flocked to America since 1846 carried with them a bitter hatred of Britain, and some of them now began to make plans for using the wealth they had acquired in the New World to overthrow the British power over Ireland. Revolutionary conspiracies, fomented and supported from America, gave a new aspect to the Irish problem. In 1858 a body called the Fenian Brotherhood had been founded in America. When the Civil War was over (1865), many men trained to arms were available, and the plans of revolution began to be seriously undertaken. In 1866 informers put the British Government on the track

---

\* For the campaign, see the larger Atlas, Plate 72f.

of these preparations : stores of arms were discovered in Ireland ; and *Habeas Corpus* was suspended. Nevertheless, there were several little outbreaks by Irish-Americans in Ireland, and 1,200 Irish-Americans made a raid into Canada, to deal with which the Canadian volunteers had to be called out. In 1867 the Fenians resolved to "carry the war into England." They tried to seize Chester Castle. An attempt was made to blow up Clerkenwell Gaol, and twelve people lost their lives in the explosion. In Manchester a gang of Fenians, trying to release two of their comrades who had been arrested, murdered a police sergeant. Three of them were hanged. They were dubbed "the Manchester martyrs." These alarming outrages received no support from the Irish priesthood, and scarcely any from the peasantry. They were entirely due to Irish-American Fenians. But they were a danger-signal. They deeply impressed the mind of Gladstone, who was convinced that drastic measures must be taken to remove the evils which produced such terrible fruits. The Irish question dominated him for the rest of his life.

**Trade Union Problems** —In the same years Trade Unionism in England was coming to a crisis of its history. The great national trade unions had been growing steadily in strength, and had done much, by rational negotiation, to improve the condition of their members. But the great majority of trade unions were still little local organisations, which lacked the competent guidance of the big national bodies. In some cases they exercised a cruel tyranny over non-unionists. In 1867 it was proved that for some years a positive reign of terror had existed among the cutlery-workers of Sheffield, where workmen's tools were stolen, houses were blown up, and deliberate murders were committed. Some sections of public opinion were inclined to regard these revelations as a condemnation of the whole system of trade unionism. But they concerned only a few of the unions ; they were largely due to the character of secret conspiracy which the law had imposed upon the trade union movement, and they were condemned by nobody more vehemently than by the well-organised unions which knew that their usefulness was impaired by such actions. At the same time the position of the trade unions was endangered in other ways. During a tailor's strike in London a number of trade unionists were found guilty of criminal conspiracy for trying to persuade men not to work for the employers, and the judge laid it down that any trade union, being in restraint of trade, was a criminal conspiracy. Again, when a trade union official embezzled the funds of his union, the courts found that no action would lie against him, because the union itself existed for an illegal purpose. If this view of the law held good, the trade union movement would be reduced to impotence, and the repeal of the Combination Acts in 1824 and 1825 might as well never have been carried. The law would have to be altered. This conviction led trade unionists to take a new interest in the question of parliamentary reform, to which they had hitherto been indifferent. It accounts for the sudden rise of enthusiasm for this question : hitherto every attempt of Russell, Bright and Disraeli to deal with it had been balked by public indifference.

**A Liberal Reform Bill.**—After Palmerston's death the Liberal ministry was reconstituted under Russell (now Earl Russell) with Gladstone as leader in the House of Commons. They promptly introduced a new Reform Bill. It was a modest measure. But the Palmerstonian temper was still so strong that its introduction aroused keen opposition among some of the more conservative Liberals, led by Robert Lowe, a brilliant speaker who had seen democracy at work in Australia, and did not like it: John Bright called these malcontents "the Cave of Adullam." The debate aroused intense public interest, such as had not been seen since the collapse of Chartism: there were processions and mass meetings, and when the authorities tried to prevent a meeting in Hyde Park, fifty yards of railings were pushed down by a good-humoured crowd.

**Disraeli's Reform Act.**—Supported by the "Cave of Adullam," the conservatives voted down the Government, which resigned. For the third time Lord Derby and Disraeli formed a Conservative ministry (1866). It lasted for eighteen months. Its chief work was the passage of the *Reform Act* of 1867. Having defeated the Liberal ministry on the question of parliamentary reform, Disraeli promptly proceeded to introduce a Reform Bill of his own. He recognised that the change must come; he disliked the middle class, who had wielded power since 1832, and believed that his ideas would have a better chance of acceptance in the artisan class, whom he proposed to enfranchise; and he was anxious that the inevitable concession should be made by his own party. In its original form the scheme was surrounded by safeguards, in the form of extra votes for property and educational qualifications. But these were swept away, mainly by the pressure of the opposition. In the end the Bill conferred the vote upon all householders in towns, and also upon lodgers; while in the country every occupier of a tenement worth £12 per annum was enfranchised. This change, which was a long step towards complete democracy, was regarded with deep misgivings by many Conservatives. Lord Derby described it as "a leap in the dark"; Lord Cranborne (later Lord Salisbury) denounced it as "a political betrayal which has no parallel in our annals."

**The New Democracy.**—Disraeli, who had been engaged for thirty years in "educating his party," had, in fact, committed them to the experiment of Tory democracy. Subsequent events showed that his calculations were justified. In the thirty-four years from 1832 to 1867 the Conservative party had held office for only seven and a half years. In the next thirty four years, down to the death of Queen Victoria, the Conservative party held office for nineteen and a half years. Moreover, the new electorate brought about one marked change in the British political system. Instead of the very narrow majorities which had been usual ever since 1846, successive elections from 1868 onwards gave sweeping majorities to one side or the other: the "swing of the pendulum" became more violent. This was because, in a larger electorate, the number of voters not pledged to either of the great parties was larger, and though they were still a small proportion of the total, they could turn many elections. This wavering body became the real governing power

in English politics, and politicians inevitably strove to appeal to it. Consequently public meetings and other forms of popular appeal became more and more important ; the machinery of party organisation was gradually brought to a high pitch of efficiency ; and the actual proceedings of Parliament became relatively less important than they had been.

## 2. GLADSTONE'S FIRST GOVERNMENT (1868--1874)

**Disraeli and Gladstone.**—The new era of British politics which now began was dominated by the two powerful personalities of Disraeli\* and Gladstone. Both had become the leaders of their respective parties by 1868, Lord Derby having retired and left the office of Prime Minister to Disraeli, while Lord Russell almost at the same moment withdrew from the Liberal leadership, in which he was succeeded by Gladstone. The two men were nearly of an age ; in 1868 Disraeli was sixty-three and Gladstone fifty-nine. Both had given up their lives to politics, and had sat in parliament continuously since the first Reformed Parliament. Both disliked the tepid temper of Whiggism. Disraeli, having begun as a Radical, had been led by his Jewish sense of the importance of race to attempt the task of educating the gentlemen of England into Tory democracy ; Gladstone, having begun as a true-blue Tory, had followed his master Peel into a Liberalism that became more and more unflinching. Neither knew what it was to be timid or half-hearted. Both were distrusted by the more stolid and orthodox members of their parties. Both had strong intellectual interests outside politics, Disraeli being a brilliant novelist in the brocaded style, while Gladstone had an immense range of knowledge, and made elaborate studies of Homer, Dante and Butler. But their differences were far deeper than their resemblances. Disraeli was a mysterious, sphinx-like, impassive figure, with a gift of sardonic phrase, a humorous detachment which enabled him to take large views, and an Oriental delight in splendour. This made him an imperialist, but it was in the dominion of the East that he took delight, rather than in the new lands of the colonies, of which he had once said (in 1852) that they were "millstones round our neck." He had also a vision of England led back out of the ugliness of industrialism into happiness under the leadership of an imaginative aristocracy. Gladstone, on the other hand, was a man of intense religious fervour. He could be completely captured by an idea or a cause, and when this happened, nothing could daunt or deter him. He combined extraordinary gifts of majestic eloquence with a subtlety of mind which enemies described as Jesuitical. Like his master Peel, he did not look far ahead, or form mental visions of an ideal state of society. But he passionately believed in liberty, and threw himself with intense earnestness into each new reform that seemed to him to be needed. No two men could have

---

\* There is a short Life of Disraeli by J. A. Froudo, and a very entertaining one by the French writer, Andre Maurois. There is an essay on Disraeli by T. C. Hearnshaw in *English Prime Ministers of the 19th Century*.

been more different. They deeply distrusted one another. Disraeli thought Gladstone a sophisticated windbag, and Gladstone thought Disraeli an insincere trifler. They appealed to different elements in the national mind. Gladstone brought the spirit of religion into politics, and Disraeli the spirit of romance.

**Gladstone's First Ministry.**—The election of 1868, under the new Franchise Act, returned a large Liberal majority, and Gladstone formed his first ministry. It showed a greater activity in constructive legislation and in administrative reform than any Government since 1834.

**Irish Disestablishment.**—Gladstone's own attention was concentrated upon Ireland, where he was resolved to redress what seemed to him the three main evils—the exclusive privileges of the Anglican Church, to which only one-twelfth of the population belonged; the land system, which left the impoverished tenants at the mercy of their landlords; and the exclusion of Catholics from the opportunities of university education. The first was dealt with by an Act for the disestablishment of the Irish Church (1869), which aroused fierce opposition among English Churchmen and in the House of Lords. It was only carried after substantial concessions had been made. The Act not only deprived the Anglican Church in Ireland of its exclusive privileges, it also took from it all endowments earlier in date than 1660, on the ground that these had not been meant for the maintenance of a minority Church. The wealth thus withdrawn was used for the relief of distress. Although it thus lost nearly half of its capital wealth, the English Church of Ireland soon found that it was strengthened rather than weakened by the change.

**Irish Land Act.**—The Irish Land Act (1870) was designed to protect the tenant against unfair eviction, which had been the chief cause of recent disturbances. No tenant was to be evicted so long as he paid his rent, and he was to be entitled to compensation for improvements which he had made. But the Act did not put an end to agrarian troubles, because rents were far too high, and no means of reducing them were provided. Agrarian outrages became even worse than before; Coercion Acts had to be maintained; and in 1871 a band of Irish-American "Ribbonmen," as they called themselves, created such a reign of terror in Westmeath that a special Act had to be passed to deal with the situation. Something more drastic than the Land Act of 1870 was needed. Nevertheless it was the first serious attempt to deal with the Irish land problem, and the first definite interference with the rights of landlords. In a third Act Gladstone tried to deal with the university problem, but his proposals pleased nobody, and had to be withdrawn.

**A National System of Education.**—The most important measure of this Government was the Education Act of 1870, which for the first time established a universal system of elementary education. This was one of the most important social reforms of the century. Only about half the children of the country received any education at all before this act was passed; and many of the existing

schools were totally inadequate for their work. The Act provided that in every district where there was insufficient school accommodation a School Board should be set up, with the duty of filling the gap, partly at the cost of the rates, partly with the aid of grants from the Treasury. But a bitter controversy sprang up on the question whether religious instruction should be given in these new public schools, and if so, of what kind. After much controversy, this question was settled by a compromise—"undenominational" religious teaching should be given. But this satisfied nobody, although it worked well enough; both Churchmen and Dissenters were alienated, and (as often happens) the Government was weakened by its most valuable achievement.

**Army Reform.**—Ever since the Crimean War it had been evident that a drastic reform of the Army was needed. It was carried out by Cardwell, the Secretary of State for War in this Government. He set himself to create a military system suitable for the needs of the British Empire, which requires an efficient force ready to be despatched to any part of the world, and capable of easy expansion. For this purpose he devised a system of short-term service, followed by a period in the reserve, in place of the old system of long-term service. He also assigned a fixed area of recruitment to each regiment, and linked up the militia and volunteers with the regular battalions in an orderly system. Finally, in 1871, he abolished the old abuse whereby commissions in the Army were purchased, and were thus limited to the wealthy. This was an attack upon the last stronghold of aristocratic privilege. There was vehement opposition to all these reforms, but especially to the abolition of purchase, which was only effected by the use of the queen's prerogative because the House of Lords would have thrown it out.

**Other Reforms.**—Not less important than these great reforms were certain others which were necessitated by the growth of democracy, though they were fiercely opposed. The universities of Oxford and Cambridge were for the first time thrown open fully to Dissenters and Roman Catholics by the abolition of religious tests (1871). The system of nomination to positions in the Civil Service was abolished everywhere save in the Foreign Office, and open competitive examinations were established in its place (1870). The Ballot Act (1872) introduced secret voting, and thus put an end to intimidation. A new department of government, known as the Local Government Board (the predecessor of the modern Ministry of Health) was set up to look after the administration of the poor law, the organisation of measures for public health, and, in general, the rapidly growing activities of the local authorities. An attempt was made to deal with the social evil of excessive drinking by a Licensing Bill, which proposed a systematic reduction in the number of public-houses wherever they were excessive, and allowed ten years' grace to the publicans in lieu of compensation; but the brewers and the temperance enthusiasts combined to defeat these proposals, which greatly added to the unpopularity of the Government.

**Legal Reform.**—A far-reaching reform of the whole system

of justice was also set on foot, whereby the old, complex and overlapping organisation of the law-courts was systematically recast. This reform was not completed until after the Government had fallen, but it was one of the most valuable of its achievements.

**Trade Unions Legalised**—Finally, the trade union problem was tackled. In the Trade Union Act of 1871 the trade unions were for the first time recognised as legal bodies. An attempt was also made to distinguish between legal and illegal "picketing," but the definition was interpreted by the law-courts in such a way that it gave no real protection to legitimate trade union activities, and a new Act had to be passed for this purpose in 1875. The result of these Acts was a very rapid growth in the strength of trade unionism.

**Decline of the Government.**—There was a marked contrast between the strenuous reforming activity of this ministry and the placid inaction of the previous period. It aroused intense public interest and keen controversy. But too many interests had been attacked, and for this reason the popularity of the Government rapidly declined. Churchmen were alienated by Irish disestablishment and the opening of the universities; neither Churchmen nor Dissenters were satisfied with the Education Act; landlords were alarmed by the Irish Land Act; publicans and temperance enthusiasts were equally angered by the Licensing Bill; the whole officer class was outraged by army reform; and even trade unionists were dissatisfied with the Trade Union Act. And the foreign policy of the Government did nothing to restore its popularity. It was pacific and unexciting, and lacked the flamboyant assertion of British prestige which had made Palmerston popular.

**The Franco-German War.**—Three questions of importance in foreign affairs emerged during these years. One was the advance of Russia in Central Asia, which in 1869 reached the borders of Afghanistan. Instead of taking any military measures, the Government came to an agreement with Russia, whereby both powers undertook to respect the independence of Afghanistan. The second question arose from the outbreak of war between France and Prussia in 1870, which led to a crushing Prussian victory and the formation of the German Empire, now obviously the greatest and most menacing power in Europe. The Government tried to mediate between the rivals, but the attempt was hopeless, because both (and especially Germany) were determined to go to war. On one point, however, a real diplomatic victory was secured. One or other of the belligerents might be tempted to cross the frontier of Belgium. But the neutrality of Belgium was secured by treaties of 1832 and 1839, guaranteed by Britain among other powers. Gladstone and his Foreign Secretary, Lord Granville, made Belgium's neutrality safe by negotiating identical treaties with both France and Prussia, whereby Britain undertook, if either party violated the neutrality of Belgium, to join forces with the other. By this arrangement Britain completely safeguarded the neutrality of Belgium; but she obviously was not playing the masterful part which she had seemed to play under Palmerston.

**Alabama Arbitration.**—Finally, in 1872, after long delays,

the *Alabama* case was brought to arbitration ; and when the arbitration went against Britain, the Government accepted the decision and paid the heavy damages awarded. This was the greatest victory which had yet been won for the method of arbitration. It was a landmark in the movement towards organised peace. But it could be, and was, represented as a mean-spirited surrender of British rights.

**Defeat of Gladstone.**—Thus, reforming activity at home and a pacific attitude abroad combined to alienate the electorate. When Parliament was dissolved in 1874 the voting went heavily against the Liberals ; and Disraeli, after his long patience, found himself at last not merely in office but in power, with a very large majority, able to carry out his ideas.

### 3 DISRAELI'S ADMINISTRATION (1874—1880)

**The Home Rule Party**—The new Parliament of 1874 contained two new elements. One consisted of two trade union members, whose expenses had been paid by their unions. They voted as Liberals, but they were the forerunners of the future Labour Party. The other was the appearance of fifty-eight Irish members who for the first time refused to associate themselves with either of the older political parties, but called themselves Home Rulers, and made it their aim to break down the English parliamentary system as a means to securing legislative independence for Ireland. Among them was Charles Stewart Parnell,\* a Protestant landlord, but a fervid hater of the English ascendancy. Throughout this Parliament, but especially in its later years, they set themselves with skill and assiduity to obstruct public business, especially on Irish questions. These new tactics at first seemed only vexatious. In the next Parliament they were to become alarming.

**Social Reform.**—In the first years of the new Parliament Disraeli had an opportunity of showing what he meant by the new Toryism which he had been preaching since the days of "Young England" in the 'forties. It was expressed in a series of useful measures introduced by the Home Secretary, Richard Cross. One was a Trade Union Act (1875), which remedied the defects of the Act of 1871 by declaring that an act which would be legal if done by one man should not be illegal if done by two or more ; this Act also made peaceful picketing legal. A second Act (1875) empowered municipalities to acquire insanitary property, demolish it and construct workmen's dwellings, if need be at the cost of the rates. This was the modest beginning of public attention to the housing of the people, though many municipalities had already obtained similar powers by private Acts. Two further Acts were useful codifications of previous legislation on social questions, one dealing with the numerous Public Health Acts which had been passed since 1848, while the other codified and simplified the provisions of the numerous Factory Acts since 1833. All this was

---

\* There is a short Life of Parnell by R. Barry O'Brien.



useful work, though it scarcely fulfilled the vague hopes of social reconstruction of the Young England days.

**Imperial Activities.**—Disraeli's main interest now lay, indeed, not in domestic but in imperial and foreign affairs, and he did much to stimulate that pride in empire which was to become so strong during the next generation. In 1875, by a dramatic stroke, he purchased from the almost bankrupt Khedive of Egypt his shares in the Suez Canal, which had been opened in 1869; and thus secured to Britain a voice in the control of that vital waterway to India. It was on his advice that the queen assumed in 1877 the title of Empress of India; and a splendid Durbar was summoned to give the Indian princes an opportunity of doing homage. His Government encouraged a vigorous and assertive policy in various parts of the world. Thus a strong effort was made to bring about the federation of South Africa; the Transvaal was annexed, against the wishes of its inhabitants, who soon broke into revolt; and the disastrous Zulu war was fought in 1879. Again, the cautious attitude of the Gladstone Government in regard to Afghanistan was abandoned; in view of the advance of Russia in Asia, Afghanistan was invaded, and the second Afghan War was undertaken, which almost led to a disaster as great as that of 1842. These events will be dealt with in their own place (pp. 500 ff.); but they were signs of the imperial spirit which Disraeli did so much to cultivate.

**The Eastern Question.**—The most important events of Disraeli's Government were connected with the Eastern Question, on which he took up once more the old attitude of Palmerston, and found himself in acute conflict with Gladstone. All the promises of reform which the Sultan had made at the time of the Crimean War had come to nothing, and the misgovernment of Turkey's Christian subjects was if anything worse than it had been. In 1875 the Christians of Bosnia and Herzegovina broke into revolt, and the semi-independent princes of Serbia and Montenegro went to their aid.\* These events attracted the attention of the Powers, as joint guardians of Turkey, and long conferences were held, which came to no conclusion. While the Powers argued, revolt broke out in Bulgaria, and was suppressed by the Turks with atrocious savagery. When the news of the Bulgarian atrocities reached Europe, Gladstone broke out into fierce denunciations of the Turk, and demanded that he should be cleared "bag and baggage" out of the oppressed provinces.

**Russo-Turkish War.**—This would have involved a total reversal of the traditional British policy. Disraeli, like Palmerston, feared any weakening of Turkish sovereignty, lest Russia should be strengthened, and was anxious to prevent military action, especially by Russia. In 1877 Russia, refusing to wait any longer for the joint action of the Powers, declared war against Turkey, and (after some initial checks) beat down the Turkish resistance and marched almost

---

\* For the Eastern Question, see School Atlas, Plate 26e, and the larger Atlas, Plate 86.

to the gates of Constantinople. Thereupon Disraeli's Government asked Parliament for war-credits, sent a fleet to the Sea of Marmora, and brought Indian troops to Malta. War seemed to be near. War-fever was high in England; and the popular song of the moment, with which the music-halls rang, declared that "we don't want to fight, but by Jingo, if we do, we've got the ships, we've got the men, we've got the money too." Gladstone denounced these preparations, and a substantial part of the nation, stirred by the tales of Turkish atrocities, took his view, though the majority was certainly against him.

**San Stefano and Berlin.**—The outbreak of war was averted because Turkey submitted to the terms dictated by Russia in the Treaty of San Stefano. This treaty would have turned the greater part of the Balkan peninsula into a series of independent Christian States, of which the greatest would have been Bulgaria, while Turkey would have been left with very little beyond Constantinople. In other words, the results of the later Balkan wars would have been anticipated. Disraeli, fearing that these new States would be vassals of Russia, demanded that the terms of the treaty should be submitted to revision by the Powers of Europe; Russia reluctantly agreed, and a Congress was summoned at Berlin (1878). Before the Congress met, however, Disraeli concluded secret agreements with both Russia and Turkey. The agreement with Russia practically defined the terms subsequently reached at Berlin. By the agreement with Turkey Britain guaranteed the Turkish possessions in Asia, and, in return, received the island of Cyprus on payment of an annual tribute. The result was that the Congress of Berlin was a triumph for Disraeli. The terms of San Stefano were revised; the new State of Bulgaria was greatly reduced in size; and Turkey was left in control of a large part of the Balkan peninsula, including Macedonia, which was to be a constant source of discord.\*

**Criticism of Disraeli's Policy.**—All these arrangements broke down within the next thirty-five years; in the meanwhile they caused incessant unrest. They were, in fact, one of the deeper causes of the Great War of 1914. Lord Salisbury, who was Disraeli's colleague at Berlin, later said that in this business Britain had "put her money on the wrong horse." But at the moment it appeared that Russia's advance had been checked. Disraeli was able to return in triumph, claiming that he had brought back "peace with honour," and if he had gone to the country at that moment he would certainly have returned with a great majority. Gladstone, however, never ceased to denounce all these transactions, although public opinion was against him; the mob of London smashed his windows, and his own colleagues deprecated his vehemence. As the war fever died down, the body of opinion to which he was able to appeal gained in strength. The disasters of Afghanistan and Zululand seemed to support his denunciations; and by 1880 Disraeli's popularity had so much waned that in the election of that year the Liberals were returned with a large majority.

---

\* For Europe after the Berlin Congress, see the larger Atlas, Plate 85.

**The End of an Era.**—The election of 1880 brought to an end the long rivalry between Disraeli and Gladstone ; for Disraeli (who had for some years sat in the House of Lords as Earl of Beaconsfield) died in 1881. It was significant that their rivalry had ended with a debate upon the principles of foreign policy ; for in 1880 a new period in the relations between Britain and the other Western nations was opening. The long monopoly of oversea power which Britain had enjoyed since 1815 was coming to an end, and a period of fierce rivalry for world-power was beginning ; in the end it was to lead to the Great War of 1914.

**The Progress of Science.**—While the political situation had been changing, another revolution, vastly more profound, had silently taken place. Not England only, but the whole world, had passed into the Age of Science, in which men's ideas about man's place in the universe have been transformed ; and in which, also, men have obtained a growing command over the forces of Nature which has already transformed, and will increasingly transform, the conditions of our life. It was the patient work of scholars in their laboratories, carried on unrestingly while the politicians were waging their battles in Parliament and on the platform, which had brought about this revolution. Many of the greatest men of science of the century were British, but the work of scientific exploration was international, and its results were shared by all peoples. We cannot here give any account of all this work. The Astronomers had revealed the vastness of the universe, and made this earth appear but an insignificant pin-point in space. The Geologists had pushed back the history of the earth into the æons of the past, and shown that the whole story of man was but a brief and late episode in that immense history. The Biologists had shown how the forms and species of plants and animals had gradually developed, and how man was the descendant and the kin of the beasts that perish. The microscope had displayed the infinitely little, as the telescope and the spectroscope explored and tried to measure the infinitely great ; and had shown (especially in the work of Pasteur) how the life of man depends upon invisible micro-organisms, which maintain his life or take it away. The Chemists had penetrated deeply into the mysteries of the composition of matter, and shown how this knowledge could be used to give man power over his environment. The Physicists were pushing further and further the analysis of the forces at work about us, and they too were placing potent and dangerous weapons in the hands of man.

**The Darwinian Controversy.**—It was but slowly that the mass of ordinary men realised the significance of these astounding revelations, in comparison with which the change of ideas that came in the sixteenth century was a small matter. In Britain, especially, the governing class was out of touch with all this movement, for its schools and its universities long continued to despise this revolutionary "New Learning." The first shock came with the controversy that raged round the work of the biologist Charles Darwin ; his famous book, *The Origin of Species*, which set forth the doctrine

of Evolution, and traced the descent (or ascent) of man from the animals, was published in 1859. The storm of discussion which it raised was at its height about 1865. From about that time the new ideas about man's place in the universe ceased to be confined to scholars, and gradually coloured the thinking of all educated people. It also brought about a rapid change in the methods of many industries. By understanding the processes of Nature, man was obtaining a new power over them; and the progress of discovery and invention became bewilderingly swift.

**Britain's Backwardness.**—In this tremendous revolution, which transformed the conditions of life upon our planet within two generations, individual British scholars played a very great part; they included many of the greatest contributors to the scientific revolution which was taking place. But the British peoples were as yet ill-equipped to take advantage of the new knowledge; in comparison with other countries, and notably with Germany, their universities were too few, and too scornful of "the new learning," while they had as yet (except in Scotland) no adequate system of schools above the elementary grade. Their old endowed schools had largely become a preserve of the governing class, and were apt, with the universities, to be scornful of "the new learning." It would have been a very grave matter for the British peoples if they had not quickly mended their deficiencies in this respect, as they began to do in the next period, when new universities came into being, and a whole system of new schools was created. Even as it was, British trade suffered a good deal during the next generation from the country's backwardness in this field; and the supremacy in some of the new scientific industries largely passed to other countries, notably to Germany.

## CHAPTER XLVI

### THE BRITISH EMPIRE IN 1880

#### 1. CHANGING CONDITIONS

**End of the Era of Monopoly.**—Since Waterloo the British peoples had enjoyed an extraordinary ascendancy in manufacture and commerce, and an almost complete monopoly of oversea dominion. This Period of supremacy was now coming to end. The European peoples had reached, for a time, the close of the long troubles which had engrossed their attention during the nineteenth century, and which had sprung from the struggles for national unity and freedom, and for the institutions of self-government. Germany and Italy were now powerful and united States; France, after many revolutions, had in the bitterness of defeat at last succeeded in finding a system of government which was stable; every European country except Russia and Turkey had adopted the system of Parliamentary government; and the United States, having overcome the long disputes about slavery which had impeded her development, and

having opened up and settled the whole of her vast territory, was entering upon a period of unprecedented growth.

**Trade Developments.**—All the nations were now addressing themselves to the task of developing their industry and trade, and were beginning to aspire after dominion in the non-European world. The growth of industry in Germany, America, Belgium, and France had hitherto been slow.\* These countries had largely been content to buy the products of the modern industry from Britain. There now began in all of them a period of fierce energy in industrial development, and a systematic application of science to industry, which made it necessary for British traders to overhaul their methods. In many fields, and especially in the more modern and scientific industries, the new competitors were more alert and more enterprising than their British rivals. Moreover, they could profit by British experience. They were not handicapped, in the same degree, by the ugly conditions which had grown up during the first period of the Industrial Revolution in Britain, and which could only be amended slowly and at great cost.

**Protection v. Free Trade.**—In the middle of the century it had seemed likely that, besides imitating other British methods, the newer industrial countries would also imitate her system of Free Trade. France had gone a long way in that direction when she accepted Cobden's commercial treaty of 1860, and until after the Franco-Prussian War Germany was almost a Free Trade country. But this expectation was disappointed. Both the European countries and the United States adopted the policy of building up their industries behind high tariffs, that is, making their people pay, in higher prices, for the creation of industries. Of course, by doing so, they restricted their export trade, because no country can export more goods than are paid for by its imports, and if it shuts out imports it must restrict its exports. This was why Britain did not adopt the same policy: she depends upon export trade. And she still, for this reason, preserved her ascendancy in export trade. But the restriction of markets in which she had hitherto sold many of her goods, and the necessity of finding fresh outlets and developing new methods, placed difficulties in the way of British traders.

**Trade Depression in Britain.**—It was in the 'seventies that Britain first began to feel the effect of these new conditions, because the competition began to be keen after the Franco-Prussian War. The last years of Disraeli's Government were years of relatively bad trade, and many years passed before the level of 1875 was reached again. Agriculture also was suffering in these years. Its prosperity had not been affected by the repeal of the Corn Laws. But the cheap corn of the American middle west began to pour in in the 'seventies. In some countries, notably Denmark, the farmers took advantage of this by using cheap imported foodstuffs for their cattle, and thus developed a great dairy industry; but the British farmer could not

---

\* For the growth of industrialism in Europe and the United States between 1860 and the present day, see the larger Atlas, Plate 90-91.

so easily adapt himself to the new conditions. British agriculture began to decay, and the decay has continued until this day. British industry was in no sense decaying; as soon as it had adjusted itself to the new world-conditions, it obtained a greater prosperity than ever, because the wealth of the world was growing, and all nations had more to spend. British shipping, in particular, was in its golden age. The growth of trade all over the world meant that there were more goods for it to carry. The protectionist policy of other countries, whatever its effects upon their industry, was bad for their shipping, because their imports, and consequently also their exports, were restricted. Thus the mercantile marine of the United States, which had been a serious competitor of the British mercantile marine down to the 'sixties, shrank rapidly and soon ceased to be of much importance when America adopted a policy of high protection after the Civil War. Hence the position of Britain in the world was changing. She was no longer the one supreme manufacturing country, with a practical monopoly of the new mechanical processes; she was only one of a number of competing industrial peoples; she could only expect her share of the total trade of the world; and the magnitude of that share must depend upon the skill and character of her people.

**Imperialist Ambitions.**—The European nations were about to show a similar eagerness to acquire oversea possessions. Their population was growing, and they did not want the surplus to go to strengthen other countries. Their trade demanded raw materials, and they wanted control over some of the lands from which these raw materials came. They were beginning to measure the greatness of a State by the extent of its dominions, and the small States of Europe seemed to be dwarfed by the three gigantic empires of Britain, Russia, and the United States of America.

Hence there now began a rush for the control of the unoccupied regions of the earth, and huge colonial empires were rapidly built up during the generation following 1880. Britain also entered the competition and added vast new territories to her already gigantic empire. Before we enter upon the story of this fevered period, which led up to the most terrible war in history, we must survey the British Empire as it was in 1880, and see what development it had undergone during the thirty placid and prosperous years between the Great Exhibition and the death of Disraeli.

## 2. INDIA

**Economic Development.**—Between the Mutiny (1858) and the outbreak of the second Afghan War (1879) India enjoyed twenty years of unbroken peace, during which the introduction of Western methods was rapidly carried on. A railway system, built by British capital, was carried over the whole country. Large works of irrigation were constructed, bringing under cultivation areas which had yielded few or no crops. Trade increased rapidly, and India became the best customer for British goods. Population also increased. But the growth of population presented serious problems. India

has always been liable to famines, when the monsoons failed. There were very severe famines in this period, in 1861, 1865, and 1876, and the Government was forced to take up seriously the problem of famine relief. In the old days little could be done. Each district grew only sufficient food for its own needs; when famines came it was impossible to bring adequate supplies from elsewhere, and the people just had to die. This was one of the factors which had kept the growth of population in check. Now the fertile districts grew more than they needed for their own use, because they could export the surplus. The railways made transport easy. It was therefore possible to work out an efficient system of famine-relief, such as India had never known in the past. The foundations of this system were laid during the famines of 1865 and 1876. To-day, though an Indian famine causes hardships, it does not cause wholesale deaths by starvation.

**Western Education.**—Yet more important than the introduction of the material civilisation of the West was the growth of Western education in India. In 1857 three universities were founded, at Calcutta, Bombay, and Madras. Numerous schools were also established, with Government grants. The result was the creation of a considerable Western-educated, English-speaking class of Indians, scattered over every Indian province. All the lawyers, school-master, minor government officials, and journalists belonged to this class. Using the English language, Bengalis and Marathas, Punjabis and Madrasis, were able to communicate with one another as never before. They also had a common body of ideas, drawn from the English books which they studied. Even more than the railways, the English language was drawing together the intellectual leaders of the Indian peoples, and making possible, what had never existed before an Indian national movement. The growth of this movement was to be one of the features of the next period.

**Baluchistan.**—The interval of peace was interrupted by new troubles on the north-west frontier, due (like the first Afghan War) to the fear of Russian advance. Afghanistan was in a state of disturbance; Russia, by the conquest of Bokhara (1869) and Khiva (1873), had brought her empire to the Afghan borders.\* The Amir of Afghanistan asked for British protection (1869): Gladstone's Government, unwilling to assume fresh responsibilities, refused it. The Amir then turned to Russia, and Russian envoys were at the Court of Kabul in 1876. Lord Lytton, whom Disraeli had sent out as Viceroy, thereupon declared a protectorate over Baluchistan, took control of the Bolan Pass, and established a military station at *Quetta*, from which a flank attack could be made on any force advancing through Afghanistan.†

**Second Afghan War.**—In 1878, when anti-Russian feeling in Britain was at its height, the Amir of Afghanistan received a Russian envoy and refused to admit a British envoy. War was

---

\* See School Atlas, Plate 55a,

† See School Atlas, Plate 54.

thereupon declared. A triple advance on Kabul drove the Amir to flight. Afghanistan became a vassal State, with a British resident at Kabul, and the frontier was revised so as to secure to India the control of the passes. But, as in 1840, there was a revolt: the British resident was murdered, and the war had to be fought all over again. There was much difficult fighting. A British force was seriously defeated at *Maiwand* (1879) and shut into Kandahar. In order to relieve, General Roberts had to make a march of 300 miles through hostile and difficult country. This brilliant achievement made the reputation of the most beloved of British soldiers. But it also showed how perilous was the occupation of such a country as Afghanistan. In 1880 Lytton's and Disraeli's forward policy was reversed. Afghanistan was left to itself. But the war had given to the Government of India the keys of the mountain wall which forms its defence on the north-west.

### 3. THE SELF-GOVERNING COLONIES

**Withdrawal of Troops.**—In all the self-governing colonies the quiet years from 1850 to 1880 formed a period of steady and rapid growth. The colonies were now fully self-governing. They no longer needed the nurturing hand of the mother-country, which had been so necessary in the earlier period. It was a sign of this that in 1862 Parliament resolved to withdraw all the garrisons which had been maintained in these colonies; they were all gone by 1873, and officers had been sent out to help Canada and Australia in organising their own system of defence.

**Progress of Canada.**—Canada, which had been stagnant and unprogressive in the period before she became self-governing, had made rapid progress since that date. Her population rose from 1½ millions in 1840 to nearly 4½ millions in 1881. A vast deal of work was done in opening out the country by means of railways, mainly financed by British capital. A new colony was organised on the Pacific coast in 1858 (British Columbia).\* But it was separated from the other colonies by the vast expanse of the central plain, still controlled by the Hudson Bay Company; it was jealous of admitting immigrants. In all this wide region there was only one small settlement, that of Red River (Manitoba); it had been founded as early as 1811. The trade relations of the various separate colonies were rather with the United States than with one another or the mother-country, and many feared that unless they could be more closely welded together, they would be absorbed by their greater neighbour. The tradition of the United Empire Loyalists was too strong to make this an attractive prospect. Moreover, friction had begun to grow again between the French and English in Upper and Lower Canada, which had been united in 1840. This would be avoided if each race could have its own legislature, but nobody wanted to separate them completely.

**Canadian Federation.**—All these reasons led to a movement for the federation of all the Canadian colonies, which was agreed

\* See School Atlas, Plate 51.



upon under the leadership of Sir John Macdonald, and embodied in the British North America Act, passed through the British Parliament in 1867. This Act separated Ontario from Quebec, but it also united all the colonies as "the Dominion of Canada" under a single federal government; the various colonies becoming "provinces" with local legislatures of their own. Warned by the American Civil War, the framers of the Canadian constitution avoided the American model, and definitely subordinated the provinces, to the central government. Instead of giving limited powers to the central government, and all other powers of the States (as in America) it gave limited powers to the provinces and all other powers to the central government.

**Annexation of the North-West.**—Two years later (1869) with the aid of the British Government, the Hudson Bay Company was bought out, and the vast central plain passed under the control of the Dominion. This change, however, caused a rebellion among the half-breed trappers of the Red River district. Led by Louis Riel, and with some help from across the American border, they seem to have aimed at founding a French-Catholic State. British troops had to be sent out under Sir Garnet Wolseley before the rebellion was crushed. Then the province of *Manitoba* was organised (1870); and the general maintenance of order throughout the vast area of the north-west was entrusted to a magnificent corps, organised in 1874, under the name of the North-West Mounted Police.

**Railway Construction.**—In order to weld the new federation together, great railway works had to be undertaken. The Inter-colonial Railway, linking Canada proper with the maritime provinces, was completed in 1876. The greater task of linking east with west was longer delayed, though British Columbia only came into the federation (1871) on condition that a transcontinental line was built. The line, the famous Canadian Pacific Railway, was not begun until 1881. But already in 1880 the Canadian group of colonies had been united into a single free nation, controlling half a continent. This was just a century after the failure to bring about a similar union had led to the unhappy breach between Britain and the thirteen American colonies.

**Progress of Australia.**—In Australia the progress made in these quiet years was even more remarkable: the population of the Australian group of colonies rose from less than half a million in 1850 to over 2½ millions in 1881. This was mainly due to the discovery, in 1851 and the following years, of rich deposits of gold, which brought a sudden inrush of gold-diggers. And, since the diggers had to be fed, it also led to a great increase of cultivation. The chief gold-fields were in Victoria, which multiplied its population tenfold in twenty years; but there were others in New South Wales and Queensland, which became a separate colony in 1859.\* Alongside of this increase of wealth and population went a rapid development of railways, whereby the country was opened up. This was

\* See School Atlas, Plate 55b.



In the twenty years from 1861 to 1881 the population rose from 100,000 to 500,000. The increase was mainly in the last ten years, during which both coal and gold were developed, and over 1,200 miles of railway were built. New Zealand was fairly launched upon her career as a free and self-governing State. Her growing unity was recognised by a change in the system of government. The little provincial assemblies of the isolated settlements which had been set up in 1856 were no longer needed; and in 1876 a single Parliament took control of the country's destinies.

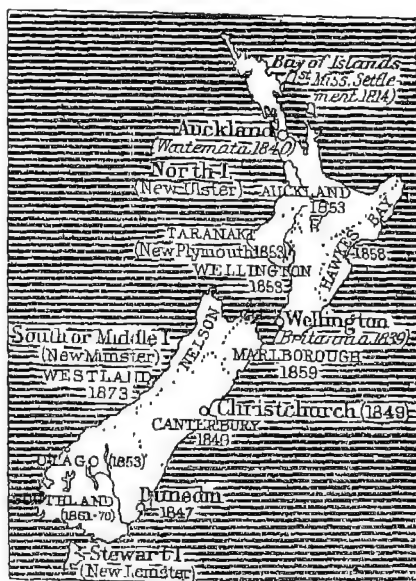


Fig. 42.—New Zealand

**Cape Colony and Natal.**—South Africa was, as always, the most disturbed of the colonies. But even South Africa enjoyed a period of comparative peace after the conventions of 1852 and 1854, by which the independence of the Transvaal and the Orange Free State had been recognised (p. 466). *Cape Colony* prospered steadily; its white population multiplied threefold in the quarter of a century from 1850; Boers and British were friendly; the native population was peaceable; and in 1872 the colony was endowed, by Gladstone's Government, with the full system of responsible government. It is noteworthy that the franchise, on an educational qualification, was given to the natives. Cape Colony is the only part of South Africa in which this has ever been done. *Natal* had as yet few white settlers; they were vastly outnumbered by the natives; and they lived in some dread of their dangerous neighbours, the Zulus, who had built up again under their chief Cetuywayo the formidable military power by which they had terrorised South Africa before they were defeated by the Boer trekkers (1837).

**Diamonds and the Free State.**—The *Orange Free State* passed through a troubled time in the first years after independence (1854), and had several wars with their native neighbours the Basutos. After 1864, however, they settled down under an able President, J. H. Brand; and in 1869 *Basutoland* was formally declared a British protectorate, and Basuto wars came to an end. In 1870, however, a difficulty arose between the British Government and the *Orange Free State*. Diamonds were discovered in 1868 on the western borders of the Free State, in the neighbourhood of the modern Kimberley. This brought an influx of undesirable immigrants, difficult to control. The diamond area was claimed both

by the Free State and the native tribe of Griquas. The British Government, feeling that the policing of the diamond-diggers would be beyond the powers of a community of farmers, with the consent of the Griquas annexed Griqualand West, including the diamond area, and paid £90,000 to the Free State as compensation. This might well appear a high-handed act, and it poisoned relations with the Free State for some time.\*

**The Transvaal and the Zulus.**—Finally, in the *Transvaal* the Boer settlers, who numbered only about 10,000, scattered over a vast area, were throughout this period in a condition of anarchy. At one moment they were divided into four republics, on bad terms with one another. They were also restless and adventurous, and constantly at issue with their native neighbours. Complaints of their behaviour came to the British Government from several of the native tribes, and from the missionaries: Livingstone complained that they had raided the tribe among whom he was working, and burnt his house. It was feared that they would stir up serious native trouble. In particular they were on bad terms with Cetywayo and his Zulus, and had annexed territory which Cetywayo claimed. If a war with the Zulus broke out, all native Africa might be aflame.

**Need for Federation.**—It was clearly desirable that a common native policy should be pursued by South Africa as a whole. Sir George Grey had, as early as 1858, advocated a federation of the four white States. In 1876 Lord Carnarvon, Disraeli's colonial secretary, took up this scheme, and tried to get the two British colonies and the two Boer States to agree. He also sent out Sir Bartle Frere, a very able Anglo-Indian, as High Commissioner, with instruction to carry out federation.

**Annexation of the Transvaal**—Independently of Frere, Shepstone, the Lieutenant-Governor of Natal, who was very anxious about the Zulus, went up to the Transvaal, and, finding that some of the Boers were as anxious as himself, and that the republic was in a state of anarchy, declared the Transvaal annexed to the British Crown (1877), and promised that it would receive full powers of self-government under a scheme of federation. The annexation was at first quietly received; partly, perhaps, in expectation of the federation proposals, but mainly because Cetywayo and his Zulus were threatening. Nothing happened, however, about federation, and the promised system of self-government was delayed.

**The Zulu War.**—Cetywayo, on the other hand, became more and more menacing; and in 1879 war broke out. It was badly conducted, and very damaging to British prestige in South Africa.† A disaster at *Isandhlwana* would have exposed Natal to the Zulu hordes, but for the valour with which *Rorke's Drift* was defended by a small force. Large reinforcements had to be brought up before the Zulu army was crushed at *Ulundi*, 1879, after which Cetywayo was deposed. The annexation of the Transvaal, and the incompetence with which the Zulu War was conducted, led directly to the

\* See School Atlas, Plate 56d.

† See School Atlas, Plate 56e.

revolt of the Transvaal Boers (1880), which was the beginning of twenty years of trouble in South Africa that filled the next period.

#### 4. THE WEST INDIES, WEST AFRICA, AND THE PACIFIC

**Effects of the Abolition of Slavery.**—The older tropical colonies of Britain, in the West Indies and West Africa, had fallen on evil days during the nineteenth century. Their prosperity had depended on slavery: slaves grew the sugar and tobacco of the West Indies; and it was the inhuman traffic in slaves for the West Indian plantations that brought riches to the trading stations on the West African coast. The abolition of the slave trade in 1807 almost put an end to trade in West Africa for two generations; and the abolition of slavery in 1833 brought ruin to the West Indies, because the emancipated negroes would not work, finding life very easy in that climate.

**The West Indies.**—After the middle of the nineteenth century, however, a revival began in the West Indies, largely owing to the coming of free labour from India, especially to Guiana and Trinidad. But the government of the lazy and illiterate negroes was not easy especially as it rested in the hands of their one-time masters. In 1865 a dangerous rising broke out in a corner of Jamaica. Martial law was proclaimed, and the rising was put down promptly by the Governor, Mr. E. J. Eyre. But ugly deeds were perpetrated. A vehement controversy arose in England regarding the conduct of Governor Eyre, which became a party question.\*

**Abandonment of Self-Government.**—The controversy led to an unexpected result. It was felt that the government of ex-slaves by their ex-masters was liable to lead to abuses. The planters themselves found the position invidious, while they hated the idea of admitting the negroes to civic rights. Accordingly, at the request of the planters themselves, the system of representative government, limited to white men, which had existed since the seventeenth century, was abolished in 1866, and Jamaica became a Crown Colony, ruled by a Governor responsible to Downing Street. Most of the other West Indian colonies followed suit. This might seem a retrograde step, but it seemed plain that representative institutions were inappropriate to countries in which there was a white aristocracy amid an overwhelmingly larger population of blacks, at any rate until the blacks were educated and more fully civilised. The principle thus established became a general rule throughout the British Empire. In the backward regions of the tropics self-government has been withheld, and the mother-country has retained control.

**West Africa.**—In West Africa there were three British colonies—Gambia, Sierra Leone, and a group of trading-stations on the Gold Coast.† For a time, after the abolition of the slave trade, these stations were almost abandoned. But presently a new traffic in palm-oil arose; and there were a number of mission stations, which

\* Carlyle wrote violently in favour of Governor Eyre (Latter-day Pamphlets).

† See School Atlas, Plate 56c.

were doing good work among the native tribes of the hinterland. In 1843, therefore, Government resumed control, and established a protectorate over some of the tribes. A little later the Danish and Dutch Governments, finding that their forts on the Gold Coast were run at a loss, sold them to the British Government. The Dutch had been in the habit of paying tribute to the savage king of Ashanti. This tribute now ceased; the slave trade, on which he had thriven, had come to an end; and it was no longer safe for him to raid the coast tribes. In 1873 this savage potentate therefore attacked the Gold Coast colony. An expedition under Sir Garnet Wolseley was sent to deal with him; the Ashanti power was broken; the trade routes to the interior were thrown open; and the Gold Coast began to prosper. Meanwhile, in 1861, the islands of *Lagos* had been occupied by the navy as a base for attack on the slave trade which was carried on in this region, and against which the British Navy wedged incessant war. Lagos soon became also a valuable trade centre, being the outlet for the rich palm-bearing region of the Oil Rivers. Because of the growing commercial importance of palm-oil, the West Coast was again becoming valuable; and Britain held the predominant position in all this region. Her missionaries as well as her traders were everywhere; many native tribes petitioned to be taken under her protection. But the home Government refused all these requests, being unwilling to extend its obligations.

**The Pacific Islands.**—In very much the same way British influence had become preponderant in the Pacific. British traders and British missionaries visited all the islands. There were some French traders and missionaries also, and a few Germans. The French annexed the islands of Tahiti (1843) and New Caledonia (1853). Many islands petitioned to be taken under British protection, no doubt under the influence of the missionaries. In 1870 a conference of the Australasian colonies demanded that the home Government should declare a protectorate over most of the islands. But the home Government would not listen to these demands; it wanted no more territory.

**Annexation of Fiji.**—In 1871, however, its hand was forced. Many traders, being subject to no control in the islands, were scandalously maltreating the natives, carrying them off in batches for forced labour, either in Australia or on the islands where sandalwood could be got. These iniquities were rousing hatred for the white man among the islanders. In 1871 the heroic missionary, Bishop Patteson, was murdered in one of the Santa Cruz islands in revenge for the misconduct of a trading vessel. This aroused strong feeling at home; and in 1872 Gladstone's Government passed an Act to regulate the Pacific trade, and to establish a High Commissioner, with powers to enforce these rules on all British subjects. But the High Commissioner had to have a headquarters. In 1874, therefore, the Fiji Islands were annexed, on the petition of their inhabitants, and became the centre of a vague protectorate over all the islands not annexed by other Powers. In the Pacific, as in West Africa, the

British Empire went on growing despite all that the home Government could do to prevent it.

### 5. THE EXPLORATION OF TROPICAL AFRICA

Africa was the first continent whose outline was revealed to Europe by the great explorations of the fifteenth century. It was the last continent to yield up the secrets of its interior. Down to 1850 very little was known of the Continent, beyond the coastal regions, and current maps were either empty, or filled with imaginary rivers and mountains. In the quarter of a century following 1850 all the main features of the Continent were revealed by a remarkable series of explorations, its immense riches were disclosed, and it lay ready to be exploited by the European powers.

**David Livingstone.**—The work of discovery was done by a

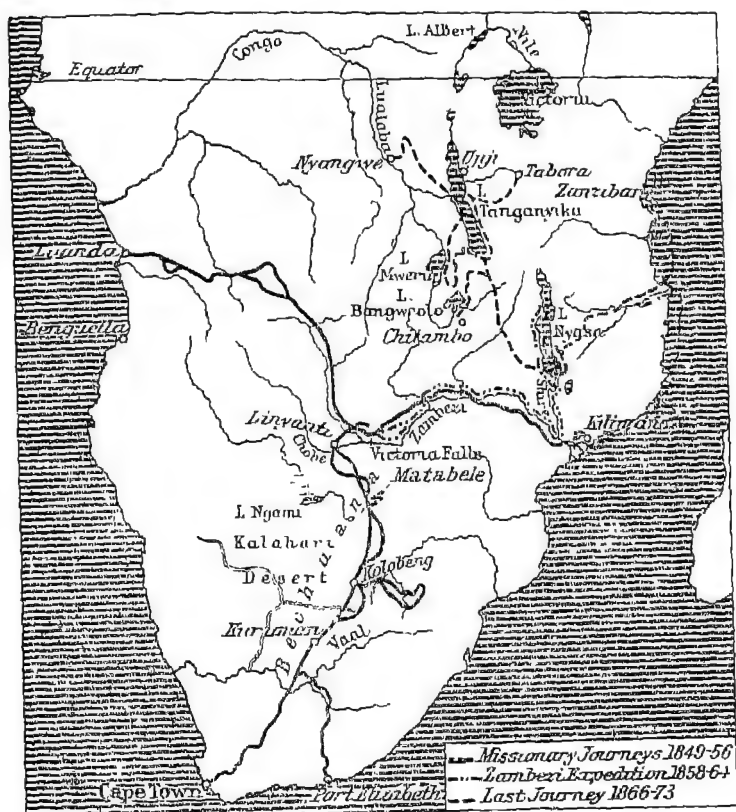


Fig. 43—Livingstone's Explorations.

host of explorers, British, French, and German.\* But the most remarkable work was done by British explorers; this was natural

\* See the larger Atlas, Plate 88.

seeing that British traders and missionaries were more active than those of any other country in every part of the African coast. The greatest of them all was David Livingstone.\* He was the son of Scottish working people, and had paid for his training as a missionary by working at the loom. In 1840 the London Missionary Society sent him to Kuruman, in Bechuanaland, far to the north of Cape Colony. There he saw what savagery meant, and the degradation and cruelty which it involved. To open up Africa, and to bring to bear upon it the influence of Christianity and civilisation became the passion of his life. In 1849 he made his way to Lake Ngami and the great River Zambesi, with only such resources as a lonely missionary could command. In 1853 he explored the course of the Zambesi, and crossed the continent from shore to shore. Between 1858 and 1864, under a commission from the British Government, he explored the Zambesi valley further, as well as Lake Nyasa, the southernmost of the great African lakes. In 1866 he set forth on the last and longest of his journeys, which ended with his death in 1873. During this journey he mapped out a great part of Western Africa, and the upper valley of the Congo. For courage and devotion, the single-handed achievements of this noble man have never been surpassed.

**Other Explorations.**—Other explorers were at work during the same years. Button and Speke discovered the great lakes Tanganyika and Victoria ; Speke and Grant traced the course of the Nile ; Cameron crossed the continent from Zanzibar to Banguela ; a series of French and German explorers crossed and recrossed the Sahara. Finally, in 1874-1877, H. M. Stanley (who had previously found Livingstone) traced out the course of the mighty River Congo, and disclosed the enormous potential wealth of its valley. The interest of Europe in Africa had been growing as its secrets were revealed. Stanley's journey, which came when Europe had settled down after the Franco-Prussian war, brought this interest to a high pitch, and started the rush for territory in Africa which took place during the next twenty years.

**Character of the Empire.**—The British Empire as it was in 1880 was already the most gigantic collection of territories which had ever in the history of the world been brought under a single political system. It spread into every continent and was washed by every ocean. Its greater members were linked together by innumerable trading-posts and calling stations—Gibraltar, Malta, Aden, Mauritius, Singapore, Hong-Kong, and many others. It included peoples of every grade of civilisation, and immeasurable natural resources. Naturally it was regarded with envy by the European nations, who were just beginning to desire external possessions.

**Its Incoherence.**—Yet the British people as yet attached comparatively little value to it. It had grown up almost by accident, mainly during the century since the loss of the American colonies.

---

\* There is a short *Life of Livingstone* by Thomas Hughes (*English Men of Action*).



It was not held together by any rigid system of control. The people in Britain vaguely assumed, at this date, that some day its members would part company and become independent. It was not held together by force, for the military forces of Britain could dispose were very small. It was not, in any sense of the term, an "empire" at all, since its main feature was complete self-government for its English-speaking members. In other regions, a recognition that it was the primary duty of the ruling power to think first of the interests of its native subjects and to protect their rights and usages. These features had been mainly to the work of the colonial enthusiasts of Wakefield and to the work of the missionaries and their influence at home.

**Growth of Imperial Sentiment.**—In the years before 1880 a sense of pride in this extraordinary empire was beginning to grow up in Britain. One sign of it was the publication, in 1880, of an excellent book with the significant title of *Greater Britain* by Charles Dilke, a young Radical who became a member of Gladstone's Government in 1880, and who was an intimate associate of John Lubbock, Chamberlain, another fiery Radical of that day: Dilke's *Greater Britain* may be described as the heirs of the tradition of John Ruskin, John Lubbock, Durham, and the Radical Imperialists of the thirties. Another sign was the emphasis which Disraeli continually laid upon Britain's imperial interests. A third sign was the beginning of a demand for Imperial Federation, which started with W. E. Forster, the author of the Education Act of 1870. The imperial spirit was at its height in Britain at the very moment when the desire for over-sea expansion was beginning to capture the European peoples.

#### SUPPLEMENTARY READING ON BOOK VIII

The subject-matter of this Book is much more fully covered in Vol. II and X of the *Short History of the British Commonwealth* (Vol. II, pp. 200-210; Vol. X, pp. 1-10). Trevelyan's *History of England in the Nineteenth Century* is a good and readable short book; for fuller detail, refer to Marriott, *England in the Nineteenth Century*, or the two volumes of Longmans' *Political History* by Broderick and Fotheringham (1802-1837) and by Low and Sanders (1837-1902). The *English Constitution* gives a classical description of the working of the system during this period. For the contemporary history of Europe, which is very slightly touched upon in the text, there are many good summaries; the best is C. H. Hazen's *Europe since 1815*. On special aspects, Munro's *Imperialism and Internationalism*, *National Self Government*, and *Expansion*; *English Prime Ministers in the Nineteenth Century*, edited by J. A. Roberts, is a collection of useful but unequal essays by various hands. Piers Plowman's *Social and Economic Histories* (by N. P. Spalding) is useful. For details about India, V. A. Smith's *India*, Rice Holmes' *Indian Mutiny* is well worth reading. On Canada, Grant's *Short History*; on New Zealand, Reeves' *History of Australia*; on South Africa, Theal's *South Africa* (Story of Nations); on England should be read not only as a good survey but also as a book which creates imperial sentiment.



BOOK IX

THE RIVALRY OF WORLD-POWERS  
AND THE RISE OF NEW SOCIAL AIMS

(1880—1914)



## BOOK IX

### THE RIVALRY OF WORLD-POWERS AND THE RISE OF NEW SOCIAL AIMS (1880—1914)

THREE outstanding features marked the generation which lay between the fall of Disraeli and the outbreak of the Great War. They affected not only the British peoples but the whole world.

One was the eager imperialist rivalry of the European Powers, which led to the rapid partition of all the unoccupied regions of the world, the extension of the control or influence of European civilisation over the whole globe, and the emergence of a group of world-powers whose mutual fears and suspicions were among the causes of the Great War. Alongside of this went the grouping of the Great Powers into two rival alliances, armed to the teeth, and watching for an opportunity to take advantage of one another. Britain had her share, and more than her share, of the new territories occupied during this period; and her pride in her vast dominions grew rapidly. She strove to hold aloof from the rival alliances, but was in the end inevitably drawn into association with one of them.

A second feature of this period, closely related to the first, was the growth of a strong nationalist spirit among some of the lesser peoples of Europe, and also in the lands outside Europe. Within the British Empire it was seen in the growing nationalism of the great Dominions, in the rise of a nationalist movement in India, in the nationalist aspirations of the South African Dutch, and above all in the formidable nationalist movement in Ireland. These movements were partly a protest against the dominating power of the great empires. It was an extremely difficult problem to discover how these nationalist aspirations could best be dealt with. Some thought they should be met with sympathy; others thought they should be crushed out by force.

The third feature of the time was the disappearance of the satisfaction with the social results of industrialism that had marked the middle of the nineteenth century. The conviction grew that the mass of working men and women did not get their fair share of the wealth that their labour helped to produce, and a demand arose that the power of the State should be used to rectify these inequalities, and to secure better conditions of life for the masses. In their extreme form these beliefs led to a revival of Socialism, that is, to a demand that the State should assume control of the whole process of wealth-production. But even those who thought that such drastic measures would be both impracticable and ruinous shared the growing belief that the power of the community ought to be more boldly used for the protection of the weak and the improvement of the conditions of life. This increasingly became the main object of political action. These ideas were at work not only in Britain, but in all the Dominions, and in all the European countries.

We are still too near the events of this period (which falls entirely within the lifetime of living men) to be able to form a sure judgment about them. But a period in which European civilisation was completing the conquest of the world, in which the question of the rights of peoples to freedom was being raised in new forms, and in which communities were beginning to strive to use their power to bring about a wider diffusion of happiness, is clearly a period that deserves to be studied and understood. The problems raised by this period were so tremendous that in the end they brought about the most terrible war in human history—a war that certainly marks a decisive turning-point in the affairs of the British peoples and of the world.

## CHAPTER XLVII

### NATIONALISM AND IMPERIALISM (1880—1895)

#### 1. GLADSTONE'S SECOND GOVERNMENT (1880—1885)

WHEN Gladstone was returned with a large majority at the election of 1880 it seemed as if a new period of Liberal ascendancy was about to begin. But his second ministry was involved in difficulties from the moment of its formation.

**Chamberlain and the Radicals.**—To begin with, the Cabinet was deeply divided. A strong Radical movement was rising within the Liberal party, which filled the Whig members of the Cabinet with fear. Its leading spokesman in the Cabinet was Joseph Chamberlain, a Birmingham manufacturer who had done great work in the municipal government of Birmingham, and who was ready to make bold use of the power of the State to improve the condition of the people. He was an unflinching democrat, advocating universal suffrage and payment of members, and very scornful of the House of Lords. To pay for the cost of great social reforms, he wanted to impose heavy differential taxation on the rich, as a just "ransom," to be paid by those "who toil not neither do they spin." He also advocated free education, and the revival of British agriculture by the compulsory purchase of land for small holdings. To the Conservatives he appeared to be a red revolutionary; and as he did not hesitate to express his opinions openly, without any regard to the views of his colleagues, Gladstone had great trouble in keeping his Cabinet together. Chamberlain was the spokesman of the rising demand for a policy of social reconstruction, and as he was, next to Gladstone himself, much the ablest man in the Government, he had a strong hold upon the rank and file. He was also an imperialist, sharing with his friend Dilke, another advanced Radical, a strong belief in the importance of strengthening the Empire.

**Domestic Reforms.**—In spite of Radical pressure, however, the Government was not able to achieve very much in the direction of domestic reform, partly because its attention was engrossed by a succession of difficult foreign and colonial problems, partly

because the Irish party and a small group of Conservatives led by Lord Randolph Churchill were doing their best to make the conduct of public business impossible by parliamentary obstruction—with such success that a complete breakdown of the system of parliamentary government almost seemed to be imminent. Nevertheless, some important changes were made. Attendance at school was made compulsory for all children (1881); this was the logical consequence of the Act of 1870, but it could not be required by that Act, because the schools had not then been provided. Employers were made liable for accidents to their employees while at work (1880); this was the beginning of a long series of laws which imposed new obligations upon employers. A married Women's Property Act (1882) undid the gross injustice whereby the property of married women had hitherto belonged to their husbands; this was the beginning of the movement towards equal rights for women. Finally, in 1884, the Third Reform Act was passed, which conferred the vote upon agricultural labourers and upon all householders in towns; this practically established democracy, so far as the male half of the population was concerned. There was a sharp conflict with the House of Lords over this Act, and an agitation for the "mending or ending" of that House was started. But the Lords accepted the Act on condition that it was accompanied by a Redistribution Act, whereby the country was divided into single-member constituencies of approximately equal size.

**Parnell and Ireland**—Ireland occupied most of the time of Parliament, because the Irish problem had reached a critical stage. Parnell had now become the leader of the Home Rulers, and under his strict discipline they so greatly hampered the course of discussion that the traditional freedom of debate, which the House of Commons had always prized, had to be seriously restricted. Parnell and his colleagues did not regard themselves as members of a united parliament, but as the spokesmen of a subjugated nation, who would use every means, including if need be the wrecking of Parliament, to win their national independence. He had become the "uncrowned king" of Ireland. The Land League, which he had founded in 1879, was stimulating the tenants to refuse payment of their rents. When a tenant was evicted, the order was that any one who took his farm should be, in Parnell's words, "treated as a leper"; and the name of a land agent, Captain *Boycott*, who was a victim of this treatment in 1880, has been added to the dictionary as a synonym for this kind of ostracism. Crimes of violence, including even midnight murder, became common: there were over 2,000 cases in 1880. Parnell did little to discourage these outrages, though he was not responsible for them. The American-Irish organisations of the Fenians and the Clan-na-gael were busily at work.

**The Irish Land Act.**—Gladstone's Government dealt with this terrible situation in two ways: first by trying to remove the real grievance; secondly, by strictly enforcing the law. For the first purpose the *Land Act* of 1881 was passed. It established a land court, empowered to fix fair rents on the application of either landlord or tenant; once the rent was fixed it could not be altered for fifteen

years. At the same time, the Act provided that the State should advance three-quarters of the purchase price to any tenant who chose to buy his land. This was the boldest interference with landlord-rights that had ever been undertaken. It aroused furious indignation among English landlords; but it did not satisfy Parnell, who wanted nothing short of Home Rule.

**Kilmainham and Phoenix Park.**—Meanwhile, strong Acts for the maintenance of order had been passed, and numerous arrests were made. At the end of 1881 Parnell and six of his colleagues were lodged in Kilmainham gaol, though there was no proof that he was responsible for the outrages, which increased after his arrest. In 1882 Chamberlain made an agreement with Parnell (the "Kilmainham treaty") whereby Parnell agreed to use all his influence against outrages, and to support the Government's land policy, provided that some provision was made to prevent tenants being evicted for arrears of rent. Here was a chance of peace, which Gladstone eagerly welcomed. Forster, the Chief Secretary who had arrested Parnell, indignantly resigned. A new chief Secretary, Lord Frederick Cavendish, was appointed to initiate the policy of conciliation. But on the day on which Lord Frederick entered Dublin (May 6, 1882) he was murdered in Phoenix Park, along with the Permanent Secretary, Mr. Burke, by a group of Irish extremists, who were known as the Invincibles. This tragedy destroyed, as it was meant to do, the possibility of peace, which had seemed to be within reach. It turned the sentiment of England and Scotland violently against the Irish. For the rest of Gladstone's Government, nothing could be done but to enforce the law. The task was carried out firmly and justly by Lord Spencer. But sullen unrest continued in Ireland, and incessant obstruction in the House of Commons. Some began to ask themselves whether this state of things could continue, and whether some form of Irish self-government was not the only way out of the difficulty; and leading Liberals, such as the great journalist, John Morley, became strong advocates of Home Rule.

## 2. FOREIGN AND COLONIAL ENTANGLEMENTS

Meanwhile the Government had been involved in one difficulty after another overseas.

**Afghanistan.**—First the disastrous Afghan adventure (p. 500) had to be wound up. It was decided to withdraw from Afghanistan, as soon as Roberts' brilliant march to Kandahar had restored British prestige (1880.) The decision was right and necessary, but it looked like accepting a humiliation.

**The Transvaal · Majuba.**—Then followed a rebellion among the Boers of the Transvaal, who had never accepted the annexation of 1877 (p. 505). Gladstone had condemned the annexation at the time; he did not want to see another Ireland created in South Africa\*; and he at once opened negotiations to discover what terms

---

\*See School Atlas, Plate 5C*d* and *e*.



would satisfy the Boers. In the midst of the negotiations, the Boers won a striking success. A small body of 500 British troops had been posted on Majuba Hill, commanding the important pass of Laing's Nek, which leads from the Transvaal to Natal. The Boers crept up the hill in the night, and overpowered its garrison (February 1881). In a military sense, this was an unimportant event; large British forces were assembling, which could certainly have crushed the Boer resistance. Gladstone thought that this incident ought not to stop the negotiations, and that lives ought not to be spent merely for the sake of prestige. He therefore concluded a treaty whereby the Transvaal Boers were granted complete autonomy, subject to their foreign relations being under the control of the British Government. This was regarded, both in South Africa and in Britain, not as an act of magnanimity, but as a humiliating surrender; and the troubles which followed later were attributed to it. It is probably true that the more ignorant Boers thought they had defeated the British Empire, and were encouraged to hope that they might in time secure the aim of an independent Dutch South Africa; for among them, as in Ireland, the nationalist spirit was at work. Three years later the agreement was revised in the *Convention of London* (1884), which provided that the Transvaal should not make a treaty with any other State except the Orange Free State unless the British Government assented.

**Partition of Africa.**—The Gladstone Government also had to deal with the first movements of the European Powers towards the Partition of Africa. That question will be dealt with elsewhere. It was a problem of a new kind, and involved difficult relations with both France and Germany. The attitude adopted by the Government was to welcome the participation of other Powers in the civilisation of Africa, and to secure (as was done in the Conference of Berlin, 1884) that in the annexed territories slavery should be prohibited and freedom of trade, so far as possible, secured. It also declared a protectorate over *Nigeria*, where British trading interests were menaced by the advancing power of France.

**Russia and India** —In 1885 a very dangerous situation arose with Russia, and war was almost precipitated. The advancing Russian forces in Central Asia came into collision with the Afghans at Penjdeh. For a moment war was so near that war-credits were asked from the House of Commons, the army and navy were ready for action, and Port Hamilton, on the coast of China, was occupied as a naval base against Vladivostock in case of need. But the danger was staved off by the appointment of a joint commission to delimit the frontier.

**The Egyptian Question.**—The most serious entanglement into which Gladstone's Government found itself drawn was in Egypt. Since the time of Mehemet Ali (p. 446) Egypt had been a practically independent State, though its Khedive was nominally a vassal of the Sultan. From 1863 to 1879 the reigning Khedive had been a reckless and ambitious spendthrift, Ismail Pasha. He had completed the conquest of the Egyptian Sudan (the upper valley of the Nile),



Fig. 45.—Egypt and the Sudan.

which Mehmet had begun.\* The work had been done for him by two adventurous Englishmen, Samuel Baker and Charles George Gordon, who successively acted as Governors of that province, and carried Ismail's dominion as far south as the great lakes. Gordon,† who was in the Sudan from 1874 to 1879, was one of the noblest of Englishmen: at once a mystic, a saint and a soldier, he could command the devotion of simple folk, and in the eyes of the British people he was a hero of romance.

**The Revolt of Arabi.**—The cost of this and other adventures, as well as his general extravagance, reduced the Khedive almost to bankruptcy; this was why he sold his Suez Canal shares to Disraeli in 1875. He also borrowed wholesale from French and English financiers. In 1876, in order to obtain some security for these loans, the financiers obtained the establishment of an international *Caisse de*

\* See School Atlas, Plate 56a; Introduction, p. 31, fig. 48; and the larger Atlas, Plate 58a and b.

† There is a short Life of Gordon by Sir W. Butler (English Men of Action). Lytton Strachey has a brilliant essay on Gordon in *Eminent Victorians*.

*la Dette* in Egypt: it received about half of the revenues of Egypt, and also had some rights of control over the rest. Thus European finance wielded great influence in Egypt, and all the European Powers had a voice in Egyptian affairs. Ismail misgoverned Egypt so badly that in 1879 the Powers urged the Sultan of Turkey to depose him, and his son Tewfik took his place. But the Egyptian army resented both the power of the European financiers and the control of the Turkish royal house. A nationalist movement sprang up among the Egyptian officers, led by Arabi Pasha, and in 1882 they got control of the Egyptian Government. The anti-European spirit which they represented was very dangerous to the Europeans in Egypt, especially as the country was falling into a state of anarchy. Their lives and property were seriously menaced.

**British Intervention.**—What was to be done? The Powers consulted together, but could not agree. The Sultan of Turkey would take no responsibility. As France and Britain were chiefly concerned, the French Government proposed that they should take joint action. A combined fleet was therefore sent to Alexandria. But when a nationalist tumult broke out in that city, and Europeans were murdered, the French fleet withdrew, the French Government having in the meanwhile been changed. The British fleet bombarded the forts of Alexandria, and landed marines to protect the Europeans. But this was not enough. Order must be restored. As nobody else would act, the British Government sent an army under Sir Garnet Wolseley, which defeated Arabi at *Tel-el-Kebir* (September 1882), captured the leaders of the revolt, and occupied Cairo. This was done, however, on a pledge that the British army would be withdrawn as soon as order was restored; and the Government evidently believed that this could be quickly accomplished.

**Baring in Egypt.**—In reality it was an extremely complex and difficult task to restore order and competent government in a country which was so laden with debt, and which had been so long and so badly misgoverned. The position of the British representative was entirely anomalous. Britain was not the suzerain power in Egypt: that position belonged to Turkey, and Turkey made difficulties. More serious, the *Caisse de la Dette* controlled half the revenues, and wielded great powers; while Egyptian sentiment was easily offended. It demanded a man of extraordinary powers to deal with such a situation. He was found in Evelyn Baring, afterwards Lord Cromer, who was sent to Egypt as "Consul-General" in 1884, and achieved miracles during the next few years.

**The Mahdi in the Sudan.**—A further difficulty arose from the question of the Sudan. In 1881 a fanatic claiming to be the Mahdi (or Messiah) had arisen in the far south of that huge province. He appealed to the fanaticism of the tribesmen, and rapidly made himself master of a great part of the Sudan. In 1883 an Egyptian army under a British officer, Hicks Pasha, was sent out to deal with him. It was annihilated. This meant that the Sudan was lost; and that Egypt also would probably be overrun unless the British army remained to protect it.

**The Death of Gordon**—What was to be done about the Sudan? Did the undertaking to “restore order” mean that Britain must reconquer the Sudan for Egypt and engage her soldiers in a war in the heart of Africa? The Government declined to accept this view, and decided that the Sudan must be abandoned. But in that case the Egyptian garrisons in the province must be withdrawn. To perform this difficult task, General Gordon was asked to return to the Sudan. He undertook the task (1884). But when he was back in Khartoum, the Sudanese capital, he found it hard to see the province he had once ruled given over to savagery. He delayed the evacuation, sending bewildering and contradictory messages to Baring at Cairo. Soon it was too late. He himself was isolated. It became necessary to send an expedition to relieve him. The Government wavered. The experts quarrelled about the right route. Finally, after unhappy delays, a force under Wolseley made its way up the Nile, only to find that Gordon had been overwhelmed and killed (January 1885). The news of the hero’s death was heard with shame and anger at home. All the blame was visited, not quite fairly, upon the Government. Nothing in all its varied history did it more harm.

**Fall of the Government.**—Everything had combined to harass the second Gladstone Government. Divided among themselves by the quarrels between Whigs and Radicals, they had had to face a practical breakdown of the parliamentary system, a state of revolution in Ireland, a menace of war from Russia, a difficult situation in South Africa, and an extraordinarily complex problem in Egypt. Their prestige declined rapidly; and, being defeated on a detail of the budget of 1885, they were not sorry to resign.

### 3. GLADSTONE AND HOME RULE

**The Election of 1885.**—For a few months, until the time came for a general election, the Conservatives, though in a minority, took office under Lord Salisbury. The most critical question with which they had to deal was that of Ireland. They let it be known that they hoped to govern Ireland “without exceptional measures”; and Lord Carnarvon, their Lord-Lieutenant of Ireland, in trying to conciliate the Irish leaders, conveyed the impression that his party would be willing to go some way towards Irish self-government. The result was that in the election every Irish vote in England and Scotland was given to the Conservatives. Meanwhile, Gladstone had come to the conclusion that the only way of making peace, and of restoring the efficiency of Parliament, was some measure of self-government for Ireland. He did not announce his conversion until after the election, but he privately offered Liberal support to Lord Salisbury if he would undertake the solution of the problem. The election (December 1885) confirmed Gladstone in his opinion. It gave the Liberals a majority of eighty-six over the Conservatives. But there were eighty-six Irish Home Rulers. The Home Rulers held the balance, and could make government impossible. In these conditions parliamentary government was unworkable.

**The First Home Rule Bill.**—Gladstone resolved to make the concession, and to make it, fully. But his decision shattered his party. Some of his leading Whig supporters, notably Lord Hartington, declined to join his Government. Chamberlain, who had advocated the establishment of a limited degree of self-government for Ireland, joined at first, but withdrew when he discovered how far Gladstone meant to go. Gladstone's scheme gave Ireland complete autonomy in local affairs, but made a reservation for foreign policy, defence and customs duties; that is to say, it did not go nearly so far as the scheme ultimately adopted in 1921. But it would have been accepted by Parnell and his followers; and, combined with a large scheme of land-purchase (which was also introduced) Gladstone believed that it would have brought peace. Undismayed by the secession of many of his leading followers, the old man—he was now seventy-six years of age—persisted with his proposals, fighting with a courage he had never surpassed. He was defeated on the second reading by a majority of thirty. Ninety-three Liberal members voted against him. They included nearly all the Whigs, led by Lord Hartington; some of the old-style Radicals, led by John Bright; and some of the modern Radicals, led by Chamberlain. The Liberal party was shattered. In particular, it had finally lost nearly all the old Whig aristocrats who had clung to it through all the troubles of the nineteenth century.

**Fall of Gladstone.**—From Parliament Gladstone appealed to the country. The verdict of the country went definitely against him. It returned 316 Conservatives and 78 Liberal Unionists against 191 Liberals and 85 Irish Nationalists. An attempt to find a basis for the reunion of the divided Liberals (1887) came to nothing. More and more the Liberal Unionists—the Whigs easily, the Radicals with greater difficulty—threw in their lot with the Conservatives. Nevertheless, the old man went on fighting during the next six years: the cause of Irish self-government had become the dominating passion of his life.

#### 4. THE FIRST UNIONIST GOVERNMENT (1886—1892)

**Salisbury in Power.**—For six years, from 1886 to 1892, a Conservative Government, with Lord Salisbury\* as Prime Minister, held office with the support of the Liberal Unionists. The main interest of these years lay in foreign policy and the expansion of the Empire. By a series of agreements, in nearly all of which Britain played a leading part, the partition of Africa and of the Pacific islands was completed; and the result was an enormous increase of the area of the British Empire. The character and results of this expansion will be described in the next chapter. Lord Salisbury's reputation mainly rested upon his conduct of foreign affairs. The pivot of his policy was the maintenance of friendly relations with Germany, to whom he ceded the island of Helgoland as part of a bargain about

---

\*There is an essay on Salisbury by C. H. K. Marten in Hearnshaw's *Prime Minister's of the 19th Century*.

Africa (1890) ; but he was careful to stand aloof from the rival alliances into which the Great Powers were drifting, and he maintained an attitude of "splendid isolation." Secure in her naval strength, Britain seemed to be able to stand alone. The strength of the navy was substantially increased by the Navy Act of 1887, and the principle was laid down that the British fleet must always be equal to that of the next two naval Powers combined. The two Powers against whom the navy was measured were, at this date, France and Russia, who were regarded as Britain's most dangerous rivals.

**Queen Victoria's Jubilee.**—The vigorous imperialism of the Government reflected the growing imperialist sentiment of the country. This sentiment found a focus when, in 1887, the Jubilee of Queen Victoria was celebrated with brilliant imperial pageantry. The queen had remained in seclusion ever since the death of her adored husband in 1861, and this seclusion had been so unpopular that in the 'seventies there was a considerable growth of republican opinion. But she had always been exemplary in her devotion to duty, and although her people saw little of her, she had exercised a real influence upon successive governments, especially in foreign affairs, while loyally observing the duties of a constitutional sovereign. She was a masterful lady, with strong predilections : she intensely disliked Gladstone, who "treated her as if she were a public meeting" ; she had a warm affection for Disraeli, who comforted her with chivalrous deference and delicate flattery ; but she never allowed her strong personal and party preferences to stand in the way of the constitutional duty which Melbourne had taught her fifty years before. Now, when the inevitable retrospect was made of fifty years of astounding progress, this little old lady in widow's clothes seemed to be the very symbol of the unity of the far-scattered British peoples and of their long history. Her Jubilee became a pageant of empire. It was attended by the princes of India and the prime ministers of the free daughter-nations ; and the occasion was seized for the first *Colonial Conference* in which the common affairs of the Empire were discussed.

**Growth of Social Unrest.**—Alongside of the growth of imperial sentiment there was a growing dissatisfaction with existing social conditions, and a demand for social reconstruction. Charles Booth began (1889) his studies on *The Life and Labour of the People in London*, which showed how large a proportion of the population lived below the poverty-line. General Booth turned his Salvation Army (founded in 1878) to work among the "submerged tenth," and his book *In Darkest England* (1890) revealed terrible conditions. Arnold Toynbee (1883) began the intimate study of slum conditions and started the creation of University Settlements. There was a rapid revival of socialist theories, stimulated by the teaching of an American writer, Henry George, whose book *Progress and Poverty* was published in 1880. A Social Democratic Federation had been founded (1881) to preach the doctrines of Karl Marx. It appealed to many young workmen, such as John Burns, who was imprisoned in 1887 for addressing a prohibited Socialist meeting in Trafalgar

Square. The Fabian Society (founded in 1883) was working out a new body of Socialist doctrine, and its tracts had myriads of sympathetic readers. New ideas were fermenting.

**The New Trade Unionism**—A significant change was also beginning in the trade union movement. Since the foundation of the Amalgamated Society of Engineers in 1851 (p. 473) its methods had been widely imitated, and powerful national trade unions had grown up in the skilled trades. But the unskilled trades had hitherto failed to organise themselves. In 1888 the match-girls and the gas-workers won remarkable success by strikes, which led to the formation of unions. In 1889 a prolonged strike among the London dockers—the most difficult of all classes of workers to organise—was led to victory by John Burns, and awoke widespread sympathy. The unions of unskilled workers, unlike their predecessors, could not levy large subscriptions, or promise substantial benefits to their members. They had to adopt other methods to achieve their aims. In place of the conservative policy of the older unions, they began to advocate more vigorous strike action, and also political action through Parliament. The emergence of the New Unionism, as it was called, was a political event of the greatest importance. As yet it was only beginning.

**Domestic Reforms.**—The Conservative Government of 1886—1892 was neither unsympathetic nor unprogressive. The ablest of its younger men, Lord Randolph Churchill, had Radical sympathies; he was opposed to foreign adventures and large military outlay, and although he had to resign the Chancellorship of the Exchequer because of his lack of sympathy with the policy of the Government, his influence remained strong. Chamberlain, leading the Liberal Unionists in the Commons, had not ceased to be a Radical. The influence of these men was felt in the valuable legislation which this Government introduced. In 1888, by the *Local Government Act*, it established representative County Councils in every county, which took over the administrative functions of the Justices of the Peace, and thus put an end to the rule of a governing class in almost the last sphere in which it had survived. At the same time, London was endowed for the first time with a central governing body, the London County Council, which promptly entered upon a period of vigorous constructive reform. In 1891, elementary education was made free, though not without many outcries from those who believed that parental responsibility would be undermined. And in the same year a valuable Factory Act prohibited the employment of children below the age of eleven, and reduced the legal hours of labour for women.

**Irish Policy.**—But it was still the affairs of Ireland which engrossed most of the attention of Parliament. The law was steadily enforced, though not without the aid of "exceptional legislation"—the Crimes Act of 1887. Although there were still occasional affrays, and members of Parliament were still liable to be locked up, there was an undoubted diminution of violence. Conservatives attributed this to firm government; Liberals attributed it to the fact

that, since their cause had been taken up by one of the great parties, the Irish could now trust to constitutional rather than revolutionary methods. But with "firm government" was combined an honest attempt to redress the economic ills which had been so long disregarded. A Land Act of 1887 accepted and extended the principles of Gladstone's Act of 1881. A Land Purchase Act of 1891 provided that advances should be made to any tenants wishing to buy their holdings. This did not go so far as Gladstone had proposed to go in 1886, but it was the beginning of a change of attitude which ended in the buying out of nearly all the Irish landlords. At the same time, relief works were undertaken in the congested areas of the west. The Home Rule movement was to be killed by firmness and kindness.

**The Parnell Commission.**—It was not killed, however; the Irish continued to return Home Rule members in undiminished numbers. Meanwhile, Gladstone continued his campaign for the conversion of the British electorate. He believed that he was winning ground, and anticipated a large majority at the next election. He was greatly helped by a series of events which happened in 1888 and 1889. The *Times* published a series of articles asserting that Parnell had been directly responsible for the outrages of the early 'eighties, and printed documents which, if genuine, would have proved its case. Parnell denied the charge, and demanded an inquiry. It was held before three judges; and in cross-examination it was proved that the incriminating documents had been forged by a wretched journalist named Pigott, who committed suicide. This led to a strong reaction in favour of Parnell. But this was offset when, in 1890, Parnell failed to offer any defence when charged as co-respondent in a divorce case. The Roman Catholic Church turned against him; the majority of his party deserted him; the Nationalist party in Ireland was hopelessly split; and the Nonconformists of England were alienated. Parnell died in 1891, at the age of forty-six. Next year came the general election which had been expected to give a majority for Irish self-government. It gave a majority, indeed, but a majority of only forty, including the eighty-five Irish members.

## 5. GLADSTONE'S FOURTH MINISTRY

**The Second Home Rule Bill.**—In these depressing circumstances Gladstone, now eighty-three years old, formed his fourth ministry, and introduced a second Home Rule Bill. He fought the Bill through all its stages in the House of Commons with unabated courage and skill. But the House of Lords, as was inevitable, rejected it by an overwhelming majority. Gladstone would have liked to appeal once more to the country. His colleagues, anxious to show a record of other work, overruled him. Moreover, they were in favour of an expenditure on the Navy larger than he was prepared to accept. In 1894, therefore, he resigned, and withdrew from the arena in which he had played so great a part for sixty-three years. Once again, in 1896, he emerged from his retirement, to



denounce the Turks for Armenian massacres, as he had once denounced them for Bulgarian atrocities. In 1898, his fiery and tireless life came to an end.

**The Rosebery Government.**—There was a sharp division among his colleagues, which was accentuated when the queen gave the office of Prime Minister to the Foreign Secretary, Lord Rosebery, rather than to his rival, Sir William Harcourt, the Chancellor of the Exchequer, and the feud between these men and their adherents embittered the remainder of this Government's life. Nevertheless the Government was active. In the Budget of 1894 (which was safe from interference by the House of Lords) Harcourt carried a very important financial change, by imposing heavy "Death Duties" on estates at death, graduated according to the size of the estate. This attack upon great wealth was bitterly criticised as an unjust scheme of confiscation, but it has become an essential part of the financial system, and has been greatly extended by later governments.

**Fall of the Liberals.**—Again, the Local Government Act of 1888 was supplemented by an Act which established district and parish councils, thus completing the machinery of democratic local government. Several further Bills were introduced in the House of Commons, but failed to reach the Statute-Book: a Bill for the disestablishment of the Welsh Church; a Bill to ensure the payment of compensation to injured workmen; a Bill for local option in the licensing of public houses. With a House of Lords which was permanently and predominantly Conservative, none but a Conservative Government could carry any important legislation unless it had an overwhelming majority in the country. And this the Rosebery Government did not possess, as was shown when, in 1895, being defeated on a "snap" vote, it appealed to the country. Its opponents obtained an overwhelming majority. Thereafter, for ten years, the Liberals, divided and disheartened, dwelt in the wilderness; and a powerful Government, absorbing both Conservative and Liberal Unionists, led the country through a very critical time.

## CHAPTER XLVIII

### IMPERIAL EXPANSION (1880—1895)

#### 1. THE PARTITION OF AFRICA

**The New Imperialism.**—The most remarkable feature of the world's history during the last quarter of the nineteenth century was the rapid creation, almost without war, of a series of great colonial empires by the Powers of Europe. When this process began, the only European States, other than Britain, which possessed any territories outside Europe, were the old colonising Powers, Spain, Portugal, Holland, and France; and, with the exception of France, they held only fragments of their old dominions. Spain had Cuba and Porto Rico in the West Indies, the Philippines in the Far East, and the Canary Islands in the Atlantic: she was to lose them all

except the Canaries before the end of the century. Portugal had a few decaying ports in Angola and Mozambique, on the west and east coasts of Africa. Holland had her rich empire in the Malay Archipelago, with its capital at Batavia.\*

**Ambitions of France.**—France possessed, of her old empire, Martinique and Guadeloupe in the West Indies, a strip of Guiana, Senegal on the West Coast of Africa, a couple of islands in the Indian Ocean, and two towns in India. She, alone of the European Powers, had added to her external possessions during the nineteenth century: she had conquered Algeria, on the north African coast, in 1830, had planted herself in Annam in the Far East, and had taken Tahiti and New Caledonia in the Pacific. France was thus the only European Power which had remembered something of her old colonial ambitions. After the Franco-Prussian War had robbed her of the leadership of Europe, she was tempted to seek consolation in colonial expansion, and for that reason played much the most active part in the new rush for oversea possessions.

**The Congo Free State.**—This began in 1876, when Leopold, King of the Belgians, who was deeply interested in African exploration, called a conference at Brussels on the opening up of Africa †. An International African Association was constituted, with branches in various countries; but the attempt to give an international character to the movement soon broke down. In 1878, however, when H. M. Stanley returned from his exploration of the Congo, Leopold engaged him to organise the administration of the Congo region in the name of the Association. This was the beginning of the Congo Free State (1879). It was administered practically as a private estate of the Belgian king.

**French Activity.**—French explorers had meanwhile been investigating the lands north of the Congo, and this region (later known as French Congo) was claimed by France in 1880. Portugal, however, put forward a claim to the whole of this coast, and indeed to all Central Africa from shore to shore, and this claim had to be decided upon. Meanwhile, starting from Senegal, the French were pushing into Western Sudan, from the Atlantic to Lake Chad and the upper Niger. Between 1880 and 1884 they made many treaties with native chiefs, and began to build up a great tropical empire. This alarmed the British merchants who traded with the west coast. They formed a United African Company, bought out their French competitors in the lower Niger, and in 1884 persuaded Gladstone's Government to declare a protectorate over Nigeria without any clear definition of its limits.

**Italy and Germany.**—Italy entered the race in 1882, when she annexed Eritrea on the Red Sea Coast. And, finally, Germany rapidly pegged out various claims in 1883 and 1884, when she annexed German South-West Africa, and declared a protectorate over Togoland and the Cameroons. At the end of 1814 German

---

\* See the larger Atlas, Plate 84a.

† See School Atlas, Plate 56a, and larger Atlas, Plate 83a,

emissaries also put forward claims to vague territories in East Africa behind Zanzibar. At the same time a group of British merchants, later organised into the British East Africa Company, established themselves in the region to the north of the German territory.

**The Conference of Berlin.**—Thus by 1884 the game of annexation was going on actively in every part of Africa. In that year a Conference was held at Berlin, primarily to decide on the large claims of Portugal (which were summarily rejected) and to define the area of the Congo Free State. The opportunity was used to define the rules of the game, and it was laid down that before an area could be claimed by any Power its occupation must be "effective." The Conference also laid down strict rules against slavery.

**Partition Treaties** —But, in actual fact, the process of partition was settled, not by any European conference, but by a series of treaties between the countries mainly concerned. These were the Great Powers: the little Powers were given no voice in the matter. As British interests were everywhere involved, and as almost every claim put forward by any other Power was challenged by some group of British traders as incompatible with British interests, Britain was a party to all the most important of these treaties. They were mostly negotiated by Lord Salisbury, between 1886 and 1892. The most important of them were two agreements made with France and Germany in 1890 and an agreement with Portugal (1891), which that country very reluctantly accepted, and by which she was compelled to submit to a definite limitation of her territories both in the east and in the west. There were also treaties with Italy, in 1890 and 1894, which defined the limits of the Italian and British or Egyptian territories on the Red Sea and in Somaliland.

**Effects of the Partition.**—Behind all these treaties lay an infinite amount of wrangling and bargaining. There were always groups in Britain who were convinced that British interests were being scandalously sacrificed by the lethargy or timidity of the Government. Yet when the results are summarised, there does not appear to be much substance in these complaints. For the outcome of the period was that while France obtained 3,800,000 square miles of African territory (including the whole of the vast but profitless Sahara desert), Britain obtained 2,700,000 square miles of far more valuable land, while Germany obtained only 933,000, Portugal 790,000, and Italy only 188,000. When it is realised that before the rush for Africa began the British Empire included something like one-fifth of the land-area of the globe, and that the other countries were endeavouring, late in the day, to obtain some counterpoise to her territorial wealth, the surprising thing is, not that Britain did not obtain more, but that she succeeded in obtaining so much, without war or serious conflict. It was indeed a triumph of diplomacy that the partition of Africa should have been carried out without war.

**New British Colonies.**—Disregarding South Africa, Egypt, and the Egyptian Sudan, the new territory which had thus been added to the British Empire, either in the form of wholly new annexations or of great additions to existing possessions, were as

follows, (1) In West Africa, *Sierra Leone* and the *Gold Coast Colony* were both very greatly expanded by the annexation of extensive hinterlands ; while the rich province of *Nigeria*, which alone is more than four times as extensive as Great Britain and Ireland, was wholly acquired during this period. (2) On the eastern side of the continent, British East Africa (now called *Kenya Colony*) and *Uganda* formed an addition to the Empire yet larger than *Nigeria* ; while the hot and barren lands of *Somaliland*, at the mouth of the Red Sea, and the fertile and well-watered region of *Nyasaland*, farther south, were alone more valuable than the whole Italian empire. Most of these new lands were purely tropical territories, unsuited for the habitation of white men ; but they yielded in abundance the tropical produce, notably vegetable oils and rubber, which were becoming essentials of modern industry. In East Africa, however, there were extensive highlands where white men could live and thrive. Thus the English-speaking peoples, who had already annexed, in America, Australasia and South Africa, the areas best suited for white colonisation, acquired control over almost the only areas of this kind which remained.

**Chartered Companies.**—For the development of these new territories, so rapidly acquired, a return was made to the methods of the seventeenth century, by the establishment of Chartered Companies with governmental powers. Thus *Nigeria* was placed under the control of the Royal Niger Company, and East Africa under the British East Africa Company ; while, in the south (as we shall presently see) a British South Africa Company was at work, and in the Far East a Borneo Company. None of these companies, however, survived for long. When the initial period of development was over, they either ceased to exist, or were confined to commercial functions, and the normal system of Crown colony government was established to carry on the work of administration.

## 2. RHODES AND THE EXPANSION OF SOUTH AFRICA

**Cecil Rhodes.**—The most remarkable result of the imperialist expansion of this period was the development of British South Africa. It was, in the main, the work of a single man, Cecil Rhodes. The son of an English country parson, he was sent to South Africa as a boy, to win health. He arrived in time for the Kimberley diamond rush, made a competence before he was nineteen, and returned to Oxford to get an education. Before his return, he had made a lonely journey far into the interior, from which he returned with two convictions which dictated the course of his life. The first was that the British Empire was so noble a fabric of justice and peace as to deserve the devotion of his life ; the second was that his work should be the extension of the British system over as great a part of Africa as possible. The essence of this British system was, for him, the combination of local freedom with imperial unity, and a large tolerance of differences of race. He dreamed of uniting Dutch and British in one great federal State, and of extending its influence over the rich empty lands to the north ; he dreamed also of making all

Africa, in this large sense, British, and his plan of a Cape to Cairo railway was a part of this dream.

**Boer Aggressions.**—When he returned from Oxford, Rhodes devoted himself for some years to organising the diamond industry, and thus winning for himself the wealth and power which he needed as instruments. In 1881, just after Majuba, he entered the Parliament of Cape Colony, being then twenty-eight years old and a millionaire. It was the keynote of his policy to make close friendship with the Dutch, and he formed an alliance with the Dutch leader, Hofmeyr, who was very ready to work for unity. But at this period the Transvaal Boers, fresh from their victory at Majuba, were very restless and aggressive. Few as they were, they raided in every direction. They founded a "New Republic" in Zululand: the British Government recognised this, but to check further advance annexed *Zululand*\* (1888). They subjugated the native territory of Swaziland. They sent out raiders into Bechuanaland on the west, where they started two new republics called Stellaland and Goshen (1883). This was serious, because these lands lay across the line of communication to the north, and might also lead to a junction with the new German settlements in South-West Africa. Rhodes urged that this must be stopped; and persuaded Gladstone's Government to send an expeditionary force under Sir Charles Warren to occupy Bechuanaland, the southern part of which was annexed to Cape Colony, while the northern part became a British protectorate (1884).

**Occupation of Rhodesia.**—The way was now open for an advance into the fertile northern plateau of Matabililand and Mashonaland, now known, in Rhodes' honour, as Rhodesia. There were rumours both of German and of Boer intervention in this desirable land. In 1887 Rhodes sent an agent to the Matabili king, Lobengula, and obtained from him the exclusive right to extract minerals from his territory. On the strength of this, Rhodes founded the British South Africa Company, for which he obtained a charter from the British Government (1889), conferring power to open up and colonise a vast area stretching from the northern boundary of the Transvaal to Lake Tanganyika. In 1889 the first company of pioneers entered the country. Soon they were laying out roads, railways and telegraph lines, and bringing in settlers. This development went on so rapidly in the country of Lobengula's vassals the Mashonas that his warriors, the Matabili, broke into revolt (1893); after some hard fighting, the Matabili were overthrown and their whole territory was annexed. The land thus conquered was a lofty plateau, well suited for colonisation by white men, and but sparsely inhabited by African natives. It was full of mineral wealth, and suitable for every kind of crop. Thus an extremely valuable colony had been added to the British Empire in a very short space of time.

**The Gold-Rush in the Transvaal.**—The annexation of Bechuanaland on the west, and of Rhodesia on the north, completely

---

\* See School Atlas, Plate 56*d* and *e*.

hemmed in the Transvaal. And this was not the only ground for misgiving felt by those Boers who wanted to maintain their purely Dutch civilisation. In 1884 gold was discovered in the Transvaal, and two years later richest goldfield in the world was opened on the Witwatersrand. Immigrants, not all of a desirable kind, flocked in by thousands. The mushroom city of Johannesburg came into existence. In a few years the immigrants—mainly British—formed half the population of the Transvaal, and owned most of its wealth. The older-fashioned Boers, and notably their President, old Paul Kruger, who had left Cape Colony with the Great Trek in 1836, and had lived through all the stormy history of the Transvaal, felt that the character of their country was imperilled. Kruger refused to grant civic rights to the immigrants, though they were paying the bulk of the taxes; he refused even to allow municipal self-government to Johannesburg.

**Rhodes' Policy.**—In 1890 Rhodes became Prime Minister of Cape Colony. He commanded the confidence of both Dutch and British. For half a dozen years he was almost a dictator in Cape Colony; and he was completely a dictator in the new land of Rhodesia away in the north. His dream seemed to be coming true: Dutch and English were almost ready to combine to make a great free State covering all South Africa. Passionately as he believed in the British Empire, Rhodes did not desire that any direct sovereignty should be exercised by the mother-country; for him the Empire was a partnership of free peoples. He believed in home rule for every member of the Empire, and in the frank acceptance of differences of race and religion; that is why he gave £10,000 to Parnell to help his Home Rule agitation. The only obstacle to the unity-in-freedom of South Africa was Kruger and his policy. But Kruger was an old man. The younger Boers were affected by the new ideas. Only time and patience were needed.

**The Jameson Raid.**—This was the situation in 1895, when Rhodes lost patience and, in his own rough phrase, “upset the apple-cart.” Eager to bring the Kruger regime to an end, he lent himself to a scheme whereby the “Uitlanders” of Johannesburg were to revolt, and were to be helped by a small force sent in from Rhodesia. The scheme went wrong. The revolt did not take place. But Dr. Jameson, the administrator of Rhodesia, led a raid with a small force into the Transvaal, where he was ignominiously forced to surrender (Jan. 1896). This act of criminal folly put Kruger in the right. It outraged and alienated Dutch sentiment throughout South Africa. It shattered the good understanding between the two races which Rhodes himself had laboured to build up. It was the beginning of a tragedy which will occupy us in the next chapter.

### 3. THE PACIFIC AND THE FAR EAST

Africa was not the only field of European expansion in these busy years. The Powers were only less active in the Far East, and in the Pacific.

**Burma and Borneo.**—In the Far East, Britain extended her

dominions by conquering the remainder of Burma (1885), which was added to the Indian Empire. Farther South the Malay States recognised her suzerainty. In the Malay Archipelago, where Holland was the dominant power, Britain also had a foothold. As early as 1841 a remarkable Englishman, Sir James Brooke, had established himself as Raja of Sarawak, on the north-west coast of Borneo\*. Sarawak naturally recognised Britain as its suzerain power. So did the neighbouring Sultanate of Brunei. And in the north of this great island a British North Borneo Company, founded in 1881, acquired control over an area of some 30,000 square miles.

**New Guinea.**—East of Borneo lies the still greater island of New Guinea, the nearest neighbour of Australia. The Dutch annexed the western half of this rich island. In 1884 Germany announced the annexation of north-eastern New Guinea. This alarmed Australia, which had for some time been clamouring for the annexation of the island as a measure of security. The British Government reluctantly gave way, and annexed south-eastern New Guinea.

**The Pacific Islands.**—German traders had for some time been active in the Pacific, though the dominant trading interests were everywhere British. Here, therefore, was a possible further field in which the growing German zeal for colonisation might display itself. In 1884 Germany annexed the group of islands now known as the Bismarck archipelago, and changed the names of New Britain and New Ireland to New Pomerania and New Hanover. This, equally with the annexation of New Guinea, aroused the alarm of Australia and New Zealand, which had long been asking that a British protectorate should be extended over the Pacific archipelagoes. Indeed, many of the island peoples had themselves asked in vain to be taken under British rule. Lord Salisbury opened negotiations with Germany, which led (1886) to a treaty whereby a group of archipelagoes in the north were marked off as German, Samoa and other islands were declared neutral, and Germany agreed not to interfere elsewhere in the Pacific. This left a vast, vague "sphere of influence" to Britain, within which, from 1886 onwards, annexation went on steadily; until the great majority of the myriad islands of the South Pacific had been declared British territory.

**Europe and China**—There now remained no sphere open to the ambitions of the Powers save China, the Turkish Empire and Persia. These regions were to be the subjects of controversy during the next period. But already trouble was brewing in China. Since the Chinese War of 1857—1860 European influence had rapidly penetrated the Chinese Empire. The treaty of 1860 had secured free access for traders and missionaries. Numerous mission-stations, schools, and hospitals had been opened. The European trader was to be seen everywhere, and British trade vastly preponderated, especially in the rich valley of the Yang-tse-kiang. Shanghai, the gateway of this area, had become almost a European city. For a

---

\* See School Atlas, Plate 55a, and the larger Atlas, Plates 82-83.

time it had seemed as if the Chinese system of government was going to break down altogether. A serious rising against the imperial government, known as the Tai-p'ing Rebellion, broke out in 1863, and spread to several provinces. To suppress it, the Chinese Government borrowed General Gordon. His success in reorganising the Chinese army and crushing the rebellion gained him the *sobriquet* of "Chinese Gordon," and was the foundation of his fame. Thereafter the Chinese Government set itself to Europeanise its system, borrowing officers from various European countries, especially from Britain. Sir Robert Hart became collector of European customs (1863), and so rapidly did the foreign trade of China grow that this became the chief source of revenue. Warships were ordered from Britain, and a modest navy was organised, mainly by British officers.

**European Pressure.**—The pressure of the European Powers was already beginning. Russia seized the Amur province, and built the port of Vladivostok. France had established herself in Annam and Tong-king, provinces regarded as vassals of the Chinese Empire; and in subjugating Tong-king had found herself drawn into a sort of war with China (1884). She was pressing on the south of the empire, Russia on the west and north, while British influence was penetrating from the sea.

**The Rebirth of Japan.**—Meanwhile, Japan had carried out a reorganisation of her national life far more rapid and complete than China ever attempted. The contact of Japan with the West only began in 1854. A violent reaction against European influence in 1862 had brought an attack from a mixed European and American fleet which proved the superior strength of European methods. Thereupon Japan had deliberately set herself to imitate the methods of Europe. Europe was slow to understand the thoroughness of this transformation. In 1894 its eyes were opened, when, in a war with China, Japan won a victory with a swift efficiency that Europe could not have bettered. The war between China and Japan was a turning-point in the relations between East and West. It opened a restless and difficult period, which added to the complications of European diplomacy for the next eight years, and was ultimately to have an important influence upon the fortunes of the British Empire.

## CHAPTER XLIX

### FOREIGN COMPLICATIONS AND THEIR RESULTS (1895—1905)

#### 1. THE THIRD SALISBURY GOVERNMENT (1895—1902)

FOR ten years, from 1895 to 1905, Britain was governed by a powerful Unionist ministry, in which the strength of the Conservatives and Liberal Unionists was merged. Lord Salisbury was Prime Minister until 1902, when he was succeeded by Mr. A. J. Balfour. Supported by overwhelming majorities in both Houses of Parliament, and faced by a weak and divided opposition, this Government enjoyed more



unfettered power than any of its predecessors since 1830. Its tenure of power falls into two parts, sharply divided by the South African War of 1899—1902.

**Home Policy.**—In the first half of the period there was very little legislation of the first rank, largely because the attention of Government and Parliament were engrossed by a succession of difficult problems abroad. There was an ambitious measure of Land Purchase for Ireland, on the same scale as Gladstone had projected in 1886. The system of County Councils was extended to Ireland, which had now become quiescent, for the Nationalist party was cleft in twain, and no leader capable of taking Parnell's place had succeeded him; nevertheless the demand for Home Rule continued unabated. A valuable Workmen's Compensation Act was passed in 1897: though limited to a few trades, it placed the right to compensation for accidents for the first time on a solid basis, and fixed the scale on which it should be paid. Chamberlain had promised, in the election of 1895, the establishment of a system of old-age pensions, but nothing was done beyond referring the question to a series of inquiries.

**The Socialist Movement.**—These were the only contributions which the Government was able to make to the demand for social reorganisation. Nevertheless, this demand went on growing in strength, and it was evident that a new era of social reconstruction must soon begin. The trade unions were increasing very rapidly in numbers, the unskilled unions more rapidly than the skilled. Through the Trades Union Congress they were beginning to demand legislation for the redress of social ills. The Socialist movement was increasing its influence and capturing the younger and more energetic trade unionists. An Independent Labour Party had been founded as early as 1892, and in 1895 its first representative, Keir Hardie, appeared in Parliament. In 1899 the Trades Union Congress passed a resolution in favour of independent political action by organised labour. Next year (1900) the Labour Party came into existence.

**The Diamond Jubilee**—But the nation as a whole paid, as yet, little attention to these matters. Its attention was engrossed by a succession of difficult problems in imperial and foreign policy, and it was at the height of its imperial enthusiasm. The culminating point of this enthusiasm was marked by the Diamond Jubilee of 1897, which was celebrated with even more impressive pomp and pageantry than the Jubilee of 1887. Once more the Premiers of the great colonies were present, and took part in a second *Colonial Conference*, which was felt to be an expression of the unity of the Empire, and in which, for the first time, the problems of imperial defence were seriously discussed. Some of the colonies undertook to make contributions to the cost of the Navy. Two years later they were called upon to take part in the first war in which contingents from all the principal members of the Empire were engaged.

**The European Situation.**—The politics of Europe and of the world were in a very dangerous condition in these last years of the

nineteenth century. Each of the Great Powers had interests or ambitions in every part of the world, thanks to the work of empire-building in which they had all been engaged; and there was always a danger that the outbreak of trouble anywhere would lead to general conflagration. This danger was increased by the fact that the Great Powers were now divided into two alliances, which constantly watched one another. In 1879 Germany had concluded a close alliance with Austria, which became the Triple Alliance when Italy joined it in 1882. Bismarck was the creator of this alliance, and so long as he continued in power, he succeeded in persuading the world that it was really a bulwark of peace, not a menace to it. He also had a secret treaty with Russia, and a friendly understanding with Britain. But in 1888 a new Kaiser, Wilhelm II, came to the German throne, and in 1890 he got rid of Bismarck. Next year the secret treaty with Russia was terminated. Russia, feeling herself isolated, turned to France, and in 1891 a Franco-Russian Alliance was concluded, although its existence was not known until some years later. Thus the Triple Alliance was faced by the Dual Alliance. On both sides a competition of armaments began, each fearing lest the other would become stronger and seize the opportunity to attack. Every increase on one side was followed by an increase on the other, and there seemed to be no way of escape from this vicious circle, which was bound to end sooner or later in a devastating war.

**The First Hague Conference.**—This nightmare had already begun to terrify Europe, and in 1899 the Tsar of Russia issued an invitation to all the nations to a conference at The Hague, to see if some agreement for common disarmament could not be reached. Twenty-six nations sent delegates, but, so far as disarmament was concerned, they could reach no result. None of the Great Powers which were chiefly concerned would consent to have its armaments limited or defined by any outside authority; and the fatal competition went on. On one point, however, the Hague Conference reached a useful result. In order to encourage and facilitate the use of arbitration instead of war, it set up a panel of arbitrators whom the nations were asked to use. The practice of resorting to arbitration had indeed been growing steadily during the nineteenth century, and a striking illustration of its usefulness had just been given in the case of Venezuela (see below). The world wanted to get rid of the waste and cruelty of war. But so long as rival alliances went on competing in armaments there was very little prospect of achieving this end.

**British Foreign Policy.**—Britain still strove to stand aloof from the rival leagues, and indeed from any foreign entanglements. She still clung to "splendid isolation." On the whole, she was more friendly towards Germany and the Triple Alliance than towards France and Russia, with whom she had far more numerous causes of friction. Both Lord Salisbury and Joseph Chamberlain were strong advocates of friendship with Germany. As late as 1898, Chamberlain publicly urged that an alliance between, Britain, Germany, and the United States would be the best safeguard for the peace of the

world. But throughout the years from 1895 to 1902 there was a gradual alienation between Britain and Germany, the causes of which may be traced in the narrative of events set forth below. It became serious in the last years of the century, when Germany set herself to create a great fleet, and the Kaiser asserted that the trident must be in Germany's hands. The trident had been in Britain's hands since 1588, and she had no intention of resigning it. In 1898 the construction of the great German fleet was begun. In 1900—in the middle of the South African War, when every German newspaper was denouncing Britain—the rapidity of construction was doubled.

This was the turning-point. It brought about a rapid change in the British attitude on foreign politics, and gave rise to a grave doubt whether, after all, "splendid isolation" was a safe policy. This gradual change of attitude was brought about by the series of difficult international problems which filled every year from 1895 to the end of the century.

## 2. FOREIGN AND IMPERIAL PROBLEMS

**The Venezuela Boundary.**—The first of the problems of the period was a difficulty with the United States. There had been a long-standing dispute between Britain and the South American republic of Venezuela over the boundary of British Guiana.\* In 1895 Venezuela arrested two British officers in the disputed territory and appealed to the United States for support. President Cleveland thereupon issued a message to Congress (December 1895), in which he stated that he would appoint a commission to settle the matter and impose its decision by force. The American Secretary of State added that any union between a European and an American State was unnatural, and that under the Monroe doctrine, the fiat of America was decisive on any question affecting the American continent. The imperialist spirit was evidently as strong in America as in other countries at this time. Such an attitude might easily have led to war. But the issue was wisely handled by Lord Salisbury. The Venezuela boundary question was referred to an Arbitration Tribunal composed of two British and two American representatives with a Russian chairman. Their award, which was definitely favourable to the British claim, was given in 1899.

**The Spanish-American War.**—By that time the United States had gone to war with Spain (1898) over the misgovernment of Cuba. In a short war the Spanish forces were completely defeated. Feeling in Europe was very strongly against America, and there was even some talk of intervention on the Spanish side. When an American fleet attacked Manila in the Philippines, a German squadron which was present showed some inclination to intervene. British vessels, also present, placed themselves in the line of fire. Germany had entertained some hope of acquiring the Philippines from Spain. But at the end of the War the United States annexed not only the

---

\* See the larger Atlas, Plate 76b.

Philippines,\* but Porto Rico, and set up a protectorate over Cuba (1899). At the same time she annexed Hawaii, and a little later divided Samoa with Germany. Thus the United States took her place among the imperialist and annexing Powers.

**The Armenian Massacres.**—Throughout this period there was constant and growing trouble in the Turkish Empire. Between 1895 and 1898 Europe was horrified by a series of massacres of the Armenian subjects of the Sultan, worse than the Bulgarian atrocities of 1876. Gladstone came out from his retirement (1896) to denounce this iniquity, and to demand that action should be taken against the Turk. No action was, or could be, taken. British influence at Constantinople had vanished. Russia had washed her hands of the Turkish problem, and declined to meddle. The dominant influence at Constantinople was now that of Germany: German officers were reorganising the Turkish army, and German capitalists were in control of the Turkish railway system. Germany had taken the Turk under her protection, and in view of this nothing could be done. In 1898 the German Emperor paid a friendly visit to the Sultan. He then went on to Jerusalem (still a Turkish city); and there he made a speech in which he proclaimed himself the protector of the Mohammedans throughout the world—most of whom were subjects of Britain or France. This was one of many episodes which led to growing fear and distrust of Germany in Britain.

**Balkan Troubles.**—The Armenian massacres were not the only troubles in the Balkan peninsula. In 1896 there was a revolt against Turkish misrule in Crete, led by Venizelos, who later became Prime Minister of Greece: the Powers intervened, and a system of autonomy under a Greek prince was established in Crete. In 1897 the Greeks launched into a foolish war with Turkey: they were easily defeated by the German-trained Turkish army. Every year there were troubles in Macedonia, a province which would have been freed from Turkish rule but for Disraeli's intervention in 1878. The government of the Turk in Europe, which had been bolstered up by Britain in 1854 and in 1878, and was now being bolstered up by Germany, was evidently a failure. These events may not seem to be a part of British history, but they filled the minds of the politicians; and in the simmering caldron of the Balkans the poison of the coming world-war was being brewed.

**Egypt and the Sudan.**—The most remarkable British achievement of this period was in Egypt and the Sudan. Since 1884 Sir Evelyn Baring (better known as Lord Cromer) and his assistants had worked wonders in Egypt. They had saved Egypt from bankruptcy, reduced taxes and increased revenue, put an end to the oppression of the peasantry, reformed the system of justice, and reorganised the army. Meanwhile, the abandoned Sudan had fallen back into barbarism. The Mahdi, and after his death the Khalifa; had ruled so oppressively that the population is said to have shrunk from 12,000,000 to 2,000,000.

---

\* See the larger Atlas, Plate 83c.

**Reconquest of the Sudan.**—In 1896 the British Government decided that the time had come to reconquer the Egyptian Sudan. The cost was shared between the British and Egyptian Governments, and both British and Egyptian troops were employed. The task was entrusted to Sir Herbert Kitchener, Sirdar of the Egyptian army ; and he proved himself to be an organiser of genius. In two systematic and carefully planned campaigns he advanced up the Nile to Khartoum, building a railway as he advanced. In 1897 the Sudanese host was shattered at *Omdurman*, opposite Khartoum ; a number of European captives who had long been kept in misery were released, and the Sudan was brought under joint British and Egyptian control. In a few years a work of reconstruction almost more remarkable than that which had been achieved in Egypt was carried out.

**The French at Fashoda.**—Before this work could be undertaken, a very dangerous situation had to be faced. The French, who had gradually made themselves masters first of the western and then of the central Sudan, had conceived the ambition of mastering also the eastern or Egyptian Sudan, and thus extending their empire from the Atlantic to the Red Sea. While Kitchener was advancing up the Nile, a small band of intrepid Frenchmen, under Major Marchand, made its way from the French Congo to the Upper Nile, and planted the French flag at *Fashoda*. Apart from the fact that Egypt had a historic claim to the Sudan, it was held to be impossible to allow the Upper Nile to fall under separate control, because the life of Egypt depends upon the flow of the Nile, and one of the aims of British policy in Egypt was to regulate this flow by irrigation dams. Kitchener, therefore, under instructions from London, advanced swiftly to Fashoda and ordered Marchand to withdraw. This episode brought Britain to the very verge of war with France ; but the French Government accepted the rebuff, and by a treaty of 1898 recognised the whole of the Upper Nile country as belonging to the Egyptian Sudan.

**The Powers in China.**—Meanwhile, throughout all these years, trouble had been brewing in the Far East \* When, in 1895, Japan defeated China, she had demanded certain cessions of territory, including Port Arthur and the Liao-Tang peninsula, which dominated the gulf of Pe-che-li, leading to Peking. The European Powers were perturbed by the growing power of Japan. Posing as protectors of the integrity of China, Germany, Russia and France intervened, and required Japan to abandon Liao-Tang, on the ground that China could not be independent if any foreign Power held that point. Britain stood aloof from this protest. In reality, the three Powers meant to have a share of China for themselves. Two years later (1897) Germany seized and fortified the valuable harbour of Kiaochau in the rich province of Shantung ; Russia demanded a lease of Port Arthur—the very place which Japan had been forbidden to occupy—while her railwaymen and her armies were steadily pene-

---

\* School Atlas, Plate 55a.

trating the great province of Manchuria; and France demanded a port in southern China. Thereupon Britain also put in a claim, and leased from China the port of *Wei-hai-wei*, which she fortified as a naval base, in view of the possibility of war in these waters. The partition of China seemed to have begun, and the Powers began to argue about "spheres of influence"—the prelude to annexations.

**The Boxer Rising.**—Their activities were interrupted by a sudden national uprising in China against the foreigner, known as the Boxer Rising (1899). Scattered traders, officials, and missionaries were exposed to grave danger; and the embassies of all the Powers in Peking were beset by formidable mobs (1900). To deal with this peril an international force was organised, of which Germany claimed to appoint the commander-in-chief. All the Powers, including the United States and Japan, contributed contingents. Peking was entered, the embassies were relieved, the Winter Palace of the Emperor was looted, and China was forced to pay a very heavy indemnity. But the Powers had learnt their lesson, and the projects of partition were dropped.

**Anglo-Japanese Alliance.**—Two years later, in 1902, Europe was startled by the conclusion of an alliance between Britain and Japan—the first general treaty of alliance that Britain had made since Waterloo. By this treaty the two Powers guaranteed the maintenance of the *status quo* in China, that is, they declared against partition. The treaty also provided that if one of the two were attacked by more than one Power, the other would come to her assistance. This provision contemplated the outbreak of a war between Japan and Russia, which came two years later. It was practically a warning to France and Germany not to meddle.

### 3. THE SOUTH AFRICAN WAR

**The Position in South Africa.**—Of all the troubles of the period, that which was most serious for the British peoples was the trouble in South Africa. It took a new form with the Jameson Raid of 1896 (see p. 532), which stopped the growth of good feeling between Dutch and English, strengthened the reactionary party in the Transvaal, and encouraged the Boers of Kruger's way of thinking to dream of driving the British out of South Africa altogether. In this vaguely-concieved aim they had some reason to hope for help from Germany; for in January 1896, when Jameson's raid was checked, the German Emperor sent a significant telegram congratulating the Boers upon having repelled the invasion "without the help of friendly powers." There were German forces in South-West Africa, near by. In the years following the raid, arms of all sorts were imported into the Transvaal in large quantities.

Before the raid, the British Government had been negotiating for better terms for the "Uitlanders," as the unenfranchised residents in the Transvaal were called. After the raid these negotiations became much more difficult. They were in the hands of Chamberlain as Colonial Secretary; and in 1897 Sir Alfred Milner, one of

the ablest of British public men, was sent out as High Commissioner. But Kruger was unbending: he would not consent to let the votes of the Boers be swamped by those of foreigners. In June 1899, Milner met Kruger in conference at Bloemfontein, and demanded that the Uitlanders should be given the vote after five years' residence. Kruger refused to go below seven years, unless Britain would withdraw all claim of suzerainty. Evidently things were moving towards war, and the predominant opinion in Britain was all for strong action. But the Dutch of Cape Colony, and many people in Britain, thought that the issue did not justify a breach, especially as time could be trusted to bring a change. During the summer British troops were drafted into South Africa, the forces there being totally insufficient to repel a Boer attack. In October 1899, Kruger launched an ultimatum demanding the withdrawal of the British troops from the frontier. He gave two days' notice. On the day on which the notice expired Boer troops crossed the frontier at three points, invading Natal and besieging Mafeking and Kimberley on the western boundary.

**The Strength of the Boers.**—It seemed mere madness for two small republics—for the Orange Free State joined the Transvaal—to challenge the might of the British Empire; and the sympathy of the whole world was on their side. But their chances were greater than appeared. They had some 70,000 men, skilled in their own type of warfare, good shots and good horsemen; they had abundance of military supplies; they had, at the least, the benevolent neutrality of the Cape Dutch, many of whom would have risen to join them had they invaded Cape Colony in force, and did so, later; they hoped also for help from Europe, especially from Germany, and they might have got it if the British Navy had not stood in the way. On the British side there were available only a few thousand troops; and, though others were on the way, and all the Dominions had volunteered to send contingents, the British Government had no idea of the magnitude of the task which lay before it.

**Early Boer Successes.**—The first events of the war went very badly for Britain. By November 2nd Sir George White, with the only substantial force in South Africa, was beleaguered in *Ladysmith*, in northern Natal; while Mafeking and Kimberley were holding out against heavy odds. Meanwhile, Sir Redvers Buller had arrived, with some 80,000 men. But a large proportion of them had to be used on lines of communication; and the rest were split into three armies, Methuen in the west aiming at the relief of Kimberley, Gatacre in the centre trying to repel a Boer invasion of Cape Colony, while Buller himself took 20,000 men to relieve Ladysmith. Within a single week, at the end of November, all three had met with stunning reverses—Methuen being defeated at *Magersfontein*, Gatacre at *Stormberg*, and Buller at *Colenso*; while the beleaguered army in Ladysmith was beginning to suffer serious hardships.\*

**Great British Effort.**—This series of checks had a sobering

---

\*See School Atlas, Plate 56 *d* and *e*.

effect in Britain. There was even a fear that (like the capitulation of Saratoga in the American revolutionary war) they might lead to



Fig. 40.—The Wars in South Africa.

European intervention. British prestige suffered a heavy blow. The Government promptly resolved to send out every available man, and gave command to Roberts and Kitchener, the two most famous of British soldiers. Large contingents came also from all the colonies, especially from Australia. By the end of the next year the British forces in South Africa were four times as great as the total of the Boer armies, and larger than the whole population of the two republics. They were the largest forces that Britain had ever put into the field.

**Defeat of the Boers.**—Roberts started his campaign in February 1900. Though Ladysmith was hard pressed, and Buller, trying once more to relieve it, had again failed at *Spion Kop*, Roberts determined to strike into the Boer republics from the west, and thus draw off the besiegers of Ladysmith. *Kimberley* was relieved by a sweeping cavalry movement under French; then the main western



army of the Boers under Cronje was forced to surrender at *Paardeberg* (February), on the anniversary of Majuba ; and in March Bloemfontein, the capital of the Orange Free State, was occupied. This advance forced the Boers to give up the siege of Ladysmith. In May *Mafeking* was relieved. In June Pretoria, the capital of the Transvaal, was occupied, and the main Transvaal army, under Louis Botha, was defeated at *Diamond Hill*. On September 1st a proclamation was issued declaring the annexation of the Transvaal to the British Empire.

**Guerilla Warfare.**—This ought to have been the end of the war, but it was not. The gallant Boers would not yield. They broke up into a number of commandoes, under guerilla leaders who showed extraordinary brilliance in this kind of warfare. In the vast open country which they intimately knew, they were extremely difficult to trap ; and time and again they descended upon isolated bodies of British troops. They even extended the war into western Cape Colony. Kitchener, who had been left by Roberts, in November 1900, to finish off the war, was kept at work on this bewildering task for another eighteen months. The toilsome and costly method of holding down a huge country by lines of garrisoned blockhouses had to be adopted. Farms where the wandering commandoes got provisions were burnt, and the women and children were gathered in concentration camps, in some of which disease broke out ; these methods, however necessary, aroused much indignation.

**Peace of Vereeniging.**—At length, in May 1902, the Boer leaders—Botha, Smuts, and others—consented to negotiate for peace. They had displayed a heroic gallantry and steadfastness which nobody could fail to admire. In the Peace of Vereeniging they consented, reluctantly, to the absorption of their republics in the British Empire. But they were promised self-governing institutions. And the victors, instead of exacting an indemnity, undertook to provide £3,000,000 for the settlement of the country.

**The Work of Reconstruction.**—Thus, at a vast cost in life, in money, and in the loss of prestige throughout the world, the unity of South Africa had been at last secured. Critics said that this war had been fought to acquire the goldfields ; but the goldfields remained in exactly the same hands as before, and Britain drew nothing but loss from the war. During the next four years the work of restoration after the waste of war was undertaken by Milner, with the aid of a body of picked men drawn from Britain. The work was well done. Milner was a man of imagination and generosity. But the conquered Dutch inevitably looked on sullenly at work that was done by their conquerors. The mines were reopened. Owing to a scarcity of labour, Chinese coolies were brought in under indentures and lodged in compounds. This was represented as “Chinese slavery” ; and the introduction of a new racial element in a country whose racial problems were already acutely difficult was much resented. Even the promise of a limited degree of a self-government did not reconcile the people : South Africa was conquered but unhappy.

#### 4. THE REACTION AFTER THE WAR (1902—1905)

**Death of Queen Victoria.**—In 1901, before the close of the South African War, which had weighed upon her heavily, the old queen died. She had been a part of the life of all the British peoples through the lifetime of nearly all her subjects. The Great White Queen had become a legend to primitive African tribes and remote Pacific islands. The world seemed different when she died. All the great Victorians had preceded her to the grave: Gladstone and Disraeli and Tennyson and Browning and Carlyle and Darwin and Dickens and Thackeray. Queen Victoria's death was indeed the end of an era; the great but self-satisfied Victorian Age had expired in the disappointment of the South African War, and it was a new and very difficult era into which the British peoples had now passed.

**Change of Temper.**—The temper of the people also had changed. The exultant imperialism of the previous period had been sobered by the disillusion of the war; there were misgivings about Britain's position in the world; and the demand for social change was growing in strength. This was not represented in Parliament, because an election had been held in 1900, after Roberts' victories, but before the long, dragging tedium of the later stages; and the result had been a sweeping victory for the war-government.

**Franco-British Entente.**—One of the main signs of the new era was that Britain no longer felt safe in "splendid isolation"; and the conclusion of the Boer War was quickly followed by a change in the direction of foreign policy. The Anglo-Japanese alliance was concluded by the new Foreign Secretary, Lord Lansdowne, in 1902 (p. 540); it was the first fixed alliance which Britain had made for nearly a hundred years apart from the temporary alliance with France at the time of the Crimean War. But a more important change followed, when in 1904—largely through the influence of King Edward VII—an understanding was reached with France, with whom British relations had been consistently bad for twenty years. The *entente* of 1904 was not in any sense an alliance, even for defence. It was only a clearing away of old subjects of controversy, which stood in the way of cordial relations. France formally recognised Britain's position in Egypt and thus removed Lord Cromer's chief source of difficulty. In return, Britain recognised the prior right of France to intervene in the disorderly country of Morocco, the next neighbour of her Algerian colony. Other old controversies, such as the dispute over fishing rights in Newfoundland, were also settled. And an arbitration treaty was concluded between the two countries. There was nothing exclusive in these arrangements, which were published to the world, and nothing to prevent similar agreements with other countries. But the whole world recognised that the real reason for this patching up of old quarrels was that Britain was beginning to be nervous about Germany, as France had long been. Thenceforward the two countries tended to act together in the diplomatic discussions of Europe.

**Educational Advance.**—In the years following the South African War several important projects of legislation were under-

taken by the Government. In 1902 it introduced an *Education Act* of great importance, which swept away the School Boards, transferred their functions to municipal and county councils and imposed upon these bodies the duty not only of providing "elementary" education, but of creating a coherent system of education, leading up to the universities. Under this Act efficient "secondary" schools were created in every part of the country; and for the first time England obtained, what Scotland had long possessed, an intelligible and coherent national *system* of education. But the Act also imposed upon the education authorities the main cost of upkeep of denominational schools; and this provoked intense opposition, which obscured the value of the other provisions of the Act.

**New Universities.**—At the same time a vigorous movement for the creation of new universities arose, inspired in a large degree by the conviction that Britain was suffering from her failure to provide facilities for higher training. In a few years, not by Government action but by spontaneous local effort, new universities were established in Birmingham, Manchester, Liverpool, Leeds, Sheffield, and Bristol—all on the basis of modest colleges which had arisen mainly during the previous twenty-five years.\*

**The Irish Problem.**—Another measure of great importance which was effected during these years was the final solution of the Irish land problem, by an Act of 1903, under which the British Treasury advanced £100,000,000 to buy out all the Irish landlords and create a peasant proprietary. Alongside of this, a well-designed organisation for agricultural co-operation helped to bring a new prosperity to the Irish peasantry. Ireland had now long since passed out of the period of agrarian outrage which had marked the 'eighties. But she had not forgotten her desire for self-government. On the contrary, it was spreading to the landowner-class, hitherto staunch Unionists. In 1904 they put forward a scheme of devolution; and the Irish Secretary, George Wyndham, had to resign because he had been sympathetic towards these proposals. The Nationalist movement was anything but dead. On the contrary, it now began to assume a new form. A body of enthusiasts began to preach the necessity of holding aloof altogether from British politics, since the British Parliament would not grant what Ireland demanded. This movement was called *Sinn Féin*, which means *Ourselves Alone*. It was born at the very moment when the policy of killing Home Rule with kindness seemed to be succeeding.

**Chamberlain and Tariff Reform.**—During the years 1903—1906, however, all these questions were dwarfed by the revival of the old controversy between Free Trade and Protection in a new form. Chamberlain, in his enthusiasm for the unity of the empire, was inspired by the idea of cementing it by fiscal bonds, and of creating something like the *Zollverein* or customs-union which had helped to make the unity of Germany. British trade also was suffering from the competition of Germany and the United States, and Chamberlain

---

\* See the larger Atlas, Introduction, p. 39, fig. 38.

believed that it could be helped to hold its own by protection. In 1903, therefore, he started a vigorous campaign for Tariff Reform and Imperial Preference, and a tremendous debate, which lasted for three years, engrossed the attention of the country. But even Chamberlain's influence, which was now at its height, could not persuade the British people to abandon the system of Free Trade on which their prosperity had been built up. The most direct effect of his campaign was to split the all-powerful Unionist party. Chamberlain himself retired from office in order to be free to preach his doctrine; a group of convinced Free Traders in the Cabinet, including the Duke of Devonshire, retired because they thought the Prime Minister ought to have repudiated his powerful colleague. Mr. Balfour, who had succeeded Lord Salisbury as Prime Minister in 1902, tried to keep both sections together, and satisfied nobody.

**Fall of the Conservatives.**—The result was that in 1905 Mr Balfour's Government had to resign, and make way for a Liberal Government under Sir Henry Campbell-Bannerman; and in the election of 1906 the Unionists were almost swept out of the field by one of the most sudden reversals of political fortune in British political history. Many things contributed to this result. The Free-Trade-Tariff-Reform conflict was perhaps the most important factor; dissatisfaction with the recent legislation of the Government contributed; disillusionment after the imperialist enthusiasm of the 'nineties counted for a good deal. But behind all this lay the vague demand for great measures of social reconstruction, which had been growing for twenty years, and had as yet obtained no satisfaction.

## CHAPTER L

### THE DEVELOPMENT OF THE BRITISH EMPIRE (1880—1914)

BETWEEN 1880 and 1902 the area of the British Empire had been increased in an unprecedented degree by the acquisition of new territories, mainly in the tropics. In the same period, and in the following period down to the outbreak of the Great War in 1914, a very remarkable development also took place in the great self-governing colonies and in India, while the links which held the members of the Empire together were notably strengthened. These changes had so direct a bearing upon the part which they were all to play in the great ordeal of the War that it is important to study them before turning to the events of the last ten years preceding the War in Britain and in Europe.

#### 1. CANADA

**Macdonald and Unification.**—It was in this period that Canada developed from a struggling group of colonies but recently linked together into a powerful and united nation, conscious of its nationhood.\* The building of the Canadian Pacific Railway (1881—

---

\* See School Atlas, Plate 51.

1885) was the first great step in this process. It opened up the vast central plain, and revealed its immense fertility. During the 'nineties, and down to 1914, immigrants were pouring in in huge numbers, and the unlimited mineral and other resources of Canada were rapidly developed. The presiding genius of the first part of this period of growth was a Conservative, Sir John Macdonald, Prime Minister from 1878 to 1896. He was one of the great builders of Canada. He had been the main promoter of federation. It was his energy which pushed through the construction of the C.P.R. During his long tenure of power he set himself to make Canada economically independent of her great neighbour, the United States, and for this reason he developed a policy of high protection.

**The Aim of Self-Sufficiency.**—Macdonald's successor, Sir Wilfrid Laurier, held power for an almost equally long spell, from 1896 to 1911. He was a Liberal, and a French Canadian; and his long tenure of office helped to weld together the French and British elements in Canada. Although he favoured lower tariffs, and a trade agreement with the United States, Canadian opinion would not allow him to depart from the policy of protection. When in 1910 and 1911 he revived the old idea of a treaty of trade reciprocity with the United States, his ministry came to an end, and was succeeded by a Conservative ministry under Sir Robert Borden. Determination to avoid any sort of subordination to the United States was thus one of the dominating principles of Canadian policy. Laurier, however, initiated the practice of giving a tariff preference to British trade, beginning in 1897 with preference of  $12\frac{1}{2}$  per cent. of the amount of the duties imposed, which was subsequently increased to 25 per cent. and then to  $33\frac{1}{2}$  per cent. But Canada, like the other Dominions, was determined to foster her home manufactures. The duties were high enough, in spite of the preference, to give her manufacturers a commanding advantage over their British rivals.

**Boundary Disputes.**—There were several disputes during the period between Canada and the United States—over seal-fishery in the Bering Straits, over the rights of American fishermen in Canadian waters, and so forth. Adjustments were not easily reached. But the most serious of these disputes was over the boundary of Alaska.\* The United States had bought Alaska from Russia in 1867, and the cession included a long strip of the Pacific coast; but it had never been exactly determined whether the whole coast, including the shores of the longest inlets, were included. At the opening of the twentieth century a rich goldfield was discovered at Klondyke, in Arctic Canada, on the River Yukon, and there was the usual rush of diggers. Canada was anxious to obtain an outlet of her own by sea for the Klondyke. She claimed the head of one of the long inlets from the Pacific coast. After a long controversy, the question was referred to a commission of arbitration, consisting of three Americans, two Canadians, and the British jurist Lord Alverstone. Lord Alverstone voted with the Americans, and the decision therefore

---

\* See School Atlas, plate, 51, and the larger Atlas, Plate 79b.

went against Canada. This decision aroused strong feeling in Canada, and gave rise to the belief that the mother-country could not be trusted to look after Canadian interests, especially in relation with America. Canada began to claim to have sole control over her own affairs, international as well as domestic.

**Settlement of the West.**—In the years before the war the progress of Canada, and especially the peopling of the west, went on more rapidly than ever. The prairie provinces became one of the great granaries of the world. The tide of immigration grew in volume: emigrants from Britain, between 1907 and 1914, were turning rather to Canada than to the United States, and there was a large migration of American farmers across the border. The growth of the west was recognised, in 1905, by the constitution of the two great provinces of Alberta and Saskatchewan, in place of the "districts," controlled by the Federal Government, which had previously existed. Later (1912) Manitoba, Ontario and Quebec were enlarged so as to include the greater part of the northern territories. But the main feature of these years was the growth of a strong and independent national spirit in the Canadian people. It was by no means incompatible with a warm loyalty to the British Empire, as the events of the war were to show. But the growth of this spirit, not only in Canada, but in all the Dominions, fostered the belief, in Germany and elsewhere, that the Empire would break into its component parts under any serious strain.

## 2. AUSTRALIA

**Federation.**—The outstanding event in the history of Australia during these years was the federation of the six colonies in a single Commonwealth.\* This was the outcome of a long discussion, which lasted for ten years (1889—1899). The chief difficulty came from New South Wales, the mother-colony, which had adhered to a policy of Free Trade, while all the other colonies had adopted Protection: as a common tariff was one of the mainsprings of a scheme of federation, New South Wales feared that she would have a protectionist system imposed upon her. The difficulties were overcome by 1899; in 1900 all six colonies passed Acts accepting a scheme which their representatives had drawn up in conference; an Act of the British Parliament registered this decision; and on the first day of the new century, January 1st, 1901, the Commonwealth of Australia came into being.

**Economic Crisis.**—Before the passing of the Commonwealth Act, Australia had passed through a very difficult economic crisis. The prosperity of the 'seventies and 'eighties had gradually dwindled. Immigration had almost ceased, trade was bad, and wages began to go down. In 1890 and the following years there was a very serious outbreak of labour troubles. The strikes of 1890 were the nearest approach to a general strike which the world had yet seen; those of 1892 and 1894 were only less serious. In 1893 there was also

---

\* School Atlas, Plate 55b.

a grave financial crisis. Banks failed wholesale, and the credit of the colonies was seriously impaired. Years of drought, which killed off a large proportion of the sheep, added to the troubles of the time.

**Labour in Politics.**—Disappointed by the results of strike action, the trade unions began, as in Britain, to turn their thoughts to political action, and in all six colonies Labour Parties were formed. Their first important victory was in New South Wales in 1896, when they succeeded in electing a solid block of members. Since then the Labour Party has been strong in all the States, and also in the Commonwealth Parliament. The first Labour governments in the world were those of some of the Australian States. To meet the growing strength of Labour, the older parties were gradually forced to unite.

**Compulsory Arbitration.**—The economic distress from which Australia had suffered, the frequency of strikes, and the strength of the Labour movement, led to exceedingly interesting industrial experiments, notably an attempt to introduce compulsory arbitration as a method of settling disputes. This movement began in Victoria in 1896, and spread to the other States. In 1904 the Commonwealth Parliament established an Arbitration Court to settle disputes affecting more than one State, under a judge of the High Court. This Court, and the State courts, have in certain conditions the right to fix wage-rates, which then become legally enforceable. The system has not been wholly successful. Trade unions have refused to accept awards which they did not like, and have resorted to strikes in spite of the court. But the scheme has been sufficiently successful to be kept in being, and it is an interesting attempt to substitute law for war in the industrial sphere.

**Australian Nationalism**—The national spirit has been extremely strong in Australia, especially since the Union. It has shown itself in a determination to maintain a "white Australia," by the exclusion of Asiatic immigrants. At the same time, the powerful labour organisations have been jealous of European and even British immigration, lest it should result in a lowering of the standards of living. A high protective system has been established in the hope of making the country self-supporting; and although substantial preferences are granted to British trade, the duties are kept sufficiently high to prevent any effective British importation of the main goods produced in Australia. The cost of this tariff falls mainly upon agriculture, which has to sell its products at world prices, and therefore cannot be protected. The result is that the cultivation of the soil does not expand as rapidly as it might otherwise do. Population is consequently mainly concentrated in towns, and this largely accounts for the strength of the Labour Party: half the population of the Australian continent is in four large towns.

Australia has thus been following a very novel and bold social policy, the aim of which is the maintenance of a high general standard of comfort by the exclusive use of the resources of a large continent for a small, pure-bred population. But the strong nationalist feeling of the Australians coexists with an equally strong

imperialist sentiment. It is their pride that they are British ; and it is not only a "white" but a "British Australia" that their nationalist policy aims at maintaining.

### 3. NEW ZEALAND

**Seddon and National Development.**—The development of New Zealand was not unlike that of Australia. New Zealand had her period of depression and stagnation earlier than Australia, between 1879 and 1895, when immigration came to a standstill and progress ceased. In 1891, however, a Liberal Government under John Ballance (1891—1893) and Richard Seddon (1893—1906) undertook a very bold policy of national development, using the power of the State to stimulate activity in every direction. They set to work to create a population of small proprietors, by taxing large estates, by letting out Crown lands, and by buying more land for the purpose. Within a few years they had raised the number of farmers holding their land on a secure tenure to 70,000—one-tenth of the population. They encouraged the creation of trade unions, but set up representative boards of employers and employees in each industry, with an appeal to a national Arbitration Court in case of difference. They established old-age pensions, and State insurance ; they laid out capital freely on works of national development, such as railways ; and they imposed the main burden on the rich by means of graduated income tax and high death duties. In all these experiments they were in advance of the world, though they were soon to be imitated, in many respects, in Britain. At the same time, like the Australians, they not only excluded Asiatic immigrants, but discouraged immigration generally in order to maintain a high standard of living.

**New Zealand Nationalism.**—New Zealand had become very prosperous in the decade before the war, though her population, like that of Australia, was still dangerously small. Her people were fervently nationalist. But they were also the most enthusiastically British of all the great Dominions. They, like the Canadians and the Australians, had adopted the nationalist policy of protection, and were aiming at self-sufficiency ; but like the other Dominions, they gave substantial preferences to British goods—desiring, if possible, to keep out all external products, but wishing, if they did come in, that they should be British. The unanimous adoption of Protection with British preference by all the Dominions was one of the main reasons why Chamberlain abandoned Free Trade in 1903, and advocated a return to Protection, even in a country which cannot possibly be self-sufficient. His scheme of an Imperial Customs Union was, however, negatived by the unwillingness of the Dominions to throw down their tariff walls against Britain.

### 4. SOUTH AFRICA

**Unrest after the War.**—In 1905, three years after the termination of the war, it was still uncertain whether the long and dismal story of strife which constitutes the history of South Africa had come to an end, or whether new trouble must be looked for.



The conquered Dutch of the late republics, and also the Dutch of Cape Colony, were still inevitably discontented and unhappy, looking critically at the work which Milner was doing, and not appeased by the promise of a limited degree of self-government. The schemes which were announced reserved large powers to the executive. They were schemes not of responsible, but merely of representative, government—the same sort of system which had led to continual friction in Canada before 1846. It was felt to be unsafe to make larger concessions than this to enemies so recently conquered.

**Self-Government and Federation.**—But in 1906, before these schemes came into operation, Sir Henry Campbell Bannerman, the head of the new Liberal Government in Britain, announced that the Government intended at once to establish full responsible government in both the Transvaal and the Orange Free State. The first elections, in 1907, returned Dutch majorities; there was a Dutch majority also in Cape Colony. But this did not lead to a revival of racial friction, as many feared. On the contrary, now that the four South African States all had constitutions of the same pattern, they could begin to discuss their future on equal terms. The result was that in 1908 Dutch and British delegates from all four met at Durban to work out a scheme of federation, which had so often been vainly urged upon them from above. The scheme was quickly and unanimously adopted. It was ratified by the British Parliament in 1909. And in 1910 Louis Botha, who had eight years before been the commander-in-chief of the Boer armies, became the first Prime Minister of the Union of South Africa.

**Racial Problems.**—The difficulties of South Africa were by no means over. The conflict between the two white races was in a fair way of being settled, though it was inevitable that there should be a survival of ill-feeling. But the problem of the treatment of the coloured races, over which the differences between the British and the Dutch points of view had been a principal source of friction, was still unsolved. And an additional difficulty had been created by the introduction of large numbers of Indian settlers, especially in Natal. The Indians claimed equal rights as British subjects. The rising spirit of nationality in India was offended by the refusal of South Africa to grant equality, and this added to the difficulties of the government of India.

If the enemies of the British Empire hoped that Canada, Australia and New Zealand would break away when trouble came, they had better reason for expecting that South Africa would prove to be a source of weakness rather than of strength in a time of strain. That it was not so was due to the efficacy of the medicine of self government.

## 5. INDIA

In India two questions demanded attention during this period. The first was the organisation of the frontiers against the possibility of attack by aggressive Powers. The second, and by far the more important, was the rapid rise of a nationalist movement among the

Indian peoples, and (in some quarters) of a violent agitation against the continuance of British rule.

**Conquest of Burma.**—The territory of India on the east and north-east was rounded off when, in 1885, the kingdom of Burma was finally conquered and annexed after the Third Burmese War.\* The immediate cause of this war was the conduct of King Thibaw, who had imprisoned some British traders. But behind this lay a deeper reason. Thibaw, fearing the British power, had been in relations with France. France, extending her empire in Indo-China, already at one point touched the Burmese frontier, and seemed likely to make herself mistress of Siam. Unwillingness to see France established in Burma was one of the main reasons for annexation. In 1896 a treaty between France and Britain defined the limits and secured the independence of Siam, the only remaining independent State in that region; and this ground of fear disappeared.

**Tibet.**—Again, in 1904, an expedition was sent to Tibet, over passes 19,000 feet high, and (after some fighting) a treaty was made with the Dalai Lama, the priestly ruler of that remote region. The reason for this expedition was that Russia had been opening negotiations with Tibet, and the fear of Russia was still active. But the possibility of an invasion of India over the all-but impassable wall of the Himalayas was remote indeed.

**The North-West Frontier.**—Throughout the whole history of India her only vulnerable frontier has been that of the north-west. When in 1880 the idea of mastering Afghanistan was finally abandoned, the organisation of the north-west frontier still remained important. The boundary between Russia and Afghanistan in the Pamirs was finally settled in 1895. Meanwhile, in 1893, the boundary between Afghanistan and the Indian Empire was finally delimited by Sir Mortimer Durand. The "Durand line" included in India a broad strip of wild country inhabited by warlike and unruly tribes, from Chitral in the extreme north to Baluchistan in the south. No attempt was made to subjugate these tribes, but frequent "punitive expeditions" had to be sent against them: in one of these, the Tirah expedition of 1897, no less than 40,000 troops were engaged. The policy to be adopted in regard to these tribes was determined during the Viceroyalty of Lord Curzon (1899—1905). In order to keep frontier problems apart from ordinary provincial administration, he created a North-West Frontier Province, with its capital at Peshawar. All garrisons were withdrawn from the tribal area; and a corps of Khyber Rifles was enlisted among the tribes to maintain order along the Khyber Pass route, which was only opened for traffic on certain days in the week.

**Army Reform.**—At the same time the Indian army was reorganised by Lord Kitchener, who went out in 1903 as Commander-in-Chief in India. The whole system was made to pivot on the defence of the north-west frontier. So long as Britain held the sea, India was now safe from any serious danger of attack.

**Indian Nationalism.**—The most remarkable feature of Indian history in this period was the rise and rapid growth of a Nationalist movement, demanding national freedom and self-governing institutions. This was the inevitable and healthy outcome of the introduction of Western methods and ideas, and of the training of the Indian educated classes in English literature, which is the literature of freedom. But it was not easy to see how these aspirations could be safely satisfied in a land so vast, and so deeply divided in race, language, and religion, as India. The most difficult problem of government which the world presents was, in fact, being raised in India during the generation before the war.

**Features of Indian Nationalism.**—The Indian Nationalist movement had two aspects, which were really incompatible, but which were often combined. The one was a demand for the British institutions of parliamentary government, that is, for the fuller westernising of India. The other was an assertion that Indian civilisation was not only more ancient but far nobler than that of the West, from which it should be freed. This view was, in the 'eighties and 'nineties, beginning to supplant the older deference to the West. It was also beginning to be asserted that British rule had done nothing but harm to India; that it was the cause of plague, famine, and poverty. All these ideas were limited, as yet, to the Western-educated classes, who formed not more than 1 per cent. of the population. They could only be diffused through the English language, which was the sole common medium of communication for the educated classes in all parts of India. Only a small minority even of the small educated class took the more extreme view; the great majority always recognised that the unity, peace, and equal laws which had come with British rule alone made these aspirations possible, and that they must not be endangered. But the whole educated class naturally and rightly shared in the desire for some progress in liberty. This class included the lawyers, the officials, the journalists, the teachers, the traders—in short, the whole vocal part of Indian society. Its demands could not be permanently disregarded. At first, however, the movement took root only among the Hindus: the Mohammedans stood aloof.

**Lord Ripon.**—The first attempt to give some satisfaction to these aspirations was due to Lord Ripon, who was sent out as Viceroy by Gladstone in 1880. For this reason he is still regarded by most Indians as the best of all the Viceroys. He established representative municipalities in the towns, and District Boards in the rural districts, expressly as a means of enabling Indians to train themselves in self-government. He revised the educational system, encouraging the growth of schools and colleges under Indian management by Government grants; Government funds had previously been spent upon Government schools and colleges. The result was an enormous increase in the number of institutions of Western learning, many of them very poorly equipped. The number of English-speaking Indians was multiplied many times in the next twenty years, and thus increased the demand for self-government. A controversy which arose over another of Lord Ripon's measures also contributed to

strengthen the nationalist movement. He had framed an Act (known as the Ilbert Act) whereby Indian magistrates were empowered to try cases in which Europeans were concerned. This proposal aroused such an outcry among the Europeans in India that it had to be withdrawn. Its withdrawal seemed like a slur upon Indian judges, and led to vigorous protests.

**Indian National Congress**—In 1885, the year after Ripon's return the Indian National Congress was founded, at first as a purely Hindu organisation. Meeting once a year, it grew steadily bolder in its demand that the representative institutions which were conferred on all the British colonies should not be denied to India. Other movements also, which cannot here be discussed, contributed to strengthen the nationalist movement. Government, however, made no concession to it, except that in 1892 a small elected element, chosen by very limited constituencies, was added to the Legislative Councils of the various provinces; but it was completely outnumbered by official nominees. The real control over the government remained in the hands of the highly competent and devoted bureaucracy of the Indian Civil Service, which included in its higher branches only a small number of Indians; and the final control rested with the British Government and Parliament.

**Lord Curzon**—This system reached its culminating point of efficiency under Lord Curzon, Viceroy from 1899 to 1905. In many spheres he did splendid work; he overhauled and tautened every department of government; and the superb Durbar of the Princes and Peoples of India which he held in 1903 to celebrate the accession of Edward VII as king-emperor marked perhaps the highest point of British power. But his reign also saw a formidable growth of anti-British agitation. Already, in the 'nineties, there had been a great deal of revolutionary talk in the vernacular Press, especially among the Bengalis of Calcutta and among the Marathas of Poona, in 1896, when there was an outbreak of plague, two British officials were murdered at Poona, and this was the beginning of a campaign of assassination which was to reach serious dimensions. Two acts of Lord Curzon added fuel to the flame. He carried out a drastic reform of the university system, taking much fuller powers of control for government than had been exercised since Ripon's time. Reform was badly needed, but it was done in the wrong way, and it touched the educated class at the most tender spot. More important, he divided the unwieldy province of Bengal (where nationalism was strongest) into two provinces (1905).<sup>\*</sup> The Partition of Bengal aroused a frenzy of opposition. A *swadeshi* movement, for the boycott of British goods, was started. More serious, a secret murder conspiracy was organised in Bengal. It began in 1908, after Lord Curzon had returned to England. It was mainly aimed at the Indian police. It was very difficult to deal with, because witnesses refused to give evidence for fear of the consequences. This Bengal movement was still going on when the Great War broke out

<sup>\*</sup>School Atlas, Plate 54a.

in 1914. The teaching of an excitable Maratha journalist named Tilak created a ferment also in Bombay, and in 1907 there was a dangerous movement in the Punjab.

**Strength of Nationalism**—This movement of violence was confined to a very small number of men—not more than two or three hundred in Bengal. But it was very difficult to deal with, and it was causing dangerous unrest. Unquestionably one of the reasons for the rising tide of nationalist feeling was the victory which Japan won over Russia in 1904—a victory which seemed to show that an Eastern people could achieve a degree of efficiency equal to that of any Western nation, and could face successfully the most powerful of Western empires. The influence of the Russo-Japanese War was felt, indeed throughout the non-European world. But the essential thing was that the growing educated class of India was becoming more and more determined to achieve some sort of self-government.

**The Morley-Minto Reforms.**—The Liberal Government which came into power in Britain in December 1905—just after Lord Curzon's retirement—recognised this. It made no compromise with violence. But in 1909 Lord Morley, the Secretary of State for India, introduced profound modifications in the system of Indian government. In all the Provincial Councils an elected majority was introduced. In the Viceroy's Legislative Council (which deals with the affairs of India as a whole) a representative element, though not a majority, was introduced. An Indian member was added to the Viceroy's small executive council or cabinet, and two Indian members were added to the Secretary of State's Council in London. In the provincial governments, at any rate, this was the establishment of representative, though not of responsible, government. But precisely for that reason, it did not put a stop to the agitation; on the contrary, it rather increased it, since the sole function given to the new councillors was that of criticising the Government.

**Dangerous Unrest.**—When the crisis of 1914 arrived, therefore, India seemed to be in a turmoil: a vigorous constitutional agitation was going on, and a murder-conspiracy was still afoot in Bengal. What was more natural than the expectation that under the strain of war India would break into revolt, and that the British colossus would fall to pieces? But these anticipations left out of account the facts that the vast mass of the Indian peoples were wholly unaffected by political agitation; that the Indian princes disliked it; that only a handful of fanatics were concerned in the conspiracy of violence; and that the great majority of the educated Indians who were demanding political emancipation were in fact convinced that the maintenance of the connection between India and Britain alone offered any hope of the achievement of their aims.

## 6. GROWTH OF IMPERIAL UNITY

Thus in every part of the British Empire the nationalist spirit was actively at work. There was no central compulsive power to hold the Empire together; and therefore it appeared to foreign observers that it was bound to break asunder as soon as it was attacked.

The very reverse was the case: only the menace of external peril was needed to still most of the discords, and to prove that a free partnership was stronger than a unity imposed by force. The unrest in the various members of the Empire, and in the mother-country itself, were the growing-pains of freedom.

**Imperial Conferences.**—During this period, however, a considerable advance had been made in the organisation of consultation between the members of the Empire. These consultations had no power to enforce their decisions, but they made it possible for the various States to act together, and to understand one another's point of view. This process of consultation began with the Colonial Conferences of 1887, 1897, and 1902, there was also a conference at Ottawa in 1894. These were meetings of imperial statesmen who happened to be in London for the great ceremonial occasions of the two Jubilees and the Coronation of Edward VII. A change was made under the auspices of the new Government which came into office in 1905. It summoned two conferences in 1907 and 1911. But they were called Imperial, not Colonial, Conferences. They were specially summoned, and had a full agenda. In 1907 it was decided that conferences should be held every four years, and that there should be a permanent secretariat. Moreover, they discussed far more important business than their predecessors. They were taken into the fullest confidence on foreign policy. They played a vitally important part in working out the plans of imperial defence, and making close co-operation possible in the event of war. In 1909 and 1910 the Dominions undertook systematic defence programmes which resulted from these consultations. They had earlier made contributions towards the Navy. Australia and Canada began to create local navies of their own, but in close co-operation with the Royal Navy.

**"Commonwealth of Nations."**—The character of the British Empire was changing. It had ceased to be an Empire in the strict sense of the term, and had become, in Campbell-Bannerman's phrase, "a Commonwealth of Nations": not a solid, unitary State, but a planetary system of States, each revolving in its own orbit, yet all held in their places by a nice balance between the centrifugal force of nationalism and the centripetal force of imperial patriotism. Whether war could disturb this balance was soon to be seen.

## CHAPTER LI

### SOCIAL REFORM AND POLITICAL CRISIS (1906—1914)

#### 1. THE PARLIAMENT OF 1906—1910

**A period of Strain.**—Britain has never passed through a period of greater strain and more intense political activity than in the nine years before the outbreak of the Great War. While the situation in Europe (which will be discussed in the next chapter) was becoming more and more difficult, and the menace of world-war overhung the

nation, and while the problems of imperial government surveyed in the last chapter were assuming an increasing importance, at home a programme of social and political change was being carried out which aroused acute controversy ; labour conflicts attained an intensity never before known ; respect for law seemed to be breaking down ; and Ireland was brought to the very verge of civil war. It was in these circumstances that the British peoples entered upon the most terrible ordeal of their history, and both at home and abroad there were many who doubted whether they would stand the strain. The existence of this belief in Europe perhaps contributed to precipitate the war.

**The Election of 1906.**—The General Election of 1906 was the most sensational in the history of parliamentary government. The Conservative party lost most of its leaders, and was reduced to 157, while 377 Liberals were returned. The usual solid block of 85 Irish Nationalists gave steady support to the Liberals. But the most significant feature of the election was the return of 51 members of the new Labour party. Yet the Liberals had a clear majority of more than 80 over all other parties combined ; and in conjunction with their allies they had a majority of three to one over the Conservatives. It was very clear that the country was resolved upon a great change of policy. On the other hand, the House of Lords showed a permanent and overwhelming Conservative majority. It could, if it dared, reduce the great majority of the House of Commons to impotence. This, from the first, made a constitutional conflict between the two Houses inevitable.

**The Liberal Ministry**—The Liberals had been deeply divided and disheartened during the previous period. One section of them, known as the Liberal Imperialists, and including Lord Rosebery, Mr. Asquith, Sir Edward Grey and Mr. Haldane, had supported the South African War, while another section, including Sir Henry Campbell-Bannerman, Mr. John Morley, and a rising young Welshman, Mr. Lloyd George, had violently denounced it. But common opposition to Chamberlain's Tariff Reform campaign had drawn them together again, and they formed a very powerful ministry under Sir Henry Campbell-Bannerman, which included some recruits from the broken Conservative party, notably Mr. Winston Churchill, a son of Lord Randolph. In 1908 Campbell-Bannerman died, and his place was taken by Mr. Asquith, a man of great intellectual power and imperturbable serenity.

**Army Reform.**—The legislative work of this Government was so many-sided that it is best to deal with it by subjects, rather than in chronological order. In view of the coming war, first place must be given to the remarkable military reorganisation which it carried out, under the direction of Mr. (afterwards Lord) Haldane, as Secretary of State for War. The South African War had shown that the British army needed drastic reorganisation. Several attempted reforms since the war had led to no useful results. It would have taken months to send any large army abroad, and the army as a whole was not organised for this purpose. Haldane, in the first,

place, reconstituted the Regular Army as an Expeditionary Force, organised into Army Corps and Divisions, each with their proper complements of cavalry and artillery, medical and service corps. The result was that, when the need came, the most perfectly equipped and trained army that Britain had ever put into the field was transferred to France in a few days. It was small in comparison with the conscript armies of the Continent, but Britain was a sea-power, and had never contemplated maintaining an army on the Continental scale. Behind the expeditionary Force, Haldane reconstituted the Volunteers as a Territorial Army, organised in proper units, with the necessary equipment, and provided with a much improved system of training. The "Territorials" were designed for home defence; but they were able to strengthen the army in France in the first winter of the war, when they saved the situation. In every university and great school Haldane instituted Officers' Training Corps: without the reserve of partially trained officers thus created, the rapid expansion of the army in war-time would probably have been impossible. He also equipped Britain for the first time, with a General Staff. With these reforms, was linked a corresponding reorganisation of the military system in the Dominions. These reforms which were carried out between 1906 and 1912, alone made it possible for Britain to play her part in the war.

**Old Measures Revived.**—A part of the time of this Parliament was spent upon old projects of reform. Although the full scheme of Irish Home Rule was not introduced, the Irish university problem, tackled by Gladstone in 1871, was solved by the creation of two new universities, in Dublin and Belfast. A measure of Welsh Disestablishment was introduced, but rejected by the House of Lords. A Licensing Bill was treated in the same way. The summary rejection of measures sent forward by overwhelming majorities from the House of Commons aroused great anger, and made a constitutional struggle inevitable; but the Government waited for a more popular issue.

**The Trade Disputes Act.**—One of the earliest, and one of the most controversial, of this Government's proposals was the Trade Disputes Act of 1906. A recent judgment in the courts (the *Taff Vale* judgment) had made trade unions liable for actions done by their members during strikes, and for any wrong suffered as a result of a strike. If the law had remained in this form, strike action would have been impossible; and as the threat of withholding labour is the basis of the trade union's negotiating power, the unions would have been reduced to impotence. The Act of 1906 exempted the trade unions from liability for actions of this kind. It may thus be said to have placed them in a privileged position. Conservatives denounced this as a vicious Act; but the House of Lords did not venture to reject it. The result was a very rapid increase in the membership of the trade unions; and the serious strikes of the next few years were by many people attributed to this Act.

**The Political Levy.**—A second Act affecting the trade unions came some years later. For many years some of the trade unions



had devoted a part of their funds to paying the expenses of their members who became candidates for Parliament. In 1909 the courts decided, in the Osborne judgment, that trade union funds could not legally be used in this way. This would have deprived the Labour party of its financial resources. As it seemed on all grounds desirable that trade unionists should sit in the House of Commons, where so many matters affecting them were discussed, an Act was passed (1913) empowering any trade union, if its members so decided, to raise a special levy for political purposes, provided that any member who did not wish to pay should have the right to claim exemption. These two Acts were the foundations of the industrial and political power of the trade unions, and turned them into one of the strongest forces in the State.

**Payment of Members.**—In 1911 the position of working-class members was further strengthened when Payment of Members—long since demanded by the Chartists—was carried, and every member of Parliament received £400 a year. Until that date, membership of the House of Commons had been reserved for those who were rich enough to be able to give their time, and to meet the heavy expenses which membership entails.

But the main work of this ministry was a remarkable series of measures of social reconstruction, more far-reaching than anything that had yet been undertaken in Britain, or, indeed, any European country.

**Protection of Children.**—In the first place, there were a number of measures for the protection of children. The Provision of Meals Act (1906) enabled education authorities to feed children who came to school hungry; and, lest this should impair the responsibilities of their parents, the authorities were empowered to recover the cost from any parents whose means were sufficient. By the Medical Inspection Act (1907) all the children in the nation's schools were brought under medical supervision. And by the Children's Act (1908) many forms of protection for children were enacted, and a special system of jurisdiction and punishment was set up for juvenile criminals, so as to withdraw them from the pernicious influence of the police court and the gaol.

**Old-Age Pensions.**—The aged poor next received attention. In 1908 a system of old-age pensions was created, under which every person over seventy whose income was less than a certain very modest sum could claim a weekly pension of five shillings, payable at the post-office. The sum was small; but the immense number of people who were entitled to claim it was a revelation of the mass of unrelieved poverty which existed in the country; and, small as it was, it enabled thousands of poor folk to live in self-respect with their families, without being driven to the harsh charity of the Poor Law.

**Housing and Town-Planning.**—An attack upon the unwholesome and sordid conditions which existed in British towns was made possible by the Housing and Town-Planning Act (1909), which very greatly enlarged the powers and duties of municipalities in regard to the demolition of unhealthy houses and the construction

of healthy ones for the mass of the people. The Act also introduced a new idea in English legislation, by imposing upon municipalities the duty of working out sound plans for the future development of their towns, and of requiring that landowners and builders should follow these plans. For some time there had been in Britain a movement for the creation of garden cities and garden suburbs, and in some cases admirable results had been obtained by buying up land at a low value and then using for public purposes the increased value which it obtained as soon as houses and shops were planted upon it. The Town-Planning Act made possible the gradual reconstruction of British towns on these healthy lines. But before this could be done, it was held to be necessary to give to public authorities the power to annex the increased values given to land by public improvements instead of letting them pass into private hands. This idea had already been applied in the United States, Canada, Australia, New Zealand, and other countries. But it gave rise to a very acrimonious controversy as to the justice and also as to the probable results of such interference with the existing rights of landowners. In the Land Values (Scotland) Bill of 1907 an experiment in this direction was made; this was only the beginning of a very vigorous and angry discussion which reached its height two years later, on the Budget of 1909.

**Small Holdings.**—A serious attempt was also made to revive British agriculture and to stimulate hope and ambition among the peasantry by the Small Holdings Act of 1907, which empowered county councils to acquire land by compulsory purchase, and to let it out in small holdings and allotments. The energy with which this Act was applied depended upon the county councils. Some did practically nothing. But in those counties, such as Cambridgeshire, where the new function was taken seriously, a large number of small holdings were created, and a beginning was made in recreating the class of small farmers which had largely been destroyed by the enclosure movement. This, however, was only a beginning. The Government had in view far more sweeping proposals when the war came to interrupt their work.

**Industrial Reforms.**—There was also a very important series of measures affecting industry. Under an Act of 1906 a Census of Production was carried out. It provided, for the first time, adequate information about the actual facts of industry. In the same year a *Workmen's Compensation Act* extended to all trades the right to compensation which had been applied to a few trades in 1897. In 1908 the hours of labour in coal-mines were limited to eight a day; and in 1910 the hours and conditions of work in shops were defined by law.

**Trade Boards.**—But the most novel and important departure in this sphere was provided by the Sweated Industries Act of 1909. In certain industries where wages were exceptionally low, and where no adequate trade union organisation existed for the protection of the workers, the State undertook the function of fixing a legal minimum wage. For this purpose Trade Boards were to be instituted in each

industry concerned. They were to consist of equal numbers of employers and workpeople, with a natural element, all to be appointed by the Board of Trade. The wage-rates which they defined, after due consideration, were to be laid on the table of the House of Commons, and thereafter were to be enforced by the courts of law ; inspectors were appointed to see that these rates were paid. In the first instance only seven trades, covering half a million workers, were brought under the scheme ; but it has since been greatly expanded. The immediate result was a great improvement in the conditions of the workers concerned. Experience seems to show that, when it is intelligently used, the system is not bad for trade ; on the contrary, it stimulates employers to greater efficiency.

**Labour Exchanges**—Finally, in 1909, a network of Labour Exchanges was set up in every part of the country, in order to help men to find jobs, and employers to find the workmen they needed. This was the necessary preparation for dealing with the immense problem of unemployment, which the Government had next resolved to tackle.

**Differential Taxation**.—All these reforms involved a very great enlargement of the functions of the State, and consequently a great increase in the number of public officials. This was regarded by many with profound misgiving, and the growth of "bureaucracy" was the subject of many criticisms. The new social policy also involved a great outlay of public money, and rendered necessary large changes in public finance. In the first three Budgets of this Government, Mr. Asquith, then chancellor of the Exchequer, succeeded not only in substantially reducing indirect taxation, but also in paying off a large proportion of the debt incurred during the South African War. In doing so he introduced two significant changes. He levied a higher rate of income tax on "unearned" income—that is, income from investments—than on "earned" income, that is, payment for work done. He also increased substantially the duties paid on estates at death. Thus the wealthier section of the community were largely made to pay for the cost of social reforms which mainly benefited the poorer members of the community.

**The Budget of 1909**.—In the Budget of 1909 Mr. Lloyd George, who had succeeded Mr. Asquith at the Exchequer, went still farther in this direction, levying upon all large incomes a super-tax over and above the ordinary rate of income tax. But this was only one aspect of this remarkable Budget, the most revolutionary of modern times. It was linked up with a whole programme of new social legislation, for which it was to find the means, and some part of which was embodied in the Budget itself. The part of these proposals which aroused the bitterest controversy was a series of new taxes proposed to be levied on land. All the land in the country was to be valued, and during the next few years the valuers were very busy. A small tax was to be levied on the capital value of the land (apart from the buildings on it), and a further tax, called "increment duty," was proposed as a means of securing for the community a share of all increases of value that were due, not to the enterprise of the owner, but to the presence of a large population. There was an

extraordinary fierce controversy over these proposals, in the course of which the taxes are whittled down until they amounted to very little. On the one hand, the landowning class were denounced for taking toll of the nation's industry, and for holding up land needed for national expansion in order to get ransom prices. On the other hand, the supporters of the scheme were denounced as revolutionaries who were upsetting the very foundations of the nation's economic life.

**Rejection of the Budget.**—Passions ran so high that the House of Lords, defying the constitutional usage of two centuries, actually rejected the Budget. In doing so they practically claimed the right of dismissing a ministry, since no ministry can carry on government if its budget is rejected. At the very least, they were claiming the power of forcing a dissolution of Parliament. Thus was raised the largest and most exciting constitutional controversy since 1832.

## 2. CONSTITUTIONAL CONFLICT (1910—1914)

**The Conflicts of 1910.**—The year 1910 was a year of intense political excitement. In January there was a general election on the issues raised by the House of Lords. But far deeper questions were raised. There were proposals for reconstructing the House of Lords, for revising its powers, or for abolishing it. The great issues of national finance and social reorganisation were also raised. The Tariff Reform controversy was revived. And meanwhile the foreign situation was becoming grave, and the Government was charged with neglecting the Navy. The election resulted in a great reduction of Liberal strength. Liberals and Conservatives were practically equal, and the Irish Nationalists and the Labour Party held the balance. But these parties were not less determined than the Liberals to cut down the powers of the House of Lords. The rejected Budget had to be carried; and the Government was definitely committed to a scheme for limiting the powers of the House of Lords and revising its composition. An attempt to reach a settlement by agreement in a conference of party leaders failed. King Edward VII died during the controversy, and a second election, which gave very much the same result, was held at the end of the year.

**The Parliament Bill.**—In 1911 the Parliament Bill was introduced. It proposed to reduce the duration of Parliament to five years, and to deprive the House of Lords of the power of rejecting or altering any Bills certified by the Speaker of the House of Commons as Money Bills; in the case of other Bills the Lords might reject twice but on a Bill being sent up for a third time it was to be submitted for the royal assent. There were furious and bitter debates, with scenes of violence, before the Bill passed the House of Commons. A majority in the Lords would have liked to reject it. But it was known that King George V had agreed, if necessary, to create four hundred peers in order to secure the passage of the Bill, and in face of this possibility the Lords reluctantly gave way. The

House of Lords by this Act definitely became a subordinate body. It could no longer destroy measures supported by a substantial majority. On the other hand, it could compel a majority in the Commons from which it differed to waste the time of Parliament and the patience of the electors by passing every important measure through all its stages three times ; and it could make controversial legislation impossible in the last two years' of a five year's Parliament. The Government had undertaken to introduce a supplementary measure dealing with the constitution of the Second Chamber. It never did so.

**National Development.**—During and after the constitutional discussion, a further series of economic and social changes were carried. A Development Commission, with large funds, was set up to carry out projects of national development not likely to be undertaken by private enterprise. A Road Board was established to reconstruct the road system of the country in view of the coming of motor traffic. It was financed by special taxes levied on motor-cars.

**Social Insurance.**—The most important measures of this period, however, and perhaps the most important new social devices introduced by this Government, were two immense schemes of social insurance, whereby provision was made on an insurance basis, for safeguarding working people against those risks of life in an industrial society against which it was impossible for them to provide out of their own resources. The chief of these were sickness and unemployment. The National Health Insurance scheme provided medical attendance and medicines, and allowances during a period of disability, for all insured persons, and also maternity benefits for their wives ; the funds being found by contributions from employers, employees, and the State. The scheme involved very complicated arrangements with doctors and chemists and with the friendly societies which undertook to administer it. The Unemployment Insurance scheme, which was confined at first to a few of the greater trades in which unemployment was most prevalent, similarly provided out-of-work pay during periods of involuntary unemployment. It was administered through the Labour Exchanges and the Trade Unions. These far-reaching schemes aroused furious controversy. They represented a new departure in State action. They have since become an essential part of the social structure, and the unemployment scheme has been extended until it covers almost the whole of the working population.

**The Third Home Rule Bills** —The destruction of the Lords' veto made it practicable to introduce two measures which the Lords had repeatedly rejected—Irish Home Rule and Welsh Disestablishment. Both aroused very bitter controversy, which seemed interminable because the whole process had to be gone through three times. As the time came near for the final passage of the Home Rule Bill, the Ulster Protestants, realising that the House of Lords was no longer able to protect them, prepared to offer armed resistance. Led by an eminent lawyer, Sir Edward Carson, they organised volunteer corps, smuggled large supplies of arms into

the country from abroad, and even set up a Provisional Government. The Nationalists, as well as the Ulster men, began to drill. The more extreme party in Catholic Ireland, "Sinn Fein," was believed to be in relations with Germany. In the spring of 1914, civil war seemed to be at hand. Even the army, at the Curragh camp in Ireland, threatened to mutiny, many of the officers being determined to refuse duty if they were ordered to serve against Ulster. An attempt to reach a compromise was made in a conference of the political leaders on both sides, summoned by the king. This was on the very eve of war, when it was known to be imminent; but even this knowledge did not bring agreement. This was the situation at the moment when the war-cloud burst.

### 3. INDUSTRIAL AND SOCIAL UNREST

**Great Strikes**—During these years of intense political activity and growing political strife, Britain was also passing through a series of labour disputes of unprecedented seriousness. In the eight years preceding 1906, the average number of days lost through industrial disputes in each year was four million; but in the eight years from 1906 to 1914 the figure rose to eleven million. Not only this, but the disputes were of a gravity unknown before, and they were especially serious in industries which were essential to the nation's life, industries the dislocation of which affected the whole sphere of industry, notably coal-mining and the railways. There were prolonged stoppages in the mines, which were only temporarily cured, in 1912, by the hurried enactment of a minimum wage for three years. In 1911 there was an almost complete stoppage of railway transport, and, in some ports, of the loading and unloading of ships. The strike-fever was in that year so virulent that children began to strike against going to school. This profound industrial unrest, which seemed to be intensified rather than alleviated by the sweeping reforms introduced into Parliament, appeared to many observers to be an even graver national malady than the acrimony of politics.

**Causes of Unrest.**—The causes of this industrial unrest were clear enough. In the first place, the steady rise in the real value of wages which had gone on uninterruptedly from 1846 to the end of the nineteenth century, had been followed first by stagnation and then, in some trades, by a fall. In some trades, and notably on the railways, the rates of wages were disgracefully low—insufficient to provide a decent livelihood. The growing strength and activity of the trade unions had been quite unable to prevent this, because it was due to the fact that British industry was, relatively to that of other countries, less efficient than it had been in the nineteenth century. On the other hand, the trade unions were now so strong, and their membership had so vastly increased, that it seemed as if they ought to be able to enforce their demands. Meanwhile, the preaching of extreme and destructive forms of Socialist doctrine was growing very rapidly. Karl Marx's doctrine of the Class War, in its crudest form, and the French doctrine of Syndicalism, which taught that the workers in each industry ought to control it and take

its proceeds, and that they could obtain this control by "direct action" through the strike weapon, were both being more widely disseminated than ever before, and had not yet been subjected to effective criticism. They had very little influence among the great mass of workmen, and the leaders of the greater trade unions were seldom affected by them. But they influenced the younger, more energetic and more vocal among the workers.

**Diminished Respect for Law.**—Even this was not the end of the perturbing features in the condition of Britain. There seemed to be a general diminution of that law-abidingness which was supposed to be a British quality, and of that readiness to accept the decision of the majority until it could be altered which is the first condition of the successful working of democracy. The opponents of the Education Act of 1902 were still offering "passive resistance" to its provisions, and refusing to pay their rates because they disapproved of the purposes for which they were to be spent. The opponents of Home Rule were ready to resist it by arms. The advocates of women's suffrage, who were immensely active throughout the period, were not content with the ordinary methods of persuasion, but strove to prove their fitness for government by interrupting meetings, smashing shop windows, chaining themselves to railings, burning down churches and houses, slashing knives through pictures, and refusing food when imprisoned for disorderly conduct. To many it seemed that the foundations of society were being loosened.

But the moment the tocsin of war clanged, these discords almost wholly ceased. The nation, and the whole British Empire, forgot their disputes and sprang to attention. The truth was that in these years a profound and searching examination of the very foundations of the social and political order had begun. It was bound to arouse deep feeling. It was prematurely interrupted by the call to war. But when that call came, it was seen that the mettle of the people was unimpaired. We have next to see how and why that call came.

## CHAPTER LII

### THE COMING OF THE FIRST WORLD WAR (1904—1914)

#### 1. BALANCE OF POWER

**Danger-points.**—Europe and the world were in a very unhealthy condition at the beginning of the twentieth century.\* There were many danger-points where war might at any moment break out. France was still sore about the loss of Alsace and Lorraine. The Balkan Peninsula was in a state of constant unrest. The discordant peoples of the Austrian Empire were on bad terms with one another, and that composite empire was only held together by the unwelcome control which the ruling races of Germans and Magyars enforced upon the subject peoples—Czechs, Croats, Serbs, Poles, and

---

\* For Europe in 1914, see School Atlas, Plate 20.

Rumanians. The tyranny of the Russian depotism was becoming intolerable. The world had been rapidly partitioned among the Great Powers, whose interests clashed with one another in every part of the earth. But what made all these things doubly dangerous was that the Great Powers of Europe were divided into two rival alliances, armed to the teeth, and watching one another. This meant that if any dispute broke out which involved any of them, a world-war must follow.

**Germany.**—This division into two groups was a recent thing, to which there had been no parallel in earlier history. It was due to the swift rise of the power of Germany. Since the middle of the nineteenth century Germany had become indubitably the greatest power in Europe. Her army was the most perfect military machine that had ever existed. Her people were formidable by reason of their industry, knowledge and skill. With rapid strides she had made herself one of the greatest manufacturing and trading Powers in the world. She aimed at creating for herself an empire corresponding with the greatness of her European position. But, starting late, she had not got her fair share of world dominion, and she was eager to seize every opportunity of increasing it. She was ruled by a military caste whose traditions bade them trust to force for the achievement of their ends, and the saner commercial interests had not yet won great influence in her government. She was always conscious of her dangerous position, with long frontiers in the heart of Europe, faced by formidable powers on either side. She had striven to make herself secure by creating an alliance with Austria and Italy. But this involved her in the obligation of defending the precarious power of the Austrian Empire, which was threatened by nationalist movements. She had also buttressed her power by building up a strong influence over Turkey, and over three of the four main Balkan States: Rumania and Bulgaria both had German kings, and the king of Greece had married the Kaiser's sister; only Serbia was not brought into this group of alliances, and Serbia was bitterly anti-Austrian. But the power of Germany in Turkey and the Balkans aroused the jealousy of Russia, with whom Bismarck had always been careful to maintain friendly relations.

**The Triple Entente.**—It was the masterful policy which Germany was pursuing which led to the formation, in the 'nineties, of an alliance between France and Russia. Both powers felt themselves endangered. But as soon as they came together, the nightmare of "encirclement" began to prey upon the mind of Germany. It was used by her military caste as a reason for further armaments; and these were promptly answered by armaments on the other side. Finally, Germany had resolved that if she was to have a position as a great world-power, she must possess not only a great army but a great fleet to secure her interests in all parts of the world. She must "wield the trident." From 1900 onwards she was building up a powerful fleet with determined energy. This aroused the fears of Britain, who had to build against her; and it led to the entente with France in 1904. During the next ten years the restless eagerness of Germany and her allies to strengthen their position



in the world kept the other powers in a state of alarm. They were drawn into closer relations with one another. And the more they acted together, the deeper grew Germany's fears of "encirclement." The vicious circle could not be taken. Europe moved from crisis to crisis, and with each crisis the menace became graver. As the motion of a river seems to become swifter and fiercer when it draws near to a cataract, so, year by year, the situation became more critical as the cataclysm drew nearer.

**British Policy.**—British statesmanship was aware of the danger. Its supreme aim was the maintenance of peace; but it also had to think of the security of the British Empire should war come. To reconcile these needs was not easy; it was like walking the tight-rope; and Sir Edward Grey, who was Foreign Secretary during these difficult years, had a terrible hard task. As German policy seemed to be the chief disturbing factor, Britain found herself steadily drawn into closer association with France and Russia in the difficult diplomacy of these years, and this involved her in moral obligation towards them. On the other hand, she carefully abstained from anything in the nature of a formal alliance with France and Russia; she tried, with increasing difficulty, to stand aloof; she strove to conjure away any fears which Germany might feel, and to reach if possible an agreement with Germany like those she had reached with France and Russia. The best way to realise the difficulty of the period is to follow the development of the crisis year by year, beginning with the Franco-British entente of 1904.

## 2. THE SUCCESSIVE CRISES OF 1905—1913

**The Disablement of Russia.**—No sooner had Britain and France removed their outstanding differences than war broke out between Russia and Japan. The Anglo-Japanese alliance prevented any European intervention; and Japan astonished the world by inflicting a crushing defeat upon Russia, both on land and sea. Next year, 1905, a dangerous revolution broke out in Russia. The legend of Russian invincibility was broken. For some years Russia could almost be counted out of European politics, and this fact profoundly affected the whole course of events.

**First Morocco Crisis.**—In 1905 Germany suddenly interfered in Morocco. That kingdom was in a state of anarchy. It lay next to the French colony of Algeria. France had for some years been engaged in a process of "peaceful penetration." In the entente of 1904 Britain had recognised France's prior right to intervene in Morocco. The Kaiser, knowing that France's ally Russia was disabled, suddenly landed at Tangier and asserted the independence of Morocco. There was a momentary danger of war, and French military representatives consulted with British officers as to the steps that should be taken if war came and Britain was involved. They discovered that the British army could not be mobilised in time to be of use; and this directly influenced the army-reform policy of Haldane. Eventually the question was referred to a European

conference, which met at Algeciras in Spain (1906). It declared Morocco independent, but recognised the position of France in that country. This was regarded as a diplomatic defeat for Germany. This first crisis had been staved off.

**The Anglo-Russian Entente.**—In 1907, largely through the mediation of France, Britain came to an agreement with Russia. Like the entente of 1904, this agreement was in no sense an alliance, but a clearing up of outstanding difficulties, notably in Persia and in Tibet. But it rendered diplomatic co-operation easier. It also alarmed Germany, who saw herself being "encircled"; and when King Edward VII visited the Tsar at Reval, he was regarded as the villain of the plot. In the same year the second Hague Conference was held, in the hope of persuading the Great Powers to stop the race of armaments. All the world wanted peace. Since 1904 scores of arbitration treaties had been signed between various nations. The Hague Conference tried to extend the system of arbitration. It failed, largely because of the obstinate opposition of Germany. Meanwhile, Britain had made an honest attempt to dissipate German fears, and to persuade Germany to slow down the rate of naval construction. As a guarantee of good faith, Britain herself slowed down her rate of construction, and the Government was denounced for endangering her naval strength. But Germany made no response; she rather intensified her naval energy.

**Austria and Serbia.**—In 1908 a revolution broke out in Turkey. For a time the German influence at Constantinople was shaken; but it was soon restored. Austria seized the occasion to annex Bosnia and Herzegovina, which she had administered since 1878. These provinces were inhabited by Serbs, and Serbia, who had hoped to incorporate them, was stirred by a passion of anti-Austrian feeling, and appealed to Russia for aid. Germany declared strongly on the side of Austria. War was very near; but Russia had not recovered from her troubles, and when Sir Edward Grey made it clear that Britain would take no part in a war on such an issue, Russia and Serbia had to submit to humiliation. Austria, thinking that the time had come to crush Serbia, invented forged evidence to justify a war. But Germany made her hold her hand—as she failed to do in 1914, when a similar quarrel between Austria and Serbia precipitated the World War. In this episode the Central Powers unquestionably scored a victory, and strengthened their influence in the Balkan States.

**The Dreadnought.**—In 1909 a strong agitation arose in Britain regarding the naval situation, and the Government was fiercely attacked by the Conservative opposition. Recognising that the overtures to Germany had failed, the Government undertook an enlarged programme of naval construction. But the situation had meanwhile been affected by a new factor. A new type of battleship, the *Dreadnought*, had been launched. This type was too large to pass through the Kiel Canal, whereby Germany planned to pass her warships to and fro between the North Sea and the Baltic. Germany began to widen the Kiel Canal. It was probable that she

would, if possible, avoid a general war before this work was finished. It was finished in June 1914.

**Italo-Turkish War:**—1910 was a year of uneasy quiet. But in 1911 a double crisis came. Italy seized Tripoli, which was part of the Turkish Empire, and was involved in war with Turkey. This for a time weakened German influence at Constantinople, because Italy was a member of the Triple Alliance. It also strained the Triple Alliance itself. Germany began to fear, what actually came about, that she would not be able to count upon the support of Italy if war should come.

**Second Morocco Crisis.**—More dangerous was the outbreak of a new phase of the Morocco problem. France had taken military action in Morocco, and was obviously working towards control of the country. Germany asserted that this was a breach of the Algeiras agreement. Whether it was or not does not here concern us. Germany did not appeal to the Powers concerned in the agreement. She sent a warship to Agadir, and made it plain that the matter must be settled between her and France. Britain thereupon announced, through a speech delivered by Mr. Lloyd George, that she intended to be consulted. For a time war was very near. But it was averted by an agreement between France and Germany, whereby France bought Germany's acquiescence in her action in Morocco by ceding some territory in Central Africa. Germany regarded herself, however, as having suffered a diplomatic defeat.

**Military Consultations**—During the crisis of 1911 British and French military experts again took counsel as to the policy to be adopted if the two Powers were involved in war. Lest this should be regarded as committing Britain, formal letters were exchanged between Sir Edward Grey and the French ambassador which made it clear that Britain retained full freedom of action. While she was anxious to be ready if war should come, she was determined not to be dragged into the war at the heels of France or Russia.

**Military Preparations.**—From 1911, onwards until the war, there was feverish military preparation on both sides. Germany passed an Army Act to enlarge her forces in 1911; a second Army Act followed in 1912, and a third in 1913, and a levy on capital was raised to meet the costs involved. France imposed an extra year of military service upon all her manhood. Russia built military railways to transport her troops to the frontier. Even Belgium, whose neutrality was guaranteed, adopted compulsory military service in a secret session of Parliament in 1913. In 1912 Britain made a naval arrangement with France under which the main strength of the British fleet was concentrated in the North Sea, while the French fleet was concentrated in the Mediterranean. This imposed upon Britain an honourable obligation to defend the Channel coast of France if it should be attacked.

**British Efforts for Peace.**—Evidently war was expected and was being prepared, as early as 1912. But Britain did not abandon hope of reaching some understanding with Germany. In 1912 Lord Haldane was sent to Berlin to convey a formal assurance

from the Cabinet that Britain had not made, and would not make, any agreement with any other Power for action against Germany; and to urge that, in view of this, an agreement for mutual reduction of naval armaments should be made. In reply, Germany suggested that Britain should pledge herself to neutrality in the event of a European war. Such a pledge could not, of course, possibly be given. Even so, Britain did not give up the endeavour to ease the strain. Sir Edward Grey tried to reach an agreement with the German ambassador on colonial questions, similar to the earlier agreements with France and Russia. An agreement was reached, and a treaty was drafted. According to one of the greatest colonial enthusiasts in Germany, it gave to her everything she could reasonably expect. It was ready for signature in the summer of 1914. But it was held up, because the German Chancellor insisted that it must not be made public, while Sir Edward Grey explained that it must be submitted to Parliament before ratification.

**The Balkan Wars**—Meanwhile, in 1912, the centre of interest was transferred to the Balkans. Three of the Balkan States—Bulgaria, Serbia, and Greece—formed a League against Turkey, completely defeated her, and threatened Constantinople. The Balkan League had agreed as to the way in which the conquered territories should be divided. The maintenance of their alliance would have meant peace in the Balkans, and the disappearance of the Turk from Europe. But Austria refused to allow Serbia to have the territories which had been assigned to her, and threatened war. A conference was held in London, under the presidency of Sir Edward Grey, and the crisis was averted. But Serbia was recompensed for the lands which Austria would not let her take by lands taken from Bulgaria's share. Bulgaria, perhaps stimulated by Austria, refused to accept this settlement. A second Balkan war was waged in 1913, when Bulgaria was beaten by Serbia, Greece and Rumania. Once more Austria threatened to attack Serbia; once more Germany held her back. But the result of this miserable strife was that the promising Balkan League was broken. Bulgaria, deeply angered, made friends with Turkey. This situation had a profound influence upon the course of the World War.

### 3. THE OUTBREAK OF THE FIRST WORLD WAR

**The Murder of Sarajevo.**—In the spring of 1914 the international horizon seemed to be clear than it had been for some time. Peace had been restored in the Balkans, and the colonial agreement between Germany and Britain was nearly complete. Suddenly, in June, came terrible news. The Archduke Francis Ferdinand, heir to the throne of the Austrian Empire, was murdered at Sarajevo, the capital of Bosnia. The murderer was an Austrian subject, but of Serb race. Austria had threatened, three times within the previous five years, to attack Serbia, because Serbia was the source of nationalist movements among Austria's Slav subjects. She assumed, rightly or wrongly, but without giving Serbia any opportunity of being heard, that Serbia

was concerned in the murder ; and after a month's delay launched a terrific ultimatum which Serbia could not accept without abandoning all pretence to be an independent State.

**Fevered Negotiations.**—The crisis had come. If Austria attacked Serbia, Russia would be bound to come to her aid ; Germany was bound to aid Austria ; France was bound to aid Russia. But this crisis, like its predecessors, could have been averted if all the Powers had sincerely desired to avert it. During twelve days of hourly and feverish negotiation, Sir Edward Grey strove to avert it. He was backed by France, Italy, and Russia. Serbia was persuaded to submit to all the terms of the ultimatum save two ; and these she asked to have referred to the Hague Tribunal. Austria took this as a rejection of the ultimatum, declared war, and began to bombard Belgrade. Still the efforts for peace continued. Grey urged that the matter should be referred to a European conference ; this was rejected by Germany as being wounding to the dignity of Austria. He implored Germany to bring pressure to bear upon Austria in the interests of peace, as she had earlier done ; there was no response, though at the last moment Germany does seem to have made some representations to Austria. He asked Germany to make any suggestion that would make for peace, promising his support, and undertaking to have nothing to do with France or Russia if they did not fall in. Still there was no response. Austria and Russia both mobilised. Thereupon Germany issued an ultimatum to Russia demanding her immediate demobilisation ; and on August 1st Germany and Russia were at war. War between Germany and France automatically followed.

**The British Attitude.**—What was Britain to do ? Up to the last moment her action was uncertain. Both France and Russia had implored Grey to declare definitely on their side. It has been argued that if he had done so before it was too late, Germany would have hesitated, and the war would have been averted. He could not do so without the authority of Parliament ; but he did warn the German ambassador that if Germany went to war with France and Russia, Britain would inevitably be drawn in. In Grey's own view, and in that of most people, Britain was bound in honour to intervene, not because she was in any way formally committed, but because France and Russia had, so far as it was possible to judge, loyally striven to keep the peace during a series of years, and in this last crisis ; and to leave them to be ruined would have been disastrous for Europe and for Britain. But there was a considerable body of opinion in Britain which thought it possible to keep out of the inferno, and it had influential spokesmen in the Cabinet.

**German Invasion of Belgium.**—It is probable that Parliament and the country would have resolved to go into war in any case, but there might have been divisions and uncertainties. All uncertainty was brought to an end when Germany invaded Belgium. The neutrality of Belgium was guaranteed by the Great Powers, including Germany. When war seemed to be inevitable, Sir Edward Grey, following the precedent set by Gladstone in 1870,

sent identical notes to France and Germany asking for assurances that the neutrality of Belgium would be respected. France immediately replied in the affirmative. Germany answered that she could not reply without disclosing her plan of campaign. Three days later (August 3rd) German forces crossed the Belgian frontier, without a shadow of justification or a declaration of war. The King of the Belgians sent a moving appeal to Britain for protection. At once a British ultimatum, with twenty-four hours' grace, was sent to Berlin. When this ultimatum was presented to the German Chancellor—who seems to have hoped to the last that Britain would keep out of the war—he exclaimed against going to war “for a scrap of paper.” At 11 p.m. on August 4th, 1914, Britain, and all the British peoples throughout the world, were at war; and a cruel and terrible ordeal in their long history began.

**A War of the Empire.**—It was Britain who declared war; and legally her action involved the whole British Empire in the struggle. But if they had seen fit to do so, the great Dominions could have stood aloof, either throwing off their allegiance, or simply offering no help. They might reasonably say, as the United States said, that they were not concerned in the quarrels of Europe. As for India, full as she was of political unrest, if she had desired to do so she could have thrown off the British yoke, and there would have been no means of preventing her. So, also, could all the subject peoples of the newly annexed territories. But the whole British Empire went into the grim conflict with equal determination. On that terrible August day when the old world came to an end, the wires were blocked with messages of loyalty. “When England is at war, Canada is at war” “To the last man and the last shilling Australia will support the cause of the Empire.” These messages were typical of the assurances of loyal comradeship that came from every part of the Empire. They were not mere words. They were gloriously fulfilled in the years of battle. The voluntary discipline of freedom was as strong as, and more lasting than, the strength that came from authority. In the ordeal of the war that great process of change which had turned Britain into a democracy, and the British Empire into the British Commonwealth, was nobly justified.

#### SUPPLEMENTARY READING ON BOOK IX

The subject-matter of this Book is covered by Book XI and the first three chapters of Book XII of the *Short History of the British Commonwealth* (Vol. II, pp. 600–774). There is a good short book on the period in the Home University Library, by G. P. Gooch. Book VII of the *Piers Plowman Social and Economic Histories* covers this period. For the foreign history of the period, reference may be made to Holland Rose's *Development of the European Nations* (since 1878). Sir Sidney Lee's *Life of King Edward VII* provides a detailed history of the period 1902–1910, as well as useful sidelights on the earlier part of the period. R. H. Gretton's *Modern England* (2 Vols.), which begins in 1880, contains much entertaining matter. But the history of this period, in England, has not yet been systematically presented. For India and the Dominions, see the works named under Book VIII. For Egypt, Lord Milner's *England in Egypt*. Lord Cromer's *Modern Egypt* (2 Vols.) is an almost unique example of a detailed study of a great piece of work written by the principal actor.

•

BOOK X

THE FIRST WORLD WAR AND ITS  
CONSEQUENCES

•

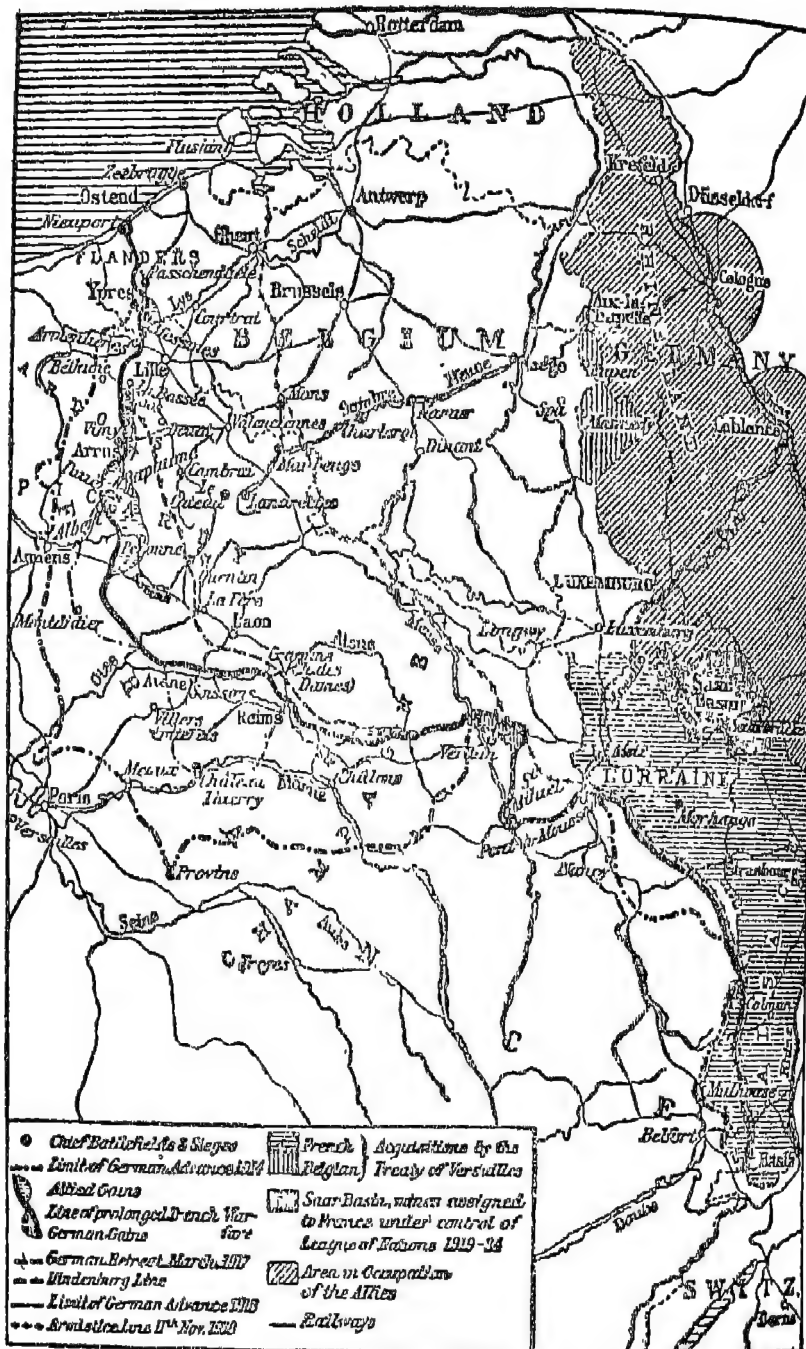


FIG 47.—The Western Front of the First World War.



# BOOK X

## THE FIRST WORLD WAR AND ITS CONSEQUENCES

We are still too near the World War of 1914-1918 to form an assured judgment about its significance. But beyond question it was one of the great turning-points in human history. It was the first event in history in which all the races and peoples of the world were concerned, and knew that they were concerned. It led to the establishment of the first organisation ever devised for the purpose of dealing with the common concerns of the whole world—the League of Nations. It brought about a great change in the relations between Europe and the non-European world. It caused more drastic changes in the political geography of Europe than any previous war since the Barbarian Invasions. It produced profound changes in the character and organisation of the British Empire. It transformed the situation of Britain. Throughout the course of modern history her insular position has given her a greater security than any other European country has enjoyed. Now, unless war could be abolished, she was more insecure than any other country, because the sea-going trade by which she lived could be interrupted by submarines, and her teeming cities could be destroyed from the air. Her trade itself had been seriously impaired by the rise of competing industries in other countries, and by the introduction of new sources of power (oil and electricity) in which she was less richly provided than other countries. The strain of war, and the new and large demands upon government made both by the war and by the work of reconstruction which had to follow it, severely tested the working of the democratic system in all countries. It was impossible to foretell what the results of these great changes would be. But it was quite clear that when the war ended, the British peoples and the world as a whole had entered upon a new era in human history—an era which might be extremely dangerous unless the democracy which controlled our fortunes was wisely guided.

### CHAPTER LIII

#### THE FIRST WORLD WAR (1914-1918)

##### 1. THE BRITISH PART IN THE WAR

In previous European wars in which Britain had played a part, her contribution had been, in the main, threefold. She had held the seas and exercised the pressure of naval power; she had subsidised her allies with grants of money; and she had sent small armies to

play a minor part in the land-fighting in regions where they could easily be withdrawn by sea if need be, as in the Peninsular and the Crimean Wars. In the greatest of all wars the part which fell to her was far greater and more difficult.

**The Role of the Navy**—From the first hour of the war to the last, the British Navy held command of the seas, with the aid of the fleets of France and later of Italy and the United States. It was endangered by the terrible menace of the submarine; but it never failed. If it had failed, the war on land could not have been carried on, not merely by Britain herself, but by her allies. The stranglehold which the Navy obtained upon the commerce of the enemy was one of the main causes of his ultimate collapse. It denied to the enemy countries and it secured to the allies, supplies from all the world.

**The Function of Supply**.—Upon Britain also fell the main burden of supplying the allied countries with food, and with munitions of war; and in the carriage of these goods her mercantile marine was exposed to perils such as it had never had to face before, and suffered gigantic losses. Her manufacturing resources were strained to equip her own armies and those of her allies with munitions. In order to concentrate upon these tasks she had to sacrifice, for the time being, the bulk of the foreign trade by which she lived: much of it fell into other hands, and could not be regained when peace came. She had not merely to supply grants of money to the weaker among the allies, she had in a large degree to finance their foreign purchases of food-stuffs and munitions, and for this purpose she had to sacrifice a large proportion of her accumulated foreign investments, which passed largely into the possession of the United States. At the end of the war she was burdened with a colossal debt, mainly owed to her own citizens, but a substantial part of it to the United States. If she had paid only for her own part in the war, the burden would have been relatively easy to bear: it was the debts which she had incurred on behalf of her allies which made the burden a crippling one, and made her recovery difficult.

**British Effort on Land**.—But in addition to all this, she and her daughter nations had to place armies in the field on a scale never before known, and never anticipated. She had to conduct campaigns simultaneously in many different parts of the world. Besides the huge forces which had to be maintained throughout the war on the long defensive line in France, large British and Dominion forces—in some cases greater than any British armies that had ever been put in the field before—had to be maintained, at various periods of the war, in Italy, in Macedonia, at Gallipoli, in Egypt and Palestine, in Mesopotamia, in India, in China, in East Africa, in South Africa, and in West Africa. To maintain these vast armies, besides manning the fleet and the mercantile marine, she had to call out her whole manhood, as fully as the countries which had long been habituated to compulsory military service. Canada and New Zealand offered their manhood as completely as the mother-country, and Australia,

though she did not adopt conscription, sent almost as high a proportion, India and South Africa also sent very large contingents, though in their cases universal service was impracticable.

**Training the Armies**—It had never been anticipated as possible, either in Britain or in the Dominions, that a military effort on this scale would ever be required. Even those who before the war had advocated compulsory military training had demanded it only for home defence—for which, thanks to the Navy, no armies were needed. Hence almost the whole of these vast armies had to be enrolled, trained, and equipped after the war began, while women, boys, and old men took part in the labour of the munitions factories; and this made the effort all the more remarkable. For this reason, the British share in the land-war did not reach its full dimensions until the third year of struggle; but from that time onwards the British peoples bore as large a part of the shock as any of the allies.

**Voluntary Recruitment.**—During the first two years men were still recruited on a voluntary basis. It was only in 1916 that compulsory service was enacted. Perhaps the most remarkable fact of all is that, until a late stage, there were more volunteers than could be equipped and trained. They came from the ends of the earth, sacrificing their careers to offer their lives: they poured into the recruiting stations from the mine, the factory, the classroom, the office, the sum-doss-house, and the country mansion. In all the long history of Britain there has been nothing more noble than the spectacle of these myriads of young men, torn from their normal lives, and undergoing voluntarily the tedium of drill and the discomfort of the camp in order to fit themselves for the misery and agony of the trenches. In Britain alone not less than five million men voluntarily offered themselves. A terribly high proportion of them had to be rejected as physically unfit. This was the legacy of a century of industrialism and of city slums. The best, under this system, were the first to go, and had to face the worst ordeal for the longest time. For that reason Britain probably lost a higher proportion of her finest manhood than other countries. A million of them were killed or crippled. That loss threw a double burden of responsibility upon those who followed them.

**A War of Nations.**—The First World War was unlike any other war that had ever been fought in history. It was a war not of armies and fleets but of whole nations. Millions of men—from beginning to end, something like fifty millions—were engaged, and the battle fronts extended for hundreds of miles. The slaughter was on a scale never before known or imagined. Behind the lines, the whole energy of the combatant nations was enlisted in the service of the war. New methods of warfare added new horrors. The lurking submarine made every sea-voyage perilous; airships and airplanes not only extended the battle into the upper air, but rained death upon cities; myriads of guns belched forth explosive shells on a scale never anticipated, using in a day a supply of munitions that would have served for whole campaigns in any earlier war; and

clouds of poison-gas completed the inferno. It seemed as if the civilised world had sunk back into savagery, but it was a savagery that was armed with all the weapons of science. Yet millions of men endured those horrors steadfastly for more than four years. The world must never forget their agonies.

## 2. THE FIRST CAMPAIGN : 1914

**Serbia.** The War began with Austria's attack upon Serbia. Against overwhelming odds, Serbia repelled two attacks, and was still holding on among her mountains when winter came to put an end to the campaign. But the struggle in Serbia, heroic as it was, was dwarfed by the clash of gigantic armies in the West and in the East.

**The German Plan.**—Germany, whose General Staff had prepared the plan of campaign long beforehand, calculated that Russia would be slow to get her huge armies into motion, and therefore planned to throw four-fifths of her forces into a sudden attack upon France, confidently expecting to crush her in a few weeks and then be free to deal with the Eastern campaign. But, being unwilling to attack the highly fortified frontier between France and Germany, she had long since planned to send her strongest forces sweeping through the neutral territory of Belgium, and thence down upon Paris. France, on her side, massed her strongest forces in Lorraine, intending to attack the Germans in that region : if this plan had been successful, the German attack on Belgium might have failed.

**Belgium Overrun.**—But the French attack in Lorraine was a disastrous failure. And the Germans, sweeping down upon Belgium, captured the great fortress of Liège after a twelve days' siege ; swept before them the small Belgian army, which took refuge behind the forts of Antwerp ; and within three weeks of the opening of the war had the greater part of Belgium at their mercy. They secured their position by a reign of terror. Crowds of Belgian refugees poured across the Channel to Britain, where they remained throughout the war.

**The Retreat from Mons**—A line of French armies lay along the Franco-Belgian frontier. On their extreme left, at *Mons*, was the British Expeditionary Force of 80,000 men, under Sir John French, which had been swiftly and silently moved into France in the first days of the war.\* The German avalanche burst upon them on August 23rd, when there was fierce fighting at Mons. On their right the French had been forced to fall back, for the Germans had swiftly captured the fortress of *Namur*, which was to have been the pivot of the line of defence, and beaten the French at *Charleroi*. On the left also the British army was in danger of being outflanked by

---

\* For the Western Front, see School Atlas, Plate 46L.

overwhelming German forces. There was nothing for it but retreat. A retreat in face of a superior enemy flushed with victory is an extremely difficult operation. It was only made possible by a gallant rear-guard action fought at *Le Cateau*, by the corps commanded by Sir Horace Smith-Dorrien. Then followed a terrible week, during which it seemed that the finest army ever sent out by Britain was shattered and useless. The French also were retreating, and it was extremely difficult to maintain contact. It was the aim of the German either to destroy the British army, or to drive it into a fortress, where it could be overwhelmed at leisure. The army escaped from this trap; and falling back behind the River Grand Morin, was quickly reorganised and made ready for fresh fighting.

**Battle of the Marne.**—Meanwhile, the Germans were sweeping down upon Paris; on September 2nd the French Government had to evacuate the city, and take refuge in Bordeaux. Then came one of the critical moments in history. General von Kluck, commanding the westernmost of the German armies, began to swing round towards the south-east, evidently meaning to encircle the French. Thereupon the French generalissimo, Joffre, launched a fierce attack upon von Kluck's exposed flank, sending out every available man from Paris in taxis, omnibuses, and every other means of transport. Kluck wavered and stopped. The long line of French armies, and the reorganised British army, turned upon the German lines, forced open a gap in them, and in the five-day battle of the Marne compelled them to fall back.

**Deadlock on the Aisne.**—This was the first turning-point of the war. Paris was never again seriously threatened. The Germans took up a position on the line of the *Aisne*, from which hard hammering failed to dislodge them. A long line of trenches came into being, and the stationary trench war, which lasted until 1918 began. The greater part of this line, from Switzerland to Laon, remained almost unaltered for nearly four years, and hundreds of thousands of men held grimly on to the line on both sides amid the mud, the blood, and the constant alarms of the trenches.

**Fall of Antwerp.**—By the beginning of October, the Germans had been immobilised on the line of the *Aisne*. They next turned northwards. Bringing up fresh reserves from Lorraine and elsewhere, they directed a fierce attack on *Antwerp*, where the remnants of the Belgian army held out. Their huge siege-guns shattered the Antwerp forts. Two half-trained British naval brigades were hurriedly sent to help the Belgians, while a British force boldly advanced from France into western Belgium. But Antwerp could not be saved. It fell on October 9th, and the remnant of the Belgian army fell back along the coast, to a position behind the River Yser; the dykes were cut to help them in resisting the Germans; and here the little Belgian army clung on to a last tiny strip of Belgian territory for four years.

**The Ypres Salient.**—Meanwhile, the Germans had begun to make a push for the coast: if they could have captured the ports on



Fig. 48.—The Russian and Rumanian Fronts.

the Straits of Dover, they might have made British co-operation difficult. A race for the coast filled October, each side extending its line northwards and trying to outflank the other. As a part of this movement, the British army was transferred northward, so as to hold the part of the line next to the Belgians and nearest to Calais and Boulogne. *Ypres* and *Armentières*—names which became dreadfully familiar to all British folk—were the chief points in the new British line. They were held throughout the war, and more British blood has been shed round the salient of Ypres than in any other place on the face of the earth. Here the army, after all the battering it had suffered, had to submit to a new and very fierce German on-slaught; there was no more desperate fighting during the war than in the *First Battle of Ypres* (October 19th—November 14th). The picked troops of the German army were hurled into the attack in immense numbers; and the line was only just held. After this battle, the fighting quietened for the winter; the line of trenches from the sea to Switzerland was gradually stabilised. The Germans had failed to crush France, which they had confidently hoped to do.

**The Russian Campaign**—Meanwhile, in the East, the Russians had come into the field, far earlier than they were expected. In a gallant endeavour to relieve the pressure upon France, they invaded East Prussia (August). But they were caught, in the confused country of the Masurian lakes, by the old German general Hindenburg, who knew the country intimately; and at *Tannenberg* (August 26th) they suffered an appalling disaster, losing 100,000 prisoners. During the autumn the Russians had hard fighting against German and Austrian armies in Poland; Warsaw was for a moment threatened; though the invaders were repelled. But in the south of the long eastern line, the Russians achieved great though temporary successes, overrunning the greater part of the Austrian province of Galicia. When winter descended, it seemed that deadlock had come in the west; but in the east it was hoped that a great Russian advance would bring victory to the allies. Men pinned their hopes to "the Russian steam-roller."

**Turkey in the War.**—While the autumn fighting was going on in the West and East, a new combatant entered the arena. At the beginning of the war, two German warships, the *Goeben* and the *Breslau*, then in the Mediterranean, had escaped from pursuing British ships and taken refuge in Constantinople. Their guns, commanding the city, perhaps helped to persuade the Turks to join the German side in the war, though Turkey had long been under German influence. On October 29th Turkey declared war. This made it impossible for the allies to send munitions or other help to Russia by the Black Sea; and the Baltic was already closed by the German fleet. It also exposed Egypt and the Suez Canal to attack, and the Suez Canal is one of the main arteries of British imperial trade; while India might be threatened by way of the Bagdad railway and the Persian Gulf. These menaces greatly affected the course of the fighting in the next year, and drew off forces that might otherwise have been employed in France.

**Colonial Campaigns.**—Meanwhile, there had been campaigns in distant regions of the world, several of which would have ranked as important wars at any other time. In China a Japanese army, with a contingent from India, seized the German fortress of Kiaochau. Forces from Australia occupied German New Guinea, and forces from New Zealand took German Samoa. In South Africa there was a rebellion among the more discontented Boers, which was suppressed by Generals Botha and Smuts, who, twelve years earlier, had led armies against Britain in South Africa. In West Africa joint French and British forces attacked Togoland and the Cameroons; while in German East Africa a long and difficult campaign began, which was not ended until 1917.

**The War at Sea.**—Germany could send no aid to her outlying possessions scattered over the world. But their fate must depend upon the issue of the struggle in Europe; and at the end of the first campaign, Germany had the better of the struggle in Europe; though she had failed in her main aim. On the seas, however, the supremacy of the allies seemed to be securely established. The main German fleet did not venture to come out but in August a squadron of German cruisers was severely handled by Admiral Beatty in *Heligoland Bight*, and three of them were sunk. From its main base at Scapa Flow in the Orkneys the British Grand Fleet commanded the entrance to the North Sea. In these stormy waters many ships were engaged in an unrelenting vigil to cut off the trade of Germany, while squadrons based on other naval ports patrolled the North Sea. The blockade did not at first hurt Germany as much as had been hoped, partly because America resented interference with her trade, and partly because a stream of goods found access to Germany through Holland and the Scandinavian countries. German submarines caused some alarm, even from the first days of the war, especially when, in September, a single submarine sank three British cruisers. But the submarines were no more able than the main German fleet to interfere with the constant passage of troops from England to France, or with the inflow of supplies for the allies from all the world.

**Coronel and the Falklands**—In more distant seas, however, some German ships, were at large when the war began, notably the gallant *Emden*, did a great deal of damage, sinking many British trading ships. And in November two powerful German cruisers, isolated in the Pacific, after escaping from British and Japanese pursuers, came upon a squadron of light-armed and slow-sailing British cruisers, and, after a grim battle off *Coronel*, on the coast of Chile, sank them and their crews. Vengeance soon came. A month later, Admiral Sturdee intercepted the German cruisers off the *Falkland Islands*, and sank them both. By the end of 1914 the allies held the seas securely; and though they were later to be threatened by the menace of the submarine, the control of the seas was to prove, in the long run, the decisive factor of the war.



**Drilling New Armies.**—Throughout these first months of the war, and throughout the dismal winter, hundreds of thousands of men were drilling in every part of Britain and the Dominions. They were the New Armies, whom Lord Kitchener (who had been made War Secretary) was getting ready. At first there were neither arms nor uniforms for them; on these the factories were busy. A few of them, including the first drafts of Canadians, began to appear in the field in 1915, and large numbers of Australians and New Zealanders came to Egypt to complete their training, there they could help in the defence of the Suez Canal, which the Turks vainly attacked early in 1915. But it was not until 1916 that the New Armies were ready in strength. Till then the Old Army and the Territorials had to hold the line. To help them, troops were brought from India; but the Sikhs and the Gurkhas suffered terribly from the cold and the wet. Fitter fields for their valour were to be found later, in Mesopotamia and in Palestine.

### 3. THE CAMPAIGN OF 1915

**Poison Gas**—1915 was a year of disappointments for the allies. In the West several attempts were made to break through the German lines. In spite of a terrible expenditure of life, they all failed. The Germans, on their side, made a fierce attempt to break through, in the *Second Battle of Ypres* (April). They nearly succeeded, thanks to the use of poison-gas, which they introduced for the first time. Waves of deadly fumes rolled down upon the British lines, and reduced the troops to impotence, for no preparations had been made for dealing with this loathsome mode of attack, which all the nations had forsworn. But even against this horror the courage of the army held out; and the Canadians, who now first appeared in the fighting-line, showed great gallantry in helping to close the gap. Some ground was lost; but the terrible salient of Ypres was still held.

**The Munitions Effort**—It now became necessary not only to devise and manufacture masks for the troops as a safeguard against gas, but also to create appliances for carrying on chemical warfare on the allied side. Here was a new demand upon the factories at home. Moreover, the battles of the spring showed that the expenditure of shells was on a vastly greater scale than had ever been anticipated, and that the army's equipment in heavy artillery, field guns, and machine guns must be multiplied many fold. There was an outcry in Britain; the cheap Press began to cry treason; Lord Haldane, who had done more than any other man to make ready for the war, was hounded out of office; the ministry was reconstituted as a coalition of all parties, Mr. Asquith retaining the Premiership; and a new Ministry of Munitions was created, with Mr. Lloyd George at its head. With unlimited credit, it set to work to turn every factory capable of being so utilised into the service of the army; the whole manufacturing power of Britain was turned to the production of guns, shells, airplanes, and all the other innumerable engines of

war. The traditional trade union restrictions upon output were abandoned. Thousands of men and women were withdrawn from other trades. The export trade, by which Britain lives, was for the time being abandoned. More and more, as the months wore on, the whole strength of the nation and of the Empire was concentrated upon the one supreme aim of winning the war. Unlimited orders were also placed in America. To pay for them British credit was deeply pledged. But it took time for this gigantic effort to mature. It was not until late in 1916 that its results were at all fully felt. They were still growing in volume when the war ended.

**Italy joins the Allies.**—One great encouragement came to the allies in the West in this year. Italy, though a member of the Triple Alliance, had refused to join her allies on the outbreak of war, because she thought the war unjust. She had remained neutral. But a powerful popular movement sprang up, to demand her participation against Germany and Austria. It was inspired partly by indignation at the conduct of Germany in Belgium and at her methods of warfare, but still more by a desire to conquer from Austria the “unredeemed” Italian territories of Trent and Trieste. The entry of Italy (May 1915) aroused high hopes on the allied side. But the Italian campaign had to be conducted on extremely difficult and highly defensible ground, in the High Alps and on the plateau of Gorizia.\* The Italians made slow progress. Nevertheless they kept a large Austrian force tied up during a critical period. But for the intervention of Italy, which came at a very difficult time, the issue of the war might have been different.

**Russian Disasters.**—The “ramshackle empire” of Austria would have been gravely imperilled by the Italian attack, if the Russians had been able to keep up the pressure which they had begun in the previous autumn. Then they had overrun a great part of Galicia, and in the early spring of 1915 they completed the conquest of Galicia and began to cross the passes of the Carpathians into Hungary. If this attack could have been pressed home, Austria would have collapsed, and Germany, alone, would have been unable to hold out. Therefore the main German campaign of this year was directed against the Russians. Thanks to their superiority in guns and munitions, the Germans were able to draw large forces from the western front; and in April and May, and on through the summer, they dealt a series of hammer blows against the Russians, first in Galicia, and then, farther north, in Poland. Ill-armed, and ill-supplied with guns, shells, and rifles, the Russians were driven back like sheep, fighting desperately but hopelessly, often without weapons. More than a million Russians were killed or captured. The captives were employed, like thousands of Belgian captives, to till the fields and man the factories of Germany. By September the Germans had conquered all Galicia, all Poland including its capital,

---

\* See School Atlas, Plate 476.

Warsaw, and all Lithuania. The Russian armies were reconstituted on a new line, far back in Russian territory, behind the line of the Pripet marshes. But they had lost irreplaceable guns and rifles. Their strength was broken, unless they could be supplied with munitions by their western allies.

**The Dardanelles Campaign.**—It was the urgent need of helping and saving Russia which led to the main British effort of this year, the attack on the Dardanelles. If the Dardanelles could be forced, Constantinople would have to submit; there would be a clear passage for supplies to Russia by the Black Sea, and the Russian armies could be re-equipped. Moreover, the Balkan States, which were anxiously watching the course of events, would probably then come in on the side of the allies, and Serbia would be saved. The plan was a sound one, but it was ruined by bad execution. The military authorities insisted at first that they could not spare troops since every man was needed for the western front. Accordingly, a purely naval attack was made in March. It failed; but it was clear that it would have succeeded had a sufficient force been avail-

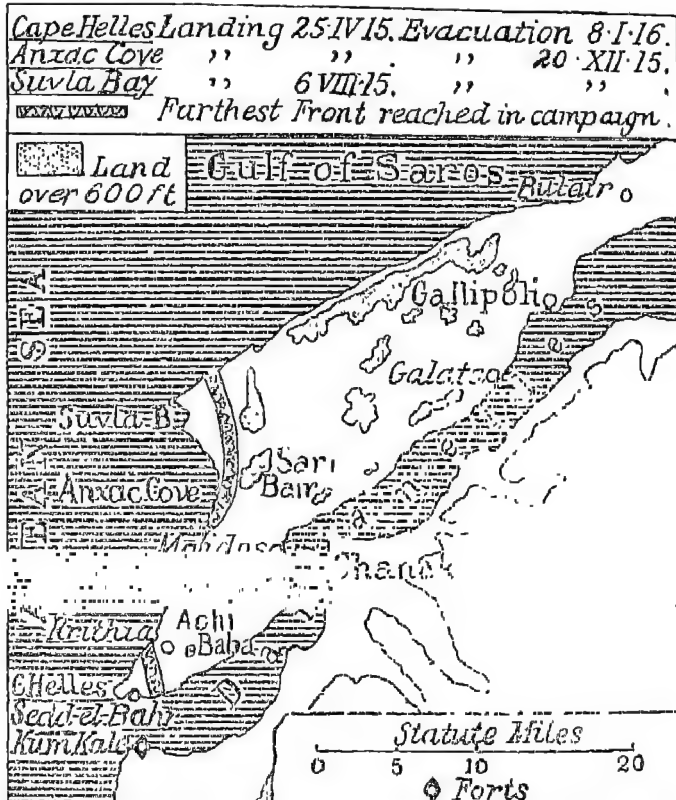


Fig. 49.—Gallipoli.

able for disembarkation. Accordingly, next month, an attack by land and sea was begun, with a magnificent force of British, Australian, and New Zealand troops, aided by a small French contingent. But the enemy was warned, and the task had now become too hard. With heroic gallantry two landings were made on the rocky coast in face of a storm of firing, one at Point Helles, at the tip of the peninsula, the other farther north, at the point which became famous as Anzac—a name derived from the initials of the Australian and New Zealand Army Corps. No episode in all the war was more heroic than the way in which the troops hung on to these exposed positions, constantly under fire, tormented by heat and dust and flies, and having to draw all their food and even water from the ships—also under fire.

**Its Failure.**—In August a fresh landing was made at Suvla Bay, by a force mainly drawn from the New Army. A very vigorous attack was made, which came within an ace of success, as the German general in command of the Turkish defenders later admitted. Some of the troops actually reached the summit of the ridge, and looked over to the sea on the other side. But the attack just failed. After that, the gallant army still hung on to their positions, in circumstance of incredible difficulty, until the end of the year. But there was no further use in sacrificing life. It was decided to evacuate the Dardanelles. The whole force was, with great skill, withdrawn without loss (December and January). All its gallantry seemed to have been wasted. Yet it had kept 300,000 Turks occupied during a critical period: it had greatly weakened the Turkish army; and perhaps the later victories of the allies over the Turks, which helped to bring the war to an end, were partly due to this heroic misadventure.

**Serbia and Salonika.**—The army of the Dardanelles was needed elsewhere. For there had been other disasters in the East. When the failure of the Dardanelles expedition was manifest (October 1915), Bulgaria, hitherto neutral, decided to throw in her lot with Germany. She attacked the gallant Serbians—already worn out by repeated Austrian attacks—while an Austrian and German

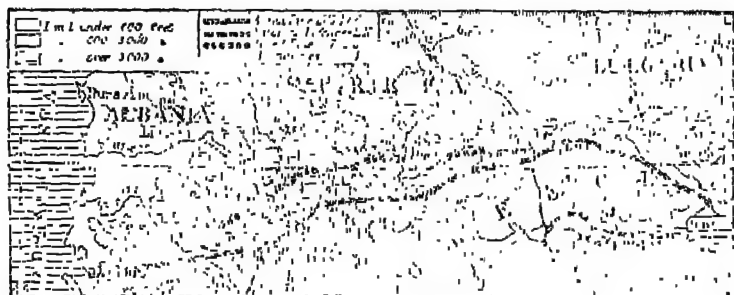


Fig. 50.—The Salomka Front, Bulgaria and Greece

army swept upon them from the north. The Serbians were overwhelmed. Their country was conquered. Only a remnant of their army could be withdrawn by way of Albania. This was a very grave alteration of the situation in the East. There was a danger lest the Germans and Austrians with their Turkish and Bulgarian allies might force Greece into their confederacy; the Greek king had German sympathies. To guard against this danger, an allied force was sent to hold the important port of *Salonika*, so as to secure at least some foothold for future operations in the Balkans.\*

**Mesopotamia.**—Meanwhile, another attack against the Turks had begun well but had led to disaster. At the end of 1914 a small force had been sent from India to Basra, at the head of the Persian Gulf, to guard the end of an important oil pipe-line. Finding little opposition, it had been tempted, with inadequate resources, to push up the Tigris valley and occupy Lower Mesopotamia.† All the

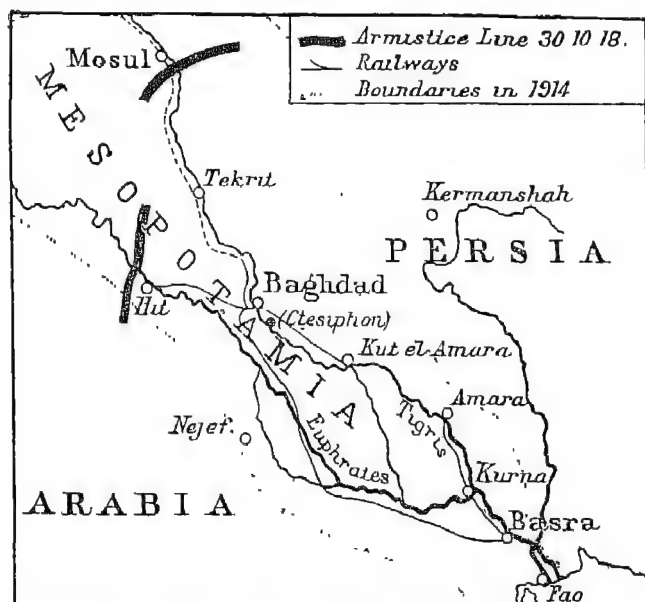


Fig. 51.—The Mesopotamian Campaign.

best Turkish forces were occupied in the Dardanelles, and so the Mesopotamian army was able to secure unexpected success, and to win several victories over the Turkish levies. In November, General Townshend, against his better judgment, was persuaded to make a dash for Bagdad. But by that time the failure of the Dardanelles campaign was known, and Turkish reinforcements were available for Mesopotamia. At *Ctesiphon* Townshend was defeated. He had

\* School Atlas, Plate 47b.

† School Atlas, Plate 47c.

to fall back upon *Kut-el-Amara* ; and there, in December, he and his army were besieged by far superior Turkish forces

**The Lusitania.**—Thus, in the record of 1915, there was little to encourage the allies. Overseas, indeed, German South-West Africa had been conquered by Botha and Smuts, and the last of the surface raiders had been disposed of. But the submarines had become more menacing. In May 1915, the great American liner *Lusitania* was sunk off the south coast of Ireland ; and many other merchant vessels met a similar fate. Nevertheless, the stranglehold of the Navy was still complete, and its pressure was gradually becoming more effective.

#### 4. THE CAMPAIGN OF 1916

The Germans had won great victories, both in the West and in the East. But they had not yet won Victory. They were feeling the strain of the pressure by land and sea. Soon the superiority in equipment and preparation which they had enjoyed in the first stages of the war would pass from them. It was essential that they should burst through the bonds of steel that were strangling them.

**Battle of Jutland.**—In May 1916, their great fleet at last ventured out from its fortified harbours. Off the coast of *Jutland* it was attacked, rather recklessly, by Admiral Beatty with his squadron of battle-cruisers. Four of these great ships, in which defensive strength was sacrificed to speed, were sunk. But when the main British fleet under Jellicoe came up, the Germans avoided battle, and retreated under the cover of smoke screens, helped by a mist which had arisen. If the battle had been fought out, it is probable that the German fleet would have been destroyed. Jellicoe has been blamed for not pressing on at all risks. He preferred to avoid the risk of being led into minefield and submarine traps, and of endangering the Grand Fleet which was the main pillar of the allies' fortunes. The German fleet made good its escape, having inflicted heavier losses than it received. But it never came out again; and this was almost as good a result as the most crushing victory could have yielded.

**The Attack on Verdun.**—Meanwhile, the Germans had resolved on a desperate attempt to break through the allied line in France, being now able to bring back large numbers of troops from the eastern front. For their main attack they chose *Verdun*. Here, in February, they began a fierce onslaught, in which almost every division of their western army was at one time or another thrown in the fray, and 4,000 guns were employed. At a colossal cost of life, they gained some territory on both sides of the Meuse, and captured the two important forts of Douaumont and Vaux. But the French stood firm. The onslaught was a failure. This had become clear by June, so much so that the German removed their chief of staff, and gave the supreme command to the heroes of the eastern front, Hindenburg and Ludendorff. It was the failure at Verdun that first gave to the Germans a chill sense of the hopelessness of their task ;

especially when, in October, the French regained Forts Douaumont and Vaux.

**Italian and Russian Advances.**—The allies did everything in their power to relieve the pressure on Verdun. The Italians made a great offensive against Austria: they forced the line of the Isonzo River, and captured *Gorizia*. And this success greatly helped the Russians, who in spite of their recent disasters, being now relieved from the German pressure, made a gallant attack on the Austrians in Galicia, and won some striking successes, taking 300,000 prisoners.

**The New British Armies.**—But the main counter-attack fell to the British armies, co-operating with the French on their right. For the New Armies, from Britain and the Dominions, were at last in the field, and were supported, at last, by unlimited artillery and munitions, and by great numbers of airplanes. They had, also, a new weapon to introduce—the steel-clad Tanks, which were expected to overcome the difficulties of trench-warfare. Although these expectations were not fully realised, the Tanks certainly surprised the enemy. In the spring the new armies took over a great part of the French line, thus materially helping the French. Even then, they held a far shorter length of line than the French; but it was the part of the line against which the German forces were most heavily massed, and on which (apart from Verdun) the heaviest fighting took place.

**Battle of the Somme.**—On July 1st, 1916, Sir Douglas Haig, who had succeeded French as commander-in-chief, launched, after a terrific artillery preparation, the biggest attack which the allies had yet attempted: the *Battle of the Somme*. It went on, without cessation, until it was stopped by the mud of winter. At a colossal cost in lives, it made a great bulge in the German line; and if it could have been followed up, there might have been a break-through. But the Germans, foreseeing this danger, were meanwhile preparing an elaborately fortified and much shorter series of defences, which came to be known as the Hindenburg Line. When the time came to renew the advance, the allies found that the Germans had slipped away to these new defences, devastating the intervening country, and strewing it with mines and other obstacles to their advance.

Nevertheless, when the campaign of 1916 closed, the position of the allies, after the German failure at Verdun and the victories of the Somme and of *Gorizia*, was far more favourable than at any earlier date; and for the first time the prospect of defeat began to loom before the Germans.

**Collapse of Rumania.**—Elsewhere, however, things had not gone so well. In August 1916, Rumania, encouraged by the victories of the Russians, entered the war on the allied side, and invaded Transylvania, thus once again threatening the Austrian Empire. The combined allied force at Salonika, now strengthened by the remnants of the Serbian army, struck northwards to assist

them and to distract the Bulgarians. But German and Austrian forces were swiftly thrown into Transylvania, and beat back the Rumanian invaders, while the Bulgarians attacked Rumania from the south. Before the end of the year, Rumania had lost her capital, and was driven back to a strip of territory on the Russian border; while the Salonika force was held up in the difficult country round Monastir and Lake Doiran.

**Mesopotamia and Egypt.**—Meanwhile, in Mesopotamia, the ill-fated little army at *Kut-el-Amara* was forced to surrender (April), despite repeated desperate attempts to relieve it. After this disaster, very vigorous efforts were made to relieve the situation. Troops were poured into Mesopotamia from India, with vast supplies, which would have saved the situation a year earlier. A very able commander, Sir Stanley Maude, took command. He was to bring about a rapid reversal of fortune. But he was not ready to move until the end of the year. Again, in Egypt, preparations were being made for an advance into Palestine.\* A railway and a water-pipe line were quietly laid across the desert of Sinai. By the end of the year all was ready for an invasion of Palestine, and meanwhile a young Oxford don, Colonel Lawrence, was at work among the Bedouin of Arabia, stimulating a great rebellion against the Turks. The downfall of Turkey was to be brought about by the twofold attack in Mesopotamia and in Palestine.

**The Outlook in 1916**—These things were all known to the German High Command. Whether they looked east or west, the outlook for them was gloomy at the end of 1916. They made up their minds to resort to desperate remedies. But people at home did not know all this. To them the slow advance and the heavy carnage on the Somme (which cost 400,000 casualties), the humiliating surrender at Kut—not yet avenged—and the Rumanian disaster seemed to prove that no progress was being made. There was widespread disheartenment, in the allied countries as well as in Germany. And the staying power of the nations was to be yet more severely tested in the next year.

**Mr. Lloyd George.**—In Britain there was a change of ministry. Mr. Asquith ceased to be Prime Minister. His place was taken by Mr. Lloyd George, whose energy, vigour, and confidence did much to inspire the nation. He now introduced an innovation in government, setting up a small War Cabinet of ministers without special departmental responsibility to devote themselves wholly to the conduct of the war. One of them was General Smuts, once the commander of a Boer army against Britain. The Prime Ministers of the Great Dominions were also called into consultation. In the last desperate paroxysm of the war, the British Empire showed a greater unity of purpose and policy than ever before.

---

\* School Atlas, Plate 47c.



## 5. THE CAMPAIGN OF 1917

**Unrestricted submarine War.**—The new year began with an evidence of the desperation of the German High Command. On January 31st they announced that the British Islands were in a state of blockade, and that any ship, allied or neutral, which entered these waters was liable to be sunk at sight. They had realised that unless Britain, now the mainstay of the allies, could be beaten to her knees, their defeat was inevitable. In order to defeat her, they outraged all the laws and customs of civilised warfare (which had always insisted upon mercy for non combatants) and all the rights of neutral powers. They knew that this action was likely to bring America into the fray. But they calculated that their submarines could inflict so much damage upon British and other shipping before the Americans could enter the war that it would be impossible to transport an American army, or the food and munitions necessary for carrying on the war. They calculated, also, that the terrors of this new kind of attack would frighten the sailors of all nations.

**Defeat of the Submarines.**—The first few months of "unrestricted" submarine war were alarming—far more alarming than the public was ever allowed to know. The monthly toll of tonnage lost rose by leaps and bounds, until it was nearly 600,000 tons in April; and, of course, sorely needed cargoes were also lost. Yet in spite of this new terror, the courage of the mercantile marine never flinched. Torpedoed sailors, rescued from the sea, promptly signed on for new ships: many of them were torpedoed half a dozen times or more. This was a new kind of peril, against which new measures had to be taken. In the first place the whole nation had to be rationed. Every household was limited as to the amount of food it might buy; and this was done without respect to rank or wealth. The American Ambassador, Walter Page, was deeply impressed when he found the king and his guests limiting themselves to even stricter rations than the rest of the nation. Meanwhile every device was used to combat the submarines. New inventions were made for dealing with them. Swarms of fishing-trawlers and motor boats, armed with guns and depth charges, were sent out to hunt for them. Mystery-ships, known as Q-boats, lured them to rise by appearing as harmless traders, and then sank them by gun-fire. Great nets guarded important passages. Huge minefields were laid, notably one that stretched from Scotland to Scandinavia. Merchant-ships sailed in convoys under the escort of destroyers or swift cruisers. Methods of painting ships were devised to deceive the eyes of the pirates. By all these means the menace of the submarines was gradually mastered. By the end of the year they were no longer formidable. And meanwhile, both in Britain and in America, new shipping was constructed at so unprecedented a pace that new ships were launched faster than old ones were sunk. The "unrestricted" submarine attack was a desperate gambler's device. And it failed.

**America in the War.**—But it brought the United States into the war, with whole-hearted zeal. She declared war against Germany

in April 1917; millions of men were put into training; and the American fleet crossed the Atlantic to join hands with the allies. All difficulties about the blockade of Germany now disappeared, and the pressure became more and more severe. Above all, America was able to share the financial burden of supporting the allies, under which Britain was beginning to stagger. It was, of course, long before the American armies could take the field: they were only actively engaged in fighting during the last five months of the war. But it is significant of the completeness with which the submarine menace was overcome that the great American armies were transported to France without loss, mainly in British ships.

**Revolution in Russia.**—The submarine attack and its overthrow was the main event of the year, and one of the decisive events of the war. But 1917 was full of other great events, mostly unfavourable to the allies. In March a revolution broke out in Russia, and the Tsar was deposed. The Liberal Government which at first took his place, and the moderate Socialist Government under Kerensky which succeeded it, were both resolute to carry on the war; but the upheaval disorganised the armies, which soon became a mere rabble, whom the Germans easily drove before them. At the end of the year, however, the Bolshevik extremists, led by Lenin and Trotsky, seized power. Their aim was nothing less than world-revolution, and their first object was to destroy all the old elements of leadership in Russia. To be free for this purpose, they were ready to make peace with Germany on the most humiliating terms. This peace was concluded at *Brest-Litovsk* in December. It left the Germans in control of Poland and the Baltic provinces. What was more important, it left them free to withdraw all their forces from the eastern front in 1918, and to concentrate the whole of their strength upon a last desperate attack in the west. But for the outbreak of the Russian Revolution, it is possible that the war might have been brought to an end in 1917.

**Champagne and Passchendaele.**—Unhappily the campaign in the west was also badly handled. A new commander-in-chief, Nivelle, had been appointed for the French army. Instead of following up the Somme victory, as Joffre and Haig had meant to do, he worked out a plan for a great French attack in Champagne, which was to be the decisive victory, leaving to the British army only subsidiary attacks. But the Champagne attack was a disastrous failure. The losses were so heavy that it was stopped in a fortnight, and alarming mutinies broke out in the French army. The British army had meanwhile made a successful advance at *Vimy*. Put in order to draw off the German attacks from the disorganised French line, it became necessary to start a very vigorous onslaught in the north, from the Ypres salient. The object of this attack was, if possible, to reach Ostend and the Belgian coast, so as to check the submarines. But it only reached the *Passchendaele* ridge. In dismal weather, which turned the fields of Belgium into swamps, it had to be carried on, month after month, with terrible loss of life,

until finally it came to an end in the rains of October. In the next month a brilliant success was won, by new methods of attack (in which tanks were freely used) near *Cambrai*. But the first success was not followed up, and much of the ground won was regained by German counter-attacks. Thus 1917, which was to have been the year of victory, turned out to be, on the western front, a year of disillusionment and demoralisation.

**Italian Disaster.**—And this was not the worst. In October a sudden onslaught by the Austrians, stiffened by six German divisions, broke through the Italian at *Caporetto*. All that had been gained in two years was lost; the rout was only stayed, far into Italy, on the line of the Piave River; and British and French divisions had to be hurriedly despatched from the hard-pressed French front to restore the Italian situation. What with the submarine menace, the Russian Revolution, the fruitless campaigns in France, and the disaster in Italy, the year ended in the deepest gloom for the Allies.

**Mesopotamia and Palestine.**—From the East, however, came better news. The downfall of Turkey was beginning. In Mesopotamia Maude's skilful advance had begun at the close of the previous year. Kut was recaptured after sharp fighting in February.

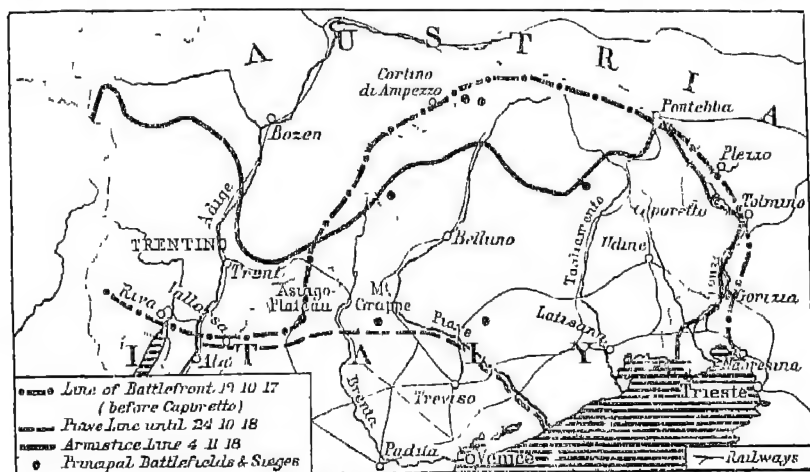


Fig. 52 —The Italian Front.

In March, Maude was once more on the field of *Otesiphon*, where Townshend had suffered defeat; there was a three days' battle, and the great historic city of *Bagdad* fell into British hands. The Turks were driven far to the north. Their power in Mesopotamia was broken. Then, in Palestine, Allenby, now in command, took up the running. He captured Beersheba (October). He cut the communications of the Turkish army that held Gaza and the cities of Philistia. He took Hebron, while in the desert on his right Lawrence and his wild Bedouins threatened the enemy's communications.

Finally, just before Christmas, he entered *Jerusalem*—the first Christian general to be master of that sacred city since the Crusaders lost it in the twelfth century. When the gloomy year 1917 came to an end, the Turkish Empire was manifestly on the verge of collapse.

## 6. THE CAMPAIGN OF 1918

**Counsels of Despair** — When 1918 opened, the German High Command knew that, in spite of their brilliant successes in the previous year, their doom was certain unless they could quickly win a crowning victory. The submarine war had failed. The Americans were already pouring into France, and although they still needed many months of training, their numbers were bound to go on growing. The Turkish Empire was visibly breaking up. The Austrian Empire was terribly overstrained, and its heterogeneous peoples were ready for revolt. Even in Germany there was an alarming growth

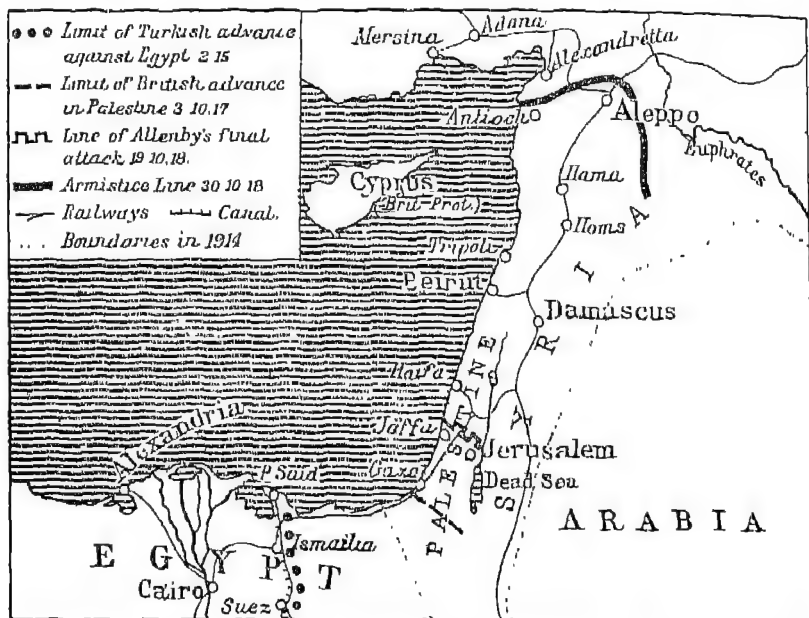


Fig. 53.—The Egyptian and Palestine Campaign.

of discontent: the blockade was causing very severe suffering; and there had been a mutiny in the idle navy at the end of 1917. Unless the British and French armies could be shattered by swift and crushing blows, the end was inevitable. For this final, desperate venture the complete breakdown of resistance on the eastern front gave an opportunity. The whole strength of Germany could be, and must be, used for one final onslaught.

**St. Quentin.** — It came, in the spring of 1918, in three successive hammer blows, into which every available ounce of strength was

thrown. The first attack was directed, on March 21st, against the southern end of the British line near *St. Quentin*—a part of the line which had recently been taken over from the French, and which was too lightly held. The line was broken; in a few terrible days all that had been gained in the hard fighting of Somme, and more, was lost; the losses in men, guns, and material of all kinds were terrific. The great railway junction of Amiens was threatened: if it had been lost the French and the British armies would have been separated. But the German effort spent itself just before this crucial point was reached. Fresh troops, including even half-trained boys, and unlimited supplies of guns and munitions, were rushed across from Britain; and by heroic efforts the line was reconstituted. But the terrible days of March were the darkest of the whole war. The stone seemed to have rolled down once more from the top of the hill.

**Ypres**—The second attack was directed in April against the northern end of the British line, before the historic salient of Ypres: it is known as the *Battle of the Lys*. All that had been won by the grim fighting of 1917 was lost, and for a moment it seemed as if even the Channel ports would be threatened. But the line, though badly bent, did not break; and the Ypres salient, though made more acute, still remained in British hands.

**Chateau Thierry.**—The third onslaught was delivered against the French line between Rheims and Soissons, in May. This line, which had been held ever since the autumn of 1914, was broken; the Aisne was crossed; and the invaders penetrated deep into French territory, reaching the Marne once more, at *Chateau Thierry*. They were now within forty miles of Paris, which suffered bombardment from the giant gun, Big Bertha.

**Turn of the Tide.**—These three successive and terrific blows had all achieved remarkable success, but not decisive success. They had nearly, but not quite, reached vital points—Amiens, the Channel ports, Paris. But in delivering them the Germans had spent their force. They had no more strength in reserve. And now the Allies' turn had come. They had at last learnt wisdom from adversity, and had agreed to unity of command, under the great French soldier, Marshal Foch. In the four months from July to November the situation was reversed by an extraordinary series of successive blows, not only in France, but all along the allied lines—in Italy, in Macedonia, in Palestine and Mesopotamia. Never, in all history, has there been a more sudden or a more dramatic reversal of fortune.

**Zeebrugge.**—The undaunted spirit of the Allies had already been shown, even at the darkest moment, by a marvellous piece of naval heroism, which a French admiral described as "the finest feat of arms in all naval history of all times and all countries." On St. George's Day (April 23rd) the Dover Patrol set out to seal up

the most dangerous nests of submarines, at Zeebrugge and Ostend. Under cover of a screen of smoke, a group of out-of-date cruisers, ferry-boats and submarines boldly entered the harbour of Zeebrugge two of them were sunk to block the channel; and the Mole was badly damaged. A few nights later the harbour of Ostend was also partly blocked.

**The French Advance.**—In July the great counter attack began, when French and American forces broke into the salient created by the recent German advance to Chateau Thierry, and regained all the lost land. A little later an American army wiped out the salient of *St. Mihiel* on the Meuse, which had been held by the Germans since 1914, and began a dogged advance through the wooded country of the Argonne.

**The British Advance.**—But the main attacks were left to the British armies in co-operation with the French on their immediate right. There had been some doubt whether any army could venture upon a great offensive so soon after it had endured such staggering blows as those of March and April. But Haig knew the stuff of which his men were made. The advance began on August 8th, near Amiens. Soon the lost ground was regained. Stage by stage the attack was extended northward. By the end of August the advancing forces were up against the "Hindenburg line," which had baffled them in 1917. On September 2nd the Hindenburg defences were broken. Then the line began to move forward in the far north, Belgian and British troops moving together into Belgian territory that had been under German control since August 1914. In September and October the whole line was in movement, from Soissons to the sea. The old trench systems were crossed for the last time. The whole German line was yielding, cracking. It was, on a gigantic scale, like that final charge at Waterloo which followed the last attack of the Imperial Guards.

**Bulgaria Yields.**—And while the iron lines in the west bent and broke, everywhere else the defences of the Central Powers gave way. In Macedonia, after long waiting, the combined forces of Serbians, Greeks, French, and British moved up against the entrenched armies of Bulgaria. A fortnight of hard fighting, and the Bulgarian resistance broke. By the end of September Bulgaria had asked for an armistice: she was the first of the enemy Powers to yield and her surrender isolated Turkey. The hard-trying Serbians, who had faced the first shock of the war, were the first to taste the triumph of victory.

**Turkey Yields.**—Meanwhile, in Palestine, Allenby had with brilliant strategy pushed home his successes of the previous year. He was delayed by having to send his best troops to the West to make good the disasters of the spring, but reinforcements came to him from India, while Lawrence and his Bedouins swept round to harass the Turks from the desert on the east. In September the crucial attack was launched against the Turkish army. The Turks

were completely routed. Damascus was captured on October 1st. Beirut and the other ports of the Syrian coast were occupied in turn ; Aleppo fell on October 26th. Meanwhile, the army of Mesopotamia, pressing northward, was at the gates of Mosul. On October 30th the Turks also asked for an armistice. They had collapsed as suddenly as the Bulgarians.

**Austria Yields.**—A still more dramatic break had also taken place in Italy. On the anniversary of Caporetto, the Italian army, with its British and French allies, once more took the offensive. It was a British contingent that led the way, crossing the Piave under Lord Cavan. At first the Austrians fought hard. But their resistance weakened at every step. Their line was broken. Their discontented subjects were in revolt. On November 4th Austria in her turn sued for peace.

**German Collapse.**—Germany was now left alone. But despair had at last taken possession of her people and her leaders. While the army was forced back fighting towards the Rhine, revolution broke out, first in the navy, then in the cities. The Kaiser deserted the nation whose trust he had abused, and fled to Holland. The possibility of German resistance was at an end.

**The Armistice.**—At dawn on November 11th the British army, in its advance, had reached Mons, where the long agony began more than four years earlier. At eleven o'clock on that day the order to cease fire was given. The Germans had signed an armistice. The war was at an end ; and all along the hundreds of miles of the fighting lines, and in every town and village of the belligerent countries, half incredulous cheers and tears and prayers welcomed the lifting of the nightmare that had overhung the world.

## CHAPTER LIV

### THE ORGANISATION OF PEACE

#### 1. VERSAILLES AND THE LEAGUE OF NATIONS

**The Task of Pacification.**—The War was over, but the difficult task of making peace remained. It was all the more difficult because too many people were thinking only of exacting vengeance for the sufferings they had endured, and the ignorant imagined that nothing remained to be done but to hang the Kaiser and to force Germany to pay the whole cost of the war. In reality, Europe had to be reconstructed, the foundations of lasting peace had to be laid ; and the grave and real danger of a huge revolutionary upheaval had to be faced. The madness of revolution was already raging in Russia, with results more horrible than those of war. In the loosening of all bonds which followed the war, there was real danger that the madness might spread, especially if the defeated peoples were reduced to despair.

**The Congress of Versailles.**—To deal with these problems a great Congress of the Nations gathered at Paris and Versailles early in 1919. It was a congress of the victors: the spokesmen of the defeated States were only invited to hear and submit to their fate. But as nearly all the peoples of the world had joined in the war, at any rate in form, during its last stages—including China, Siam, the republics of Central and South America, and even the negro republics of Hayti and Liberia—the Congress of Versailles was the nearest approach to a gathering of all the nations of the earth that history had yet seen. India and the British Dominions were all directly represented. Three personalities dominated the discussions and made all the main decisions: President Wilson of America; M. Clemenceau, the old "Tiger" Prime Minister of France; and Mr. Lloyd George, Prime Minister of Britain. As all the allies owed vast sums of money to America, American influence was very strong; and Wilson, who had made himself the spokesman of the demand for the permanent banishment of war, and had in a series of great speeches defined the ideals that ought to be pursued in the settlement, enjoyed an immense prestige. Unfortunately he had brought with him only members of his own party; with the consequence that the terms which were fixed by his influence became subjects of party controversy in America, and were ultimately repudiated by the American Senate.

**The League of Nations.**—Thanks to Wilson's insistence, it was agreed that the establishment of a League of Nations to prevent future wars should be in the forefront of the settlement, and should be embodied in all the treaties of peace. The Covenant of the League was drawn up and accepted. It pledged its members (and all the nations of the world were invited to join it) never to go to war until they had submitted the subjects in dispute either to some form of arbitral settlement, or to inquiry by the Council of the League. These pledges did not prevent war altogether. But if war was undertaken before these conditions had been fulfilled, all the member-States were to be bound to take action, if need be, against any Power which failed to observe them. The Covenant set up two governing bodies—the Assembly of the League, in which every member-State was to be represented; and the Council, in which the Great Powers were to be permanently represented, and the lesser Powers by election.

**Tasks of the League.**—One of the first tasks of the League was to be disarmament by agreement. Another was to be the establishment of a world-court. A third was to be the improvement of labour conditions by international agreement. A fourth was to be the supervision of the government of backward peoples by States to which mandates had been given by the League. A multitude of undefined duties in regard to international co-operation were also imposed upon it. The first session of the League took place in 1920, after the treaties of peace were concluded. We shall trace the growth of its influence later in this chapter. But the important thing is that, at the end of the War, for the first time in human history, an organisation was established to deal with the common concerns of the whole world, and to prevent, if possible, future wars.



## 2. THE PEACE TREATIES

The resettlement of Europe\* and of the world† was embodied in a series of treaties with Germany, Austria, Hungary, Bulgaria, and Turkey, the last of which was not completed until May 1920. The most important of the series was the Treaty of *Versailles*, imposed upon Germany in June 1919. It will be most convenient to treat the series as a whole, and to take, first, measures of disarmament and reparation; secondly, territorial changes in Europe; and, thirdly, changes outside Europe.

**Disarmament.**—All the enemy Powers, but especially Germany, were compelled to submit to a drastic reduction of their armaments. Germany had to surrender her fleet: the battleships had to go to Scapa Flow for the humiliation of surrender; they were sunk by their crews in those deep waters, and the Great Fleet lay rusting at the bottom of the sea. More significant, Germany was compelled to abandon the system of compulsory military service, whereby she had trained her whole manhood to war; and was limited to a small army of 100,000 men. Similar restrictions were imposed upon the other enemy Powers. The victors pledged themselves in the treaties that this should only be the beginning of a general disarmament, which has not yet (1935) been effected. The whole of Germany west of the Rhine, together with three semi-circles of territory on its eastern bank, were occupied by French, British, and Belgian troops to ensure the fulfilment of these and other conditions of the treaty.

**Reparations.**—Germany and, in a less degree, the other enemy Powers were compelled to make reparation for the losses caused by the War. Germany's merchant shipping was confiscated, and divided among the Allies in proportion to their losses. Germany was required to supply large quantities of coal to France, Belgium, and Italy, and the valuable coalfield of the Saar valley was cut off from Germany for fifteen years, to make up for the damage done to the French and Belgian coalfields. In addition to all this, a colossal bill of costs was drawn up by the Allies, which Germany was required to pay. The amount was indefinite, and a Reparations Commission was appointed to decide how much should actually be exacted. This was a penalty of an altogether different order from the indemnities which had been demanded from France in 1815 or in 1870. The latter sums could be and were paid off in a limited time, but the sum demanded from Germany was so vast and indefinite that nobody could tell whether it could ever be paid.

**Territorial Changes.**—The territorial changes made by these treaties were of the most sweeping kind. In Europe, the treaty-makers had at their disposal (1) all the vast lands which Russia had ceded to Germany in 1917; (2) the whole of the composite Austrian Empire, which was broken into fragments and, as an empire, disappeared from the map; (3) certain territories taken from Germany, Bulgaria, and Turkey. They proceeded to recon-

\* School Atlas, Plate 21.

† School Atlas, Plate 47.

struct the geography especially of Eastern and South-Eastern Europe on the basis of nationality, interpreted in terms of language, but without much reference to economic conditions.\*

(1) The old dismembered State of *Poland* was restored, partly from Russian Poland, partly from Austrian Galicia, and partly from the Polish lands of Prussia—the province of Posen and the greater part of the province of West Prussia. The latter was taken largely in order to give Poland access to the sea by way of the Vistula; and Danzig, a predominantly German town at the mouth of that river, was turned into a Free City under the control of the League of Nations. As there were many Poles in the rich province of Silesia, a plebiscite was decreed in a part of that province: it was later carried out under the direction of the League of Nations, and part of the rich Silesian coalfield was assigned to Poland.

(2) Three new States, two of which had never had separate existence in history, were created out of what had been the Baltic provinces of Russia—*Estonia*, *Latvia*, and *Lithuania*. *Finland* also became, for the first time, an independent republic.

(3) Bohemia, with Moravia and the country of the Slovaks (formerly part of Hungary), was turned into the new State of *Czechoslovakia*—a Slavonic State.

(4) *Rumania* was more than doubled in size by the addition of Transylvania (taken from Hungary), Bukovina, and Bessarabia. It became, in area, one of the greater States of Europe.

(5) Serbia, with which Montenegro was incorporated, was turned into a major state, by the addition of Bosnia, Herzegovina, Dalmatia, Croatia, and Slavonia, all formerly parts of the Austrian Empire: this new State took the name of *Yugoslavia*.

(6) *Austria* and *Hungary*, the traditional ruling peoples of all that area, were reduced to tiny States, surrounded by their former subjects, now far more powerful than themselves.

No attempt was made to limit the armaments of these new States, except Austria and Hungary. They all preserved the system of compulsory military service, which made huge armies possible. Nor was any attempt made to prevent them from setting up high customs-barriers, and thus increasing the difficulties in the way of European trade.

(7) *Greece* was greatly expanded at the expense of Turkey and Bulgaria. She was also promised large territories on the coast of Asia Minor. But these gains were only temporary; they led to troubles to which we shall have to refer later, and which made a new settlement with Turkey necessary.

(8) In western Europe the changes were less drastic than in the east. But *France* regained Alsace and Lorraine from Germany; *Italy* acquired Trieste, with the peninsula of Istria, and the valley of Trent, including a considerable German population; while the

---

\* School Atlas, Plate 21; larger Atlas, Plates 94-95.

results of the old Danish war of 1864 were partially reversed by a provision which decreed a plebiscite in the province of *Schleswig*, the north of which voted in favour of annexation to Denmark.

**Settlement outside Europe.**—Turning next to the lands outside Europe, the chief results of the treaties were that Germany was deprived of the whole of her colonies, and that Turkey lost almost all her empire outside Asia Minor. With the exception of the German islands in the North Pacific, which were given to Japan, all these territories were taken by France by Britain, and by Australia, New Zealand, and South Africa.\* In Africa *France* got the bulk of the Cameroons and part of Togoland; *Britain* got German East Africa (aTnganyika), together with strips of Togoland and the Cameroons; *South Africa* got German South-West Africa. In the Pacific, *Australia* got German New Guinea, and *New Zealand* Samoa. From the Turkish Empire France took *Syria*, while Britain obtained a protectorate over *Palestine* (now declared to be a Jewish National Home), over *Mesopotamia*, and over the partially desert region known as *Trans-Jordan*. *Arabia* became independent.

**Mandates.**—In regard to all these extra-European annexations, however, a new principle was established. Although the League of Nations had nothing to do with their apportionment, these lands were all declared to be held under "mandates" from the League; and their new rulers were required to observe certain principles laid down in the Mandates Clauses of the League Covenant, and to make regular reports to the League as to the administration of these lands. Thus the organised community of civilisation accepted some sort of vague responsibility for the Government of backward peoples. There was, however, no suggestion that the colonising Powers should place their existing territories in backward areas under League Mandates.

**A Drastic Settlement.**—In the whole course of modern history, no defeated States have ever been so severely dealt with as Germany, Austria, Hungary and Turkey were by this series of treaties; and no conference that has ever been held has made more drastic rearrangements. Two features of the settlement marked a new departure in international politics. One was the establishment of the League of Nations, which marked the beginning of a new era. The other was the attempt to apply in a logical way the national principle as the basis of political geography. These, it was hoped, would provide foundations for an era of permanent peace so far as Europe was concerned. But the settlement left many problems unsolved, and the years since the end of the War were years of incessant difficulty. Peace was not made secure in 1919.

### 3. INTERNATIONAL RELATIONS SINCE THE WAR

The troubled post-war years fall into three sections. In the first, 1919 to 1924, the world, and especially Europe, was still floundering in confusion. In the second, 1924 to 1929, things seemed to be

---

\* School Atlas, Plate 47.

steadily improving, and a new order seemed to be taking shape. But in 1929 a world-wide economic crisis began, which was accompanied by growing political difficulties, and the outlook once again became very black. We are here chiefly concerned with the first two periods. Something will be said about the third on a later page.

**Work of the League of Nations.**—Many people hoped and even expected that the institution of the League of Nations would of itself suffice to establish secure peace. They were disappointed. The League was not, for some years, allowed to deal with questions of real difficulty. The execution of the peace treaties was kept by the leading allied Powers in their own hands; they acted through a Council of Ambassadors, sitting in Paris. Moreover, the League was seriously weakened by the fact that it did not include three of the greatest Powers in the world—the United States, which (having rejected Wilson and his party) refused to have anything to do with it; Germany, which was not admitted a member until 1926; and Russia, which, under its Bolshevik government, had in effect declared war against Western civilisation as a whole. Nevertheless it achieved much good work. It helped to solve several minor questions which might have led to war. It set up a *Permanent Court of International Justice* at the Hague, which began to be used for the settlement of international disputes capable of being decided by lawyers. It established an *International Labour Office* which drew up conventions about hours and conditions of labour that were submitted to the various governments for acceptance. It dealt successfully with several very difficult problems due to the war, such as the financial disorganisation of Austria and Hungary, and the repatriation of people exiled from lands that had changed hands. Year by year its annual Assemblies rose in importance. The minor Powers valued the voice in international affairs which it gave to them, and from 1924 onwards the ministers of the major Powers found it essential to take its proceedings seriously. It was shaping a world public opinion which even the greatest Powers dared not disregard.

**Disarmament.**—But on one vital issue the League did not succeed in making any real progress. This was the question of disarmament. None of the victor-Powers save Britain, and none of the new States, was prepared to abandon compulsory military service. Though all agreed that there ought to be disarmament, nobody would move first, and there was no agreement as to the scale on which disarmament should take place. The only successful move was made not by the League, but by a conference at Washington summoned by the United States (1921), in which the leading naval Powers agreed to cut down their biggest battleships and cruisers in agreed proportions. But no agreement could be obtained, either then or in a later conference in 1928, as to the reduction of smaller types of warships, such as cruisers and submarines; and no scheme for the reduction of land forces was even discussed. Thus the pledge given to the disarmed enemy Powers that the compulsory reduction of their forces should be followed by an all-round reduction was not kept; and ten years after the end of the War, the armed forces of Europe were practically as great as they had been on the eve of the War. The nations would

not disarm until they felt secure. Various plans to give a sense of security were worked out—a Treaty of Mutual Assistance in 1923, and an elaborate document known as the Protocol in 1924 ; but they came to nothing. At length, after long and careful preparation, a Disarmament Conference assembled in February 1932. Everybody agreed that it *must* succeed, if the world was to be saved from ruin. But, after three sessions, it guttered out, having accomplished nothing. This failure to fulfil the pledges of disarmament given in the Treaties strained the patience of the disarmed Powers, and was one of the principal causes of the Nazi revolution in Germany in 1933.

#### 4. POST-WAR PROBLEMS

**The Russian Revolution**—There were several questions which kept Europe, or parts of Europe, in a state of alarm and uncertainty. The first was the revolution in Russia. The revolutionary Socialists (or Bolsheviks) who had seized power in 1917, were a small minority of the people. But they had suppressed all freedom of speech, and were engaged in ruthlessly destroying the old ruling and educated classes. They had abolished private property, confiscated all capital, whether it belonged to Russians or to foreigners, and repudiated all debts due to foreign governments. For a time the Western governments, and especially Britain, gave aid to the conservative forces which were trying to resist the Bolsheviks. The only results of this were, firstly, to enlist Russian patriotism on the side of the Revolution, so that Trotsky's Red Army was able to crush all opposition ; and, secondly, to convince those who were favourable to the Bolshevik ideas in other countries that the misery from which Russia was suffering was not due to the methods of the revolution but to the action of "capitalist" governments.

**External Influence of Bolshevism**.—For a time it seemed likely that the Bolshevik movement would spread to other countries. There were temporary outbreaks in Hungary and in Bulgaria ; there was an upheaval in Italy, where some factories were seized by the workpeople, and this provided the occasion for the establishment of a reactionary Fascist government under Mussolini ; and there were some fears of similar movements in Germany, where for a time economic distress was acute. The Bolshevik government, which desired to bring about a world-revolution, was, moreover, aggressive. In 1919 it created trouble in Finland, and in 1920 it attacked Poland, and French aid had to be sent to repel the attack. It also strove to stir up revolts in various parts of Asia, notably in China. There were frequent rumours of an alliance between Russia and Germany. When the Bolsheviks were left to themselves, the inherent weakness of their system was displayed, and the chance of an extension of their methods diminished. But their underground activity in all countries continued, and helped to create a feeling of insecurity and unrest which made it difficult for Europe to settle down.

**Turkish Nationalism**.—A second cause of disturbance was the growth of a nationalist movement among the Turks, fed by anger at the way in which the Turkish Empire had been partitioned. I

1922 the Greeks, who had tried to secure the territories promised them in Asia Minor, were driven into the sea ; and the Turkish nationalist government, under Mustapha Kemal, showed so much energy that for a time a renewal of war seemed inevitable. The Treaty of Sévres had to be abandoned ; and a new treaty, which gave back to Turkey much of the European territory she had lost, had to be concluded at Lausanne in 1923.

**Reaction and Nationalism.**—A third cause of unrest was the breakdown of democracy in several countries, and the rise, in its place, of military dictatorships. The most remarkable of these was the Fascist Dictatorship of Mussolini, established in 1922 ; Poland was under a practical dictatorship ; in Yugoslavia the king established autocratic rule in 1928 ; there were temporary dictatorships in Greece and in Spain. In short, a reaction against democracy seemed to be spreading over Europe, and this movement reached its culmination when the Nazi (National Socialist) party established its power in Germany in 1933. These governments suppressed freedom of speech, and freedom of the press. They were all militarist in spirit, and very self-assertive ; they therefore caused great nervousness among their neighbours. All over Europe, indeed, the nationalist spirit was rampant, more especially in the new States. It showed itself not only in large armaments, but in high tariffs, which greatly imposed economic recovery. Determined to manufacture within their own boundaries as much as possible of their needs, governments made their people pay higher prices for home-made products in order to keep out foreign goods ; and therefore impoverished them, and left them less to spend. The tariff barriers of Europe were far more serious after the War than before it. This was bad for all the trading countries ; but Britain, which exists by export trade, was hardest hit.

**Uncertainty in Germany.**—A fourth cause of insecurity was the uncertainty as to what was likely to happen in Germany. After the Revolution of 1918, Germany had set up a democratic Republic. But it was threatened from two sides throughout the period of unsettlement : there was a danger of Bolshevik revolution, and there was a still greater danger of reaction against the democratic and pacific system, such as actually triumphed in 1933.

## 5. REPARATIONS AND DEBTS

**Reparations**—The chief cause of unsettlement was the question of Reparations. There were repeated conferences to consider how much Germany could be made to pay, but they were inconclusive, and the demand remained vast and indefinite. The Allies expected colossal payments. These payments could only be made in German goods. But the Allies did not want to have their markets flooded with German goods. For example, when vast quantities of German coal had to be sent free into France and Italy, this was very bad for the coal-trade everywhere, especially in Britain. To pay for the coal, and to get hold of the vast quantities of English, French, and American money which were required by the Reparations

Commission, the German Government had to issue immense quantities of paper money. German money consequently declined in value, and the more it declined, the more had to be printed, until in the end a *mark* (once worth a shilling) came to be worth perhaps a millionth part of a penny. Trade became impossible under such conditions; but it was only from the profits of trade that the means could be got to meet the demands.

**France in the Ruhr.**—In 1923 a crisis came. Failing to receive payment in full, the French Government sent an army to occupy the great industrial district of the Ruhr. But you can't make a bankrupt pay by prodding him with bayonets. The only result was to make things worse, by stopping production in Germany's richest industrial area, and by arousing an intense bitterness which would have led to war if Germany had not been disarmed and defenceless. Complete chaos came in the finances of Germany. The paper mark became valueless. One result of this was that the German national debt was wiped out; people who had lent (say) 20,000 marks to the Government found that their 20,000 marks were reduced to the value of a fraction of a farthing; and all those who lived on invested money were reduced to beggary.

**The End of Reparations**—These events brought a return to sanity. An International Commission of experts (the Dawes Commission) was set up to determine how much it was physically possible for Germany to pay. The greatly reduced figure which they arrived at was agreed upon in 1924. Elaborate arrangements were made to secure regular payment. The ruined German currency was cancelled, and a new currency was started, based upon the value of gold. But it soon became apparent that even the scale of payments fixed by the Dawes Commission could not be maintained. A new enquiry was held in 1929, and a new scheme of payments was devised. It had scarcely been set on foot when, in 1931, a terrible financial crisis struck the world, and threatened to reduce Germany to bankruptcy. In June of that year, on the proposal of the American President Hoover, the payment not only of German reparations but of all debts between governments was suspended for a year; and at the end of the year the European Powers found themselves compelled to bring the whole business of Reparations to an end, in order to save, not Germany only, but Europe, from financial collapse. Germany was to make one final payment of a relatively modest amount; and even this was not to be paid until her finances were restored, and it was not to be paid to the allies, but into a central fund for the restoration of Europe. If this decision had been reached ten, or even five, years earlier, the settlement of the world would have been greatly eased. As things were, it came too late.

**Allied Debts.**—Meanwhile, another cause of dislocation was at work in the Allied Debts. All the allies on the Continent (including Russia) owed vast sums to Britain and America, mainly for the goods supplied during the War; Britain also owed a large debt to America, which would not have been incurred but that she had had to finance the other allies. The Bolshevik Government of

Russia had already repudiated its obligations and there was no possible means of forcing it to pay. Britain took the view that all these debts should be cancelled, regarding them as being simply a part of the contribution which the wealthier allies had made to the common cause. America refused to accept this view, and insisted upon being paid. Thereupon, Britain announced (in what was known as the Balfour note) that she would only ask France, Italy, and the rest for as much as (when added to her share of German reparations) would enable her to pay her debt to America; she was thus willing to forgo all monetary compensation for her war sacrifices. In 1923 she made an agreement with America as to the terms on which her debt should be repaid, over a period of sixty-two years. America then made similar agreements with the other allies, to whom she granted much more favourable terms than to Britain. Britain then made agreements with the other allies (except Russia), whereby their payments to her were fixed at just sufficient to cover, with Germany's contribution, the British payment to America. These payments continued to be made for some years, but, as all the creditor countries except Britain, by means of high tariffs, made it impossible for payment to be made in goods, this caused a strain upon the gold supplies of the world, which helped to cause the financial crisis of 1931. In that year all payments of debts from one government to another had to be suspended. In 1932, as we have seen above, the payment of German reparations came to an end. At the same time Britain excused the European allies from paying their debts to her. But if Britain was receiving nothing from Germany or the allies, and if the allies were receiving nothing from Germany, how were they to pay America, at a time of acute financial distress? France refused to pay anything. Britain paid one instalment pending a final settlement, then fell back upon making small "token" payments; but when America refused to accept "token" payments, Britain also refused to pay anything (1934). Thus the payment of inter-allied debts came to an end, like the payment of reparations. If this had happened ten years earlier the economic collapse of 1929 and the following years might have been averted. But always wisdom was too late.

**An Interval of Settlement.**—In spite of these difficulties and the failure to find a solution for them, Europe seemed to be settling down during the years after 1924. Trade was reviving. Prosperity seemed to be returning. The influence of the League of Nations grew year by year, and it might be hoped that the League would make peace safe. These hopes were highest in 1926 and the following years, when France and Germany, in the Locarno Treaties, pledged themselves never to go to war over their common frontier, and Britain and Italy guaranteed the maintenance of this treaty. Germany was admitted to the League; and the German Liberal, Stresemann, with the Frenchman, Briand, and the British Foreign Secretary, Sir Austen Chamberlain, formed a triumvirate of "good Europeans" whose co-operation promised peace to the world. Every European country had brought back its money on to the gold standard, and this created a monetary stability which greatly helped the growth of trade. But the apparent improvement rested upon insecure foundations.



Trade could not develop as it might have done because of the bristling tariff walls that divided Europe into watertight compartments. The long delay in making any advance towards disarmament left most of the nations of Europe armed to the teeth, watching one another with fear and suspicion. In one country after another, the democratic system was breaking down under the strain, and people were getting ready to resort to force instead of persuasion. In Germany—disarmed amid armed neighbours—the long delay in carrying out the promises of 1919, the continued occupation of German territory by foreign troops (which lasted until 1931), the intolerable burden of reparations (which also lasted until 1931) and the acute distress which had been caused by the years of inflation, were reducing the people to despair, undermining their belief in pacific and democratic methods, and preparing the way for the violent Nazi reaction triumphed in 1933. In truth, the apparent improvement of the years 1924-29 was mainly due to the fact that America, flushed with prosperity, was lending money on a reckless scale to Germany and other European countries, thus indirectly providing the funds with which reparations and debts were paid. The whole condition of things was artificial; and in 1929 the gigantic bubble burst.

**The Economic Crisis.**—The collapse began in Australia in the autumn of 1929. America was so prosperous that her people imagined her prosperity would last for ever, unaffected by the condition of the rest of the world. This led to a mania for stock-gambling, which brought a crash; confidence collapsed; banks failed by hundreds; factories were closed; the number of unemployed workers rose to ten, twelve, fourteen millions; and the depression went on deepening for three years. The result was that America ceased to lend money to Europe and the false prosperity of the last few years collapsed like a house of cards. A complete breakdown of credit in Austria and Germany was only averted by drastic measures: the payment of reparations had to be suspended, and the banks in other countries that had lent money to Germany had to undertake not to call it in, to avoid a crash. Then the panic spread to Britain, whose credit seemed to be shaken: we shall see the results in a later chapter. First Britain, and then many other countries, were either driven off the gold standard, or voluntarily abandoned it, and the monetary system of the world once more fell into confusion. Fearing ruin, every country strove to shut out the goods of other countries by tariffs, quotas and other restrictions, with the result that in three years the trade of the world was reduced to one-third of what it had been in 1929. Deprived of their markets by these restrictions, the producers of goods for export, and especially of foodstuffs and raw materials, had to sell their goods at cut-throat prices, and were therefore unable to buy other goods. Prices slumped down, and people refused to buy lest the prices should be lower next week or next month. Vast quantities of valuable goods were burnt, for want of buyers. There were tens of millions of unemployed workers. These are the conditions that produce revolutionary outbreaks. The world seemed to be rushing to ruin, because it would not realise that all its

members were mutually dependent, and could not all enrich themselves at one another's expense. It was realised that this dreadful state of things could only be met by agreement and common effort among the nations. In 1933 a World Economic Conference was summoned in London under the auspices of the League of Nations. But it led to no useful results and the crisis continued. The nations had not yet learnt their lesson. They would not realise that the well-being of each depended upon the well-being of all.

**Political Alarums.**—The acute economic distress from which the world was suffering during the years following 1929 helped to create political difficulties also; and just as the nations refused to co-operate to deal with their economic troubles because they were jealous and afraid of one another, so for the same reason, they failed to co-operate to maintain the system of the League of Nations and to make peace secure. In four of the Great Powers events took place which showed the seriousness of the upheaval, and the necessity of international co-operation.

**Japan and China**—During the war Japan had obtained a stranglehold upon the life of China. At the Washington Conference in 1922 she had consented to withdraw from this position, and had signed a Nine-Power Treaty guaranteeing the territorial integrity of China. For ten years she loyally observed these undertakings. In the autumn of 1931, seeing the powers all engrossed by their economic troubles, while China was in a state of confusion, the militarists of Japan took the bit between their teeth and seized the rich Chinese provinces of Manchuria. Later they overthrew two successive governments, and seized the reins of power for themselves. The seizure of Manchuria was a breach of the Nine-Power Treaty, of the League Covenant, and of the Pact of Paris, by all of which Japan was bound. If the League should fail to check this defiance its influence would be destroyed. The whole world agreed in condemning Japan's action, and the circumstances were very favourable for checking it, since America and Russia, the two Great Powers outside the League, were both anxious to stop Japan's aggression. In January 1932, America told Japan that she could not recognise changes made by force in defiance of formal obligations, and invited Britain and other countries to join with her. The British Government refused to concur in this action. The League sent out a Commission of Enquiry to Manchuria, which unanimously condemned the action of Japan, and in October 1932, the Assembly of the League endorsed the report. But no further action was taken. Even the fact that Japan attacked the Chinese from the international settlement of Shanghai and committed many atrocities did not arouse the lamb-like Powers. They turned the other cheek—China's other cheek. Japan contemptuously announced her withdrawal from the League; and that institution, upon which the hopes of mankind had been pinned, was gravely discredited.

**Disarmament and Germany.**—The failure to meet the first serious challenge that had been addressed to the League system naturally reacted unfavourably upon the prospects of disarmament.

The Disarmament Conference, long in preparation, met in February 1932. It had three sessions, but did not achieve any practical results, except a recognition of Germany's right to equality of status in armaments—which meant that if the other countries did not disarm, Germany would rearm. But this recognition only came after a formidable revolution in Germany: what had been refused to moderation seemed to be conceded to violence. The German people were in truth losing patience with the democratic and pacific policy which they had pursued since 1919. They could not endure to continue disarmed and helpless in the midst of heavily armed states, while the Great Powers refused to fulfil the pledges given in 1919. They turned more and more to the Nazi (National Socialist) party, led by Adolf Hitler, who maintained that Germany must trust to her own strong arm, and that she would get justice in no other way. In the autumn of 1932 the last Liberal government in Germany fell, and Hitler became Chancellor. In February 1933, a new election gave him an overwhelming majority, and an unqualified Nazi dictatorship was established. Freedom of speech and of the press were suppressed; a ferocious persecution of all Communists, Socialists, Liberals, Pacifists, and Internationalists, and in particular of all Jews, was set on foot; and critics or enemies of the government were arbitrarily imprisoned, beaten or murdered. This was the regime to which the Powers conceded what they had refused to concede to moderation. In spite of her economic distress and her embarrassed finances, Germany set to work to rearm, especially in the air; and this, of course, alarmed all her neighbours. When the Disarmament Conference proposed that there should be a period of probation before they disarmed, Germany announced her resignation from the League. Her agents, meanwhile, were working to bring about the union of Austria and Germany, which the European Powers would never permit. They were resisted by the Austrian Chancellor, Dollfuss, who had established a sort of dictatorship of his own, and waged ruthless war against the Austrian Socialists. Dollfuss was murdered by Nazi conspirators, and this for a moment brought the peril of war very near (1934). The danger was staved off, but peace remained very precarious in Central Europe.

Such were the results of refusing to recognise the necessity of international co-operation in an interdependent world. The world had been brought almost to wreck, both economically and politically. It was a bankrupt statesmanship that led to these results.

## CHAPTER LV

### THE BRITISH EMPIRE AFTER THE WAR

#### 1. THE TROPICAL EMPIRE

**Mandated Territories.**—The first and most obvious effect of the War upon the British Empire was that substantial additions were made to its already enormous extent. In form, indeed, these lands

are "mandated territories," and are therefore not strictly British lands, but League of Nations lands administered by Britain. In fact, however, most of these territories are treated exactly like other possessions, except that an annual report concerning them is laid before the League.

**East Africa.**—The addition of German East Africa (Tanganyika) to the earlier British possessions of Uganda, Kenya, and Nyasaland created a continuous group of colonial possessions in the uplands of East Africa which formed a mighty empire in themselves, and which may ultimately be grouped together in a new federation. In these lands, and especially in Kenya, very difficult racial problems arise from the fact that a substantial number of white settlers have made their homes in the highlands, while there is also a large population of Indian immigrants alongside of the native population. The difficulty of adjusting the rights and claims of these varied elements has led to a great deal of discussion and controversy since the War, and it cannot be said that a satisfactory solution has yet been found.

**Dominion Dependencies**—South-West Africa, New Guinea and Samoa are respectively administered by the governments of South Africa, Australia, and New Zealand, subject to the League of Nations. These Dominions have therefore become *imperia in imperio*, and this has involved a change in the character of the Empire. The policy to be pursued in regard to subject peoples is no longer a matter wholly regulated by the imperial government; yet no method of consultation on these matters between the mother-country and the Dominions has yet been devised.

**Palestine**—The two chief territories taken from the Turkish Empire—Palestine and Mesopotamia—stand in a peculiar position. In the case of Palestine, the Governor was appointed by the British Crown. But he was charged with the special duty of administering Palestine in such a way that it might become a "Jewish National Home," and there has been a considerable immigration of Jews, whose work has begun to restore prosperity to the country. In the normal course of events it might have been expected that Palestine would have become a self-governing community, and that the British protectorate would soon be unnecessary. But the position was complicated by the presence of a large native population of Arabs, who resented the coming of the Jews; and the relations between the two peoples were apt to be so strained that the British administration had a very difficult and delicate task of mediation between them.

**Iraq.**—Mesopotamia (Iraq) stood upon a different footing. Here, after a troublesome revolt among the Arabs, a native Arab administration, with an Arab royal line and a representative parliament, was set up. In 1922 a treaty between Britain and Iraq was concluded, whereby the British Government undertook to withdraw from the country as soon as Iraq was strong enough to stand on her own feet, and in 1924 a parliamentary constitution came into force in the land of the Garden of Eden. In the meanwhile, however, it was necessary to protect Iraq against a possible attack from the Turks on the one hand, who claimed the Northern Province of

Mosul with its oilfields, and on the other from the Arabs of Inner Arabia, who were showing themselves very aggressive. Against both of these dangers British protection was necessary. The Arab danger was averted by a treaty negotiated by Britain in 1925. The Turkish problem was referred to the League of Nations, which sent out a Commission of Enquiry. The Commission reported that Mosul ought to go to Iraq, but that Britain ought to retain responsibility for Iraq for twenty-five years. Turkey reluctantly accepted this award in 1927. In 1932 Iraq was, on the motion of Britain, admitted to the League of Nations and the British Mandate came to an end.

## 2. NEW RELATIONS WITH THE DOMINIONS

**Foreign Policy and Defence.**—The War necessarily brought about a change in the relations between the Dominions and the mother-country, which was made clear in the years following the peace. Throughout their history the Dominions had been content to leave questions of foreign policy and defence to be settled at Westminster, because the affairs of Europe seemed remote to them, and the risks of war appeared to be negligible. They had sent contingents to the South African War, without demanding to be consulted about the events that led up to it, or the settlement which followed it; but that was an intra-imperial affair. They had been admitted to a gradually increasing degree of consultation in the years preceding the War; and, but for the fullness with which foreign policy and defence questions were discussed at the Imperial and Defence Conferences before the War, it is doubtful whether the participation of the Dominions would have been as whole-hearted as it actually was. But then they had been called upon to throw their whole strength into a gigantic struggle, and they had nobly answered the call, making immense sacrifices of life and money. It was impossible that they should ever again regard foreign affairs as indifferent to them, or consent permanently to a system which excluded them from any effective share in discussing matters of policy which might involve them in war.

**The Dominions and the League.**—During the course of the War the Dominion Prime Ministers and representatives of India were added to the War Cabinet, and played their part in determining war policy. When the Peace Conference was summoned, all the Dominions and India were separately represented as individual States; and some thought that this implied the break-up of the British Empire. When the League of Nations was formed, they became individual members of the Assembly; but on the Council it was the British Empire, not Britain alone, that was represented, and Dominion members might, under certain circumstances, take part in the Council's proceedings.

**Causes of Difficulty.**—If the League of Nations had been the arena for all discussions on international relations, the Dominions might have felt that this arrangement met their needs. But many of the most important questions were settled outside the League, and this led to difficulties. On at least three occasions the necessity of

finding some solution for this problem presented itself. In 1922, when Britain was almost involved in a new war with Turkey, the Dominions took alarm; but the crisis passed off. In 1923—24, when the Treaty of Lausanne was concluded with Turkey, the Dominions were not consulted, though some of them had played a very great part in the war with the Turks. They felt, not without reason, that some of the terms of the Treaty might in the future involve them in war, and they resented their exclusion from the discussions which led up to it. Again, in 1926, when the Treaty of Locarno was negotiated, Britain alone became a guarantor of the Treaty, and the Dominions were expressly excluded. Evidently some readjustment of the relations between the Mother Country and the Dominions was necessary.

**Statute of Westminster.**—This question was discussed in three Imperial Conferences after the War. It was evident that the national spirit was rising high in all the Dominions. They were beginning to appoint diplomatic representatives of their own in foreign countries, and, while valuing imperial unity, they resented every suggestion of subordination to the Mother Country. In the Conference of 1926 it was agreed that the Dominions enjoyed complete equality of status with the Mother Country—a position which was already implied in their equal membership of the League of Nations. This agreement was embodied in the *Statute of Westminster*, adopted by the British Parliament in 1931. So far as the Dominions were concerned, the British Empire had now become an informal but very intimate alliance of equal states, linked together under a single crown. The terms of the alliance were not embodied in any treaty or constitution, and its members undertook no such specific obligations as they assumed in joining the League of Nations.

**The Ottawa Conference**—The profound economic depression which began in 1929 deeply affected all the Dominions: Australia, in particular, was brought to the verge of bankruptcy. Like other countries, the Dominions tried to meet the distress by imposing very high tariffs, against the trade of Britain as well as of foreign countries. The very severe tariffs of 1931 threatened to destroy British trade with Canada and Australia. There were some who hoped that the Empire countries might help one another to escape from their difficulties by establishing free trade within the Empire, and tariffs against the rest of the world. But the Dominions, bent upon building up their industries, would not consider any such proposal. Short of this, however, it was hoped that some co-operation might be possible, and a Conference was summoned at Ottawa in 1932 to discuss the question. At this Conference the Dominions obtained free admission for all their products to Britain, which had now become a protectionist country. They also demanded that Britain should impose tariffs against certain foreign goods higher than her own Parliament thought necessary, in order to increase the Dominions' advantage, and that she should pledge herself not to reduce these duties without the Dominions' consent. In return for these concessions, the Dominions made slight concessions in some of their tariffs, or raised their tariffs to still higher levels against foreign

countries while keeping them high enough to exclude British goods ; but in no case was British trade given conditions as favourable as it had enjoyed in 1929. It was also agreed that the dependent colonies under the control of Britain, in which the traders of all nations had been admitted on equal terms, should be made to give a preference to goods coming from Britain and the Dominions. This was an important departure from the colonial policy which Britain had hitherto pursued, and which had averted the hostility that might have been caused by the immense extension of her possessions.

### 3. THE PROBLEM OF INDIA

**India and the War.**—In India the War brought to a crisis the nationalist movement which had been growing steadily in strength for a generation. The first result of the outbreak of war was to still all the vehement controversies which had been raging during the preceding years. There was a remarkable outburst of loyalty to the Empire, so strong that it was possible to withdraw most of the British troops maintained in India, for service in one field of war or another. Splendid offers of help came from the princes ; and immense forces were recruited, especially in the warlike province of the Punjab. For the first time in the long history of India, Indian troops saw service in many parts of the world.

**The Nationalist Movement**—But as the War wore on, the demand for an expansion of self-government rose again. It was strengthened by the fact that the Allies claimed to be fighting for democracy, and by the feeling that if Indians were capable of fighting for the Empire, they were capable of undertaking the full rights of citizenship. In various forms the demand became louder. At length, in 1917, it was announced in the British Parliament that the time had come for a great step forward towards Indian self-government. The Secretary of State, Mr. E. S. Montagu, went out to India, and in conjunction with the Viceroy held a series of conferences with Indians in all the provinces. The result was a new scheme of government, which was embodied in the India Act of 1919.

**The Scheme of Dyarchy.**—Under this plan, there was to be a large elected majority in each of the provincial legislatures—(the Indian provinces are as big as European States). Certain subjects were to be “transferred” to the control of Indian ministers responsible to the legislature, the “reserved” subjects being retained in the control of the Governor and the Civil Service. In the event of deadlock, large powers were given to the Governor, and, in the last resort, the system could be suspended. The system was known as “Dyarchy.” It formed an experiment, to which there had hitherto been no parallel, in the direction of blending “responsible” and non-responsible government. At the same time the powers of the legislative body in the supreme government of India as a whole were substantially increased ; but in this sphere “responsibility” was not introduced, among other reasons, because the Government of India has to deal not only with the British provinces but with the native States

**A Period of Trouble.**—The new system had an unfortunate beginning. Before it was initiated, serious troubles broke out, in the spring of 1919, largely over the proposals included in what were known as the "Rowlatt Acts," which made special provisions for dealing with seditious cases. A violent agitation led to an outbreak of riots and even rebellion in the Punjab, in which a number of lives were lost. These disturbances were put down, but the way in which the situation was handled in the turbulent city of Amritsar (Punjab), where machine guns were turned upon a prohibited meeting, aroused fierce resentment, and stimulated the growth of a strong anti-British movement. The centre of this movement was Gandhi, a saintly Hindu who dreamed of a return to the pristine simplicity of primitive India, and preached "non-violent non-co-operation" with the British Government, or, in other words, a peaceful boycott of the British and all their works, including the new scheme of government. For some years Gandhi exercised an extraordinary influence over the Indian people, and under him the political movement spread even to the mass of the peasantry, hitherto unaffected by it. At the same time there was profound unrest among the Mohammedans, who deeply resented the downfall of the power of the Turks, for which they held the British Government responsible. The two movements to some extent coalesced, and an extremely difficult situation was created. To add to all these troubles, the new Amir of Afghanistan, stirred by the excitement that was spreading through the Moslem world, attacked the North-West Frontier. If he had been successful he might have been joined by the discontented Moslems of the Punjab. But his attack was swiftly and easily repelled. Although victorious, the Government of India, in the treaty that ended the war, abandoned the control over Afghan foreign policy which it had hitherto claimed and left Afghanistan in complete independence.

**The New System at Work.**—It was in these conditions that the new system of Indian government had to be set on foot. It would in any case have been difficult to work a system so novel. It could not work well in the midst of all this seething unrest. The majority of Indians held aloof from it for several years, and although this perhaps made things easier for the moment, it meant that the system could not take root. From the first there were loud demands, even from the most moderate of the Indian parties, that the system should be enlarged in the direction of complete responsible government. The Act had provided that the scheme should be revised at intervals of ten years; but few Indians were content to wait so long.

**Gradual Appeasement.**—Gradually, however, the excitement died down, especially under the patient and tactful administration of Lord Reading as Viceroy (1921—1926). Gandhi was arrested, and the non-co-operation movement which he had started broke down. Sharp differences of opinion emerged among various groups of Indians as to the way in which the constitution should be revised, the Mohammedans and the lower castes being afraid lest they should be left under the control of a Hindu majority, while the Princes regarded with distaste the growth of a democratic movement which threatened their authority.



**A New Scheme of Government.**—In 1927 a Commission under Sir John Simon was sent to India to make enquiries in preparation for the revision that had been promised in 1929. But because it consisted only of members of the British Parliament, and included no Indians, it was boycotted in India. There was a fresh outburst of anti-British feeling ; the Indian National Congress declared for complete independence ; and Gandhi once more had to be placed under arrest (1930). When the report of the Commission—an admirable document—was published, Indian opinion refused even to consider it. The British Government thereupon summoned a Round Table Conference, of representative Indians and members of all the British political parties (1930). The situation was transformed when the Indian princes announced that, subject to certain conditions, they were willing to come into a federal system for all India. But there were still many problems to solve, and the Indian representatives were by no means agreed as to the way in which they should be solved. After three years of discussion, they left it to the British Government to suggest a scheme. This was embodied in a *White Paper*, which was then thoroughly discussed, amid hot controversy. Legislation to carry somewhat similar proposals into effect has now been enacted.

**Economic Changes.**—Meanwhile, Indian nationalist opinion had found another expression in a movement for economic independence. Indian industry had been greatly stimulated during the War, when Britain was unable to send her usual volume of manufactured exports. The cotton, coal, and iron and steel industries in particular had made great advances. They were encouraged by the gradual development of a protective system which especially struck at British imports. Throughout the nineteenth century Britain had used her power over India to maintain a system of free imports, and, in particular, she had insisted that when duties were imposed for revenue purposes upon British cotton goods, there should be a countervailing excise duty on Indian cotton goods. This had to be definitely abandoned during the War ; and in the following years there was a gradual increase in the number of duties levied on foreign imports. India, like other countries in which the nationalist spirit was strong, aimed at being self-sufficing.

#### 4. TROUBLES IN EGYPT

The same nationalist spirit which was at work all over the world, showed itself in a very difficult form in Egypt. Egypt was, of course, not a part of the British Empire before the War, though her government was under British control ; she was nominally a vassal of Turkey ; her finances and her trade were largely controlled by foreign financial interests ; and separate courts were maintained for the trial of Europeans, who enjoyed certain privileges.

**Egyptian Nationalism.**—When the War broke out, and Turkey joined the German side, it was impossible that the legal position created by the Turkish suzerainty should survive, since it made every Egyptian legally an enemy. Accordingly a British

protectorate was declared, and the Khedive took the title of King. During the War Egypt was, in effect, under military government, and there were always large British and Indian forces in the country, at first for the protection of the Suez Canal, and later because Egypt was the base for the invasion of Palestine. But throughout this period a nationalist movement was growing in strength, and as soon as the War came to an end, it broke out into a furious agitation, led by an able but impracticable enthusiast, Zaghlul Pasha. The Egyptians would not be content with self-government under a British protectorate. They would be content with nothing short of complete independence; and violent disturbances broke out in 1919. A special Commission, under the presidency of Lord Milner, was sent out to study the problem (December 1919). It was favourable to the aspirations of the Egyptians, and was anxious to reach any practicable accommodation, but the Egyptians would listen to no proposals of compromise.

**Causes of Difficulty.**—There were three things which the British Government held to be essential. The first was adequate protection for the Suez Canal, which could not safely be left to a new, unstable, and possibly irresponsible government. The second was the need for safeguards for the rights and property of European residents in Egypt. The third was the maintenance of efficient government in the Sudan, which had been conquered mainly by British arms, and brought to prosperity by British officials. But all these requirements seemed to the Egyptian leaders to be restrictions on their national freedom; and the Nile, by which Egypt lived, draws its waters from the Sudan, so that the very existence of the country depends upon the wise control of the Nile-flow in that region. Eventually, in 1922, the independence of Egypt was recognised, subject to these three conditions, and the treaty signed between the two countries went some way to mollifying the rising temper of Egyptian nationalism.

**Continued Troubles.**—The settlement of 1922, however, did not bring peace. In 1924 the election of the Egyptian parliament gave a sweeping majority to Zaghlul and the Nationalist extremists. They resented the powers which the British Government still claimed, and, in particular, demanded that the Sudan should be recognised as part of the Egyptian empire, under the absolute control of the Egyptian Government. There were disturbances among the Egyptian troops in the Sudan. In Egypt there were a number of outrages against British subjects, culminating in the murder of the Sirdar, Sir Lee Stack (1925). Thereupon the British Government took firm action. It demanded the trial and punishment of the murderers, who were eventually executed. It flatly refused the Egyptian demand of sovereignty over the Sudan; Egyptian officials and Egyptian troops were ordered out of that province, and a separate Sudanese Defence Force was organised.

The troubles in India and Egypt have afforded evidence of the difficulty of adapting Western ideas and methods of government to the needs of oriental peoples. It cannot be said that in either country

a working solution of the problem has yet been found; and the relations between the government of the West and the peoples of the East, among whom the nationalist aspiration is stirring, remain among the most difficult problems not only of the British Empire but of the world.

## CHAPTER LVI

### BRITAIN SINCE THE WAR

#### 1. BRITISH POLITICS AT THE END OF THE WAR

**Post-War Hopes.**—During the last stages of the War, and especially when victory came in sight, a large part of the British people began to form glowing anticipations of the happiness that was to come with peace. The Germans were to be made to pay the whole cost of the war. War was to be banished for ever from the face of the earth. The brotherhood which war had created was to continue in peace-time, and the gigantic efforts of which the nation had been shown to be capable, when turned to the tasks of peace, were to banish slums and poverty and to bring about an era of universal prosperity. Britain was to be made, in the words of the Prime Minister, "a land fit for heroes to live in." It was a noble aspiration. But it did not sufficiently take account of the immense difficulties which the War had created, or of the impossibility of maintaining in peace that single-minded unity of purpose and opinion which had made the colossal war-effort possible. The greatness of these expectations, and the inevitable disillusionment which followed, added to the difficulty of the first trying years that followed the cessation of the War.

**The Situation in 1918.**—The Parliament which was sitting in 1918 had been elected in 1910; there ought to have been a new election in 1915, but this was impossible while war was raging, and the existence of Parliament was therefore prolonged until the end of the War. In this Parliament Conservatives and Liberals were evenly balanced, and there were also substantial bodies of Irish Nationalist and Labour members. The Government was a coalition of all parties, under the Premiership of Mr. Lloyd George. But a large section of Liberals, following Mr. Asquith, stood aloof and critical. At the end of the war the Labour members of the Cabinet withdrew. The Coalition therefore became predominantly Conservative, though the Prime Minister and some of his leading colleagues were Liberals.

**Legislative Work.**—During the last two years of this Parliament a good deal of legislation preparatory for the post-war era was carried. The most important of these Acts was a *Franchise Act*, which for the first time gave the vote to many women over thirty; it also widened the franchise for men so as to include all over twenty-one; and a redistribution of seats was carried out. The number of new voters added by the Act was much larger than had been added by any previous Act; the fortunes of Britain were in the future to

rest with democracy more fully than ever before. A second important Act was the *Education Act* introduced by Mr. H. A. L. Fisher. Its aim was to give to the democracy a fuller training, especially by providing continuation schools for adolescents ; though this was only a part of a far-reaching scheme of reform.

**The Labour Party.**—In 1918 the Labour Party adopted a new constitution, and came forward as a serious competitor for the control of power. The strength of the trade unions had grown by leaps and bounds during the War—it more than doubled between 1914 and 1918, and the numbers went on growing until 1920, when they reached a total of over 8,000,000. Nearly all the trade unions were affiliated to the Labour Party, and subscribed to its funds. By its new constitution the party definitely adopted Socialism, and defined the nationalisation of all the means of production as its supreme aim. The Labour Party believed in the possibility of a sweeping reconstruction of society ; and a manifesto, full of glowing aspirations, which it issued under the title of “Labour and the New Social Order,” drew to it the support of myriads of eager and hopeful people.

**The Election of 1918**—As soon as the War was over, a General Election took place on the new franchise. The Coalition appealed to the country to support the men who had won the War, and obtained an overwhelming majority ; the Labour Party came back with sixty-two members ; but the independent section of the Liberal Party was reduced to twenty-six, and the Nationalist Party was almost wiped out of existence. For the next four years the Government was omnipotent.

## 2. THE PROBLEMS OF PEACE

**The Transition to Peace.**—It had been anticipated that there would be great difficulty in bringing about the transition to peace conditions, since millions of fighting men would have to be reabsorbed into industry, the old channels of trade had been diverted for four years, and the pledge to restore trade union customs would have to be honoured. The difficulties turned out to be less than had been feared. Gratuities to the troops on demobilisation helped them to find new niches ; and a sudden and immense boom in trade, due to the fact that the whole world was short of goods, eased the situation for the first two years. This sudden boom came to an end in the autumn of 1920, and was succeeded by an equally sudden and profound depression. While the boom lasted, prices soared up, and wages followed them ; everybody enjoyed an unreal prosperity ; and in some industries, notably in cotton, factories were sold at wildly enhanced values, and reorganised under the load of heavy capital charges which later crippled them.

**Reconstructive Work**—The Government did not allow itself to be wholly absorbed in the difficult task of negotiating peace abroad. It set itself to tackle the work of reconstruction. New ministries—of Health, of Labour, of Transport, of Mines—were

instituted. A great conference of employers and workers, representing the whole range of industry, was summoned to discuss the methods of attaining co-operation, efficiency and justice (1919). The Ministry of Labour set to work to persuade all the chief industries to organise themselves under Joint Industrial Councils, on the lines laid down by the Whitley Committee on Industrial Relations which had been set up during the War; while in the unorganised and low-paid industries, Trade Boards were instituted in large numbers to bring about improvements in wages and conditions. The Ministry of Health set on foot gigantic schemes for the rehousing of the working classes, and for making good the deficiency of houses which had been caused by the cessation of building during the War. But these activities were soon to be impeded by the deep depression of trade which struck the country in 1920.

**Old Controversies**—Parliament had also to decide what was to be done about two great controversial measures which had been carried under the Parliament Act before the War, but had been suspended when hostilities began. These were the disestablishment of the Welsh Church, and Irish Home Rule. Both had been bitterly resisted by the Conservatives. Now that the Conservatives formed the predominant element in the Coalition, there had to be some compromise.

**The Irish Problem.**—The Welsh Church was disestablished, but it got somewhat more favourable terms. The Irish problem was more difficult, because the views of Ulster and the South of Ireland were irreconcilable. Moreover, during the War, the extremist Sinn Féin party had grown to great strength in Ireland. In 1916, at a critical period of the War, there had actually been an open rebellion in Dublin; and although it was suppressed, it had given a great stimulus to the Sinn Féin movement, which rapidly reduced the older Nationalist Party to insignificance. The Nationalists almost disappeared in the election of 1918; but the seventy-three Sinn Féiners who were elected in their place refused to attend, or to recognise in any way the authority of the British Parliament.

**Civil War.**—The situation thus created was an extraordinarily difficult one. In 1920 the Government tried to meet it by setting up two parliaments, one for the six Protestant counties of north-eastern Ireland, the other for the rest of Ireland; there were provisions for common action, and for ultimate combination. But while Northern Ireland set up its Parliament under the Act, Southern Ireland, led by the Sinn Féin party, refused to have anything to do with the scheme, but broke into open rebellion, declared Ireland independent, and elected a President of the Irish Republic, and a representative body called Dail Eireann. For two years a hideous civil war raged in the unhappy island; loyalists were killed, or their houses burned; anarchy seemed to have come. The Government tried to deal with this situation by measures of reprisal, and a special force of ex-soldiers was raised for the purpose, known from their uniforms as the Black-and-Tans. But this only made things worse, and brought feeling on both sides to an intensity of bitterness.

**The Irish Free State.**—At length, in 1921, the Prime minister intervened, and persuaded the Sinn Fein leaders to negotiate with him. After difficult negotiations, a Treaty was signed, whereby Southern Ireland, under the name of the Irish Free State, was recognised as having "dominion status" under the British Crown, and proceeded to draw up its own constitution.\* The more extreme Sinn Feiners, led by Eamon de Valera, the "President of the Irish Republic," refused to accept even this solution, or to agree to the maintenance of any connection with Britain. For a time civil war continued to rage in Ireland, between those who accepted and those who repudiated the treaty; but gradually the country settled down under the new regime. Thus, thirty-five years after Gladstone introduced his first Home Rule Bill, self-government was granted to Ireland in a form far more sweeping than Ireland would gratefully have accepted in 1886. Naturally British Conservatives, who had fiercely opposed Home Rule for all these years, were shocked by this conclusion; and their satisfaction with the Coalition Government waned rapidly.

### 3. INDUSTRIAL UNREST

**Strike Fever**—Meanwhile, there were acute labour troubles in England and Scotland. From 1919 to 1926 strikes, in many industries, were more frequent and more prolonged than ever before. This was partly due to the great expectations which were widely held; partly to the consciousness of power which filled the trade unions, in view of their vast growth and large funds. The chief centres of unrest were the railwaymen, the transport workers, and the coal-miners, all of whom could hold up the nation's economic life, and by using this power felt they could achieve great things. A Triple Alliance of these powerful unions was formed (1919). They even tried to dictate to the Government, setting up a Council of Action (1920), to threaten a general strike if the supposed policy of the Government in regard to Russia was not altered; and, although this came to nothing, the menace of a general strike continued to be a bugbear for some years.

**The Railways and the Mines.**—In 1919 there was a strike on all the railways, and for some days the ordinary methods of transport were completely dislocated. It was brought to an end by a settlement negotiated by the Prime Minister, one important element in which was the establishment of an elaborate system of negotiation and conciliation on the railways, embodied in an Act of Parliament. In the same year (1919) the miners put forward large demands, including the reduction of their working-day to seven hours, an increase of wages, and, in the background, the nationalisation of the mines. A Commission, presided over by Justice Sankey, was set up to inquire into these matters. On the recommendation of a majority of its members, a Seven Hours' Act was passed, and the miners' wages were increased. On the wider issue the Commission presented four

---

\* See School Atlas, Plate 37b.

reports, two of which (whose combined supporters had a majority of one) recommended Nationalisation. The Government declined to act on this, but passed a Mines Act (1920) establishing an elaborate system of representation and conciliation, which first the miners and then the mine-owners refused to work. In the autumn of 1920 there was a short strike, and in the next year (1921) a very prolonged stoppage in the mines, which for some months gravely interfered with every industry that depended upon coal. The dispute was terminated by the adoption of a new mode of fixing wages, based upon a division of the proceeds in agreed proportions between labour and capital.

**Industrial Depression.**—While these controversies were raging, a wave of industrial depression struck the country (1920), and the number of unemployed men suddenly leaped up to unheard-of figures, which were, of course, gravely increased by the coal stoppage. It was generally believed that this depression would be only temporary, and that it was mainly due to the confusion of foreign currencies, and to the adverse influence of unrest in the great Eastern markets of India and China. These were unquestionably important factors, though (as we shall see later) there were deeper causes at work. The Government had to face this emergency. It cut down its expenditure drastically, and some of its reform schemes (notably education and housing) were suddenly abridged. It extended the unemployment insurance scheme to cover practically the whole range of industry, and made special provision for giving benefits to workers who had not paid the required number of premiums. It started a scheme of giving government credits to exporters, to help them in overcoming the difficulties of foreign trade. It made grants to public bodies and advances to private firms to enable them to undertake useful work. It also passed a Safeguarding of Industries Act to protect industries that were seriously threatened by the competition of countries with a falling currency; but this device was found to be of very little avail for meeting that particular difficulty.

#### 4. MINISTERIAL CHANGES AND PARTY VICISSITUDES

**The Election of 1922.**—In 1922 the Conservatives decided to terminate their alliance with Mr. Lloyd George and his Liberal colleagues, and the Coalition came to an end. At the subsequent election, the Conservatives obtained a majority over all parties; and Labour Party increased its strength to 138; and the two sections of Liberals mustered between them 117 seats, though their relations were strained. Mr. Bonar Law, who had led the Conservative wing of the Coalition during the War, had appealed to the country with a promise of tranquillity. His hope was that if there was a cessation of meddling both by Government and by organised labour, things would come right of themselves. The two chief events of Mr. Bonar Law's brief tenure of power were, first, the conclusion of an agreement with America whereby Britain undertook to pay her debt without regard to the payments made to her by the other allies; and, secondly, the occupation of the Ruhr by France, which delayed the recovery of European trade, but was, for the moment, good for the British coal

trade, because the production of coal in the Ruhr almost ceased. Unhappily, Mr. Bonar Law was compelled to resign by the illness from which he soon afterwards died.

**The Election of 1923**—His place as Prime Minister was taken (1923) by Mr. Stanley Baldwin, who had risen very rapidly to the front rank in politics. Obsessed by the continuance of unemployment at high level—the figures had not sunk below 1,000,000 for more than three years.—Mr. Baldwin announced that in his view the only cure lay in Protection, and declined to bear the responsibility for government unless he could be released from the pledge given by Mr. Bonar Law not to introduce protective measures. He therefore asked for a dissolution. The election put the Conservatives in a minority, though they were more numerous (258) than either of the other parties, who numbered, respectively, the Labour Party 191, and the Liberal Party 158. Defeated on a vote of no confidence, Mr. Baldwin resigned (February 1924); and Mr. Ramsay MacDonald, as leader to the larger of the opposition parties, was called upon to form a ministry.

**The Labour Government.**—The Labour Party thus for the first time assumed office. But it had no majority; and although it held its position in virtue of Liberal votes, it made no attempt to come to any agreement or working arrangement with the Liberal Party. Its position was therefore very precarious. It had appealed to the country largely on the ground that it had a "positive remedy" for unemployment, but it did not, during its term of office, make any proposals on this head. Its only important legislative achievement was a Housing Act, to increase the subsidies offered for the erection of working-class houses. In foreign affairs, Mr. MacDonald was able to contribute to the settlement of the reparations question by obtaining an agreement on the Dawes Report. He also proposed to make a large loan to the Bolshevik government of Russia. This proposal was opposed by both Conservatives and Liberals and was the real cause of the fall of the first Labour government, though the actual division which led to its resignation was on a minor issue. Mr. MacDonald claimed a dissolution; and the third general election in two years took place.

**The Election of 1924.**—The country was tried of these constant changes. Moreover, during the course of the election, a sensation was caused by the publication of a letter of instructions from the Bolshevik leader Zinovieff to his supporters in England. The result was that the Conservatives, though they obtained a minority of votes, won an overwhelming majority of seats (413). The Labour Party did not lose heavily, returing 151 members; but the Liberal Party, blamed on the one side for having put Labour into office, and on the other for having turned it out, was almost wiped out, returning only 40 members to Parliament.

##### 5. THE BALDWIN GOVERNMENT AND THE "GENERAL STRIKE"

**Trade Depression.**—The new Government, secure in the control of both Houses of Parliament, had a clear field for the development



of its policy, and was assured of a full period of office. In the first session of Parliament it passed an important measure granting pensions to widows and orphans, and contributory old-age pensions at the age of sixty-five. But the main question by which it was faced was the problem of trade and employment. The unemployment figures still remained high, in spite of the fact that foreign currencies were now largely stabilised. No other country was suffering in the same way. It was becoming plain that something was seriously wrong with British trade. Exports, which are necessary to Britain's existence, had never risen, in any year since the War, to more than four-fifths of what they were before the War. The loss was mainly in the great staple trades—cotton, which had lost one-third of its export trade, woollen, iron and steel, shipbuilding, and, above all, coal, which had been the main foundation of British prosperity during the nineteenth century.

**The Problem of Coal.**—In the coal trade the situation was becoming increasingly serious : many mines were being closed down, the unemployment figures had reached appalling dimensions, and the rates of wages—fixed since 1921 on the basis of total earnings district by district—were in many cases too low to support life. The miners demanded redress. The Trades Union Congress took up their cause, and there was a threat of a general strike. A crisis was reached in the summer of 1925, when, to avoid a deadlock, Mr. Baldwin promised a subsidy on coal to give time for an inquiry. The subsidy cost £23,000,000 in nine months. During that period a Royal Commission, under Sir Herbert Samuel, investigated the situation in the coal trade, analysed the causes of its decline, and suggested a series of remedies, to be carried out partly by legislation and partly by agreement in the industry. Neither the miners nor the mine-owners would accept the scheme, and the Government refused to do anything unless they agreed. Eventually it passed an Act by which the working day was extended from seven to a possible eight hours ; but this was interpreted by the miners as a proof that the Government had taken sides against them.

**The General Strike.**—Once again the Executive of the Trades Union Congress took up the issue on behalf of the miners. After fevered discussions, it threatened to call a General Strike unless a solution satisfactory to the miners were found ; though it had no clear ideas as to what the solution should be, other than a renewal of the subsidy. The Government refused to yield to this threat, and on Monday, May 3rd, the long-threatened General Strike began. Strictly speaking, it was not a General Strike at all, for many trades were not called out. But the railways, tramways, and omnibuses, the electricians, the dock workers, and all the newspaper printers, in addition to the miners, stopped work with few exceptions. The Government had, however, long since made preparations for carrying on necessary services in the event of such a stoppage ; tens of thousands of volunteers offered themselves for all sorts of work ; and although, for a few days, the normal life of the nation was very gravely impeded, the strike was a failure. After nine days the strike-leaders surrendered, and the strike was "called off," having

sorcery depleted the resources of all the trade unions which took part in it, and seriously impeded the recovery of trade.

**Continued Trade Distress.**—The coal stoppage, however, continued for seven months. This brought to a stop many iron-works and other great productive concerns. Large quantities of coal had to be imported from abroad, at very high prices. In the end, the miners were completely defeated; their union funds were exhausted; the wage-levels which they had to accept remained terribly low; and some 200,000 of them (out of a total of 1,200,000) found that no work was obtainable. During the next two years the condition of the mining industry grew rapidly worse. In spite of low pay and increased hours, the majority of mines were run at a loss. The distress in the mining areas became intense, and the necessity of maintaining the families of so many unemployed workers raised the poor rates to unprecedented levels. Evidently the coal industry was in a very serious plight, and could no longer maintain the population which had hitherto subsisted upon it. Nor did the coal industry stand alone. All the major industries which had formed the strength of Britain during the nineteenth century were in a serious state of depression; and the figures for unemployment, after an improvement in 1927, became worse again in 1928. This distress was, however, mainly concentrated in the north and west, the home of the Industrial Revolution. In the south and east new trades—mainly luxury trades, depending chiefly on the home market—were enjoying a considerable degree of prosperity. The movement of the nineteenth century was being reversed, and wealth, industrial activity, and prosperity seemed to be drifting from the north to the south.

**Rating Reform.**—In the hope of giving relief to industry, the Government put forward a large scheme for transferring the major part of the burden of rates on productive industries to the Exchequer, at a cost to the taxpayer of over £30,000,000 per annum; and, in connection with this, they proposed far-reaching changes in the organisation and finance of local government. These proposals, which caused much controversy, were before the nation when the time came (1929) for a new general election. It was the first election decided by complete democracy, for in 1928 a fifth Reform Act was passed whereby the franchise was conferred upon women on the same terms as men. Thus the decision of momentous issues rested with the whole population of the nation over the age of twenty-one.

## 6. THE SECOND LABOUR GOVERNMENT AND THE FINANCIAL CRISIS

**The Election of 1929**—The result of the election was that the Labour Party was for the first time returned as the largest single party in the House of Commons, and was therefore for the second time called upon to form a Government, with Mr. Ramsay MacDonald as Prime Minister. But it had not a clear majority; and the Liberal Party, though only fifty-one strong, held the balance. It was ready to give general support to the Government, if vigorous action was taken to deal with unemployment. This had become the supreme issue because the number of unemployed was rapidly increasing. But the Government could not agree upon any bold policy for

the relief of unemployment. During its two years of office, indeed, this government passed no measures of any importance, except an Act for reorganising the coal industry, which was very severely criticised. Its excuse was that it had not a clear majority, and that the economic situation was becoming more and more difficult.

**The Financial Crisis.**—This government had the misfortune to be involved in the world-wide economic crisis, which began in 1929. The rapid collapse of world trade caused a rapid increase of unemployment; and the cost of unemployment pay had to be met by borrowing. This was no new thing; the previous Government had done it. While in this way expenditure went up, revenue was going down. Exports were shrinking more rapidly than imports, shipping was doing badly, and the interest paid on foreign investments was declining: a fear grew that Britain was not paying her way, and that the "balance of trade" was becoming unfavourable. The Government seemed to be quite unconscious of these growing difficulties, until they came to a height in 1931. In that year the monthly trade returns seemed to show that the "balance of trade" was steadily becoming worse. In that year also a Committee which had been appointed to examine the national balance-sheet (of Government revenue and expenditure) presented a very alarming report, in which it showed that there would be an enormous deficit in the next year's budget unless drastic steps were taken to reduce expenditure. The suspicion grew in other countries that British credit was not safe. At this moment came the financial crisis in Germany, referred to above (p. 607). Very large amounts of British money had been lent, for short terms, to German concerns; but to save Germany from bankruptcy her creditors had to agree not to insist upon repayment being made when it was due, and this meant that great sums of British money were locked up in Germany. There were always very great amounts of foreign money deposited in London, because London was the centre of the world's financial system. When the owners of these funds realised that the British Government could not balance its budget, that British trade was seemingly not paying its way, and that these huge amounts of British money were locked up in Germany, they took panic and began to withdraw their money. They would not, of course, take British money in payment; they had to be repaid, either in the money of their own countries, or in gold, or in French or American money; for France and America had such immense stocks of gold that their money was supposed to be safe. An immense "run" on the Bank of England developed. The Bank's stock of gold would soon have been exhausted, and it would have had to refuse to pay in gold, and pay only in British money, the value of which would then have quickly declined. To prevent this, the Bank of England borrowed £50,000,000 from the French and American banks. But the drain continued, and this borrowed money would be exhausted in a few days. The French and American bankers were not prepared to lend any more unless they could be sure that British credit would be restored, and the budget balanced. In particular they objected to the practice of paying unemployment relief with borrowed money.

**Fall of the Labour Government.**—This critical situation, which developed very swiftly in August 1931, had to be dealt with by the Government. The heads of the Government called into consultation the leaders of the other parties, who insisted that, at whatever sacrifice, the budget must be balanced, and promised their support in carrying out whatever measures might be necessary. The Government, bewildered and unhappy, agreed to drastic economies; but, rather than agree to any reduction in unemployment pay, the majority resigned, and the second Labour Government came to an end. In the controversy which followed the Labour Party was blamed for having caused the crisis. This was grossly unjust. The Government had, indeed, failed to foresee it or to prepare for it, though it had been maturing throughout their period of office. But nobody else had foreseen it.

**The First National Government.**—To deal with this crisis, a National Government was formed, with Mr. Ramsay MacDonald as Prime Minister, and a small cabinet of ten members, drawn from the three parties. It was announced that this exceptional type of government had been formed purely to deal with an emergency, that it would be wound up as soon as the emergency had been met, and that it would not appeal to the country as a National Government. An Economy Act, which made sharp reductions in the pay of all Government employees, from the Prime Minister and the judges to the teachers, the police, the soldiers and sailors, and the unemployed, was rapidly passed, and heavy new taxes were imposed. On the strength of this the Bank of England got a further loan of £80,000,000.

**Britain Driven off the Gold Standard.**—But the drain on the Bank still continued. The £80,000,000 was soon exhausted; and, on September 20th, 1931, the Bank of England had to announce that it would no longer give gold in exchange for its notes. Britain had been driven off the gold standard. The most dreadful pictures had been drawn of what would follow if this should happen; but these gloomy anticipations were completely disappointed. The value of the pound sterling rapidly fell, in other countries, to the equivalent of 13s. or 14s. But prices at home were not affected. What the change meant was that, since British buyers had to pay £1 for 14s. worth of foreign goods, they bought less, and imports went down; but since foreign buyers got £1 worth of British goods for 14s. of their money, they bought more, and exports went up. In this way the "balance of trade" would be automatically rectified. In other words, the harm done in fixing the value of the pound too high in 1925, which had seriously damaged British trade, was undone.

## 7. THE SECOND NATIONAL GOVERNMENT AND ITS WORK

**The Election of 1931.**—The First National Government was no sooner formed than there were loud demands, especially from Conservatives, for a General Election to test the feeling of the country. The election was held in October 1931. The Government put forward no definite policy, but asked for a "doctor's mandate"

to deal with the crisis as it thought fit ; but most of the Conservative candidates strongly urged the need for a policy of protection, to shut out foreign goods. The election gave a majority to the Conservatives of 4 to 1 over all other parties. The Liberals, numbering 75, were divided into two almost equal sections, one favouring protection, the other opposed to it, but both supporting the Government. The Labour Party, owing to the working of the electoral system, obtained only 51 seats, and lost nearly all its leaders, though in proportion to its votes it ought to have had over 200 members. The Ministry was reconstructed, in order to give a preponderance to the Conservatives. But it was clear from the first that the main work of this Government would be the establishment of a system of protection, and the abandonment of free trade.

**Britain Adopts Protection.**—The full policy of protection was adopted in February 1932, when a general tariff of 10 per cent. was imposed on nearly all imports, and a small Tariff Commission was appointed with power to impose higher duties on specific commodities, subject to subsequent parliamentary sanction. The range of protection was further increased as a result of the Ottawa Conference. Later, in 1933 and 1934, a series of elaborate schemes for the revival of British agriculture were worked out. Tariffs could not be used for this purpose, because free admission had been promised for the products of the Dominions, the chief competitors of the British farmers. Three other methods were therefore employed. In some cases subsidies were granted to the farmers, at the expense of the tax-payer or the consumer. In other cases the amount of various commodities which might be imported from various countries was definitely restricted by edicts of the Government: this was the method of "Quotas." In yet other cases the prices at which farm produce might be sold were fixed by edict, and it was made a penal offence to sell them at a lower price ; this was the method of controlled marketing. All this involved a high degree of government control. Its object was to guarantee to the farmer a higher price, but it also had the effect of reducing the amount of milk, bacon, etc., that the people bought ; and neither the numbers nor the wages of agricultural workers showed any improvement.

**Restoration of Credit.**—The work of the National Government had the effect of restoring Britain's financial credit, once the budget was balanced. In 1932 a remarkable operation brought about the reduction of the rate of interest on £2,000,000,000 of War Loan from 5 per cent. to 3½ per cent., and this was followed by a general lowering of the rate of interest on borrowed money, to the great advantage of industry. Taken together, the departure from the gold standard and the reduction of the rate of interest might have been expected to bring about a revival of trade, quite apart from the effects of protection. In 1932, indeed, foreign trade and unemployment at home were worse than they had been, even in 1931 ; but in 1933 and 1934 there was some improvement, though the level of foreign trade was lower, and unemployment was higher, than before 1931. The improvement was general almost all over the world, and was due to the fact that prices were not going down as they

had been, and therefore people were not putting off buying in the hope of a lower price.

**Foreign Affairs** —The National Government had to deal with very difficult problems in international affairs. It was at the beginning of its period of office that Japan defied the obligations she had undertaken, and that the Powers failed to take any effective action to check her aggression, with the consequence that the prestige and influence of the League of Nations gravely declined. During its period of office the Nazi Revolution took place in Germany, and Germany, like Japan, withdrew from the League and began to rearm. During its period of office the Disarmament Conference held three sessions, and failed to reach any agreement, though most of the Great Powers and all the lesser ones proclaimed their desire for advance in this direction. During its period of office the World Economic Conference was held in London, to consider what could be done to avert economic disaster. The Conference was faced with a warning from the world's experts that unless prices were steadied, monetary stability restored, and the obstacles to trade reduced, there might be a general economic collapse. But it disbanded without doing anything. The critics of the Government laid upon it a large part of the blame for these failures. History must judge as to the justice or injustice of this criticism.

**Problems of the New Era** —This narrative has to break off at a critical point. But it is very plain, from what has been narrated in this and the preceding chapters, that in the years following the First World War the British peoples were called upon to decide questions of immense difficulty and importance ; and that they had not yet found satisfactory answers for them. There was first of all the great issue of peace and war : the question whether any assured system of peace could be established which would give a security such as armaments seemed no longer able to provide. There was, secondly, the question of the future organisation of the British Empire : the question whether effective methods of common action in foreign policy and defence could be devised ; the question whether workable systems of self-government could be wrought out suitable to the needs of vast oriental populations in India, Burma, Ceylon, and Egypt. There was, thirdly, the question of the future of British industry : the question whether the great staple industries could recover their old vigour ; the question whether Britain should imitate the rest of the world in pursuing a policy of exclusion and economic nationalism, and whether in such circumstances she could maintain her crowded population ; the question whether self-respecting means of livelihood could be found for a million and more idle workers. There was, fourthly, the question whether the great hopes of a finer social life which had been aroused after the War could be fulfilled—whether slums could be swept away, destitution abolished, and new opportunities opened to men and women of all classes—in the difficult circumstances of the new era. And behind all these, there was the question whether complete democracy, now for the first time fully established, would work well, would find solutions for these difficult problems, and would perform the functions by which alone democracy

can be justified—that of picking out the noblest men for the duties of leadership, and that of diffusing throughout the whole community a sense of common responsibility.

These momentous questions cannot be answered in a day or in a year. They will still be undecided when the boys and girls of to-day take up the duties of active citizenship. And upon the right decision of them depends the whole future of that ancient and revered nation, or family of nations, whose history we have been studying.

### SUPPLEMENTARY READING ON BOOK X

A much fuller account of the events dealt with in this book is given in Book XII of *A Short History of the British Commonwealth*, and is also included in Muir's *Brief History of our Own Times*. J. A. Spender's *Short History of our Times* is also valuable. Of bigger books dealing with the War and its consequences there is no end: every leading statesman and soldier has published his account. The best short history of the war is by Liddell Hart. For post-war conditions and events see *The Political Consequences of the Great War*, and *The Economic Consequences of the Great War*, both included in the Home University Library. A new edition of Muir's *Expansion of Europe* deals fairly fully with the effects of the war in the non-European world.

## EPILOGUE 1933-1939

### I

The last edition of this book ended at a depressing moment. In 1933 the trade depression was at its worst : the World Economic Conference had failed to take any steps to relieve it ; the Disarmament Conference had broken down ; and Hitler and his Nazis had established their power in Germany. The New Order initiated in 1919 had evidently failed to bring either secure peace or prosperity to the World.

During the following six years the situation became steadily worse. It became more and more evident that a formidable challenge was being directed against democracy and all the liberties which it embodies. The reign of law, freedom of discussion, the control of peoples over their Governments, toleration of religious and political differences, the growing kindness of man towards man, and the growing recognition of the rights and claims of the mass of working people—all these things, which had been the greatest achievements in the progress of civilisation during the modern age, were repudiated by the 'totalitarian' forms of despotic government which had already been established in Russia and in Italy, and which had now been established in Germany also. At the same time, the sanctity of treaties and agreements between nations, which is the only foundation of security in international relations, was cynically disregarded by the totalitarian States. If this ugly reaction towards mere barbarism were allowed to triumph, the essentials of a civilised way of life would be destroyed ; the slow advance of centuries would be undone ; and the world would relapse into the conditions of the jungle.

It was in Nazi Germany that this ugly reaction was seen at its worst : and this was the more serious because Germany is, and must be, the pivotal State of Europe. There is something in the character of the German people, as it has been moulded by history, which seems to make them peculiarly liable to be carried away by a strange ferocity, and to condone brutal and uncivilised conduct if it seems to bring them material success. To go on further back than the last forty years of the nineteenth century, Bismarck had created German unity by the methods of 'blood and iron,' and by waging three successive wars of naked aggression ; and the German people had eagerly acclaimed his success. In the Great War of 1914-1918, Imperial Germany had displayed a callous disregard of civilised usage which was with difficulty resisted by the more civilised peoples ; and the German people had accepted these methods without question. And now this worship of brute force, this unrestrained cruelty, this repudiation of all restraints in the imposition of their power, had once again taken control of the German people, in a more violent and dangerous form than ever,



so that it threatened not only the peace of the world but the very survival of civilisation.

The unflinching barbarity of the Nazi regime aroused the horror of the world even in its early manifestations within Germany itself. But the civilised peoples were very slow to realise the danger which this evil spirit threatened to themselves and to civilisation. Even in the democratic countries there were many who rejoiced to see the establishment of 'firm government' in a disordered country, and who strove to convince themselves that German Nazism would be a bulwark against what they regarded as the worse horror of Russian Bolshevism. Instead of checking the evil at the outset, as they might easily have done, they allowed it to grow; and, in their dread of being drawn into another war, looked on while Nazism won one easy triumph after another, and even helped it to win its successes. It was not until the insatiable ambitions of the ruthless masters of Germany were fully revealed in 1939, not until Germany had almost won the domination of Europe, that Britain and France realised the danger, and plucked up their courage to resist.

The rapid development of the German menace was the outstanding fact of the years from 1933 to 1939. Although many other great events were taking place in these years—in India, in Palestine, in China, as well as in the development of British social and political institutions at home—they were all dwarfed by this supreme menace. We make, therefore, no excuse for concentrating attention upon it.

Yet the statesmen of the world had little excuse for their blindness. Their own errors of policy had made the rise of Hitler possible. They ought to have realised that Germany had reached a stage in which she was ripe for revolution. Her government was discredited. She had 6,000,000 unemployed. Her middle class, the most stable element in the country, had been ruined by the great inflation. The young men of that class, hopeless about the future, were enrolling themselves in the Nazi gangs by thousands, and were ready for any violence. The great German industrialists, fearful of democracy, were ready to finance an attempt to overthrow it. And the German tradition favoured violence. All these factors provided materials for reckless fanaticism of Hitler.

What is more, Hitler himself had defined his ideas and aims, even before he came to power, with a fulness never paralleled by any revolutionary leader, in a book which became the Nazi Bible—*Mein Kampf*. Strangely enough, the statesmen of the democracies paid no attention to this illuminating revelation: perhaps they regarded it as the indiscretion of a politician out of power, which would be forgotten when he reached office. But even Hitler's first acts were so much in accord with the spirit of *Mein Kampf* that it ought to have been studied.

This book, the first part of which was written during Hitler's imprisonment after the humiliating failure of his first attempt to seize power in 1923, still forms the fullest exposition of the aims of the Nazi system. Hitler has been distinguished by his faithlessness

to all the most solemn pledges and undertakings he has given, for he regards such pledges as merely temporary devices to throw dust in the eyes of his intended victims. But he has never wavered in his adherence to the main ideas embodied in *Mein Kampf*. If we would understand the real nature of the crisis of civilisation into which we have been plunged, we must first attempt to grasp the governing ideas of the Nazi creed, as they have been expounded in *Mein Kampf*, and subsequently developed in action.

## II

Hitler's dominating idea, the inspiration of all his thinking, was a belief in the purity and greatness of the German race, and in its divinely appointed destiny to rule the world. This was, of course, unscientific nonsense, for the German people, like all others, are of very mixed stock. But it was an idea which was readily welcomed among a people suffering from the humiliation of defeat. Hitler assured his hearers (and he was a demagogue of genius) that the German were invincible, and that their apparent defeat in 1918 had been due to treason from within; Jews, Communists, Socialists, Liberals and other contemptible people had stabbed her in the back in the moment of her trial. If she was to regain her rightful position in the world, she must get rid of these dangerous elements without pity; and trust, not to Leagues of Nations and other sentimental notions, but to her own strong right arm. Nor must any lesser race be allowed to stand in the way of the fulfilment of her destiny. Other races had no rights at all, if they impeded the victory of the Germans, who must harden their hearts and be merciless in dealing with them. The immediate need of the Germans was more *lebensraum*, living-space, which must be got at the expense of neighbouring but inferior peoples; and no sentiment of pity must prevent their being cleared out to make room for the noble Germans.

The vast majority even of the Germans were, in Hitler's view, quite incapable of ruling themselves. They were mere sheep, whose minds were being poisoned by the ideas of democracy. They must be led, or driven, to the fulfilment of their destiny by a Führer who could control not only their actions but their very thoughts; and a lordly class of *Herren*, chosen without regard to descent or wealth, must be trained to be hard and merciless so that they might be fitting instruments for the Führer's will, fitting masters for the sheep-like people.

To bring the people into the right attitude of submissiveness, all instruments were legitimate. The people must be preserved from the infection of other ideas by being shut off from every influence coming from the rest of the world; their ears must be closed to the wireless news, and their eyes to the newspapers, of other countries. The whole of their own press must be turned into a mere echo of their Führer's ideas.

No political writer has ever shown a more profound belief in the efficacy of propaganda than Hitler. The object of propaganda for him was, not to diffuse a knowledge of the truth, but to hammer

into men's minds by constant repetition (without any possibility of contradiction) the ideas which their Führer wanted them to hold ; and if lies served the purpose lies must be used—the bigger the lie, the more effective it might be, provided that it was unflaggingly asserted and no contradiction was permitted. In Goebbels Hitler found a very efficient instrument for the execution of this plan, which he cynically confesses in *Mein Kampf*. The greatness and prevailing power of truth is to Hitler as much a figment as justice, honour or faithfulness to obligations.

But propaganda, however skilful, was not enough : it had to be reinforced by terror. A gigantic force of secret police, the Gestapo, using the horrors of concentration camps, and backed by armies of young braves who had learnt to identify brutality with manliness, must bring the powerful influence of fear to work upon the minds of the people, to make them abject ; children must be made to act as informers against their parents, so that all might learn to avoid even whispered criticism of their masters. In Himmler Hitler found a police chief more ingenious and more pitiless than Fouché, Napoleon's terrible secret service chief.

Finally the whole system of education, and the whole machinery of compulsory service not only in the army but in labour battalions and in other ways, must be employed to indoctrinate the whole nation, and especially its youth, with the same body of ideas. All must learn to think alike, to accept the duty of utter submission, to recognise that the individual has no rights at all against the State. The worship of the State has never been carried to so high a point as under the Nazi regime. And, since religion has always been the most potent influence against this kind of idolatry, both the Roman Catholic and the Protestant communions must be forced to make themselves the instruments of State-idolatry, or suffer persecution. There was even talk about the creation of a new nationalist religion, drawing its inspiration from the old pagan gods. Race-idolatry and State-idolatry must become the real religion of the Germans.

Thus tamed and enslaved, the great German people were to be turned into a mighty army, with all its powers and all its resources concentrated upon a single end, the subjugation first of Europe and ultimately of the world. It took some time to convert the German people to this point of view ; but terrorism and propaganda, ruthlessly and scientifically directed, had an amazing effect ; and every success that Hitler won increased his hold upon the minds and the imaginations of the subjects whose very souls he was poisoning.

It was difficult for the statesmen and peoples of civilised countries to believe that designs so vast, destructive and malign could be harboured by the rulers and people of a great country. It was all the more difficult because, from the moment of his advent to power, Hitler constantly posed as a lover of peace. The sincerity of this pose may be measured by his statement, in *Mein Kampf* that those who desire peace should strive for a German victory ; for this means, if it means anything, that there would be no hope of peace until Germany had conquered the world.

Yet there is a sense in which Hitler did desire peace. He desired, and hoped, to win his victories without having to fight for them. This expectation, which was for several years amazingly fulfilled, was based upon a shrewd estimation of the European situation.

In the first place he saw that there were many small States in Europe—mostly neighbours of Germany—which were individually too weak to resist pressure from a great Power. In most of them there were groups of German-speaking citizens, who could be used to create disorders and represented as the victims of oppression. These small States, whose independence had been loyally respected during the nineteenth century (until Germany invaded Belgium in 1914), had hoped to be protected by the system of collective security envisaged by the League of Nations. Once they lost this hope, they could have no refuge but a declaration of neutrality, which could be as easily broken as the neutrality of Belgium. The existence of these little States offered, indeed, a positive temptation to aggressors.

For dealing with small States Hitler worked out a skilful technique of treachery. First he would lull them into a false confidence by giving them the most positive assurances of his peaceful intentions, or even (as in the case of Poland) by signing a treaty of non-aggression for a long period of years. Then, at a convenient moment, he would stir up unrest among the German-speaking inhabitants of the doomed country, and let loose the controlled German press in a campaign of virulent abuse and protest against the imaginary oppression of Germans. Meanwhile he would have armies secretly mobilised; and when the right moment came, without warning, but with loud assertions that his patience was exhausted, he would overrun the territory of his victim.

This method, he believed, would be successful, because he was convinced that the great democracies hated the idea of war, and were utterly decadent. Some of the dominant elements in them even sympathised with him. They would not attempt to fulfil their obligations under the Covenant of the League; in any case, they would not be able to act in time; and, when presented with an accomplished fact, they would submit to it with feeble protests. Every time this happened, the prestige of the democracies would decline, the small nations would be more unready to trust to their protection, and the power of Germany would grow, until finally no resistance would be possible. Maps were even allowed to be printed and circulated in Germany showing the dated stages in which Europe was to be conquered.

These Machiavellian plans were not, indeed, openly displayed in *Mein Kampf*. They were revealed gradually in the course of events; but they were entirely in accord with the programme of *Mein Kampf*. They won for Hitler a succession of easy triumphs, which secured the hold he had established over the German people by means of propaganda and terrorism. He seems to have persuaded himself that victory would always be as easy, and was driven to paroxysms of fury when at length, in 1939, Britain and France resolved that a stand must be made, and showed themselves inflexible.

It is necessary to trace the stages in the growth of this ugly and threatening power, which menaced the survival of all the advances that civilisation had made during the modern age.

### III

The accession of the Nazis to power at the beginning of 1933 was almost accidental. The influence of the party was rapidly declining in 1932, as was shown in the results of the elections in that year. The party was almost bankrupt, and a great deal of money was required to support the huge gangs of braves upon which its strength depended. The President of Republic, old Hindenburg, now almost senile, distrusted them. He was a Conservative Junker of the old school, who wanted to see the government of Germany in the hands of the Junkers. But the Conservative elements could not carry on, being in a small minority in the Reichstag. Their leader, von Papen, thought he could use the Nazis as tools; and, as Hitler would accept no office less than that of Chancellor, von Papen persuaded Hindenburg to confer that office upon him, surrounding him with a Cabinet in which the Conservative elements predominated.

Hitler had no intention of being a tool. He demanded a new election, in which all the resources of the Nazis and the terror of their gangs were to be used to secure a clear majority. In preparation for the election the Reichstag building was burnt down, and the blame was laid upon the Communists, who were the second largest party in the State. On this plea, all Communist members were excluded from the new Reichstag, and this ensured to the Nazis a fictitious majority. The majority was used to pass an Enabling Act, which empowered the Government to act upon its own authority, without consulting the Reichstag.

Thus entrenched in power, Hitler proceeded to employ the immense powers of a modern government with unflinching vigour. One by one all the other parties were forcibly dissolved, leaving the Nazis as the only legal party; and the Reichstag became a body of yes-men, summoned only to hear the dictates of their master. All the private armies which had been reducing Germany to chaos were suppressed—except the Nazi gangs, who became petty tyrants, carrying out the system of terrorism in every part of the country, without semblance of law. Huge concentration camps were constructed, in which Jews, Communists and all critics and opponents of the new regime were imprisoned, tortured, and often slain, without trial. The Reign of Terror had begun.

Even now, Hitler was not quite secure. Old Hindenburg was still President, and had to be consulted. The Conservatives, who had fondly hoped that Hitler would be their tool, were restless and discontented. Even in the Nazi Party itself there was a strong opposition element, headed by Ernst Röhm, Hitler's earliest friend, and the chief organiser of his gangs, and Gregor Strasser, who had been thought of as Chancellor. In 1934, Hitler overcame these limitations upon his absolutism. Hindenburg died, and Hitler had himself elected as his successor, combining the offices of President

and Chancellor ; but he preferred to be known as the Führer or Leader. The other obstacles he got rid of by wholesale murders, in June, 1934 : the hundreds of victims included some of his earliest friends, as well as some of the Conservative leaders, such as Schleicher, who had been Chancellor. All the leading personalities who could do so escaped from the country ; and the possible leaders of an opposition, the possible organisers of an alternative government, were now either dead, or in exile, or undergoing the tortures of a concentration camp.

The German people found themselves the subjects of an unlimited and ruthless despotism, the vilest that had ever existed in any European country. Many of them submitted willingly, especially as they were not allowed to know that went on in the concentration camps. Many others, perhaps a majority until they were dazzled by Hitler's brilliant successes in the realm of foreign conquest, waited for an opportunity of revolt. But revolt is not easy against the power that controls the machine-guns, and the system of terror was extremely efficient. The Trade Unions were suppressed, and all workers were brought under severe discipline. The Clergy were whipped into submission, with a few exceptions such as Pastor Niemöller on the Protestant side, and some of the more courageous Catholic leaders like Cardinal Faulhaber. Every element of opposition was forcibly subdued ; and when the German people were called upon to cast their votes for the election of a Reichstag or in a plebiscite, they gave nearly a hundred per cent of their votes in support of the regime : it demanded heroism to give a negative vote under the eyes of the Gestapo. Hitler was able to demonstrate to the world that he had the whole German nation behind him—or under his heel.

#### IV

Meanwhile Hitler had begun to demonstrate his daring plans for the restoration of German strength, and this (together with the discipline of the schools) won for him the almost idolatrous devotion of youth. With a contemptuous gesture, he withdrew from the League of Nations. Defying the Treaty of Versailles, which he lost no opportunity of denouncing, he re-established universal compulsory military service, which won for him the support of the army chiefs, and set on foot gigantic schemes of rearmament ; even earlier he had begun the creation of a colossal air-force, which was calculated to give pause to any powers that objected to his proceedings. Rearmament, combined with vast road-making schemes and other public works, brought unemployment to an end, and reconciled many of the workers to the loss of their liberties and the reduction of their standards of living. Complaints about the shortage of foodstuffs were met by the assertion that 'guns are more important than butter.' The German people were being disciplined to endure hardship, and to throw all their strength into preparation for the far-reaching plans of conquest which Hitler envisaged.

Hitlers' first objective was the incorporation of Austria in the German Reich. A few years earlier Austria might have welcomed an economic, though scarcely a political, union ; but the spectacle

of the Nazi tyranny was deterrent, and, on a free vote, a majority of the Austrians (especially the very numerous Jews) would have rejected union with Germany. The Austrian Chancellor, Dollfuss, strongly took this line, and made friends with Fascist Italy, which had no desire to have Germany as its immediate neighbour. Unhappily Dollfuss engaged in a fierce struggle with the Austrian Socialists, who were as much opposed to Nazism as Dollfuss himself; and the forces of resistance were divided. There was a small but noisy Nazi party in Austria. It was encouraged from Germany to create disorder; and finally attempted to seize the Government, and murdered Dollfuss (1934). At once Italian troops were massed on the Austrian frontier; and as the new German army was only in process of formation, and as yet unable to face a struggle with a first-class power, Hitler disowned the assassins, whom he later acclaimed as heroes and martyrs. For the moment Austria was safe; Hitler's first enterprise had failed.

## V

But now a new distraction changed the European situation. In 1935 Mussolini, eager for the glory which would reconcile his subjects to the loss of their liberty, undertook the conquest of Abyssinia. This was a highly dishonourable enterprise, for Italy had sponsored the introduction of Abyssinia into the League of Nations, had concluded a treaty of arbitration with her, and had no real ground of complaint against her. It was also a very risky enterprise, for it involved the locking up of Italian armies in the Red Sea, where it would be very difficult to supply them, and where they could easily be cut off.

This was a supreme test of the efficacy of the League of Nations. If Italy had been warned beforehand that the machinery of the League would be brought into operation, and in particular that Britain and her navy would play their part, it is probable that she would have abandoned her scheme. She had doubtless calculated that Britain and France, who wanted her support against Germany, would not interfere.

But when the campaign was about to begin, and it was too late for Mussolini to withdraw without a ruinous loss of prestige, the League of Nations, led by Britain, resolved to take action against Italy. The decision was received with enthusiasm, and fifty nations agreed to join in imposing "economic sanctions" against the aggressor. Nowhere was the enthusiasm greater than in Britain, where belief in the League of Nations was stronger than in any other country. The Government made use of this enthusiasm to precipitate a General Election, in which they obtained a huge majority for the policy of upholding the League, and for rearmament to make this policy effective.

Within a month of the election, the British and French secretaries were planning to buy off Mussolini with half of Abyssinia. There was an outcry, and the British foreign minister had to resign. But this projected betrayal had killed enthusiasm. The

'sanction' which might have ensured the defeat of Italy. If she had been deprived of oil, she could not have used fully the aeroplanes and tanks with which she overwhelmed the almost unarmed Abyssinians. But this 'sanction' was not imposed, because Britain and France did not want to press Mussolini too hard. It was largely with oil supplied by British concerns that Abyssinia was overrun—though not subjugated.

In a few months, the League, once again led by Britain, acknowledged defeat and withdrew the sanctions. As a means of preventing aggression, the League seemed to be impotent. Mussolini trumpeted his triumph. He had learnt to despise Britain and France. He turned towards Germany, and the anti-German combination, for whose sake the League had been sacrificed, was broken up. These were the results of vacillating policy.

## VI

Meanwhile Hitler had taken advantage of the opportunity afforded by the Abyssinian controversy. Under the Treaty of Versailles, the German Rhineland had been 'demilitarised,' that is to say, the Germans had been forbidden to raise fortifications or maintain troops in that region, as a safeguard against a new German attack upon France. This provision had been confirmed, and voluntarily accepted by Germany, in the Locarno Treaties; and Hitler had spontaneously given a pledge that he would observe the Locarno Treaties 'with his whole heart.' This was an example of his technique of giving pledges in order to throw dust in the eyes of his opponents.

He now resolved upon a sudden military occupation of the Rhineland. The German generals warned him that this would be very dangerous. The new German army was not ready, and (it was estimated) would not be ready until 1940; it was short of officers, arms and munitions; and if Britain and France, or even France alone, should move, resistance would be impossible. Trusting to the reluctance of the democracies to engage in war, Hitler nevertheless took the risk of sending his ill-equipped armies into the Rhineland.

France and Britain took no action, save verbal protests against the one-sided repudiation of a solemn treaty. If they had acted, it is probable that the Hitler régime would have collapsed; for propaganda and terrorism had not yet done their work in Germany, and there were powerful elements of opposition. It was this first bloodless victory which later made it possible for Hitler to construct the Siegfried Line, to keep the western powers at bay while he worked his will in the East.

## VII

An opportunity soon arrived to test the new friendship between Germany and Italy. Early in 1936 a general election in Spain gave power to a left-wing Government. The Liberals were the largest



element among the supporters of the Government; there was also a substantial element of Socialists, and a handful of Communists. At first a coalition, the Government soon became Liberal. It was merely absurd to represent this regime as Communist or Bolshevik. Spain had suffered for a century from the oppressions of a reactionary landowning class, and an over-powerful obscurantist Church, which controlled the educational system. The new Government set to work to turn Spain into a modern, efficient democracy. But the old ruling class, and the army whose officers belonged to that class, broke into revolt, with the secret encouragement of Germany and Italy, and set up a dictatorial government. A civil war, marked by ferocity on both sides, began; but the rebels did not win the early success that was anticipated.

Britain and France, acting together, urged that all the powers should agree upon a policy of non-intervention, and leave the Spaniards to settle their own concerns. Both Germany and Italy joined in this agreement. But while France and Britain refused to sell arms to either side (though the Spanish Government was entitled under international law to buy arms for its own defence), Italy and Germany from the first flouted the non-intervention agreement, and poured tanks and aeroplanes and technicians and even divisions of regular troops into Spain to help the rebels. The justification which they gave for this action was that they were fighting against Bolshevism. But their real aim was to extend the system of dictatorship, and, in preparation for a coming war against the democracies, to ensure that Spain, under a friendly government, should be in a position to close the Mediterranean to British and French ships, and to cut the communications between Britain and France and their oversea-empires.

Britain and France, in face of this brazen violation of the non-intervention agreement, might justly have repudiated the agreement, and, without sending troops to the aid of the Spanish Government, might have sold it the munitions which it desperately needed. If they had done so, the Spanish Government might very well have been victorious. But the British and French governments were so terrified of being drawn into war that they pretended to be unaware of what was happening, and even looked on idly while British ships, carrying not munitions but food to Spain, were bombed and sunk by Italian aeroplanes. The only power which sent any effectual aid to Spain was Russia; and even this help came to an end when the Spanish Government made it clear that it did not intend to pursue a Communist policy.

The British Government had come to the conclusion that the best way of averting a general war was to "appease" the dictators; and the policy of "appeasement" apparently required that they should be left free to work their will in Spain. So, after more than two years of desperate fighting, the Spanish Government was overwhelmed; and Spain fell under the rule of a dictatorship, closely linked to Italy and Germany.

## VIII

Italy had played the chief part in the conquest of Spain. Germany had meanwhile been otherwise occupied. For, now that Italy was his friend, there was no reason why Hitler should not proceed with his interrupted designs against Austria. He pursued with great success the technique he had already worked out. He gave solemn pledges to respect the independence of Austria. He encouraged the Austrian Nazis to create disturbances, which made peaceful government very difficult. He demanded that the Austrian Chancellor, Schuschnigg, who had succeeded Dollfuss, should admit Nazis to key-positions in his Government, as a means of cultivating friendly relations ; these men were in constant communication with Hitler. The German Press was used to suggest that the Austrian Nazis were being cruelly oppressed. Then Schuschnigg was persuaded to visit Hitler in his mountain fastness at Berchtesgaden, in order to talk things over in a friendly way. Hitler raved and stormed at him until the unhappy man completely lost his nerve ; realising that the destruction of Austria was planned, and that no help could be expected from Italy. In order to show that the Austrian people did not wish to be absorbed in Germany, Schuschnigg announced a plebiscite. At once orders came from Hitler that the plebiscite must be abandoned, and threats that there would be an immediate invasion unless Schuschnigg resigned.

Meanwhile German troops, tanks and aeroplanes had been massed on the Austrian frontiers, and Italy had been persuaded to abandon her opposition. Once more the German generals protested that this was a very dangerous adventure, since France and Britain would certainly resist. But Hitler had taken the measure of the French and British Governments, both in the Rhineland and in Spain. He persisted in his course ; the armies poured in (March 1938) under skies black with aeroplanes ; resistance would have been futile and Austria was annexed to Germany. The armies were followed by the secret police, and by hordes of Nazi gangsters ; the reign of terror was established in Austria in an even more horrible form than in Germany ; and the numerous Jews of Vienna were subjected to nameless cruelties and humiliations. France and Britain, as before, contented themselves with verbal protests. This was Hitler's first important addition to the territory of Germany, and his second bloodless victory. The ease with which it was achieved greatly strengthened his hold upon the German people, who began to think that their Fuhrer was always right.

## IX

The conquest of Austria exposed Czechoslovakia to attack, and Czechoslovakia was Hitler's next objective ; it was now surrounded by Germany on three sides. But Czechoslovakia looked like being a much harder nut to crack than Austria. It had an admirable army, and some of the finest munition factories in Europe. It had a superb defensive frontier in the mountains of Bohemia, which had been elaborately fortified. This mountain-frontier was what Hitler especially coveted ; for it was not only the defence of Czechoslovakia,

but the principal barrier in the way of a German advance into south-eastern Europe, which Hitler intended to dominate. Czechoslovakia also had defensive alliances with both France and Russia ; an attack upon it might involve Hitler in war on both his eastern and his western fronts, which he was determined to avoid.

Another reason why Hitler desired to overthrow Czechoslovakia was that it was a highly successful democracy, the only true democracy east of the Rhine ; and had become a place of refuge for fugitives from Germany. Like the other States of South-eastern Europe, it was inhabited by mixed races, whom it was striving to weld into a single State by the methods of democratic freedom rather than by those of oppression. The most important of the minority peoples were the so-called 'Sudeten Germans'—German-speaking people of mixed race, who dwelt mainly along the mountain frontiers of Bohemia. They had never been German subjects, but had dwelt alongside of the Czechs for a thousand years. During the three centuries when Austria dominated the Czechs, they had been the instruments of Austrian supremacy, and they resented their subordination when the Czechs won their freedom in 1919. Perhaps the Czechs might have treated them more generously. But they had complete freedom of speech and of the press ; they controlled the government of their own towns ; they had schools in which their children were taught in their own language ; and they were fully represented in the Czechoslovak parliament. In short, they were far better off than the Germans over the border, and there is no evidence that they had any wish to be incorporated in Germany, though they would have liked to have been associated with Austria.

Hitler's plan for mastering Czechoslovakia was to stir up the 'Sudeten Germans', and to represent them as cruelly oppressed. He could not attack the fortified frontier without having to face very heavy losses, which might alienate the German people ; and he could not face also a war with France and Russia if these countries were true to their alliances. But he still believed that the democracies would go to any lengths to avoid war, and he knew that Russia, for geographical reasons, would find it difficult to give direct help to Czechoslovakia.

There were, of course, among the Sudeten Germans, excitable young braves who were captivated by the idea of being citizens of a conquering Germany, and they, supported by imported agitators from Germany, could be used to stir up trouble. But the majority of the Sudetens were so far from desiring to be subjects of Nazi Germany that Hitler's own agent, Henlein, in order to keep his hold over them, had to make speeches asserting their loyalty to the democracy of Czechoslovakia. Nevertheless the controlled German press was unleashed in a campaign of virulent abuse of the Czechoslovak Government, and unfounded assertions about the oppression from which the Sudeten Germans were alleged to be suffering.

In May, 1938, only three months after the subjugation of Austria, Hitler evidently thought that it was worth while to make an attempt. Huge forces were massed on the Czechoslovak borders.

But the Czechs were prompt to mobilise their forces and to man their defences. France, Britain and Russia all made strong representations, and it was evident that Italy was unlikely to join in the fray on Germany's side.

Hitler therefore recoiled for the moment. He hurriedly began to construct fortified lines on his western front, in case France should be true to her obligations. But he still went on with his plan.

If Britain and France had realised the gravity of the issue, and had resolved to resist this iniquitous attack, they could probably, in conjunction with Russia, have built up a formidable combination of the Balkan powers and Poland, which knew very well that if Czechoslovakia fell their turn would come next. The result might have been that the war against Germany would have been precipitated a year earlier; but it would have been fought in far more favourable conditions than in 1939, with the Siegfried line still only in embryo, with the fine army and fortifications of Czechoslovakia enlisted on the Allied side, and perhaps with the aid of other States including Russia. But they made no attempt to build up such a combination. They trusted rather to 'appeasement,' and strove to persuade themselves that Sudetenland really ought to be German territory.

Hitler mouthed threats, and seemed to be ready to face a general war. Whether he would have done so in fact is, and must remain, uncertain. But the democracies trembled at the thought, and strove, through Lord Runciman who had been sent to Czechoslovakia as a pacificator, to persuade the Czechoslovak Government to make concessions. They made concession after concession; every concession was followed by new demands, and meanwhile the German press rose to hysteria in its dictated denunciations. Hitler was convinced that his opponents were on the run.

Finally Hitler made it known that if his demands were not conceded before the end of September, he would attack, his patience being exhausted. Thereupon the British Prime Minister flew to Berchtesgaden to interview the tyrant. He returned with a demand that Sudetenland should be ceded by Czechoslovakia to Germany. The British and French leaders met, and agreed that Czechoslovakia must give way, in order to preserve the peace of Europe. At a terrible midnight interview, the British and French ambassadors in Prague insisted that Czechoslovakia must yield up her fortified frontiers, and leave herself defenceless at the mercy of Germany—making it clear that, unless she did so, she would get no help from the democratic powers; but that if she yielded, her remaining territories would be guaranteed. Czechoslovakia mournfully yielded.

Armed with this surrender, the British Prime Minister flew again to meet the tyrant, this time at Godesberg. He found that Hitler's demands had risen again, and was presented with a map showing the new demands, which included a good deal of pure Czech territory. These claims were so outrageous that even the chief

apostle of appeasement could not accept them. War was very near, a war which would probably engulf the whole of Europe. But Hitler seems to have thought that he had carried his bluff too far. At the last moment it was announced that, on the mediation of his friend Mussolini, Hitler had agreed to yet another conference, in which the Prime Ministers of Britain and France should meet the Dictators of Germany and Italy.

The Conference was held at Munich. The Czechs, whose very existence was at stake, were not allowed to be present. Russia also was pointedly excluded. Under the guidance of her foreign minister, Litvinoff, she had for some years been making advances to the democracies. She had joined the League of Nations ; she had made a defensive alliance with France ; she had framed a democratic-seeming constitution, though it did not seriously qualify the power of her dictator, Stalin ; and, both in the previous May and in the immediate crisis, she had shown readiness to join in the defence of Czechoslovakia. Now she was offered the cold shoulder ; and she did not forget.

The Munich Conference came to an agreement which very closely resembled the unacceptable terms offered at Godesberg. It was agreed that a Commission of the four powers should settle all doubtful points ; it settled them all in favour of Germany. The powers agreed to guarantee the independence of what remained of the Czechoslovak State. Hitler and the British Prime Minister signed a paper in which they promised future friendly relations. The British Prime Minister flew back to London, and, waving Hitler's worthless 'scrap of paper' in the air, proudly proclaimed that he had secured 'peace for our time.'

Hitler had won another bloodless victory ; a victory so great that it almost made him the master of Europe. His belief seemed to be justified that the Western democracies would stand anything rather than go to war. This dazzling success, in which the democracies, instead of opposing him, had actually made his path to victory easy, reduced to silence the grumbings and questions of the German people, and convinced them that their Fuhrer was infallible.

## X

The peace for which so terrible a price had been paid did not last long. Less than six months after its conclusion, Hitler's armies marched into defenceless Czechoslovakia, whose independence he and the democracies had guaranteed, and declared it a protectorate of Germany. The democracies did not even think of trying to fulfil their guarantee. The familiar system of terrorism and concentration camps, the familiar régime of the Gestapo, or secret police, and of the Nazi gangs of bullies, was instituted ; and the country was plundered of all its removable resources.

A little later Hitler occupied the territory of Memel, which had been given to Lithuania by the Treaty of Versailles ; while Mussolini,

who felt that he was not getting a fair share of the plunder, invaded and occupied the little State of Albania, from which he could threaten both Greece and Yugoslavia.

These events at last opened the eyes of Britain and France. They had tolerated Hitler's breaches of good faith, so long as they were directed against little States. But now there was a shameless breach of solemn engagements with *them*. They had persuaded themselves that Hitler aimed only at the inclusion within his *Reich* of purely German territories, and on this assumption it was possible to argue that the annexation of Austria and Sudetenland was defensible. Hitler had, indeed, proclaimed that he did not want foreigners, and Czechs in particular, in his *Reich*. The conquest of defenceless Czechoslovakia—which France and Britain had persuaded to strip herself of her defences—proved that Hitler's word could never be relied upon, and that the talk about not wishing to include foreigners was no more than a pretence.

They realised, now, the full horror of the régime of merciless persecution which they had helped to bring upon the Czechs, and which they had done nothing to prevent in Austria. They perceived, at last, that the ambitions of this brutal tyrant were unlimited; that he aimed at nothing less than the conquest of Europe, which (with their connivance) he had come near to achieving, and ultimately at the domination of the world. They saw that the very foundations of western civilisation were imperilled—good faith among nations, the rule of law, the rights of the individual, freedom of speech and of the press—indeed all the liberties which Europe had slowly attained through centuries of struggle. They realised that if the career of conquest of this pitiless tyrant could not be checked, all Europe would be subject to a reign of terror and injustice such as history had never seen. They saw, at last, that every concession to Hitler had added to his strength, and weakened the prestige and the power of the democracies. Tardily, but perhaps not too late, they determined to resist, and to bring to an end this nightmare of horror.

They set to work to re-create the system of collective security which had been destroyed in 1935; and to form a combination of States that would be able to check the ambitions of Germany. But it was too late. The nations had lost confidence in the steadfastness of the great democracies. Poland, indeed, gladly accepted a defensive alliance with Britain and France, because she knew that she was the next indicated victim, and had no confidence in the treaty of non-aggression for ten years which Hitler had concluded with her in 1934. Turkey also—far from the probable scene of strife—accepted a defensive alliance, with the condition that she should not be involved in war with Russia. Greece and Rumania were willing to accept guarantees, but not to assume any definite obligations on their own parts. They, and other nations, were by this time all trembling before the ruthless might of Germany, now almost at the peak of her reorganised military strength. If Czechoslovakia had been still erect, these States might have been ready

to unit behind her fortified barrier ; but Czechoslovakia was ruined.

Most important of all, Russia appeared strangely reluctant to make any close agreement. She remembered how she had been cold-shouldered at (and before) Munich. She feared that the Western Powers meant to involve her in war with Germany, and then leave her in the lurch. Britain and France engaged in long negotiations with her. She made all sorts of difficulties. Meanwhile Litvinoff, the advocate of friendship with the democracies, had been ousted from the Foreign Secretaryship.

Suddenly, when it was already clear that Germany was about to attack Poland, the staggering announcement was made that Germany and Russia had concluded a non-aggression agreement, which meant that Russia would not go to the aid of Poland. How much more it meant, the course of events alone could reveal.

## XI

Safe from attack on his eastern front, Hitler felt that he could now carry out with impunity his onslaught upon Poland, for which he had made the usual preparations with a lying campaign about the oppression of Germans in Poland. The doomed country had no strong lines of defence. Attacked suddenly by masses of aeroplanes, which destroyed its railway junctions, and by immense numbers of tanks, the Poles were rapidly forced back to the line of the Vistula, where they could have held out. But at this moment large Russian forces invaded in their rear, and overran the eastern part of the country. The position was hopeless, and Poland succumbed. Germany and Russia divided her whole territory between them ; and a reign of terror began which outdid all the horrors of Austria and Czechoslovakia. Poland was "crucified between two thieves."

It was on September 1, 1939, that the German attack upon Poland began. On September 3rd Britain and France declared war upon Germany, and the Second German war began. But they could do nothing to help Poland, whose downfall was ensured before the end of the month. The French, indeed, started an attack upon the outposts of the German Siegfried line, but this did nothing to check the murderous advance of Germany in Poland. The British and French navies at once instituted a close blockade of Germany ; but this could only have a gradual effect. Once again Hitler had won an easy victory, and the Allies had done nothing to stop him. The remaining small powers, in the Danube valley and in Scandinavia, trembled more than ever, and clung to the frail defence of neutrality.

Hitler hoped that, as before, the Allies would accept the accomplished fact, and would recognise that they could do nothing to rescue either Poland or Czechoslovakia. In October he made an insolent offer of peace, on the basis of his retaining all his conquests. But the eyes of Britain and France were at last open. They saw that peace with this merciless and treacherous tyrant would be no more than a truce ; and that the survival of freedom in Europe was at stake. The proffered peace terms were rejected ; and it was

plainly declared that no peace was possible so long as the Nazi régime continued in Germany. Hitler was forced to realise that he was committed to a struggle of life and death.

## XII

He realised also that his cynical pact with Russia had weakened his position. For six years he had been declaring his fundamental antipathy to Bolshevism ; he had even said, in *Mein Kampf*, that any agreement between Germany and Russia would spell the ruin of Germany. It was on this basis that he had concluded his alliance with Italy, with the recently established dictatorship in Spain, and with Japan. All these States, on whose aid he had counted when the conflict with the western democracies began, were outraged by his sudden *volte face*. The Pope, also, was indignant not only with the Bolshevik agreement, but even more with the cruel treatment of the Catholics of Poland ; and this fortified Mussolini's attitude. Italy remained, not neutral, for she maintained her friendship with Germany, but 'non-belligerent'—watchful to guard against any Russo-German attack upon the Balkans ; and Spain took the same line. Hitler, therefore, was isolated, having no friend but Russia, which deeply distrusted him.

The price which Germany had paid for Russia's attitude was soon revealed. The little Baltic States, Estonia, Latvia and Lithuania, whose upper classes were largely German, were compelled to submit to a sort of vassalage to Russia, and Hitler undertook to remove all the Germans, who had been settled in these countries for centuries, to new homes in Poland.

Then Russia made intolerable demands on Finland. The Finns resisted : they were the first of the small nations, except Poland, to offer resistance to the dictators. With an utter disregard for every obligation, Russia proceeded to attack Finland, expecting as easy a victory as Germany had obtained in Poland. But the Finns, though vastly outnumbered, and ill-equipped with the munitions of war, held out with such heroism that, if they had received adequate help, they might have driven back the invaders. The League of Nations called upon all its members to help her, and some of them did so. But Sweden and Norway, her natural helpers, were so terrified by the prospect of German intervention, that they not only gave no effective aid, but refused permission to Britain and France to send troops (as they were ready to do) to the aid of Finland, across their territory, which was the only possible means of access. After three months' heroic resistance, the Finns were compelled to accept hard terms of peace.

This was the fourth small state to succumb to the attacks of the dictators, without receiving any effective aid from Britain and France, the champions of liberty in Europe.

Thus began a conflict of momentous importance for the fortunes of the civilised world. The successes of Hitler had been so unbroken, his power seemed so irresistible, especially now that he had the backing of Russia, that all the lesser States of Europe trembled



before him, while his own people were held in abject submission by terror and by the unending iteration of his lying propaganda. With the exception of Turkey, and the peoples of south-western Asia, the western world lay numb before him, and dared do nothing to offend him—dared do nothing except make feeble protests when his submarines sank their ships and murdered their sailors. So completely had the scheme of collective security broken down that Britain and France were left alone to resist him. This was the consequence of their failure to check the growth of this dreadful power when it was still possible.

### XIII

Outside Europe, the opinion of the whole civilised world was almost unanimous in condemnation of Hitler's methods, and of the dreadful cruelties perpetrated under his régime. In the United States, where the tardiness of Britain and France in taking arms against his tyranny had been vigorously condemned, there was an almost universal belief that, unless Hitlerism could be destroyed, the outlook for the whole world was grim indeed, and a universal hope that the Allies would be victorious. But America did not feel that she had any share of responsibility for the salvaging of civilisation. She had intervened in the previous war, and in the framing of the settlement which ended it. The results had been unsatisfactory, and she had not been repaid the moneys she had expended. Safe beyond the Atlantic, she was determined not to be again involved in a European war. She preserved a strict neutrality, an anxious impartiality between what most of her citizens believed to be right and what they believed to be wrong. At first she even forbade the sale of warlike supplies to any of the belligerents; but this was modified by the permission to sell supplies to any power which paid for them "on the nail," and took them away in their own ships—no American ships were to be allowed to enter the war-zone lest they should become victims. An attempt was made to extend the limit of territorial waters round the American coasts from three miles to three hundred miles. This one-sided alteration in international law could not, however, be upheld.

### XIV

There was a marked contrast between the attitude of the United States, and the attitude of the British Dominions. They were as far removed from the scene of strife as the United States, and, under the Statute of Westminster, they were free to stand aloof if they chose to do so. But, unlike the United States, they realised from the first the magnitude and the world-wide significance of the issues of this war. In South Africa, indeed, the Prime Minister, General Hertzog, was in favour of a declaration of neutrality, but he was defeated in the Parliament that had been elected to support him; and, under his successor, General Smuts, South Africa threw herself into the war on the side of the Allies. Without any shadow

of hesitation, Canada, Australia and New Zealand had already adopted the same course; armies were raised and transported either to France or to Egypt, Palestine, and other parts of south-western Asia, to which it was expected that the war might extend. The only Dominion which stood aloof was Eire (Irish Free State), which refused to make friends with Britain until Northern Ireland should have been forced to accept a union with Eire, which she disliked as much as Eire disliked union with Britain.

The dependent colonies were as loyal, as they had been in the last war: they had reason to dread the German menace, for they knew how Germany had treated her colonies when she possessed them; they knew also the attitude of the Nazis towards the rights of what they regarded as inferior races—the Negroes, said Hitler in *Mein Kampf*, was a sort of ape; they knew the spirit in which the Nazis treated peoples who had the misfortune to fall under their dominion.

The most remarkable result of the declaration of war was its effect in Palestine. That country had been kept in turmoil for years by strife between the Jews, who had been brought in to help in building up a Jewish National Home, and the Arab population, which had resented the coming of the Jews, even though they brought a new prosperity to the country. There had been a state of guerilla war in Palestine for two years or more before the outbreak of the European war. But the moment war began, these troubles ceased: and soon mixed forces, in which Jews and Arabs were enrolled and trained side by side, were being raised. It is not impossible that their common effort in the defence of liberty may lead to better relations between the two peoples, and the war in Europe may bring peace in Palestine.

It was not surprising that the Jews should be fiercely anti-German, in view of the way in which their race-fellows had been treated in Germany itself, and in all the German conquests. The readiness of the Arabs to throw themselves into the struggle was more remarkable. But it extended over the whole Moslem world, to Syria, to Iraq, to Egypt. The Arabs knew that they could expect from Britain and France far juster treatment than Nazi Germany would ever give them. One of Dr. Goebbels' favourite propaganda subjects, the supposed tyranny exercised by Britain over the Arabs, was taken out of his mouth.

## XV

The only part of the British Empire in which there was any hesitation about supporting the allied cause was India, and here the hesitation was due, not to any sympathy with Nazi Germany, but to the eagerness of the Indian Nationalist party to use the opportunity to force Britain to consent to the concession either of complete independence, or of that qualified form of independence which is called Dominion Status.

Since the India Act of 1935, full powers of self-government have

been enjoyed by representative bodies (elected on a very narrow franchise) in eleven Indian provinces. In eight of these provinces governments had been formed by members of the 'Congress Party', who accept the policy laid down by the Indian National Congress. The Indian National Congress cannot be said to represent the peoples of India. It represents mainly the educated classes of the upper Hindu castes. Its aim is to secure for India complete independence, or, at the least, Dominion Status, under a system which would give a large majority to the Hindus, who under the caste system are dominated by the upper castes. But most of the Mohammedans, though they want independence, will not accept the Congress System. They have even proposed that an independent Moslem State should be made out of the provinces in which they have a majority. The Depressed Classes, who form a very large element of the population and are just beginning to be vocal, do not want the Congress system. The warlike races, from whom the army is recruited, are inclined to look down upon the Congressmen. And the Indian Princes, whose position depends upon their treaties with the British Crown, distrust and fear Congress domination.

The British Government has declared, through the Viceroy, that it is prepared to agree to Dominion Status (which would practically mean British withdrawal from India); but not until the various sections of Indian opinion have agreed as to the way in which it should be organised. In the absence of such an agreement, the result might be chaos in India.

Many foreigners, in neutral countries, are inclined to think that Britain is behaving in a high-handed way; and that the denial of Dominion Status stultifies Britain's claim to be defending the democratic ideal. They seldom understand the complexity of the subject, and the difficulty of establishing a complete system of democratic self-government in India.

India is a country as big as all Europe, leaving out Russia, and its inhabitants form about one-sixth of the total population of the world. Democracy has never been attempted on any such scale, except in China, where its theoretical establishment produced chaos.

This vast land is inhabited by an extraordinary variety of races, from the most primitive to the most advanced; and, while in other countries the mixed races of which all nations are formed have more or less completely blended, in India the races remain distinct, kept apart by the institution of caste. Twice as many languages are spoken in India as in the whole of Europe, and they have no common medium of communication, except English, which is spoken by the small educated classes, whom it enables to act together. Differences of language have always been an obstacle to unity.

Differences of religion are still more serious. They go far deeper than the distinctions between Christian sects which have often stood in the way of unity in European countries. Disregarding the minor religions (which are numerous and sharply differentiated), the conflict between the two main religions, Hinduism and

Mohammedanism, is sharper than between any other religions in the world. Mohammedanism is strictly monotheist, and abhors images and idols ; Hinduism recognises an unaccountable number of gods, and represents them by images. Mohammedanism is a proselytising religion ; nobody can be converted to Hinduism, he must be born into it. Mohammedanism has a clear and definite creed ; not so Hinduism—a man may believe almost anything, do nothing, and still be a Hindu, if he was born a Hindu. Mohammedanism is a democratic faith, in as much as it teaches the equality of all believers ; the essence of Hinduism is the caste system, which keeps men, from birth to death, in a position of unalterable inferiority or superiority to their neighbours ; for a man can rise, or fall, out of the caste into which he is born : this is the difference between caste and class.

The caste-system is, indeed, the essence of Hinduism, which is far more a social system than a body of religious belief. It sentences 50,000,000 Indians to the degradation of being 'untouchable,' which means that if their very shadow falls upon the foot of a high-caste man, he will starve rather than eat it. It is not possible to imagine a more fundamental incompatibility than that between democracy and the caste-system. If they are to exist side by side, there must be a conflict to the death between the two. Already the low-caste and out-caste (or 'untouchable') Hindus are beginning to awaken to a sense of the injustice of the system. We can predict the results if this spreads ?

These are the reasons why many lovers of India fear that a sudden plunge into complete democracy might easily bring about chaos in India, with conflict between the Princes and the Congress leaders, between the Hindus and the Mohammedans (who cannot forget that for centuries they were the rulers of the greater part of India), between the warlike peoples and the unwarlike, between the degraded castes and those who have hitherto dominated them. One of the main functions of the British Government has been to act as an impartial arbiter between the rival races, creeds and castes of this vast land. Until the wide differences that keep the Indian people in a frozen disunity have somehow been overcome—which will not be in time and patience—some arbitral authority is surely necessary.

The period of British rule has brought great boons to India. It has given her political unity, for the first time in her history. It has given her a surcease of internal strife, which has been unending for centuries, and freedom from external attack. It has given her equal and impartial laws, based upon Indian usages, in place of arbitrary awards of despots and their agents. It has given her a common medium of communication, for all her educated classes. It has given her freedom of speech and of the press—freedom to criticise the Government, which has been largely used. It has given her the aspiration after political liberty, which her peoples have never entertained during the long centuries of their history. It has introduced her to western knowledge, and the material conveniences of western civilisation.

It is natural that educated Indians should resent alien rule, and desire to get rid of it. But it is equally natural that the British should fear lest the boons already conferred might be sacrificed by so sudden a change. British Governments have long made the gradual extension of self-governing institutions a principal aim of their policy in India. But, realising, as Indians themselves cannot easily do, the magnitude of the difficulties in the way, and the defencelessness of India against foreign conquest should she fall into chaos, Englishmen feel deeply the necessity for a gradual and careful advance. Democracy means more than the universal diffusion of the right of marking crosses on ballot-papers. It can only work well among peoples who are not divided by fundamental disunity of purpose, and who have been trained in the habits of self-government. The problem of Indian government will continue to be one of the most difficult problems in the world even when the present mortal combat between liberty and tyranny has reached its appointed end.

In this epilogue, we have concentrated all our attention upon the gigantic conflict in which the British Commonwealth is involved. This conflict dwarfs all other issues, and the events that have led up to it have filled the minds of men for seven years, to the exclusion of all else. It is right that this should be so ; for upon the issue of this conflict depends the future, nay the very existence, of the British Commonwealth. Upon it depend also the continuance and expansion of freedom and justice in the world, and the hope of an era in which peace and justice may reign. We have the privilege of living in one of the most momentous and decisive eras in the history of humanity. May we be worthy of that privilege !

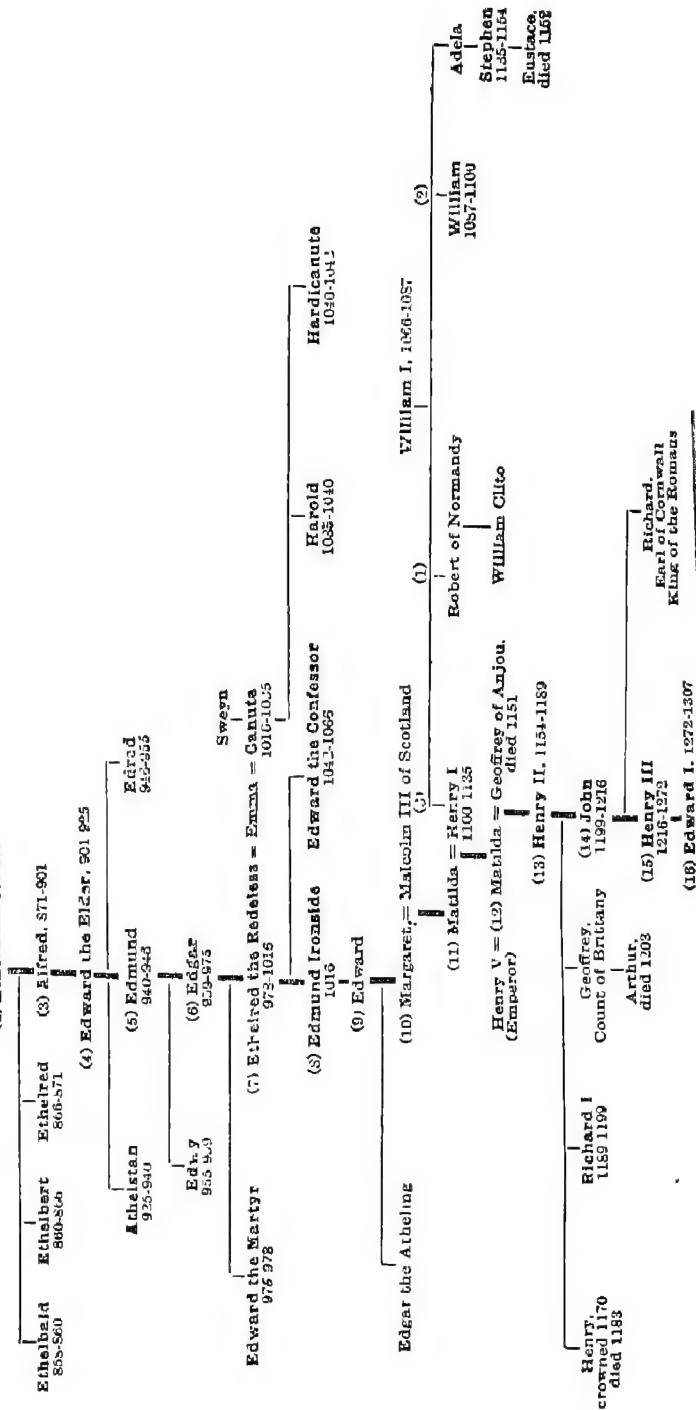
### A. TABLE OF THE KINGS OF ENGLAND FROM EGBERT TO EDWARD I.

The names of register files are given in black type.

The strong black line shows the line of continuous descent. The numbers indicate generations—seven generations in five hundred years.

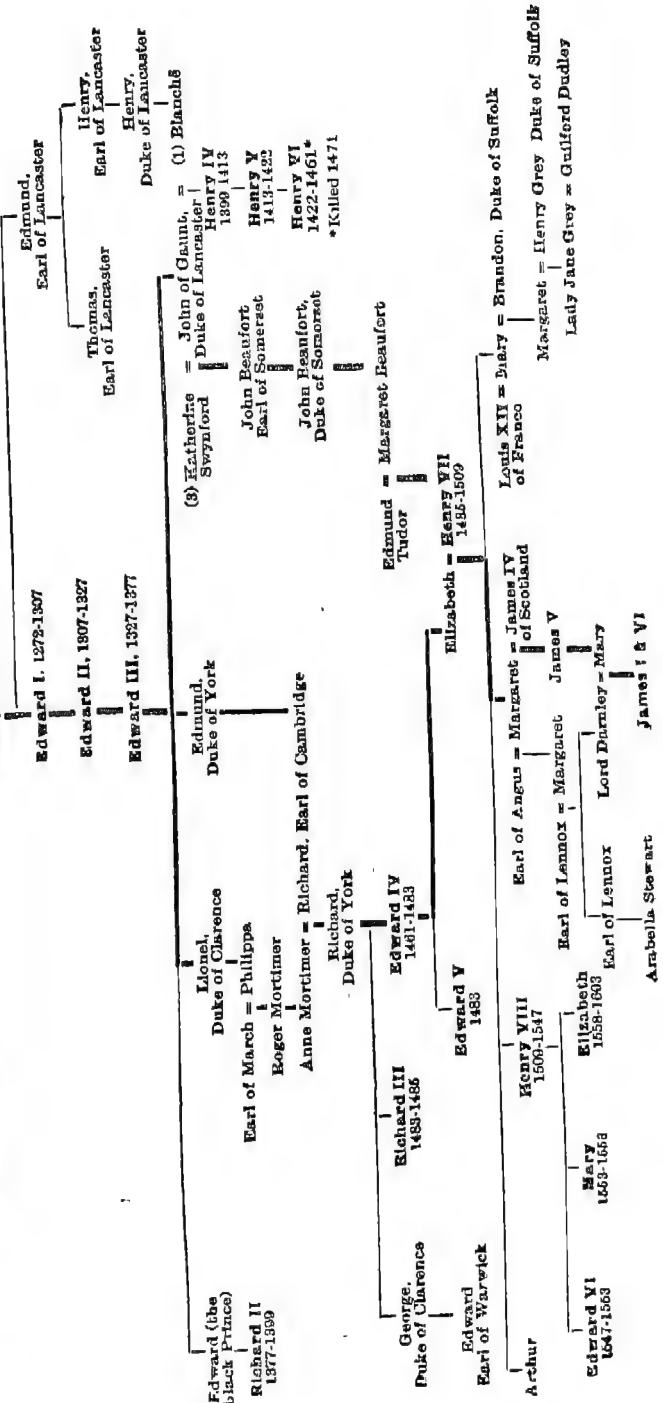
(1) Egbert. 502-949

(2) Ethelwulfe. 839-958



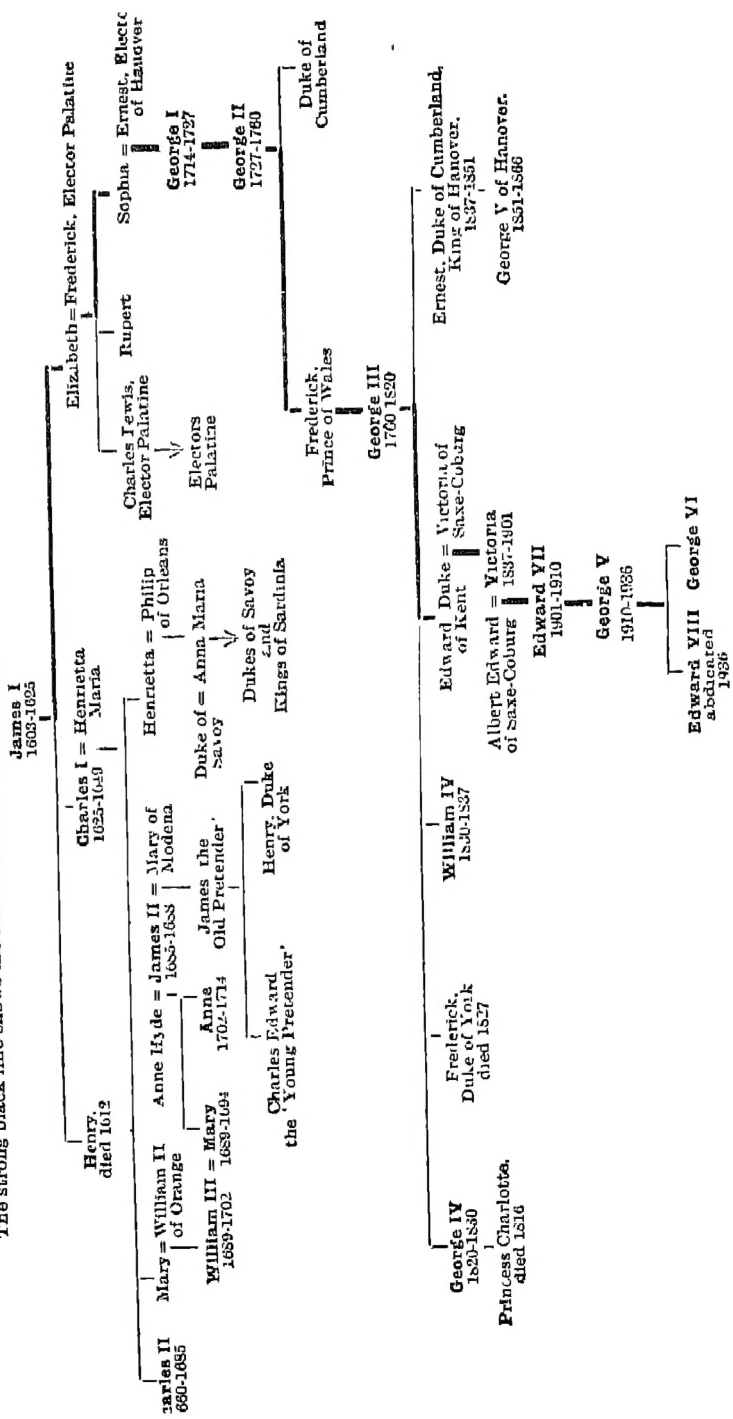
# **B. TABLE OF THE KINGS OF ENGLAND FROM HENRY III TO JAMES I AND OF THE HOUSES OF LANCASTER AND YORK.**

The names of reigning monarchs are printed in black type. The strong black line shows the line of succession Henry III. 1216-1272



# C. TABLE OF THE KINGS OF GREAT BRITAIN FROM JAMES I TO GEORGE VI

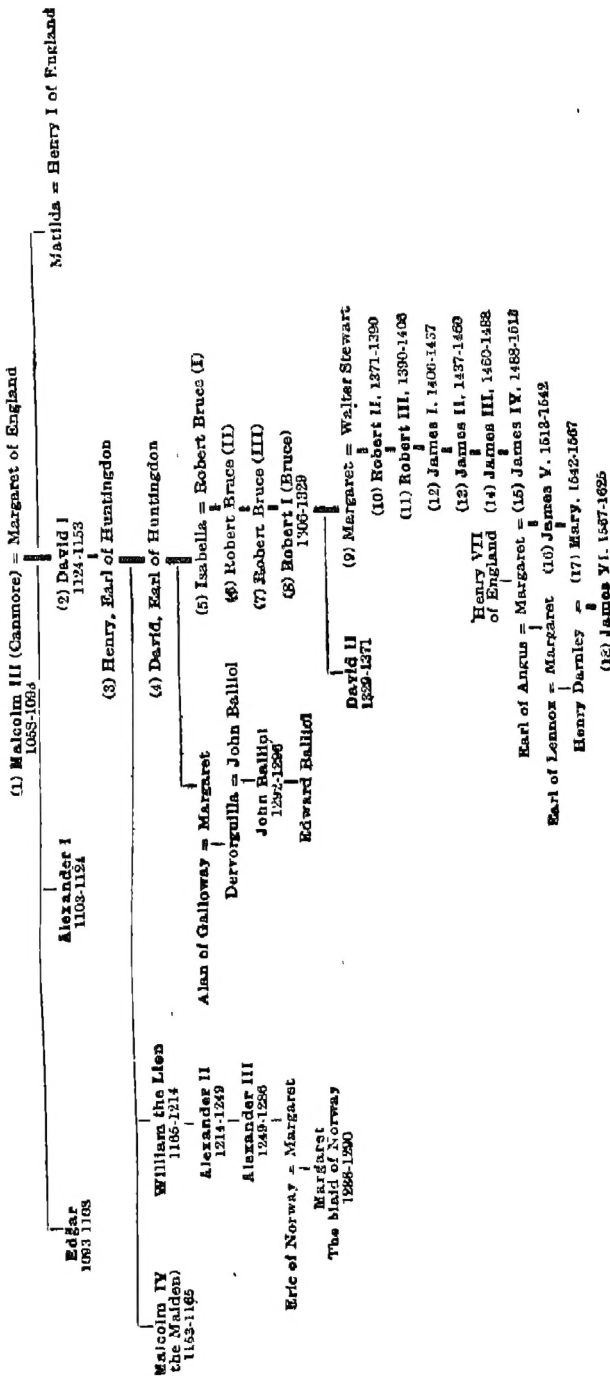
Names of reigning kings and queens of Great Britain are printed in **black type**.  
 The strong black line shows the line of succession from James I to George VI—eleven generations in 300 years





# D. TABLE OF THE KINGS OF SCOTLAND FROM MALCOLM CANMORE TO JAMES VI (and I)

The sigma black line shows the line of succession from Malcolm Canmore to James VI (and I).  
The arabic figures show the generations—eighteen generations in 600 years



# E. TABLE OF THE KINGS OF FRANCE FROM HUGH CAPET TO FRANCIS I

Showing the claims of Edward III and Henry V to the French crown, also the ducal line of Burgundy to Charles V  
 Reigning kings of France are printed in black type; reigning dukes of Burgundy in *italics*.  
 Note that Henry VIII, Francis I and Charles V were all descended from Philip III of France; the first in the 9th generation, the second in the 8th, the third in the 10th.

Hugh Capet. 987-998

Robert. 996-1031

Henry I. 1031-1060

Philip I. 1060-1108

Louis VI. 1108-1137

Louis VII. 1137-1180

Philip II. Augustus. 1180-1222

Louis VIII. 1222-1226

(St.) Louis IX. 1226-1270

Philip III. 1270-1285

Philip IV. 1285-1314  
(The Fair)

Charles IV. 1328-1328

Philip V. 1316-1322

Louis X. 1316-1316

Isabella = Edward III of England

Edward III

John of Gaunt

Henry IV

Henry V = Catherine of France

Henry VI

John Beaufort, Earl of Somerset

John Beaufort, Duke of Somerset

Margaret Beaufort

Henry VII

Edward Tudor = Margaret Beaufort

## HOUSE OF VALOIS

Charles of Valois

Philip VI 1328-1350

John 1350-1364

Charles V 1364-1380

Charles VI 1380-1422

Charles VII 1422-1461

Louis XI 1461-1483

Louis XII 1483-1500

## DUCHY HOUSE OF BURGUNDY

Philip the Bold 1364-1404

John the Fearless 1404-1419

Philip the Good 1419-1467

Charles the Rash 1467-1477

Mary = (1477) Maximilian of Austria

Louis, Duke of Orleans

Charles, Duke of Orleans

John, Count of Artois

